Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

श्री

बृहत

सुखसागर

भाषा

बारहस्कन्ध सचित्र

मूल्य १५)

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ श्री गणेशायनमः ❀

❀ श्री राधाकृष्णाभ्यं नमः ❀

वृहद

...खसागर भाषा

सचित्र

—अर्थात—

...भागवत के बारह स्कन्धों का सरल भाषानुवाद

—अनुवादक—

पं० सुशीलकुमार शर्मा (मायावी)

—❀❀—

स्टाकिस्टः—

...न धार्मिक पुस्तकालय, बम्बई।

...र्थ संस्करण] संवत् २०१७ वि० [मूल्य १४)

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ श्रीकृष्णः शरणंमम: ❀

श्रीमद्भागवत माहात्म्य

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं ।
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् ॥
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली ।
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपाल चूड़ामणिः ॥
अस्तिस्वस्तरुणी कराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं ।
वस्तुप्रस्तुत वेणुनादलहरी निर्वाणनिर्व्याकुलम् ॥
स्त्रस्त स्त्रस्तनिबद्धनीविविलसद् गोपीसहस्त्रावृतं ।
हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारंकिशोराकृतिं ॥

॥ पहिला अध्याय ॥

[श्री नारदजी की भक्ति से भेंट]

एक समय नैमिषारण्य क्षेत्र में अट्ठासी सहस्त्र मुनीश्वरों का एक सत्सङ्ग सत्र हुआ, जिसमें सौनकादिक मुनीश्वरों ने भगवान् वेदव्यास जी के शिष्य महामति सूत जी को प्रणाम कर के यह प्रश्न किया । हे सूत जी ! आप परम ज्ञानी हैं । आपने वेदव्यास जी तथा उन के शिष्यों से चारों वेद, षट शास्त्र एवं अठारह पुराणों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है । इस लिए आप इस सुअवसर पर कोई ऐसी उत्तम कथा सुनाइये जो इस कराल कलिकाल के मनुष्यों के लिए अमृत के समान हो ।

कलियुग में मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी व सांसारिक माया जाल में फँसने वाले, परस्पर कलह करने वाले और अल्पायु के होंगे । उनके उद्धार के लिए हमें उस कथामृत का पान कराइये जिससे लोक हित होवे और सुख शान्ति का विस्तार होवे । कृपा कर के यह बताइये कि भक्ति, ज्ञान और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वैराग्य से ज्ञान किस प्रकार बढ़ता है और हरि भक्त इस माया मोह से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं ? इस कर्म बन्धन से जीव किस प्रकार छूट सकता है और भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ।

शौनकादिक ऋषियों के ऐसे लोक हितकारी बचन सुन कर सूत जी बोले–हे शौनकजी ! मैं आप सब ऋषियों को वह उत्तम उपाय बतलाता हूँ जो जीवन मरण के भय को दूर करता है और भगवान् की भक्ति को बढ़ा कर उन को प्राप्त करता है आप सब लोग सावधानी से ध्यान पूर्वक सुनो–कलियुग के आदि में श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत् शास्त्र सुनाया था । उस से बढ़ कर मन को शुद्ध करने वाला भगवान् के उत्तम चरित्र का रसामृत पिलाने वाला और कोई दूसरा शास्त्र नहीं है । इसलिए मैं उसी उत्तम शास्त्र का वर्णन आप सब ऋषियों के सम्मुख करता हूँ । यह श्रीमद्भागवत् की कथा देवताओं को भी अति दुर्लभ है । हे ऋषियो ! श्रीमद्भागवत् की कथा के सुनने से राजा परीक्षित कर्म बन्धन से मुक्त हो गये थे । यह बात जान कर ब्रह्मा जी को बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने सत्यलोक में तुला से भगवद भक्ति के सब साधनों को तोला किन्तु सब साधन श्रीमद्भागवत् की अपेक्षा हल्के रहे यदि श्रीमद्भागवत् का पारायण सप्ताह विधि से किया जावे तो यह अवश्य मोक्ष देता है । प्राचीन काल में इस कथामृत को सनकादिक ऋषियों ने श्रीनारदजी से कहा था ।

शौनकजी बोले–हे सूत जी ! नारद जी तो सदा इस माया जाल से दूर रहते हैं और एक घड़ी से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहरते हैं तब सनकादिक ने यह श्रीमद्भागवत् नारदजी को किस प्रकार सुनाई ।

सूतजी बोले–हे शौनकजी ! श्रीशुकदेवजी ने मुझे अपना परम भक्त समझ कर यह कथा एकान्त में सुनाई थी । एक समय सनकादिक ऋषिगण सत्सङ्ग के हेतु बदरीवन की विशालपुरी में पधारे । वहाँ उनकी भेंट नारद जी से हुई । उस समय नारद जी की शोक और चिन्ता युक्त दशा देख कर सनकादिक ने पूछा–हे नारद ! आप किधर से आ रहे हैं और कहाँ को जा रहे हो ? आपकी यह बेचैनी और चिंतित दशा क्यों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

है ? आप तो बीतराग और जीवन मरण से मुक्त हैं फिर आपकी यह दशा क्यों है ? कृपा करके हम से इसका भेद कहिये।

नारदजी बोले–हे मुनिवरो ! मृत्युलोक जीवधारियों का कर्म स्थान है। मैं इस मनुष्य लोक को सर्वोत्तम समझ कर इधर आया था। मैंने अनेकों तीर्थस्थान प्रयाग, काशी, नासिक, हरिद्वार, पुष्कर, सेतबन्धुरामेश्वर, जगन्नाथपुरी आदि में परिभ्रमण किया, किन्तु मुझे शान्ति कहीं भी न मिली। सर्वत्र कलियुग ने अपना अधिकार जमा लिया है। चारों ओर अधर्म छा रहा है। दया, धर्म, दान, जप, तप कुछ भी कहीं नहीं दीख पड़ता। मनुष्य निसदिन विषय भोगों में लिप्त रह कर उदर पालन करते हैं। मन्द बुद्धि भाग्यहीन, आलसी, झूँठ बोलने वाले अधर्मी दयाहीन हरि भजन मे विमुख निर्धन, विपत्तियों से घिरे हुए, हिंसावादी देख पड़ते हैं। ब्राह्मण साधु सन्त, पाखण्डी, दुराचारी, लोभी दम्भी हो गये हैं। कन्या बेचकर उदर भरते हैं। घरों में स्त्रियों का अधिकार है। आश्रम, तीर्थ आदि स्थानों में लुटेरों का अधिकार है। वे धर्म के नाम से लूट करते हैं प्रजा को कष्ट देते हैं। मन्दिर, देवालय आदि पर बिधर्मियों और शूद्रों का अधिकार होता जा रहा है। दासता बढ़ती जा रही है। स्त्रियाँ वेश्यावृति से अपना पेट भरती हैं। पतिब्रता धर्म का नाश होता जा रहा है। मैं आपको कहाँ तक सुनाऊँ इस कलियुग ने सारे भूमण्डल पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। मैंने घूमते घूमते यमुना तट पर क्या देखा कि एक युवती बैठी हुई रो रही है। उसके निकट दो बृद्ध पुरुष मृतावस्था को प्राप्त हो रहे हैं उनकी दीर्घ श्वासें चल रही हैं, वह युवती उनकी सेवा कर रही है उन्हें जीवित करने का प्रयत्न कर रही है वे मूर्छित पड़े हैं। मैं इस आश्चर्यजनक घटना को देख कर उधर चला गया। मुझे देख कर वह तरुणी खड़ी होगई और दुःखी होकर बोली–हे मुनिवर ! आप तनिक मेरी कथा सुन लीजिये, मेरे दुःख को दूर कीजिये। साधु सन्तों के दर्शन तो सांसारिक पापों को दूर करते हैं। मेरे बड़े भाग्य हैं तभी इस संकट काल में आपके दर्शन हुए।

नारदजी बोले–हे मुनियो ! मैंने उस युवती से पूछा कि तुम कौन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हो ? ये दोनों पुरुष जो तुम्हारे सामने पड़े हैं कौन हैं ? तुम्हारी सेवा करने वाली ये समस्त स्त्रियाँ जो तुम्हें घेरे बैठी हैं, कौन हैं, तब वह तरुणी बोली–हे मुनिवर ! मैं भक्ति हूँ ये दोनों पुरुष ज्ञान और वैराग्य मेरे पुत्र हैं । ये जो युवतियाँ मेरी सेवा कर रहीं हैं, गङ्गा आदि नदियाँ हैं । इस कलियुग के प्रभाव से मेरे पुत्रों की यह दशा है । हे मुनिवर ! मेरा जन्म द्रविड़ देश में हुआ और कर्णाटक देश में युवा अवस्था को प्राप्त हुई । मेरा सत्कार महाराष्ट्र प्रान्त में अधिक हुआ । लेकिन गुजरात प्रान्त में आते ही मुझे वृद्धावस्था ने घेर लिया । अब मैं यहाँ बृन्दावन में आई हूँ । मैं तो यहाँ तरुणी हो गई हूँ किन्तु मेरे दोनों पुत्र अब भी वृद्ध हैं मुझे अब यही चिन्ता और दुःख है कि मैं युवती हो गई और पुत्र वृद्ध ही रहे मुझे वृद्ध होना चाहिये और मेरे पुत्रों को युवा होना चाहिये । मुझे इसका कारण समझाइये ।

सूतजी बोले–हे ऋषियो ! जब उस युवती ने नारदजी से इस प्रकार पूछा तब नारद जी बोले–हे युवती ! मैं अपने ज्ञान से अभी सब बात तुम्हें बताता हूँ ।

नारदजी बोले–हे साध्वि ! तू ध्यान पूर्वक सुन । इस कलियुग के प्रभाव से मनुष्य पापी, पाखंडी, अज्ञानी, भक्ति हीन हो गये हैं वे भक्ति ज्ञान वैराग्य की ओर तो दृष्टि भी नहीं करते हैं । किन्तु बृन्दावन बृजधाम में भक्ति सर्वत्र नृत्य करती रहती है धन्य है यह गौ लोक धाम ! इसी कारण तू युवती हो गई है किन्तु तेरे पुत्र अब भी सुसुप्त दशा में हैं । इन्हें यहाँ कुछ आराम अवश्य प्राप्त हुआ है । तब भक्ति बोली–हे देवऋषि ! राजा परीक्षित ने इस पापी कलियुग का नाश क्यों नहीं कर दिया था ।

तब नारदजी बोले–हे देवि ! राजा परीक्षित ने कलियुग की दीनदशा देखकर उस पर इसलिए दया की कि उन्होंने अपनी बुद्धि से विचार लिया था यद्यपि कलियुग अधर्म का स्थान है किन्तु अन्य युगों की अपेक्षा इस युग में थोड़ा सा ही केवल हरि भजन, हरि कीर्तन मात्र से ही कलि-काल के पाप दूर हो जाते हैं । अन्य युगों में सहस्रों वर्ष तपस्या, अनेकों दान जप तप करने पर भी यह फल प्राप्त नहीं होता है जो कलि-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

युग में केवल भगवान के संकीर्तन मात्र से ही प्राप्त हो जाता है। इसी विचार को करके राजा परीक्षित ने इस कलियुग को नष्ट नहीं किया था।

तब नारद जी के वचन सुन कर भक्ति ने कहा—हे देवर्षि! आपके प्रभाव से प्रहलाद ने अपूर्व भक्ति पाई और आप ही के प्रभाव से ध्रुव ने अटल भक्ति प्राप्त की। हे मुनि श्रेष्ठ! आपके दर्शनों से मुझे भी अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ है। आप ब्रह्मा जी के पुत्र हैं मैं आपको साष्टाङ्ग प्रणाम करती हूँ।

॥ दूसरा अध्याय ॥

(नारदजी द्वारा भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करना)

नारद जी बोले—हे देवि! तू दुखी न हो भगवान् श्रीकृष्ण को तू अति प्रिय है उन्हीं का ध्यान धर, वे तेरे दुःख को अवश्य दूर करेंगे। उन्होंने सदा ही अपने भक्तों के कष्ट दूर किये हैं। कौरव सभा में द्रोपदी की रक्षा की थी। अपने भक्तराज अम्बरीष की रक्षा की थी, तू तो उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी है। तेरे बुलाने पर तो वे पापियों से भी पापियों के यहाँ शीघ्र चले आते हैं। सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग इन तीनों में तो ज्ञान वैराग्य मुक्ति देने के उपाय थे, किन्तु इस कलियुग में तो केवल भक्ति मोक्ष के देने वाली है। एक समय तूने भगवान से पूछा था, कि मैं क्या कार्य करूँ? तब भगवान ने तुझसे यही कहा था कि तू भक्तजनों को पुष्टि प्रदान कर उन्हें शक्तिशाली बना। तब तुझे ज्ञान-वैराग्य दो पुत्र और मुक्ति दासी प्राप्त हुई। तेरा असली स्वरूप बैकुण्ठ धाम में भक्तों का पोषण करना है। इस मनुष्य लोक में तो केवल छाया रूप से रहती है।

हे भक्ति! तू सतयुग, त्रेता, द्वापर इन तीनों में बड़े सम्मान से रही। किन्तु कलियुग में तेरी सेविका मुक्ति क्षीण हो गई और बैकुण्ठधाम को पधार गई। इस मनुष्य लोक में तेरे बुलाने पर ही वह आती है और पुनः चली जाती है। ये ज्ञान वैराग्य तेरे दोनों पुत्र सदा तेरे साथ रहते हैं, किन्तु कलियुग में इनका सम्मान न होने के कारण से वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये हैं, किन्तु तू चिन्ता न कर। मैं इन तेरे दोनों पुत्रों को पुनः सजग कर दूँगा और तेरा प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करा दूँगा। मैं हरि भक्त न कहाऊँ जो ज्ञान वैराग्य और भक्ति को घर घर में और प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्थापित न कर दूँ। कलियुग में केवल भक्ति ही सार है भक्ति के बल से भगवान श्री कृष्ण स्वयं पधारते हैं और वे भक्ति के ही बस में रहते हैं। जो मनुष्य भक्ति का तिरस्कार करता है वह भगवान् द्वारा नाश को प्राप्त होता है।

सूत जी बोले—हे शौनक जी! नारद जी के इस प्रकार उत्साहित करने पर भक्ति के सम्पूर्ण अङ्ग बलिष्ठ हो गए, और वह बोली—हे नारद जी! आप परम भक्त हैं और आप मुझसे अनन्य भाव से प्रेम करते हैं। इस लिये मैं सदा आप में निवास करूँगी। आप को त्याग कर अन्यत्र कहीं भी न जाऊँगी। आपने मेरे कष्ट को कम किया है। अब कृपा कर के मेरे इन पुत्रों के कष्टों को भी दूर कीजिए।

सूत जी बोले—हे शौनकजी! भक्ति के ऐसे करुणा जनक बचन सुनकर नारद जी को बड़ी दया आई और वे उसके पुत्र ज्ञान तथा वैराग्य को हिला हिला कर सचेत करने लगे किन्तु वे सचेत न हुए। तब उन्होंने वेद वेदांत घोष किये और गीता के संपूर्ण अध्यायों का पाठ करके उन्हें सचेत किया। ज्ञान वैराग्य उठ तो बैठे, किन्तु निद्राजनित आलस्य के कारण जंभाही लेने लगे। उनके केश बिल्कुल श्वेत हो गये थे। शरीर जर्जरित हो गया था। इस कारण वे दोनों फिर लड़खड़ा कर गिरने लगे। उन दोनों की यह दशा देखकर नारद जी को अधिक चिन्ता हुई, और वे भगवान् को याद करने लगे। उसी क्षण एक आकाश वाणी हुई कि—हे नारद जी! आप दुखी न हों तुम्हारा यह प्रयत्न ब्यर्थ न होगा। इन ज्ञान वैराग्य को पुनः जाग्रत करने का उपाय सन्त शिरोमणि ऋषि लोग आप को बतावेंगे। उनकी बताई हुई बिधि से कार्य करने पर यह दोनों ज्ञान वैराग्य जाग्रत हो कर पुष्ट व बलिष्ठ हो जावेंगे। नारद जी आकाशवाणी के अर्थ को न समझ पाये और ज्ञान वैराग्य को वहीं छोड़ कर वे चिन्ता कुल हो कर संत शिरोमणियों की खोज में निकल पड़े। वे घूमते घूमते अनेकों ऋषियों से मिले। अनेकों तीर्थों में गए किन्तु उनके इस अर्थ को कोई भी न समझ सका। कोई सन्त कहने लगे जब वेद ध्वनि वेदान्त घोष और गीता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

पाठ से भी ज्ञान वैराग्य सचेत नहीं हुए हैं, तब उनका सचेत होना अति दुर्लभ है। कोई सन्त कहने लगे कि–जब नारद जी जैसे परमज्ञानी ब्रह्मा के पुत्र ही ज्ञान वैराग्य को जीवन दान न दे सके तो अन्य किसी में ऐसी सामर्थ नहीं है, जो उन्हें सजग कर सके। नारदजी चिन्ताकुल होकर इसी प्रकार भ्रमण करने लगे और ज्ञान वैराग्य के कष्ट निवारणार्थ तप करने के लिए बदरीबन में गये। वहाँ उन्हें सन्त शिरोमणि सनकादिक मुनियों के दर्शन हुए। नारदजी कहने लगे–हे सन्त शिरोमणियो! आज बड़े सौभाग्य का समय है जो मुझे आप लोगों के दर्शन हुए हैं। आप परम ज्ञानी, पूर्वजों के भी पूर्वज ब्रह्मा के मानस पुत्र सदा पाँच वर्ष की अवस्था में रहने वाले हो। आप लोग निरन्तर "हरिशरणम्" मूल मन्त्र का जप करते रहते हैं, और वैकुण्ठधाम में निवास करते रहते हैं। हरि कीर्तन ही आप का मुख्य कर्म है। मैं अति दुःखी हूँ। मुझे आकाशवाणी का अर्थ समझाने की कृपा कीजिये। आकाशवाणी में ज्ञान वैराग्य के उद्धार हेतु किस साधन को बताया गया है।

सनकादिक बोले–हे नारद जी! हम आप के कष्टों को अभी दूर करते हैं, आप प्रसन्न होकर सुनिये। प्राचीन ऋषियों ने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के अनेकों साधन बताये हैं किंतु वे अति कठिन हैं और स्वर्ग को देने वाले हैं, किन्तु मोक्ष को देने वाले नहीं हैं। मोक्ष का देने वाला साधन जिससे भगवान् की प्राप्ति होती है वह अभी गुप्त ही है। आकाशवाणी ने जिस उत्तम कर्म का उपदेश किया है वह हम बताते हैं। द्रव्य, यज्ञ, तपो, यज्ञ, योगयज्ञ और ज्ञानयज्ञ ये चार यज्ञ स्वर्ग को प्राप्त कराते हैं किंतु विद्वानों के स्वाध्याय रूपी ज्ञान यज्ञ को ही मोक्ष कर्म कहा है। और वह है श्रीमद्भागवत् का स्वाध्याय जिसका पारायण श्रीशुकदेवजी आदि ब्रह्मज्ञानियों ने वर्णन किया है। उस स्वाध्याय से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को बल प्राप्त होगा। और उनके सब कष्ट दूर हो जावेंगे। श्रीमद्भागवत की ध्वनि से कलिकाल के सम्पूर्ण पाप इस प्रकार दूर हो जावेंगे जैसे सिंह की गर्जना से वन्य पशु दूर हो जाते हैं।

नारदजी कहने लगे–हे महात्माओ! मैंने वेदों की ध्वनि, वेदान्त घोष

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और गीता का पाठ करके उनको सचेत करने का उद्योग किया किन्तु इतने पर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य सचेत न हुए। तब श्रीमद्भागवत की ध्वनि से वे कैसे जाग्रत हो सकते हैं। नारदजी के यह बचन सुन कर सनकादिक बोले–हे नारदजी ! श्रीमद्भागवत की कथा वेद वेदान्त और उपनिषद इन सभी के तत्व से रची गई है। इस लिये यह उनका तत्व रूप फल होने के कारण अति उत्तम है। जिस प्रकार किसी वृक्ष की शाखा, जड़, तना, ग्राह्य नहीं है, किन्तु उसका फल ग्राह्य है। जिस प्रकार दूध से निकला हुआ तत्व रूप घृत ग्राह्य हैं। उसी प्रकार ईख के तना पत्ती इत्यादि ग्राह्य नहीं हैं, किन्तु उसका रस ग्राह्य है। इसी प्रकार वेद वेदान्त का सार यह श्रीमद्भागवत फल रूप होकर ग्राह्य है।

श्री व्यास जी ने आपको चार श्लोकों में श्रीमद्भागवत का उपदेश किया था जिसके सुनने से आपके सब कष्ट दूर हो गए थे, आपको उसी श्रीमद्भावगत पुराण की ध्वनि करनी चाहिए। उसी से ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का दु:ख दूर हो जावेगा। यह सुन कर नारद जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि हे मुनिवरो ! आपके दर्शनों से और उपदेशों से मेरे हृदय को शान्ति मिली है। मैं अब प्रेम लक्षणा भक्ति का प्रचार करूँगा। उसी से संसार के मनुष्यों का अज्ञान तथा मोह दूर होगा।

॥ तीसरा अध्याय ॥

[भक्ति का कष्ट निवारण]

नारदजी बोले–हे मुनिवरो ! भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के कष्ट की निवृत्ति के लिए श्रीमद्भागवत् शास्त्र की कथा का ज्ञान यज्ञ करूँगा, किन्तु यह बताइये कि इस यज्ञ के योग्य कौन सा स्थान है और कृपा करके इसकी महिमा भी मुझे सुनाइये। इस कथा की क्या विधि है और यह कितने दिनों में समाप्त कर देनी चाहिये ?

सनकादिक कहने लगे—हे नारदजी ! आपको हम यह सम्पूर्ण विधि बताते हैं। इस कथा के योग्य सुन्दर स्थान हरिद्वार के निकट आनन्द घाट है। वहाँ पर ऋषि, देवता, सिद्ध सभी निवास करते हैं। अनेक प्रकार के लता बेलों और वृक्षों की संपन्नता के कारण बड़ी सुन्दर छाया रहती

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सुखसागर वामन अवतार

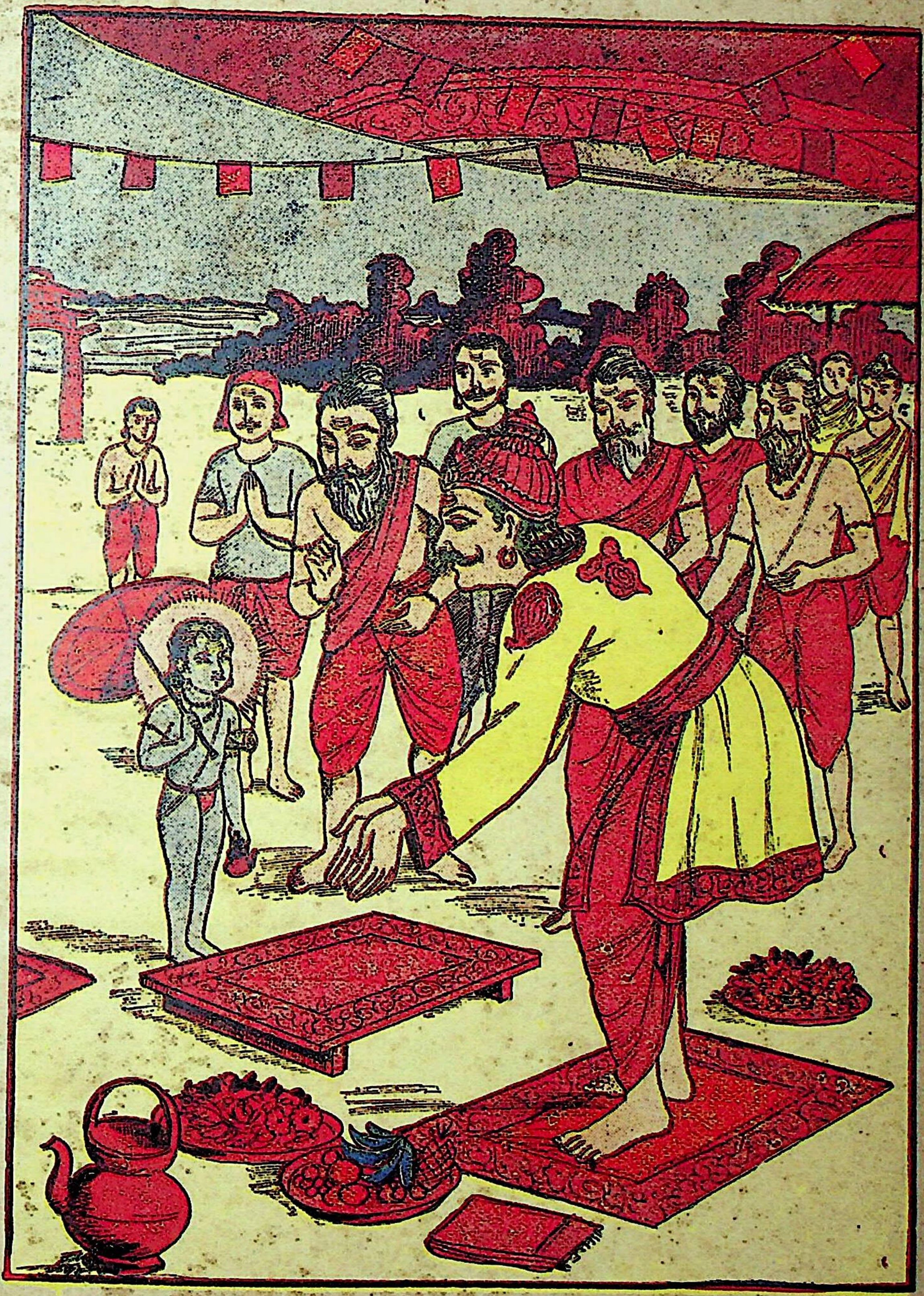

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है। उस घाट पर गङ्गा की सुन्दर बालू बिछी हुई है, वहाँ पर अनेक प्रकार के सुन्दर पुष्पों की सुगन्ध आती रहती है। वहाँ के रहने वाले प्राणी परस्पर वैरभाव को त्याग कर रहते हैं। उसी स्थान पर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य भी स्वयं आजायेंगे और श्रीमद्भागवत् की कथा सुन कर तरुणावस्था को प्राप्त होंगे। सूतजी बोले–हे मुनिश्वर नारद जी को इस प्रकार उपदेश देकर स्वयं भी गङ्गा तट की ओर चल पड़े। वहाँ पर भृगु, वशिष्ठ, गौतम, च्यवन, देवल, मेधातिथि, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पिलाद, व्यास, पाराशर, छायाशुक, जाँजलि, जन्ह आदि सभी मुख्य मुख्य ऋषिगण अपने शिष्य पुत्र तथा स्त्रियों सहित पधारे। उस स्थान पर वेद, उपनिषद मन्त्र तन्त्र सत्तरहपुराण षटशास्त्र, गङ्गा, जमुना, गौमती घागरा आदि नदियाँ पुष्कर आदि सरोवर, कुरुक्षेत्र, प्रभास आदि सब क्षेत्र, दण्डक काम्यवन, बृहदारण्यवन आदि सब बन, हिमालय, बिन्ध्याचल आदि सब पर्वत और देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि सभी मूर्ति मान होकर उस आनन्द घाट पर श्रीमद्भागवत कथामृत पान करने के लिये पधारे।

इस कथा के कहने वाले श्रीसनकादिक मुनीश्वर सुन्दर उच्च आसान पर बिराजे और समस्त श्रोतागण उस सुन्दर पुलिन पर बैठे वहाँ पर वैष्णव विरक्त, सन्यासी तथा ब्रह्मचारी सब से अग्र बैठे और उनसे भी आगे देवर्षि नारद कथामृत पान करने के लिये बैठे। उस स्थान पर एक ओर देवतागण एक ओर ऋषिगण और एक ओर वेद उपनिषद एवं एक ओर तीर्थ इत्यादि तथा एक ओर समस्त स्त्रियाँ बिराजमान हुईं। दशों दिशायें शङ्ख ध्वनि और जय जय के शब्द से गूँजने लगीं, देवगण आकाश से पुष्पों की वर्षा करने लगे।

सूत जी बोले–इस प्रकार आनन्द के साथ श्रीमद्भागवत् का पूजन हुआ और सनकादिक ऋषिगण श्रीमद्भागवत का माहात्म्य सुनाने लगे। सनकादिक बोले–इस श्रीमद्भागवत कथा के श्रवणमात्र से ही भक्ति प्राप्त हो जाती है। भगवान हृदयों में स्वयं आ जाते हैं। इस भागवत ग्रंथ में द्वादश स्कन्ध और अठारह सहस्र श्लोक हैं। इस पुराण को श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को सुनाया था। जो प्राणि इस पवित्र ग्रन्थ का एक श्लोक, आधा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

श्लोक अथवा चौथाई श्लोक भी नित्य सुनता है, अथवा उसका पाठ करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ पर सभी तीर्थ विराजमान रहते हैं, वह स्थान भी तीर्थ हो जाता है। सहस्रों अश्वमेध यज्ञ कथा सैकड़ों बाजपेय यज्ञ इस श्रीमद्भागवत् की कथा का सोलहवाँ अंश भी नहीं हैं। हे ऋषिगणो! इस कथा के समान गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर, प्रयाग, कोई भी तीर्थ नहीं है। इस सद्ग्रन्थ का पाठ नित्य नियम पूर्वक करना चाहिये। श्रीमद्भागवत् की समता ओंकार, गायत्री, पुरुष, सूक्त, तीनों वेद ओ३म नमो भगवते वासुदेवाय द्वादश मन्त्र, आदित्य, संवत्सर रूप, काल, प्रयाग, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, द्वादशी तिथि, गौ, तुलसी, भगवान् पुरुषोत्तम और बसन्त ऋतु ही कर सकती हैं। ये सब एक समान हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। जो मनुष्य दिन रात श्रीमद्भागवत् का पाठ अर्थ सहित करता है उसके जन्मजन्मांतर के पाप स्वयं जल जाते हैं। नित्य भगवान् का चिन्तन करना, तुलसी के विरवा को जल देना, गौ की सेवा करना और नित्य भागवत का पाठ करना ये सभी चारों साधन समान हैं। जो मनुष्य अन्त समय में इस श्रीमद्भागवत् के श्लोक को श्रवण कर लेता है वह अवश्य भगवान् के गौलोक धाम को चला जाता है। जो मनुष्य स्वर्णासन पर रख कर इस ग्रन्थ का दान सत्पात्र को देता है, वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त करता है। जिस मनुष्य ने अपने जीवन में कभी भी श्रीमद्भागवत् कथामृत का लेशमात्र भी पान नहीं किया है, उसका जीवन चाँडाल और गधे के समान है। उसने व्यर्थ ही माता को कष्ट देकर पृथ्वी के भार को बढ़ाया जब करोड़ों जन्मों का पुन्य होता है, तभी यह कथामृत प्राप्त होता है। इस कथा के लिये कोई निश्चित दिन नहीं है इसे हमेशा ही सुनना उत्तम है। सब से उत्तम विधि सप्ताह पारायण की है, उसको माघ मास में श्रवण करने से सर्वोत्तम फल प्राप्त होता है, जो पुण्य तप, योग और समाधि इत्यादि से नहीं मिलता है, वह सप्ताह श्रवण से सुगमता से प्राप्त हो जाता है, यह सप्ताह श्रवण तप, यज्ञ, तीर्थ सेवन आदि सभी से बढ़कर है।

शौनकजी बोले—हे सूतजी! यह आपने बड़ी अपूर्व बात कही कि श्रीमद्भागवत् पुराण का माहात्म्य इतना उत्तम है, किन्तु यह ज्ञान इत्यादि

In Public Domain ...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सभी उपायों से बढ़ कर किस प्रकार हो सकता है। सूत जी बोले हे शौनकजी! यदुनाथ, अमर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोक को त्याग कर जब अपने गोलोकधाम को जाने लगे तब उद्धव जी बोले—हे माधव! आप अपने भक्तों को त्याग कर अपने नित्यधाम को जाना चाहते हैं किन्तु आपके यहाँ न रहने पर यह कराल कलियुग आपके भक्तों को अनेक प्रकार के कष्ट देगा और उनके स्वभावों में परिवर्तन कर देगा। अधर्म चारों ओर फैल जावेगा। तब यह पृथ्वी किस का आश्रय लेगी। हे भक्त वत्सल! आप के अतिरिक्त इस पृथ्वी का आश्रयदाता और कोई नहीं है। आप निर्गुण निराकार होते हुए भी सगुण रूप हो कर भू भार उतारने के लिये ही युग युग में पधारते हैं। कलिकाल के मनुष्यों के लिये निर्गुण उपासना करना अति कठिन है, फिर किस प्रकार से यह वैष्णव धर्म रहेगा? उद्धव जी के ऐसे बचन सुनकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले हे उद्धव! मैं अपने जीने के पश्चात् श्रीमद्भागवत शास्त्र छोड़े जाता हूँ। उस शास्त्र में मैं स्वयं विराजमान हूँ। वह मेरी साक्षात् वाणी है। इसके सेवन, श्रवण पाठ तथा दर्शन मात्र में ही प्राणियों के सब पाप दूर हो जावेंगे। कलियुग में कोई भी साधन इस सप्ताह श्रवण से बढ़ कर नहीं माना जावेगा। इसलिए इस सप्ताह श्रवण का विधान किया गया है।

सूत जी बोले हे मुनिवरो! जिस समय सन्त शिरोमणि सनकादि ऋषि सप्ताह श्रवण की महिमा का वर्णन कर रहे थे, उसी क्षण एक आश्चर्य जनक घटना हुई। वहाँ पर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य हरे कृष्ण! हरे कृष्ण हरे गोविन्द! हरे गोविन्द! हरे मुरारे! हरे मुरारे! हे नाथ नारायण बासुदेव! आदि भगवान् के नामों का उच्चारण करते हुए प्रगट हुये। भगवान् की परम प्रिय भक्ति को आते देख कर सब ऋषिगण बड़े प्रसन्न हुए। भक्ति ने कहा—मैं कलिकाल के प्रभाव से नष्ट हो चुकी थी, किन्तु श्रीमद्भागवत के कथामृत से सींच कर सनकादि मुनिश्वरों ने मुझे पुनःपुष्टि प्रदान की है। अब मुझे मेरे निवास का स्थान बताइये। यह सुन कर सनकादि बोले—हे भक्ति महारांनी! तुम भगवान को अति प्रिय हो, और भक्तजनों को पुष्टि प्रदान करती हो, इसलिये आप उन्हीं भक्तजनों के हृदय में विराज-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मान हो जाओ। कलिकाल के समस्त दोष संसार को ही दूषित कर सकेंगे किन्तु तुम्हारा वहाँ पर कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे।

सूतजी बोले–हे शौनकजी! सनकादि ऋषियों के यह बचन सुन कर भक्ति उसी क्षण हरिजनों के हृदय में विराजमान हो गई।

❋ चौथा अध्याय ❋

(सप्ताह श्रवण में भगवान का प्रगट होना, तथा गोकर्ण की उत्पत्ति का वर्णन)

सूतजी बोले–हे ऋषियो! श्रीमद्भागवत् की कथा में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तीनों सम्मिलित होने से कथामृत बरसने लगा। उस आनन्द से प्रसन्न होकर भक्ति के वशीभूत भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं वहाँ खिंच कर अपने भक्तों को आनन्द देने के लिये अपूर्व छवि से पधारे। कण्ठ में बनमाला मेघवर्ण, मनोहर पीताम्बर, कटि-काँछनी धारण किये हुए सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, बाँकी छवि से भक्तों के चित्त को चुराने लगे। उनकी उस रूप माधुरी को देख कर भक्तजन अति आनन्द विभोर होकर एकटक उन की ओर देखने लगे और अपने तन मन तथा आपे को भूल गये। दशों दिशाओं में जय जय कार की ध्वनि होने लगी पुष्पों की वर्षा आकाश से होने लगी। शङ्ख, घंटा ध्वनि चारों ओर होने लगी। सभी भक्तजन अपूर्व आनन्द में मग्न हो गये।

यह देख कर नारद जी बोले–हे सन्त शिरोमणियो! मैंने भगवान् की भक्ति का अपूर्व आनन्द आज कथा श्रवण से प्राप्त किया है। इस कलि-काल में इससे बढ़ कर उत्तम और कोई कथा नहीं है। सम्पूर्ण पापों को इस प्रकार जला देती है जिस प्रकार रूई के ढेर को अग्नि जला देती है। हे मुनिश्वरो! अब आप यह बताने की कृपा कीजिये कि इस कथा श्रवण से कौन-कौन पवित्र हो जाते हैं?

सनकादि बोले–हे नारद जी! पातकी से पातकी एवं कुटिल से कुटिल मनुष्य इस कथा श्रवण से तर जाता है। इस कलियुग में यह कथा यज्ञ ही मुख्य है। जो प्राणी असत्यभाषी, पापी, माता पिता को कष्ट देने वाला, आश्रम वर्ण तथा धर्म से च्युत, अहङ्कारी, मदिरापान करने वाला, ब्रह्म-हत्यारा, चोर, गुरुपत्नी गामी, विश्वासघाती, छली, कपटी, क्रूर, निर्दयी,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हत्यारा, ब्राह्मणों के धन को खाने वाला, व्यभिचारी, लोभी तथा किसी भी प्रकार का पाप करने वाला हो, इस सप्ताह श्रवण से सभी पापों से मुक्त हो कर हरि लोक को चला जाता है।

सनकादिऋषि बोले—हे नारद जी! हम आप को एक कथा सुनाते हैं। यह बहुत प्राचीन कथा है प्राचीन काल में तुङ्गभद्रा नदी के किनारे एक अति रम्य नगर था। उस नगर में एक आत्मदेव नाम का ब्राह्मण रहता था। वह धर्म, कर्म तथा भजन पूजा पाठ इत्यादि सब कर्मों में कुशल था। उसने कुछ धन भी एकत्रित कर लिया था। गृहणी भी सुन्दर थी, किन्तु हठी और कलह प्रिय थी। गृह कार्य में कुशल और पैसा एकत्र करने में चतुर थी। दोनों बड़े प्रेम से रहते किन्तु सन्तान के अभाव के कारण दुःखी रहते थे। जब उन दोनों की अवस्था ढलने लगी और सन्तान उत्पन्न न हुई। तब वह ब्राह्मण अति दुःखी हो कर एक दिन घर से निकल पड़ा। वह थक कर एक तालाब पर जल पीने के लिए बैठ गया। जल पी कर कुछ देर वहीं आराम करने लगा। उसी समय वहाँ एक सन्यासीजी पधारे। वे सन्यासी जी जब जल आदि पीकर निबृत हुए तब वह ब्राह्मण उठ कर उनके निकट गया और चरणों में गिर कर फूट फूट कर रोने लगा। सन्यासी जी करुणा करके बोले—हे ब्रह्मदेव! मैं तुम्हारे कष्ट को समझ गया हूँ, किन्तु इस का निवारण किसी भी प्रकार नहीं हो सकता है। मैंने योग बल से देख लिया है कि तुझे सन्तान का दुःख है और सन्तान तेरे भाग्य में सात जन्म तक नहीं है। यह बात सुन कर ब्राह्मण अति दुःखी हुआ और सन्यासी जी के पैर पकड़ लिये और बोला—कि हे सन्यासी जी! यदि आप मेरे कष्ट को दूर न करेंगे तो मैं इसी तालाब में डूब कर प्राण त्याग दूँगा। अब घर लौट कर नहीं जाने का। सन्यासी ने बहुत समझाया कि यह मायाजाल कर्म बंधन में बाँधने वाला है तुम गृहस्थ से मुक्त हो कर हरि भजन करो संसार में कुछ भी सार नहीं है। किन्तु उस ब्राह्मण की समझ में कुछ भी न आया। वह बार २ संतान सुख के लिए आग्रह करने लगा तब सन्यासी जी ने प्रसन्न हो कर ब्राह्मण से कहा—अच्छा यदि तू नहीं मानता है तो ले यह फल तुझे देता हूँ इसे तेरी पत्नी खा लेगी तो उसके एक पुत्र अति सुन्दर बुद्धिमान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Education Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

माता पिता की सेवा करने वाला होगा। तेरी पत्नी नियम संयम से रहेगी तो उत्तम ज्ञान वाला पुत्र उत्पन्न होगा। इतना कह कर सन्यासी जी उस ब्राह्मण को फल देकर चले गए। वह ब्राह्मण भी घर लौट आया। उस ब्राह्मण ने वह फल लाकर अपनी स्त्री को दे दिया और उसे सब वृतान्त सुनाकर कहीं परदेश चला गया। उस ब्राह्मणी ने सोचा कि यदि मैं इस फल को खाऊँगी तो मेरे पेट में बच्चा पड़ जायगा, मेरा पेट फूल कर बड़ा हो जायगा, चलना फिरना, आहार, विहार सभी जाते रहेंगे। नौ मास तक कष्ट सहना पड़ेगा, वह कष्ट सहन कर लिया जायेगा, किन्तु प्रसव का कष्ट सहना अति दुर्लभ है। महान् दर्द उत्पन्न हो जाता है। यदि बच्चा टेढ़ा उलटा पड़ जाय तो उदर से निकलना कठिन हो जायगा, फिर तो मेरे प्राण भी निकल जायेंगे। मैं सुकुमारी हूँ, ऐसी भयङ्कर उदर पीड़ा मुझसे कैसे सहन हो सकेगी। मैं उधर प्रसव में रहूँगी, उधर नन्दरानी देवरानी सब मेरे घर को लूट कर ले जावेंगी। और मुझसे तो सन्यासी के बताए हुए नियमों का पालन भी होना कठिन है। यदि किसी प्रकार बच्चा पैदा भी हो जावेगा, तो उसका लालन पालन करना मेरे लिए अति दुर्लभ है। उन कष्टों से मुक्त रहने वाली विधवा व वन्ध्याही अति उत्तम हैं। ऐसा सोचकर उस ब्राह्मणी ने उस फल को अपनी गाय को खिला दिया। जब उसके पति ने पूछा तो उसने झूँठ कह दिया, कि वह फल मैंने खा लिया है। एक दिन उसके घर पर उसकी छोटी बहिन आई. उसने पति से झूँठ बोलने वाली बात कही तब उसकी बहिन बोली कोई चिन्ता की बात नहीं है, मेरे पेट में गर्भ है। मैं उस बच्चे को चुपचाप तुझे दे दूँगी, तू उसे अपना बच्चा ही प्रगट कर देना, उसके बदले में मेरे पति को कुछ धन तू दे देना। मैं तेरे घर आकर उसका लालन पालन कर लूँगी। यह बात सुनकर ब्राह्मणी अति प्रसन्न हुई। तत्पश्चात् उस ब्राह्मण की बहिन के पुत्र उत्पन्न हुआ, और उसने चुपचाप कुछ धन देकर स्वयं रख लिया उसका पति अति प्रसन्न हुआ। तब यह अपने पति से बोली कि मेरे स्तनों में बच्चे के लिए दूध नहीं उतरता है, इसलिये मेरी बहिन को बुलवा लिया जावे, उसके भी बच्चा उत्पन्न हुआ था किन्तु वह मर गया है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ब्राह्मण ने ऐसा ही किया और उस बच्चे के लालन पालन के लिए ब्राह्मणी की छोटी बहिन धुंधुली बुलाली गई। उस लड़के का नाम भी धुंधकारी रक्खा गया कुछ काल पश्चात ब्राह्मण की गाय के भी एक बड़ा दिव्य बालक उत्पन्न हुआ। वह सर्वाङ्ग सुन्दर और स्वर्ण के समान रङ्ग वाला था। जिसे देख कर ब्राह्मण अति प्रसन्न हुआ सारे नगर में यह चर्चा फैल गई कि अब आत्मदेव ब्राह्मण के दिन फिर गये हैं। उसकी स्त्री के भी पुत्र उत्पन्न हुआ और गाय के भी एक दिव्य बालक का जन्म हुआ है। उसे देखने के लिये सभी लोग आने लगे। उस बालक के कान गौ के समान होने के कारण आत्मदेव ने उसका नाम गौकर्ण रक्खा। दोनों का जातिकर्म संस्कार कराया, और बहुत सा दान अनाथ व दरिद्र ब्राह्मणों को दिया।

कुछ समय बीतने पर दोनों बच्चे युवा हुए। उस में धुन्धकारी बड़ा दुष्ट हत्यारा, चोर व्यभिचारी हुआ। और गौकर्ण बड़ा पण्डित, विद्वान ज्ञानी, माता पिता का भक्त बना। उस धुंधकारी ने अपने पिता की सारी सम्पति वेश्याओं को देदी। माता पिता के मना करने पर उनको मारने पीटने लगा। दिन रात शिकार की टोह में रहता था। माँस और मद्य पान करता था। पुत्र के इन कुकर्मों को देख कर आत्मदेव ब्राह्मण अति दुःखी होकर रोने लगा और बोला—कि ऐसी सन्तान से निःसन्तान ही भला था। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ कहाँ रहूँ? इस प्रकार बिलाप करने लगा। तब गौकर्ण ने उसको समझाया और अपने पिता को वैराग्य का उपदेश दिया। ब्राह्मण ने गौकर्ण की बात मानली और संसार की ममता को त्याग कर बन को चला गया। इस प्रकार आत्मदेव ने वैराग्य लेकर अपने चित्त को स्थिर किया और भगवान की सेवा पूजा में रत रह कर श्रीमदभागवत के दशम् स्कन्ध का पाठ नियम पूर्वक करता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में जा मिला।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by ... Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

(धुन्धकारी का प्रेत योनि में जाना और उस योनि से उसका उद्धार होना)

सूत जी कहने लगे–हे शौनक जी! जब वह आत्मदेव ब्राह्मण बन को चला गया तो वह धुन्धकारी अपनी माता को बहुत पीटता था और कहता था कि बता धन कहाँ है इस प्रकार डरा धमकाकर उससे धन लेता रहता था एक दिन उसकी माता उसके अत्याचारों से दुःखी हो कर रात्रि में एक कुए में जा गिरी और उसकी मृत्यु हो गई। माता के मरने पर गोकर्ण जी भी तीर्थ पर्यटन के लिए चले गये। अब धुन्धकारा स्वतन्त्र हो कर वेश्या गमन करने लगा। वह उन्हीं के घर रहता था और उन्हीं के लिए धन जुटाने में घोर पाप करता था। एक दिन वेश्याओं के कहने पर उसने बहुत सा धन चुराया और उन वेश्याओं को सुन्दर सुन्दर वस्त्राऽभूषण ला कर दिये। उन स्त्रियों ने यह बिचार कर कि यह चोर है। चोरी का माल यह हमारे यहाँ लाता है।यह धन हमारे यहाँ पकड़ा जावेगा तो इसके साथ हमें भी प्राणदण्ड मिलेगा। यह बिचार कर उन वेश्याओं ने सोये हुए धुन्धकारी को फाँसी लगा कर मार डाला। और उस के शव को एक गढ्ढे में डाल कर दाब दिया। इस प्रकार धुन्धकारी प्रेत योनि को प्राप्त हुआ। वह बबंडर बन कर दशों दिशाओं में भटकने लगा। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी के कारण हा दैव! हा दैव! पुकारा करता था। कुछ काल पश्चात् जब गोकर्ण लौट कर घर आये तो उन्होंने अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुना। उन्होंने गया जा कर उसका श्राद्ध किया। एक दिन गोकर्ण जी अपने घर में सो रहे थे तब अर्द्ध रात्रिके समय धुन्धुकारी प्रेत अपना बिचित्र रूप गोकर्ण को दिखाने लगा। कभी हाथी, कभी मैंढ़ा, कभी भैंसा, कभी बकरी, कभी अग्नि बनता था। अन्त में वह मनुष्य के रूप में प्रगट हुआ। उसकी इन अवस्थाओं को देख कर गोकर्ण ने जान लिया कि यह कोई अधोगति को प्राप्त होने वाला प्राणीहै। तब उन्होंने उससे पूछा तू कौन है और रात्रि में ऐसे डरावने रूप मुझे क्यों दिखा रहा है, तुझे यह दशा क्यों कर प्राप्त हुई? तू प्रेत है, पिशाच या कोई यक्ष, राक्षस है। मुझे सच सच बातें बता।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सूतजी बोले—गोकर्ण के पूछने पर वह प्रेत रूप धुन्धकारी अति व्याकुल होकर रोने लगा। उस से बोला नहीं जाता था। इस लिए वह संकेत से गौकर्ण को समझाने लगा। तब गोकर्ण ने अपनी अञ्जलि में जल को भर मन्त्रों से पढ़ कर उसके शरीर पर छिड़का तो उसके कुछ पाप कम हुए और वह बोलने लगा। वह प्रेत बोला-'हे गौकर्ण! मैं तुम्हारा भाई धुन्धकारी प्रेत हूँ। अपने पापों के कारण मैंने प्रेत योनि प्राप्त की है मैंने ब्राह्मणत्व खो दिया था। वेश्या गमन किया। धन के लोभ से अनेकों की हत्यायें कीं। माता पिता को क्लेश दिया। इसी कारण मुझे यह प्रेत योनि प्राप्त हुई है। केवल वायु भक्षण करके ही जीवित रहता हूँ। हे भाई! तुम मेरी सहायता करो और मुझे इस योनि से किसी प्रकार मुक्त करो। तब गौकर्ण ने कहा—अरे भाई! मैंने तुम्हारे उद्धार के लिए गयाजी में पिण्ड दान किया। अनेकों श्राद्ध किए, अब तुम्हीं कोई उपाय बताओ कि तुम्हारी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? प्रेत बोला—भाई मेरी मुक्ति सैकड़ों गया के श्राद्ध करने पर भी नहीं होगी, इसका उपाय तो तुम स्वयं ही कोई सोचो। गोकर्ण को प्रेत की इस बात से बड़ा आचर्श्य हुआ कि जब सैकड़ों गया में श्राद्ध करने से यदि तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती है, तो अन्य उपाय से मुक्ति होना अति दुर्लभ है, किन्तु फिर भी कोई उपाय सोचूँगा। तुम अभी अपने स्थान पर रहो। प्रेत के इस दुःख को गोकर्ण ने रात भर सोचा किन्तु उस के मोक्ष का कोई भी उपाय समझ में नहीं आया। प्रातःकाल उठ कर उसने रात्रि का सब हाल लोगों से कहा कुछ विद्वान ब्रह्म निष्ट ब्राह्मणों ने गौकर्ण को सलाह दी। इस विषय में तुम सूर्य देव से पूछो। तब गौकर्ण ने अपनी तपस्या के बल से सूर्य देव के मार्ग को रोक कर उनसे विनीत भाव से प्रार्थना की—हे सूर्यदेव आप सम्पूर्ण वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता हैं। संसार के साक्षी हैं मैं आप को प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आप धुन्धकारी प्रेत की मुक्ति का कोई उपाय मुझे निर्देशित कीजिये। यह सुन कर भगवान् सूर्यदेव ने अपनी गम्भीर वाणी में कहा—हे गौकर्ण! श्रीमद्भागवत् के सप्ताह परायण से उस अधोगति प्रेत योनि वाले धुन्धुकारी का उद्धार होगा। सूर्य भगवान का यह बचन सुन कर गौकर्ण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ने सप्ताह पारायण करने का निश्चय किया। श्रीमद्भागवत कथा का समाचार सुनकर देश देश, ग्राम ग्राम के स्त्री पुरुष विद्वान पण्डित लँगड़े लूले अँधे वृद्ध आदि सभी पुरुष स्त्रियाँ आ आ कर एकत्रित होने लगे, जब गोकर्ण ने कथा आरम्भ की तब वह धुन्धुकारी प्रेत भी वहाँ आकर अपने बैठने के लिए स्थान टटोलने लगा। उसकी दृष्टि एक सात गाँठ के बाँस पर पड़ी और वह उसी के नीचे वाले छिद्र में प्रवेश करके कथा सुनने लगा। गोकर्ण जी ने प्रथम स्कन्ध से कथा आरम्भ करदी। सन्ध्या काल में जब उस दिन की कथा समाप्त हुई तो एक बड़ी बिचित्र घटना हुई। बाँसकी एक गाँठ तड़तड़ा कर फट गई। इसी प्रकार जब सायंकाल को कथा का विश्राम होता था तब उस बाँस की एक गाँठ नित्य फट जाया करती थी। इस प्रकार धुन्धुकारी श्रीमद्भागवत् के बारहों स्कन्धों के सुनने से सातवें दिन सातों गाँठों को फाड़ कर मुक्ति को प्राप्त हुआ और दिव्य रूप धारण कर सब श्रोताओं के सन्मुख प्रकट हुआ। उसका श्याम वर्ण था और पीताम्बर धारण किये हुये तुलसी की मालाओं से सुशोभित, सुन्दर क्रीट तथा कुण्डल धारण किये हुये अपने भ्राता गोकर्ण को प्रणाम करके बोला। मुझे आपने प्रेत योनि से मुक्त कर दिया है श्रीमद्भागवत की अति पवित्र कथा धन्य है और इसका सप्ताह पारायण भी धन्य है जिससे मुझे भगवान का बैकुंठधाम प्राप्त हुआ है। इस सप्ताह श्रवण से सम्पूर्ण पाप कम्पायमान हो उठते हैं। जिस प्रकार अग्नि लकड़ी को जला देती है उसी प्रकार यह सप्ताह पारायण पापों को नष्ट कर देता है। जो पुरुष इस श्रीमद्भागवत की कथाको कभी नहीं सुनते हैं उन्होंने ब्यर्थ ही जीवन धारण किया यह शरीर,मज्जा, माँस, रक्त, चमड़ा आदि से बना हुआ है जो अनित्य है और नाशवान है बृद्धावस्था में यह शक्ति हीन होकर रोगों का घर बन जाता है। यह असन्तोष और कामनाओं से तृप्त न होकर दुःख का कारण होता है। अन्त में मृत्यु होने पर इसको जला दिया जाता है। अथवा गाढ़ दिया जाता है। इसे पशु खाजाते हैं और मलरूप हो जाता है। इसकी अन्य और कोई गति नहीं है। केवल सप्ताह श्रवण करने से ही भगवान को प्राप्त कर सकता है। भागवत कथा सुनने से ही चित्त की गाँठें खुल जाती हैं। उसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं। जब धुन्धुकारी यह सब बातें श्रोतागणों से कह रहा था उस समय बैकुण्ठ धाम से उसके लिए एक विमान आया और वह धुन्धुकारी पार्षदों के साथ विमान में बैठ गया। तब गोकर्ण ने पार्षदों से कहा—हे पार्षदो ! यहाँ पर सभी श्रोतागणों ने इस कथामृत का पान किया है। आप इनके लिये भी विमान क्यों नहीं लाये। सभी ने समान रूप से कथा सुनी है फिर इसके फल में इस प्रकार भेद क्यों रक्खा गया है।

पार्षद बोले—हे ब्रह्मदेव ! फल का भेद सुनने के भेद से है। जिसने जैसा ध्यान पूर्वक सुना है उसको वैसा ही फल प्राप्त हुआ है इस प्रेत ने बिना कुछ खाये पीये निराहार रह कर सातों दिन कथा का श्रवण किया है। कथा श्रवण के समय इसका चित्त स्थिर रहता था इसी कारण इसको मोक्ष प्राप्त हुआ है। कथा के समय जो श्रोता कथा सुनते तो हैं किन्तु उनका ध्यान इधर उधर भटकता है इसीलिए उनको कोई फल प्राप्त नहीं होता है।

श्रावण महिने में गोकर्णजी ने पुनः श्रीमद्भागवत् कथा श्रोतागणों को सुनाई उस समय श्रोतागणों ने ध्यान से सुनी। वहाँ कथा के मध्य में भगवान् स्वयं अपने भक्तों सहित प्रगट हुए भगवान् ने अपने पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि की और दशों दिशाओं से जय जयकार की घोष होने लगी। भगवान् ने गोकर्ण को अपने हृदय से लगा लिया और अपने समान ही बना दिया। अन्य श्रोतागणों को अपना रूप दे दिया। उस ग्राम के सभी प्राणी चाण्डाल से लेकर पशु पक्षी तक दिव्य रूप होकर गोकर्ण की कृपा से विमानों पर चढ़ गये और भगवत् धाम को चले गये। प्राचीन काल में जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के अयोध्यावासी गये थे।

नारदजी ! गोकर्ण जी की कथा का एक अक्षर भी जिसके कान में पहुँच गया वह फिर माता के गर्भ में नहीं आता अर्थात् जीवन मरण से मुक्त हो गया। अनेकों वर्ष जप-तप, योग साधन करने पर भी जो भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते हैं वे केवल श्रीमद्भागवत् के कथा श्रवण से ही सहज में प्राप्त कर लेते हैं। श्राद्ध के समय इस कथा का पाठ करने से पितृगण सन्तुष्ट होते हैं और नित्य पाठ करने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

—:❀:—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

* छटवाँ अध्याय *

[सप्ताह पारायण की विधि वर्णन]

श्री सनकादिक बोले–हे नारदजी ! अब आप सप्ताह पारायण की विधि का वर्णन सुनिये सप्ताह पारायण की विधि मनुष्यों के धन पर निर्भर है। इस पारायण में एक बिवाह के समान धन ब्यय किया जाता है। इस के लिये उत्तम मास भाद्र, आश्वनि, कार्तिक, अगहन, आषाढ़ तथा श्रवण हैं। इन महीनों में श्रोतागणों को कथा श्रवण करने से मोक्ष प्राप्त होती है। इन महीनों में भद्रा और व्यतीपात आदि को बचाना चाहिये इस कथा के आरम्भ से प्रथम सब नगर ग्रामों तथा गृह गृह में इसका समाचार भेज देना चाहिये। जिससे सभी को इसकी सूचना हो जावे और कथा में सम्मिलित होवें। स्त्री, शूद्र, विरक्त, वैष्णव, हरिजन सभी को निमन्त्रित करना चाहिए किसी का अपमान न करना चाहिए। कथा श्रवण का स्थान, नदी का तट तीर्थ स्थान, बन में, अथवा अपने गृह में उत्तम होता है। उस स्थान को भली प्रकार सजाकर झाड़ बुहार कर के लीप पोत कर अथवा धो कर गेरू अन्न आदि के चौक बनावे सब स्थान स्वच्छ और सुगन्धित युक्त केले के खम्भों तथा ताम्र के पत्तों से सजावे। कथा बाचक के लिए सुन्दर मण्डप जो पत्र पुष्प, फल झन्डियों आदि से सजा हुआ बनावे। वक्ता के लिए उत्तम ब्यास गद्दी लगावे। वक्ता यदि उत्तर की ओर मुँह करके बैठे तो श्रोतागण पूर्व की ओर मुँह करके बैठें वक्ता श्रोता दोनों के मध्य में पूर्व दिशा अवश्य आजानी चाहिए। वक्ता पुरुष विष्णु भक्त विवेकी और दृष्टांत देकर समझाने वाला विद्वान ब्राह्मण होवे लम्पट, लोभी, नास्तिक ऐसे ब्राह्मण को वक्ता न बनाना चाहिए।

वक्ता कथा प्रारम्भ वाले दिन से प्रथम दिन चौर कराले और फिर कथा के मध्य में न करावे। श्रोतागण कथा आरम्भ से दो घड़ी पूर्व शौच स्नान आदि नित्य क्रियाओं से एवं सन्ध्या बन्दन आदि से निवृत होकर कथा स्थान पर आजावें। सर्व प्रथम कथा आरम्भ होने से पहिले श्री गणेशजीका पूजन होना चाहिए। तत्पश्चात् पितृगणों का तर्पण पूर्व पापों की शुद्धि के निमित्त होना चाहिये। फिर षोड़शोपचार से श्री कृष्णचन्द्र की विधि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

वत पूजा होनी चाहिये। उनको नमस्कार प्रदक्षिणा तथा कीर्तन होना चाहिये। धूप, दीप, चन्दन आदि से श्रीमद्भागवत् की पूजा होनी चाहिये। नारियल का फल भी भेंट करना चाहिये। तत्पश्चात् वक्ता का पूजन होना चाहिये। उसको सुन्दर वस्त्राभूषण तथा माला से सुशोभित करना चाहिये। फिर नियमवत् कथा श्रवण का बचन लेकर वक्ता के सन्मुख बैठे तथा यथा शक्ति ब्राह्मणों को धन देकर द्वादश अक्षर का जप करावे।

विद्वान वक्ता सूर्योदय मे कथा आरम्भ करे और साढ़े तीन पहर तक मध्यम स्वर से भली प्रकार समझा कर कथा कहे। मध्यान्ह में दो घड़ी कथा विश्राम रक्खे। कथा के मध्य में मल मूत्र आदि के लिये न जावे। अल्पाहार करे। एक ही समय सूक्ष्म भोजन करे। यदि निराहार रहे तो अति उत्तम है। फलाहार अथवा घी दूध पीकर रह सकता है। उपवास की अपेक्षा स्वल्पाहार करके रहना अति उत्तम है।

सनकादिक बोले—हे नारद जी! जिस पुरुषने विष्णुमन्त्र की दीक्षा नहीं ली है या जो नास्तिक है वह कथा सुनने का अधिकारी नहीं है। श्रोताओं को ब्रह्मचर्य से रह कर भूमि पर शयन करना चाहिये। पत्तल पर भोजन करे, दाल, मधु, तेल, गरिष्ट अन्न तथा बासी अन्न, काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर लोभ, दंभ, मोह आदि सब को छोड़ दे। निर्धन, रोगी, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन तथा सन्यासी इस कथा को अवश्य श्रवण करें। वन्ध्या स्त्री को पुत्र प्राप्त होता है। इस प्रकार कथा समाप्त होने पर उसका उद्यापन करना चाहिये। किंतु भगवत भक्तों के लिये उद्यापन की आवश्यकता नहीं है वे तो श्रवण मात्र से ही पवित्र हो जाते हैं फल की आशा करने वाले को जन्माष्टमी ब्रत की भाँति उद्यापन करना चाहिये। सप्ताह पारायण समाप्त होने पर श्रोतागणों को वक्ता की भली भाँति पूजा करनी चाहिये। मृदङ्ग, झाँझ आदि से हरि कीर्तन करना चाहिये। दरिद्र याचकों तथा ब्राह्मणों को धन, अन्न, वस्त्रादि देना चाहिये। दूसरे दिन विरक्त श्रोताओं को गीता पाठ करना चाहिए और गृहस्थ श्रोताओं को दशमस्कन्ध के श्लोकों से विधिपूर्वक खीरि, मधु, घृत, तिल, जब मिश्रित सामिग्रियों से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् विष्णुसहस्रनाम का पाठ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करना चाहिए। इन कर्मों के समाप्त होने पर बाहर ब्राह्मणों को उत्तम उत्तम भोजन खीर और मधुमिश्रित कराने चाहिए। उन्हें सुबरण और दूध वाली गौ का दान करना चाहिए। यदि वह विशेष धनवान हैं तो सोने का सिंघासन बनवा कर उस पर श्रीमद्भागवत् ग्रन्थ रख कर वक्ता हो देवे।

इस प्रकार पारायण समाप्त होने पर श्रोता को इच्छित फल प्राप्त होता है तथा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों ही पदार्थ सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं।

सूतजी बोले–हे शौनकजी ! श्रीशौनकादिकने इस प्रकार सप्ताह पारायण विधि समझाकर एक सप्ताह तक भागवत कथा सुनाई। इसके पश्चात् सब का मनोरथ पूर्ण करने वाली कथा को विधिवत् समाप्त किया। इस कथा को सुनकर नारदादि सभी ऋषि गणों को अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ। सूतजी बोले–हे शौकन जी ? जब यह कथा हो रही थी उसी समय योगेश्वर श्रीशुकदेवजी पधारे। श्रीशुकदेवजी की आयु तो सहस्रों वर्षों की है किंतु वे सोलह वर्ष के ही प्रतीत होते हैं। वे ठीक कथा समाप्ति के दिन ही पधारे। उस समय भी वे मन ही मन श्रीमद्भागवत् का पाठ कर रहे थे। श्रीशुकदेवजी को देख कर सभी श्रोतागण खड़े हो गये और उनको आदर सहित उच्च आसन पर बैठाया। श्रीनारदजी ने उनकी विधिवत् पूजा की। जब श्रीशुकदेवजी बैठ गए तब उन्होंने इस प्रकार कहा—हे श्रोतागणो ! यह श्रीमद्भागवत् वेद वेदान्त एवं पुराणों का सार रूप कल्प वृक्ष का परिपक्व फल है। शुकदेव रूपी तोते के मुखारविन्द से निकलने के कारण यह अति आनन्द देने वाले अमृत से सिंची हुई है। इस फल में छिलका गुठली आदि कुछ भी नहीं केवल इसमें रस है सभी प्राणियों को निरन्तर इस दिव्य रस का पान करते रहना चाहिए। इसके द्वारा परमब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति शीघ्र होती है।

श्रीसूतजी बोले—हे शौनकजी ! श्रीशुकदेवजी इस प्रकार अपना प्रवचन कर ही रहे थे कि सभा मध्य में अपने पार्षद, प्रहलाद, बलि, उद्धव और अर्जुन सहित भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी स्वयं प्रगट हुये तब नारद

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जी ने भगवान की यथा योग्य विधिवत् पूजा करके उच्चासन पर बैठाला और उनके सन्मुख हरि संकीर्तन सब श्रोतागणों के साथ करने लगे। उस कीर्तन के आनन्द से विभोर हो कर शिव, पार्वती तथा ब्रह्माजी भी आगए और अब कीर्तन बड़ी अपूर्व ध्वनि से आनन्द पूर्वक होने लगा। नारद जी ने वीणा बजाई, उद्धवजी ने मजीरा तथा प्रहलादजीने खरताल बजाई अर्जुन ने राग अलापे, इन्द्र ने मृदङ्ग बजाया सनकादिक मुनीश्वरों ने जयघोश की तथा शुकदेवजी ने सबको कीर्तन के भाव बताये। इन सबके मध्य में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य परम तेजस्वी होकर नृत्य करने लगे। इस प्रकार कथा तथा कीर्तन से प्रसन्न हो कर भगवान् ने अपने भक्तजनों से कहा तुम लोग वर माँगो तब सब भक्तजनों ने मिलकर यही कहा ? हे भगवन् ! केवल हमारी यही इच्छा है कि जहाँ कहीं भी सप्ताह पारायण हो वहाँ पर आप अवश्य पधारें। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथास्तु कह कर पार्षदों सहित अन्तर्द्धान हो गए। तत्पश्चात् सब ऋषिगण अपने २ स्वधामों को चले गए।

श्रीसूतजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के स्वधाम गमन के पश्चात् कलियुग में तीस वर्ष व्यतीत होने पर भाद्रपद शुक्ला नौमी को श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को यह कथा सुनाई थी। उसके पश्चात् कलियुग में भी सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर आषाढ़ शुक्ला नौमी को गोकर्ण ने धुन्धुकारी प्रेत को यह श्रीमद्भागवत् कथा सुनाई थी। तत्पश्चात् कलियुग के तीस वर्ष और व्यतीत होने पर कार्तिक शुक्ला नौमी से सनकादिक ने यह श्रीमद्भागवत् नारदजी से कही थी।

❀ श्रीमद्भागत महात्म्य समाप्त ❀

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ श्रीगणेशायनमः ❀

वृहद् सुखसागर भाषा

प्रथम स्कन्ध

❀ पहिला अध्याय ❀

❀ मङ्गलाचरण ❀

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः॥
तेजोवारि मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

(श्रीमद्भागवत १।१।१)

अर्थ—जो भगवान् इस संसार की उत्पत्ति, स्थित और प्रलय करते हैं जिनकी सत्ता से ही इस संसार की सत्ता है तथा इस संसार के नाश होने पर भी जिन का अस्तित्व सदा रहता है जो सर्वज्ञ हैं अति ज्ञानवान् तथा प्रकृति से अलग रहते हैं जो स्वयं प्रकाश हैं जो भगवान् सृष्टि के आरम्भ में अपने सङ्कल्प मात्र से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति करके वेदों का ज्ञान प्रसारित करते हैं। जिनके विषय में बड़े बड़े तपस्वी ऋषि मुनि भी भली प्रकार नहीं जानते हैं जिनके स्वरूप में यह सत्य, रज, तम, तीनों, सृष्टि सत्ता रूप से तो सत्य भाषती हैं किन्तु भिन्न-भिन्न नामों के रूपों से असत्य सी प्रतीत होती हैं। जिस प्रकार महान तेजस्वी सूर्य की किरणों से मृग तृष्णा तथा घट विकारों से जल में थल की और थल में जल की भ्रांति होती है, जो भगवान् अपने अप्रमेय ज्ञान के द्वारा सांसारिक माया, कपट, छल से दूर रहते हैं उन सच्चिदानंदघन परमात्मा को नमस्कार करके उनका ध्यान करते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ग्रन्थ महिमा—यह श्रीसुखसागर जो सुख का समुद्र है महा मुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी ने अपने अपूर्व ज्ञान से बनाया है। इस महान् ग्रंथ में वह उत्तम धर्म और अनन्य तथा विशुद्ध भगवत् प्रेम का निरूपण किया गया है जिसकी प्राप्ति होने पर सहज ही में मोक्ष मिल जाता है। यह उत्तम महा-पुराण आध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक तीनों प्रकार के तापों को समूल से नष्ट कर के परःब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की प्राप्ति कराता है। इस शास्त्र के अध्ययन एवं साधन का आश्रय लेने के पश्चात् फिर किसी शास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती है। इस उत्तम ग्रंथ के श्रवण करने से भगवान श्रीकृष्ण स्वंय उसके हृदय में आ विराजते हैं। यह सुख-सागर ग्रंथ (श्रीमदभागवत) वेदों का पका हुआ फल है श्रीशुकदेवजी रूपी तोते के मुख से चख लेने के कारण यह अति आनन्द देने वाला अमृत रूप हो गया है। यह ऐसा फल है जिसमें सारहीन, छिलका, गुठली आदि कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार तोते का खाया हुआ फल अत्यधिक मीठा तथा सरस होता है उस प्रकार यह भी शुकरूपी तोते के द्वारा खाया हुआ होने के कारण मीठा तथा सरस हो गया है।

दोहा—नैमिषारण्य के क्षेत्र में, भयो संतन को सत्र।
सहस अठासी ऋषीगण, भयो तहाँ एकत्र॥
कथा 'भागवत' की कही, उग्रश्रवा हरषाय।
'मायावी' भाषा करी, श्रीकृष्ण शिरनाय॥

एक समय नैमिषारण्य पवित्र क्षेत्र में शौनकादिक ऋषियों ने भगवान की प्राप्ति हेतु सहस्रों वर्ष में पूर्ण होने वाले एक महान यज्ञ की दीक्षा ली। उसी बीच में एक दिन वहाँ पर सूत जी पधारे। जब सब ऋषि मुनि अपने नित्यकर्मों से निवृत्त हो गए तब शौनकजी ने बड़े आदर के साथ सूत जी से यह प्रार्थना की—हे सूतजी! आप अनेकों इतिहास, पुराण तथा धर्म शास्त्रों के ज्ञाता हैं और भगवान वेद व्यासजी के प्रिय शिष्य हैं। गुरु अपने प्रिय शिष्य को गुह्यतम से गुह्यतम भेद भी बता देते हैं। अतः आप भी वेदव्यास जी के बताए हुए किसी ऐसे उपदेश का वर्णन कीजिए जिससे कलिकाल के जीवों का कल्याण हो, और इन मन्द बुद्धि तथा अल्पायु

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्राणियों का उद्धार भी हो सके। अनेकों शास्त्र हैं, पुराण हैं किन्तु समय थोड़ा होने के कारण सब ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया जा सकता है। वे इतने वृहद् हैं कि इस छोटी सी आयु में सुने भी नहीं जा सकते हैं। इस लिये आप परोपकार हेतु अपनी बुद्धि से उन सम्पूर्ण शास्त्रों का सार निकाल कर सूक्ष्म रूप में हमको कल्याणकारी कथा सुनाइये। हमें यह कथा सुनने की अति लालसा है। जिसमें बसुदेवनन्दन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का कथामृत है। जिनके पान करने से संसार के सभी प्राणियों का कल्याण होगा।

सूतजी बोले हे शौनकजी ! आपने अति मङ्गलमयी बात कही है। मैं आप को वह कथा सुनाऊँगा जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की मङ्गलमयी लीलाओं का वर्णन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया से अवतार धारण करके बलरामजी के साथ अनेकों अद्भुत लीलायें की हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सदा अपने को छिपाये रहते थे। किन्तु वे भक्तों के सन्मुख हो अपनी लीलायें प्रगट करते थे। इस समय घोर कलियुग आ गया है केवल भगवान् की लीलाओं की कथा हरि संकीर्तन ही भगवत् प्राप्ति का एक मात्र साधन है। श्री शौनकजी बोले—हे सूतजी ! योग योगेश्वर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जब से अपनी लीला समाप्त करके अपने गोलोक धाम को चले गये हैं तब से यह घोर कलियुग भक्तों को अति पीड़ा देने लगा है इसलिये आप हमें वही कथा सुनाइये। जिसके श्रवण से यह कलियुग वैष्णव भक्तों को कष्ट न दे सके।

——:❀:——

दूसरा अध्याय

सुनि मुनि गण के वचन को, सूत गये हरषाय।
भगवत्कथा महात्म्य की, महिमा कही बनाय॥

श्री व्यासजी बोले—शौनकादि ऋषियों के ऐसे बचन सुन कर रोमहर्षण के पुत्र मेरे परम प्रिय शिष्य उग्रश्रवा को अति आनन्द प्राप्त हुआ और भगवान के प्रेम में मग्न होकर कथा आरम्भ की।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

सूत जी बोले–हे शौनक जी! श्री शुकदेव जी अपने यज्ञोपवीत संस्कार तथा लौकिक वैदिक संस्कारों के होने से प्रथम ही सन्यास लेने के लिये अपने आश्रम से चल दिये। अपने पुत्र की यह दशा देख कर उनके पिता श्रीवेदव्यासजी को बड़ा दुःख हुआ। वे पुत्र विरह से व्याकुल होकर पुकारने लगे।

हे बेटा! हे बेटा! तुम मुझको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? उस समय श्री शुकदेवजी ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु उनके प्रत्युत्तर में वृक्षों ने उत्तर दिया था। जिन श्रीशुकदेवजीने अपने को सम्पूर्ण जड़, चेतन, प्राणियों में लीन कर दिया है, ऐसे सर्वात्मा व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी को मैं प्रणाम करता हूँ। यह श्रीमद्भागवत की कथा जिसे मैं आप लोगों को सुनाता हूँ यह अति गुह्यतम कथा है। यह सम्पूर्ण वेदों का सार है, तथा भगवान की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने का दीपक है। श्री शुकदेवजी सम्पूर्ण ऋषियों के गुरु हैं। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ तथा इस ग्रंथके रचियता श्रीव्यासजी को प्रणाम करके श्रीमद्भागवत की कथा सुनाता हूँ।

हे शौनकजी! यह कथा विश्वकल्याण के लिये अति सुगममार्ग है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति का धारावाहिक प्रवाह है। भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति होने से ज्ञान और वैराग्य स्वतः आते हैं। मनुष्य सांसारिक माया जाल से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। मनुष्य जीवन का यह तात्पर्य नहीं है कि वह दिन रात कमाये, खाये, सो जाये और विषय वासनाओं में लिप्त रह कर अन्त समय में इस संसार से चला जावे। जीवित रहने का तात्पर्य तो यह है कि भगवत् तत्व का जिज्ञासु रहकर उसकी खोज में लीन रहे और भगवान् का भजन करते हुए किसी प्राणीको कष्ट न देते हुए अपने जीवन को व्यतीत करे, अब हम भगवत् तत्व को बताते हैं ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से युक्त अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप के ज्ञान को ही तत्ववेत्ता लोग भगवत् तत्व मानते हैं। ज्ञानी पुरुष उसे ब्रह्म कहते हैं। योगीजन परमात्मा कहते हैं, और भक्तजन उस तत्व को भगवान् कहते हैं। ज्ञान वैराग्य सहित भक्ति, कथा श्रवण से उत्पन्न होती है इस भक्ति के द्वारा ही भक्त जन भगवान् के स्वरूप को अपने हृदय में देखते हैं। हे शौनका-

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दिक मुनियों ! मनुष्य को अपने अपने वर्ण और आश्रमों के अनुकूल चलकर धर्म का उपार्जन करना चाहिये । इसीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं । मनुष्य संत सत्सङ्ग तथा उत्तम कथाओं को श्रवण के लिए उत्तम तीर्थों तथा आश्रमों में महात्मा पुरुषों की सेवा करें और भगवान् की कथा श्रवण करें ऐसे मनुष्यों के पाप सहज ही नष्ट हो जाते हैं और पाप जनित इच्छायें स्वतः नष्ट होजाती हैं । रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न काम, लोभादि नष्ट होकर सत्वगुण का विकास हो जाता है और सत्वगुण के आने पर एक अनोखे आनन्द की प्राप्ति होती है उसी स्थिति को भगवत् प्राप्ति की स्थति कहते हैं ।

प्रकृति तीन गुण वाली है सत, रज और तम । इन्हीं से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय के निमित्ति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीन शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं । मनुष्य का कल्याण सत्वगुण वाले भगवान् श्री विष्णु से ही होता है । जिस प्रकार लकड़ी की अपेक्षा धुआँ उत्तम है और धुआ की अपेक्षा अग्नि श्रेष्ठ है उसी प्रकार तमोगुण से श्रेष्ठ रजोगुण है और रजोगुण से श्रेष्ठ सत्वगुण है । महात्मा लोग युग युगान्तर से भगवान् विष्णु की ही आराधना करते आये हैं और करते हैं । वे महात्मा लोग किसी की निन्दा नहीं करते, किसी में दोष नहीं देखते, और भूत प्रेतादिक की उपासना से दूर रह कर भगवान् विष्णु और उनके अंशावतारों की पूजा करते हैं । किन्तु जो धन ऐश्वर्य और सन्तान की इच्छा वाले रजोगुणी और तमोगुणी पुरुष हैं वे अपनी कामना पूर्ति के लिए भूत प्रेत आदि की पूजा करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में जिस मार्ग का प्रतिपादन किया है । वही मुक्ती का विशुद्ध मार्ग है । सभी ज्ञान तपस्या आदि साधनों से भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही उत्तम है । उन्होंने ही सर्ग के आदि में इस जगत् को उत्पन्न किया है । वे ही सत्व, रज और तम तीनों गुणों से सृष्टि रच कर उसमें क्रीड़ा करते हैं । वे सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी माया में लिप्त रखते हैं । किन्तु स्वयं सच्चिदानन्द घनस्वरूप होने के कारण निर्लेप रहते हैं । वे भगवान ही पंचभूत, तनमाया तथा इन्द्रियों आदि से अनेकों प्रकार की योनियाँ बनाते हैं और स्वयं भिन्न २ जीवों में प्रवेश करके उन प्राणियों का भरण पोषण करते हैं ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ तीसरा अध्याय ❀

चौपाई–धर्म हेतु प्रभु लें अवतारा। प्रगटें भू पर बारम्बारा॥
भक्तन हित अवतरत गुसाईं। मारे दुष्ट व्याध की नाईं॥

श्रीसूतजी बोले–सृष्टि के आरम्भ में भगवान् जब सृष्टि रचने की इच्छा करते हैं, तब महतत्व आदि से दस इन्द्रियाँ एक मन और पाँच भूतों से युक्त होकर पुरुष रूप ग्रहण करते हैं। जब वे योग निन्द्रा से जाग जाते हैं, तब उनकी नाभि से एक कमल प्रगट होकर क्षीर सागर से ऊपर आता है, उसी कमल से प्रजापति ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। क्षीरशायी भगवान् नारायण के बिराट रूप में समस्त लोक ब्रह्मांड आदि व्याप्त रहते हैं। योगीजन उसी बिराट रूप को अपनी दब्य दृष्टि से देखते हैं। उसी बिराट रूप में सहस्रों पैर भुजाएँ, जँघायें तथा मुख होते हैं। सहस्रों सिर, सहस्रों कान, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों नासिकाऐं होती हैं वे सहस्रों मुकुट, वस्त्र, कुण्डल और आयुधों से युक्त होते हैं, भगवान् का यही नारायण स्वरूप भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार के लिए अवतार ग्रहण करता है। उन्हीं के अंशों से समस्त प्राणियों की सृष्टि होती है।

इन्हीं भगवान् नारायण ने कौमारसर्ग में सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार ब्रह्मऋषियों का अवतार लिया। दूसरी बार इन्हीं भगवान् ने बाराह अवतार धारण किया और पृथ्वी को रसातल से लाए। तीसरी बार नारदजी के रूप में अवतार लेकर सात्वततन्त्र जिसे नारद पांचरात्र भी कहते हैं उसका उपदेश ऋषियों को किया इसमें कर्म बन्धन से मुक्त होने का निरूपण है! धर्म की पत्नी मूर्ति देवी के गर्भ से नारायण का अवतार हुआ यह भगवान् का चौथा अवतार है। उन्होंने बदरीबन में जाकर घोर तपस्या की। पाँचवाँ अवतार माता देवहूति के गर्भ से कपिल मुनि का हुआ जिन्होंने अपनी माता को साँख्य शास्त्र का उपदेश किया। छटवें अवतार में अनुसुइया के गर्भ से दत्रात्रेय प्रगट हुए। उन्होंने प्रह्लाद, अलर्क आदि को ब्रह्मज्ञान दिया। सातवें अवतार में आकूति के गर्भ से यज्ञ नाम से अवतार धारण किया। नाभिराजा की पत्नी मेरु देवी के गर्भ से ऋषभदेव के नाम से भगवान् का आठवाँ अवतार हुआ। उन्होंने परम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हँसी का उत्तम मार्ग निरूपण किया। नवमी बार राजा पृथु के रूप में भगवान् ने अवतार लिया जिन्होंने गौरूपिणी पृथ्वी से अनेक औषधियों रत्नों तथा अन्नों का दोहन किया। दसवाँ अवतार मत्स्य भगवान् ने लिया। जब चाक्षुषमन्वन्तर में यह सम्पूर्ण पृथ्वी जल में मग्न हो गई थी तब इस पृथ्वी को नौका बनाकर वैवस्वत मनुकी रक्षा की थी। ग्यारवें अवतार में कच्छप का अवतार धारण किया और समुद्र मन्थन के समय देवता तथा असुरों की सहायता की थी। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरि के नाम से लिया, जिन्होंने समुद्र से उत्पन्न होकर अमृत का घट देवताओं को दिया। तेरहवें अवतार में मोहनी रूप धारण करके देवताओं को अमृत पिलाया। चौदहवाँ नृसिंह अवतार धारण किया जिसमें दुष्ट हिरण्यकशिपु दैत्य को मार कर प्रह्लाद की रक्षा की थी। पन्द्रहवाँ अवतार बावन भगवान् का धारण किया जिसमें बलि दैत्य को पाताल भेज कर देवराज इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दिया। सोलहवाँ अवतार परशुराम जी का धारण किया। जिन्होंने अभिमानी राजाओं सहित क्षत्रियों को इक्कीस बार समूल नष्ट किया। सत्रहवें अवतार में पाराशरजी के द्वारा सत्यवती के गर्भ से भगवान् वेदव्यास जी के रूप में अवतार धारण किया जिन्होंने वेदों का विभाजन करने अनेक उत्तम ग्रन्थ निर्माण किये। अठारहवाँ अवतार रामावतार हुआ जिन्होने रावण का बध करके पृथ्वी पर धर्म का विस्तार किया। उन्नीसवें अवतार में बलरामजी व श्रीकृष्णजी का रूप धारण किया। भगवान् श्रीकृष्ण जी का अवतार सम्पूर्ण कलाओं से हुआ था। तत्पश्चात् बुद्धदेव का अवतार धारण करेंगे। कलियुग के अन्त में विष्णु यश नामक ब्राह्मण गृह में कल्कि भगवान् का अवतार होगा।

हे शौनकजी—जब जब दुष्टों का भार पृथ्वी पर बढ़ता है और धर्म की हानि होती है तब २ भगवान् अपने अंशावतारों व पूर्ण अवतारों से पृथ्वी पर शरीर धारण करते हैं और पापियों का संहार करके भक्तजनों की रक्षा करते हैं। भगवान का यह साकार रूप है, किन्तु भगवान् का निराकार रूप भी है जिसे सूक्ष्म अव्यक्त रूप कहते हैं जो न तो किन्हीं गुणों में वर्तता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है, और न दिखाई देता है और न सुनाई देता है। आत्मा का आरोप होने से यह जीवात्मा है। यही जीवात्मा बार बार जन्मता और मरता है। यह जीवात्मा सूक्ष्म होते हुये भी अज्ञान के कारण स्थूल शरीर धारण करता है। जब इस जीवात्मा को ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब यह स्थूल शरीर के आरोप को त्याग कर मुक्त हो जाता है। जब वह अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को जान लेता है तब उसी परमात्मा में विलीन हो जाता है।

भगवान् सृष्टि की रचना, पालन और संहार लीला मात्र से ही करते हैं किन्तु इस में मोहित नहीं होते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों में गुप्त रूप से बास करते हुये उनके सम्पूर्ण कामों को देखते हैं। कर्म करते हुये भी उनमें आसक्त नहीं होते। जिस प्रकार नट दर्शकों को अपना खेल दिखाता है, और उसे समेट लेता है। बहुतसे अन्जान व्यक्ति उसके हस्त कौशल को नहीं पहचान पाते हैं। उसी प्रकार अज्ञानी व दुर्बुद्धि पुरुष भगवान् की लीलाओं को नहीं जान पाते। केवल ज्ञानी जन उन्हें तत्व से जानते हैं। वे निरन्तर उन्हीं का चिन्तन करते रहते हैं और इस सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

इस सुख सागर ग्रन्थ में भगवान के सभी अवतारों का वर्णन है किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अवतारों का वर्णन श्रीशुकदेवजी ने विस्तार पूर्वक किया है श्री व्यास जी ने श्री शुकदेव जी को इस अप्रमेय ग्रन्थ का अध्ययन भली प्रकार कराया है। जिस समय राजा परीक्षित गङ्गा तट पर आमरण व्रत लेकर बड़े बड़े ऋषियों महर्षियों के साथ बैठे हुये थे उसी समय श्रीशुकदेव जी ने वहाँ उपस्थित होकर यह सुखसागर ग्रन्थ सुनाया था। हे शौनकजी! जिस समय श्रीशुकदेव जी यह कथा सुना रहे थे उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था, उसी स्थान पर मैंने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया था। जैसी मेरी बुद्धि है उसी के अनुसार मैं सम्पूर्ण ऋषियों से इस कथा का वर्णन करता हूँ।

———❀———

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ चौथा अध्याय ॥

दोहा—देखि काल के फेर को, व्यास गये अकुलाय ।
चारों वेद पुराण सब, शिष्यन रहे समुझाय ॥

(महर्षि वेदव्यास जी का असन्तोष प्रकट करना)

व्यास जी बोले—उस नैमिषारण्य क्षेत्र में जो शौनकादिक ऋषियों ने एक लम्बे कालका महायज्ञ आरम्भ किया था। उन ऋषियों में सबसे अधिक वयोवृद्ध, विद्वान तथा ऋगवेद के ज्ञाता श्री शौनकजी थे। वे ही सबके अग्रगण्य थे। सूतजी की भगवत भक्ति सम्बन्धी बातें सुन कर उनकी बड़ी प्रशंसा की और बोले—हे सूतजी! आप बड़े भाग्यशाली और अनेक इतिहास व पुराणों के ज्ञाता एवं वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं। अब आप हम सब पर कृपा करके श्रीशुकदेवजी द्वारा कही हुई कथा सुनाइये। यह भी समझाइये कि वह कथा किस युग में, कौनसे स्थान में, किस कारण से कही गई थी। श्रीवेदव्यास जी ने किसकी प्रार्थना पर परमहंस संहिता बनाई थी। श्रीशुकदेवजी बड़े योगी समदर्शी और संसार के मायाजाल से दूर रहने वाले हैं, वे सदा मूढ़ पागल से बनकर छिपे रहते हैं। उनका तेज, यश और योग निष्ठा अपने पिता वेद व्यास जी से भी अधिक है एक समय जब श्रीशुकदेव जी सन्यास के हेतु घर से निकल पड़े थे उस समय श्रीव्यास जी बेटा! बेटा! कह कर उनका पीछा कर रहे थे।

उस समय एक जलाशय में कुछ स्त्रियाँ नङ्गी स्नान कर रही थीं। नंगे श्री शुकदेवजी को देख कर तो नङ्गी ही खड़ी रहीं, किन्तु व्यासजी को देख कर उन्होंने अपने वस्त्र पहिन लिए। तब व्यासजो ने उन स्त्रियों से इसका कारण जानना चाहा। तो उन स्त्रियों ने उत्तर दिया कि श्रीशुकदेवजी की दृष्टि में स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं है, किन्तु आपकी दृष्टि में अभी भेद बना हुआ है। हे सूतजी! ऐसे परमज्ञानी श्रीशुकदेवजी जो गूंगे, पागल और मूर्खों की तरह जङ्गलों में विचरते रहते हैं, उनको हस्तिनापुर के राजा परीक्षितने किस प्रकार पहिचाना और उनसे क्या बात चीत हुई, जो श्री शुकदेवजी गौ दोहनकाल तक ही गृहस्थ के दरवाजे पर ठहरते हैं, और उस ग्रह को तीर्थरूप बना देते हैं वे किस प्रकार राजा परीक्षित के यहाँ सात दिन तक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ठहरे। राजा परीक्षित् भगवान् के बड़े भक्त थे उनके जन्म कर्म का वर्णन हमें सुनाइये। उन्होंने किस कारण से इतनी छोटी सी अवस्था में सम्पूर्ण राज्य लक्ष्मी को त्याग कर गङ्गातट पर मृत्यु पर्यन्त अनशन व्रत लिया था। सूतजी बोले 'हे शौनकजी! इस द्वापर युग में पाराशर महर्षि के अमोघ वीर्य से सत्यवती के गर्भ से महर्षि व्यासजी का जन्म हुआ। एक समय श्रीव्यासजी सरस्वती नदी में स्नानादि नित्य कर्म करके एकान्त स्थान में विराजमान थे। त्रिकालज्ञ थे उनकी द्रव्य दृष्टि कभी चूकने वाली न थी। उन्होंने जान लिया कि कलियुग में धर्म क्षीण हो जावेगा। सम्पूर्ण भौतिक वस्तुएं शक्तिहीन हो जावेंगी। मनुष्य नास्तिक हो जावेंगे। वे अल्पायु होकर कर्त्तव्यहीन होंगे। इस लिए उन्होंने यज्ञों के विस्तार हेतु वेद के चार भाग कर दिये जिससे कम बुद्धि वाले तथा जिनकी स्मरण शक्ति कम है वे भी वेदों का अध्ययन कर सकें। एक विशाल वेद का साङ्गोपाङ्गस्मरण रखना अति दुस्तर होने के कारण ही उन्होंने वेदको चार विभागों में विभाजन कर दिया। जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद रक्खा। पाँचवा वेद इतिहास पुराणों को माना। ऋग्वेद अपने शिष्य पैल को पढ़ाया, सामवेद जैमिन शिष्य को पढ़ाया, यजुर्वेद वैशम्पायन शिष्य को पढ़ाया और अथर्ववेद सुमन्तुमुनिको पढ़ाया। इतिहास पुराणों को मेरे पिता रोम हर्षण को पढ़ाया। वेदव्यासजी के इन शिष्यों ने अपनी बुद्धि के अनुसार इन वेदों की बहुत सी शाखायें उप शाखायें बनाईं। इन वेदों को स्त्री शूद्र और पापी मनुष्य सुनने के अधिकारी न होने के कारण श्रीव्यासजी ने उन्हीं का सार रूप एक पंचम वेद महाभारत इतिहास का निर्माण किया। जिसको सभी स्त्री शूद्रादि पढ़कर वेदोक्त कर्म का आचरण कर सकते हैं।

हे शौनकजी! श्रीव्यासजी ने ऐसे अपूर्व ग्रंथ महाभारत इतिहास की रचना की किन्तु फिर भी उनके हृदय को सन्तोष प्राप्त न हुआ वे खिन्न मन होकर सरस्वती के पवित्र तट पर एकान्त स्थान में बैठ कर बड़े दुःखी होने लगे। मन में अनेक प्रकार के विचार करने लगे कि मेरी खिन्नता का क्या कारण है? मैंने सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन किया है। गुरुजनों की सेवा की है वेदों का अर्थ भी सरल कर दिया है। लोकहित के लिये सब

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वेदों का सार महाभारत ग्रन्थ भी रच दिया है किन्तु न जाने अब कौनसा कार्य मेरे करने के लिये शेष रह गया है। इसलिये मेरा मन खिन्न है। जब व्यासजी इस प्रकार अपने मन में महान् दुःखी हो रहे थे उसी क्षण सरस्वती के तट पर श्रीनारदजी पधारे। नारदजी को देख कर वेदव्यास जी बड़े प्रसन्न हुये। बड़े आदर भाव से उन्हें आसन दिया और इस प्रकार बोले–हे नारदजी! आप ब्रह्मा के पुत्र हैं, आप सर्वज्ञ हैं, आप मेरे हृदय के दुःख को जानने में समर्थ हैं। अतः मेरे दुःख को दूर करने की कृपा कीजिये।

—❀—

॥ पांचवाँ अध्याय ॥

दोहा–जिहि करनी नारद मुनी, भये सन्त अब आय।
अपने पूरब जन्म की, कथा कही समझाय॥

सूतजी बोले–श्रीव्यासजी की इस प्रकार दुःखभरी बातें सुनकर नारद जी मुस्कराकर बोले–हे व्यासजी! आप बड़े जिज्ञासु और वेदों के ज्ञाता हैं। आपने पंचम वेद महाभारत का निर्माण बड़ा ही अलौकिक किया है। वेदान्त सूत्रों को आपने रचा है। उनका भली प्रकार अध्ययन किया है। किंतु फिर भी आप अति खिन्न हैं। इसका कारण यह है कि आपने यह सब कुछ करते हुए भी भगवान् के पवित्र यश का वर्णन बहुत ही कम किया है। वह ज्ञान, जिससे भगवान् की प्रसन्नता न हो, उनके यश का वर्णन न हो, भगवत्जनों का भला न हो अधूरा ही है। आपने भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की महिमा का वर्णन भली प्रकार नहीं किया है।

संसार में वही वाणी पवित्र है जिससे भगवान् श्रीकृष्ण के यश का गायन होता है। सत्पुरुषों के लिये भगवान् के कीर्तन का श्रवण और गायन पाप को नाश करने वाला है। भगवत् भक्ति से रहित मनुष्य का जीवन इस जगत् में बृथा है। हे व्यासजी! आप परम ज्ञानी, कीर्तिमान और अमोघ दृष्टि वाले हैं अतः अब आप भविष्य में जगत के प्राणियों के उद्धार हेतु एक ऐसे सद्ग्रंथ का निर्माण कीजिये जिसमें भगवान् की

CC-0. ... Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लीलाओं का वर्णन हो। संसारी लोग विषय वासनाओं में वैसे ही लिप्त हैं फिर आपने पशुहिंसा युक्त सकाम कर्म का उपदेश उनको दिया है, जिसके कारण मूर्ख लोग आपके उपदेशों को धर्ममान कर अधर्म करते हैं। और दूसरों के उपदेशों पर ध्यान नहीं देते। अतः आप लोकहित के लिये सर्व साधारण के निमित्त भगवत् लीलाओं का वर्णन कीजिये। जो भगवत् भक्त भगवान् का भजन करते हैं वे थोड़े ही काल में कल्याण को प्राप्त होजाते हैं।

सांसारिक भोग तो मनुष्य को कर्मानुसार प्राप्त हो ही जाते हैं किन्तु भगवत् भक्ति भगवान के चरणों में अपने को अर्पण किये बिना कदापि नहीं मिलती। भगवत् भक्ति प्राप्त होने पर मनुष्य जीवन मरण से मुक्त होकर फिर इन सांसारिक क्लेशों को नहीं भोगता है। जिसे एक बार भगवत् भक्ति का रस मिल जाता है वह फिर उसे नहीं छोड़ता।

हे वेदव्यास जी! आप भगवान के अवतार हैं आपके हृदय में सम्पूर्ण वेद तथा ज्ञान विराजमान हैं, फिर भी मैं आपको स्मरण दिलाता हूँ कि मनुष्य का ज्ञान, वेदाध्ययन, तपस्या, स्वाध्याय, दान तथा यज्ञों के अनुष्ठान आदि का तात्पर्य केवल यही है कि भगवान् की लीलाओं का वर्णन करे तथा उन में प्रेम करे। वे ही भगवान् इस जगत की स्थिति, उत्पत्ति, तथा लय करते हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंमें विराजमान हैं।

हे वेदव्यासजी! मैं आपको अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाता हूँ। मैं पूर्व जन्म में एक दासी का पुत्र था। मेरी माता ने मुझे महात्माओं की सेवा के निमित्त दे दिया था। एक समय कुछ योगी जन वर्षा ऋतु में चातुर्मास कर रहे थे। मैं उन की सेवा करने लगा। मैं नित्य उनके मुखारविन्द से भगवान् की लीलाओं का श्रवण करता था। उन की हृदय से सेवा करता था। उनकी झूँठन का बचा हुआ अन्न उनकी आज्ञा से खाता था। उससे मेरे सभी पूर्व जन्म के पाप नष्ट हो गये। उनकी सेवा से मेरा हृदय शुद्ध हो गया उस में भगवत् लीला विराजमान होगई। भक्ति देवी ने आकर हृदय में प्रकाश कर के मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर दिया। भगवान् में मेरी प्रीति हो गई, मेरी बुद्धि स्थिर हो गई। इस क्षणभंगुर संसार से मेरा मन फिर गया। इस जगत को असत् तथा कल्पित समझने लगा। वे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महात्मा लोग जिस प्रकार पूजापाठ कीर्तन गायन करते थे, मैं बड़े ध्यान से देखता था तथा वैसा ही आचरण करता था। इस प्रकार उन महात्माओं के साथ मुझे रहते हुए दो ऋतु बीत गई। इतने दिनों में मेरा रजोगुण, तमोगुण सब नष्ट हो गये, शुद्ध भगवत् भक्ति का उदय हृदय में हो गया। तब उन महात्माओं ने मुझे अपना आज्ञाकारी सेवक तथा भगवत् भक्त समझ कर भगवान् के गुप्त रहस्य का उपदेश किया, उन्होंने मुझे वह ज्ञान समझाया, जिसका निरूपण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में किया है। उसी ज्ञान से मैं भगवान् श्रीकृष्ण की माया तथा उनके स्वरूप को जान सका। उसी से परम पद की प्राप्ति होती है।

हे वेदव्यास जी! अपने सम्पूर्ण कर्मों को भगवान् के अर्पण कर देना ही दैविक, दैहिक तथा भौतिक तापों को नष्ट कर देना है। हे व्यासजी! जिस पदार्थ के सेवन से रोग उत्पन्न होता है उसी पदार्थ को यदि विधिवत् सेवन किया जाय तो उत्तम स्वास्थ्य को देता है तथा रोग को दूर करता है। ऐसे ही मनुष्य कर्म तो निरन्तर करता है किन्तु उन में अपना अहम् भाव (कर्तापन) त्यागकर भगवान् के अर्पण करता रहे तो कर्मपन नष्ट हो जाता है। कर्म के बुरे भले का फल उसे प्राप्त नहीं होता है। उसे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है जो मनुष्य भगवान् के स्वरूप का ध्यान करते हैं उन्हें नमस्कार करते हैं। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षण सहित भगवान् के चारों रूपों का ध्यान करके नमस्कार करते हैं। वे ही परम ज्ञानी तथा मुक्ति का फल प्राप्त करते हैं।

हे व्यासजी! मेरी परम भगवद् भक्ति को देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मुझे आत्म ज्ञान, ऐश्वर्य तथा अपनी प्रेमाभक्ति प्रदान की। हे व्यासजी! आपका ज्ञान अमोघ है आप भी भगवान् की प्रेममयी लीलाओं तथा उनके पवित्र यश का वर्णन करके अपने हृदय के दुःख को मिटाइये। भगवान् के चरित्र वर्णन से आप ही के हृदय का दुःख दूर न होगा किंतु सारे जगत के प्राणियों का दुःख दूर होकर उन्हें शांति मिलेगी। यही उत्तम उपाय है।

——❀——

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ छटवाँ अध्याय ॥

(नारदजी के पूर्वजन्म का शेष वर्णन)

श्रीसूतजी बोले–हे शौनकजी! जब नारद जी ने अपने पूर्व जन्म की कथा वेदव्यासजी से इस प्रकार कही तब उन्होंने पूछा कि हे देवर्षि! उन साधुओं के चले जाने पर आपने अपना शेष जीवन किस प्रकार व्यतीत किया।

नारदजी बोले—हे व्यासजी! उस समय मेरी अवस्था छोटी थी मेरी माता के मैं ही एक मात्र पुत्र था। वह मुझे बड़े लाड़ चाव से पालती थी। मैं भी उसी के आश्रय पर था। मेरी माता पराधीन, निर्धन दासी थी। वह मेरे लिए कुछ कर नहीं सकती थी। मैं अपनी माता के साथ उसी बस्ती में रहने लगा। एक दिन साँप के काटने से मेरी माता का देहान्त हो गया मुझे माता की मृत्यु से तनिक भी दुःख नहीं हुआ इसे भगवत् इच्छा समझकर मैं प्रसन्न ही हुआ और फिर उत्तराखण्ड की ओर चल दिया।

हे व्यासजी! उत्तराखण्ड की ओर मार्ग में अनेकों वन पर्वत आदि को पार करने लगा। अनेक प्रकार के रङ्ग बिरंगे पुष्पों तथा फलों से लदे हुए वन देखे। ग्राम नगर आदि देखे। किन्तु मैं आगे बढ़ता ही गया और एक सघन बन में जाकर एक नदी मिली वहाँ बड़े भयंकर बन जन्तुनिवास करते थे। मुझे प्यास और भूख ने सताया था। नदी का जल पीकर प्यास शान्त की और एक पीपल के वृक्ष के नीचे आसन लगाकर भगवान् के उस विग्रह का ध्यान करने लगा जिसका वर्णन उन महात्माओं ने किया था। मुझे भगवान् के प्रति प्रेम तथा भक्ति तो पहले ही से थी, उनकी कृपा हुई और दर्शन हुए। मैं आनन्द विभोर हो उठा नेत्रों से अश्रु गिरने लगे। आनन्द में डूब गया। किन्तु वह श्रीविग्रह तुरन्त ही लीन हो गया। मेरा हृदय घबड़ा उठा। मैं बार बार उन भगवान् के श्री विग्रह के दर्शनों का प्रयत्न करने लगा, किन्तु अतृप्त सा ही रह गया। बार बार लालसा करने लगा। तब भगवान् की मधुरवाणी हुई कि हे भक्त! तुझे इस जन्म में मेरे साक्षात् दर्शन पुनः नहीं मिल सकते, एक बार दर्शन हो गये। इस जन्म में तू मेरा भजन करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर! तब दूसरे जन्म में तुझे मेरा परमपद प्राप्त होगा और मेरा पार्षद बनकर रहेगा। मेरी कृपा से तू अपने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उपार्जित ज्ञान को कभी नहीं भूलेगा, मेरे प्रति यह प्रेम कभी नहीं टूटेगा। तुझे अपने इस जन्म की स्मृति सदा बनी रहेगी। इतना कह कर भगवान् चुप हो गये। मैं भी अपने शेष जीवन को काल की प्रतीक्षा में व्यतीत करने लगा। अन्त समय पर एक विद्युतसी कौंधीं और मैंने अपना पंचभौतिक शरीर त्याग कर भगवान् के पार्षदों का पद प्राप्त कर लिया।

हे व्यास जी! कल्प के अन्त में जब प्रलय होने लगी और ब्रह्मादि सभी भगवान् के शरीर में प्रवेश करने लगे तब मैं उनके मुख द्वार से भगवान् के शरीर में प्रवेश कर गया। जब एक सहस्र चतुर्युगी व्यतीत होने पर ब्रह्मा जगे तब उनके शरीर से मरीच आदि ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए उनके साथ में मैं भी उत्पन्न हुआ तभी से मैं भगवत कृपा से सम्पूर्ण लोकों में विचरण करता हूँ। उन्हीं भगवान् का मैं कीर्तन करता हूँ। यह वीणा भी उन्हीं भगवान् ने मुझे दी है। अब भगवान् मेरे बुलाने पर मुझे तुरन्त दर्शन देते हैं। हे व्यासजी! यह मेरा पूर्ण अनुभव है कि भगवान् के चरित्रों का गायन तथा कीर्तन ही संसार सागर को पार करने की नौका है। यम, नियम, संयम तथा तप, यज्ञादि से ऐसी शान्ति प्राप्त नहीं होती है जैसी भगवत् कथा, श्रवण, कीर्तन से प्राप्त होती है। हे व्यासजी! जो आपने मुझे पूछा उसका मैंने सही निरूपण कर दिया। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। इतना कह कर नारद जी वीणा बजाते हुये लोक भ्रमण के लिये चल दिये। तब व्यास जी सोचने लगे कि देवर्षि नारद धन्यवाद के पात्र हैं जो लोक हित के लिये अपना जीवन अर्पण कर चुके हैं। वीणा पर भगवान् का कीर्तन कर के इस त्रिताप संतप्त जगत को सर्वदा सुख शान्ति प्रदान करते हैं।

❀ सातवाँ अध्याय ❀

दो०—अश्वत्थामा दुष्ट ने, हने द्रौपदी लाल।
पृथा पुत्र ने नीच को, दण्ड दियो तिहि काल॥

[अश्वत्थामा के हाथ से द्रौपदी के पुत्रों की मृत्यु तथा अर्जुन के द्वारा अश्वत्थामा को दंड देना]

शौनकजी बोले—हे सूतजी! जब नारदजी चले गये तब परमज्ञानी श्री व्यासजी ने क्या निश्चय किया।

सूतजी बोले— हे शौनकजी! श्रीवेदव्यास जी नारदजी के उपदेश का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तात्पर्य समझ कर शान्त होगये। श्रीव्यासजी का आश्रम सरस्वती नदी के पश्चिमी तट शम्पाप्रास नामक स्थान पर है। उस स्थान पर वेर के वृक्षों का रम्य बन है, वहीं पर ऋषि लोग निरन्तर यज्ञ करते हैं। व्यासजी ने अपने आश्रम में बैठ कर आचमन किया और शुद्ध मन होकर अपने योग वल से भगवान् की माया को देखा। जिसके कारण सभी प्राणी गुणों से रहित होते हुये भी तीनों गुणों से वर्तते हैं, तथा कर्म बंधन में फँसते जाते हैं। श्रीवेदव्यासजी ने अपनी बुद्धि बल से जान लिया कि भक्तियोग ही परम शान्ति का एक मात्र साधन है। सांसारिक प्राणी इस उपाय को नहीं जानते हैं। इसलिये उनकी मुक्ति का यही सुगम मार्ग समझ कर उन्होंने श्रीमद्भागवत् का निर्माण किया जिसे परम हंसों की संहिता कहते हैं। श्रीमद्भागवत् के श्रवण से सहज ही में भगवान् वासुदेव की भक्ति प्राप्ति हो जाती है। प्राणी भगवान् के माया जाल, मोह, शोक, अज्ञान से मुक्त हो जाता है। इस भागवत् संहिता को रच कर उन्होंने प्रथम अपने पुत्र श्रीशुकदेवजी को इसका उपदेश किया और उन्हें सांगोपाङ्ग पढ़ाया।

शौनकजी बोले—हे सूतजी! श्रीशुकदेवजी परमज्ञानी तथा निवृत्ति परायण होते हुए भी उन्हें फिर श्रीमद्भागवत् जैसे विशाल ग्रंथ के पढ़ने की क्यों आवश्यकता हुई?

सूतजी बोले—हे शौनकजी! भगवान् से प्रेम करने वाले भक्त जनों के लिये उनके चरित्रों का वर्णन जितनी बार भी उनसे किया जाय वह उन्हें उतना ही आनन्दमयी रस देता है। यह भागवत् कथा उनके चित्त को अपनी ओर खींचती है। भागवत् कथा उन्हें इतनी मधुर लगती है कि वे उस के श्रवण की बार २ इच्छा करते हैं, और फिर भी अतृप्त से रहते हैं। श्रीशुकदेवजी स्वयं परमज्ञानी, भगवत् भक्त, एवं अपनी आत्मा में रमण करने वाले आत्मज्ञानी, और व्यासजी के पुत्र हैं। फिर शुकदेवजी जैसे भगवत् भक्त ऐसी अमृतमयी कथा का अध्ययन क्यों न करें। हे शौनकजी! श्रीमद्भागवत् संहिता ने उन्हें स्वयं अध्ययन के हेतु अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसी कारण उन्होंने उस का अध्ययन किया।

सूतजी बोले—हे शौनकजी! अब मैं आपको राजा परीक्षित् के जन्म

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर्म तथा मोक्ष प्राप्ति की कथा सुनाता हूँ। उस कथा के अन्तर्गत भगवान् श्रीकृष्ण और परम भक्त पाण्डवों के चरित्र का उत्तम वर्णन है। जब महाभारत युद्ध में भीमसेन की गदा से कौरवों का नाश हो गया, और दुष्ट अभिमानी दुर्योधन की जाँघ भी भीमसेन ने मल्लयुद्ध में तोड़ दी, तब अपने राजा दुर्योधन की ऐसी दशा देख कर अश्वत्थामा छिप कर पाँडवों के शिविर में आया और उस घोर काल रात्रि में पाण्डवों के बचे हुए वीर महारथियों के सिर कृपाचार्य और कृतवर्मा की सहायता से काट डाले। उनके साथ ही सोते हुए पाण्डवों के पाँचों पुत्रों के सिर भी अश्वत्थामा ने काट लिए। जब अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार द्रौपदी ने सुना तो वह विलाप करने लगी। अश्वत्थामा का यह नीच कर्म सभी को बुरा लगा यहाँ तक कि दुर्योधन ने भी जब यह सुना तो उसे भी यह अच्छा नहीं लगा। द्रौपदी के विलाप को सुनकर अर्जुन ने द्रौपदी को समझाया और उस नीच कर्म हत्यारे ब्राह्मण को पकड़ कर उसके सिर को काट के लाने की प्रतिज्ञा की। ऐसा निश्चय कर के भगवान् श्रीकृष्ण को सारथि बना कर महावीर अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष को लेकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़ पड़े। अश्वत्थामा अर्जुन को अपने पीछे आते देखकर भाग निकला। भागते भागते अपनी रक्षा के हेतु सभी स्थानों में गया किंतु सब जगह अर्जुन को ही अपने पीछे आते हुए पाया। जब उसने अर्जुन से अपनी प्राण रक्षा का कोई उपाय न देखा तो ब्रह्मास्त्रके प्रयोग करने का निश्चय किया। ब्रह्मास्त्र का चलाना तो वह जानता था किंतु उसे लौटाना नहीं जानता था। भय के कारण उसने उस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग अर्जुन पर कर दिया। जब अर्जुन ने उस अति प्रचण्ड तेजोमय ब्रह्मास्त्र को अपनी ओर आते हुये देखा तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार विनती की।

अर्जुन बोले—हे जनार्दन! आप ही इस त्रिगुणमयी सृष्टि को रचने वाले सच्चिदानन्द घन परमेश्वर हैं। सृष्टि के आदि और अंत में आप ही शेष रहते हैं। आप ही अपने भक्तजनों की रक्षा के लिए तथा उनको संसार के धधकते हुए ताप से बचाने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं। आप ही ब्रह्मारूप हो कर सृष्टि को रचते हैं। तथा विष्णु स्वरूप से पालन करते हैं,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और रुद्र रूप से संहार करते हैं। आपका अवतार भक्तों की रक्षा के लिये ही होता है। अतः आप मुझे बताइए कि यह प्रचण्ड तेजोमय अग्नि जो सामने से मेरी ओर बढ़ी आ रही है, क्या है! कहाँ से आ रही है? इससे बचने का क्या उपाय है? यह मुझे बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन। तुम्हारे भय से व्याकुल हो कर अश्वत्थामा ने यह ब्रह्मास्त्र तुम्हारे मारने के लिए छोड़ा है। इस ब्रह्मास्त्र से प्राण घोर संकट में हैं। वह अश्वत्थामा इस का प्रयोग तो जानता है किन्तु इसका निवारण नहीं जानता है। अतः इसका निवारण करने के लिए तुम भी अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ो, अन्य किसी अस्त्र से इसका निवारण नहीं हो सकता है। सूतजी बोले—हे शौनकजी! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी का यह बात सुन कर वीरों के संहार में चतुर महारथी अर्जुन ने तत्काल आचमन करके ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर भिड़ गये। उस से टकरा कर प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न हो कर तीनों लोकों को तप्त करने लगी। उनकी लपटों से सारी प्रजा दग्ध होने लगी। उस प्रलयकारी अग्नि को बढ़ती हुई देख कर अर्जुन ने दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा कर शान्त कर दिया और झपट कर उस अश्वत्थामा को पकड़ कर बाँध लिया। अर्जुन की आँख क्रोध से जल रही थीं, तब भगवान् श्रीकृष्ण जी बोले—हे अर्जुन! इस पापी को तुरन्त मार डालो। इस ने निरपराध बालकों की हत्या की है। इसने धर्म के विरुद्ध आचरण किया है धर्मात्मा पुरुष सोये हुए असावधान, मतवाले, पागल, स्त्री, बालक, शरण में आए हुए, भागते हुए, अज्ञानी रथहीन तथा भयभीत को कभी नहीं मारते हैं। इस दुष्ट ने सोये हुए असावधान बालकों की हत्या की है। अतः यह अवश्य वध करने योग्य है। क्यों कि यह फिर भी ऐसा पाप करेगा। तुमने द्रौपदी से भी इस के वध करने की प्रतिज्ञा की है, इस लिये इस कुलङ्गार का सिर अवश्य उतार कर द्रौपदी के सामने रख दो। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन की परीक्षा के लिए इस प्रकार बचन कहे किंतु धीरवान् अर्जुन ने गुरु पुत्र की हत्या न करने की इच्छा प्रगट करते हुए श्रीकृष्णजी के साथ शिविर में द्रौपदी के सम्मुख उसे उपस्थित किया। पशु की तरह बँधे हुए गुरुपुत्र को देख कर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

द्रौपदी के हृदय में दया आ गई, तथा उस साध्वी का कोमल हृदय पिघल गया। उसने गुरुपुत्र को नमस्कार किया तथा उसे बन्धन मुक्त करने के लिये अर्जुन से प्रार्थना की। बोली—आर्य ! ये गुरु पुत्र तथा ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण की हत्या करना पाप है। ये सदा पूजनीय हैं। आपने इनके पिता से धनुर्विद्या सीख कर ही इन अपूर्व शास्त्रास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया है पुत्र के रूप में आचार्य द्रौण ही आप के सम्मुख बन्दी रूप में खड़े हैं। इनके बध करने से इनकी माता कृपी मेरी तरह कातर होकर पुत्र शोक में विलाप करेगी। उसे पुत्र से विशेष ममता होने के कारण वह द्रौणाचार्य जी के साथ सती नहीं हुई कृपी की आत्मा मुझे निरन्तर कोसेगी। मेरे मृत पुत्र इनके वध करने पर अब लौट कर नहीं आ सकते। जिस प्रकार पुत्र शोक से मैं व्याकुल हूँ इसी प्रकार इन की माता कृपी भी होगी। ब्राह्मण के क्रोध की अग्नि सपरिवार भस्म करने में समर्थ है। अतः आप इन को अवश्य मुक्त कर दीजिये।

सूतजी बोले—हे मुनिगणो ! द्रौपदी के न्याय तथा धर्म युक्त बचन सुन कर वहाँ पर जितने उपस्थित पाण्डव तथा उन की स्त्रियाँ व अन्य पुरुष थे सभी ने द्रौपदीकी प्रशंसाकी धर्मराजयुधिष्ठिरने महारानीके ऐसे धर्मयुत बचन सुन कर उनका अति सत्कार किया, नकुल, सहदेव तथा स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ने भी द्रौपदीके बचनोंका आदर किया और प्रशंसाकी। सभी स्त्री पुरुषोंने द्रौपदी के बचनों का समर्थन किया। किन्तु भीमसेन ने क्रोधमें लाल लाल नेत्र करके कहा कि इस दुष्ट ब्राह्मण पुत्र ने सोते बालकों की व्यर्थ हत्या की है अतः इसे अवश्य मार डालना चाहिये। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने हँसते हुये अर्जुन से कहा कि अर्जुन ! तुम्हें द्रौपदी से की हुई प्रतिज्ञा तथा भीमसेन की बात को पूर्ण करना चाहिये, किन्तु शास्त्रों में मैंने पतित ब्राह्मण का भी बध करना पाप कहा है, और आततायी को दण्ड न देना भी पाप है। अतः मेरी दोनों आज्ञाओं का पालन करते हुये द्रौपदी के साथ की गई प्रतिज्ञा को पूर्ण करो।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मन की बात समझ कर अर्जुन ने अपनी तलवार से अश्वत्थामा के सिर के बाल काट

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर उसके मस्तक की मणि निकाल ली। उससे वह श्रीहीन हो गया। श्रीहीन तो उसी क्षीण हो गया था जब उसने सोये हुये बालकों की हत्या की थी किन्तु केश मुड़ जाने और मणि के निकल जाने से वह और भी श्रीहीन हो गया। उसका सिर नीचे झुक गया। उस को बुरा भला कह कर शिविर से बाहर निकाल दिया। उसके लिये यह अपमान मृत्यु से भी अधिक बढ़ कर था।

पाण्डव लोग सभी अपने बन्धु बान्धव व पुत्रों की मृत्यु से शोकाकुल थे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया आदि कर्म किये।

——:❀:——

॥ आठवाँ अध्यायः॥

दो०—ब्रह्मास्त्रकी अग्नि से, जरयौ गर्भ में बाल।
यदुपति ने रक्षा करी, रचि माया को जाल॥
कर जोरे कुन्ती करे, स्तुति मदन गोपाल।
कौरव पाण्डव नाश ते, धर्म भये बेहाल॥

सूतजी बोले—हे शौनक जी! अपने स्वजनों को जलदान करने के निमित्त पाण्डव लोग धृतराष्ट्र तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को आगे कर के अपने वंश की सम्पूर्ण स्त्रियों के साथ गङ्गा तट पर गये। स्त्रियाँ कुररी की भाँति विलाप करती हुई गईं उनके शोक से व्याकुल होकर धर्मराज युधिष्ठिर अति दुःखी हुये। धृतराष्ट्र, गांधारी, कुन्ती और द्रौपदी सभी अपने पुत्रों पौत्रों तथा स्वजनों के लिये शोक करने लगीं। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने धौम्य तथा वेदव्यासजी आदि मुनियों के साथ उन सब को अनेक प्रकार की युक्तियों से दृष्टांत देकर शान्त्वना दी और समझाया कि यह संसार नाशवान है जो जन्मा है उस की एक दिन मृत्यु अवश्य है। सब काल के आधीन हैं। मृत्यु सब को खाती है अतः उन मरे हुओं के लिये शोक करना व्यर्थ है। इस प्रकार अनेक युक्तियों से अजातशत्रु धर्मराज युधिष्ठिर को समझा कर उन्हें हस्तिनापुर का राजा बनाया उनसे तीन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अश्वमेध यज्ञ कराये। इस प्रकार युधिष्ठिर के शुभ्र यश को इन्द्र के समान फैलाया। जब हस्तिनापुर रहते हुए भगवान् श्रीकृष्ण को पर्याप्त समय व्यतीत हो गया तब एक दिन द्वारिका जाने का विचार किया और पाण्डवों से बिदा ले कर तथा वेदव्यास जी आदि मुनियों की आज्ञा ले कर रथ में बैठ कर सात्यिक तथा उद्धव के साथ द्वारिका जाने के लिए प्रस्तुत हुए उसी समय एक अपूर्व घटना हुई। उन्होंने देखा कि उन की वधू उत्तरा भय से व्याकुल हो कर रुदन करती हुई आगे से दौड़ी आ रही है। उत्तरा ने व्याकुल स्वर में कहा मुझे बचाओ ! मुझे बचाओ !! मेरी रक्षा करो। आप योगयोगेश्वर हैं। देवताओं के भी देवता हैं। संसार की रक्षा करने वाले हैं। आप सर्व शक्तिमान हैं। यह देखिए प्रज्ज्वलित लोहे का बाण मेरी ओर चला आ रहा है। हे जनार्दन ! यह बाण मेरे गर्भ को नष्ट न कर दे। हे प्रभो ! आप ही मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं। सूतजी बोले—हे शौनकजी ! उत्तरा के ऐसे कातर बचन सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त रथ से कूद पड़े और बोले कि अश्वत्थामा ने पाण्डव वंश को नष्ट करने के लिए फिर से ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया है। पाण्डवों ने भी अपनी ओर दहकते हुए पाँच बाणों को आते हुए देखा तब उन्होंने तत्काल अपने अपने अस्त्र सम्हाले। तब भक्त वत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने भक्तों की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र से उन की रक्षा की। उन योग योगेश्वर ने उत्तरा के गर्भ में प्रविष्ट हो कर अपनी माया के कवच से उस गर्भ को आच्छादित कर दिया। हे शौनकजी ! ब्रह्मास्त्र से किसी की रक्षा नहीं हो सकती है और न वह किसी प्रकार से निवारण ही हो सकता है, किन्तु फिर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने तेज से उसे तुरन्त शान्त कर दिया। वे सर्व शक्तिमान् हैं। वे अजन्मा होकर भी संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करते हैं। और भक्तों की रक्षा के लिए ही जन्म धारण करते हैं। जब कुन्ती और द्रोपदी ने भगवान् की इस अपूर्व शक्ति को देखा कि उन्होंने ब्रह्मास्त्र को एक क्षण ही में हँसते २ शान्ति कर दिया तब उन्होंने उन की इस प्रकार से प्रार्थना की।

कुन्ती बोली हे जनार्दन ! आप सम्पूर्ण पदार्थों तथा प्राणियों में एकीभाव से विद्यमान् हैं। किन्तु फिर भी इन इन्द्रियों द्वारा आप प्राणियों को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दृष्टि नहीं आते। आप प्रकृति से परे हैं । सम्पूर्ण विश्व को अपनी माया से ढके रहते हैं। मैं अज्ञान स्त्री आपको पहिचानने में असमर्थ हूँ । मैं आप को साष्टांग प्रणाम करती हूँ । जिस प्रकार मनुष्य नटको सामने देख कर भी उसकी विद्या को नहीं समझ पाते हैं। उसी प्रकार अज्ञानी आप को नहीं पहचान पाते हैं। आप सदा परमहंसों के हृदय में भक्ति प्रदान करते हैं। भक्तों की रक्षा के लिये ही आपका अवतार हुआ है भला हम अज्ञान नारियाँ आपको किस प्रकार पहिचान सकती हैं। हे वासुदेव ! हे यशोदा नन्दन ! हे गोविन्द ! हे कृष्ण ! हे माधव ! आपको हमारा बारम्बार साष्टांग प्रणाम है। जिस भगवान् की नाभि से कमल उत्पन्न होकर ब्रह्मा की उत्पत्ति करता है जो शेष शैया पर योगनिद्रा में विराजमान रहते हैं जिनके चरणों में कमल का चिन्ह है। जो सदा अपने वक्षस्थल पर विशाल बनमाला धारण किये रहते हैं। जिनके नेत्र कमल के समान विशाल हैं उन श्रीकृष्णचन्द्रको हमारा बारम्बार प्रणाम है। हे मधुसूदन ! जिस प्रकार आपने अपनी माता देवकी की रक्षा दुष्ट कंस से की थी। उसी प्रकार आपने उन दुष्ट कौरवों से मेरी रक्षा की है। मैं आपके उपकारों को कहाँ तक गिनाऊँ। आपने सर्वत्र ही पाण्डवों की रक्षा की है। विष से, लाक्षागृह से, हिडम्ब आदि दैत्यों से, द्रुपद की सभा में राजा लोगों से तथा महाभारत के युद्ध में आपही ने मेरे पुत्रों की विजय कराई है। अभी अभी इस ब्रह्मास्त्र से आपने मेरे वंश की रक्षा की है। यह विपत्तियाँ ही आपको पहिचानने का सरल व सुगम मार्ग हैं। मैं आपसे यही वर माँगती हूँ कि हम पर सदा बारम्बार विपत्तियाँ आती रहें और आप उनके निवारण के लिये अपने दर्शन देते रहें। जो मनुष्य सुख में रहता है, वह अहङ्कार वश कभी आपका नाम नहीं लेता है किन्तु विपत्तियों में सदा मनुष्य आपका स्मरण करता रहता है। आप निर्धनों के धन, भक्तों के रक्षक और मोक्ष के देने वाले हैं। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करती हूँ । हे अरि सूदन ! आप सब पर समान रूप से प्रेम करते हैं। आपका न कोई मित्र है और न कोई शत्रु, किन्तु फिर भी मनुष्य अपनी विषय बुद्धि से आपको शत्रु और मित्र मानते हैं । आपके लिये कोई कर्म शेष नहीं है किन्तु फिर भी संसार के दिखाने के लिये कर्म करते हो। आप

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

का बचपन अति ही आनन्दमय था । अपनी माता यशोदा को अपनी बाल लीला दिखाने के लिये कभी मटकी फोड़ते थे, कभी ऊखल से बाँधते थे कभी मातृप्रेम से विह्वल होकर नेत्रों से जलयुक्त आँसू छलकते थे । आपकी उस मोहिनी छवि का वर्णन कहाँ तक करूँ । स्वयं ब्रह्माने भी आपकी माया से चकित होकर आपके बछड़े तथा ग्वालबालों को कन्दरा में छिपाया था । आप संसार के कल्याण हेतु ही अवतार ग्रहण करतेहैं आपकी लीलायें लोगों के लिये श्रवण और कीर्तन करने योग्य हैं जो भक्तजन आपकी लीलाओं का हर समय गायन, श्रवण और स्मरण करते हैं वे आपके दर्शनों को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं और जन्म मरण के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं ।

हे भक्तवत्सल ! अब आप हम लोगों को त्यागकर क्यों जाना चाहते हो । हमें आपके अतिरिक्त अब और किसका सहारा है । आपके न रहने पर फिर हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहता है । आपके बिना मेरा यह घर अपवित्र हो जावेगा । यहाँ तक कि यह सम्पूर्ण भवन, नगर कुटुम्बीजन, बन पर्वत, नदी आदि सभी भयङ्कर प्रतीत होने लगेंगे । आप विश्वात्मा हैं विश्वरूप और विश्व के स्वामी हैं । आप मेरी ममता के जाल को काटने में समर्थ हैं । मैं चाहती हूँ कि जिस प्रकार गङ्गा की धार समुद्र में गिरती है उसी प्रकार मैं आप में लीन हो जाऊँ । हे गोविन्द ! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करती हूँ ।

सूतजी बोले–कुन्ती के इस भक्ति पूर्ण मधुर बचनों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मन्द मन्द मुस्कान से कहा—अच्छा ठीक है । ऐसा कह वे रथ से उतर पड़े सब के साथ हस्तिनापुर को फिर लौट आये । जब जब वे द्वारिका जाने की इच्छा करते थे तभी २ धर्मराज युधिष्ठिर अपने बन्धु बान्धवों के मारे जाने के कारण शोकाकुल हृदय से उन्हें रोक लेते थे । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अनेक इतिहास पुराणों के दृष्टान्तों से उन्हें सान्त्वना देने की चेष्टा करते थे किन्तु जब इतने पर भी धर्मराज युधिष्ठिर का शोक दूर न हुआ । वे कहने लगे मुझ से अधिक दुराचारी दुरात्मा कौन होगा जिसने इस राज्य के लिये अनेकों अक्षौहिणी सेना का संहार करा डाला । मैंने अपने कुटुम्बियों, सम्बन्धियों सुहृदयों, गुरुजनों आदि सभी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

को युद्धाग्नि में झोंक दिया। उनकी विधवाऐं अपने कातर स्वरों से विलाप करके मेरे हृदय को बाणों से भी अधिक पीड़ा दे रही हैं। शास्त्रों का कथन है कि राजा प्रजा की रक्षा के लिए धर्म से युद्ध करे और शत्रु का नाश करे तो उसे पाप नहीं लगता है, किंतु फिर भी मुझे सान्त्वना नहीं होती है। जिन स्त्रियों के पति, बन्धु, बान्धव हमारे द्वारा मारे गये हैं उनके प्रति मैं घोर अपराधी हूँ। ये यज्ञ यज्ञादि उनका प्रायश्चित नहीं कर सकते। इस लिये मेरा हृदय इस धार्मिक वेदना से अत्यंत दुखी रहता है।

——❀——

॥ नवम अध्याय ॥

दो०—श्री कृष्ण पाण्डव सभी, गये भीष्म के पास।
प्राण त्याग भीष्म कियो, तज मनकी सब आस ॥

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! जब धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार अपने वंश के नाश से दुःखी हुये तब अपने बन्धु बांधवों तथा भगवान् श्रीकृष्ण को साथ लेकर कुरुक्षेत्र में भीष्म पितामह के पास गये। भीष्मजी शर-सैया पर पड़े हुए अपने अन्त समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। भीष्मजी को देखने के लिये उस समय सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा राजर्षि वहाँ पर उपस्थित हुए। नारदजी, धौम्य, पर्वतमुनि, वेदव्यासजी, बृहदस्व-भारद्वाज, वशिष्ठ त्रित, इन्द्रप्रमद, शिष्यों सहित परशुराम, गृत्समद, असित, गौतम, अत्रि, सुदर्शन कक्षीवान्, विश्वामित्र, श्रीशुकदेवजी, कश्यप, अङ्गिरा, आदि समस्त ब्रह्मज्ञानी मुनिगण उन भरतवंश शिरोमणि भीष्म पितामहजीके दर्शनों के लिए कुरुक्षेत्र में पधारे। भीष्म पितामहजी धर्म, देश, काल को भली प्रकार समझने वाले थे। उन्होंने उन सभी ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों, तथा राजर्षियों का धर्म, देश, कालके अनुसार यथेष्ठ सम्मान किया। भीष्मजी भगवान् श्रीकृष्णको भली प्रकार से पहचानते थे। उन्होंने उन जगदीश्वर का सम्मान तथा पूजा अन्तःकरण तथा प्रत्यक्ष में भीतर बाहर दोनों प्रकार से की।

पाण्डव लोग विनम्र भाव से भीष्मजी के पास जाकर बैठे। उन्हें देखते

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ही भीष्मजी के नेत्रों से प्रेमाश्रु छलक उठे तब उन्होंने कहा—हे धर्मावतारो ! यह बड़े दुःख का कारण है कि आप लोगों को धर्म का आश्रय लेते हुए और भगवान श्रीकृष्ण की शरण में रहते हुए भी महान् कष्ट सहने पड़े तुमको बचपन में तुम्हारे पिता छोड़कर परलोकवासी हो गये। रानी कुन्ती ने बड़े कष्टों से तुम्हें पाला। जब तुम लोग युवा हुए तब दुष्ट दुर्योधन ने तुम्हें महान् कष्ट दिये। मैं यह जानता हूँ कि यह सब घटनायें इन्हीं भगवान् की लीलाओं का कारण है, जो अपने भक्तों को कष्टों में डाल कर उन्हें अपनी भक्ति देते हैं। जहाँ पर धर्मराज युधिष्ठिर, पवन पुत्र भीमसेन, गाण्डीव धारी अर्जुन और जिनके रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण हों फिर वहाँ विपत्तियाँ कैसे आ सकती हैं, किन्तु इन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं को कोई नहीं जान सकता। इस बात का पता बड़े २ ब्रह्मज्ञानी भी नहीं लगा सकते हैं। हे धर्मराज ! विश्व की सम्पूर्ण घटनायें ईश्वराधीन हैं ! अतः सम्पूर्ण शोक और वेदना को त्यागकर इस निरीह प्रजा का पालन करो और सदा भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में रहो।

ये श्रीकृष्णचन्द्र सर्व शक्तिमान साक्षात् ईश्वर हैं। यह अपनी माया से हम सब को मोहित करके यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं। इस गूढ़ तत्व को भगवान् शङ्कर, देवर्षि नारद और भगवान् कपिल ही जानते हैं। तुम लोग तो इन्हें मामा का पुत्र, अपना भाई अपना हितू ही मानते हो। तुमने इन्हें प्रेमपास में बाँध कर अपना दूत, मन्त्री और यहाँ तक कि सारथी तक बना लिया है। इन्हीं से अपने अतिथियों के चरण तक धुलवाये हैं। ये सर्वात्मा स्वयं भगवान् हैं। हे धर्मराज ! ये समदर्शी होने पर भी अपने भक्तों पर विशेष कृपा करते हैं तभी यह मेरे अन्त समय में मुझे दर्शन देने के लिए यहाँ पधारे हैं, जो भक्तजन भक्तिभाव से इनका स्मरण, कीर्तन करते हुये शरीर त्याग करते हैं, वे सम्पूर्ण कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं और भगवान् के सायुज्य में लीन हो जाते हैं। मेरी यही इच्छा है कि इन्हींके दर्शन करते हुए मैं अपना शरीर त्याग करदूँ। सूतजी बोले-हे शौनकजी ! धर्मराज युधिष्ठिर ने शरशैया पर पड़े हुए भीष्मजी से सम्पूर्ण ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों के सम्मुख धर्म के विषय में अनेक प्रश्न पूछे। तत्वज्ञानी तथा धर्मवेत्ता भीष्म

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जी ने वर्णाश्रम, राग वैराग्य, निवृत्ति प्रवृत्ति, आदिके सम्बन्धमें अनेक रहस्य मय भेद समझाये। दान धर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म स्त्री धर्म, भगवत् धर्म, द्विविध धर्म, आदि सब के विस्तार और संक्षेप दोनों प्रकार से उन के अलग-अलग भेद बतलाए। हे शौनकजी! इनके अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के साधनों का उत्तम विधि से वर्णन किया।

उसी काल में उत्तरायण सूर्य आ गए। अपनी मृत्यु का उत्तम समय जान कर अपनी वाणी को संयम में कर के मन को सम्पूर्ण रागादि से हटा कर सच्चिदानन्द घन परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपना चतुर्भुज रूप धारण कर के उन को दर्शन दिए। भीष्म जी की सम्पूर्ण बाणों की पीड़ा उनके दर्शन मात्र से दूर हो गई तथा उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण की मोहिनी छवि पर अपने नेत्र एक टक लगा दिए। अपनी इन्द्रियों को रोक कर भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने लगे। भीष्म जी बोले--मैं अपने इस शुद्ध मन को देवकी नन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में अर्पण करता हूँ। जो भगवान् अकर्मा होते हुए भी अपनी लीला विलास के लिए योगमाया द्वारा इस संसार की सृष्टि रच कर लीला करते हैं, जिनका श्यामवर्ण है। जिनका तेज करोड़ों सूर्यों के समान है। जिनके मुख चन्द्र पर घुँघराली अलकें फहराती हैं जो पीताम्बर धारण किये हुए हैं। चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं। कण्ठ में कौस्तुभ मणि और वक्षःस्थल पर बनमाला धारण किये हुए हैं। उन त्रिभुवन धनी अर्जुन के परम मित्र भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी अहेतु की प्रीति हो। भगवान् श्रीकृष्ण की युद्धवाली छवि मेरे हृदय में सदा बिराजती है उनकी घुँघराली अलकें घोड़ों की टापों से उड़े हुए रज कणों में धुँधली हो गई थीं। मुख चन्द्र पर पसीने की बूँदें शोभायमान थीं। उन के श्याम शरीर पर रक्त बिन्दुएँ नील मणि पर्वत पर मूँगा की भाँति शोभायमान थीं।

ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में मेरा मन समर्पित हो। जो भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के कहने पर तत्काल अपना रथ कौरव, पाण्डव दोनों सेनाओं के मध्य में ले आए और अपनी दृष्टिमात्र से कौरवों की आयु

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चीण कर के पाँडवों को अभयदान दिया। अर्जुन के सखा उन भगवान श्री कृष्ण में मेरी अहेतु की प्राप्ति हो। अर्जुन को युद्ध से विमुख देखकर उन्होंने उस भयङ्कर स्थिति में उसे आत्म विद्या का उपदेश दे कर अज्ञान का नाश कर दिया उस परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में सदा मेरा प्रेम बना रहे। मैंने युद्ध चेत्र में भगवान श्रीकृष्ण से अस्त्र उठवाने की प्रतिज्ञा की थी अपने भक्त की टेक रखने के लिए उन्होंने अपने अस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा को तोड़ कर मेरी प्रतिज्ञा को रक्खा और रथ से कूद कर पहिया ले कर मेरी ओर दौड़े। उस समय इतने द्रुति गति से दौड़े कि उन के कन्धे का दुपट्टा भी गिर गया पृथ्वी काँप उठी। मैंने अपने बाणों से उनके शरीर को लोहू लुहान कर दिया। अर्जुन के रोकने पर भी उसे बल पूर्वक घसीटते हुए मुझे मारने दौड़े। वे ही भगवान श्रीकृष्ण मुझे अपनी परम गति प्रदान करें।

जिन भगवान श्री कृष्ण की अनोखी भाव भरी मधुर मुस्कान, प्रेम चितवन से ब्रज गोपियाँ मोहित रहती थीं वे ही भगवान श्रीकृष्ण मुझे परमगति प्रदान करें। जिन भगवान श्री कृष्ण की युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में मेरे सम्मुख अग्रपूजा हुई थी। वे ही भगवान आज मेरे अन्त समय पर पधार कर मेरे सन्मुख खड़े हैं।

सूतजी बोले—हे शौनक जी! भीष्म ने मन वचन, कर्म से भगवान के आत्मस्वरूप का ध्यान किया, और उसी में अपने को लीन कर दिया। वे शाँत हो गए। भीष्म जी को ब्रह्म में लीन समझ कर सन्नाटा छा गया। सब चुप हो गए यहाँ तक कि पक्षियों ने भी चहकना त्याग दिया। उस समय आकाश से देवता लोग पुष्पों की वर्षा करने लगे और दुंदुभी आदि के बाजे बजने लगे। तब युधिष्ठिर ने उनके शव की अन्त्येष्ठि क्रिया की और कुछ काल तक शोक मग्न रहे।

मुनिगणों ने भगवान की स्तुति की और भगवान श्रीकृष्ण से विदा हो कर अपने आश्रमों को चले गए। तदुपरान्त भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने धृतराष्ट्र, गांधारी, कुन्ती, धर्मराज युधिष्ठिर आदि पाँडवों को सांत्वना दी और सब हस्तिनापुर चले आए। वहाँ पर अपने चाचा धृतराष्ट्र की आज्ञा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

से और भगवान श्रीकृष्ण के बताए हुये मार्ग से धर्मराज युधिष्ठिर न्याय पूर्वक राज करने लगे।

—:❀:—

॥ दसवाँ अध्याय ॥

दोहा—कौरव दल कौ नाश करि, गये द्वारिका नाथ।
करि दर्शन आनन्द सों, पुरजन भये सनाथ॥

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी! धर्मराज युधिष्ठिर के राज सिंहासन पर बैठने के उपरान्त फिर क्या हुआ उस सब कथा का वर्णन विस्तार से कहने की कृपा कीजिए।

सूतजी बोले—हे शौनकजी! कौरव-पांडव दोनों वन्श काल की गति से परस्पर लड़ कर नष्ट प्रायः हो गए। उनकी गृह कलह ने बन में लगी हुई अग्नि के समान उन्हें जला कर समाप्त कर दिया। केवल भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्र की कृपा से उत्तरा का गर्भ ही सुरक्षित रह गया था।

हे शौनक जी! धर्मराज युधिष्ठिर के गद्दी पर बैठते ही अधर्म का नाश हो गया तथा धर्म का राज्य होने लगा। भगवान श्री कृष्णचन्द्र की शरण में रहने से तथा भीष्मजी के उपदेशों से धर्मराज युधिष्ठिर को ज्ञान उत्पन्न हो गया था इस लिए विधिवत् नियमपूर्वक भोग भोगते हुए भी उनमें आसक्त नहीं होते थे। देवराज इन्द्र की भाँति सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन करने लगे। उनके चारों भाई भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव उनकी आज्ञा का पालन करते थे। उनके राज्य में यथा समय वृष्टि होती थी, पृथ्वी उर्वरा थी सदा अन्न फल समुचित मात्रा से भी अधिक उत्पन्न करती थी, रत्नों से भरपूर थी बड़े बड़े धनों वाली गौएँ सदा पर्याप्त मात्रा में दूध देती थीं। अकाल का कहीं नाम नहीं था। प्रजा सुखी थी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण तथा स्नातक यज्ञ योगादि अपने कर्मों को नित्य नियम पूर्वक करते थे। प्रजा वर्ण आश्रमों के अनुकूल धर्म का आचरण करती थी। पर्वत, बन, लता, बेलें सर्वदा हरी भरी पुष्पों तथा फलों से लदी रहती थीं। सम्पूर्ण प्राणी दैविक, भौतिक तथा आत्मिक तापों से मुक्त थे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने प्रिय बन्धुओं तथा बहिन सुभद्रा की प्रसन्नता के हेतु कई मास तक हस्तिनापुर रह कर उन के शोक जनित ताप को दूर करते रहे। एक दिन फिर उन्होंने द्वारिका जाने की अनुमति धर्मराज युधिष्ठिर से माँगी। धर्मराज ने बड़े प्रेम पूर्वक कण्ठ से लगाते हुए उन्हें द्वारिका जाने की आज्ञा देदी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सब को प्रसन्न करते हुए वृद्धजनों से विदा लेकर रथ पर चढ़े। समान अवस्था वालों से मिले तथा छोटी अवस्था वालों ने उनके चरण छूकर प्रणाम किया। उस क्षण कृपाचार्य धृतराष्ट्र, गाँधारी, कुन्ती, द्रोपदी, धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन नकुल, सहदेव, उत्तरा, युयुत्स, गुरु धौम्य तथा वेदव्यासजी तथा माता सत्यवती आदि सब भगवान् के प्रेम में मग्न होकर कुछ काल के लिए मोह युक्त होकर प्रेमाश्रु बहाने लगे। सभी नर-नारियाँ भगवान् के वियोग से बेचैन हो उठे। किन्तु अपशकुन के भय से नेत्रों के अश्रु जहाँ के तहाँ ही थाम कर आन्तरिक दुःख अनुभव करने लगे। वे पाण्डव जो नित्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ खाते पीते सोते जागते उठते बैठते स्पर्श करते तथा वार्तालाप करते थे उनके हृदय की दशा का तो कहना ही क्या है। वे बिरहाकुल होकर उनके जाने की तैयारी करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की विदाई के समय अनेक प्रकार के मृदङ्ग, ढोलक, नगाड़े, घण्टा शंख, झालर बजने लगे। उनके प्रिय सखा अर्जुन ने मोतियों की झालरों से युक्त श्वेत छत्र भगवान् के ऊपर लगाया। उद्धव तथा सात्यकि उत्तम चँवर ढुलाने लगे। नगर की नारियाँ अपनी-अपनी अट्टालिकाओं से झाँक झाँक कर भगवान् के दर्शन करने लगीं। आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। ब्राह्मण उच्च स्वर से भगवान् को आशीर्वाद देने लगे। यद्यपि उन ब्राह्मणों के आशीर्वाद भगवान् के लिए कोई मूल्य नहीं रखते थे किन्तु फिर भी लौकिक व्यवहार से मधुर और समयोचित थे। नगर की रमणियाँ भगवान में रम गई थीं वे परस्पर इस प्रकार की बातें करने लगीं—हे सखियो! ये साँवले-सलौने पीताम्बर धारी जिनकी अवस्था सदा किशोर ही रहती है सनातन ब्रह्म हैं। जिन्होंने सुन्दरता में करोड़ों कामदेवों को भी जीत लिया है जो कुन्तीनन्दन अर्जुन के प्रिय सखा हैं, जिनका तेज करोड़ों सूर्यों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के समान है ये देवकीनन्दन परमब्रह्म परमात्मा हैं, ये ही सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति तथा लय करते हैं। सृष्टि के आदि में भी ये ही रहते हैं और अन्त में भी ये ही सम्पूर्ण प्राणियों को अपने में लीन कर के योग निद्रा में सो जाते हैं। जब पुनः सृष्टि रचने की इच्छा करते हैं तब महत्तत्वादि समस्त शक्तियों को फिर उन के नाम गुण के अनुरूप उत्पन्न कर के उन्हें सृष्टि रचने के हेतु प्रेरित करते हैं। इन्होंने ही वेदों की रचना की है। बड़े बड़े योगी, ब्रह्मवेत्ता, तपस्वी, ऋषि, मुनि आदि को भी जिन के दर्शन दुर्लभ हैं उन भगवान् के दर्शन हमें आज अनायास ही प्राप्त हो रहे हैं। जिनकी लीलाओं तथा चरित्रों का वर्णन वेदों तथा पुराणों में है वे ही परमब्रह्म आज हमें दर्शन दे रहे हैं। वे ब्रज की गोपियाँ धन्य हैं जिन्होंने इनके साथ रास विलास तथा चरण स्पर्श का आनन्द प्राप्त किया है। वे पवित्र नारियाँ धन्य हैं जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है। जो निरन्तर इनके साथ रमण करती हैं, उन्होंने पूर्व जन्मों में अवश्य कठोर तप किया होगा उसी का फल इस जन्म में प्राप्त कर रही हैं। ब्रजबालायें इन के अधरामृत के पान करने के स्मरण मात्र से ही मूर्च्छित हो जाया करती थीं। तो जो पत्नियाँ नित्य इन के अधरामृत का पान करती हैं उन से बढ़ कर इस त्रिलोकी में कौन भाग्यशालिनी होगी। जिन्होंने अपने बाहु बल से अनेक राजाओं को हरा कर जिस रुक्मिणी जी का पाणिग्रहण किया है। वे साक्षात् कमला हैं, जो सदा इन्हीं के पास रह कर उनकी चरण सेवा में रहती हैं। वे पटरानियाँ धन्य हैं जिनके बस में ये आदि रूप भगवान् रहते हैं जिनके बस में यह सम्पूर्ण विश्व है। वे सोलह सहस्र एक सौ पत्नियाँ धन्य हैं जो इन भगवान को अपने हृदय कमल में बन्द कर के नित्य इनके चरणों की सेवा करती हैं तथा आनन्द भोगती हैं। वास्तव में वे स्त्रियाँ पवित्र हैं और उनका जीवन सफल है जिनके स्वामी ये जगत के स्वामी हैं। जो अलभ्य से अलभ्य वस्तु भेंट करके उनके चित्त को मोहित करते रहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जो घटघटवासी तथा सब के अन्तर्यामी हैं उन स्त्रियों के मन की भावनाओं तथा भक्ति को जानकर उन्होंने मधुर मुस्कान के साथ प्रेमपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा और उनका अभिनन्दन किया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funded by MoE-IKS

इस प्रकार सम्पूर्ण नगरवासियों को आनन्दित करते हुए विदा हो गए। धर्मराज युधिष्ठिर ने प्रेमावेश में यह शंका कर के कि कहीं कोई शत्रु मार्ग में आक्रमण न कर दे रथ हाथी घोड़े तथा पैदलों की एक विशाल सेना अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी के साथ कर दी। पाण्डव लोग पर्याप्त दूर तक भगवान श्रीकृष्णकन्द्र जी को पहुँचाने के लिये गये। जब नगर से अधिक दूर निकल आये तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने पाण्डवों को कण्ठ से लगा कर नगर को लौटा दिया केवल उद्धव तथा सात्यकि ही उसके साथ द्वारिका के लिए गए। हे शौनकजी! भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी विशाल सेना के साथ कुरुजाङ्गल पाञ्चाल शूरसेन यमुना के निकटवर्ती प्रदेशों ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र मत्स्य सारस्वत मरु प्रदेश आदि को लाँघते हुए सौवीर और आभीर देशों के पश्चिमी भाग आनर्त देश में पहुँचे। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी के रथके घोड़े कुछ थक गए थे। विश्राम के लिए उन्हें वहाँ खोल दिया। भगवान श्रीकृष्ण जिन प्रान्तों में हो कर गुजरते थे वहाँ के राजा बड़े आदर के साथ अनेक२प्रकार के उपहार लेलेकर उनका सत्कार करते थे। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र बड़े आनन्द के साथ अपनी यात्रा करने लगे।

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

मगन भये नर नारि सब, सुनि आगम यदुराय ॥
ले लेकर उपहार बहु, धाये जन हरषाय।

सूतजी बोले—हे शौनकजी! भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी का आनर्त देश अति सम्पन्न तथा वैभवयुक्त था। उसी के निकट अमरावती के समान उनकी द्वारिकापुरी थी। अपने देश की सीमा में पहुँचते ही उन्होंने अपना पाँचजन्य शंख बजाया जिसकी ध्वनि से सम्पूर्ण प्रजा की विरह वेदना नष्ट हो गई। उन्होंने समझ लिया कि हमारे प्राणप्रिय भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आ गये हैं। श्वेत शङ्ख भगवान श्रीकृष्ण के रक्त वर्ण ओष्ठों तथा करों पर ऐसा शोभायमान था, जैसे लाल कमल पर राजहंस शोभा पाता है। भगवान के शङ्ख की ध्वनि संपूर्ण भयों को भी भयभीत कर के भक्तों के हृदय को हर्ष प्रदान करने वाली है। उस ध्वनि को सुन कर सम्पूर्ण प्रजा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भगवान श्री कृष्ण के दर्शनों के लिये अपने २ गृहों से निकल पड़ी। जो जिस प्रकार था वह उसी प्रकार ऐसे दौड़कर आये जैसे गाय के रंभाने की ध्वनि सुनकर उसका बछड़ा दौड़कर जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करके सबके मुखों पर प्रसन्नता छागई और वे भगवान की इस प्रकार स्तुति करने लगे–हे भगवान! आपके इन चरणों की स्तुति ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्रादि सभी देवता करते हैं। ये ही चरण कमल हमारा आश्रय हैं। इन चरणों की कृपा से कराल काल भी हमारी ओर दृष्टि नहीं कर सकता, आप ही विश्व का कल्याण करते हैं। आप ही हमारे गुरु, माता, पिता, और मित्र हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं। आपके दर्शन बड़े २ योगीजन तपस्वी तथा देवताओं को भी प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु हम अति भाग्य-शाली हैं जो निरन्तर आपके मुखचन्द्र का दर्शन करते रहते हैं। आपकी स्नेहमयी चितवन तथा प्रेम दृष्टि का आनन्द प्राप्त करते रहते हैं। जब आप हमको त्याग मथुरा तथा हस्तिनापुर चले जाते हैं, तब हम आपके बिना इसी प्रकार हो जाते हैं, जैसे बिना प्राण के यह शरीर हो जाता है। अपने प्रजाजनों के ऐसे शब्द सुनकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने उन पर अपनी कृपा दृष्टि डाली और द्वारिकापुरी में प्रवेश किया। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की वह द्वारिकापुरी अमरावती के समान मधु, भोज, दाशार्ह अर्हकुकुर, अन्धक तथा वृष्णि बंशी यादवों से इसी प्रकार सुरक्षित थी, जिस प्रकार नागों से उनकी पातालपुरी सुरक्षित रहती है। द्वारिकापुरी समस्त ऐश्वर्य में सम्पन्न थी। स्थान २ पर जलाशय, क्रीड़ा स्थल, पुष्पवाटिकायें तथा अनेक प्रकार के फल वाले वृक्ष शोभायमान थे। उन जलाशयोंमें अनेक प्रकार के कमल तथा राजहंस, निवास करते थे। नगर वासियों ने भगवान के स्वागतार्थ नगर के फाटकों, गृहद्वारों तथा सड़कों पर बन्दनवार, चित्र विचित्र ध्वजाऐं, केलों के खम्भ तथा स्वर्णकलश सजाए। सर्वत्र सुगन्धित जल से छिड़काव किये गये। भगवान के स्वागतार्थ सब स्थानों पर अक्षत, कुमकुम, फल, आदि बखेरे गए। उनके उपहार के लिये दही, अक्षत, फल, धूप, दीप आदि सामिग्री ले लेकर नगरवासी प्रेम विभोर होकर अपने अपने द्वारों पर खड़े थे।

भगवान के शुभागमन का समाचार जब बसुदेव, अक्रूर उग्रसेन, महा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बली बलराम, प्रद्युम्न, साम्ब आदि को मालूम हुआ तब वे मन में अति आनन्दित हुए और अपने सभी आवश्यक कार्य त्याग कर प्रेमावेश में उछलते हुए एक उत्तम गजराज को आगे करके मांगलिक सामिग्रियों के साथ ब्राह्मणों को लेकर शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग, आदि बाजे बजाते हुए अपने २ रथों पर चढ़कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शनार्थ उनकी अगवानी के लियेचले। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिये बहुत सी रमणियाँ जिनके मुखचन्द्रों पर कांतिमान कुण्डल झिलमिला रहे थे पालकियों में बैठकर आगवानी के लिये चलीं। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बंधुबाँधवों तथा नगर निवासियों एवं दास दासियों सबका यथायोग्य सम्मान किया किसीको प्रणाम किया, किसी का मधुर वाणी से आदर किया, किसी को कंठसे लगाया, किसी का मुस्करा कर सत्कारकिया। गुरुजनों से लेकर चांडाल पर्यन्त सबका भलीभाँति सत्कार किया। सबको उनकी इच्छानुसार बरदान दिया। ब्राह्मणों तथा वृद्धजनों को आगे करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इस प्रकार गाजे बाजे से नगर में प्रवेश किया। हे शौनकजी ! जिस समय श्रीकृष्णचंद्र अपने महलों को राजमार्ग से होकर जारहे थे। उस समय सम्पूर्ण कामिनियाँ अपनी २ अट्टालिकाओं पर उनके दर्शन का आनन्द प्राप्त करने के लिए चढ़ गईं। भगवान श्रीकृष्णचंद्र सच्चे सौन्दर्य की मूर्ति हैं, उनके मुख तथा नेत्रों से सौन्दर्य सुधा बर्षता है उनकी विशाल भुजायें सम्पूर्ण विश्व को शक्ति देती हैं। उनके सुन्दर चरण कमल भक्तजनों के आश्रय हैं। संपूर्ण द्वारिका बासियों के नेत्र एक क्षण के लिए भगवान श्रीकृष्णचंद्र के मुखचन्द्र पर टिक गए उस राजमार्ग पर उनकी झाँकी अद्भुत थी। उन पर श्वेतछत्र लगा हुआ था। तथा श्वेतवर्ण के ही चँवर ढुलाये जा रहे थे। श्याम शरीर पर सुन्दर पीताम्बर कण्ठ में कौस्तुभ मणि तथा वक्षस्थल पर बनमाला तथा श्रीवत्स का चिन्ह सुशोभित था। उन पर चारों ओर से नर नारियाँ पुष्प बृष्टि कर रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण सर्व प्रथम अपनी माताओं के महल में गए। वहाँ जाकर बड़े बिनम्र भाव से आदर पूर्वक देवकी आदि सभी माताओं के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। माताओं ने वात्सल्य स्नेह में ओत प्रोत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होकर उन्हें कण्ठ से लगाया और अपनी गोद में बिठाया। माताओं का हृदय हर्ष से खिल उठा। उनके स्तनों से दुग्ध बहने लगा। आनन्द विह्वल होकर उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। तत्पश्चात् माताओं से आज्ञा लेकर वे अपने भवन में पधारे। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का वह भव्य भवन सम्पूर्ण विश्व के ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा सुसज्जित था। उस भवन में सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों के पृथक २ भव्य भवन थे। अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्ण चन्द्रजी के बिरह में वे सब बहुत से दिनों से व्याकुल थीं। जब उन्होंने उन्हें महलों में आते हुए देखा तब अति आनन्दित होकर उनके चरणों में झपट कर जा गिरीं। अपनी पत्नियों को हृदय से लगा कर सान्त्वना दी। उन पत्नियों के नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे, और उन्होंने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को आसन प्रदान कर उनकी पूजा की।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने सम्पूर्ण राजा लोगों को परस्पर भिड़ाकर पृथ्वी के भार को बिना शस्त्रग्रहण किये ही हल्का-कर दिया। रति के समान सुन्दर भार्यायें निरन्तर उनके साथ रहकर भी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को भोगों में आसक्त न कर सकीं। क्योंकि योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र कर्म करते हुये भी हृदय से उनमें आसक्त नहीं थे। वे प्रकृति में स्थित रहते हुये भी प्रकृति के गुणों में लिपायमान नहीं थे। उनकी योगमाया से मोहित होकर वे स्त्रियाँ ही उन पर मुग्ध रहती थीं। वे भगवान श्रीकृष्ण को स्ववश समझती थीं। अपनी अहङ्कार बुद्धि के कारण उन्हें अपने पति भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के सत्व स्वरूप का ज्ञान नहीं था।

* बारहवाँ अध्याय *

जन्म परीक्षित की कथा, सूत कही समुझाय।
शौनकजी सुनने लगे, मन में अति हरषाय॥

शौनकजी बोले—हे सूतजी! अब आप कृपा करके अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के जन्म की कथा सुनाइये। वह बालक अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से उत्तरा के गर्भ में ही नष्ट होगया था। फिर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उसकी रक्षा गर्भ में किस प्रकार की और उसका जन्म किस प्रकार हुआ।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

फिर उन्होंने ब्यासनन्दन श्री शुकदेवजी से किस प्रकार ज्ञानोपदेश प्राप्त किया। यह सब कथा विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए। सूत जी बोले–हे शौनकजी! महाराज युधिष्ठिर बड़े प्रजा पालक, धर्मज्ञ और इंद्र के समान तेजस्वी थे। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी की कृपा से उन के कोष में अनन्त धनराशि थी। उन्होंने अनेक यज्ञ किए। उनके बन्धु बांधव तथा उनकी रानियाँ उनकी आज्ञा का पालन करते थे। वे सम्पूर्ण जम्बू द्वीप के सम्राट थे। उनको उत्तमोत्तम भोग की सामिग्रियाँ प्राप्त थीं जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। किंतु उन्हें इन भोगों में सुख नहीं था। उन्हें तो भगवत् भजन में ही परमानन्द मिलता था। हे शौनकजी! उत्तरा के गर्भ में जब वह बालक ब्रह्मास्त्र के तेज से दग्ध होने लगा तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने सूक्ष्म रूप से उत्तरा के गर्भ में प्रवेश किया। उनका वह ज्योतिर्मय सूक्ष्म शरीर अँगूठे के आकार का था। अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर बिजली के समान तेजोमय, पीताम्बर धारण किए हुये स्वर्ण का मुकुट सिर पर प्रकाशमान हो रहा था। वे चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये थे। थे कानों में कुण्डल तथा आँखें रक्तवर्ण थीं। हाथ में अग्निके समान जलती हुई गदा लेकर उस गर्भस्थित बालक के चारों ओर घुमाते थे। जिस प्रकार सूर्यदेव अन्धकार को हटा देते हैं उसी प्रकार वह गदा अश्वत्थामा के छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रकी अग्निको शाँति करती थी। गर्भस्थित वह बालक उस ज्योतिर्मय शक्ति को अपने चारों ओर घूमते हुये देखता था। वह सोचने लगता था कि वह कौन है, कहाँ से आया है? तत्पश्चात् पाण्डव लोग एक महान यज्ञ की दीक्षा के निमित्त राजा मरुत्त का धन लेने के लिये उत्तर दिशा में गये हुये थे। उसी बीच उनकी अनुपस्थित में तथा भगवान श्रीकृष्णचंद्र की उपस्थित में दस मास उपराँत उस बालक का जन्म हुआ। किंतु बालक गर्भ से बाहर निकलते ही मृतवत् हो गया बालक को मरा हुआ देख कर रनिवास में रुदन आरम्भ हो गया। शोक का समुद्र उमड़ पड़ा। कुरुवंश को पिण्डदान करने वाला केवल एक मात्र यही बालक उत्पन्न हुआ था सो वह भी न रहा। कुन्ती, द्रोपदी, सुभद्रा आदि सभी महान शोक सागर में डूब कर आँसू बहाने लगीं। उत्तरा के गर्भ से मृत बालक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

का समाचार सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुरन्त सात्यकि को साथ लेकर अन्तःपुर में पहुँचे। वहाँ रनिवास में करुणाक्रन्दन को सुन कर उनका हृदय भर आया। इतना करुणाक्रन्दन युद्ध में मरे हुए पुत्रों के लिये भी सुभद्रा और द्रोपदी ने नहीं किया था, जितना कि उस नवजात शिशुकी मृत्यु पर कर रही थीं। क्योंकि वही बालक एकमात्र उनके वंश को चलाने वाला था। भगवान् श्रीकृष्ण को देखते ही वे उनके चरणों पर गिर पड़ीं और दहाड़ मार मार कर बिलाप करते हुए बोलीं—हे जनार्दन ! तुमने यह प्रतिज्ञा की थी कि यह बालक इस ब्रह्मास्त्रसे मृत्युको प्राप्त न होगा तथा साठ वर्ष जीवित रह कर धर्म का राज्य करेगा, किन्तु अब देखते हैं कि वह बालक मृतावस्था में पड़ा हुआ है। यह तुम्हारे पौत्र अभिमन्यु का बालक है। यह अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से प्राणहीन पृथ्वी पर पड़ा है। हे अरिसूदन ! इस बालक को अपनी अमृत भरी दृष्टि से जीवन दान दो। यदि ऐसा न करोगे तो सभी पाण्डव तथा हम सब भी प्राणों को त्याग देंगी। सुभद्रा बोली—हे भाई ! मेरी पुत्र वधू उत्तरा ने इस बालक के हेतु ही अपने प्राण रक्खे थे। किन्तु फिर भी यह बालक जीवित न रहा। तुम सर्वशक्तिमान हो। इसकी रक्षा करो। समस्त रानियों का करुणाक्रन्दन सुनकर तथा उत्तरा को पुत्र शोक में उन्मादिनी देखकर भगवान श्रीकृष्णने कहा—अच्छा चिन्ता न करो। मैं अभी इसे जीवित करता हूँ। वे तत्काल प्रसूतिका गृह में गये। वहाँ जाकर उत्तरा को विलाप करते हुए देखा तथा प्रसूतिकागृह का सब यथोचित प्रबन्ध भी देखा। चारों तरफ जल के घट रक्खे हैं अग्नि भी जल रही है। घी की आहुति दी जा रही है। सफेद पुष्प तथा सरसों बिखर रही है। चमकते हुए अस्त्र भी रक्खे हुये हैं। इस विधि से यक्ष, राक्षस तथा अन्य व्याधियों से सूतिकागृह पूर्ण सुरक्षित है। उसी समय द्रोपदी आदि अन्य रानियाँ भी वहाँ दौड़ कर आईं और बोलीं हे कल्याणि ! तुम्हारे सामने जगत के जीवन दाता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे श्वसुर खड़े हुए हैं। उत्तरा पुत्र शोक के कारण मूर्छित हो गई थी। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने जो सब के जीवनदाता है मधुर वाणी में कहा बेटी ! शोक न करो। तुम्हारा यह पुत्र अभी जीवित होता है। मैंने कभी झूँठ नहीं बोला है। सब के

CC-0. Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

सामने जो मैंने प्रतिज्ञा की है वह अवश्य पूर्ण होगी। मैंने तेरे इस बालक की रक्षा गदा लेकर गर्भ में की है, यदि ऐसा न करता तो यह बालक उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो जाता जब यह ब्रह्मास्त्र छोड़ा गया था। जब मैंने इस बालक की रक्षा गर्भ में की है तो भला अब कैसे मरने दूँगा। इतना कह कर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उस बालक पर अपनी अमृतमयी दृष्टि डाली और बोले यदि मैंने कभी झूँठ नहीं बोला है, सदा ब्रह्मचर्य व्रत का नियमसे पालन किया है, युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई है, मैंने कभी भूल से भी अधर्म नहीं किया है तो अभिमन्यु का यह मृत बालक जीवित हो उठे। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके इतना कहते ही बालक हाथ पैर हिलाते हुये चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। सूतजी बोले-हे शौनकजी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने सत्य और धर्म के बल से ब्रह्मास्त्र को पीछे लौटाकर ब्रह्मलोक को भेज दिया। भगवान के इस अद्भुत कर्म को देखकर अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ आश्चर्यमें रह गईं और उनकी बंदना करने लगीं। भगवानश्रीकृष्ण चन्द्रने उस बालक का नाम परीक्षित रक्खा। क्योंकि वह कुरुकुल के परिक्षीण (नाश) होने पर उत्पन्न हुआ। इसी लिए उसका नाम परीक्षित पड़ा। अब धर्मराज युधिष्ठिर लौट कर आये और उन्होंने पुत्र जन्म का सम्वाद सुना, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने असंख्यों गौ, पृथ्वी, गाँव हाथी घोड़े, अन्न आदि ब्राह्मणों को दान दिये। उत्तम ज्योतिषियों को बुलवाकर धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा हे ज्योतिषियो ! यह बालक गुण कीर्ति इत्यादि में कैसा रहेगा।

ब्राह्मणों ने कहा—हे धर्मराज ! यह बालक अति प्रतापी, यशस्वी तथा इक्ष्वाकु के समान प्रजा पालक होगा। राजा शिव के समान दानी, अपने दादा अर्जुन के समान धनुर्धारी और आपके समान धर्मात्मा होगा। यह बहुत से अश्वमेध यज्ञों की दीक्षा लेगा। अधर्मियों को दण्ड देगा। कलियुग का दमन करेगा तथा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का भक्त होगा। एक ऋषि के शाप से तक्षक द्वारा मृत्यु से पहिले संसार के माया मोह को त्याग कर गङ्गा के तट पर श्रीशुकदेवजी से आत्मज्ञान प्राप्त करेगा तथा वहीं पर शरीर

Digitized by Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

त्याग कर भगवान् के धाम को प्राप्त करेगा। ज्योतिषी राजा युधिष्ठिर के बालक के जन्म का फल बताकर अपने अपने स्थानों को चले गये। वह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिन प्रति दिन बढ़ने लगा उन्हीं दिनों धर्मराज युधिष्ठिर ने राजा मरुत का गढ़ा हुआ धन लाकर अश्वमेध यज्ञ किया। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की देख रेख में पाँडवों का वह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया। कुछ काल उपरान्त भगवान श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिर और द्रौपदी से अनुमति लेकर अर्जुनके साथ द्वारिकापुरी चले गये।

——:❀:——

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

दोहा—दीन बिदुर उपदेश तब, अन्धराज को आय।
गाँधारी धृतराष्ट्र को, संग बन गये लिवाय ॥

सूतजी बोले—हे शौनकजी! सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा करने के पश्चात् बिदुरजी हस्तिनापुर आये। उन्होंने मैत्रेयजी से आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया था। हस्तिनापुर निवासियों को जब बिदुरजी के शुभागमन का पता हुआ तब धर्मराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव, धृतराष्ट्र युयुत्सु, संजय कृपाचार्य, कुन्ती, गाँधारी, द्रौपदी सुभद्रा, उत्तरा, कृपी तथा नगर के बहुत से स्त्री, पुरुष उनके दर्शनों के लिये आये। बिदुरजी सभी के हितैषी तथा शुभचिन्तक और प्रिय थे सब लोगों ने यथायोग्य उन्हें प्रणाम किया। जब वे नित्यकर्म भोजन आदि से निबृत होगये तब युधिष्ठिर ने विनम्र भाव से इस प्रकार कहा—हे चाचाजी! आपने हम सबको पक्षी की भाँति पाला पोषा है। समय समय पर हमारी प्राणरक्षा करके आपत्तियों से बचाया है। अपने उत्तम उपदेशों से हम लोगों को सदैव धैर्य देकर सन्मार्ग पर चलाया है फिर आपने हम लोगों से एकदमस्नेह क्यों तोड़ दिया है। आपने किन२प्रधान तीर्थों का सेवन किया है। उस तीर्थयात्रा में आपने किस प्रकार जीवन निर्वाह किया है। हे चाचाजी आप द्वारिका अवश्य गये होंगे। वहाँ पर हमारे आराध्यदेव भगवान श्रीकृष्ण अपने बन्धुबांधवोंसहित कुशल से तो हैं,यदि आप वहाँ गये न होंगे तो उनके विषय में सुना अवश्य होगा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अजात शत्रु युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन कर विदुरजी ने उन्हें सब तीर्थों का यथा विधि वर्णन सुनाया, किन्तु यदुवंश के विनाश उन्हें नहीं सुनाया। वे जानते थे कि यदुवंश के विनाश का वर्णन सुनकर युधिष्ठिर को महान् क्लेश होगा। वे पाण्डवों को दुखी नहीं देख सकते थे। इसलिए यदुवंश के नाश का वर्णन सुनाना उचित नहीं समझा। कुछ दिनों तक विदुरजी प्रसन्नता से सुख पूर्वक हस्तिनापुर में रहे।

विदुरजी धर्मराज के अवतार थे। मांडव्य ऋषिने धर्मराज को श्राप दे दिया था इसी कारण वे सौ बर्ष तक शूद्र बन कर रहे। एक समय एक राजा के दूतों ने माण्डव्य ऋषि के आश्रम पर कुछ चोरों को पकड़ा था। उन्हीं के साथ मांडव्य ऋषि को भी चोर समझ कर पकड़ लिया। राजा ने चोरों को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी। उन चोरों के साथ मांडव्य ऋषि को भी शूली पर चढ़ा दिया, किन्तु जब राजा को मांडव्य ऋषि का पता लगा तो उस राजा ने इन्हें शूली से उतरवा कर अपने अपराध की क्षमा माँगी। जब मांडव्य ऋषि यमराज के यहाँ पहुँचे तो उन्होंने यमराज से पूछा कि तुमने मुझे किस पाप में शूली दिलाई। यमराज ने कहा कि बचपन में आपने एक टिड्डे को कुश की नोंक से छेदा था। इसी पाप में आप को यह दंड मिला। ऋषि बोले—यह पाप मैंने अज्ञानावस्था में किया था। इस का तुमने ऐसा कठोर दंड दिया। अतः तुम इसी कारण सौ वर्ष तक शूद्र योनि में जन्म लेकर मृत्युलोक में रहो।

मुनि के शाप के कारण ही धर्मराज ने विदुरजी का अवतार लिया था। विदुरजी काल की गति को भली भाँति जानते थे। इन्होंने अपने बड़े भ्राता धृतराष्ट्र को समझाया कि महाराज! अब भविष्य में बड़ा बुरा समय आने वाला है। आप यहाँ से तुरन्त बन की ओर निकल चलिये। यह कराल कलि शीघ्र ही आने वाला है जिसे कोई भी प्राणी नहीं टाल सकता है। आपके पुत्र पौत्रादि सभी नष्ट हो चुके। उम्र भी आपकी ढल चुकी बृद्धावस्था के कारण इन्द्रियाँ भी शिथिल हो गईं। फिर आप किस कारण भीमसेन के कुवचन सुनते रहते हो। आपने इन पाण्डवों को महान् क्लेश दिये, उन्हें मरवाने की चेष्टा की उन की पत्नी द्रोपदी को भरी सभा में अपमानित किया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उनका राज छीन लिया फिर भी आप उन्हीं का अन्न खाकर अपने शरीर को पाल रहे हो। अब आपका काल शीघ्र ही आने वाला है। अतः आप मेरी बात मान कर सन्यास धारण करके शीघ्र ही चुपचाप यहाँ से उत्तराखंड की ओर चले जाइये। विदुरजी के ये धार्मिक बचन धृतराष्ट्र को अति प्रिय और मधुर लगे। उन्हें प्रज्ञाचक्षु प्राप्त हो गये। वे शीघ्र ही उसी रात को छिप कर गान्धारी को साथ लेकर विदुरजी के साथ बन को चले गये।

प्रातःकाल सन्ध्यावंदन से निवृत होकर ब्राह्मणों को तिल, गौ, भूमि और सुवर्ण दान करके जब अजातशत्रु युधिष्ठिर अपने चाचा धृतराष्ट्र विदुर और चाची गांधारी के दर्शन करने आये। तब उन्होंने वहाँ उन् तीनों को न पाकर केवल संजय को ही शोकग्रस्त बैठा पाया। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर संजय से पूछा—हे संजय ! मेरे पिता धृतराष्ट्र माता गाँधारी और सब पर हित करने वाले विदुरजी कहाँ गए ? कहीं भीमसेन ने तो कोई कटु बचन नहीं कह दिया ? वे पुत्र शोक से दुखी हो कर कहीं गङ्गा में तो नहीं डूब गये ? मुझ से कोई अपराध तो नहीं बन पड़ा ? हाय वे तीनों कहाँ चले गये ?

सूत जी बोले—हे शौनकजी ! संजय शोक के कारण कातर हो रहा था। उसका कण्ठ रुका हुआ था। वह अपने नेत्रों के आँसू पोंछ कर बोला—'धर्मराज ! मुझे तुम्हारे ताऊ, चाचा तथा माता गान्धारी का कुछ पता नहीं है। उन्होंने मुझे अपना कोई भी संकल्प नहीं बताया है। मैं नहीं जानता कि वे कहाँ चले गये। जब संजय धर्मराज से इस प्रकार कह ही रहे थे कि उसी क्षण वहाँ पर तुम्बुरु के साथ नारदजी पधारे। धर्मराज युधिष्ठिर ने उन देवर्षि को प्रणाम किया और आदर के साथ आसन प्रदान किया। तब युधिष्ठिर बोले–हे देवर्षि ! मुझे बताइये कि मेरे ताऊ, चाचा और तपस्विनी गांधारी पुत्र शोक से व्याकुल होकर किधर चले गये। तब नारदजी बोले–हे धर्मराज ! तुम किसी प्रकार का शोक मत करो। यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा के वश में है और वही सब की रक्षा करता है। तुम यह समझते हो कि मैं ही उन की रक्षा करता हूँ यह भूल है। तुम संसार को नाशवान मानो अथवा न मानो, अथवा नित्य अनित्य दोनों

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को मानों, किन्तु फिर भी तुम्हें जाने वालों के लिए शोक न करना चाहिये। शोक का कारण केवल स्नेह ही है इस स्नेह को त्याग दो। वह पञ्चभौतिक शरीर नाशवान् है यह स्वयं काल के वश में है। इस जगत में एक जीव दूसरे जीव का आधार है पशु तृणादि को खा कर जीवित रहते हैं, और बड़े जीव छोटे जीवों को खा कर ही जीवित रहते हैं। इस प्रकार ये सम्पूर्ण प्राणी एक दूसरे का आहार है। इन सब को जीव दान देने वाले भगवान् इस समय काल रूप हो कर उस के नाश के लिए उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण काम समाप्त कर दिया है। जो कुछ शेष है वह भी अब समाप्त किये देते हैं। जब तक ये यहाँ मौजूद हैं, तबतक तुमलोगभी यहाँ रहो। फिर तुम लोग भी यहाँ से चले जाओ। हे धर्मराज! तुम्हारे चाचा धृतराष्ट्र माता गांधारी विदुर के साथ उत्तराखण्ड में सप्तश्रोत नामक स्थान पर आश्रम बना कर रहते हैं। वे वहाँ तीनों काल स्नान कर के अग्निहोत्र करते हैं उनके सम्पूर्ण पाप धुल चुकेहैं। अब उनकी सम्पूर्ण कामनायेंभी शाँत हो चुकी हैं। सदाँ भगवानके ध्यान में रहने के कारण तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण तथा अहंकार बुद्धि नष्ट हो चुकी है। उन्होंने अपने को भगवान में लीन कर दिया है। सम्पूर्ण कर्मों से सन्यास लेकर अब वे ठूँठ की भाँति स्थिर हो गये हैं।

मैं तुम्हें बताता हूँ कि वे आज से पाँचवे दिन अपने शरीर को त्याग देंगे। बन में अग्नि लगजाने के कारण वे उसी में भस्म हो जावेंगे। उन की साध्वी पत्नी गान्धारी भी उसी अग्नि में प्रवेश कर जावेगी। फिर विदुर जी वहाँ से तीर्थ यात्रा के लिए चले जायेंगे। अतः तुम उन को लौटाने का विचार त्याग दो। ऐसा कह कर देवर्षि नारद वीणा के साथ आकाश मार्ग से स्वर्गलोक को चले गए। धर्मराज ने नारद जी के उपदेश को समझ कर शोक का परित्याग कर दिया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

—:❀:—

दो०—बुरे शकुन उत्पात बहु, जहँ तहँ परे लखाय।
अर्जुन को चिंता भई, गये धर्म अकुलाय ॥

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से मिलने के लिए तथा भविष्य का कार्य-क्रम निश्चित् करने के लिये अर्जुन द्वारिकापुरी गए थे। जब उन्हें हस्तिनापुर से गए कई महीने ब्यतीत होगए, तब एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर को विशेष चिन्ता हुई। वे भीमसेन से बोले—हे भीमसेन ! अर्जुन को द्वारिका इसलिए भेजा था कि वह हमारे प्राण प्रिय बन्धु बांधव यादवों तथा उनके स्वामी और हमारे आधार श्रीकृष्णचन्द्रतथा बलरामजी का कुशल समाचार शीघ्र देवे और उनका भविष्य में क्या कार्य करने का विचार है, उसे पूछ कर आवें, किन्तु भाई अर्जुन अभी तक नहीं लौटे। भीमसेन तुम काल की गति जानने वाले हो, देखो सम्पूर्ण भूतों में उत्पात होने लगे हैं। नित्य बड़े बड़े अपशकुन होते हैं, आकाश में उल्कापात, पृथ्वी में भूकम्प आने लगे हैं मेरे बाँए अङ्ग प्रत्यङ्ग फड़क कर किसी दुर्घटना की सूचना देते हैं। वह सामने स्यारिन सूर्योदय के सम्मुख मुँह करके चिल्ला रही है, और उसके मुँह से अग्नि निकल रही है। कुत्ता बिलाव दिन में बारम्बार रोते हैं। गधे,उल्लू,कौवे और कबूतर, रातको कठोर शब्द करते हैं। गाय बाँए होकर जातीहैं,सूर्य, चंद्रमाके इर्द गिर्द बारम्बार मंडल बैठते हैं। बादल भयङ्कर शब्द करके गर्जते हैं, पृथ्वी पर बारम्बार बिजली गिरती है। बड़े २ बवण्डर उठ कर सर्वत्र अन्धकार भयङ्कर आँधी उत्पन्न करते हैं। सूर्य का प्रकाश मध्यमसा होगया है। आकाश के सम्पूर्ण नक्षत्र तारे एक दूसरे से टकराकर गिर रहेहैं। घृतमें अग्नि प्रज्वलित करनेकी शक्ति नहीं रही है। गौएँ निरन्तर आँसू बहाती रहती हैं। बछड़ों को दूध नहीं पिलातीं। बैल भी उदास प्रतीत हो रहे हैं। देव मूर्तियों से पसीना निकल रहा है। वे रोतीसी प्रतीत होरहीहैं,उनमें कंपन हो रहाहै। सर्वत्र श्रीहीनता प्रतीत हो रही है। इन सब बातों को देखकर मेरा हृदय धड़क रहा है। न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जाने ये अपशकुन किस विपत्ति की सूचना दे रहे हैं। न जाने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र इस लोक से चले गये अथवा अन्य कोई दुःखदाई घटना होने वाली है ?

धर्मराज युधिष्ठिर जब इस प्रकार चिन्ताकुल होकर भीमसेन से बातें कर रहे थे, उसी क्षण आतुर अवस्था में अर्जुन द्वारिका से आगए। उनके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे, गर्दन झुकी हुई थी। शरीर कान्ति हीन था। वे आते ही धर्मराज युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े। तब युधिष्ठिर ने घबरा कर पूछा—हे अर्जुन ! द्वारिकापुरी में हमारे सब सम्बन्धी बन्धु-बान्धव यादव लोग तो प्रसन्न हैं न। हमारे नाना शूरसेन तथा छोटे मामा बसुदेव तो कुशलसे हैं न। हमारी मामी देवकी अपनी सातों बहिनों सहित तथा पुत्र पौत्रादि सहित तो प्रसन्न हैं न। राजा उग्रसेन और उन के छोटे भाई देवक तो प्रसन्न हैं न। अक्रूर, जयन्त, गद, शत्रुजित कृत-वर्मा आदि यादवों सहित बलरामजी तो प्रसन्न हैं न। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध साम्ब,ऋषभ आदि तो प्रसन्न हैं न ? हमारे स्वामी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र उद्धव आदि अपने सेवकों सहित तो प्रसन्न हैं न ? वे अपनी सुधर्मा सभा में नित्य आते हैं न ? सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बन्ती आदि सोलह सहस्र एकसौ आठ पटरानियाँ तो नित्य उनकी सेवा में लीन रहती हैं न ? हे भाई अर्जुन ! तुम कुशल पूर्वक वहाँ रहे थे? तुम्हारी कान्ति क्षीण क्यों होरही है ? तुम्हारा वहाँ किसी ने अनादर तो नहीं किया तुम से किसी ने अपशब्द तो नहीं कहे, तुमने किसी को कुछ देने की प्रतिज्ञाकी हो और वह पूरी न हुई हो ऐसा तो नहीं हुआ। तुमने अपने शरणागत को शरण देनेमें असमर्थताप्रगट तो नहीं की और उसे शरण नदी हो ऐसा तो नहीं है ? किसी ब्राह्मण बालक गौ, रोगी बृद्ध, असहाय तथा अबला की सहायता न करके उन्हें त्याग तो नहीं दिया है ? तुमने किसी अगम्य स्त्री के साथ गमन तो नहीं किया है ? गुरु पत्नी अथवा अन्य युवती के साथ समागम तो नहीं किया है ? कहीं किसी ने युद्ध में तुम्हें पराजित तो नहीं कर दिया है ? बालक और बृद्धों को त्याग कर तुमने अकेले ही भोजन तो नहीं कर लिया है ? मुझे आशा है कि तुम से ऐसा कोई अनुचित कार्य न हुआ होगा। किंतु हमारे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

परम प्रियमित्र भगवान श्रीकृष्णसे तुम्हें अवश्य बियोग होगयाहै, इसी कारण तुम्हें मानसिक वेदना है, और श्रीहीन हो रहे हो।

——:❀:——

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

दोहा—धर्मराज ने सुन्यौ जब, कृष्ण गए निज धाम।
कियौ हिमालय गमन तब, तज करके सब काम॥

सूतजी बोले—हे शौनकजी! कुन्ती नन्दन अर्जुन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के वियोग के कारण अति व्याकुल थे। उनके शोक का पारावार नहीं था। उधर धर्मराज युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शंकाओं से युक्त प्रश्नों की बौछार आरम्भ करदी। उनको सुनकर अर्जुन का हृदय और भी सन्तप्त हो गया। मुख सूख गया। रङ्ग फीका पड़ गया, नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बहने लगी। कण्ठ रुक गया। वे अवाक् से हो चुप रह गये। उन्हें अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी याद आकर हिलकियाँ बँध गईं। बड़ी कठिनाई से अश्रु पोंछकर रुँधे कण्ठ से धर्मराज युधिष्ठिर से बोले—भ्राता जी हमारे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र ने हमें ठग लिया। वे हमें त्याग कर इस लोक से चले गये। जिनकी कृपा से मेरे परम पराक्रम के सामने देवता भी सिर नहीं उठाते थे उसे श्रीकृष्णचंद्र ने मुझसे ले लिया। प्राण हीन मुर्दे की तरह मेरी गति हो गई है। मैंने द्रौपदी स्वयम्बर में अकेले ही द्रुपद के यहाँ सम्पूर्ण राजाओं के तेज को क्षीण कर दिया था। द्रुपदकी प्रतिज्ञा पूर्ण कर के उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी स्वयंवर जीता था। जिन भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से मैंने इन्द्र को पराजित करके अग्निदेव को खाण्डव बन दहन करने दिया था, उन्हीं की कृपा से मय दानव ने इन्द्रप्रस्थ में यह सभा बनाई थी। उन्हीं भगवान श्रीकृष्णचंद्र की कृपा से आपके छोटे भाई भीमसेन ने सम्पूर्ण राजाओं को हरा कर महा बली जरासंध को मारा था। उन्हीं भगवान श्रीकृष्णचंद्रकी कृपा से सब ने इस महाभारत युद्ध को जीता था। और दुष्ट दुर्योधन से अपना प्रतिशोध लिया था। दुर्वासा के कठिन शाप से उन्हीं भगवान ने हमारी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रचा की थी। उन्हीं भगवान् की कृपा से मैंने शङ्कर जी को प्रसन्न कर के पशुपत नामक अस्त्र प्राप्त किया था, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा से मैं सशरीर स्वर्ग लोक में जा कर देवराज इन्द्र के बराबर आधे आसन पर बैठा था, उन्हीं भगवान् की कृपा से मैंने यह गाण्डीव धनुष धारण करके निबात, कवच दैत्यों का संहार किया था। जिनकी कृपा से आपने अनेकों राजसूय यज्ञ किये हैं, वे ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आज हम को असहाय अवस्था में त्याग कर अपने स्वधाम को चले गये। हे महाराज! दुष्ट कौरवों की अपार सेना जो उमड़े हुए समुद्र के समान अगम्य थी, जिसमें भीष्म, द्रौण आदि बड़े २ मगर मच्छों के समान थे। मैंने उस महान दुस्तर महासागर को उनके चरणों की कृपा से अकेले पार कर लिया था। हे भ्राता जी! आप को स्मरण होगा विराट नगर में जब सब कौरवों ने विराट की गौएँ छीनी थीं तो मैंने अकेले ही भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से भीष्म, द्रौण, कर्ण आदि सभी कौरव महारथियों के वस्त्राभूषणों को छीन लिया था। भ्राता जी! इस महाभारत में द्रौण, भीष्म, कर्ण अश्वत्थामा जयद्रथ, शल्य, वाह्लीक सुशर्मा आदि महान वीरों को उन्हीं की कृपा से मैंने परास्त किया था उन्होंने मेरे आगे आगे चल कर कौरव सेना की आयु क्षीण कर दी थी जयद्रथ-वध प्रतिज्ञा को मैंने उन्हीं की कृपा से पूर्ण किया का। मैं बड़ा मूर्ख था। मैंने उन्हें अपना सारथी बनाया युद्ध क्षेत्र में जब घोड़े थक जाते थे, तब मैं रथ से उतर कर पृथ्वी पर खड़ा हो जाता था, और श्रीकृष्णचन्द्र अपने कर कमलों से घोड़ों को मलते थे। उस समय उनकी कृपा से शत्रुओं की बुद्धि मारी जाती थी और वे मुझ पर प्रहार नहीं करते थे। वे अपनी मधुर वाणी से मुझे अर्जुन, पार्थ, सखा, कुरुनन्दन आदि ऐसे शब्दों से पुकारते थे। उन्होंने मुझे गीता का ज्ञान देकर मेरे अज्ञान को नष्ट कर दिया था। वे नित्य मेरे साथ सोते, बैठते, टहलते, खाते पीते और वार्तालाप करते थे। कभी २ मैं उनसे व्यङ्ग में कह उठता था तो वे उसे भी सहन कर लेते थे। हे राजन्! वे मेरे मित्र थे, प्रिय सखा थे, मेरे प्राण थे। आज मैं उन बिना प्राणों से हीन हो गया हूँ, क्या कहूँ मुझे कहते हुए लज्जा आती है। मैं द्वारिकासे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पत्नियों को हस्तिनापुर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रहा था, किन्तु थोड़े से भीलों ने मुझे एक निर्बल की भाँति परास्त कर दिया। मैं उन अबलाओं की रक्षा न कर सका। मेरी वे ही भुजाएं हैं, वही गाँडीव धनुष, वही रथ, घोड़े तथा वे ही बाण हैं, जिनसे मैंने बड़े बड़े महारथियों के सिर बात की बात में उड़ा दिये थे। जिस अर्जुन ने अपने जीवन में कभी शत्रुओं से मात नहीं खाई थी, वही अर्जुन आज अबला की भाँति भीलों से पराजित होकर आया है। उनकी सम्पूर्ण पत्नियाँ तथा धन आदि को भील लोग लूट ले गए और मैं निहत्थे की भाँति खड़ा देखता रहा। हे भ्राताजी! उन श्रीकृष्णचन्द्र के बिना मेरी संपूर्ण शक्ति क्षीण होगई है। जिस प्रकार राख में डाली हुई आहुति, सूखा में बोया हुआ बीज, और प्राणहीन शरीर व्यर्थ हो जाते हैं। हे राजन्! आपनेजो द्वारिका में यादवों की कुशल पूछी है, वे समस्त यादव ब्राह्मणों के श्राप से दुर्बुद्धि अवस्था को प्राप्त होगए थे और वे अति मदिरा पान करके परस्पर एक दूसरे को मारने लगे तथा मृत्यु को प्राप्त हो गए। उन सब में चार पाँच ही शेष रहे हैं। यह सब उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ही लीला है। उन्होंने ही उन्हें पाल पोष कर महान् शक्तिशाली बनाया था। उनके द्वारा समस्त छोटे २ राज्यों का नाश कराकर उन्हें परस्पर लड़ाकर उन यदुवंशियों का इस प्रकार नाश करा दिया, जिस प्रकार अथाह समुद्र में बड़े जलजन्तु छोटे जलजन्तु को खा जाते हैं और दो चार जलजन्तु मिल कर उस बड़े जलजन्तु को भी मार डालते हैं। हे भ्राता जी! उन्होंने अपने गीता ज्ञान से मेरी बुद्धि को निर्मल कर दिया था। इसी लिए मेरा चित्त अब उन में लीन हो गया है।

सूतजी बोले—अर्जुन इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के वियोग में कातर होकर एक अबला की भाँति रोने लगे। किन्तु गीता ज्ञान के प्रकाश के कारण उन्होंने अपने शोक को दूर किया। उन का अभिमान चूर हो गया। अर्जुन के मुख से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के स्वधाम गमन और सम्पूर्ण यदुवंशियों के नाश का समाचार सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर ने अपना कर्तव्य शीघ्र ही निश्चय किया। उन्होंने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! अब शीघ्र ही हम लोगों को स्वर्गारोहण करना चाहिए। घोर

CC-0. Sharda Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

कलियुग आने के कारण और श्रीकृष्णचन्द्र के बिना हम को अब यहाँ नहीं रहना चाहिये। जब कुन्ती माता ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के स्वधाम गमन का समाचार सुना तो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में अपना मन लगा कर शरीर त्याग दिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने इस लौकिक शरीर से इस पृथ्वी का भार उतार कर उसको उसी प्रकार त्याग दिया, जिस प्रकार कोई काँटे से काँटा निकालने के पश्चात् उन दोनों काँटों को त्याग देता है। धर्मराज युधिष्ठिर ने कलियुग का प्रसार देख कर यहाँ से महा प्रस्थान करने का दृढ़ संकल्प किया। अपने महावली पौत्र परीक्षित को सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य देकर हस्तिनापुर में राज्यतिलक किया, तथा शूर सेन देश का राजा बना कर मथुरापुरी में अनिरुद्ध के पुत्र बज्र का राज तिलक किया। तत्पश्चात् परमज्ञानी युधिष्ठिर ने प्रजापति यज्ञ किया और सम्पूर्ण अग्नियों को अपने में लीन करके सन्यास ले लिया। धर्मराज ने सम्पूर्ण वस्त्र आभूषण त्याग दिए। मान, अपमान, अहङ्कार तथा मोह को त्याग दिया। मन वाणी को वश में कर लिया और सम्पूर्ण वायुओं को मृत्यु में लीन करके मृत्यु को अपने शरीर में लीन कर लिया। उन्होंने अपने शरीर को सत्व, रज, तम, में मिला दिया। उन तीनों गुणों को प्रकृति में लीन कर दिया। प्रकृति को आत्मा में लीन कर दिया और आत्मा को परमब्रह्म में लीन कर दिया। उन्हें सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मरूप दृष्टि गोचर होने लगा। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने चीर वस्त्र धारण कर अन्न जल का परित्याग करके मौन धारण कर लिया। उन्होंने अपने केश खोल दिये। तत्पश्चात् वे बिना किसी की ओर दृष्टि किये, बहरे के समान घर से बाहर उत्तर दिशा की ओर चल दिये। जब भीमसेन, अर्जुन, नकुल सहदेव तथा द्रौपदी ने यह देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर सम्पूर्ण मोह माया को त्याग कर घर से बाहर निकल पड़े हैं, तो उन्होंने भी उनका अनुसरण किया। उन सब ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान किया और अनन्य भाव से उन्हीं के चरणों में लीन होगए। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रेम में मग्न होकर वे सब उत्तराखण्ड की ओर चल दिए। उधर विदुर जी ने

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रभास क्षेत्र में भगवन्मय होकर शरीर त्याग दिया और वे अपने यमलोक को चले गए। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त पाण्डव लोगों के इस महाप्रयाण की कथा जो भक्ति और श्रद्धा से सुनता है वह शीघ्र ही भगवत् लोक को अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

—❀—

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

दोहा—गये परीक्षित विजय को, भेंटे धर्म धराय ।
निज निज दुःख वर्णन करें, पाण्डव सुत सों आय ॥

सूत जी बोले—हे शौनकजी ! जब पुण्यात्मा पाण्डव लोग महा प्रयाण के हेतु उत्तराखण्ड की ओर चले गये और वहाँ जाकर पुण्यलोक प्राप्त कर लिए। तत्पश्चात् वीरों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित प्रजा का शासन बड़े धर्म और ब्राह्मणों की आज्ञा से करने लगे। उन्होंने उत्तर नरेश की पुत्री इरावती के साथ अपना विवाह किया। उस उत्तम पत्नी से उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए। आचार्य कृप को अपना गुरू बना कर जान्हवी तट पर तीन अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये । उन यज्ञों में अनन्त धन राशि ब्राह्मणों को दान में दी। एक समय जब वे दिग्विजय के लिए बाहर निकले, तब उन्होंने राजा के वेष में कलियुग को एक गाय और बैल को मारते हुए देखा। तब राजा परीक्षित ने उस कलियुग को पकड़ कर दण्ड दिया।

शौनक जी बोले—हे सूत जी ! राजा परीक्षित ने कलियुग को दण्ड देकर ही क्यों छोड़ दिया। उसके प्राणों का हरण क्यों नहीं किया और राजा के वेष में वह शूद्र कौन था, जो गाय बैलों को लातों से मारता था ? इस कथा को विस्तार पूर्वक कहने की कृपा कीजिए।

यह कथा अल्पायु पुरुषों के लिए मोक्ष को देने वाली है। सूतजी बोले—हे शौनक जी ! आप सब ऋषिगणों ने अपने तप के प्रताप से यमराज को भी इस धर्मस्थल में बुला लिया है। जब तक भगवान् यमराज यहाँ पर रहेंगे तब तक किसी की मृत्यु न होगी। इसलिए अल्पायु पुरुषों के लिए यह अति उत्तम समय है, कि वे भगवान् की लीलाओं का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

रस पान करें। मनुष्य अपनी आयु को व्यर्थ में ही व्यतीत करते हैं। रात्रि नींद में समाप्त हो जाती है और दिन काम धन्धों व खाने पीने के चक्कर में समाप्त हो जाता है, इस लिये भगवान् की लीलाओं का वर्णन जितने समय होता है, वही सुदुपयोग में समझा जाता है। अबमैं आप से वही पुण्य कथा वर्णन करता हूँ आप सुनें! सूतजी बोले–राजा परीक्षित कुरुजांगल देश में आनंद पूर्वक राज्य करते थे। जब उन्होंने देखा कि कलियुग ने मेरे राज्य में प्रवेश कर लिया है, तब उन्हें दुःख तो विशेष हुआ किन्तु यह जानकर कि युद्ध करने का अवसर अच्छा हाथ लगा है, उन्होंने दुःख को त्याग कर युद्ध के लिये अपनी चतुरङ्गिणी सेना तैयार की और श्यामवर्ण के घोड़ों से जुते हुए रथ में जिसमें सिंह की ध्वजा थी, धनुषवाण लेकर नगरसे बाहर निकले। उन्होंने भद्राश्व,केतुमाल,भारत, उत्तरकुरुजांगल एवं किम्पुरुष आदि देशों को विजय कर के अपने राज्य में मिलाया और वहाँ के राजाओं को अपने अधिकार में किया। उस दिग्विजय में उनको अपने पूर्वज पाण्डवों का सुयश सर्वत्र सुनाई दिया। यदुवंशी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से उनकी कैसी घनिष्टता थी यह सब चरित्र उन्होंने सुने। महाराज राजा परीक्षित उन चरित्रों को सुन कर अति प्रसन्न हुए और चरित्र सुनाने वालों को बहुत सा धन दान में दिया। जब महात्मा परीक्षित ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाऐं सुनीं कि वे प्रेम के वश में होकर पांडवों के सारथी दूत, सखा, सभासद यहाँ तक कि सेवक भी बन कर रहे व रात को जब पांडव लोग सो जाते थे तब वे वीरासन से बैठकर पाँडवों के शिविरकी रक्षा करते थे। इतना ही नहीं उन्होंने अपने प्रिय पाण्डवों केचरणों में सम्पूर्ण विश्व को झुका दिया था। इस प्रकार की भगवत् लीला सुनकर परीक्षित गद्गद् हो जाते थे और दिन प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ति उनके हृदय में बढ़ती जाती थी। उन्हीं दिनों एक दिन धर्म बैल के रूप में गाय रूपिणी पृथ्वी से मिला। गाय के नेत्रों से अश्रु बह रहे थे। वह श्रीहीन सी प्रतीत हो रही थी। तब धर्म ने पृथ्वी से पूछा–हे देवि! तुम्हारा यह मुख क्यों मलीन हो रहा है? तुम श्रीहीन सी क्यों प्रतीत हो रही हो? अवश्य तुम महान् दुःखी हो। तुम किस की चिन्ता कर रही हो! तुम मेरी चिंता तो नहीं करती कि अब मैं एक पैर वाला ही रह गया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हूँ। तुम कहीं इस बात की चिन्ता तो नहीं करतीं कि तुम्हारे ऊपर अब शूद्र राजा राज्य करेंगे। तुम्हें देवताओं की चिन्ता तो नहीं है कि अब उन्हें यज्ञों में आहुति नहीं दी जाती है। तुम्हें इस दीन प्रजा की चिन्ता तो नहीं हुई कि निरन्तर दुर्भिक्ष से पीड़ित रहेगी। तुम उन स्त्री बच्चों के लिए शोक तो नहीं करती हो, जिनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। हे माँ वसुन्धरा ! मेरी समझ में आ रहा है कि तुम अवश्य भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र के वियोग में दुःखी हो। उन्होंने ही अपनी लीला समाप्त करके तुम को श्रीहीन बना दिया है। तुम अपने दुःख का कारण मुझ से अवश्य कहो। इस कराल काल ने तुमको सौभाग्यहीन बना दिया है। पृथ्वी बोली हे धर्म ! तुम सर्वज्ञ हो कर भी मुझ से मेरे दुःख का कारण पूछते हो। जिन भगवान की कृपा से तुम चार चरण वाले थे, अब उनके न रहने से केवल एक चरण वाले ही रह गए हो जिन भगवान श्रीकृष्णचंन्द्रमें उन्तालीस अप्राकृतिक गुण थे, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, सन्तोष, त्याग, शम दम, तप, सरलता, क्षमता, शास्त्र विचार, उपरति, तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य, शौर्य, तेज, एश्वर्य, बल, स्मृति, कान्ति, कौशल, स्वतन्त्रता, निर्भीकता, कोमलता, धैर्य, साहस, शील विनय, सौभाग्य, बल, उत्साह, गम्भीरता, कीर्ति, आस्तिकता, स्थिरता, गौरव एवं निरअहंकारता आदि समस्तगुण प्रभूत मात्रा में केन्द्रीभूत थे तथा उनमें शरणागत वत्सलता आदि महान गुण निरन्तर विद्यमान रहते थे। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अपने स्वधाम गवन के कारण यह घोर कलियुग मेरे ऊपर आगया है। मुझे तुम्हारे लिए देव पितृगण, ऋषि, साधु, सन्यासी आदि सभी के लिए महान शोक है। भगवान् के जिन चरणों की सेवा लक्ष्मी करती हैं, जिनमें कमल; बज्र, अंकुश ध्वजा आदि के चिन्ह विराजमान हैं, वे चरण मेरे ऊपर पड़ते थे। उन्हीं चरणों की कृपा से मैं सौभाग्यवती थी किंतु अब मेरा सौभाग्य समाप्त हो गया। मुझे इस सौभाग्य प्राप्ति पर अति गर्व था इसी कारण भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने मुझे इस दशा में कर दिया है। उन्होंने यदु-वंश में प्रगट होकर संपूर्ण असुरों तथा पापी राजाओं की सहस्रों अक्षोहिणी सेनाओं का संहार करके मेरा भार हल्का किया था। अपने बाहुबल से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उन्होंने तुम्हें भी चार चरणों वाला बना दिया था । भला ऐसे भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का बिरह किसको दुखदाई न होगा। धर्म और पृथ्वी परस्पर इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि उसी समय राजा परीक्षित् पाप नाशिनी सरस्वती के तट पर आये ।

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

दोहा–अरे दुष्ट कलिकाल तू, देता दुःख महान ।
पाण्डु पौत्र मारन चले, ले कर के धनुवान ॥

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! उस सरस्वती के तट पर महाराज परीक्षित ने मुकुट धारी एक शूद्र को हाथ में डण्डा लिए एक गाय और एक बैल को बुरी तरह पीटते हुए देखा। वह बैल बड़ा सुन्दर था उसका रङ्ग बड़ा सफेद था किन्तु पैर एक ही था और शूद्र के भय से भयभीत होकर काँप रहा था एवं मलमूत्र त्याग रहा था । निकट ही में यह गाय जो कामधेनु के समान सुन्दर थी उस शूद्र के द्वारा ठोकरें खा रही थी। वह भूखी प्यासी नेत्रों से अश्रु बहा रही थी । महाराज परीक्षित जो कि स्वर्ण के रथ में बिराजे हुए थे, अपने धनुषवाण को चढ़ा कर मेघ के समान गम्भीर वाणी में ललकारते हुये बोले-रे दुष्ट ! पापी ! नराधम !!! तू कौन है ? जो इस गाय और बैल को बुरी तरह से मार रहा है। तेरा वेष तो राजा का सा है किंतु तेरा कर्म शूद्रों जैसा है। क्या तूने अर्जुन के इस गाँडीव धनुष को नहीं पहिचाना । तू इस निर्जन स्थान में इन निरपराध पशुओं को इस प्रकार सता रहा है। तू महान अपराधी है। इसका उचित दण्ड तेरा वध है। महाराज परीक्षित के ऐसे बचन सुन कर कलियुग काँपने लगा।

तब महाराज ने बैल से पूछा, हे बैल ! तुम्हारे यह तीन पैर कैसे टूट गये हैं। तुम एक पैर से किस प्रकार चलते होगे । तुम बैल हो अथवा कोई देवता हो। अब तुम निर्भीक होकर मुझे यह सारा बृतान्त सुनाओ। मेरे इस धर्मराज में तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी प्राणी आँसू बहाते हुए दृष्टि नहीं आता है। हे धेनुपुत्र ! अब तुम किसी प्रकार का भय मत करो। मैं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दुष्टों को दण्ड देता हूँ । हे गौ माता ! तुम भी मत रोओ । निर्भयता पूर्वक अपना कष्ट कहो । आपने कोई किसी प्रकार का अपराध तो नहीं किया है, फिर आपके यह तीन पैर किसने काट लिये हैं । किस दुष्ट ने पाण्डवों की पवित्र कीर्ति में यह कलङ्क लगाया है । जिस राज्य में शेर और गाय एक घाट पानी पीते हैं, उस राज्य में यह घोर पाप किसने किया है । चाहे वह पापी साक्षात् देवता ही क्यों न हो मैं उसके भी हाथ काट दूँगा । तब धर्म बोला—हे महाराज ! आपने पवित्रात्मा पाण्डवों के कुल में जन्म लिया है । आपके पूर्वज भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त थे । अतः यह बचन आपही के योग्य हैं । हे राजन् ! हम यह नहीं जानते हैं कि संसार के जीवों को कौन क्लेश देता है । शास्त्रों में भी इसका निरूपण अनेक प्रकार से किया गया है । जो लोग द्वैत को नहीं मानते हैं, वे दुःख का कारण अपने आप को ही स्वीकार करते हैं । कोई प्रारब्ध को ही दुःख का कारण मानते हैं और कोई कर्म को ही दुःख का कारण मानते हैं । कतिपय विद्वान स्वभाव को ही और कतिपय दुःख का कारण ईश्वर को ही मानते हैं । हे राजन् ! अब आप ही निश्चित कर लीजिए कि दुःख का कारण कौन है ?

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! सम्राट परीक्षित् ने जब उस बैल के ऐसे बचन सुने तब वे अति प्रसन्न हुए । उनका क्लेश दूर हो गया और वे बोले—हे वृषभ ! आप अवश्य ही बैल के रूप में धर्म हैं और यह गाय रूपिणी पृथ्वी माता है । आप धर्म के मर्म को भली प्रकार जानते हो इसी कारण तुमने दुःख देने वाले का नाम चुगली के भय से नहीं बताया है । हे धर्म ! सतयुग में तुम्हारे तप, पवित्रता, दया और सत्य चार चरण थे । त्रेता में तीन चरण रह गये, द्वापर में दो हीं रह गये और अब इस कलियुग में केवल एक सत्य चरण ही रह गया है । यह अधर्म रूपी कलियुग अपने असत्य से उस चरण को भी नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा है । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इस गौ माता रूपिणी पृथ्वी का भार हल्का कर दिया था । अब उनके गौलोकधाम गमन से दुष्ट पापी शूद्र राजा लोग इसे भोगेंगे इस पर पाप करेंगे इसी कारण यह माता दुःखी है ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding by

इतना कह कर राजा परीक्षित ने उस पापी शूद्र राजवेषधारी कलियुग को मारने के लिए अपनी तीक्ष्ण धार वाली तलवार निकाली। जब कलियुग ने देखा कि अब मेरे प्राण नहीं बच सकते, तब व्याकुल हो कर झटपट अपने राजसी वेष को उतार कर राजा परीक्षित के चरणों में गिर गया। राजा परीक्षित बड़े शरणागत वत्सल थे, अपनी शरण में आए हुए कलियुग को मारना उचित न समझ कर उन्हें दया आ गई और हँस कर इस प्रकार बोले—हे कलियुग ! तू मेरी शरण में आ गया है अब तुझे कोई भय नहीं रहना चाहिये। किंतु तू अधर्म का साथी है अतः तुझे मेरे राज्य में नहीं रहना चाहिये। अधर्म, पाप, झूठ चोरी, कपट, दरिद्रा, आदि अनेक उपद्रवों का मूल कारण केवल तू ही है। इस लिये मेरे राज्यमें एक पलको भी न ठहर, यहाँ से शीघ्र ही चला जा। मेरे राज्य में धर्म और सत्य का निवास है इस राज्य में धर्मात्मा, साधु, संत, सन्यासी, बड़े याज्ञिक तथा श्रीहरिके भक्त रहते हैं। यहाँ देवताओं की पूजा होती है।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! राजा परीक्षित के ऐसे कठोर वचन सुन कर और तलवार हाथ में लिये हुए कालरूप अपने सिर पर गर्जते हुए जान कर कलियुग भय से काँपने लगा, और विनय पूर्वक बोला। हे धर्मात्मा राजन ! आप का राज्य सारी पृथ्वी पर है। फिर आप मुझे वह स्थान बताइये जहाँ निर्भयता से रह सकूँ। जिधर देखता हूँ उधर ही आप को कालरूप तलवार हाथ में लिए देखता हूँ। मेरे रहने योग्य कोई भी स्थान मुझे दृष्टि नहीं आता है।

सूतजी बोले—हे शौनक जी ! कलियुग के ऐसे बचन सुन कर धर्मात्मा परीक्षित को उस पर दया आ गई और बोले—कलियुग ! तेरे लिए में चार स्थान बताता हूँ—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-सङ्ग और हिंसा, इन स्थानों में असत्य, मद, आसक्ति एवं निर्दयता निवास करते हैं। कलियुग बोला हे उत्तरानन्दन ! ये चार स्थान मेरे लिए अपर्याप्त हैं और भी कोई स्थान मुझे बताइये। तब दयासागर राजा परीक्षित ने उस कलियुग पर दया कर के पाँचवाँ स्थान 'सुवर्ण' दिया—इन पाँचों स्थानों में झूठ मद, काम शत्रुता तथा रजोगुण विराजमान रहते हैं। वह कलियुग इन्हीं स्थानों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में रहने लगा, किंतु उस समय महाराज परीक्षित का स्वर्ण मुकुट देख कर उसी मुकुट में प्रवेश कर गया। राजा परीक्षित ने धर्म की वृद्धि करके तपस्या, शौच और दया में तीन चरण भी जोड़ दिए तथा पृथ्वी की वृद्धि कर के पृथ्वी को भी आश्वासन दिया। सूतजी बोले—हे शौनक जी! वे ही राजा परीक्षित् अब धर्म पूर्वक सारी पृथ्वी का राज्य पालन कर रहे हैं। वे राजा परीक्षित महान धर्मात्मा, चक्रवर्ती सम्राट अपने दादा धर्मराज युधिष्ठिर की भाँति हस्तिनापुर में निवास करते हैं। वे उत्तरानन्दन बड़े प्रतापी सौभाग्यशाली तथा राज्य लक्ष्मी से शोभायमान हो कर कलियुग को बस में कर के धर्म का राज्य कर रहे हैं। उन्हीं धर्मात्मा राजा के राज्य में आप लोग इस दीर्घकालीन यज्ञ को करा रहे हैं। ❀

—❀—

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

डारि नाग ऋषि कंठ में; नृप ने कीनों पाप।
हौनहार हो कर हुतो, श्रृंगी दीनों शाप॥

राजा परीक्षित् को श्रृंगी ऋषि का शाप देना—सूत जी बोले—हे शौनकजी! भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजकी लीला बड़ी बिचित्र एवं आश्चर्यमय है। उन्होंने ही राजा परीक्षित की माता उत्तरा के गर्भ में प्रचण्ड ब्रह्मास्त्र से रक्षा की थी। उन्होंने ही उस राजा को अपनी भक्ति प्रदान की और संसार के माया जाल में ग्रसित राजा को ब्राह्मण से शाप दिला कर इस प्रकार अलग कर दिया जैसे हंस जल में से दूध को अलग कर देता है। राजा परीक्षित अन्त समय पर वैराग्य लेकर गङ्गा तट पर चले गये और श्री शुकदेव जी द्वारा भगवान के कथामृत का पान करने लगे। जिन मनुष्यों को अन्तकाल में मोह प्राप्त नहीं होता है और जो भगवत्

❀यद्यपिराजा परीक्षित इस दीर्घकालीन यज्ञके समयमें जीवित नहीं थे किन्तु श्री सूतजी ने राजा जनमेजयको राजा परीक्षितके रूपमें ही अन्श रूप मानाहै। यह दीर्घकालीन यज्ञराजाजन्मेजयके समयमें हुआ था। किन्तु शासन व्यवस्था अबभी उसीप्रकारकी धर्मयुक्त थी, जैसी धर्मात्मा राजा परीक्षितके समय में थी। उसकालमें परीक्षितकीमृत्यु होचुकीथी किन्तुउनका यश, कीर्ति, शासनव्यवस्था तथा उनका प्रभाव अबभी विराजमानथा। इसीकारण उपरोक्त मात्राश्लोक४३से लेकर ४८ तककीवर्तमानकालकीतरहकीगई है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भक्ति में लीन हो जाते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है ! कलियुग का प्रसार पृथ्वी पर सर्वत्र हो चुका था । जिस समय भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अपने स्वधाम को चले गये थे कलियुग तो उसी समय आ धमका था । किन्तु राजा परीक्षित के राज्यकाल में पृथ्वी पर उसका कोई प्रभाव नहीं फैला । राजा परीक्षित परम ज्ञानी और समदर्शी थे । वे कलियुग से कोई द्वेष नहीं करते थे, क्योंकि वे कलियुग के उत्तम गुणों को भी भली प्रकार जानते थे । कलियुग में पुण्य कर्म तो केवल बिचार करने से ही फल देने लगते हैं, किन्तु पाप कर्म तो केवल सङ्कल्प मात्र से फल नहीं देता है करने से फल देता है । कलियुग में थोड़ा सा भी हरि कीर्तन और भगवत् कथा का पाठ व श्रवण अनन्त फल देने वाला है। केवल कीर्तन मात्र से ही कलियुग के पाप नाश हो जाते हैं । अन्य युगों में बड़े २ ऋषि, महात्मा, राजर्षि महान यज्ञ, जप, आयु पर्यन्त करते रहने पर भी वह फल प्राप्त नहीं कर सके थे, जो कलियुग में केवल भगवान का स्मरणमात्र कर लेने से ही प्राप्त होता है । इन सब बातों का बिचार कर राजा परीक्षित ने कलियुग का नाश नहीं किया । उन्होंने सोचा कि सावधान पुरुषों का यह कुछभी अनिष्ट नहीं कर सकता है । केवल अज्ञानियों को ही कर्म बन्धन में बाँध कर नष्ट कर सकता है । ऋषिगण बोले—हे सूतजी ! आप दीर्घायु हों ! आप हमें भगवान की लीलाओं का रस पान कराते हो । दीर्घकाल से यज्ञ करते २ हमारे केश धूमिल होगये हैं किन्तु फिर भी यह कोई विश्वास नहीं है कि इन यज्ञों में हमें भगवान की प्राप्ति होगी अथवा नहीं । किन्तु आपने हमें कथामृत का पान करा कर थोड़े से काल में ही भगवत् भक्ति प्रदान की है ।

हे सूतजी ! आप अपने जीवनका आश्रम केवल भगवान को ही मानते हैं । आपने सत्पुरुषों का सङ्ग कर के भगवत् कथा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है । अतः आप इस भगवत् कथा को विस्तार पूर्वक वर्णन करने की कृपा कीजिये । राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से जिस बिशुद्ध भगवत् भक्ति को प्राप्त किया था, उसको हमें सुनाइये । सूतजी बोले--मैं नीच कुल में उत्पन्न होते हुए भी महान सौभाग्यशाली हूँ जिससे मुझे महात्माओं के चरणों की सेवा तथा उनसे वार्तालाप करने का सुअवसर प्राप्त होता रहता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है। हरि भक्तों के एक क्षण मात्र के सङ्ग से ही मनुष्य तर जाता है। जो भक्तजन केवल भगवान के आश्रय रहते हैं। उनकी सारी व्यथा स्वयं मिट जाती है, और दूसरों की व्यथाओं को भी मेटने में समर्थ होते हैं। भगवान के गुण अनन्त हैं उनकी लीलायें विचित्र हैं। भगवान के गुणों की विशेषता जानने के लिए केवल यही कथन पर्याप्त होगा कि उनके चरण कमलों की रज में निरन्तर लक्ष्मी लोटती रहती है। ब्रह्माजी ने उनके चरण और नख को धो कर गङ्गा जो पापतारिणी है उसे उत्पन्न किया। वही जल भगवान शंकर जी के मस्तक से निकल कर सम्पूर्ण संसार को पवित्र करता है। भगवान की भक्तवत्सलता समझने के लिए इतना ही पर्याप्त है। वैसे तो उनकी लीलायें इतनी अनन्त हैं जिस प्रकार आकाश अनन्त है आकाश में एक पक्षी जितनी उड़ान भर सकता है उतनी ही अपनी बुद्धि के अनुसार मैं उनकी लीलाओं का वर्णन कर सकता हूँ उसे आप श्रवण करें।

एक समय महाराज परीक्षित आखेट के निमित्त बन में गये वहाँ पर वन्य पशुओं के पीछे दौड़ते २ वे श्रम से थक गये। उन्हें क्षुधा और प्यास ने अति व्याकुल कर दिया। राजा परीक्षित जलाशय की खोज में इधर उधर घूमते-घूमते शमीक ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ पर महात्मा शमीक समाधि लगाये हुए नेत्र बन्द किये शांत भाव से एकासन पर बैठे हुए ब्रह्म में लीन थे। महाराज परीक्षित प्यास से व्याकुल थे। कण्ठ सूख गया था। उन्होंने ऋषि से जल माँगा। किन्तु ऋषि समाधिस्थ बैठे ही रहे उन्होंने राजा को कोई उत्तर नहीं दिया और न उनको बैठने के लिए कोई आसन ही दिया। राजोचित सम्मान तो दूर रहा उन से किसी ने बात भी नहीं पूछी तब यह देख कर राजा को क्रोध आ गया। इस प्रकार के अपमान तथा क्रोध का यह पहला ही अवसर था। उन्होंने यह सोच कर कि इस ऋषि ने झूँठ मूँठ नेत्र बंद करके मुझे देखकर समाधि लगाली है, इसने यह सब ढोंग किया है और जान बूझ कर मेरा अपमान किया है, क्योंकि कलियुग राजा के स्वर्ण मुकुट में विराजमान था। उनकी बुद्धि विपरीत हो गई। उन्होंने पास ही में पड़ा हुआ एक मृत सर्प अपने धनुष की नोंक से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उठा कर शमीक मुनि के गले में डाल दिया। और अपने नगर को चले आये। जब कुछ बालकों ने जा कर शमीक ऋषिके पुत्र श्रङ्गी ऋषि को यह समाचार सुनाया कि किसी दुष्ट ने तुम्हारे पिता के कण्ठ में मृतक सर्प डाल दिया है। तब बालक ऋङ्गी ऋषि को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने साथी सब बालकों से यह कहा कि मैं उस दुष्ट राजा को अभी ऐसा दण्ड देता हूँ कि भविष्य में फिर कोई ब्राह्मणों का इस प्रकार अपमान न करेगा। इतना कह कर उस ऋषिकुमार ने अपने चुल्लू में जल ले कर उसे मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर के राजा परीक्षित को यह शाप दिया कि तुझे सातवें दिन तक्षक सर्प डसेगा। इस प्रकार राजा परीक्षित को शाप दे कर वह ऋषिकुमार अपने पिता के पास आश्रम में आया और पिता के गले में मरा हुआ सर्प पड़ा देख कर दहाड़ मार कर रोने लगा। पुत्र का रुदन सुन कर ऋषि की समाधी टूटी तब उन्होंने पुत्र से उसके रोने का कारण पूछा और उन्होंने अपने कंठ में मरा हुआ सर्प पड़ा देखा बालक श्रङ्गी ऋषि ने अपने पिता को सारा बृत्तान्त सुनाया और राजा परीक्षित को शाप देने वाली बात कही। राजा परीक्षित के शाप की बात सुन कर ऋषि शमीक को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने कहा अरे मूर्ख बालक! तूने घोर पाप कर डाला। उस राजा की थोड़ी सी गलती पर तूने घोर शाप दे डाला। तैंने भगवत् भक्त राजा को शाप देकर प्राणियों का बड़ा अनर्थ किया है। उसके राज्य में सारी प्रजा सुखी है। हम लोग निर्भयता से जप, तप, यज्ञ करते रहते हैं। उस धर्मात्मा राजा के राज्य में सिंह और गाय एक घाट पर पानी पीते हैं। चोर और लुटेरों का नाम नहीं है। अब राजा के न रहने पर प्रजा में विद्रोह वर्णशंकरता फैल जावेगी। अधर्म का साम्राज्य छा जावेगा। यह राजा शाप के योग्य कदापि नहीं था। तूने ऐसे निष्पाप राजा का घोर अपराध किया है ऐसा न हो कि राजा तुझे शाप देदें किन्तु वे परम ज्ञानी हैं ऐसा नहीं करेंगे। ऋषिशमीक अपने पुत्र के अपराध से इस प्रकार अछताने पछताने लगे।

—❀—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding: IKS

।। उन्नीसवाँ अध्याय ।।

दोहा—तक्षक द्वारा मृत्यु सुनि, कीन्हों अनशन राय ।
कीन्ह कृपा शुकदेव जी, दियो कथामृत प्याय ।।

सूतजी बोले—जब राजा परीक्षित अपनी राजधानी में पहुँचे और वहाँ महलों में जाकर जब उन्होंने मुकुट को उतारा तब उन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ और बोले—ओह! मैंने घोर पाप कर डाला। नीच पुरुषों की भाँति मैंने निरपराध ब्राह्मण के कंठ में मरा हुआ सर्प डाल दिया। वे परम तेजस्वी ऋषि थे। मैं दुर्बुद्धि के कारण उन्हें न पहचान सका। वे अपने भजन में समाधिस्थ थे। मैंने उन्हें ढोंगी समझकर उनके साथ दुर्व्यवहार किया। अवश्य ही कोई घोर विपत्ति मेरे ऊपर आने वाली है क्योंकि 'आपत्ति काले विपरीति बुद्धि'। मैं तो यह चाहता हूँ कि उस पाप के प्रायश्चित् में मुझे अवश्य कोई कठिन दण्ड मिले। मैं तो सदा ही ब्राह्मणों का सेवक और उनका आज्ञा पालक रहा हूँ। किंतु आज न जाने मेरी बुद्धि पर क्या पर्दा पड़ गया। जब राजा परीक्षित इस प्रकार अछता पछता रहे थे, उसी समय ऋषि शमीक का भेजा हुआ एक शिष्य राजा के पास आया और बोला कि आपको ऋषि कुमार ने यह शाप दिया है कि तुम्हें आज से सातवें दिन तक्षक सर्प डसेगा। ऋषि के बचन सुनकर राजा परीक्षित प्रसन्नता से उठ खड़े हुये और बड़े आदर के साथ उन्हें बैठाकर बोले—ऋषिकुमार ने शाप देकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। मैं भी यही चाहता था कि मुझ पापीको उस घोर अपराध के लिये कठिन दण्ड मिलना चाहिये। इस प्रकार शमीक ऋषि के शिष्य से अपने अपराध की क्षमा याचना करके उसे बिदा किया।

तत्पश्चात् राजा परीक्षित ने अपने भविष्य का कर्तव्य निश्चय करके अपने समर्थ पुत्र जनमेजय को राज्य तिलककर दिया। अपने सम्पूर्ण राजसी वस्त्राभूषणों को त्यागकर केवल चीर धारण करके आमरण अनशन व्रत लेने के हेतु गङ्गा-तट पर बैठ गये। उन्होंने अपने सम्पूर्ण नगर निवासियों तथा रनिवास की स्त्रियों और कुटुम्बियों को तथा राजा जनमेजय को अपना २ कर्त्तव्य भली प्रकार समझाकर विदा कर दिया। तत्पश्चात् अपनी समस्त आसक्तियों को त्याग कर अनन्य भाव से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में ध्यान लगा दिया। जब राजा परीक्षित के राज्य त्याग और अनशन व्रत तथा श्रृङ्गी ऋषि के श्राप का वर्णन सब ऋषि मुनियों ने सुना तो वे अपने आश्रमों से शिष्यों सहित राजा परीक्षित के दर्शनों के लिये गङ्गा तट पर पधारे। वहाँ पर अत्रि वशिष्ठ, च्यवन, अरिष्टनेमि, शारद्वान, पाराशर, अङ्गिरा, भृगु, परशुराम, विश्वामित्र, इन्द्रप्रमद, उतथ्य, मेधातिथि, देवल, मैत्रेय, पिप्पलाद, गौतम, भारद्वाज, और्व, कण्डव, अगस्त्य, देवर्षिनारद, भगवान् वेदव्यास आदि सभी बड़े२ अट्ठासी सहस्र ऋषि तथा मुनिगण वहाँ पधारे। राजा परीक्षित ने सब का यथोचित समयानुकूल सत्कार किया और उन्हें बैठने को आसन दिया। तब उन्होंने उनके चरणों की वन्दना की और कहा–आज मैं महान भाग्यशाली हूँ कि मुझे अनायास ही देवतुल्य सम्पूर्ण ऋषियों के दर्शन हुए। मैंने अहङ्कार वश ब्राह्मण का अपराध किया है यह मेरे लिए अति खेद की बात है। मैं पाप रूप हो गया हूँ इसी कारण भगवान् ने अति कृपा करके मुझे अपने चरणों में लेने के लिये ऋषि कुमार से श्राप दिलवाया है। यदि ऐसा भगवान् न करते तो मैं सांसारिक मोह जाल में मकड़ी की भाँति फँसा रहता, उस श्राप के कारण ही मैं संसार से बिरक्त हो गया हूँ मुझे तक्षक के डसने तथा मृत्यु का कोई भी भय नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग भगवान् की अमृतमयी लीलाओं का वर्णन करें। मैं आप लोगों के चरणों में बार बार प्रणाम करता हूँ। केवल मैं यही चाहता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं में मेरी श्रद्धा तथा भक्ति दिन पर दिन बढ़े। मैं किसी भी योनि में जन्म लूँ, मुझे उन्हीं की भक्ति तथा सत्पुरुषों का सत्संग प्राप्त होवे।

धर्मात्मा राजा परीक्षित परमज्ञानी थे उन्होंने मृत्यु को जीत लिया था उन्हें उससे तनिक भी भय नहीं था वे गङ्गाजी के दक्षिण तट पर पूर्व की ओर मुख करके कुश के आसन पर विराजमान थे। जब राजा परीक्षित इस प्रकार अनशन व्रत का संकल्प लेकर बैठ गये तब सभी देवता बड़े आनन्द से उन पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण आये हुए ऋषि समाज ने राजा की भूरि भूरि प्रशंसा की और बोले–हे राजर्षि! आप उस वंश में उत्पन्न हुए हो जिसमें आपके पूर्वज पाण्डव लोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त थे। अतःआपका भगवत् भक्ति में प्रेम होना

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तब ऋषि लोगों ने आपस में यह निश्चय किया कि राजर्षि परीक्षितकी मृत्यु तक यहीं रहकर इन्हें हरि कथा सुनावेंगे।

ऋषियों के ऐसे मधुर बचन सुनकर राजा परीक्षित् अति प्रसन्न हुए और बोले–हे महात्माओ! आप सभी परमज्ञानी, तत्ववेत्ता तथा भगवत् परायण हैं। मेरे ऊपर कृपा करके मेरे कर्तव्य का निश्चय कराके मुझे वह सुगम मार्ग बताइयेजिसके करनेसे मैं भगवान् को प्राप्त कर सकूँ। अल्पायु वाले सब प्राणियों के लिए,सभी दशाओं में विशेषतः मुझ जैसे शीघ्र मरने वाले के लिये शरीर व अन्तःकरण से कौनसा कर्म करना चाहिये।

राजा परीक्षित जब इस प्रकार सम्पूर्ण मुनि समाज से प्रार्थना कर ही रहे थे कि उसी समय स्वेच्छा से विचरने वाले परमज्ञानी जन्म मृत्यु से रहित व्यास जी के पुत्र श्रीशुकदेवजी वहाँ पधारे। वे परमयोगी बहुत से बच्चों तथा स्त्रियों से घिरे हुए थे,उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। वे अवधूत वेश में थे। उनकी अवस्था सैकड़ों वर्ष की होते हुए भी सदा सोलह वर्ष के ही प्रतीत होते थे। उनके सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग सुकोमल तथा सुकुमार थे। उनकी आकृति अति सुन्दर, नेत्र विशाल, नासिका ऊँची तथा कान बराबर थे। भरे हुए कन्धे, शङ्ख के समान गर्दन, उभरा हुआ सुडौल वक्षःस्थल, लम्बी भुजायें,घुँघराले बिखरे हुए केश तथा दिगम्बर थे। उनका यौवन चित्त आकर्षक था। वे स्त्रियों के मनको अपनी मधुर मुस्कान से सदा चुराते थे। जब ब्रह्म ज्ञानी श्रीशुकदेव जी वहाँ पधारे तब उन्हें देखते ही सम्पूर्ण ऋषि लोग उठ कर खड़े हो गये।

जब राजा परीक्षित् ने सूर्य के समान प्रकाशमान श्रीशुकदेवजी को अतिथि रूप में पधारते हुए देखा तय वे उठ खड़े हुए और सिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् अर्घ्य पाद्यतथा माला आदि से श्री शुकदेवजी की पूजाकी और बैठने के लिए उच्चासन प्रदान किया। जब श्रीशुकदेवजी आसन पर विराजमान हो गये तब सम्पूर्ण ऋषि, महर्षि, तथा राजर्षि भी अपने २ आसनों पर बैठ गये। वहाँ पर शांति छागयी और एक अलौकिक महिमा का उदगार बह निकला। तत्पश्चात् राजा परीक्षित् ने खड़े होकर पुनः श्रीशुकदेव जी को दण्डवत् प्रणाम किया और मधुर वाणी में इस प्रकार बोले–हे ब्रह्मरूप योगेश्वर जी! आपने यहाँ पधार कर मुझ

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अनाथ असहाय को सनाथ और शक्ति सम्पन्न बना दिया। मैं ब्राह्मण का अपराधी होने पर भी आपने मुझे अपने दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त कराया। जिन जिन स्थानों पर आपके पवित्र चरण पड़ते हैं वह स्थान तीर्थ तुल्य हो जाता है। आप जैसे परमहंस, अवधूत-महात्माओं के दर्शन मात्र से ही मनुष्य पवित्र होजाताहै। फिर आपके पैर पखारने पूजा करने और आसन प्रदान करनेसे तो वह मनुष्य अवश्यही मोक्ष प्राप्तिका अधिकारी होजाताहै।

हे महाभाग! जिस प्रकार भगवान् नारायण के सम्मुख आने पर दैत्य भाग जाते हैं, उसी प्रकार आपके सम्पर्क से महान् पाप भी तुरन्त भाग जाते हैं। आपने परम ज्ञानी पांडवों का वंशज समझ कर मुझ पर अति कृपा की है। यह सब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की ही कृपा है जो आप जैसे आत्मा में रमण करने वाले सिद्धपुरुष के दर्शन मुझे अनायास ही प्राप्त हुये हैं। जिन योगेश्वर के दर्शन मिलना दुर्लभ है, जिनके आने और जाने का कभी पता नहीं चलता है, जो बिन पूछे कोई उपदेश नहीं करते हैं। उन्होंने स्वयं मेरी मृत्यु के समय पधारकर मुझ पापी को दर्शन देकर सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दिया है। हे महायोगिन! आप योगियों के भी गुरु हैं, आपने परम सिद्धि प्राप्ति की है। अतः मैं अपने कल्याण के हेतु यह प्रश्न पूछता हूँ कि मरणासन्न प्राणी के लिये क्या कर्त्तव्य है? और मनुष्य मात्र का क्या करने योग्य कर्त्तव्य है? मृत्यु ग्रस्त पुरुष को किस कथा का श्रवण, किस देवता का जप, अनुष्ठान, स्मरण तथा भजन करना चाहिए और किन किन बातों को त्याग देना चाहिए? हे ब्रह्म! आप गृहस्थों के घर गाय दोहन काल तक ठहरते हैं, अतः मुझ दीन पर कृपा करके मेरे इन प्रश्नों का उत्तर आप अवश्य दीजिये।

श्री सूतजी बोले—राजा के मर्मस्पर्शी धर्म युक्त मधुर बचन सुन कर समस्त धर्मों के ज्ञाता परमज्ञानी भगवान् श्री शुकदेवजी जिन्होंने नाल छेदन के समय से ही इस संसार की माया को त्याग कर परमहंस व्रत से ब्रह्म को ज्ञान प्राप्त किया है। ऐसे श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित को उनके प्रश्नों का भली भाँति समझ कर उत्तर देने लगे।

॥ प्रथम स्कंध समाप्त ॥

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

❀ ॐ नमो भगवते वासुदेवायनमः ❀

वृहद् सुखसागर

द्वितीय स्कन्ध

——:❀:——

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यै स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमौपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद् गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो ।
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥

अर्थ—ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, तथा मरुद् गण, दिव्य स्तोत्रों द्वारा जिन परमात्मा की स्तुति करते हैं, सामवेद के मर्म को जानने वाले ऋषि, मुनि, अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों के द्वारा जिन परमात्मा का गायन करते रहते हैं। योगीजन ध्यान के द्वारा चित्त को स्थिर करके जिनका दर्शन करते रहते हैं। इतना सब कुछ करने पर भी देवता, असुर तथा अन्य कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं, उन स्वयं प्रकाश परमेश्वर को नमस्कार है।

॥ पहला अध्याय ॥

दो०—विराट रूप और ध्यान विधि, कही शुकन्हि समझाय ।
सुनत परीक्षित चित्त सों, मुनि चरनन शिरनाय ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! तुमने यह अति उत्तम प्रश्न किया है। इससे तुम्हारे कल्याण के साथ साथ दूसरों का कल्याण भी अवश्य होगा। तुम्हारा यह प्रश्न श्रवण, कीर्तन आदि सबसे उत्तम है। इसी कारण हे राजेन्द्र ! योगीजन तुम्हारे जैसे प्रश्न का अति आदर करते हैं। मनुष्य सदा सांसारिक माया जाल में फँसे रहते हैं उन्हें अपने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जन्म लेने का वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं होता है। वे सदा घरेलू उद्योगों में फँसे रहते हैं। ऐसे लोगों की आयु व्यर्थ ही व्यतीत हो जाती है। उनका दिन काम धन्धों में, रात्रि नींद तथा स्त्री प्रसंग में कट जाती है। समस्त जीवन हाय हाय और कुटुम्ब के पालन में व्यतीत हो जाता है। वे अज्ञानी मनुष्य स्त्री, पुत्र, शरीर, धन, सम्पत्ति, सम्बन्धियों आदि को अपना प्रिय मान बैठते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वे मूर्ख उन में पागल की भाँति रम जाते हैं, उन्हें अपनी मृत्यु का तनिक भी ध्यान नहीं होता है और अन्त में मृत्यु का ग्रास हो कर चले जाते हैं। हे राजा परीक्षित! ऐसे मनुष्यों के लिये सहस्रों ज्ञान की बातें सुनने और कहने योग्य हैं। ये सम्पूर्ण बातें तुम्हारे इस प्रश्न के अन्तर्गत हैं। हे राजा परीक्षित! मृत्यु से अभय होने के लिये सर्व शक्तिमान् सब भूतों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीला कथाओं का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण मनुष्य को करना चाहिये। वही मनुष्य जीवन सार से युक्त है तथा मनुष्य जन्म लेने का यही एक मात्र सार है कि भक्ति से ज्ञान से और धर्म से अपने जीवन को ऐसा उत्तम भगवतनिष्ठ बनाले कि अन्तकाल में मृत्यु के समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण बना रहे। जीवन गृहण करने का केवल एकमात्र यही तात्पर्य है।

हे राजा परीक्षित! सम्पूर्ण बड़े २ ऋषीश्वर और मुनीश्वर जिन्हें निर्गुण स्वरूप की प्राप्ति हो चुकी है, वे भी भगवान् के श्रवण कीर्तन में निरन्तर लीन रहते हैं। मैं तुम को उस उत्तम वेद, तुल्य भगवत्सरूप महा पुराण को सुनाऊँगा जिसे मैंने अपने पिता श्री वेदव्यास जी से द्वापर के अन्तकाल में श्रवण कर के पूर्ण अध्ययन किया था। वह श्रीमद्भागवत् महा पुराण सम्पूर्ण वेदों उपनिषदों और शास्त्रों का सार है। हे राजन्! मैं स्वयं निर्गुण रूप भगवान् की ही उपासना करता हूँ, किन्तु फिर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अमृत रूपी लीलाओं ने मेरे चित्त को बल पूर्वक अपनी ओर खींच लिया है इसी कारण से मैंने इस उत्तम महापुराण का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है? हे परीक्षित! तुम उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परमभक्त हो, इसी कारण मैं तुम्हें उन की अमृतमयी कथा का पान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कराऊँगा। उस कथामृत का पान करने के पश्चात् मनुष्य की फिर इस लोक और परलोक में किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती है। सम्पूर्ण शास्त्रों का केवल यही निचोड़ है कि ज्ञानियों ऋषियों मुनियों तथा स्नातकों आदि सभी को भगवन्नाम संकीर्तन प्रेम से करना चाहिये। सम्पूर्ण जप, तप, कर्म, योग, साधन, यज्ञ इत्यादि की अपेक्षा केवल नाम संकीर्तन ही विशेष महत्व रखता है। हे परीक्षित्! अज्ञानवश मनुष्य अपनी आयु को व्यर्थ की वातों में व्यतीत कर देता है, उस आयु से उसे कोई भी लाभ नहीं है। महत्वपूर्ण जीवन वही है तथा जन्म लेने का सच्चा लाभ उसी को प्राप्त होता है जो दो घड़ी भगवान् के नाम संकीर्तन कथा श्रवण आदि में ब्यतीत करता है। हे राजन्! राजा षट्वाङ्ग ने भगवान् के नाम संकीर्तन का सहारा लेकर केवल दो घड़ी में ही मोक्ष प्राप्त करली थी। हे परीक्षित्! तुम्हारे लिये तो अभी सात दिन की अवधि जीवन में शेष है। इतने काल में तुम अपने कल्याण के लिये सब कुछ कर सकते हो।

मनुष्य को मृत्यु के आने पर भयभीत तथा व्याकुल नहीं होना चाहिये। उस समय अपने ज्ञान से वैराग्य लेकर सम्पूर्ण ममता को दूर कर देना चाहिये। घर से बाहर निकल कर पवित्र तीर्थ में स्नान करे और उत्तम एकान्त स्थान में विधिवत आसन लगावे। इस के पश्चात् भगवान् के 'ओ३म्' तीन मात्राओं वाले प्रणव का अपने मन ही मन में जाप करे। यह प्राण वायु तथा मन को वश में करने का उत्तम उपाय है। अपनी इन्द्रियों को वश में करके उन्हें सांसारिक विषय वासनाओं से हटा लेना चाहिये और इस प्रणव (ओ-३-म्) का निरन्तर जप करते रहना चाहिये चंचल मन को दीपक की लौ के समान स्थिर कर लेना चाहिये, यदि वह इधर उधर दौड़े तो उसे बुद्धि द्वारा रोक लेना चाहिये। तत्पश्चात् चित्त को स्थिर कर के भगवान् के स्वरूप में से किसी एक अङ्ग का ध्यान करना चाहिये इसी प्रकार भगवान् के एक अङ्ग का ध्यान कर के उन के सम्पूर्ण स्वरूप में मन को लीन कर देना चाहिये। फिर किसी भी विषय वासना का चिन्तन न करते हुए उसी में तल्लीन रहना चाहिये। जब इस प्रकार ध्यान करते करते मन भगवत् प्रेम के आनन्द में पूर्ण भर जाता है, तब उसे एक अनोखे

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आनन्द का अनुभव होने लगता है। फिर उसका चित्त वहाँ से हटने को नहीं करता है। यदि भगवत् ध्यान के समय यह मूढ़ मन रजोगुण और तमोगुण के कारण स्थिर न रहे तो साधक को व्याकुल न होना चाहिए धीरे-धीरे धैर्य के साथ उसे अपने वश में करने का उपाय करना चाहिए उसको अपनी धारणा लगाये रखना चाहिये। उसी योग धारणा से योगी को भगवान के दर्शन हृदय में हो जाते हैं, और उसे उनकी भक्ति प्राप्त होजाती है। राजा परीक्षित ने कहा—हे भगवन! मनुष्य के अज्ञान रूपी मैलको शीघ्र ही दूर करने वाली कौन सी धारणा है? वह धारणा किस में की जाती है और उसके करने का क्या उपाय है? श्री शुकदेवजी कहने लगे—हे राजा परीक्षित! योग साधन करने वाले साधक को प्रथम अपने शरीर को वश में करने के लिए आसन की आवश्यकता होती है, और फिर अपनी क्रिया शक्ति को वश में करने के लिए प्राणायाम का साधन करना चाहिए। उसी के साथ २ सम्पूर्ण विषय कामनाओं की इच्छाओं को त्याग कर मन आदि इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में करना चाहिए। तत्पश्चात् अपने मन को ज्ञान के द्वारा समझा बुझाकर चारों तरफ से इस प्रकार समेंट लेना चाहिए जैसे कच्छप अपने सिर पैर आदि को समेंट कर एक होजाता है। तब मन को भगवान् के स्थल स्वरूप में लगा देना चाहिए। वह साधक भगवान् के विराट स्वरूप का ध्यान करे। और यह समझे कि यह संपूर्ण सृष्टि, संपूर्ण तत्व, जल, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, अहंकार, (महत्त,) और प्रकृति इन सात पदों से आवृत्त यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड विराट् भगवान का ही शरीर है। वही इन सबको धारण किये हुए हैं। तत्व ज्ञानी पुरुष विराट् भगवान के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं—पाताल विराट् भगवान के तलवे रसातल उनके पंजे और पैरके तलुवा, महातल उनकी एड़ी की ऊपरकी गाँठ उनके पैर की पिंडली तलातल, उनके दोनों घुटने सुतल, उनकी दोनों जाँघ वितल और अतल तथा उनका पेड़ू भूलोक है। हे परीक्षित! उनकी नाभि रूपी सरोवर को आकाश मानते हैं उन विराट् भगवान की छाती को स्वर्ग लोक, कंठ को महलोक, मुखारबिन्द को जन लोक तथा मस्तक को तपलोक योगीजन मानते हैं। उन सहस्र शीर्ष भगवान् का सिर ही सत्य

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

लोक माना जाता है, सम्पूर्ण देवता उनकी बाहु हैं। दिशाऐं कान तथा शब्द सुनने की इन्द्री हैं। दोनों अश्वनी कुमार नासिका छिद्र तथा गन्ध सूँघने वाली इन्द्री हैं। अग्नि उनका मुख है। अन्तरिक्ष नेत्र हैं, सूर्य उन दोनों की ज्योति है। उनकी पलकें दिन और रात्रि हैं ब्रह्मलोक उनका भ्रू विलास है। तालू, जल और जिह्वा रस है। भगवान् का मस्तक वेद हैं, और दाढ़ें यम है। स्नेह दाँत हैं, तथा उनकी मधुर मुस्कान जगत् को मोहित करने वाली माया है। ऊपर का ओठ लज्जा तथा नीचे का ओठ लोभ है। उनके स्तन धर्म और पीठ अधर्म है। उनकी मूत्रेन्द्रिय प्रजापति ब्रह्मा है। अण्डकोष मित्रावरुण तथा कोख समुद्र है, उनकी हड्डियाँ पर्वत हैं, तथा उन की नाड़ियाँ नदियाँ हैं। वृक्ष उन विराट भगवान् के रोम हैं, और यह वायु उनका श्वास है। उनकी चाल गति है, तथा गुणों का चक्कर उन विराट् भगवान् की क्रीड़ा है। हे राजन्! उनके केश बादल हैं। सन्ध्या उनका वस्त्र है। मूल प्रकृति उनका हृदय है, तथा चन्द्रमा मन है। महत्तत्व उन विराट् भगवानका चित्त है, तथा रुद्रदेव अहङ्कार है। वन्य पशु उनकी कमर हैं, तथा हाथी घोड़े खिच्चर विराट भगवान् के नख हैं। भाँति भाँति के पक्षी गण उनकी कला हैं। बुद्धि मन है और मनुष्य भगवान् का निवास स्थान है। अप्सरा, चारण, गन्धर्व आदि उनके स्वर हैं। दैत्य, राक्षस उनके वीर्य, ब्राह्मण मुखारविन्दु, क्षत्रिय बाहुएँ, वैश्य जंघायें तथा शूद्र उनके चरण हैं, सम्पूर्ण बड़े २ यज्ञ जो देवताओं के निमित्त किये जाते हैं, वे उन विराट् भगवान् के कर्म हैं, । हे राजा परीक्षित ! मैंने तुम्हें विराट् भगवान् के स्थूल शरीर का ज्ञान कराया है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बुद्धि से मन को वश करके इसी विराट स्वरूप भगवान् में लगा कर उन्हीं सच्चिदानन्द घन परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। अन्य सांसारिक विषयों में आशक्ति होना ही जीव को पतन की ओर अग्रसर कराता है।

CC-0. Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

॥ दूसरा अध्याय ॥

छन्द–स्थूल सूक्ष्म रूप कौ शुकदेव ने वर्णन कियौ।
क्रमयुक्ति, साद्योयुक्ति कौ भी ज्ञान राजा को दियौ॥
सुनिके बचन मुनिराय के, नरनाह अति हर्षित भयौ।
मग्न परमानन्द में हो लाभ निज जीवन लह्यौ॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित ! सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ब्रह्मा ने ऐसा ही विचार किया था। ब्रह्मा के इन विचारों से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें प्रलय के पूर्व की स्मृति जो प्रलय काल के कारण लुप्त हो गई थी प्रदान करदी। अपनी पूर्व स्मृति को पाकर ब्रह्मा की बुद्धि निश्चित हो गई। उनकी दृष्टि अमोघ हो गई। उनको भगवान् की लीलाओं तथा उनके ईश्वरत्व का पूर्ण ज्ञान हो गया। उन्होंने उसी ज्ञान के द्वारा संसार की पुनः सृष्टि करदी। हे राजा परीक्षित् वेदों का अर्थ अति रहस्य मय है। उनके अर्थ को न समझ कर बहुत से प्राणी स्वर्गादि की प्राप्ति के चक्कर में फंस जाते हैं। जीव स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति की वासनाओं में भटकता है उसे कहीं भी सच्ची शाँति तथा सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता है। अतः ज्ञानी पुरुषों को चाहिए कि वे सांसारिक वस्तुओं की उतनी चाह करें जितनी उन्हें आवश्यकता हो सब वस्तुओं को निःसार समझ कर उन में लीन न होवे यदि भाग्यवश वे वस्तु अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं तो उनके अधिक उपार्जन का प्रयत्न न करे। जैसे पृथ्वी शयन के लिए मिलती है तो पलङ्ग प्राप्ति का प्रयत्न न करे। यदि भुजायें सिर के नीचे लगाने के लिए मौजूद हैं तो तकिया की कोई आवश्यकता नहीं है। जब अञ्जलि से वर्तनों का काम चल सकता है तब बर्तन जुटाने की आवश्यकता नहीं है। वृक्ष की छाल से वस्त्रों का काम चल सकता है। मार्ग में पड़े हुए चिथड़ों से काम चल सकता है। वृक्षों के फल फूल पत्तों से भूख दूर हो सकती है। जल पीने के लिये नदियाँ हैं। रहने के लिये गुफायें विद्यमान हैं। तब महल बनाने की क्या आवश्यकता है। जब भगवान् अपनी शरण में आये हुओं की रक्षा करते हैं तब किसी भी धनिक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के पास अपनी रक्षा की याचना करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार विचार करके सम्पूर्ण विषय भोगों से चित्त को हटा लेना चाहिए और व्यर्थ की वस्तुएँ संकलन करने में अपने समय को नष्ट न करके भगवत् भजन में चित्त को लगा देना चाहिये। हे बेटा! हे राजा परीक्षित्! अब मैं तुम्हें भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप की धारणा बताता हूँ। बहुत से साधक लोग अपने हृदयाकाश में भगवान् के स्वरूप का चिंतन इस प्रकार करते हैं कि भगवान् चार भुजा धारण किये हुए हैं जिनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। उनके मुख पर मन्द मन्द मुस्कान झलक रही है कमलवत् नेत्र हैं। कमल पुष्प के समान पीला वस्त्र पहने हुए हैं। विशाल भुज दण्डों में रत्न जटित बाजू बन्द हैं। सिर पर अति सुन्दर रत्नजटित मुकुट शोभायमान् हैं। कानों में कुण्डल तथा कंठ में कौस्तुभ मणि और वक्षःस्थल पर श्री वत्स का चिन्ह तथा बनमाला शोभायमान है। योगियों के खिले हुए सहस्र दल वाले हृदय कमल पर उनके चरण विराजमान हैं। भगवान् के बाल चिकने घुँघराले हैं। सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग आभूषणों से सुशोभित हैं। और वे अपनी मन्द मन्द मुस्कान से भक्त की ओर देख रहे हैं। जब तक साधक का मन स्थिर न हो जावे तब तक भगवान् के उसी मोहिनी रूप का ध्यान करना चाहिये। साधक की ज्यों ज्यों बुद्धि तथा मन भगवत् भक्ति में लगता जावेगा त्यों २ उसका चित्त स्थिर होता जावेगा। जब तक साधक को भगवान के एक एक अङ्ग का ठीक २ ध्यान होने लगे तब तक वह नित्य नियम से इसी प्रकार भगवान के स्थूल शरीर का चिंतन करता रहे। भगवान् दृष्टा हैं। उन्ही के सगुण और निर्गुण रूप हैं।

हे राजा परीक्षित्! जब योगी अपने शरीर को त्यागना चाहे तब देश काल का कोई विचार नहीं करे। सुख के साथ एक आसन से बैठ कर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को बस में कर ले तत्पश्चात् अपनी शुद्ध बुद्धि से मनको वश में करे तब तन और बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में (जीव) और क्षेत्रज्ञ को अन्तरात्मा (ईश्वर) में विलीन कर दे। इस प्रकार परमात्मा में विलीन होकर साधक शान्तमय शान्ति हो जाय इतना कर लेने पर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

फिर साधक को कुछ करना शेष नहीं रहता है। उस समय वह सत्व- रज़, तम इन तीनों गुणोंसे मुक्त हो जाताहै। अहङ्कार महतत्व तथा प्रकृति का अस्तित्व भी दूर हो जाता है। उस समय उसे काल भी ग्रसित करने में असमर्थ होताहै। योगीजन परमात्मा के अतिरिक्त सम्पूर्ण पदार्थों को त्याग देते हैं। शरीर से सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण पदार्थों की आसक्ति का त्यागन कर के भगवान के स्वरूप में आसक्त हो जाते हैं। भगवान का यही परमपद है। शास्त्रों में भी ऐसा ही कहा है। जब योगी इतना कर के अर्थात् अपनी इन्द्रियों को जीत ले तब अपनी एड़ी से गुदा मार्ग को बन्द कर के प्राणवायु को षट चक्र भेदन के उपाय से ब्रह्म रन्ध्र की ओर ले जावे। पहिले नाभि चक्र में स्थित वायु को हृदय चक्र में स्थित करे फिर वहाँ से उदान वायु की सहायता से वक्षःस्थल में विशुद्ध चक्र में स्थित करे फिर उस वायु को शनैः शनैः तालिमूल अर्थात् विशुद्ध चक्र के अगले भाग में चढ़ावे। इस के पीछे दोनों आँख, दोनों कान, दोनों नासिका छिद्र तथा मुख इन सातों छिद्रों को बन्द कर के तालिमूल में जो वायु स्थित की गई है उसे दोनों भृकुटियों के मध्य आज्ञा चक्र में स्थिर करे यदि उस योगी को किसी अन्य लोक में बिचरने की इच्छा नहीं है तो आधी घड़ी उस प्राणवायु को आज्ञा चक्र में रोक कर परमात्मा में लीन हो जावे। तत्पश्चात् ब्रह्म रन्ध्र को भेद कर के इन्द्रियों सहित शरीर को त्याग दे।

हे राजा परीक्षित---यदि उस योगी की इच्छा किसी लोक में विचरण करने की है तो मन सहित इन्द्रियों को साथ ले कर शरीर को त्याग देना चाहिये। योगीजनों का शरीर अति सूक्ष्मवायु की भाँति होता है वह सर्वत्र जा सकता है। तपस्या, योग, विद्या और समाधि के द्वारा वह योगी सर्वत्र विचरण करता रहता है। कर्म बन्धन के द्वारा ही प्राणी कहीं वे रोक टोक नहीं विचर सकता है। योगी जब ब्रह्म लोक को जाता है तब प्रथम वह आकाश लोक में रहता हुआ अग्नि लोक में पहुँचता है। वहाँ उसके शेष पाप नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात ध्रुव के निवास स्थान शिशुकुमार चक्र में जाता है। वह शिशुकुमार चक्रब्रह्माण्ड भ्रमण का मुख केन्द्र है तब वह प्राणी महलोक में जाता है। वहाँ पर ब्रह्म वेत्ता योगीजन रहते

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हैं। जब प्रलय काल आता है तब शेष के मुख से अग्नि निकलती है और वह नीचे के सम्पूर्ण जीवों को भस्म कर देती है। तब महलोक निवासी सभी योगी लोग ब्रह्मलोक में चले जाते हैं। उस महलोक में निवास करने वाले प्राणियों की आयु एक कल्प होती है और वहाँ देवता लोग ही विहार करते हैं। ब्रह्मलोक में निवास करने वाले की आयु ब्रह्मा के समान दो परार्द्ध की होती है वहाँ शोक, रोग, मृत्यु जरा आदि कुछ भी नहीं है। किन्तु फिर भी वहाँ वे प्राणी इन जन्म मृत्यु के सङ्कट में फँसने वाले प्राणियों के दुःख को देख कर दयावश दुःखी रहते हैं। योगीजन अपने सूक्ष्म शरीर को पृथ्वी तल में मिला देता है। इस प्रकार पृथ्वीरूप से जल को और जल से अग्नि और अग्नि से वायु के आवरण को भेदता हुआ आकाश रूप आवरण को भेदता है। उस प्राणी की घ्राणेन्द्रिय अपनी गन्ध सहित तन्मात्रा में लीन हो जाती हैं, जिह्वा का रस तन्मात्रा में लीन हो जाता है, नेत्र रूप तन्मात्रा में लीन हो जाते हैं। त्वचा स्पर्श तनन्मात्र में लीन हो जाता है। कान रोम तन्मात्रा में लीन हो जाते हैं। तथा सम्पूर्ण कर्मेन्द्रिय अपनी २ तन्मात्रा में लीन हो कर सूक्ष्म शरीर को प्राप्त करती हैं। प्राणी इस प्रकार पंचभूतों से बने हुए स्थूल शरीर से सूक्ष्म आवरणों में लीन हो जाता है। तब वह अहङ्कार में लीन होजाता है। उसमें वह अपने सूक्ष्म भूतों को भी तामस अहङ्कार में लीन कर देता है। अपनी इन्द्रियों को राजस अहङ्कार में लीन कर देता है और मन सहित सब इन्द्रियों के स्वामी देवताओं को सात्विक अहङ्कार में विलीन कर देता है, तत्पश्चात् वह महतत्व में प्रवेश करता है। इसके पश्चात् सम्पूर्ण गुणों के लय स्थान प्रकृति में लय हो जाता है। हे राजा परीक्षित! महाप्रलय काल में प्रकृति आवरण भी लय हो जाता है किन्तु योगीजन परमानन्द में मग्न हो कर आनन्द स्वरूप ईश्वर में लीन हो जाते हैं। उन्हें इस संसार में आने की आवश्यकता नहीं होती। हे राजा परीक्षित! इसी से ज्ञानियों ने तथा वेदों ने सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति कही है। जो प्राणी सांसारिक विषय भोगों में लीन है उनको भगवान की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई कल्याण-मयी उपाय नहीं है। प्रजापति ब्रह्मा ने सम्पूर्ण वेदों को बड़े ध्यान से पढ़ने के

CC-0. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पश्चात यही निश्चय किया है कि सच्चिदानन्द घन परमात्मा के प्रति भक्ति और प्रेम होना ही सर्वोत्तम धर्म है। सम्पूर्ण प्राणियों तथा भूतों में भगवान श्रीकृष्ण ही आत्मा के रूप में विराजमान हैं। इसलिये हे राजा परीक्षित्! मनुष्य को सर्वदा सब स्थितियों में अपनी शक्ति के अनुसार भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की कथाओं का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये। उस से विषय वासनाओं के सम्पूर्ण विषैले मल धुल जाते हैं, और भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

---❀❀---

॥ तीसरा अध्याय ॥

दोहा--जोइ जोइ मन में होय कामना, सोइ सोइ देवन की करे उपासना।
सब देवन के देव ईश, उन्हीं को नवाओ अपना शीश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित्! अब मैं तुम्हें अलग अलग कामनाओं को पूर्ण करने की विधि का वर्णन करता हूँ। जो साधक ब्रह्मतेज चाहता हो उसे बृहस्पति की पूजा करनी चाहिये। जो शक्तिशाली बनने की इच्छा रखता हो वह इन्द्रकी पूजा करे। जो सन्तान का इच्छुक हो उसे प्रजापति की पूजा करनी चाहिये। जिसे लक्ष्मी की इच्छा हो वह माया देवी की पूजा करे। जो तेज का इच्छुक हो वह अग्नि देव की पूजा करे। जो धन चाहता है वह बसुओं की पूजा करे और जो बीरता का इच्छुक हो उसे एकादश रुद्रों की पूजा करनी चाहिये। जो अन्न की इच्छा रखता हो वह अदिति की पूजा करे। जो स्वर्ग का इच्छुक हो वह देवताओं की पूजा करे। जो राज्य की लालसा करता हो उसे विश्व देवों की पूजा करनी चाहिये। प्रजा को वश में करने की इच्छा से साध्य देवों की पूजा करनी चाहिये। आयु वृद्धि की कामना से दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा करनी चाहिये। पुष्टि प्राप्ति के लिये पृथ्वी की तथा प्रतिष्ठा की कामना के लिये पृथ्वी और आकाश दोनों की पूजा करनी चाहिये। सौन्दर्य प्राप्ति के लिये गन्धर्वों की पूजा करे। पत्नी की चाहना के लिये उर्वशी अप्सरा की पूजा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करनी चाहिये। सब के स्वामी बनने के हेतु प्रजापति ब्रह्मा की पूजा करे। यश प्राप्ति के लिये यज्ञ पुरुष भगवान् की पूजा करे। क्रोध की इच्छा के लिए वरुण की पूजा करे, विद्या प्राप्ति के लिए भगवान् श्रीशंकर की पूजा करे। पति पत्नी में प्रेम रखने की कामना में उमा की पूजा करे। धर्म के लिए भगवान् विष्णु की पूजा करे। वंश की रक्षा के लिये पितृदेवों की पूजा करे। बाधाओं से बचने के लिए यज्ञों की पूजा करे। बलिष्ठ होने के लिए मरुद्गणों की तथा राज्य प्राप्ति के लिए मन्वन्तरों के स्वामियों की, अभिचार के हेतु निऋति की पूजा करें। ऐश्वर्य के लिए चन्द्रमा की तथा निष्काम भक्ति के लिए भगवान् नारायण की पूजा करनी चाहिये। जो मोक्ष का अभिलाषी है उसे तो केवल भगवान् की पूजा करनी चाहिये। सम्पूर्ण उपासकों को अपनी भलाई के लिए भगवान् की उपासना से बढ़कर और कोई उपासना नहीं है भगवान् की उपासना करने से उपरोक्त सम्पूर्ण देवताओं की निधियाँ स्वयं अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं।

श्री शौनक जी बोले–हे सूत जी! राजा परीक्षित ने सर्वज्ञ भगवान् श्रीशुकदेव जी से और क्या पूछा। हे सूत जी! आप भगवत् भक्त हैं। आपकी बाल क्रीड़ाएँ भी भगवत् भक्ति में ही होती थीं। श्रीशुकदेवजी भी भगवानमय हैं। जिन सन्त पुरुषों का भगवान् में इतना विशुद्ध प्रेम है उनकी कथाएँ अवश्य ही सान्सारिक प्राणियों के लिये हितकर होंगी। जिस मनुष्य ने अपने कानों से भगवान् श्रीकृष्ण की लीला कथाएँ कभी नहीं सुनीं। उस मनुष्य ने बृथा ही पृथ्वी पर भार रूप हो कर कुत्ते, सूकर, गधे से भी बुरा जन्म व्यतीत किया है। हे सूत जी! जिन कानों में भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ नहीं पहुँची हैं वे बिल के सदृश्य हैं। जिस जिह्वा ने भगवान् का कीर्तन नहीं किया है वह मेंढक की जिह्वा के समान है। जो शीश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में नहीं झुका है वह केवल शरीर के लिये एक मात्र बोझ है। जो हाथ भगवान् की श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा में रत नहीं रहते हैं वे आभूषणों से सुसज्जित होते हुए भी बेकार हैं। जो आँखें भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के दर्शनों से हीन हैं वे व्यर्थ हैं। जो पग भगवान् की लीला स्थानों तथा तीर्थों में नहीं जाते हैं वे बृक्षों से भी अधिक गये बीते हैं। जिस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पापात्मा मनुष्य ने भगवान की ब्रज भूमि तथा उनके भक्तों के चरणों की धूलि अपने सिर पर धारण नहीं की है। वह जीवित होते हुये भी मरे के समान है। जिसने कभी तुलसी की सुगन्धि प्राप्त नहीं की है, जिसने भगवान की मङ्गल मय कथाओं का श्रवण, कीर्तन नहीं किया है, उसका हृदय बज्र के समान है। भगवत् कथा श्रवण के समय उनके प्रेम उद्वेग में जिसके नेत्रों में आँसू नहीं छलकते हैं जो पुलकायमान नहीं होता है उसका जन्म बृथा है। इसलिए सूतजी ! आप हमें कृपा करके वह कथा सुनाइये जो राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से पान की थी।

—❀❀❀—

॥ चौथा अध्याय ॥

दोहा—सृष्टि उत्पत्ति प्रश्न तब, पूछौ राउ सिहाय।
योगीश्वर शुकदेवजी, कहैं सभी समुझाय ॥

सूतजी बोले—हे शौनक जी ! श्री शुकदेव जी के रहस्यमय भगवत् भक्ति में सने हुये बचनों को सुनकर राजा परीक्षित ने अपने मनको भगवान् के चरणों में लगा दिया। वे निश्चल बुद्धि से एकासन लगा कर बैठे थे। उन्हें गृह सम्बन्धी कोई चिन्ता नहीं थी क्योंकि पत्नी पुत्र राज्य, कोष,सब का भार भाई, बन्धुओं पर सौंप दिया था। उन्हें जो कुछ थोड़ी सी ममता थी वह भी श्री शुकदेव जी की कृपा से त्याग दी। उन्हें अपना मृत्यु समय मालूम था, इस लिए उन्होंने सम्पूर्ण सांसारिक विषय वासनाओं से मोह हटा-लिया था। इस प्रकार विशुद्ध बुद्धि वाले राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा—हे भगवन् ! आप भगवत् तत्व के ज्ञाता हैं सर्वज्ञ और पवित्रात्मा हैं। आपके मुखारविन्द से ज्यों ज्यों मैं भगवान् की कथा श्रवण करता जाता हूँ त्यों त्यों ही मेरे सम्पूर्ण पाप और अज्ञान दूर होते जाते हैं। अब यह जानना चाहता हूँ, कि भगवान् नारायण सृष्टि की रचना किस प्रकार करते हैं। वे किस प्रकार जगत की रचा और संघार करते हैं। परमात्मा किस प्रकार अपनी सृष्टि को रच कर उस के साथ क्रीड़ा करते हैं। अनन्त

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

शक्तिशाली भगवान् किस प्रकार इन ब्रह्माण्डों को रचते हैं और किस प्रकार उन्हें नष्ट कर देते हैं। भगवान् केवल एक होते हुए भी इस अनेक रूप वाली सृष्टि को किस प्रकार रचते हैं। इसलिए हे मुनीश्वर! मेरे इस सन्देह को दूर कीजिए।

सूतजी बोले--हे शौनकादि ऋषियो! राजा परीक्षित के ऐसे गूढ़ वचनों को सुनकर श्रीशुकदेवजी इस प्रकार बोले—मैं उन परम पुरुष भगवान् के चरणारविन्दों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ जो इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने के हेतु सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण रूपिणी अपनी तीनों शक्तियों को धारण करके ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का स्वरूप प्रगट करते हैं। वे भगवान् सम्पूर्ण चल और अचल जीवों के हृदय में विद्यमान रहते हैं, जिन्हें प्राणी अपनी बुद्धि से भी नहीं पहचान सकता है। वे अनन्त हैं तथा उनकी महत्ता भी अनन्त है। हम बारम्बार उनको नमस्कार करते हैं। जो भक्तों के कष्टों को दूर करने के लिये दुष्टों की शक्ति को रोकने के लिए बारम्बार अवतार धारण करते हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जो सर्वदा अपने गौलोकधाम में विहार करते हैं तथा जो ब्रह्मरूप हैं जिनके नामों का कीर्तन, श्रवण, स्मरण, दर्शन, पूजन, तथा बन्धन जगत के प्राणियों के पापों को इस प्रकार जलाकर भस्म कर देते हैं जिस प्रकार अग्नि रुई के ढेर को जला देती है। ज्ञानी जन जिनके चरणों का आश्रय लेकर इस लोक और परलोक की आसक्ति को अपने हृदय से हटाकर अनायास ही ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं, मैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को कोटि २ प्रणाम करता हूँ। बड़े बड़े तपस्वी, मनस्वी योगी, मन्त्रवेत्ता, ब्रह्मचारी, सदाचारी यज्ञ करने वाले, दानी, अपनी कामनाओं को तथा अपने सर्वस्व को जब तक उन भगवान् श्री कृष्ण के चरणों में नहीं अर्पण कर देते हैं तब तक उनका कल्याण नहीं होता है। भगवान के चरणों में आत्म समर्पण कर देना ही कल्याण कारी मार्ग है। बड़े २ घोर पापी और नीच जिनके चरणों में आने से सहज ही में मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं उन्हीं भगवान् को मेरा बारम्बार नमस्कार है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ज्ञानियों की आत्मा, भक्तों के ईश्वर, कर्म,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करने वालों के निमित्त वेद तथा धार्मिकों के हेतु धर्म एवं तपस्या करने वालों के लिये तप रूप हैं उनके ब्रह्म स्वरूप का ध्यान ब्रह्मा तथा शङ्कर जी आदि समस्त देवगण करते रहते हैं, और उनके चिन्तन में ही सर्वदा रत रहते हैं। जो लक्ष्मी के पति हैं, यज्ञ पुरुष हैं, प्राणियों के रक्षक घट घट वासी तथा लोकपाल हैं। पृथ्वी के स्वामी और यदुवंशियों के रक्षक हैं, उन भक्तवत्सल सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ। जिन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने ब्रह्मा के हृदय में उनकी पूर्व स्मृति जगादी और जिन्होंने साङ्गोपाङ्ग वेद को अपने मुख से प्रकट किया है वे ज्ञान के उत्पन्न करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे हृदय में बिराजमान हों जो भगवान सम्पूर्ण प्राणियों में आत्म रूप से विराजमान होकर पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच प्राणवायु और एक मन इन सोलहों कलाओं के द्वारा भोग भोगते हैं, वेही भगवान् मेरी वाणी को शुद्ध करें। मैं भगवान् ब्यासजी के चरण कमलों में कोटि कोटि प्रणाम करता हूँ।

हे राजा परीक्षित! तुमने जो प्रश्न किया है उसके उत्तर में मैं तुमसे वह उपदेश करूँगा जो नारायण ने प्रजापति ब्रह्मा को सर्व प्रथम किया था। यद्यपि प्रजापति ब्रह्मा सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता हैं किन्तु फिर भी वह उपदेश उनके लिये अति आवश्यक था। उस उपदेश को ब्रह्माजी ने नारद जी को सुनाया था।

—❀❀❀—

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

दोहा–विराट रूप भगवान् को, कह्यौ ब्रह्म समुझाय।
किंहि विधि जग की उत्पत्ति, होइ विराट से आय॥

नारदजी बोले–हे प्रजापति! आपने केवल मुझे ही उत्पन्न नहीं किया है। अपितु सम्पूर्ण देवताओं तथा इस सम्पूर्ण सृष्टि को भी आपने जन्म दिया है। अतः आप मुझे आत्मा तथा परमात्मा का ठीक ठीक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तत्व समझाइये। हे पिता जी! इस जगत का लक्षण क्या है? यह किस के आधार पर है। इसकी रचना किसने की है। यह किस में लीन हो जाता है, तथा किसके अधीन है, वास्तव में यह क्या वस्तु है। कृपा कर के आप मुझे इन सम्पूर्ण तत्वों का निरूपण कीजिये आप सर्वज्ञ हैं, सबके स्वामी हैं यह संसार हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान आपके लिए है। हे पिता जी! आपको यह ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ। आप किस प्रकार से अपनी माया से उत्पन्न किये हुये पंचभूतों द्वारा सम्पूर्ण जगत की सृष्टि करते हो। इस जगत को उत्पन्न करने पर भी आप में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है। आप सृष्टि के रचियता होते हुए भी फिर आप किसीकी तपस्या करते हैं आप से भी बड़ा कौन है? इस तत्व को आप ठीक ठीक समझाइये।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तुमने जो प्रश्न किये हैं वे अत्युत्तम हैं। वे तुम्हारे लिए ही केवल लाभप्रद नहीं है किन्तु सारे संसार के लिए भी लाभप्रद हैं और मुख्यतः मेरे लिए क्योंकि उनमें भगवान् की लीलाओं का सुन्दर वर्णन है। तुम्हारी जो शङ्कायें हैं, वह सब सत्य हैं हे नारद! इस सृष्टि का रचियता तुम केवल मुझको ही मानते हो सो ऐसा नहीं है, मुझसे भी परे एक ब्रह्म शक्ति है, जिसका आश्रय लेकर मैं सृष्टि रचता हूँ। जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा अग्नि गृह नक्षत्र उस ब्रह्म शक्ति के द्वारा प्रकाशमान् होते हैं उसी प्रकार मैं भी उसी स्वयं प्रकाश भगवान् के प्रकाश से शक्ति सम्पन्न होकर इस संसार को रचता हूँ। लोग उसी भगवान् की माया से मोहित होकर मुझे ही सृष्टिकर्ता मानते हैं किंतु ऐसा नहीं है। मैं भी उन्हीं के आधीन रहता हूँ। और उन्हीं की प्रेरणा से इस सृष्टि को रचता हूँ। हे नारद! संसार की सृष्टि के हेतु जिन मूल कारणों की कल्पना की गई है वह द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव तथा जीव, यही तत्व हैं उन्हीं से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है। भगवान् ने वेदों को उत्पन्न किया है। वेद उन्हीं भगवान् की महिमा को गाते रहते हैं, देवता भी भगवान् नारायण से उत्पन्न हुए हैं। यह सम्पूर्ण यज्ञ, तप, कर्म, धर्म उन्हीं भगवान् नारायण की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं। ज्ञान से ही भगवान्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नारायण को पहचानते हैं। भगवान नारायण द्रष्टा होने पर भी सबके ईश्वर हैं। निर्विकार होने पर भी सर्वमय हैं। उन्हीं भगवान् ने मेरी उत्पत्ति की है और उन्हीं के द्वारा प्रेरित होकर मैं इस जगत की उत्पत्ति करता हूँ। हे नारद ! सबसे पहले रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण ये तीनों गुण भगवान् अपनी माया से अपने में उत्पन्न करते हैं, उसी के अनुसार रजोगुण से सृष्टि रची जाती है, सत्वगुण से सृष्टि की स्थिति होती है और तमोगुण से उसका प्रलय हो जाता है। ये ही तीनों रज, सत और तम द्रव्य ज्ञान और क्रिया का सहारा लेकर माया से परे नित्य युक्त जीव को माया में स्थिति करके कार्य कारण और कर्त्तापन के अभिमान से घेर लेते हैं। हे नारद ! भगवान् नारायण इन तीनों गुणों के आवरण से अपने स्वरूप को छिपा लेते हैं, इसी कारण अज्ञानी पुरुष उनको नहीं देख पाते हैं। वे भगवान् ही सम्पूर्ण संसार और मेरे रचने वाले हैं। जब मायापति भगवान् की इच्छा सृष्टि रचने की होती है तब वे अपनी माया के द्वारा स्वयं काल कर्म और स्वभाव को पहले स्वीकार करते हैं, उन्हीं नारायण की शक्ति से काल रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण में क्षोभ उत्पन्न कर देता है और स्वभाव उसमें रूपान्तर कर देता है, कर्म महतत्व को जन्म देता है तत्पश्चात् रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि से महतत्व में विकार उत्पन्न होकर ज्ञान क्रिया और द्रव्य रूप अहंकार उत्पन्न होता है,यह तम प्रधान अहंकार तीन प्रकार का होता है, एक वैकारिक दूसरा तेजस तीसरा तामस, इनमें क्रमशः ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति तथा द्रव्य शक्ति होती है, तब तामस अहंकार में विकार उत्पन्न होता है तब उससे आकाश तत्व की उत्पत्ति होती है आकाश तत्व की तन्मात्र और गुण शब्द होता है। इस शब्द से ही द्रष्टा और द्रश्य का ज्ञान होता है। तत्पश्चात् जब आकाश तत्व में विकार उत्पन्न होता है तब उससे वायु तत्व की उत्पत्ति होती है। वायु तत्व का गुण शब्द और स्पर्श दोनों हैं। इन्द्रियों में स्फूर्ति, शरीर में जीवन शक्ति, बल तथा ओज इसी के कारण होते हैं, काल कर्म तथा स्वाभावानुसार वायु में भी विकार उत्पन्न होता है। उससे अग्नि तत्व की उत्पत्ति होती है इसका मुख्य गुण रूप है। इसके साथ साथ अपने बनाने वाले आकाश और वायु तत्व के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भी गुण इसमें शब्द और स्पर्श रूप में विद्यमान रहते हैं। अग्नि के विकार से जल तत्व उत्पन्न होता है, इसका मुख्यगुण रसहै। तथा इसके उत्पन्न करने वाले आकाश, वायु और तेज के भी गुण शब्द स्पर्श और रूप इस में विद्यमान हैं। जल के विकार से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है, इस का मुख्य गुण गन्ध है। तथा इस के कारण तत्वों के गुण, शब्द स्पर्श रूप तथा रस ये भी इस में विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक तत्व में उस का मुख्य गुण तथा उसके उत्पन्न करने वाले तत्वों का गुण भी उसमें विद्यमान रहता है, वैकारिक अहङ्कार से मन तथा इन्द्रियों के अधिष्ठात्र के दस देवताओं की उत्पत्ति होती है। जिनके नाम इस प्रकार हैं। दिशा, वायु, सूर्य; वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि इन्द्र विष्णु, पित्र तथा प्रजापति। तेजस अहङ्कार में जब विकार उत्पन्न होता है उससे पाँच कर्मेन्द्रियाँ—श्रोत्र, त्वचा घ्राण नेत्र तथा जिह्वा उत्पन्न होती हैं। तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ मुख, हाथ पाद, मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा की सृष्टि होती है। तेजस अहंकार से ही बुद्धि और प्राण की उत्पत्ति होती है हे नारद! जिस समय यह सम्पूर्ण तत्व अलग २ थे तब तक ये सृष्टि रचना नहीं कर सकते थे। और न शरीर की ही रचना कर सकते थे। जब परमात्मा ने अपनी शक्ति के द्वारा प्रेरित करके इनको परस्पर मिला दिया तब इन तत्वों ने कार्य कारण और स्वभाव स्वीकार करके इस सपूर्ण विश्व की रचना कर दी। उसी को ब्रह्माण्ड भी कहते हैं। यह ब्रह्माण्ड रूपी अण्डा एक सहस्र वर्ष तक जलमें ही स्थित रहा। फिर काल कर्म और स्वभाव को ग्रहण करने वाले भगवान् ने उसमें प्राण डाल दिया। उसी अण्डे को तोड़ कर विराट् भगवान निकले जिनकी जंघा चरण, भुजाएँ नेत्र, मुख तथा सिर सहस्रों हैं। ज्ञानीजन उपासना के हेतु उन संपूर्ण लोकों की स्थिति उन्हीं बिराट् भगवान में मानते हैं। उसके कटि भाग से नीचे के अङ्गों में सप्त पाताल तथा ऊपर के अङ्गों में सप्त स्वर्गों की कल्पना करते हैं। इन विराट् भगवान का मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजाएँ, उरु वैश्य और पैर शूद्र माने जाते हैं। नाभि में भुवलोक हृदय में स्वर्गलोक, वक्षःस्थल में महलोक, कंठ में जनलोक, दोनों स्थानों में तपलोक तथा मस्तक में सत्यलोक की स्थिति है। कटि में अतल उरुओं

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में वितल, घुटनों में सुतल, जाँघों में तलातल, एड़ी की गाँठों में महातल, पंजे में रसातल तथा तलवाओं में पाताल लोक की स्थिति मानी जाती है। विराट् भगवान् के सम्पूर्ण अङ्गों में लोकों की स्थित है।

—❀—

॥ छटवाँ अध्याय ॥

दो०—विराट रूप की विभूतियाँ, ब्रह्मा कहीं सिहाय ।
जिहि बिधि उत्पन्न होत है, सृष्टि जगत समुदाय ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद ! विराट् भगवान् के मुखारविन्द से वाणी तथा अग्नि की उत्पत्ति हुई है। गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, डाष्टीक, वृहती, पंक्ति तथा जगती में सातों छन्द विराट् भगवान् की सात धातुओं से उत्पन्न हुए हैं। अन्न, रस, रसना तथा उसके अधिष्ठाता वरुण देवता विराट् भगवान् की जीभ से प्रगट हुए हैं। पाँचों प्राण वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान वायु विराट् भगवान् के नासा छिद्र से उत्पम्न हुई हैं। दोनों अश्वनीकुमार,औषधियाँ तथा गन्ध प्राणेन्द्रिय से उत्पन्न हुए हैं। नेत्रों से तेज और रूप उत्पन्न हुआ है तथा दोनों नेत्र गोलोक सूर्य और स्वर्ग-लोक की उत्पत्ति स्थान है। कानों से सम्पूर्ण तीर्थ तथा दिशायें उत्पन्न हुई हैं श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द तथा आकाश की उत्पत्ति हुई है। सम्पूर्ण यज्ञ वायु तथा स्पर्श उनकी त्वचा से उत्पन्न हुए हैं। वृक्ष औषधि कुश उन के रोमों से उत्पन्न हुए हैं। बिजली, बादल, पत्थर, लोहा आदि सम्पूर्ण यज्ञ उनके केशों तथा नखों से उत्पन्न हुए हैं। भुजाओं से लोकपाल उत्पन्न हुए हैं। भूः भुवः स्वः तीनों लोक उनके चलने से उत्पन्न हुए हैं। भगवान् विराट् पुरुष का लिंग स्थान प्रजापति वीर्य तथा सृष्टि का आश्रय स्थान है। उनकी पाँच इन्द्रिय यम पित्र की उत्पत्ति का स्थान है । गुदा द्वार हिंसा निऋ ति मृत्यु और नरक को उत्पन्न करने का स्थान है। विराट् भगवान् की पीठ पराजय तथा अधर्म का स्थान है। नाड़ियों से नदियों की उत्पत्ति हुई है। हड्डियोंसे पहाड़ोंकी उत्पत्ति हुई है। हे नारद ! मैं शङ्कर तथा तुम्हारे भाई सनकादिक, तुम, धर्म, देवता, दैत्य, मनुष्य, नागप ,क्षी, स्वेदज, अंडज

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जरायुज आदि सभी प्राणी, पितर, सिद्धनाग, आकाश, आदि सम्पूर्ण भूत नक्षत्र ग्रह, आदि सब विराट् भगवान् से ही उत्पन्न हुए हैं। वे स्वयं प्रकाश विराट् भगवान् ही सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्रों तथा भूतों को प्रकाशित करते हैं, वे सम्पूर्ण लोक भूत प्राणी विराट् पुरुष में समाये हुए हैं तथा विराट् पुरुष उन में समाये हुए हैं।

हे नारद ! जन लोक तप लोक तथा सत्य लोक में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी रहते हैं। गृहस्थ लोग भूलोक आकाश लोक तथा स्वर्गलोकमें रहते हैं। प्राणियों के लिए शास्त्रों में भगवत् प्राप्ति के दो मार्ग हैं एक सकाम कर्म योग दूसरा निष्काम कर्म योग। मनुष्य इन दोनों मार्गों में से किसी एक मार्ग का आश्रय लेकर भोग तथा मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

हे नारद ! उन विराट् भगवान् की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और उस कमल से मेरी उत्पत्ति हुई। जब मैं उत्पन्न हुआ तब अकेला ही था। मैंने सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री तथा आवश्यक वस्तुएँ औषधियाँ, घृत, रस, मिट्टी, जल ऋग, यजुः, साम, यज्ञों के नाम तथा मन्त्र अनुष्ठान की विधि आदि समस्त सामिग्री विराट् भगवान् के शरीर से प्राप्त करके यज्ञ द्वारा उनका भजन किया। तदनन्तर तुम्हारे भाइयों ने उन विराट् भगवान् की पूजा की। भगवान् पुरुष प्राकृत गुणों से रहित होते हुए भी सृष्टि रचने के लिये अपनी माया से उन्हें ग्रहण कर लेते हैं। उन्हीं भगवान् की इच्छा से मैं उत्पन्न हो कर सृष्टि रचता हूँ विष्णु पालन करते हैं तथा शंकर प्रलय करते हैं। हे नारद ! जो तुमने पूछा था उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया। हम लोग भी भली प्रकार उन्हें तत्व से नहीं जानते हैं केवल उनकी कथा लीलाओं का ही गुणगान करते रहते हैं। भगवान् तो भक्ति से वश में होते हैं। वे अजन्मा हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

हे नारद ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख भगवान् की उन्हीं लीलाओं का वर्णन करता हूँ। जिनके श्रवण करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं। प्राणी जीवन मरण के दुख से मुक्त हो जाता है। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

———:❀:———

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सातवाँ अध्याय ॥

दोहा—सप्तम में वर्णन किये, चौबीस हरि अवतार ।
कर्म रूप गुण आदि सब, ब्रह्मा कीन्ह विस्तार ॥

(भगवान् के लीलावतारों का वर्णन) ब्रह्माजी बोले—हे नारदजी ! प्रलय काल में जब यह पृथ्वी जल में डूब गई थी तब उस पृथ्वी को जल से निकालने के लिए भगवान ने (१) वाराह अवतार धारण किया । उस समय आदि दैत्य हिरणाक्ष का जल में संहार किया । उन्होंने अपनी दाढ़ों से उस दैत्य के टुकड़े २ करके मार डाला था । (२) उसके पश्चात् भगवान ने सचि प्रजापति की आकृति नाम की पत्नी के गर्भ से सुयज्ञ के नाम से अवतार धारण किया उन्होंने दक्षिणा नामकी पत्निके गर्भ द्वारा सुयम नाम के बहुतसे देवता प्रकट किए । उन्होंने देवताओं के संकट दूरकिये । कष्ट हर लेने के कारण उनका नाम हरि पड़ा । (३) कर्दम प्रजापति की पत्नी देवहूति से कपिल नाम से भगवान् ने अवतार धारण किया । उन्होंने अपनी माता देवहूति को सांख्य योग का उपदेश किया (४) महर्षि अत्रि की अनुसूइयानाम की पत्नी से दत्तात्रेय का अवतार धारण किया । जिन्होंने यदु और सहस्रार्जुन को योग का उपदेश किया । (५) हे नारद ! मैंने सृष्टि के आरम्भ में अनेक लोकों की रचना के लिए घोर तप किया । इस तप से प्रसन्न हो कर मेरे 'सन' नाम के चार पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत-कुमार के रूप में अवतार धारण किया । जिन्होंने अपने उपदेश से प्रलय काल में भूले हुए ज्ञान को पुनः ऋषियों को समझाया (६) दक्ष प्रजापति की कन्या मूर्ति के गर्भ से धर्म के द्वारा भगवान ने नर नारायण का अवतार लिया । उन्होंने ऐसा घोर तप किया कि उनके तप को बड़ी बड़ी अप्सरायें भी खंडित न कर सकीं । (७) उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव को दर्शन देने के लिये भगवान् ने अवतार धारण किया । (८) राजा बेन बड़ा पापी था ब्राह्मणों ने अपनी हुंकार से उनको मार डाला था । उसके शरीर का मन्थन करने से भगवान पृथु नाम से उसके शरीर से प्रकट हुए । उन्होंने अपने पापी पिता वेनु का उद्धार किया और समस्त पृथ्वी को जीत कर धर्म की

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

स्थापना की। पृथ्वी को गाय बनाकर उसमें से सम्पूर्ण तत्वों का दोहन किया। (९) राजा नाभि की पतिव्रता पत्नी सुदेवी के गर्भ से ऋषभ देव के रूप में भगवान् ने अवतार धारण किया। उन्होंने मूढ़ पुरुष की भाँति योग की साधना की और समस्त ऋषियों को परमहंस तथा अवधूतों के लक्षणों का उपदेश दिया। (१०) भगवान् ने हयग्रीव के रूप में अवतार धारण किया। भगवान् का यह अवतार वेदमय, यज्ञमय तथा सर्वदेवमय था। उनकी नासिका की श्वाँस से वेदवाणी उत्पन्न हुई (११) चाक्षुष मन्वन्तर के समाप्त होने पर राजर्षि सत्यव्रत ने मत्स्य भगवान् के दर्शन किए। राजर्षि सत्यव्रत प्रलयकाल के समय पृथ्वी रूपी नौका में बैठकर उन्हीं मत्स्य भगवान् की कृपा से वेदों तथा सम्पूर्ण जीवों की रक्षा कर सके थे। (१२) क्षीर सागर मन्थन करते समय भगवान् ने कच्छप अवतार धारण किया, और मन्दराचल पर्वत को अपनी पींठ पर धारण किया। (१३) हिरण्यकश्यप दैत्य का संहार करने के लिए भगवान ने नृसिंह अवतार धारण किया और प्रहलाद भक्त की रक्षा की (१४) गज और ग्राह एक महान सरोवर में सैकड़ों बर्षों से युद्ध कर रहे थे, तब ग्राह ने गज को पानी में खींच लिया केवल जौ के बराबर सूँड़ शेष रह गई थी। उसने अन्त समय में अपनी रक्षा के लिये भगवान् को पुकारा तब सर्व शक्तिमान भगवान ने गज की रक्षा के लिये अवतार धारण किया था, और उस गजेन्द्र को विपत्ति से बचाया। (१५) जब राजा बलि ने अपनी महान शक्ति से देवराज इन्द्र को हरा कर त्रिलोकी का राज्य छीन लिया था, तब भगवान ने वामन अवतार धारण किया और राजा वलि से त्रिलोकी का राज्य ले कर इन्द्र को दे दिया। उन्होंने उपेन्द्र की पदवी धारण कर के देवताओं की रक्षा की। (१६) हे नारद! तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने हंस का अवतार धारण कर तुम्हें भागवत् धर्म का उपदेश किया (१७) उन्हीं भगवान् ने स्वायम्भुव मनु का अवतार धारण कर के प्रत्येक मन्वंतर में मनुष्य की रक्षा की है। (१८) भगवान् ने धन्वन्तरि के रूप में अवतार लेकर आयुर्वेद की रचना की। (१९) जब क्षत्रिय लोग ब्राह्मण द्रोही और धर्म की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले हो गये, तब परशुराम का अवतार धारण करके पृथ्वी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

से २१ बार क्षत्रियों का नाश किया। (२०) जब त्रेतायुग में दैत्यों का अधिक अत्याचार बढ़ने लगा और लंका का राजा रावण सम्पूर्ण दैत्यों का राजा हुआ तब उसकी शक्ति को नष्ट करने के लिए भगवान् ने रामका अवतार धारण किया था, और बानरों की सेना की सहायता से रावण सहित सम्पूर्ण महापराक्रमी दैत्यों का संहार किया। (२१) द्वापर में जब सम्पूर्ण दैत्य पृथ्वी पर राजाओं के रूप में अवतार लेंगे और वे अपने अत्याचारोंसे पृथ्वी को रोंदने लगेंगे, तब पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी सम्पूर्ण कलाओं से बलराम और श्रीकृष्ण का अवतार धारण करेंगे। जो अनेकों बाल लीलाएँ ब्रजधाम में करेंगे। कंस, जरासिंधु, शिशुपाल आदि समस्त दैत्यों का संहार करेंगे। उसके पश्चात् महा भारत युद्ध रच कर अपने सखा अर्जुन के द्वारा बचे खुचे सम्पूर्ण दैत्यों को मरवा डालेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार सोलह कलाओं से पूर्ण होगा। (२२) हे नारद! इसके पश्चात् भगवान पाखंडी ब्राह्मणों को उपदेश देने के लिये बुद्ध के रूप में अवतार धारण करेंगे। (२३) जब पृथ्वी पर शूद्रों का राज्य स्थापित हो जावेगा। ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य अपने २ कर्मों को त्याग देंगे! जब (स्वाहा) 'स्वधा' और बष्टकार की ध्वनि तथा देव पितरों के यज्ञ तथा श्राद्ध सभी नष्ट भ्रष्ट हो जावेंगे, तब कलियुगके अन्त में कल्कि भगवान अवतार धारण करेंगे।

हे नारद! सृष्टि के आरम्भ में तपस्या, नौ प्रजापति मरीचि, आदि ब्रह्मर्षि मेरे से उत्पन्न होते हैं। जब सृष्टि की रक्षा के लिए धर्म, विष्णु, मनु, देवता तथा राजाओं के रूप में भगवान् अवतार लेते हैं। जब प्रलय काल का समय होता है तब अधर्म, रुद्र तथा क्रोध एवं दैत्यों के रूप में भगवान् की विभूतियाँ उत्पन्न होती हैं। हे नारद! पृथ्वी के कण गिने जा सकते हैं, किन्तु उनकी विभूतियाँ नहीं गिनी जा सकती हैं। उनके स्वरूप को न मैं जानता हूँ और न सनकादिक ही जानते हैं। फिर अन्य तो जान ही क्या सकते हैं। भगवान शेष उनके गुणों का गायन निरन्तर अपने सहस्र मुखों से करते रहते हैं। किंतु वे भी उनका पार नहीं पा सके हैं। हे नारद! उनकी योग माया को मैं जानता हूँ, तुम जानते हो भगवान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

शंकर जानते हैं, उनके प्रिय भक्त प्रह्लाद, शतरूपा, मनु तथा प्रियव्रत जानते हैं। प्राचीन-बर्हि, ऋभु, ध्रुव, इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचुकुन्द, राजा जनक जानते हैं, तथा गाधि, रघु, राजा अम्बरीष, राजा सगर, गय, राजा ययाति राजा मान्धाता, अलर्क, तथा शतधनु जानते हैं। अनु, रन्तिदेव बृह्मचारी भीष्म, राजा बलि, दिलीप, अमूर्त्तरम, उतंक, सौभरि, राजा शिवि, देवल पिप्पलाद, उद्धव, पाराशर, सारस्वत, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान, अर्जुन, आर्टिषेण, बिदुर, तथा श्रुतदेव जानते हैं।

हे नारद! ब्रह्म का वास्तविक रूप सर्वमय तथा ज्ञान स्वरूप है, वह एक रस तथा शांतिमय है। वह स्वरूप उनकी माया के मल से रहित है। मैंने तुमसे भगवान के अवतार तथा उनके स्वरूप का वर्णन किया। जो उपदेश भगवान ने सृष्टि के आदि में मुझे चार श्लोकों में दिया था, उसी भागवत् उपदेश को मैंने तुम्हें दिया है। अब तुम इस उपदेश को विस्तार पूर्वक भक्त जनों में फैलाओ। जिसमें प्रेममयी भगवत् भक्ति का उद्वेग प्रवाहित होवे। जो भक्तजन उनके भागवत् तत्व को जानते हैं, वे उनकी माया से मुक्त हो जाते हैं।

—❀❀❀❀—

॥ आठवाँ अध्याय ॥

चौपाई—ज्ञान अगाध राउ मन उदयू। विविध प्रश्न पूछत मुनि भयऊ॥

राजा परीक्षित बोले—हे योगिराज! आप सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता और ब्रह्म स्वरूप हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि ब्रह्माजी द्वारा उपदेश प्राप्त करके नारदजी ने किस भगवत् स्वरूप का विस्तार किया। आप मुझे भी ऐसा ही उपदेश दीजिए जिससे मैं परमब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र में लीन होकर अपने शरीर को त्याग सकूँ। हे मुनिदेव जी! जो भक्तजन नित्य उनके चरित्रों का श्रवण गायन करते हैं, भगवान श्रीकृष्ण कान छिद्रों द्वारा उनके हृदय कमल पर विराजमान हो जाते हैं। हे ब्रह्मन्! जीव का पञ्च-भूतों से कोई सम्बन्ध न होते हुए भी उसका शरीर पंचभूतों से बना हुआ है। इसका क्या कारण है?

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

आपने बताया है कि लोकों के रचियता ब्रह्मा जी भगवान् की नाभि कमल से उत्पन्न हुए तथा विराट् भगवान भी अन्य प्राणियों की भाँति अवयब युक्त होते हैं, तो इस में उनकी कौनसी विशेषता हुई। जिन भगवान् से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होती है। उनसे लोक तथा लोकपालों की रचना किस प्रकार हुई ? साथ ही साथ आपने यह भी बताया है कि वे स्वयं ही लोकपालों के रूप में प्रगट हुआ करते हैं। इन दोनों बातों का क्या अर्थ है ? कल्प, महाकल्प और अवान्तर कल्प की कितनी संख्या है ? जीवों की आयु का परिमाण क्या है ? तीनों कालों को किस प्रकार पहिचानते हैं, काल की सूक्ष्म और स्थूल गति क्या है ? देव, पितर और मनुष्य योनियाँ किस प्रकार प्राप्त होती हैं ? किन २ कर्मों से उसकी प्राप्ति होती है ? जलचर, थलचर और नभचर, स्थावर जङ्गम सभी प्राणियों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? ब्रह्माण्ड का परिमाण क्या है। वर्णाश्रम के भेद तथा धर्म का क्या स्वरूप है ? युग कितने हैं ? उन के क्या परिमाण हैं ? मनुष्य के करने योग्य क्या धर्म है ? तत्व कितने हैं ? इनके स्वरूप तथा लक्षण कितने हैं ? आराधना तथा अध्यात्म योग के क्या स्वरूप हैं। योगीजन अन्त में किस गति को प्राप्त होते हैं ? उनका पंच तत्व वाला शरीर किस प्रकार नष्ट होता है ? वेद, उपनिषद, शास्त्र पुराणों का क्या रूप है ? तथा उनका क्या तात्पर्य है ? इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन तथा नाश किस प्रकार होता है ? यज्ञ यज्ञादि कर्मों के करने से क्या लाभ ? अर्थ, धर्म काम मोक्ष किस प्रकार प्राप्त होते हैं ? जो प्राणी प्रलय काल में प्रकृति में लीन हो जाते हैं फिर उनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? आत्मा किन कर्मों से बन्धन तथा मोक्ष को प्राप्त होती है। आत्मा का स्वरूप क्या है। भगवान अपनी माया से क्रीड़ा करते हुये किस प्रकार उदासीन रहते हैं ? हे ब्रह्मज्ञानी श्री शुकदेवजी ! मैं आप की शरण में हूँ। मुझ दास को अन्त समय में संसार की माया से मुक्त करने वाले केवल आप ही हैं ? मुझे यथा विधि सम्पूर्ण भेदों को समझाइये। श्रीसूतजी बोले—हे शौनकजी ! जब राजर्षि परीक्षित ने उन अट्ठासी सहस्र ऋषि मण्डली में इस प्रकार प्रार्थना की, तब योगीश्वर भगवान् शुकदेव जी ने प्रसन्न हो कर मोक्ष को

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

देने वाला श्रीमद्भागवत् महापुराण राजा परीक्षित को सुनाया। राजा परीक्षित ने उन से जितने प्रश्न तथा शंकायें की उन सब का निवारण उन्होंने बड़े प्रेम से किया।

——:❀:——

॥ नवाँ अध्याय॥

चौपाई—एक समय 'तप' कीन्ह बिचारा। कौन मात और पिता हमारा।
किसने अमल कमल उपजाया। किसके आश्रय कहाँ से आया॥
गगन गिरा सुनि 'तप' हरषाये। करनलगे तप चित्त अति लाये।
भये प्रगट जब जग आधारा। कह्यौ भागवत् धर्म अपारा॥
चार श्लोक विधिहि समुझाये। पाइ भेद ब्रह्मा हरषाये॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! स्वप्न में देखे हुए पदार्थों से जिस प्रकार कोई सम्बन्ध नहीं होता है, उसी प्रकार आत्मा का भी इन सांसारिक पदार्थों से कोई सम्बम्ध नहीं है। आत्मा अपने अज्ञान वश माया से मोहित हो कर ही इन नष्ट होने वाले सारहीन पदार्थों को अपना मानने लगता है। जब यह आत्मा माया में लीन हो जाती है, तब अपने को कर्त्ता मान कर–'मैं हूँ, यह मेरा है' आदि मानता है। लेकिन जब यह आत्मा उस माया के आवरण को चीर कर उस में मोहित नहीं होता तथा सत्व, रज, तम तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाले काल से परे हो जाता है तब यह आत्मा अपने ही में रम जाता है, और वह आत्माराम ही हो जाता है। उस समय आत्मा ममत्व का भाव त्याग कर सांसारिक पदार्थों से उदासीन हो जाता है। हे राजा! ब्रह्मा जी की तपस्या से प्रसन्न हो कर भगवान् ने जो उन्हें उपदेश दिया था, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

बिराट् भगवान की नाभि से निकल कर कमल जल के ऊपर आया, उससे ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। तब ब्रह्मा जी उस कमल पर बैठ कर सृष्टि रचने की इच्छा से यह बिचार करने लगे कि यह कमल कहाँ से उत्पन्न हुआ, मुझे किसने उत्पन्न किया तथा मैं किस प्रकार सृष्टि की रचना कर सकता हूँ। उन्हें सृष्टि रचने की शक्ति, तथा ज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं हुई। उसी समय प्रलय कालीन जल के अनन्त आवरण से दो अक्षर 'त' 'प'

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दो बार सुनाई दिये। उन दोनों अक्षरों का तात्पर्य तप करो समझ कर ब्रह्माजी घोर तप करने लगे। एक सहस्र दिव्य वर्ष तपस्या करने के पश्चात् उन्हें अमोघ ज्ञान की प्राप्ति हुई। उस समय भगवान् ने उन्हें अपने दिव्य लोक के दर्शन कराये। वह लोक संपूर्ण क्लेश, मोह तथा माया जाल से रहित था। वहाँ पर रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण फटक नहीं सकता। काल की गति तथा माया खड़ी नहीं हो सकती। वह दिव्य स्थान सर्वत्र भगवान मय है। वहाँ पर भगवान के पार्षद चतुर्भुज रूप धारण किये हुए शङ्ख चक्र गदा पद्म लिये अङ्ग प्रत्यङ्ग सौन्दर्य राशि से परिपूर्ण रहते हैं। पार्षद गण जटित मुकुट तथा वस्त्राभूषण धारण किये रहते हैं। उनका शरीर श्याम वर्ण तथा विद्युत के समान ज्योतिर्मय है। वे पीताम्बर धारण किये हैं। कानों में कुण्डल तथा कण्ठ में बनमाला सुशोभित है। उस बैकुण्ठ धाम में लक्ष्मीजी विविधि विभूतियों से सुशोभित होकर भगवान् के चरणों की सेवा करती हैं। ब्रह्माजी ने वह बैकुण्ठ धाम देखा जिसमें भगवान् यज्ञपति लक्ष्मी जी के सहित शोभायमान हैं। नन्द सुनन्द आदि पार्षदगण उनकी सेवा में तत्पर हैं। भगवान् की मुसकान मधुर और मन मोहक है सिर पर दिव्य मुकुट कण्ठ में कौस्तुभमणि वक्ष स्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह कण्ठ में बनमाला तथा पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उनका दिव्य शरीर रत्न जटित आभूषणों से जगमगा रहा है चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं। पुरुष प्रकृति अहङ्कार, दस इन्द्रियों सहित मन, पाँच तन्मत्राऐं महत्तत्व, तथा पंचभूत आदि ये पच्चीस शक्तियाँ रूप धारण करके उन भगवान् की सेवा में संलग्न हैं। भगवान् अपनी छः नित्य सिद्धियों ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य से परिपूर्ण हैं। ये सम्पूर्ण सिद्धियाँ भगवान को त्याग कर अन्यत्र कहीं भी नहीं रहतीं। ऐसे ज्योतिर्मय भगवान् के दर्शन प्राप्त करके ब्रह्माजी अति प्रसन्न हुए और प्रेम के उद्वेग से उनका हृदय परिपूर्ण होगया। नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। शरीर प्रकाशमान् हो गया। उन्होंने झुक कर साष्टांग प्रणाम किया। तब भगवान् ब्रह्मा से प्रसन्न होकर उनका हाथ पकड़ कर मधुर वाणी में इस प्रकार बोले—हे ब्रह्माजी ! तुमने तपस्या करके मुझे प्रसन्न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किया है। जो तुम्हारी इच्छा हो वही वर माँगो। मैं सर्व शक्तिमान हूँ। तुम्हें सब कुछ देने में समर्थ हूँ। यह प्राणी जब तक मेरे निकट नहीं आता है, तब तक उसका कल्याण नहीं होता है। तुमने मेरी आज्ञा से घोर तप किया है। इस कारण तुम्हें मेरे दर्शन हुये हैं। हे ब्रह्माजी! तपस्या मेरा हृदय है, और मैं स्वयं उसकी आत्मा हूँ। तपस्या करने से ही मेरी अखंड शक्ति प्राप्त होती है। मैं तपोबल से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति पालन तथा लय करता हूँ।

ब्रह्माजी बोले—हे विश्वपति! आप अन्तर्यामी होकर सब के हृदय में वास करते हैं। आप अपने अप्रमेय ज्ञान से यह सब कुछ जानते हैं कि मेरी क्या इच्छा है? किंतु फिर भी मैं आप से वर माँगता हूँ कि मुझे आप वह ज्ञान दृष्टि दीजिये कि मैं आपके सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों को भली प्रकार पहिचान सकूँ। मकड़ी के जाले की भाँति आप इस सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं और उसके साथ क्रीड़ा करके जिस प्रकार मकड़ी उस जाले को अपने मुख में निगल जाती है, उसी प्रकार आप भी इस सृष्टि को अपने में लीन कर लेते हैं। अब आप कृपा करके मुझे ऐसी शक्ति दीजिए जिससे मैं इस सृष्टि को रच कर कर्त्तापन के अभिमान से मुक्त रहूँ। आपने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे मित्र भाव से अपना बनाया है। इस लिये मैं सावधानी पूर्वक गुणों तथा कर्मों के अनुसार सम्पूर्ण जीवों का विभाजन कर के सृष्टि को रच सकूँ।

भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मा जी! मैं तुम्हें अपने उस अति गोपनीय स्वरूप का ज्ञान कराता हूँ, जो अनुभव प्रेमा भक्ति और साधनों से युक्त है। तुम मेरी कृपा से मेरे सम्पूर्ण विस्तार मेरे सम्पूर्ण लक्षणों तथा मेरी सम्पूर्ण लीलाओं के तत्व को भी भली प्रकार जान सकोगे। हे अनघ! सृष्टि के आदि में केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त न तो यह स्थूल जगत था और न यह सूक्ष्म जगत् ही था, और न इन दोनों को उत्पन्न करने वाली प्रकृति ही थी। इस सृष्टि के रूपान्तर में जो कुछ भी दृष्टि आता है अथवा जाना जाता है, वह केवल मैं ही हूँ, और सृष्टि के अन्त में जो कुछ शेष रहता है वह भी मैं ही हूँ। मैं सर्वत्र विद्यमान होने पर भी

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जिस प्रकार नक्षत्र मण्डल में राहु दृष्टि नहीं आता है उसी प्रकार मैं भी अपनी माया से किसी को दृष्टि नहीं आता हूँ। जिस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर पंच भूतों से बने हुए हैं वे पंच भूत शरीर निर्माण का कारण रूप होने से उनमें विद्यमान हैं, और वे अलग अलग भी प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार मैं भी प्रत्येक प्राणी में आत्मा रूप से विद्यमान हूँ। और मेरे अतिरिक्त कोई वस्तु न होने के कारण उनमें विद्यमान नहीं भी हूँ, क्यों कि सम्पूर्ण वस्तु मेरे में ही समाई हुई है। 'ब्रह्म नहीं' ब्रह्म नहीं इस निषेध पद्धति के अनुसार तथा यह ब्रह्म है यह ब्रह्म है–इस पद्धति के अनुसार यही सिद्ध हुआ है कि मैं सर्वदा, सर्वत्र स्थित हूँ। बस केवल मेरा यही वास्तविक तत्व है जो आत्मज्ञानी मेरे इस आत्मा और परमात्मा के तत्व को जानते हैं वे मेरी इस माया में कभी मोहित नहीं होते। इस लिये हे ब्रह्मा जी! तुमने मेरे इस तत्व को प्राप्त कर लिया है इस लिये तुम्हें किसी काल में भी अहङ्कार उत्पन्न नहीं होगा।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! ब्रह्मा जी को ब्रह्म तत्व मय इस चतुर्श्लोकी भागवत का उपदेश देकर भगवान अन्तर्ध्यान होगए। ब्रह्माजी ने अंजलि बाँध कर उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत किया और पूर्व कल्प की भाँति सृष्टि की रचना की। यह चतुर्श्लोकी भागवत् ब्रह्माजी ने अपने पुत्र नारदजी से प्रसन्न हो कर उन्हें सुनाई थी।

तत्पश्चात् जिस समय मेरे पिता वेद व्यास जी सरस्वती के किनारे पर उद्विग्न मन बैठे हुए थे उस समय देवर्षि नारद ने उनके आश्रम में आकर मेरे पिताजी को इस दस लक्षण वाले भागवत् पुराण को सुनाया था और मेरे पिताजी ने यह भागवत् पुराण मुझे सुनाई थी। हे राजा परीक्षित! उसी भागवत् को मैं तुम्हारे सम्मुख वर्णन कर रहा हूँ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ दसवाँ अध्याय ॥

चौपाई—दस लक्षण से युक्त है, श्रीभागवत् ग्रन्थ।
सर्ग प्राकृत क्रम सभी, कहे वेद कर मन्थ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! इस श्रीमद्भागवत पुराण में दस विषयों का वर्णन किया गया। (१) सर्ग (२) विसर्ग (३) स्थान (४) पोषण (५) ऊति (६) मन्वन्तर (७) ईश कथा (८) निरोध (९) मुक्ति (१०) आश्रय। इन नौ विषयों का वर्णन उस दसवें आश्रम तत्व के वर्णन के लिए ही किया गया है। महात्मा पुरुषों ने श्रुति, तात्पर्य, तथा अनुभव इन तीनों प्रकार की सुगम रीति से इन दसों तत्वों का वर्णन किया है। पंचभूति पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि, वायु हैं, तथा उनकी तन्मात्रायें इन्द्रियाँ, अहङ्कार, एवं महतत्व, आदि की उत्पत्ति को 'सर्ग' कहते हैं। विराट पुरुष के द्वारा उत्पन्न किए हुए ब्रह्मा से जो अनेक प्रकार की सृष्टि रची जाती है, उसको 'विसर्ग' कहते हैं। नाशवान सृष्टि को एक मर्यादा में स्थिति करने में जो विष्णु भगवान की महत्ता प्रकट होती है उसको 'स्थान' कहते हैं।

अपने भक्तों पर कृपा करके सृष्टि के पालन पोषण तथा वृद्धि को 'पोषण' कहते हैं। शुद्ध धर्म के अनुष्ठान तथा प्रजा पालन आदि कर्म जो मन्वन्तरों के अधिष्ठाता करते हैं उसको 'मन्वन्तर' तत्व कहते हैं। प्राणी अपनी वासनाओं से जो कर्म बन्धनों में बँधते हैं; वे वासनाऐं 'ऊति' कहलाती हैं। भगवान के अवतारों की कथायें तथा उनके भक्तों के चरित्र 'ईश कथा' कहलाती हैं। प्रलयकाल के पश्चात् जब भगवान अपनी योग-निद्रा स्वीकार करते समय सम्पूर्ण जीवों को तथा सृष्टि के सम्पूर्ण तत्वों को अपने में लीन कर लेते हैं उसको 'निरोध' तत्व कहते हैं। कर्त्तापन तथा भोक्तापन तथा अपनत्व रूपी अज्ञान को दूर करके सच्चिदानंद घन परमात्मा में ही लीन हो जाना 'मुक्ति' कहलाता है। हे राजा परीक्षित! जिस तत्व के द्वारा इस सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होती है उसी तत्व को परमब्रह्म 'आश्रय' तत्व कहते हैं। वही परमात्मा नाम से शास्त्रों में वर्णन किया गया है। परमात्मा, जीवात्मा और इस देह में इन तीनों तत्वों से ही

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

यह सृष्टि उत्पन्न होती है। इन तीनों में से किसी एक का अभाव होने पर दोनों तत्व व्यर्थ हो जाते हैं। जो इन तीनों तत्वों से अलग रहकर इन तीनों तत्वों को भली प्रकार से जानता है वही सबका आश्रय तत्व परमात्मा है। वह सबका आश्रय है और अपना आश्रय वह स्वयं है।

जब विराट् भगवान ब्रह्मांड को तोड़ कर बाहर निकले तब वे अपना निवास स्थान खोजने लगे तब उन्होंने अपनी इच्छा से जल की उत्पत्ति की उस नर अर्थात् जल में अयण अर्थात् आश्रय के कारण ही उनका नाम नारायण हुआ। उन्होंने एक सहस्र वर्ष तक उसी जल में निवास किया। उनकी कृपा से ही द्रव्य कर्म काल, स्वभाव तथा जीव इत्यादि का अस्तित्व है। उनके न रहने पर किसी का भी अस्तित्व शेष नहीं रहता है। भगवान पहले पहल एक थे फिर उन्होंने योग निद्रा से जागृत होकर अनेक होने की इच्छा की। तब उन विराट् भगवान ने अपनी योग माया से अखिल विश्व के बीज रूप अपने वीर्य को तीन भागों में बाँट दिया। एक अधिदैव, दूसरा अध्यात्म, और तीसरा अधिभूत। विराट् भगवान के हिलने डुलने से उनके अन्तर्गत स्थित आकाश तत्व द्वारा इन्द्रिय बल, मनोबल और शरीर बल उत्पन्न हुआ। इन तीनों बलों से प्राण वायु उत्पन्न हुआ। इस प्राण वायु से ही शरीर में इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। जब विराट् भगवान की प्राण वायु तीव्र गति से चलने लगी तब उन्हें तृष्णा, क्षुधा प्रतीत होने लगी। खाने पीने की इच्छा होते ही सर्व प्रथम उन विराट् भगवान का मुख खुला। इस मुख इन्द्रिय के खुलने पर रसना उत्पन्न हुई और उससे अनेक रस उत्पन्न हुए। जब विराट् भगवान के बोलने की इच्छा हुई तब वाक् इन्द्रिय प्रकट हुई। और उसका देवता अग्नि और बोलना प्रकट हुए। साँस के आने जाने से नासिका छिद्र खुलने से सूँघने की इन्द्रिय उत्पन्न हुई जिसे प्राण इन्द्रिय कहते हैं उससे वायु देवता प्रकट हुआ। जब विराट भगवान की इच्छा देखने की हुई तब नेत्र खुल गये और उनका देवता सूर्य तथा नेत्र इन्द्रिय प्रकट हुई। जब विराट भगवान जल में शयन कर रहे थे तब वेदों की श्रुतियाँ उनकी स्तुति करने लगीं। उनके श्रवण करने की इच्छा से उनके श्रवण खुल गये। उनका देवता दिशायें और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रवणेन्द्रिय प्रकट हुईं। जब उन्हें स्पर्श करने की इच्छा हुई तब शरीर पर चर्म उत्पन्न हुआ। उस चर्म पर रोम उत्पन्न हुए। जब उन्हें कर्म करने की इच्छा हुई तब हाथ उत्पन्न हुए। जब उनके चलने की इच्छा हुई तब उनके पैर उत्पन्न हुए और उनके अधिष्ठाता देवता उत्पन्न हुए। जब उनकी इच्छा सृष्टि रचने की हुई तब वीर्य उत्पन्न हुआ और उसके अधिष्ठाता देवता तथा लिंग उत्पन्न हुए। जब उन्हें मल त्याग की इच्छा हुई तो गुदा द्वारा और उनके देवता उत्पन्न हुए। जब उनकी इच्छा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करने की हुई तब नाभि उत्पन्न हुई उसका देवता अपान और मृत्यु उत्पन्न हुए। जब उन्हें अन्न जल आदि के ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न हुई तब आतें, नाणियाँ तथा कोख आदि उत्पन्न हुए। फिर मन और बुद्धि उत्पन्न हुई। मन का देवता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। पृथ्वी, जल और तेज से उनके शरीर में त्वचा, चर्म, माँस रुधिर, मेदा; मज्जा तथा अस्ति में सातों धातुएँ उत्पन्न हुईं। आकाश, जल तथा वायु तत्व से प्राण उत्पन्न हुए। इन सम्पूर्ण इन्द्रियों की उत्पत्ति का कारण अहङ्कार है। तथा मन से सम्पूर्ण विकार उत्पन्न होते हैं और बुद्धि से ज्ञान उत्पन्न होता है। श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! मैंने तुम्हें विराट भगवान के इस स्थूल शरीर का वर्णन सुनाया। यह स्थूल रूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँच तत्व, अहंकार, महतत्व तथा प्रकृति इन आठ आवरणों से ढका हुआ है। इस स्थूल शरीर से परे भगवान् का सूक्ष्म रूप है। वह स्वरूप, नित्य, आदि मध्य अन्त से रहित तथा निर्विशेष और अव्यक्त है। वहाँ तक मन और वाणी भी नहीं पहुँच सकते हैं। हे राजा परीक्षित्! भगवान् के इस स्थूल और सूक्ष्म जिसे व्यक्त और अव्यक्त कहते हैं, अपनी माया शक्ति से प्रकाशित होते हैं। अतः परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए योगीजन इन दोनों में से किसी भी स्वरूप को ग्रहण नहीं करते हैं। भगवान् अपनी माया से ही विराट और सूक्ष्म रूप धारण करते हैं और चर अचर तथा जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। यह सम्पूर्ण प्रजापति पितृ, देवता, राक्षस, प्रेत, भूत पिशाच आदि सब उन्हीं का रूप है। हे राजा परीक्षित्! भगवत् तत्व को जानने

In Public Domain

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वाले ज्ञानियों ने भगवान के स्वरूप का वर्णन इसी भाँति किया है। किन्तु तत्व ज्ञानी पुरुषों को भगवान के सृष्टि करने वाले, पालन तथा प्रलय करने वाले रूपों का ही केवल दर्शन नहीं करना चाहिए क्योंकि वे भगवान इस प्रकृति और प्राकृत रूपों से परे भी हैं। इस स्थूल स्वरूप का वर्णन इसलिए किया जाता है कि जो अज्ञानी पुरुष अपने को तथा परमात्मा को कर्ता मान बैठे हैं उनकी यह भावना दूर हो जावे क्योंकि यह कर्तापन भगवान की माया के द्वारा ही प्रकट होता है। वे शुद्ध स्वरूप भगवान उस माया से भी परे हैं। वे जितने अवतार, रूप और अपने स्थूल शरीर को धारण करते हैं वह सब माया तक ही सीमित है किन्तु वे माया से परे होने के कारण उन सब से परे हैं। उनका ब्रह्म स्वरूप दूसरा ही है। जिसकी खोज तत्व ज्ञानी योगीजन करते रहते हैं।

सृष्टि की रचना क्रम सब कल्पों में एक सी ही है केवल अन्तर इतना ही है कि महा कल्प के आदि में प्रकृति तथा महतत्व आदि सभी उत्पन्न होते हैं क्योंकि कल्प के आदि में प्राकृत सृष्टि स्थिर रहती है वह नष्ट नहीं होती है इसलिए केवल चराचर प्राणियों की नवीन सृष्टि रची जाती है। हे राजा परीक्षित ! मैं अब तुमसे काल परिणाम तथा कल्प मन्वंतर आदि का वर्णन करूँगा। अब तुम पाद्मकल्प का वर्णन सुनो।

शौनकजी बोले—हे सूतजी ! आप हमें यह बताइए कि विदुर और मैत्रेयजी का क्या सम्बाद हुआ तथा मैत्रेयजी ने किस तत्व वर्णन किया।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! जो प्रश्न आपने किया है वही राजा परीक्षित ने भी श्रीशुकदेवजी से किया था तब उन्होंने जो उत्तर परीक्षित को दिया था वही मैं आपके सम्मुख वर्णन करता हूँ आप ध्यान पूर्वक सुनें।

॥ द्वितीय स्कंध समाप्त ॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ ॐ नमो भगवते वासुदेवायनमः ❀

वृहद् सुखसागर

तृतीय स्कन्ध

—❀❀—

कस्मैयेन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानं प्रदीपः पुरा।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा॥
योगीन्द्राय तदात्यनाथ भगवद्वार्ताय कारूण्यत-।
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि॥
(१२,१३,१६)

पहला अध्याय

दो०–दुःखी होय धृतराष्ट्र से, बिदुर दियो घर त्याग।
तीरथ दर्शन को गये, मेटन चित की आग॥
तहां उद्धव से बिदुर जी, भैंटे कण्ठ लगाय।
पूछन लागे कुशल सब, मन में अति हरषाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित! जो प्रश्न तुमने मुझसे पूछा है वही श्री बिदुरजी ने मैत्रेयजी से पूछा था।

राजा परीक्षित बोले–हे भगवन्! मुनिवर मैत्रेयजी से बिदुर जी की भेंट कहाँ पर और किस समय हुई थी। और महामना बिदुर जी ने मैत्रेयजी से क्या पूछा था तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्री मैत्रेय जी ने क्या उत्तर दिया?

सूतजी बोले–हे शौनकजी! श्रीशुकदेवजी सर्वज्ञ थे उन्होंने राजा परीक्षित से कहा हे राजा सुनो।

श्रीशुकदेवजी बोले–राजन्! तुम्हारे पर दादा राजा धृतराष्ट्र जन्म के

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ही अन्धे थे किन्तु अन्तकाल में वे बुद्धि से भी अन्धे हो गये थे। अध
के कारण उनकी ज्ञान शक्ति तथा मति मारी गई थी। उन्होंने तुम्हारे पिता
मह पाण्डवों के साथ बचपन से ही दुर्व्यवहार तथा अन्याय किया। उन्
लाक्षागृह में जलाने का प्रयत्न किया। धर्मराज युधिष्ठिर की रानी द्रौपदी
के केश भरी सभा में खींचते हुए दुःशासन को नहीं रोका। भोले भाले ध
परायण धर्मराज युधिष्ठिर को कपट के जुए में खेलने के लिये पुत्रों द्वार
बुलवाकर उनका राजपाट छीन लिया। पुत्रों को इस अन्याय से नहीं रोक
अन्त में उन पाँचों पाण्डवों को बन में निकाल दिया।

अपनी प्रतिज्ञानुसार तेरह वर्ष बन की यातनायें भोगने के पश्चात् उन्
उनका राज्य वापस नहीं लौटाया। धर्मराज युधिष्ठिर के भेजने पर भगवा
श्रीकृष्णचन्द्र दूत बन कर हस्तिनापुर की कौरव सभा में आये और धृतरा
को समझाया भीष्म आदि ने भी धृतराष्ट्र को समझाया किन्तु उन्होंने उन
बचनों की ओर काल वश होकर, पुत्र मोह के कारण तनिक भी ध्यान नह
दिया। जब सलाह के लिए विदुर जी को बुलाया तब विदुर जी ने राज
महल में जाकर युवराज को उचित नीति का उपदेश किया उन्हें सब प्रका
से न्यायोचित राय देकर समझाया जिसे विदुर नीति कहते हैं, किन्तु कु
राज को विदुरजी के बचन ऐसे लगे जैसे त्रिदोष के मरणासन्न रोगी क
औषधि लगती है। विदुरजी ने समझाया-हे कुरुराज ! आप पाण्डवों को उ
का राज्य दे दीजिये—वे महान शक्तिशाली और बिकट बलवान हैं। उन
भीमसेन परम क्रोधी और दस सहस्र हाथियों का बल रखता है। वह का
नाग की भाँति क्रोध में डसने की प्रतीक्षा कर रहा है। अर्जुन ने देवरा
इन्द्र और शङ्कर जी को प्रसन्न कर के अमोघ अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त कि
है। जिस पर भी यदुनाथ श्रीकृष्णचन्द्र जी की उन पर कृपा है। सारे याद
वीर पाण्डवों की सहायता करेंगे। वे धर्मात्मा हैं तुम्हारा पुत्र कुल का ना
कराने वाला कुल घाती है वह सदा अधर्म में ही रत रहता है और उस
साथ तुम्हारी भी बुद्धि मारी गई है। इस लिये यदि तुम कुल की र
चाहते हो तो उस कुलघाती को तुरन्त त्याग कर पाण्डवों को अप
लीजिए। जब विदुरजी ऐसा कह रहे थे तब क्रोधी दुर्योधन ने उठकर वि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जी का तिरस्कार, अपमान भरे बचनों से करते हुए कहा कि इस पाजी टुकड़-खोर को शीघ्र ही नगर से निकाल दिया जावे। यह जिसके टुकड़े खाता है उसी के विरुद्ध सलाह देता है। भाई धृतराष्ट्र के सामने ही ऐसे कटु अपमान जनक बचनों को सुन कर और भाई के कुछ भी न कहने पर विदुर जी तुरन्त वहाँ से उठ कर चले आये और राज द्वार पर अपने धनुष बाण टांग कर बन की ओर चल दिये। हस्तिनापुर से चल कर वे अनेक तीर्थों का पर्य्यटन करने लगे। वे शुद्ध और पवित्र रहकर एक समय भोजन करते पृथ्वी पर सोते तथा तीर्थों के जल में स्नान करते। इस प्रकार सारे भारत वर्ष के तीर्थों में भ्रमण करते हुये प्रभास क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सहायता से पाण्डव लोग महाभारत युद्ध में विजयी हुए हैं, तथा कौरवों का संहार हो गया है। दुर्योधन आदि सब मारे गये। हस्तिनापुर का राज्य धर्मराज युधिष्ठिर करते हैं। यह सुन कर उन्हें महान शोक हुआ और शान्ति पूर्वक फिर तीर्थ यात्रा को चल दिये। भगवान् के प्रधान प्रधान तीर्थों तथा मन्दिरों के दर्शन करते हुए बिचरने लगे। एक दिन सौराष्ट्र सौवीर, मत्स्य तथा कुरुजाङ्गल देशों को पार कर के यमुना तट पर आये। वहाँ उन की भगवत् भक्त श्रीउद्धव जी से भेंट हुई। उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के परम भक्त थे विदुर जी ने उद्धवजी को देखते ही प्रेम में विह्वल होकर कण्ठ से लगा लिया। दोनों वहीं यमुना के पुलिन पर बैठ गये तब विदुर जी ने अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की तथा बलरामजी की कुशलता पूछी।

विदुरजी बोले—हे उद्धवजी! जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भक्तों की रक्षा के लिये तथा दुष्टों के संहार के लिये इस पृथ्वी पर शरीर धारण किया है वे तो कुशल से हैं न? उनके बड़े भ्राता बलराम जी तो कुशलता से हैं न? उनके पिता बसुदेव जी तथा पुत्र प्रद्युम्न जी तो कुशलसे हैं न?देवकी अपने पाँचों पुत्रों सहित तथा अपनी पुत्रबधुओं सहित तो कुशल हैं न? सात्वक वृष्णि, भोज दाशार्ह वंशी यादवों के राजा उग्रसेन प्रसन्न से तो हैं न? हे उद्धव जी! द्वारिकापुरी के सम्पूर्ण यादवों की कुशल क्षेम सुनाइये। हमारे महाराज युधिष्ठिर की कुशल क्षेम भी सुनाइये। उन्होंने अपने भाइयों की

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सहायता से तथा भगवान श्री कृष्णचन्द्र की कृपा से पुनःराज्यप्राप्तकर लिया है। अपने शत्रुओं का नाश कर निष्कंटक राज्य भोगते हैं न? हे महाभाग उद्धव! गाँडीवधारी अर्जुन की कुशलता सुनाइये? माद्री के दोनों पुत्र तथा भीमसेन भी कुशल से हैं न? वह बेचारी कुन्ती जिसने जीवन भर दुःख सहे हैं अब तो चैन से है न? जिन कुरुराज ने अपने पुत्रों की हाँ में हाँ मिला कर मेरी उचित सलाह को न मान कर नगर से मुझे निकलवा दिया मुझे उनके विनाश पर बड़ा क्लेश है। किन्तु काल गति को कौन रोक सकता है। मैं तो उन्हीं जगत् पिता भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का गुणगान करते हुये आनन्द से भ्रमण कर रहा हूँ।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने सम्पूर्ण राजाओं का संहार करा कर पृथ्वी का भार उतार दिया है—वे राजा धन, बल, तथा ऐश्वर्य में अन्धे हो रहे थे वे पृथ्वी पर अनेक पाप करते थे। इसी कारण उन्हें परस्पर लड़ा कर इस प्रकार नाश कर दिय, जिस प्रकार बन में परस्पर बाँस रगड़ कर सारे बन को जला देते हैं। हे उद्धव जी! वे अजन्मा होते हुए भी भक्तों की रचना के लिये जन्म लेते हैं तथा अकर्मा होते हुए भी कर्म करते हैं। आप मुझे उनकी कुशल क्षेम सुनाइये।

॥ दूसरा अध्याय ॥

दो०—उद्धव लीला कृष्ण की, कही विदुर से आय।
गये कृष्ण निज धाम को, दे वियोग दुखदाय॥
गद्‌गद् हो रोने लगे, करि करि प्रभु गुणगान।
कृष्णचंद्र के साथ में, पाये सुक्ख महान॥

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! विदुर जी के इस प्रकार पूछने पर उद्धव जी को अपने परमपूज्य आराध्य देव भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी का स्मरण हो आया। उनके वियोग में इतने गद्‌गद् तथा बिव्हल हो गये कि एक मुहूर्त्त तक उनका कंठ रुंधा रहा और वे चुपचाप बैठे हुए नेत्रों से अश्रु बहाते रहे। तब अश्रु पोंछकर विदुरजी से इस प्रकार बोले।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उद्धव जी बोले--हे विदुर जी ! भगवान श्रीकृष्णचन्द्र रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से सारे गृहों में अन्धकार हो गया है। वे सब मृत सम होगये हैं। मैं उनकी क्या कुशल सुनाऊँ ? हम यादव लोग बहुत अभागे हैं, जिनके मध्य में साक्षात भगवान के रहते हुए भी उन्हें इसी प्रकार नहीं पहचान सके जिस प्रकार अमृतमय चन्द्र को उनके साथ रहने वाली मछलियाँ नहीं पहचान सकी थीं। सभी यादव लोग उन्हें श्रेष्ठ यादव समझे हुये थे। वे नित्य साधारण पुरुषों की भाँति हमारे साथ उठते थे बैठते थे क्रीड़ा करते थे मुझे बुला कर मेरी सलाह लेते थे। हम सभी उन्हें भूले हुए थे किन्तु महानुभाव पुरुष उन्हें भली प्रकार पहिचानते थे। वे ही भगवान आज इस भूमण्डल से अन्तर्ध्यान हो गये। भगवानने अपनी लीला दिखाने के लिये ही योगमाया से अवतार धारण किया था अब वह लीला विग्रह समेट लिया।

हे विदुर जी ! मैं उनकी लीलाओं का क्या वर्णन करूँ ? मैं तो नित्य उन्हीं के साथ उनकी चरण सेवा में रहता था, उन्हीं चरणों की रज को मस्तक पर चढ़ा कर अपने को अहो भाग्य मानता था। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें जिस समय उनकी अग्रपूजा हुई थी उस समय उनकी शोभा अवर्णनीय थी। सम्पूर्ण राजा लोगों की दृष्टि उन्हीं के मुख चन्द्र पर पड़ गई थी। उनकी सम्पूर्ण लीलायें अप्राकृतिक थी। जब मुझे उनकी लीलाओं का स्मरण हो आता है तब मैं व्याकुल होजाता हूँ। उन्होंने कंस को मार कर अपने पिता बसुदेवजी को बन्धन मुक्त किया था। वृज में वृजवालाओं के साथ बाल लीलायें कीं जिसके कारण वे वृजवालायें उनकी भक्ति तथा प्रेम में इतनी विभोर थीं कि उन्हें भक्ति योग तथा प्रेम योग के सम्मुख अन्य कोई योग उत्तम नहीं लगा। उन्होंने इन्द्रादि देवताओं का मान मर्दन किया। कहाँ तक कहूँ ब्रह्मा को भी अपनी लीला में एक वर्ष तक चकित रक्खा। उन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने भक्तों को परमगति तो दी ही थी किन्तु अपने शत्रु शिशुपाल, कंस, जरासन्ध आदि को भी परम गति प्रदान की। क्योंकि उनके शत्रुओं का ध्यान बैर भाव के कारण सदा उन में ही लीन रहता था।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding by

प्रजापति ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर भूभार उतारने के लिये ही उन्होंने वृज में अवतार धारण किया था। उन्होंने पूतना आदि राक्षसियों तथा राक्षसों का बचपन में ही खेलते खेलते संहार कर दिया। काली नाग को नाथ कर यमुना का बिष युक्त जल शुद्ध कर दिया। किशोरावस्था में शरद ऋतु के आगमन पर गोपियों के साथ रास विलास करते और उन वृज बालाओं को आनन्दित करते थे।

——:❀:——

॥ तीसरा अध्याय ॥

दोहा—कहि कहि निज प्रभु की कथा, उद्धव भये विहाल।
जरासन्ध शिशुपाल सब, मारे जिन तत्काल॥
कौरव पाँडव युद्ध रचि, कीन्हों सबका नाश।
शेष बचे यादव बली, कीन्हों तिनहु विनाश॥

उद्धवजी बोले—हे विदुरजी ! भगवान श्रीकृष्णचंद्र अपने माता पिता बसुदेव के कष्ट दूर करने के लिये बृन्दावन से मथुरा गये वहाँ दुष्ट कंस को मार कर ऊँचे सिंहासनसे पृथ्वी पर पटक दिया फिर उसे घसीट कर यमुना तट पर लाये उसका अन्तिम संस्कार किया। पश्चात् सांदीपन गुरु से थोड़े काल में ही एक बार सुन कर साङ्गोपाङ्ग वेदों को कण्ठस्थ कर लिया। तथा गुरु दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुये पुत्रों को यमपुरी से लाकर गुरु को प्रदान किये। जरासंध को उसकी सत्रह अक्षौहिणी सेना के सहित सत्रह बार अपने बड़े भाई बलदेवजी की सहायता से हराया।

अनेकों राजाओंके देखते देखतेही शिशुपालकी दैन रुक्म की बहन श्रीरुक्मणीजी को हर कर ले आये और घर लाकर गन्धर्व विवाह किया। सात बिना नथे बृषभों को नाथ कर नाग्नजितीको स्वयम्बरमेंसेजीत कर ले आये। जाम्बवन्त को जीत कर जाम्बन्ती को अपनी पटरानी बनाया। सत्यभामा की प्रसन्नता के लिये इन्द्र का मान मर्दन करके पारिजात बृक्ष को द्वारिका ले आये। तथा सुधर्मा सभा को भी जीतकर लाये थे। उन्होंने भौमासुर

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मार कर सोलह सहस्र एकसौ कन्याओं के धर्म की रक्षाहेतु उन्हें अपनी रानी बनाया। भगवान् ने अपनी योगमाया से इतने ही रूप धारण कर के उनके साथ विहार किया। उन से अपने ही समान दस दस पुत्र उत्पन्न किये। महाभारत का युद्ध रचा बिना अस्त्र ग्रहण किये ही अर्जुन के द्वारा अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार करा डाला। तब उन्होंने देखा कि यादव लोग महावली तथा अजेय हैं इनके रहते हुए भी पृथ्वी का भार हल्का नहीं हो सकता है, तब ब्राह्मण द्वारा शाप दिला कर गाँधारी के शाप को पूरा करने के लिये उन्हें परस्पर लड़वा कर मरवा डाला। वे स्वयं अपने आप ही नाश को प्राप्त हो गए। वे द्वारिकापुरी में रहते हुए लोक मर्यादा तथा धर्म का पालन करते थे। सांख्ययोग में सदा स्थिति रहते थे इस लिए कर्म करते हुए भी भोगों में उनकी आशक्ति नहीं थी।

हे विदुरजी! एक दिन कुछ यदुवंशी बालकों ने हँसी में दुर्वासा ऋषि को चिढ़ा दिया तब उन मुनीश्वर ने यदुवंश के नाश होने का शाप दे दिया। इसके कुछ दिनों बाद सभी यदुवंशी पर्व के दिन अपने २ रथों पर चढ़ कर प्रभास क्षेत्र में आए और वहाँ अनेक प्रकार के गौ धन, रत्न, पृथ्वी आदि ब्राह्मणों को दान दे कर वहाँ स्नान किया और ब्राह्मणों को मस्तक टेक कर उनके चरणों में प्रणाम किया।

—❀—

❀ चौथा अध्याय ❀

दो०—यादव कुल का नाश सुनि, तजी विदुर जग आस।
दुखी होय मन में चले, मैत्रेयजी के पास॥

उद्धवजी बोले—तब सम्पूर्ण यादवों ने ब्राह्मणों की आज्ञा से भोजन किया और अति नशीली मदिरा पीकर मतवाले हो गये। परस्पर गाली देने लगे तथा एक दूसरे को मारने लगे अपनी माया से रचे हुए उस चरित्र को देख कर भगवान् श्रीकृष्ण सरस्वती में आचमन कर एक पीपल के वृक्ष के नीचे चुप चाप बैठ गए। भगवान् श्रीकृष्ण ने इस घटना के प्रथम ही मुझ से कह दिया कि उद्धव तुम बद्रिकाश्रम चले जाओ। मैं उसी

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

क्षण उनका मतलब समझ गया किन्तु मुझे उनका वियोग असह्य था इस लिए मैं भी उनके पीछे पीछे प्रभास क्षेत्र को चला आया। मैंने वहाँ जगत के आश्रय भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को दिव्य विग्रह से युक्त अकेले ही सरस्वती के तट पर पीपल के वृक्ष के नीचे पेड़से पींठ लगाये बैठे देखा। उनका दाहिना चरण बाँई जाँघ पर रक्खा था। वे सम्पूर्ण भोगों से मुक्त थे उनकी शोभा अवर्णनीय थी। दैव वश वहाँ मैत्रेयजी भी आ पहुँचे। तब अपने परम भक्त मैत्रेयजी के सम्मुख ही उन्होंने मुझे उपदेश दिया।

श्रीहरि बोले—हे उद्धव! मैं तुम्हारे हृदय की बात जानता हूँ। अतः मैं तुम्हें वह साधन उपदेश करता हूँ जो अति गोपनीय है। हे उद्धव! तुम पहिले जन्म में वसु थे। तुमने मेरी प्राप्ति के लिए आराधना की थी। अब मैं अपने नित्य धाम को जाना चाहता हूँ अतः तुमने इस समय एकान्त में मेरे उस परमब्रह्म स्वरूप के दर्शन प्राप्त किये हैं। हे उद्धव! अब तुम्हारा यह अन्तिम जन्म है, तुम अब इस जीवन मरण के चक्र में न रहोगे क्योंकि तुमने मेरी कृपा प्राप्त करली है। जो उत्तम उपदेश मैंने सृष्टि के आदि में कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा को दिया था वह "भागवत" उपदेश मैं तुम्हें देता हूँ। उसे तुम ग्रहण करो।

हे विदुरजी! भगवान् के ऐसे मधुर तथा रसभरे बचन सुन कर मुझे अति आनन्द प्राप्त हुआ। मेरी वाणी रुँध गई नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे तब मैंने कहा हे भगवन्! जिसे आप की कृपा प्राप्त है उस के लिए अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ हस्तगत हैं। किन्तु मुझे इन में से किसी भी पदार्थ की चाह नहीं है। केवल मुझे आपके चरणों की सेवा चाहिए, मुझे आप की लीला ही भ्रम डाले रहती है, आप दिव्य आदि पुरुष होते हुए भी मानवी लीला करते हैं। आप आत्माराम होते हुए भी सहस्रों रमणियों के साथ रमण करते हैं। इस प्रकार की विचित्र लीलायें मुझे चक्कर में डाले रहती हैं। आप मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान कराइये। हे विदुर जी! जब मैंने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से निवेदन किया। तब उन्होंने अपने स्वरूप का ज्ञान कराने वाले उपदेश को दिया। हे महाभाग विदुर जी! मैं उन अचिन्त्य भगवान् के मुखारविन्दु से उन के स्वरूप का

Pandit Pustak, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ज्ञान प्राप्त करके उनकी वन्दना तथा परिक्रमा कर के यहाँ यमुना तट पर चला आया हूँ। अब उनके बताये हुए स्थान बदरिकाश्रम के लिये जा रहा हूँ।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! उद्धव जी के ऐसे शोक और विरह युक्त बचन सुन कर विदुर जी ने उन से पूछा। हे उद्धव जी! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अपने जिस परम स्वरूप का उपदेश आप को दिया था वह हमें भी बताइये। उद्धवजी बोले हे विदुरजी! उस तत्व ज्ञान के उपदेश के लिये मेरे सम्मुख ही भगवान् श्री कृष्ण जी ने मैत्रेय जी को आदेश दिया था कि मेरे इस परम तत्व का उपदेश मेरे परमभक्त विदुरजी को अवश्य दीजिये। अतः आप मैत्रेयजी के पास जा कर उन से ही परम तत्व को ग्रहण करें। इतना सुन कर विदुर जी प्रातःकाल होते ही उद्धव जी के स्थान से चल दिये।

राजा परीक्षित् बोले—हे मुनीश्वर! जब ब्राह्मणों का श्राप सारे यादवों को नष्ट करने के लिये था तब उद्धवजी कैसे बचे रहे?

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! यह सब कुछ तो उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेरणा से ही हुआ था। ब्राह्मणों का शाप भी उन्होंने अपनी प्रेरणा से दिलाया था। जब वे अपने श्री विग्रह को समेट कर अपने नित्यधाम को जाने लगे, तब उन्होंने सोचा कि मेरे चले जाने पर मेरी लीलाओं का वर्णन तथा धर्म का विस्तार कम हो जायगा अतः उद्धव जी को अपना अनन्य भक्त और लीला विस्तार करने वाले समझ कर उन्हें वहीं छोड़ दिया और बदरिकाश्रम जाने की आज्ञा दी। जब विदुर जी ने उद्धवजी के मुख से भगवान् के परमधाम जाने की कथा सुनी और यह भी सुना कि उन्होंने मुझे भी स्मरण किया था तब विदुर जी उन के प्रेम में लीन हो कर प्रेमाश्रु बहाने लगे। तत्पश्चात् वहाँ से चल कर मैत्रेयजी के आश्रम गङ्गा तट पर आये।

———❀———

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ पाचवां अध्याय ॥

दोहा-विविध प्रश्न पूछन लगे, विदुर देव सिर नाय।
मैत्रेयजी बरणन कियो, सृष्टी क्रम हरषाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-श्री मैत्रेयजी का आश्रम हरिद्वार क्षेत्र में था श्री विदुरजी वहीं पर पहुँचे और श्री मैत्रेयजी से बोले-हे भगवन् ! जगत के प्राणी सुख के हेतु अनेक प्रकार के कर्म करते हैं, किंतु उन्हें सुख की प्राप्ति नहीं होती है और न उन का कष्ट ही दूर होता है। इसलिए हे मुनीश्वर ! इस विषय में कौनसा कर्म करना उचित है, जिसके द्वारा प्राणियों को सुख प्राप्त हो। जो प्राणी भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से विमुख रह कर अधर्म में लगे हुए हैं, उनके दुःखों को दूर करने के लिये आप जैसे साधु जन ही उनके कष्टों का निवारण करते हैं। आप मुझे उस शान्तिमय साधन का उपदेश कीजिये जिससे संपूर्ण प्राणियों का कष्ट दूर हो कर सनातन ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो सके। भगवान किस प्रकार से सृष्टि की रचना, पालन तथा उस का लय करते हैं इन सब रहस्यों को आप मुझे समझाइये। इसके अतिरिक्त उनकी रहस्यमयी लीलाएँ जो गौ, ब्राह्मण और देवताओं की रक्षा के लिए प्रकट होती हैं वह मुझे सुनाइये। हे विप्रवर! इसके अतिरिक्त मुझे यह भी समझाइये कि इस विश्व के स्वामी भगवान इन लोकों, लोकपालों आदि की रचना किस प्रकार करते हैं। किस प्रकार से ऊँच नीच वरणों की व्यस्था करते हैं। इस लिए हे श्री मैत्रेयजी ! आप मुझ दीन पर कृपा कर के पवित्र कीर्तिवान भगवान श्री हरि की लीलाओं को छाँट कर हमारे कल्याण के हेतु समझाइये।

श्री शुकदेवजी बोले-बिदुरजी ने सम्पूर्ण जगत के कल्याण के लिए मुनिवर मैत्रेयजी से यह प्रश्न किया तब श्री मैत्रेयजी बोले-हे भक्तों में श्रेष्ठ बिदुरजी ! आपने इन दुःखी जीवों के उद्धार के लिए जो प्रश्न किया है वह अत्युत्तम है। आपने श्री व्यासजी के वीर्य से साक्षात् धर्म रूप अवतार लिया है। इसलिए आप से तो कोई भी धर्म का मर्म छिपा नहीं है। आप भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त हैं इसलिए जब वे परमधाम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

को गये तब आपको ज्ञानोपदेश करने की आज्ञा मुझे दे गये थे। इसलिए मैं इस अखिल विश्व की उत्पत्ति स्थित और प्रलय के विषय में तथा भगवान की अनेक लीलाओं को क्रमशः आपके सम्मुख कहता हूँ। सृष्टि के आरम्भ में आत्माराम जगत के स्वामी श्रीभगवान सम्पूर्ण जीवों को अपने में लीन करके अपनी माया के सहित अकेले ही थे। उस समय उनके अनेक रूप नहीं थे। यह जगत् केवल भगवत् रूप ही था उनकी माया शक्ति सुप्त दशा में और उनकी ज्ञानशक्ति जाग्रत अवस्था में थीं। उस समय केवल परमात्मा ही साक्षी रूप प्रकाशमान थे। काल के अनुसार भगवान की यह त्रिगुणमयी माया अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुई। तब भगवान ने विराटरूप से अपने में बीज को धारण किया। तत्पश्चात् काल गति से उस परमात्मा की अव्यक्त माया के द्वारा वह महतत्व उत्पन्न हुआ। वह अज्ञान को नष्ट करने वाला विज्ञान स्वरूप था। उसी महतत्व से अहंकार की उत्पत्ति हुई जो अधिदेव, अधिभूत और अध्यात्म्य तीन रूप होने से मन, भूत और इन्द्रियों का बनाने वाला है। वह अहंकार वैकारिक रूप से सात्विक, राजस और तामस तीन गुणों वाला है। इसलिए अहंकार तत्व में विकार उत्पन्न होने पर मन और उसके अधिष्ठाता देवता तथा राक्षस अहंकार से कर्मेन्द्रियों ज्ञानेन्द्रियों तथा तामस अहंकार के द्वारा सम्पूर्ण भूतों का कारण और उनको बोध कराने वाला आकाश प्रकट हुआ। जब विराट पुरुष की दृष्टि आकाश पर पड़ी तब काल, माया और तन्मात्रा उत्पन्न हुईं। उसमें क्षोभ उत्पन्न होने पर वायु तत्व उत्पन्न हुआ। वायु और आकाश के विकृत होने पर रूप तन्मात्रा उत्पन्न हुई जिससे तेज उत्पन्न हुआ। फिर आकाश वायु और तेज ने मिलकर रस तन्मात्रा के कार्य रूप जल की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् आकाश, वायु, तेज और जल इन चारों के संयोग से गंध गुण वाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। हे विदुरजी! इन तत्वों के परस्पर मिलने से ही दूसरे तत्व उत्पन्न हुए। जो तत्व उत्पन्न हुए उन तत्वों में पिछले तत्वों का भी गुण होता है। देवताओं ने कहा—हे परमेश्वर! इस जगत में तीनों तापों से सम्पूर्ण जीव व्याकुल रहने लगे हैं अतः हे भगवन्! उन जीवों के दुःखों के निवारणार्थ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आपने वेदों की उत्पत्ति की। श्रेष्ठ गङ्गाजी की उत्पत्ति की। हम लोग उन सब का सेवन और आपके चरणों की वन्दना नित्य करते हैं, किन्तु वे पापी लोग जो आपके चरणों से दूर रहते हैं, उनका उद्धार किस प्रकार हो सकता है। हे आदि देव! आपने इन देवताओं को त्रिगुणमय उत्पन्न किया है, इसलिए हमारे रूप, स्वभाव भिन्न भिन्न हैं। हम परस्पर मिल नहीं पाते हैं। आप हमें वह मार्ग प्रदर्शन कीजिए जिससे हम इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना कर के आपको समर्पण कर सकें। इन विघ्न बाधाओं से दूर रह सकें। शान्ति पूर्वक अपना यज्ञ भाग ले सकें। आप पुराण पुरुष हैं। सम्पूर्ण सृष्टि के आदि कारण हैं। आपही ने हम को जन्म दिया है। अतः जिस कारण से हमें आपने उत्पन्न किया है उसके विषय में हमें समझाइये कि हम क्या करें। ब्रह्माण्ड रचना के हेतु हमें आप ज्ञान शक्ति दीजिये।

—❀—

॥ छटवाँ अध्याय ॥

दोहा—जिहि विधि से उत्पन्न भये, विराट रूप भगवान।
क्रम विधि से वर्णन करी, मैत्रेय कथा महान॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! भगवान् ने जब यह देखा कि मेरी महतत्व आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ परस्पर सङ्गठित न होने के कारण सृष्टि की रचना में समर्थ नहीं हो रही हैं तब उन्होंने काल शक्ति को स्वीकार कर के पंचभूत, महतत्व, अहंकार, तन्मात्रा तथा मन सहित एकादश इन्द्रियाँ आदि इन तेईस तत्वों में एक साथ ही प्रवेश किया। इन तत्वों में प्रवेश कर के उन्होंने सोये हुये जीवों को शक्ति प्रदान की। और उन्हें जागृत किया। यह सम्पूर्ण तत्व परस्पर मिला दिए गये। और अंश रूप से उस में परब्रह्म शक्ति में प्रवेश किया और उसी से विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई। उस विराट् पुरुष में यह सम्पूर्ण विश्व स्थित है 'नर' अर्थात् जल के भीतर 'अयण; अर्थात् आश्रय ले कर वह अण्डारूप हिरण्ड मय विराट् पुरुष एक सहस्र दिव्य बर्ष तक सम्पूर्ण प्राणियों को अपने में लीन कर के पड़ा रहा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वह विराट पुरुष तत्वों को धारण करने वाला ज्ञान स्वरूप क्रिया तथा आत्म शक्ति से परिपूर्ण था। उसने अपनी शक्तियों से अपने तीन भाग किये। (१) ज्ञान शक्ति के द्वारा चेतन्य स्वरूप, (२) दस भाग—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय, (३) आध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत ये तीन भाग प्रकट किये। यह विराट भगवान ही आदि जीवन शक्ति वाले होने के कारण जीवात्मा तथा जीव स्वरूप होने के कारण परमात्मा तथा प्रथम अंश रूप होने के कारण आदि अवतार माने गये हैं। यह विराट पुरुष जीव रूप से एक प्रकार का प्राण रूप से दस प्रकार का तथा आध्यात्म अधिभूत तथा अधिदैव रूप से तीन प्रकार का माना गया है।

विराट भगवान का प्रथम मुख खुला जिससे वाक् इन्द्रिय तथा लोकपाल अग्नि उत्पन्न हुए,इसी से यह प्राणी बोलता है। तत्पश्चात् ताल की उत्पत्ति हुई है जिसमें लोकपाल वरुण तथा उनका अंश रसेन्द्रिय की स्थापना हुई। इसके बाद नासिका छिद्र उत्पन्न हुए। उनमें अश्विनीकुमार घ्राणेन्द्रिय के साथ उत्पन्न हुए। तत्पश्चात नेत्र प्रगट हुए, उनमें सूर्यदेव प्रवष्ट हुए। उस नेत्रेन्द्रिय से अनेक रूपों का ज्ञान हुआ। तत्पश्चात त्वचा प्रगट हुई जिससे स्पर्श का ज्ञान होता है फिर कान उत्पन्न हुए, उन में श्रवणेन्द्रिय के साथ दसों दिशाएँ प्रगट हुईं। फिर रोम उत्पन्न हुए जिनसे औषधियाँ उत्पन्न हुईं तत्पश्चात् लिङ्ग उत्पन्न हुआ जिसके वीर्य रूप से प्रजापति की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् गुदा उत्पन्न हुई जिसमें लोकपाल मित्र वायु इन्द्रिय सहित प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात हाथ उत्पन्न हुए उन में देवराज इन्द्र प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात विराट पुरुष के चरण प्रगट हुए, उनमें अपनी सम्पूर्ण गति शक्ति को लेकर विष्णु भगवान प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात बुद्धि उत्पन्न हुई वहाँ ब्रह्मा प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात हृदय उत्पन्न हुआ वहाँ मन के साथ चन्द्रमा प्रविष्ट हुए। इसके बाद विराट भगवान में अहङ्कार तत्व प्रगट हुआ इसमें रुद्रदेव प्रविष्ट हुए। इसमें चित्त उत्पन्न हुआ जिसमें महतत्व ब्रह्मा प्रविष्ठ हुए। इस चित्त शक्ति से जीवात्मा चेतन शक्ति प्राप्त करता है। इन विराट पुरुष के सिर से स्वर्गलोक पगों से पृथ्वी तथा नाभि से आकाश

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की उत्पत्ति हुई। जिनमें सत्वगुण से देवता रजोगुण से मनुष्य और तमोगुण से राक्षस तथा भूत प्रेतादि उत्पन्न हुए।

हे विदुरजी! ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुए हैं, भुजाओं से क्षत्रिय जांघों से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। हे विदुरजी! विराट् भगवान् के रूप तथा गुणों का वर्णन करना शेष, महेष, गणेश तथा ब्रह्मा की भी शक्ति से परे है तो फिर मेरी तो शक्ति ही क्या है। जैसा मैंने गुरु मुख से सुना वैसा ही मैंने अपनी शक्ति के अनुसार आपके सम्मुख वर्णन किया। हम लोगों की भलाई तो इसी में है कि उनके गुणों का वर्णन करते रहें। उन भगवान् को हम साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं।

——❀❀——

॥ सातवाँ अध्याय ॥

दो०—विबिध प्रश्न कीन्हे विदुर, मैत्रेय को शिर नाय।
किहि विधि क्रीड़ा करत प्रभु, माया निज उपजाय॥
विराट् रूप की विभूतियाँ, कहो मुझे समझाय।
विधिवत क्रम सृष्टी कहो, मिटे ताप दुःख जाय॥

विदुरजी बोले—हे मैत्रेयजी! भगवान् सत्य स्वरूप, निर्विकार निर्गुण तथा इच्छा रहित होते हुए भी फिर वे सृष्टि रचने की इच्छा क्यों करते हैं? जो भगवान् पूर्ण काम तथा सदैव असङ्ग हैं वे अपनी क्रीड़ा के निमित्त भी सृष्टि रचने का संकल्प क्यों करते हैं? भगवान् अपनी त्रिगुणमयी माया से सृष्टि रचते हैं और उसी माया से उसका पालन तथा संहार भी कर देते हैं। जो भगवान् कभी माया में लिप्त नहीं होते हैं उनका संयोग उस माया से किस प्रकार हो जाता है। जो भगवान् सम्पूर्ण क्लेशों से रहित सत्चित आनन्द घन स्वरूप हैं उन्हें क्लेश और दुर्भाग्य किस प्रकार सताता है? इसलिए हे भगवन्! मेरी इन शंकाओं को आप दूर कीजिये।

तब मैत्रेयजी मुस्कराते हुए बोले—हे विदुर जी! सर्वात्मा तथा सब का स्वामी मुक्त स्वरूप वह भगवान् कभी भी कर्म जनित क्लेश तथा उसके बन्धनों में नहीं बँधता है किन्तु फिर भी अपनी माया से अपने को ऐसा

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

प्रकट करता है, उसे ही उन की लीला तथा माया कहते हैं। जिस प्रकार स्वप्न में देखे हुए दृश्य मनुष्यको सत्य प्रतीत होतेहैं, किन्तु जाग्रत होने पर वे ही दृश्य असत्य प्रगट होते हैं, उसी प्रकार अज्ञान वश जीव बन्धनादि में न होते हुए भी अपने को बन्धन युक्त देखता है। अब यदि यह कहा जावे कि अपने ही में विराजमान परमात्मा की प्रतीत उसे क्यों नहीं होती है, तो उस का कारण यह है कि अज्ञानवश उस जीवात्मा के ऊपर अज्ञानमयी माया का आवृत ढका हुआ है। इस के साथ ही साथ यह सम्पूर्ण क्लेश दुःख कर्म बन्धन देहाभिमानी जीव को ही लिप्त करते हैं, किन्तु परमात्मा में ऐसा नही भासता है। निष्काम भाव से कर्म करने पर उन के फलों का मिथ्या आरोप जीव पर नहीं लगता है, और वह धीरे धीरे भक्ति के द्वारा परमात्मा में लीन हो जाता है। विदुर जी बोले–हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरा यह सन्देह दूर हो गया है, मेरी समझ में यह आगया है, कि जीव को दुःख क्लेश आदि को प्रतीत कराने वाली केवल भगवान् की अज्ञानमयी माया है। वह माया स्वप्न के समान मिथ्या है, क्यों कि उस माया से ही यह जगत् बना है। इसलिए वह माया ही जीव को अज्ञान में डाले रहती है। जब यह जीव उस माया को पार कर जाता है, तब उसके परे सत्य स्वरूप भगवान् के दर्शन होते हैं। हे भगवन् ! यह तो मुझे अब निश्चय हो गया कि यह सुख दुःखादि मिथ्या पदार्थ हैं वास्तव में कुछ नहीं है केवल जीव को प्रतीत ही होते हैं। केवल उस प्रतीति के हट जाने पर जीवात्मा दुःख सुख से मुक्त हो जाता है और यह समत्व भाव को प्राप्त हो कर भगवत् चरणों में लीन हो जाता है।

हे मैत्रेयजी ! आपने अभी बताया था कि सृष्टि के आदि में विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई और उस में स्वयं परमात्मा ने प्रवेश किया। उसी को वेदों ने आदि पुरुष कहा है। उसके सहस्रों पैर, जंघायें और हाथ हैं, अब आप मुझे यह बताइये कि उन विराट् भगवान् से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? और इन लोकों, लोकपालों, देवताओं, मनुष्यों पशु पक्षी आदि जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज, सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? परमात्मा ने रजोगुण से ब्रह्मा, सतोगुण से विष्णु तथा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तमोगुण से महादेवजी का रूप धारण करके कौन २ सी लीलाएं की हैं आप इन सब का वर्णन मुझे सुनाइये। मैत्रेयजी! अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के साधनों की बिधियाँ, पितृगणों की सृष्टि, ग्रह नक्षत्र आदि की स्थिति किस प्रकार होती है। दान, तप, यज्ञ, आदि के क्या फल हैं? भगवान् की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? महतत्व आदि किस प्रकार प्रगट होते हैं प्रलय कितने प्रकार की होती है? प्रलय के पश्चात् योग निद्रा में सोये हु भगवान् की कौन कौन से तत्व सेवा करते हैं? कौन कौन से तत्व उन में लीन रहते हैं? जीव तत्व परमात्मा का स्वरूप, ज्ञान, गुरु तथा शिष्य का आपस में क्या प्रयोजन है? ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है? हे मैत्रेयजी मेरी सम्पूर्ण शंकायें मिटाने की कृपा कीजिये।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! व्यास नन्दन विदुरजी के ऐ गूढ़ बचन सुन कर और जगत के कल्याण का हेतु समझ कर मैत्रेय जी प्रसन्न होते हुए मुस्कराकर इस प्रकार बोले।

—❀❀❀—

॥ आठवा अध्याय ॥

दोहा—ब्रह्मा की उत्पत्ति कही, मैत्रेय जी हरषाय।
कमल नाभ के रूप की, महिमा कही बनाय॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! आप भगवान् के भक्तों में श्रेष्ठ स धर्मराज ही हैं। आप तो सदा ही श्रीहरि चरणों में निवास करते हैं, उन श्रीहरि की लीलाओं से ओत प्रोत श्रीमद्भागवत् पुराण मैं आपको सुना हूँ। इस श्रीमद्भागवत् पुराण को भगवान् संकर्षण ने सनत् कुमारजी सुनाया था, फिर उन्होंने सांख्यायन मुनि को सुनाया था। श्री सांख्यायन ने अपने शिष्यों तथा मेरे गुरु श्रीपाराशरजी को और वृहस्पतिजी को भागवत् पुराण सुनाया था, उसी भागवत् पुराण को श्री पाराशरजी पुलिस्त्यजी के आदेशानुसार मुझे सुनाया था। हे विदुरजी! वही भाग पुराण में तुम्हें सुनाता हूँ।

CC-0. Public Domain. Sarayu Trust

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

सृष्टि के आदि में यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड जल मग्न था, चारों ओर केवल जल ही जल था। केवल भगवान नारायण ही शेष शैया पर विराजमान थे। उन्होंने संपूर्ण विश्व को अपने में लीन कर के आत्मानन्द में मग्न होकर योग निद्रा को धारण कर रक्खा था। केवल पुनःसृष्टिकाल के आने पर उन परमात्मा को जगाने के लिये काल शक्ति ही जागृत थी। जब एक सहस्र चतुर्युगी वर्ष जल में शयन करते हुए व्यतीत होगये, तब उस काल शक्ति ने उन भगवान नारायण को जगाया। तब भगवान ने अपने शरीर में उन अनन्य लोकों को देखा तथा अपने में सम्पूर्ण भूतों तथा जीवों को भी देखा। जब भगवान की दृष्टि अपने लिङ्ग शरीर सूक्ष्म तत्व पर पड़ी तब काल की प्रेरणा से रजोगुण द्वारा और क्षुब्ध होकर सृष्टि की रचनाके लिए उनके नाभि प्रदेश से सूक्ष्म तत्व कमल कोष बाहर निकला। वह कमल कोष ऊपर को उठ कर सूर्य के समान तेजोमय हो कर उस अपार जल को प्रकाशमान करने लगा। उस देदीप्यमान कमल में सृष्टि के रचियिता स्वयं भगवान विष्णु ही उन में प्रविष्ट हो गये। और ब्रह्मा रूप से प्रगट हुये जब उस कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा जी ने अपने को अकेला पाया तब वे चारों ओर आँखें फाड़ फाड़ कर उस आकाश में देखने लगे इस कारण उनके चार मुख हो गए। उन ब्रह्मा जी को अपार जल राशि पर उठे हुए कमल के अतिरिक्त और कुछ भी समझ में न आया। वे गहरे विचार में पड़ गये कि यह कमल क्या है? मैं कौन हूँ? मुझे किसने उत्पन्न किया है? और यह कमल कहाँ से आया है? इस अथाह जल राशि में अवश्य कोई आधार है। जहाँ से यह कमल उत्पन्न हुआ है, ऐसा विचार कर के ब्रह्माजी कमल की नाल के सहारे २ नीचे जल में उतरे किन्तु वे उस कमल का कोई आधार न पा सके, उस अपार जल राशिमें कमलकी उत्पत्ति स्थान को खोजते खोजते बहुत काल व्यतीत होगये। अन्त में विफल होकर पुनः अपने कमल पर आ बैठे और समाधि में लीन हो गये। इस प्रकार दिव्य सौ वर्ष तक योगाभ्यास करने के पश्चात उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और उत्पत्ति करने वाले भगवान को अपने अन्तःकरण में देखा। उन्होंने शेष शायी भगवान के दर्शन अपने हृदय में किये। ब्रह्माजी ने देखा कि अथाह

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

जलराशि में शेष जी के दस सहस्र फनों के छत्र के नीचे भगवान नाराय लेटे हुए हैं। उन भगवान के शीश पर काँतिमय मुकुट है और श्यामव है, चार भुजाएँ हैं, उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग दिव्य शोभा से देदीप्यमान हैं रत्ने भूषणों से सुशोभित हैं, पीताम्बर धारण किए हुए हैं। उनका शरीर वि असीम है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन्हीं में विराजमान है। उनकी सुन्दर नासिव तथा कमल के समान नैत्र, मनोहर मुस्कान भक्त जनों को सुख देने वाल वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह शोभायमान है। शेषजी के सहस्र फन उन छत्र है। उनके कण्ठ में बनमाला विराजमान है। शङ्ख, चक्र, गदा, प धारण किये हुए हैं। उन प्रजापति ब्रह्मा ने केवल नारायण की नाभि सरोव से उत्पन्न हुआ कमल जल, आकाश, वायु और स्वयं अपना शरीर ये पाँ ही वस्तुएँ देखीं। इनके अतिरिक्त और कुछ उन्हें दृष्टि नहीं आया तब वि की रचना की इच्छा करने वाले ब्रह्मा जी ने अपने उत्पत्ति करने वाले भगवा नारायण में मन लगाकर उनकी बन्दना करना आरम्भ कर दी।

—०—

❀ नवाँ अध्याय ❀

(ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति)

श्रीब्रह्माजी बोले—हे भगवन् ! बहुत काल के पश्चात् में आप पहिचान सका। बड़े दुर्भाग्य का विषय है कि आप प्राणियों में वास क हुए भी उनसे नहीं पहिचाने जा सकते हैं। इस सम्पूर्ण विश्व में आप समाये हुए हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। आपही अ रूपों में प्रतीत होते हैं। आप सत् चित आनन्द घन हैं। चित्त श के कारण आप स्वयं प्रकाश हैं। आपका आनन्दमय, भेद रहित एवं ते युक्त स्वरूप सम्पूर्ण विश्व में समाया हुआ है, आप ही सम्पूर्ण विश्व कल्याण करने वाले हैं। नरकगामी जीव ही आप की निन्दा करते हैं। आप को बारम्बार नमस्कार करता हूँ। जीव जब तक आपके चरणारवि का आश्रय नहीं लेता है जब तक उसे यह साँसारिक माया, भय तृ

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

शोक, मोह ममत्व सताते रहते हैं। जब आप की शरण में आ जाता है, तब वह इन सम्पूर्ण क्लेशों से मुक्त हो जाता है। यह सर्दी, गर्मी, वर्षा कामाग्नि, इन्द्रियाँ के विषय रूप आपही की माया है। हे देव ! इन साधारण प्राणियों की तो बात ही क्या है, बड़े २ ऋषि मुनि भी आपके कीर्तन आदि से विमुख रहते हैं। वे अनेक साँसारिक मायाओं में फँसे हुये हैं—

हे नाथ ! आप विशुद्ध भक्ति योग के द्वारा शुद्ध हृदय में विराजमान रहते हैं। हे नाथ ! आपके भक्त आपको जिस रूप से भजते हैं आप उन पर कृपा करने के लिये वही रूप धारण कर लेते हैं। आप अन्तरात्मा हैं। आप एक होते हुये भी अनेक हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य यज्ञ, दान, तपस्या, व्रतादि से आपको प्रसन्न करना है। आपके प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण अर्थ फल प्राप्त होते हैं। आपका प्रकाश होने पर हृदय के सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जाते हैं। इस जगत की उत्पत्ति, स्थित और संहार आप अपनी लीला मात्र से ही करते हैं, मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। आपके नाम संकीर्तन से ही जन्म जन्मांतरों के पाप नष्ट हो जाते हैं, और ब्रह्म पद की प्राप्ति होती है। विश्व वृक्ष रूप में आपही हैं। आप को बारम्बार नमस्कार करता हूँ। आप ही ब्रह्मा, शिव और विष्णु के रूप में होकर इस विश्व की उत्पत्ति, स्थित और लय करते हैं। मैंने आप की बहुत काल तक तपस्या की है। मेरी इस तपस्या के आप ही साक्षी हैं। आप पूर्ण काम, विषय वासनाओं से मुक्त तथा माया से परे हैं। धर्म की रक्षा के लिए ही अनेक रूप धारण करते हैं। आप ही प्रलय काल के पश्चात् सम्पूर्ण प्राणियों को अपने उदर में लीन कर लेते हैं। जब आपकी इच्छा सृष्टि रचने की होती है, तब आप की नाभि के कमलकोष से मेरी उत्पत्ति होती है तथा आपकी कृपा से मैं आपके उदर में समाई हुई सृष्टि की पुनः रचना करता हूँ। हे भगवन् ! पूर्व कल्प के समान मुझे पुनः बुद्धि प्रदान कीजिये। जिससे मैं पूर्व की भाँति फिर सृष्टि रच सकूँ। मेरी बुद्धि पुनः प्रकाशित हो। मेरी वेदवाणी का उच्चारण लुप्त न हो। मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप भक्तों पर दया करने वाले हैं। अतः मेरे दुःख को दूर कीजिए।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी ! अपने उत्पत्ति स्थान कमलधारी श्री भगवान् की इस प्रकार स्तुति कर के ब्रह्माजी थक कर मौन हो गये। तब भगवान् ने जाना कि इस प्रलय जलराशि को देख कर ब्रह्मा जी घबड़ा उठे हैं तथा लोक रचना के विषय में कोई निश्चय न करने के कारण अति दुखी हैं, तब भगवान् मधुर गम्भीर वाणी में इस प्रकार बोले-वेदमय ब्रह्मा ! तुम किसी प्रकार का खेद न करो। तुम्हारी जो इच्छा है वह मैं पहले ही तुम्हें प्रदान कर चुका हूँ। तुम फिर मेरी तपस्या करो और उपासना द्वारा मेरी सम्पूर्ण लोकों की रचना शक्ति को स्पष्ट अपने हृदय में देखो। सृष्टि रचना में आलस्य न कर के उसका उद्यम करो। मुझे तपस्या के द्वारा ही देख सकते हो। जिस प्रकार अग्नि काष्ठ में छिपी रहती है, उसी प्रकार मैं भी सम्पूर्ण भूतों में छिपा रहता हूँ। जो प्राणी अज्ञान के मल को दूर कर देता है वह सम्पूर्ण भूत, इन्द्रिय और गुणों से रहित होकर मुझे अपने अन्तःकरणमें देखता है। हे ब्रह्माजी ! कर्मके अनुसार आप संपूर्ण जीव सृष्टि को रचते हैं, किन्तु फिर भी तुम उनमें मोहित नहीं होते हो। उसका कारण यह है कि तुम सर्व प्रथम मंत्र द्रष्टा हो। तुम सृष्टि रचते समय भी अपने मन को मेरे में लगाये रखते हो। इसी कारण रजोगुण तुम को कर्म बन्धन में नहीं बाँधता है। तुम अपना मूल उत्पत्ति स्थान देखना चाहते थे इसी कारण तुम कमल नाभके द्वारा जलमें उतरकर अपना मूल उत्पत्ति स्थान ढूँढ़ रहे थे। इस कारण मैंने तुम्हारी उत्पत्ति का मूल स्थान अपना यह स्वरूप तुम्हारे अन्तःकरण में ही प्रकट करके दिखाया है। तुम्हारी रुचि मेरी तपस्या की ओर जो हुई है, वह मेरी ही कृपाहै मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी और तुम्हारा कल्याण होगा। इस स्तोत्र द्वारा नित्य प्रति जो पुरुष मेरी स्तुति करेगा वह शीघ्र ही मुझे प्रसन्न कर लेगा।

यह सम्पूर्ण विश्व मेरा है। मैं उसमें समाया हुआ हूँ। इसलिए अपने सब वेद मय स्वरूप से तुम पूर्ण कल्प की भाँति इस सृष्टि को पुनः अपने आप उत्पन्न करो।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री मैत्रेयजी बोले ! भगवान्, ब्रह्माजीको इस प्रकार अपने स्वरूप का ज्ञान कराकर अदृश्य हो गये।

—❀—

दसवां अध्याय

मैत्रेय जी द्वारा दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन

विदुरजी बोले—हे मैत्रेयजी ! कमल नाभ भगवान् के अन्तर्ध्यान होने पर ब्रह्माजी ने इस सृष्टि की रचना किस प्रकार की। आप क्रमशः सब का वर्णन कीजिए।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! धर्मात्मा विदुरके ऐसा पूछने पर मैत्रेयजी अति प्रसन्न हुए और विदुरजी के पूछे हुए प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—हे विदुरजी ! कमल नाभ भगवान् की आज्ञा से ब्रह्माजी ने सौ दिव्य वर्षों तक एकाग्रचित्त होकर तपस्या की। उस तपस्या से उनकी विवेक शक्ति तथा आत्म-शक्ति दोनों बढ़ गईं। उन्होंने देखा कि काल की गति से उन का वह कमल जलमें हिल रहा है। यह देख कर ब्रह्माजी जल सहित उस वायु को पान कर गये तत्पश्चात् उस कमल पर जिस में वह बैठे हुयेथे प्रवेश कर गए तथा उस कमल के उन्होंने भूः भुवः स्वः इस प्रकार तीन भागकिए। वह कमल इतना बृहद था कि अनेक लोक तथा भुवनों में बाँटा जा सकता था किन्तु ब्रह्मा जी ने प्राणियों के भोग स्थान के लिए इन्हीं तीन लोकों में उसे विभाजित किया। यह लोक सकाम कर्म करने वालों के लिए है, और इनकी अवधि एक कल्प तक की है। जो प्राणी निष्काम कर्म करते हैं, उन्हें महः तपः जनः तथा सत्यः लोकों की प्राप्ति होती है, इन लोकों की स्थिति की अवधि ब्रह्मा की आयु अर्थात् दो परार्द्ध तक होती है विदुरजी बोले—हे भगवान् ! आपने काल भगवान् की शक्ति के विषय में जो बात कही थी उसका वर्णन कीजिये।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! सत्व, रज, तम, इन गुणों के फल स्वरूप यह महतत्व आदि के रूप में प्रगट होने वाला आदि अन्त रहित ही काल है। भगवान् उस काल की प्रेरणा से ही अपनी लीलाके साथ इस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding...

सृष्टि के रूप में प्रकट होते हैं। प्रथम यह सम्पूर्ण विश्व भगवान् की माय में लीन हो कर ब्रह्म रूप में ब्रह्म मय था। काल भगवान् ने उसी अव्यक्त रूप को व्यक्त कर के सृष्टि रूप में प्रकट कर दिया। यह सृष्टि जैसी अब है वैसी ही पहिले थी तथा वैसी ही भविष्यमें रहेगी। सृष्टि नौप्रकार कीहै तथ प्राकृत और वैकृत भेद से दसवीं सृष्टि और भी मानी जातीहै। इस सृष्टि का प्रलयकाल द्रव्य तथा गुणों के द्वारा तीन भेदों में माना जाता है। विदुर जी ! मैं तुम्हें इन दसों प्रकार की सृष्टि का वर्णन सुनाता हूँ। सब प्रथम भगवान् की इच्छा से सत्, रज, तम, इन तीनों गुणों के परस्पर मे से महतत्व की उत्पत्ति हुई (२) दूसरी उत्पत्ति अहंकार की हुई। जिस द्वारा पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि ये पाँच तत्व तथा पाँच ज्ञानेन्द्रि व पाँच कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई। तीसरी सृष्टि भूत सर्ग की हुई। जिन पंच महाभूतों की उत्पत्ति करने वाला तन मात्र वर्ग स्थिति है। चौथी सृ ज्ञान और क्रिया शक्ति को उत्पन्न करने वाली है, पाँचवीं सृष्टि इन्द्रियों अधिष्ठाता देवताओं की हुई तथा मन इन्द्रीय की भी उत्पत्ति हुई। छठ सृष्टि तामिश्र, अन्धतामिश्र तम मोह तथा महामोह एवं अविद्या की हुई यह प्राणियों को पाप की ओर ले जाती है। यह प्राकृत सृष्टि कहला है अब वैकृत सृष्टि का वर्णन सुनो वैकृत सृष्टि में सातवीं सृष्टि छः प्र के स्थावर, वृक्षों की है।

१ वनस्पति, २ औषधि, ३ लता, ४ त्वकसार, ५ बीरुध, तथा छठ द्रुम। आठवीं सृष्टि पशुपक्षियों की हुई। यह सृष्टि अट्ठाईस प्रकार की है इनमें तमोगुण प्रधान है, इनमें एक खुरवाले, दो खुर वाले, पाँच नख वा गाय, बकरा, भैंसा, गधा, घोड़ा, कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, विलाव, सिंह, बन्द कछुआ, मगर आदि पशु हैं। उड़ने वाले पक्षी हैं। मनुष्य रजोगुण प्र है। स्थावर पशु, पक्षी तथा मनुष्य यह सब वैकृत सृष्टि कहलाते हैं। देवसर्ग कहलाता है। इसके अलावा कौमार सर्ग है, वह प्राकृत तथा वै दोनों ही प्रकार का है। जिसमें सनतकुमार आदि ऋषि देवता, पि यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा भूत प्रेतादि ये आठ प्रकार की सृष्टि मा जाती है। हे विदुर जी ! इस प्रकार संकल्प भगवान् ब्रह्मा के रूप में प्र

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होकर सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से व्याप्त इस दस प्रकार की सृष्टि में अपने ही रूपों को प्रकट करते हैं।

—❀❀—

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

मैत्रेय जी द्वारा काल विभाग का वर्णन

मैत्रेयजी बोले--हे विदुर जी! पृथ्वी का अति सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश जिसका कोई भी भाग नहीं हो सकता है वह परमाणु कहलाता है। अनेक परमाणुओं के मिलने से एक अवयव बन जाता है और उन अवयवों के मिलने से एक वर्ग बन जाता है। जिसको परम महान् कहते हैं। इसी प्रकार काल के भी अति भेद हैं। अति सूक्ष्म और परम महान् नाम के भेद हैं। दो परमाणुओं के परस्पर मिलने से एक 'अणु' बनता है। तथा तीन 'अणुओं' के परस्पर मिलने से एक 'तृसरेणु' बनता है जो सूर्य की किरणों के प्रकाश में किसी झरोखे में होकर आता जाता दिखाई देता है। इस प्रकार के तीन तृसरेणुओं को पार करने में जितना समय सूर्य को लगता है, उसी का नाम सृष्टि काल है। इस सृष्टिकाल से सतगुना काल 'वेध' काल कहलाता है तथा तीन वेध का एक 'लव' बनता है। तीन लवों को एक 'नमेष' कहते हैं। तथा तीन निमेष को एक 'क्षण' के नाम से पुकारते हैं। पाँच क्षण को एक 'काष्ठा' कहते हैं तथा पन्द्रह काष्ठाओं के समय को एक 'लघु' कहते हैं, पन्द्रह लघुओं के समय को एक दण्ड अथवा घड़ी कहते हैं। दो घड़ी का एक 'मुहूर्त' होता है। छः या सात घड़ियों का एक 'पहर' कहलाता है इसे ही 'याम' कहते हैं, यह दिन रात में आठ होते हैं। एक घड़ी समय ज्ञात करने के लिए इस प्रकार का काल मापक यंत्र बन सकता है, छः पल ताँवे का एक वर्तन निर्माण किया जावे जिसमें एक प्रस्थ जल आ सके। उस बर्तन में चार माँसे सोने की चार अंगुल प्रमाण की लम्बी सलाई से पैंदे में छेद किया जावे तथा उस वर्तन को जल से भरे हुए बड़े बर्तन में छोड़ दिया जावे।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जितने समय में उस छेद के द्वारा एक प्रस्थ जल उस बर्तन में आजावे तथा वह बर्तन उस जल में डूब जावे उतने काल प्रमाण को एक घड़ी या दण्ड अथवा नाड़िका कहेंगे। हे विदुरजी! चार प्रहर दिन में तथा चार प्रहर रात में होते हैं, यह मनुष्यों के दिन रात माने जाते हैं। मनुष्यों के पन्द्रह दिन रात का पक्ष कहा जाता है। पक्ष के दो भेद हैं शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। इन दोनों को मिलाकर एक मास बनता है जो पित्रों का एक दिन रात होता है। दो मासों को मिलाकर एक ऋतु तथा छः मासों को मिलाकर कर अयण' बनता है अयण भी दो प्रकार के होते हैं। एक दक्षिणायण दूसरा उत्तरायण। यह दोनों अयण मिलकर मनुष्यों का एक वर्ष तथा देवताओं का एक दिन रात होते हैं, इस प्रकार मनुष्यों की सौ वर्ष की आयु प्रमाण मानी जाती है। काल के अधिष्ठाता भगवान् सूर्य एक परिमाणु से लेकर वर्ष पर्यन्त काल को बारह राशियों में बाँटकर सम्पूर्ण भुवन की परिक्रमा करते रहते हैं। यह सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्र उन्हीं राशियों में होकर भुवन कोष की परिक्रमा करते रहते हैं। महीनों के भेद से वर्ष के नाम सम्वत्सर, परिवतसर, इडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर होता है।

विदुरजी बोले—हे मैत्रेयजी! आपने मनुष्य, देवता, पितर आदि की परमायु का वर्णन सुनाया किन्तु सनकादिक मुनीश्वर जो तीनों लोकों से बाहर कल्प से भी अधिक आयु के हैं उनकी आयु का वर्णन मुझे सुनाइये।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग तथा कलियुग के चारों युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशों सहित बारह सहस्र दिव्य वर्ष के होते हैं। सतयुग चार हजार दिव्य वर्ष का होता है और आठसौ दिव्य वर्ष सन्ध्या तथा सन्ध्यांशों के होते हैं। इस प्रकार सतयुग का कुल परिमाण ४८०० दिव्य वर्ष हुआ। इसी प्रकार तीन हजार दिव्य वर्ष का त्रेतायुग और छः सौ दिव्य वर्ष उनकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांशों को मिलाकर ३६०० दिव्य वर्ष का हुआ। द्वापर दो हजार दिव्य वर्ष तथा ४०० दिव्य वर्ष सन्ध्या तथा सन्ध्यांशों का मिलाकर २४०० दिव्य वर्षों का हुआ। और कलियुग एक हजार दिव्य वर्ष तथा दो सौ दिव्य वर्ष सन्ध्या तथा सन्ध्यांशों को मिलाकर १२०० दिव्य वर्ष का हुआ। जितने सहस्र

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

वर्षों का युग होता है उससे दुगने सौ वर्ष की उसकी सन्ध्या तथा सन्ध्योपाश होते हैं। प्रत्येक युग के आदि में सन्ध्या तथा अन्त में सन्ध्यांश होता है, सन्ध्या तथा सन्ध्यांशों के बीच काल को ही युग कहते हैं। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन के बराबर होता है, तथा देवताओं का एक वर्ष मनुष्यों के ३६० वर्ष के बराबर हुआ। इस काल परिमाण से कलियुग ४३२००० चार लाख बत्तीस हजार वर्ष मनुष्यों का हुआ। तथा आठ लाख चौंसठ हजार मनुष्य वर्ष का द्वापर हुआ। बारह लाख छानवे हजार मनुष्य वर्षों का त्रेतायुग तथा सत्तरहलाख अट्ठाईस हजार मनुष्य वर्षों का सत-युग हुआ। हे विदुर जी! प्रत्येक युगमें धर्म घटता बढ़ता रहता है धर्म सतयुग में चार चरण से त्रेता में तीन चरण से द्वापर में दो चरण से और कलियुग में एक चरण से रहता है।

हे विदुर जी! महलोक से ले कर ब्रह्मलोक तक काल परिमाण भिन्न भिन्न होता है। वहाँ पर एक सहस्र चतुर्युगी का एक दिन तथा इतनी ही बड़ी रात्रि होती है।

जिस रात्रि में सृष्टि के रचियता ब्रह्माजी सोते हैं उस रात्रि के समाप्त होने पर इस लोक का एक कल्प माना जाता है तथा ब्रह्मा का एक दिन दूसरा कल्प माना जाता है। कल्प में १४ मनु समाप्त हो जाते हैं। प्रत्येक मनु की आयु का परिमाण ७१ चतुर्युगी होता है। हर एक मन्वन्तर में बहुत से मनु उनके वंशज राजा लोग, सप्तर्षि, देवतागण, इन्द्र तथा गन्धर्व आदि साथ साथ अपनी आयु भोगते हैं। ब्रह्मा जी की इस एक दिन की सृष्टि में तीनों लोकों की रचना होती है। इस में देवता, पशु, पक्षी मनुष्यों की सृष्टि उसी के कर्मानुसार होती है जब ब्रह्मा जी का एक दिन व्यतीत हो जाता है तब वे सारे विश्व को अपने में लीन कर के निश्चेष्ट भाव से सो जाते हैं उनका पुरुषार्थ नष्ट सो जाता है। सूर्य, चन्द्रमा आदि सभी उन्हीं में लीन हो जाते हैं। भूः भुवः स्वः ये तीनों लोक उस प्रलय रात्रि में ब्रह्माजी के शरीर में लीन हो जाते हैं। उस समय ये तीनों लोक शेष नाग के मुखारविन्दु से निकली हुई ज्वाला से जलने लगते हैं, तब महलोक निवासी मुनिगण जनलोक को चले जाते हैं। इतने समय में ही

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रचण्ड प्रलयकालीन वायु से उथल पुथल हो कर सातों समुद्र तीनों लोकों को डुबा देते हैं, उस समय भगवान् नारायण योग निद्रा में सो जाते हैं और जललोक निवासी ऋषिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं। इस प्रकार दिन के हेर फेर से एक सहस्र चतुर्युग समाप्त होने पर ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु भी समाप्त हो जाती है। ब्रह्मा की आयु के अर्द्ध भाग को परार्द्ध नाम से पुकारते हैं। अभी तक प्रथम परार्द्ध समाप्त हुआ है, और दूसरा परार्द्ध चल रहा है। पूर्व परार्द्ध के आदि में ब्रह्मा नाम का कल्प था उसी कल्प में ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये हुए थे। उस परार्द्ध के अन्त में जो कल्प था उस को पाद्म कल्प कहा गया है। हे विदुर जी! इस समय जो कल्प है उसे बाराह कल्प कहते हैं, ब्रह्मा की आयु के दो परार्द्ध का समय विश्वात्मा भगवान् का एक निमेष मात्र माना जाता है।

यह ब्रह्माण्ड कोष जो प्रकृति महतत्व अहंकार तथा पंच तन्मात्राओं सहित ग्यारह इन्द्रिय पाँच भूत इन सोलह विकारों से मिल कर बना हुआ है जिसका विस्तार अन्दर से पचास करोड़ योजन है। इस ब्रह्माण्ड कोष के बाहर चारों ओर सात आवरण हैं। जिस अक्षर ब्रह्म में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक परमाणु के समान पड़े हुए हैं यही विश्वात्मा परमात्मा पुराण पुरुष श्री विष्णु का उत्तम स्वरूप है।

—❀❀—

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

❀ मैत्रेय जी द्वारा सृष्टि का विस्तार वर्णन करना ❀

श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी! अब मैं आप को ब्रह्माजी के द्वारा रची हुई सृष्टि का वर्णन सुनाऊँगा। ब्रह्माजी ने सर्व प्रथम तब 'मोह' महा मोह तामिश्र और अन्धतामिश्र नाम की अज्ञान की पाँच वृत्तियाँ रचीं। इस पापमयी रचना को देख कर उन्हें बड़ा खेद हुआ तब उन्होंने भगवान् का तप कर कर के दूसरी सृष्टि की रचना की। जिस में सनक सनन्दन सनातन तथा सतनकुमार ये चार ऊर्ध्वरेता तथा निवृत्ति परायण चार मनु उत्पन्न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किये। ब्रह्माजी ने अपने इन चारों पुत्रों को प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी, किन्तु वे चारों पुत्र निवृत्ति परायण थे। वे भगवान् के भजन और तपस्या को उत्तम मानते थे। इसलिए उन्होंने सृष्टि उत्पन्न करने से मना कर दिया। अपनी आज्ञा उल्लंघन देख कर तथा अपना तिरस्कार समझ कर ब्रह्मा जी को असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने उस क्रोध को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह क्रोध भौंहों के मध्य से तत्काल एक नीले और लाल रङ्ग के नील लोहित शिशु के रूप में उत्पन्न हो गया वह रो रो कर कहने लगा। हे सृष्टि के रचियता! आप मेरा नाम और रहने का स्थान बताइये। वह बालक रोने के कारण रुद्र नाम से विख्यात हुआ और वे ही देवताओं के देव महादेव कहलाये। तब ब्रह्मा ने उस बालक से कहा—रोओ मत! मैं तुम्हारे योग्य स्थान अभी बताता हूँ। तुम्हारा नाम रुद्र होगा। तुम हृदय, इन्द्रिय प्राण आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा तप में निवास करोगे। तुम्हारे नाम अनेकों हैं किन्तु मुख्यतः मन्यु मनु, मनिहस, मनान्, शिव, रिनुध्वज उग्ररेता बामदेव, काल भैरव तथा धृतवृत नाम विख्यात होंगे। धी, वृत्ति, उषना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती सुधा एवं दीक्षा, ये एकादश रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ बनेंगीं। हे रुद्र! तुम ऊपर कहे हुए स्थानों में निवास करो, और अपनी इन पत्नियों से प्रजा की उत्पत्ति करो। तुम इस काल में प्रजापति हो। ब्रह्मा जी की आज्ञा सुन कर भगवान् रुद्र ने नील लोहित बल, आकार तथा स्वभाव में अपने ही तुल्यप्रजा की उत्पत्ति की। रुद्रदेव के द्वारा उत्पन्न की हुई प्रजा सारे जगत को खाने लगी। यह देख कर ब्रह्मा जी को बड़ा खेद हुआ रुद्रदेव से बोले—हे महादेव! तुम्हारी उत्पन्न की हुई प्रजा तो मुझे तथा मेरी उत्पन्न की हुई प्रजा को खाये जा रही है। मुझे ऐसी सृष्टि रचना की आवश्यकता नही है, तुम तप के द्वारा सौम्य तथा उत्तम प्रजा उत्पन्न करो।

मैत्रेय जी बोले—ब्रह्मा जी की आज्ञा को सुन कर रुद्रदेव अति प्रसन्न हुये और तपस्या के लिए बन को चले गये। इसके बाद ब्रह्माजी ने अपने सङ्कल्प से दस पुत्रों की उत्पत्ति की। उनके नाम मरीच, अत्रि, अङ्गिरा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पुलिस्त्य, पुलह, कृतु, भृगु, वशिष्ठ, दत्त, तथा नारद थे। यह पुत्र ब्रह्माजी के अङ्गों से उत्पन्न हुए। नारदजी गोद से, उत्पन्न हुए। दत्त अँगूठे से, वशिष्ठ प्राण से, भृगु त्वचा से, कृतु हाथ से, पुलह नाभि से, पुलस्त्य कान से, अङ्गिरा मुख से, अत्रि नेत्रों से तथा मरीचि मन से उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के दाएँ स्तन से धर्म की उत्पत्ति हुई जिस से नर नारायण के रूप में स्वयं भगवान् प्रगट हुए। ब्रह्मा जी की पींठ से अधर्म उत्पन्न हुआ। हृदय से काम, दोनों भोंहों से क्रोध, मुख से सरस्वती नीचे के ओठ से लोभ, लिङ्ग से समुद्र, गुदा से निऋति तथा छाया से कर्दम ऋषि प्रगट हुए। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्मा जी के मन और शरीर से उत्पन्न हुए। हे विदुर जी! ब्रह्मा जी की कन्या सरस्वती बड़ी सुन्दर और सुकुमारी थी। एक बार ब्रह्माजी उस कन्या को देख कर अति कामित हो उठे। ब्रह्मा जी का ऐसा अधर्म पूर्ण संकल्प देख कर उन के पुत्रों ने उन्हें समझाया। पुत्रों के समझाने से ब्रह्मा जी अति लज्जित हुये और उन्होंने अपना यह शरीर त्याग दिया। वही शरीर कुहरा तथा अन्धकार के रूप में दिशाओं ने ग्रहण कर लिया। इसके बाद ब्रह्मा जी ने चार वेद उत्पन्न किये। उन्होंने चार ऋत्विजों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, चार आश्रम, धर्म चार चरण इन सब का निरूपण किया।

विदुरजी बोले—हे मैत्रेयजी! ब्रह्माजी के किस मुख से कौनसी वस्तु की रचना हुई आप कृपा कर के समझाइये। श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी! प्रजापति ब्रह्मा के पूर्व वाले मुख से ऋग्वेद, दक्षिण वाले मुख से यजुर्वेद, पश्चिम वाले मुख से सामवेद तथा उत्तर वाले मुख से अथर्ववेद, की रचना हुई। इसी प्रकार शास्त्र, इज्या, स्तुति स्तोम्व तथा प्रायश्चित आदि चार कर्मों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद तथा स्थापत्व (शिल्पविद्या) वेद इन सभी उग्र वेदों की रचना हुई। इसी प्रकार ब्रह्माजी ने अपने मुख से इतिहास, पुराण, पाँचवाँ वेद उत्पन्न किया। तथा दो योग, और विद्या, दान, तप, सत्य, धर्म के चार चरण तथा चारों आश्रम उत्पन्न किये। आश्रमों की वृत्तियाँ इस प्रकार मानी गई हैं सावित्र वृति, प्रजापत्य वृत्ति, ब्रह्मवृत्ति तथा वृहत् वृत्ति ये चारों वृत्तियाँ

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रह्मचारी के लिए बनाई गई हैं। वार्ता वृत्ति, संचय वृत्ति, शालीन वृत्ति, तथा शिलोच्छ वृत्ति ये वृत्तियाँ गृहस्थ के लिये हैं। वैखानस, बालखिल्य, औदुम्बर तथा फैनप ये चार वृत्तियाँ बानप्रस्थों के लिये हैं। कुटीचक, बहूदक, हंस तथा परमहंस ये चार वृत्तियाँ सन्यासियों के लिये हैं। इसी प्रकार आन्वीक्षिकी, त्रया, वार्ता तथा दण्डनीति ये भी ब्रह्मा जी के चारों मुखों से उत्पन्न हुईं। ब्रह्माजी के हृदय से ओंकार प्रगट हुआ। वर्ण, स्वर, छन्द आदि भी उनके अङ्गों से प्रकट हुए। ब्रह्मा जी के रोम से उष्णिक छन्द उनकी त्वचा से गायत्री छन्द, माँस से त्रिष्टुप छन्द, उनके स्नायु से अनुष्टुप छन्द, हड्डियों से जगती छन्द, मज्जा से पंक्ति छन्द तथा प्राणों से वृहती छन्द उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी के जीव से कवर्ग पवर्ग तथा शरीर से स्वर, इन्द्रियों से ऊष्म वर्ण तथा अन्तःस्थल से य, र, ल, व, उत्पन्न हुये। ब्रह्माजी की क्रीड़ा से सात स्वर निषाद, ऋषभ, गान्धारषडज्, मध्यम, धैवत, पंचम उत्पन्न हुये।

हे विदुरजी ! इतनी सृष्टि रचने के बाद जब ब्रह्माजी यह बिचार करने लगे कि मेरी सृष्टि की वृद्धि नहीं होती है। जब वे इस बिचार में बैठे हुये थे तब उनका शरीर दो भागों में बँट गया। 'क' ब्रह्माजी का नाम है। उसके दो भागों में बँटने से शरीर का नाम काय पड़ गया। उस काय के एक भाग से स्त्री और दूसरे भाग से पुरुष उत्पन्न हुआ। उस पुरुष का नाम स्वायम्भुवमनु तथा उस स्त्री का नाम शतरूपा था। तब से स्त्री पुरुष के द्वारा सृष्टि उत्पन्न होने लगी। स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा से दो पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद और तीन कन्यायें आकूति देवहूति तथा प्रसूति उत्पन्न हुईं। मनु महाराज ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति के साथ तथा देवहूति का कर्दमजी के साथ किया। इन तीनों कन्याओं से ही सारे जगत की सृष्टि है।

—❀❀—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

बाराह भगवान के अवतार की कथा

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! श्री मैत्रेयजी से सृष्टि का विस्तार सुन कर विदुर जी इस प्रकार बोले–हे मैत्रेय जी ! ब्रह्माजी के शरीर से उत्पन्न स्वायम्भुव मनु तथा उनकी पत्नी शतरूपा ने फिर क्या किया। आप त्रिकालज्ञ हैं यह मुझे समझाने की कृपा कीजिए।

श्री शुकदेवजी बोले--हे राजा ! विदुर जी के मुख से ऐसे बचन सुनकर श्री मैत्रेयजी बोले--हे विदुर जी ! जब स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपा का जन्म होगया तब वे दोनों नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर अपने जन्म दाता ब्रह्मा जी से बोले--हे पूज्यपाद ! हम आप को नमस्कार करते हैं। हमें क्या आज्ञा है ? आप की प्रसन्नता के लिए हम कौन सा कार्य करें ? ब्रह्माजी बोले-हे पुत्र ! तुम्हें मेरा आशीर्वाद है, तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी आज्ञा से अपनी भार्या से सन्तान उत्पन्न करो तथा धर्म पूर्वक इस पृथ्वी का पालन करो। तुम प्रजापति हो। यज्ञ पुरुष भगवान् की प्रसन्नता के लिए यज्ञ करो।

मनुजी बोले–हे पिताजी ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा किन्तु प्रजा के रहने के लिए पृथ्वी नहीं है। वह प्रलयकालीन जल में निमग्न है। आप उसे बाहर निकालने का प्रयत्न कीजिए।

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी ! अपने पुत्र स्वायम्भुवमनु के बचन सुनकर ब्रह्माजी कुछ क्षण के लिए विचारधारा में डूब गये तथा जल में डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार का उपाय सोचने लगे। उसी क्षण उन्हें एक छींक आई और उनके नासिका छिद्र से अंगुष्ठ प्रमाण का एक प्राणी बाहर आ गिरा। वह ब्रह्माजी तथा स्वायम्भुव मनु मरीचि आदि मुनिगणों के देखते ही पर्वताकार हो गया और शूकर के रूप में घुरूँ २ की ध्वनि करके गर्जने लगा। उन मायामय बाराह भगवान् की घुरघुराहट सुन कर अपने पुत्रों सहित ब्रह्मा भी अति प्रसन्न हुए और वेदमन्त्रों से सब मिलकर स्तुति करने लगे।

बाराह भगवान् पहले आकाश में उड़ गये और फिर अपने कठोर शरीर, त्वचा, कड़े २ रोम, सफेद दाढ़ों तथा नेत्रों से चारों दिशाओं को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कम्पायमान करने लगे। मेघपुञ्जों को खुरों से छितराने लगे, और सूँघ सूँघकर पृथ्वी का पता लगाने लगे। उनका स्वरूप बड़ा क्रूर तथा भयङ्कर था किन्तु अपनी स्तुति सुनकर बड़ी सौम्य दृष्टि से उन मुनि गणों की ओर देखकर प्रलयकाल के उस अथाह जल में कूद पड़े। जल को चीरते हुए रसातल में पहुँचे और वहाँ से जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर लेकर रसातल से बाहर निकले। पृथ्वी को दाँत पर रखकर लाते हुए देखकर आदि दैत्य हिरण्याक्ष ने बाराह भगवान को ललकार कर गदा का प्रहार किया। तब बाराह भगवान् ने उस दैत्य को इस प्रकार मार डाला जैसे सिंह हाथी को मार डालता है। तब नीलवर्ण बाराह भगवान पृथ्वी को अपने दाँत पर रखकर जल से बाहर निकले। उस समय ब्रह्मा मरीच आदि मुनियों को यह निश्चय होगया कि भगवान् ने पृथ्वी के उद्धार के लिये अवतार धारण किया है, तब वे उन यज्ञ पुरुष भगवान की इस प्रकार प्रार्थना करने लगे।

ऋषिगण बोले—हे यज्ञपति! आपको नमस्कार है, आप यज्ञरूप हैं। आपने डूबी हुई पृथ्वी को जल में से बाहर निकालने के लिये यह अवतार धारण किया है। आपकी त्वचा से गायत्री आदि छन्द, रोमों से कुटा नेत्रों से घृत तथा चार चरणों से ऋतिविजों के कर्म प्रकट हुए हैं। आपके मुखों से श्रक् नासिका से श्रुवा, उदर से यज्ञीय पात्र, मुख से ब्रह्मपात्र छिद्र से सोम पात्र प्रकट हुए हैं। हे ईश! आपके चबाने से अग्निहोत्र छिद्र अवतार ग्रहण करने से दीक्षा, गर्दन हिलाने से तीन इष्टियाँ तथा दाढ़ों से दीक्षान्त सृष्टि उत्पन्न हुई है। आपकी जिह्वा महावीर नाम का कर्म है। सिर होम रहित अग्नि है। प्राण इष्ट का चयन है। वीर्य सोम है। आपका बैठना प्रातः मध्य तथा सायङ्काल के तीन समय हैं। आपकी सातों धातु अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्त्थ, षोडशी, बाजपेय, अतिराज और आप्तोरियाम नाम के सात यज्ञ हैं। शरीर के जोड़ सत्र हैं और इस प्रकार आप का सम्पूर्ण शरीर यज्ञमय है। हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हैं। आपने अपनी पत्नी जगत् माता पृथ्वी को रसातल से ऊपर लाकर जल पर स्थापित किया है। यह सब कार्य आपने लीला ही से किये हैं। आपके

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गर्दन के रोमों के फरफराने से जो शीतल बूँदें हम लोगों पर गिरी हैं उससे हम जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक के निवासी मुनिगण अति पवित्र हो गये हैं।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! उन मुनिगणों की इस प्रकार स्तुति सुन कर बाराह भगवान ने लीला पूर्वक रसातल से लाई हुई पृथ्वी को जल के ऊपर रखकर अन्तर्ध्यान हो गये। हे विदुरजी ! जो पुरुष भगवान की इस पवित्र कथा को भक्ति पूर्वक सुनाता या सुनता है, उससे भगवान् शीघ्र ही अति प्रसन्न हो जाते हैं और उसकी कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

—०—

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

दिति के गर्भ धारण करने की कथा

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! मैत्रेयजी के मुख से शूकर रूप धारी बाराह भगवान के अवतार की कथा सुनकर विदुरजी को और हरि कथा सुनने की इच्छा हुई, तब उन्होंने हाथ जोड़कर मैत्रेयजी से पूछा हे मैत्रेयजी ! आदि दैत्य हिरणाक्ष का जन्म कैसे हुआ तथा उसकी मुठ भेड़ भगवान से किस प्रकार हुई ?

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे बिदुरजी ! आपका यह प्रश्न अति उत्तम है। एक बार यह कथा देवताओं ने भी ब्रह्माजी से पूछी थी तब ब्रह्माजी ने उनको इस प्रकार सुनाया। एक समय मरीचि नन्दन कश्यपजी यज्ञ पुरुष भगवान को प्रसन्न करने के लिए खीर की आहुति देकर उनकी आराधना समाप्त करके सन्ध्याकाल के समय अग्निशाला में ध्यानास्थ होकर एकान्त में बैठे थे। उसी समय दक्ष प्रजापति की पुत्रीदिति कामातुर होकर पुत्र प्राप्ति की लालसा से कश्यपजी के निकट गई। दिति ने कश्यपजी से अनेक प्रकार के मीठे बचनों से रमण करने के लिए प्रार्थना की। उसने कहा मैं आपके समान तेजस्वी पुत्र चाहती हूँ। तब कश्यपजी ने कहा—हे प्रिये ! तुम्हारी इच्छा के अनुसार अवश्य तेजस्वी पुत्र दूँगा, किन्तु अभी एक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रहर ठहरो। सन्ध्याकाल में सूर्यास्त के पश्चात् भूतनाथ भगवान् शङ्कर अपने भूत, प्रेत राक्षस तथा यक्षों को लेकर बैल पर चढ़े हुये विचरते हैं। इस लिये वे तुम्हारे देव शङ्कर जी अप्रसन्न हो जावेंगे। यह समय सन्तान उत्पन्न करने का नहीं है। संसार मेरी निन्दा करेगा। इस समय तो सन्ध्या वन्दन भगवत् पूजन आदि करना चाहिये। जो पुरुष इस समय पिशाचों का सा आचरण करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। पति के इस प्रकार समझाने पर भी उस कामातुर दिति ने निर्लज्ज भाव से कश्यप जी के वस्त्र पकड़ लिये तब कश्यपजी ने दैव इच्छा को प्रबल समझ कर दैव को नमस्कार किया और दिति की इच्छा पूर्ण की। तत्पश्चात शुद्ध जल से स्नान करके सनातन ब्रह्म रूप गायत्री का जप करने लगे। दिति ने गर्भ धारण कर के कश्यपजी से यह प्रार्थना की, हे ब्रह्मन्! भगवान भूतनाथ मेरे अपराध को क्षमा करें और मेरा यह गर्भ नष्ट न करें। उनका स्वभाव बड़ा उग्र है। किन्तु वे अपने भक्तों की सदा रक्षा करते हैं। वे मेरे बहनोई हैं। मैं उन्हें नमस्कार करती हूँ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! प्रजापति कश्यप जब सन्ध्या वन्दन आदि से निवृत हुये, तब उन्होंने अपनी पत्नी को अपनी सन्तान के हित के लिये थर थर काँपती हुई और प्रार्थना करती हुई देखा। तब कश्यपजी बोले हे दिति! तुमने मेरी बात को नहीं माना। तुम्हारा चित्त काम वासना में लिप्त था। तुमने असमय में भोग किया है। अतः तुम्हारी कोख से महा भयङ्कर अमङ्गलकारी दो अधम पुत्र उत्पन्न होंगे। सम्पूर्ण लोकों को अपने अत्याचारों से निरपराध प्राणियों को कष्ट देंगे। धर्म का नाश करेंगे। साधू तथा स्त्रियों को कष्ट देंगे। तब भगवन् कुपित हो कर उन का बध करेंगे।

दिति ने कहा—भगवन्! मेरी भी यही इच्छा है कि मेरे पुत्रों का बध भगवान के हाथ से ही हो। ब्राह्मण के शाप से न हो। क्योंकि ब्राह्मण के शाप के द्वारा प्राणी नरक में जाकर जन्म धारण करता है। कश्यपजी बोले हे देवी! तुम्हें अपने कर्मका अति पश्चातापहै। इस लिये तुम्हारा नाती एक ऐसा सत्पुरुष होगा जो यज्ञ पुरुष भगवान् को प्रसन्न करकेतुम्हारे यश को उज्जवल

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करेगा। वह बालक भगवद्भक्त, साधुजनों की सेवा करने वाला तथा काल को जीत कर भगवान् का पार्षद होगा।

मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी ! कश्यपजी के मुख से भगवद्भक्त पौत्र के उत्पन्न होने की बात सुन कर दिति को अति प्रसन्नता हुई और अपने पुत्रों का बध साक्षात् भगवान् से सुन कर उस का सब खेद दूर होगया।

—❀❀❀—

❀ पन्द्रहवाँ अध्याय ❀

दोहा—जय विजय हरिदास को, सनकादिक दियो शाप।
जाउ दुष्ट भू लोक में, भोगो तीनों ताप ॥

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुर जी ! दिति ने कश्यप जी के वीर्य को धारण कर के सौ वर्ष तक अपने उदर में ही रक्खा क्योंकि वह देवताओं को कष्ट नहीं देना चाहती थी। उसे भय था कि मेरे पुत्र देवताओं से शत्रुता करेंगे। दिति के गर्भ धारण करने से उसका तेज तीन लोकों के प्रकाश को क्षीण करने लगा। सभी देवतागण तथा लोकपाल तेज हीन से हो गये सूर्य का तेज निस्तेज होने से चारों ओर अन्धकार छा गया। यह देख कर देवतागण अति भयभीत हुए और ब्रह्माजी के निकट जाकर उन से इसका कारण पूछने लगे।

देवता लोग बोले–हे जगत पिता ! आपने ही इस जगत की उत्पत्ति की है। आप चतुर्मुख हैं। हम आप को नमस्कार करते हैं। आप सब के नियन्ता रचियता तथा स्वामी हैं। दिति का गर्भ क्रमशः बढ़ कर सम्पूर्ण लोकों को निस्तेज कर रहा है। इसका क्या कारण है? कृपा कर के हम को बताइये।

तब ब्रह्माजी बोले–हे देवताओ ! पूर्व काल में तुम्हारे पूर्वज सनक सनन्दन सनातन तथा सनत्कुमार सम्पूर्ण लोकों से विरक्त हो कर शुद्ध चित्त से भगवान् विष्णु के दर्शनार्थ बैकुण्ठधाम में गये। वहाँ पर श्रीनारायण शुद्ध सत्वमय स्वरूप से विराजमान रहते हैं। उस बैकुण्ठ धाम में

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नैःश्रेयस नाम का अति सुन्दर बन है। वहाँ पर सम्पूर्ण ऋतुएँ शोभायमान हैं। गन्धर्व लोग अपनी प्रियतमाओं के साथ वहाँ भगवान् के गुणगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य कीर्तन करती हैं। सरोवर से सुन्दर सुगन्धित मकरन्द की मधुर गन्ध चित्त को आकर्षित करती है। भ्रमर गूंज कर हरि कथा का गायन करते हैं। सम्पूर्ण पक्षी मधुर स्वर से कलरव करते हैं। तुलसी की गन्ध भगवान् के श्री विग्रह से स्पर्श करने के कारण अति आदरणीय है। वहाँ पर अनेक प्रकार की पुष्पराशि बिकसित है। वे तुलसी के आदर को विशेष देख कर भी उन से कोई ईर्ष्या नहीं करते हैं। वहाँ द्वेष द्वन्द, ईर्षा, मद, मत्सर, काम आदि का कोई नाम भी नहीं है। सम्पूर्ण प्राणी भगवानमय चतुर्भुज स्वरूप हैं। उनके श्री विग्रह भी भगवान् के ही समान हैं। अति सौन्दर्यशालिनी लक्ष्मी जी हरि की सेवा में लीन रहती हैं। उनके नूपुरों की झन्कार तथा हाथ का कमल सम्पूर्ण विश्व को मोहित करता है। ऐसे बैकुण्ठधाम में जब बेचारे ऋषिगण भगवान् के दर्शन की लालसा से पहुँचे, तब छः ड्योढ़ियाँ पार कर के सातवीं पर जय विजय नाम के भगवान् के पार्षदों ने उन्हें रोक दिया। पार्षद चतुर्भुज स्वरूप श्याम वर्ण, आभूषणों से अलंकृत शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, आदि से सुशोभित थे। उन द्वारपालों के इस वर्ताव से क्रोधित होकर उन चारों मुनियों ने जो आयु में सबके पूर्वज होने पर भी पाँच वर्ष के बालक के समान थे, और जो दिगम्बर वृत्ति में थे, ललकार कर कहा—अरे मूर्खो ! हम तो भगवान् के परम भक्त हैं। हमारी गति कहीं भी नहीं रुकतीहै। हम उन्हीं देवादि देव के दर्शन करना चाहते हैं। तुम हमें उनके दर्शनों से क्यों रोकते हो। वे जगत पिता होने के कारण हमारे भी पिता हैं। अरे द्वारपालो ! तुम लोग तो भगवान् की सेवा में रहते हो तुम्हें तो इन्हीं के समान समदर्शी होना चाहिए, भगवान् का स्वभाव परम शान्ति मय है। तुम्हारा स्वभाव भी वैसा ही होना चाहिये। भगवान् का कोई शत्रु नहीं है। फिर किस शङ्का से हमें रोक दिया है। तुमने किस भय की कल्पना करके भगवान् के दर्शनों से हमें विमुख किया है। तुमने भेद बुद्धि के कारण ही ऐसा किया है। इस लिए तुम बैकुण्ठधाम में रहने योग्य नहीं हो। अब तुम यहाँ से निकल कर पाप

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

CC-0. ... Trust, Jammu and eGangotri. Funding by IKS.

मय योनियों में जहाँ काम क्रोध लोभ सताता है जाओ, और अपने इस पाप का फल भोगो। सनकादिक के इस घोर शाप को सुन कर वे दोनों पार्षद अति भयभीत होकर उन के चरणों पर गिर पड़े और बोले—हे मुनीश्वरो! आपने कृतार्थ कर दिया। हमारे मद को दूर किया, किन्तु हमारे पर यह कृपा अवश्य कीजिये कि हमें किसी भी योनि में जाने पर भगवान की स्तुति न भूले, और मोह को प्राप्त न होवें। क्यों कि यह दोनों ही मोक्ष पद के शत्रु हैं।

जब भगवान् कमल नाभि के पार्षदों को शाप देने का तथा सनकादिक के आगमन का पता चला तब वे स्वयं सनकादिक के स्वागत के लिये लक्ष्मी सहित पधारे। जब मुनिगणों ने देखा कि भगवान् श्री बैकुण्ठ नाथ अपने सम्पूर्ण पार्षदों तथा लक्ष्मीजी सहित स्वयं पधारे हैं। वे उनके श्री विग्रह की शोभा को देख कर भगवत् भक्ति के उद्रेक में बिभोर होगये। भगवान् के पार्षद उनके ऊपर श्वेत छत्र तथा श्वेत चँवर लगा रहे थे। उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह बैजन्ती माला शोभायमान थी। रत्न जटित दिव्य आभूषणों से सुसज्जित थे। उनके सौन्दर्य के सामने लक्ष्मीजी का सौन्दर्य भी फीका पड़ रहा था। तुलसी की माला कण्ठ में धारण किये हुये थे। तुलसी की मञ्जरी की गन्ध को लेकर वायु बह रही थी। भगवान् का मुख नील कमल के समान विकसित था। उनकी झाँकी अनुपम थी। जिन्हें देख कर सनकादिक मुनीश्वर नैनानन्द प्राप्त कर के ब्रह्मानन्द्र में निमग्न हो गये।

तब सनकादिक बोले—हे अनादि! आप ही इस सृष्टि के आदि मध्य और अन्त हैं। आपने ही ब्रह्माजी को उत्पन्न कर के इस विश्व की रचना की है। हम वैसे हृदय में आप के दर्शन निरन्तर करते रहते हैं। किन्तु साक्षात् दर्शन आज ही हुए हैं। आप के सगुण साकार दर्शनों की उपलब्धि से हमें अति आनन्द प्राप्त हुआ है। आपके दर्शनों के लिये बड़े २ योगीजन, देवतागण तरसते हैं। उन्हीं भगवान् का साक्षात्कार प्राप्त कर के हमारे नेत्रों को अति सुख प्राप्त हुआ है। हम आप को साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम करते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

दोहा–जय विजय बैकुण्ठ से, गिरे भूमि पर आय।
तीन जन्म राक्षस भये, ब्रह्म शाप को पाय ॥

श्री ब्रह्माजी बोले–हे देवगण! सनकादिक मुनीश्वरों की ऐसी स्तुति सुन कर भगवान् श्रीनारायण अति प्रसन्न हुए और बोले–हे मुनीश्वरो! यह जय विजय नाम के पार्षद हैं। इन दोनों ने अहङ्कार बुद्धि को धारण करके आप का यह अपराध किया है। आप लोग मेरे प्रिय भक्त हैं। इस कारण इन्होंने केवल आप की ही अवज्ञा नहीं की है उन्होंने मेरी ही अवज्ञा की है। इनको शाप देकर आपने उत्तम ही किया है। इन मेरे अनुचरों ने ब्राह्मणों का तिरस्कार किया है उस तिरस्कार को मैं अपना ही तिरस्कार मानता हूँ। मैं इन पार्षदों की ओर से क्षमा याचना करता हूँ। सेवकों का अपराध होने पर भी संसार स्वामी का ही अपराध मानता है। अतः मैं आप लोगों की प्रसन्नता की भिक्षा चाहता हूँ हे मुनीश्वरो! मेरे पवित्र सुयश रूपी अमृत में पापी से पापी भी गोता लगाकर पवित्र हो जाता है। इसी कारण मैं 'बैकुण्ठ' कहाता हूँ। लेकिन यह पवित्र सुयश आप लोगों से ही मुझे उपलब्ध हुआ है। इस कारण जो कोई भी आपका अनादर करेगा वह चाहे मेरा स्वयं अङ्ग ही क्यों न हो उसे भी मैं तुरन्त काट कर फेंक दूँगा। हे मुनीश्वरो! मैं आप लोगों की सेवा करता हूँ इसी कारण मेरी चरण रज को सारे पापों को नष्ट करने वाली पवित्रता प्राप्त हुई है। मुझे आप ही लोगों की कृपा से यह ईश्वरत्व प्राप्त हुआ है, जिसके कारण यह लक्ष्मीजी भी मुझे नहीं त्यागतीं। जो ब्राह्मण अपने कर्मों के फलों को मुझे अर्पण करके निष्काम भाव से मेरी सेवा करते हैं। वे निरन्तर इस लोक में सुख भोग कर मेरा धाम प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण गौ और अनाथ ये मेरे शरीर हैं। अविवेकी पुरुष ही इनको मुझसे भिन्न समझते हैं।

ब्रह्माजी बोले–हे देवताओ! भगवान के इन मधुर बचनों से सनकादिक मुनियों का क्रोध तत्काल उफने हुए दूध में जल के छींटे लगाने के

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

समान शान्त हो गया। भगवान् की इस उदारता से वे अति आनन्दित हुए। और वे इस प्रकार हाथ जोड़ कर बोले—हे भगवन! आप सब के स्वामी, सर्वज्ञ तथा ब्रह्म होकर भी आपने हम से यह कहा है, कि आप लोगों ने मुझ पर अति अनुग्रह किया है, इसका क्या अर्थ है?

आप ब्राह्मणों पर दया करते हैं। इसी कारण लोक शिक्षा के हेतु आप ब्राह्मणों को इतना महत्व दे रहे हैं। वास्तव में तो आपही ब्राह्मण तथा सम्पूर्ण विश्व के आराध्य देव हैं। आप की कृपा से योगीजन इस मृत्यु रूप संसार समुद्र को सहज में ही पार कर जाते हैं। फिर अन्य कोई आप पर क्या कृपा करेगा। भक्तजन आपके चरणों की तुलसी को धारण करके सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। लक्ष्मी जी सदां आपकी सेवा करती हैं। आप अनन्त हैं, अनादि हैं, हम लोग तो क्या हमारे पिता ब्रह्माजी भी आप के तत्व को प्राप्त नहीं कर सके हैं। आप धर्म की मर्य्यादा को रखने के कारण ही ब्राह्मणों के लिये इतना आदर देते हैं यदि आप ही ऐसा न करेंगे तो धर्म की मर्यादा जो कल्याण का मार्ग है नष्ट होजावेगी। हे नाथ! आप जो उचित समझें उन द्वारपालों को दण्ड दें अथवा पुरुष्कार दें, हमें कोई भेद भाव नहीं है। हमने इन निरपराध पार्षदों को क्रोध के वश शाप दिया है इसके लिए हम क्षमा याचना चाहते हैं। आप हमें सहर्ष उचित दण्ड दें।

भगवान् मुस्कराते हुए बोले—हे मुनिगणो! मेरे पार्षदों को आपने जो शाप दिया है वह सब मेरी प्रेरणा से हुआ है। ये अवश्य ही इस दण्ड के भागी हैं। ये दैत्य यौनि में जाकर मेरे द्वारा इनका संहार होगा। तब ये शीघ्र ही मेरे इस धाम को लौट आवेंगे। ब्रह्माजी बोले—हे देवगणो! भगवान् नारायण के यह बचन सुनकर वे मेरे मानस पुत्र अति आनन्दित हुए और भगवान की परिक्रमा करके गुण गाते हुए वहाँ से चले आये।

तब भगवान नारायण अपने उन दोनों अनुचरों से बोले—तुम लोग जाओ! निर्भय होओ! तुम्हारा कल्याण होगा मैं सर्वशक्तिमान होने पर भी ब्राह्मणों के शाप को मिटाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि ऐसा करने पर धर्म की मर्यादा उल्लङ्घन होती है और बारम्बार मेरे भक्त जनों का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तिरस्कार करने का साहस बढ़ता है। एक समय जब मैं योग निद्रा में था तब तुमने प्रवेश करती हुई लक्ष्मी जी को भी रोक दिया था उन्होंने तुम्हें उसी समय शाप दे दिया था। तुम लोग दैत्य होकर मुझसे शत्रु भाव रक्खोगे और तुम्हारा ध्यान सदा शत्रु भाव से मेरी ओर ही रहेगा। इस कारण तुम फिर मेरे द्वारा संहार को प्राप्त होकर मेरे धाम में चले आओगे। इतना कह कर भगवान अपने श्रीसम्पन्न बैकुण्ठधाम को चले आये और जय विजय श्रीहीन होकर बैकुण्ठधाम से गिरने लगे। यह देख कर बैकुण्ठ निवासियों में अति घबराहट उत्पन्न हुई। वे दोनों असुर ही दिति के गर्भ में विराजमान हैं। इसी कारण सम्पूर्ण विश्व का तेज फीका पड़ गया है। भगवान की ऐसी इच्छा है उनकी माया को कोई भी नहीं जान सकता है। अब इस विषय में कोई विचार करने से लाभ नहीं है।

—❀—

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

दोहा–हिरण्यकश्यपु हिरणाक्ष, भयौ जन्म जग आय।
देवन को मारन लगे; स्वर्गलोक में जाय॥

श्री मैत्रेयजी बोले--हे विदुर जी! ब्रह्माजी के द्वारा अदिति के गर्भ धारण का वृत्तान्त सुन कर देवता लोग अपने अपने स्थानों को चले गये। कुछ काल पश्चात् जब सौ वर्ष व्यतीत हो गए तब दिति के गर्भ से दो यमल पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें दिति के गर्भ में जो पहिले स्थापित हुआ था उसका नाम प्रजापति कश्यप ने हिरण्यकशिपु रक्खा और बादमें उत्पन्न हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष रक्खा। जिस समय ये दोनों यमल पुत्र उत्पन्न हुए उस समय तीनों लोकों में अनेक प्रकार के भयङ्कर उत्पात होने लगे। स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश काँपने लगे भयङ्कर आँधियाँ चलने लगीं। सूर्यादि ग्रहों पर राहु केतु बार बार बैठने लगे। उल्कापात होने लगे। बिजलियाँ गिरने लगीं तथा पीव रुधिर की वर्षा होने लगी चारों दिशाओं

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

में दाह उत्पन्न हो गया। नदियों तथा जलाशयों के जल सूख गये। गायों के स्तनों से रक्त बहने लगा। उल्लू, स्यार, खर रोने चिल्लाने लगे।

दोनों दैत्य जन्मते ही शीघ्र आकाश तक बढ़ गये उनका शरीर फौलाद के समान पर्वताकार हो गया। वे स्वर्ण के बाजूबन्द कवच, कुण्डल कर्द्धनी आदि पहिने हुए थे। हिरण्यकश्यपु ब्रह्माजी से बर प्राप्त कर के अभय हो गया तथा तीनों लोकों का विजय करके एक छत्र राज्य करने लगा। उसका छोटा भाई हिरणाक्ष उसकी आज्ञा का पालन करते हुए शत्रुओं का नाश करने लगा। कन्धे पर गदा रख कर भू लोक, स्वर्गलोक को जीत कर समुद्र में क्रीड़ा करने लगा। एक दिन वह घूमते २ वरुण की पुरी में जा पहुँचा पाताल लोक में पहुँच कर वरुण देव के पास गया और युद्ध की भिक्षा माँगते हुए बोला–हे वरुणदेव ! तुमने अनेकों लोक पालों को जीता है। और आपने जगत के सम्पूर्ण दैत्य तथा दानवों पर विजय प्राप्त कर के राजसूय यज्ञ किया है। अतः आप मुझसे लड़कर विजय प्राप्त कीजिये। उस दैत्य की यह बात सुन कर वरुण को बड़ा क्रोध आया किन्तु समय को समझ कर हँसते हुये उत्तर दिया। अरे भाई ! अब हमें लड़ने का चाव नहीं रहा है। और फिर तुम जैसे बलशाली वीरसे लड़ने केयोग्य भी अब हम नहीं रहे हैं। तुम को यज्ञ पुरुष नारायण के पास जाना चाहिये वे ही तुम्हारे लड़ने योग्य हैं। वे तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। वे तुम जैसे दुष्टोंका संहार करने के लिए अनेक रूप धारण करते हैं।

——:❀:——

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

हिरण्याक्ष तथा बाराह भगवान् का परस्पर युद्ध

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी ! पाताल लोक के स्वामी वरुणजी की ऐसी बातें सुन कर वह दैत्य अति प्रसन्न हुआ और नारदजी से नारायण का पता लगा कर रसातल में गया। वहाँ उसने भगवान बाराह को अपनी दाढ़ों पर पृथ्वी को लाते हुए सामने देखा। उनके लाल लाल नेत्र तेज

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चमक रहे थे। वाराह भगवान् को सामने आते देख कर वह महाबली दैत्य बहुत हँसा और बोला—अरे तू जङ्गली पशु जल में कहाँ से आया है। अरे मूर्ख पशु तू इधर आ। इस पृथ्वी को कहाँ लिये जाता है। यह पृथ्वी तो हमारे हवाले ब्रह्माजी ने करदी है। हे अधम! मेरे रहते हुए तू कुशलता पूर्वक पृथ्वी को रसातल से नहीं ले जा सकता है। तू दैत्य दानवों का शत्रु है इस लिये मैं तुझे आज मार डालूँगा। उस हिरण्याक्ष के ऐसे कटु बचन सुन कर वाराह भगवान् को अति क्रोध आया उनकी दाढ़ों पर रक्खी हुई पृथ्वी काँपने लगी। उन्होंने पृथ्वी को वहाँ छोड़ कर युद्ध करना मुनासिव न समझा। उस दैत्य के कटु बचनों को सहन करते हुये वे गजराज के समान शीघ्र ही जल से बाहर निकले। किन्तु वह दैत्य भी ग्राह के समान उनका पीछा करते हुए आया। वह दैत्य बोला—रे कायर! तुझे भागने में लज्जा नहीं आती। वाराह भगवान् ने पृथ्वी को योग्य स्थान पर जल के ऊपर स्थापित कर के उसे अपनी आधार शक्ति प्रदान की उस समय उस हिरणाक्ष दैत्य के सम्मुख ही जगत् पिता ब्रह्माजी ने भगवान् वाराह की स्तुति की तथा देवताओं ने पुष्पों की वृष्टि की। जब वाराह भगवान् ब्रह्माजी का यह कार्य समाप्त कर चुके तब पीछे आते हुए उस दैत्य से मुड़ कर बोले अरे भाई! हम तो जंगली जीव हैं, और तू ग्राम सिंह (कुत्ता) है हम तुझ जैसे ग्राम सिंहों को ही खोजते फिरते हैं। अब तेरी मृत्यु तेरे सिर पर नाच रही है। हम तेरे समाने खड़े हैं तू हम पर चोट कर तथा हमें मार कर अपने दैत्य दानवों का भला कर।

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवान् वाराह के ऐसे उपहास तथा तिरस्कार पूर्ण बचन सुनकर वह दैत्य क्रोध में तिलमिला उठा। उसने क्षुब्ध होकर गदा का प्रहार किया किन्तु वाराह भगवान् ने कुछ टेढ़े होकर गदा के प्रहारको बचा दिया। वाराह भगवान् कुपित होकर उस दैत्य पर ऐसे झपटे जैसे बाज लवा पर झपटता है। उन्होंने हिरण्याक्ष की दाँईं भौं पर प्रहार किया किन्तु वह दैत्य अपनी गदा से उसे बचा गया। हिरण्याक्ष और वाराह भगवान् में परस्पर भयङ्कर युद्ध होने लगा। हे विदुरजी! उन दोनों के युद्ध को देखने के लिये ऋषियों सहित ब्रह्माजी वहाँ पधारे।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रह्माजी ने प्रार्थना करते हुए भगवान् से कहा—हे भगवन् ! यह दैत्य मुझ से वर प्राप्त करके अति शक्तिशाली होगया है। सायंकाल की बेला में इसका बल अधिक प्रबल हो जावेगा। अतः आप अपनी योग माया से शीघ्र ही इसका बध कीजिये। अब अभिजित नाम का मुहूर्त भी आ पहुँचा है। अतः आप शीघ्र ही इस शक्तिशाली दैत्य को मार डालिये। इसकी मृत्यु आपही के द्वारा होनी है। यह दैत्य हमारे बड़े सौभाग्य से मृत्यु से ही टकरा गया है। आप शीघ्र ही इसको मार कर संपूर्ण लोकों में शान्ति स्थापित कीजिये।

—❀❀—

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

हिरण्याक्ष का वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर भगवान् ने उस दैत्य को मारने का निश्चय किया और उनकी ठुड्डी पर गदा का प्रहार किया। किन्तु हिरणाक्ष ने अपनी गदा से गदा का प्रहार बचा कर ऐसी चोट की कि भगवान् बाराह के हाथ से गदा छूट कर दूर जा गिरी। तब देवताओं में घबराहट फैल गई। तब भगवान् ने तत्काल अपने सुदर्शन चक्र को स्मरण किया। सुदर्शन चक्र तीव्र गति से घूमने लगा। भगवान् बाराह उस दैत्य के साथ खिलवाड़ करने लगे। जब दैत्य ने देखा कि भगवान बाराह चक्र लेकर उसे मारने को उद्धत हैं तब वह क्रोध से तिलमिला उठा और ललकार कर गदा की चोट की। भगवान् ने तत्क्षण अपने पैर के अँगूठे से उसकी गदा गिरादी और बोले—रे दैत्य ! तू मुझे मारना चाहता है, इसलिये अपनी गदा फिर उठाले। तब दैत्य ने गदा पुनः उठा कर भीषण गर्जन किया। दैत्य ने गर्जना करके गदा का प्रहार किया तब भगवान् ने उसे ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुण सर्प को दाब लेता है। वह महा बली दैत्य बाहुपाश में फँस कर छटपटाने लगा। उस दैत्य ने भगवान पर एक चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। भगवान् ने चक्र से त्रिशूल को नष्ट कर दिया। उस दैत्य ने मायापति भगवान को माया से जीतने का प्रयत्न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किया उसने उनके वक्षःस्थल पर एक घूंसा बड़े जोर से मारा और वहीं अन्तर्ध्यान होकर अपनी माया से पीव रुधिर विष्टा तथा पत्थरों की वृष्टि करने लगा। प्रचण्ड आँधी चारों दिशाओं में छागई। सूर्य चन्द्रमा आदि छिप गये। अनेक राक्षस राक्षसियाँ हाथ में त्रिशूल लेकर नङ्गी धड़ङ्गी घूमने लगीं। वे राक्षस मारो मारो, खाओ खाओ की गर्जना करने लगे।

उस आदि दैत्य की माया को नष्ट करने के लिए बाराह भगवान ने चक्रसुदर्शन को छोड़ा। जब दिति ने यह महा प्रलयकारी युद्ध देखा तब उसे अपने पति कश्यप जी की बातों का स्मरण हो आया वह अति चिन्ताकुल हो उठीं। भगवान बाराह उस दैत्य को पुनः अपनी भुजाओं में बाँध कर उसे दाबने लगे। तब वह दैत्य भगवान बाराह पर मुक्के का प्रहार करने लगा। भगवान बाराह ने उसकी कनपटी पर वज्र के समान एक तमाचा मारा। उस तमाचे की चोट से हिरण्याक्ष चक्कर खाने लगा। उसके नेत्र निकल पड़े और वह हाथ फैलाकर धड़ाम से उस अथाह जलमें गिर पड़ा। और देवता लोग बड़े प्रसन्न हुए और भगवानकी स्तुति करने लगे। हे प्रभो! आपने इस संसार की स्थिति के लिए ही अपना मङ्गलमय स्वरूप प्रगट किया है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आपने इस महाबीर दैत्य को मार कर संसार में सुख शान्ति स्थापित कर दी।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! उस दैत्य को मार कर भगवान बाराह अन्तर्ध्यान हो गये। जैसे मैंने पूर्वजों के मुख से यह कथा सुनी वैसी आप के सन्मुख वर्णन करदी। जो पुरुष पृथ्वी का उद्धार करने के लिये बाराह भगवान और इस हिरणाक्ष के वध की कथा कहता तथा सुनता है वह ब्रह्म हत्या के घोर पाप से छूट जाता है। धन, यश तथा आयु की बृद्धि होती है और अन्त में भगवान का परम पद प्राप्त होता है।

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

ब्रह्माजी की सृष्टि का वर्णन करना

श्री शौनकजी बोले—हे सूतजी! स्वायम्भुव मनु ने पृथ्वी का आधार प्राप्त करके किन उपायों से सन्तान उत्पन्न की तथा सृष्टि की वृद्धि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की। भगवद् भक्त विदुरजी भगवान् श्रीकृष्ण के अपमान को न सहने के कारण ही अपने भाई को त्याग कर बन चले गये थे और उन्होंने हरिद्वार क्षेत्र में विराजमान् श्रीमैत्रेय जी के पास जा कर क्या प्रश्न किये? यह सब कृपा करके सुनाइये। सूतजी बोले-हे मुनिगण! वाराह भगवान् की अपनी माया से पृथ्वी को रसातल से लाने और हिरण्याक्ष को मारने की कथा सुन कर विदुर जी बड़े प्रसन्न हुए। और मैत्रेय जी से बोले-हे ब्रह्म देव! ब्रह्मा जी ने मरीच, कश्यप आदि प्रजापतियों के द्वारा किस प्रकार सृष्टि को बढ़ाया। उन प्रजापतियों ने इस सृष्टि को पत्नियों के सहवास से उत्पन्न किया अथवा स्वतन्त्र रूप से किया। या सब ने मिल कर इस सृष्टि को उत्पन्न किया। श्री मैत्रेयजी बोले हे विदुर जी! इस सृष्टि की रचना जीवों के प्रारब्ध, पुरुष और काल तीन कारणों से तथा भगवान् के द्वारा त्रिगुणमयी प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने पर महतत्व की सृष्टि होती है। तब ईश्वर की प्रेरणा से महतत्व के द्वारा राजस, तामस, सात्विक तीन प्रकार का वैकारिक अहंकार प्रकट हुआ। उस से आकाश आदि पाँच तत्वों की उत्पत्ति हुई।

पाँच भूत, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ शब्दादि, पाँच तन्मात्राएँ तथा इन इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता आदि ये तत्व अलग २ एक दूसरे के योग से उत्पन्न हुए। जब इन तत्वों से सृष्टि की रचना न हो सकी तब भगवान ने उन में अपनी चेतन शक्ति डाल कर उन को परस्पर संगति किया तब एक स्वर्णमय अण्डे की सृष्टि हुई। वह अण्डा चेतना शून्य होकर एक सहस्र वर्ष तक जल में पड़ा रहा तब उस अण्डे में प्राण रूप से भगवान प्रविष्ट हुए। उसके फटने पर विराट पुरुष की उत्पत्ति हुई। उन की नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। उसी कमल से ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ। उन आदि पुरुष भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय में प्रवेश करके उन के द्वारा पूर्व काल की भाँति सृष्टिकी रचना की। सर्व प्रथम ब्रह्मा ने अपनी माया से तामिश्र, अन्धतामिश्र, तममोह तथा महामोह पाँच अविद्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हें यह शरीर अच्छा नहीं लगा। इस लिए उसे त्याग दिया। उस शरीर को यक्ष राक्षसों ने ले लिया। वे यक्ष राक्षस भूख प्यास से व्याकुल थे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इसलिए वे ब्रह्माजी को खानेके लिए दौड़े इसे खाओ ! इसकी रक्षा मतकरो। इस प्रकार चिल्लाते हुए आये। जिन्होंने ब्रह्माजी को खा जाओ ऐसा कहा वे यक्ष हुये, तथा जिन्होंने कहा रक्षा मत करो वे राक्षस हुए। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने अपनी सात्विक प्रकृति से देवताओं की रक्षा की। इसके पश्चात् कमर भाग से असुरों की रक्षा की। तब ब्रह्माजी ने अपने उस पापमय शरीर को फिर त्याग दिया। उससे एक सुन्दरी सन्ध्यादेवी उत्पन्न हुई। उसने अपने सौन्दर्य और हाव भाव से उन असुरों को मोहित कर लिया। उन असुरों ने उस रमणी का पीछा किया और उसे ग्रहण कर लिया।

तत्पश्चात् अपने सौन्दर्य से गन्धर्व तथा अप्सराओं को प्रकट किया और उससेज्योतिष्ना (चन्द्रिका) को प्रकट किया और अपने शरीर को फिर त्याग दिया उसे विश्वावसु गन्धर्वों ने ग्रहण कर लिया। तदनन्तर ब्रह्माजी ने तन्द्रा और जम्भाई से भूत पिशाच आदि को उत्पन्न किया। इस को निद्रा भी कहते हैं। जो मनुष्य झूँठे मुँह सो जाता है उस पर भूत पिशाच आदि अपना प्रभाव डालते हैं। ब्रह्मा ने अपने तेज से पितरों की उत्पत्ति की। तथा अपनी तिरोधान शक्ति से विद्याधरों की उत्पत्ति की। ब्रह्माजी ने अपने प्रतिबिम्ब से किन्नरों तथा किं पुरुषों की उत्पत्ति की।

एक समय ब्रह्माजी सृष्टि बृद्धि की चिन्ता में अपने हाथ पैर फैला कर पड़ गए और उन्होंने क्रोधित होकर उस शरीर को त्याग दिया। उस समय उनके बाल झड़ने से तथा हाथ पैरों के सिकुड़ने से सर्प तथा नागों की उत्पत्ति हुई। एक समय ब्रह्माजी अपने चित्त से अपने को उत्तम मनोभावों में देखने लगे। जिससे मनुष्यों की उत्पत्ति की। उन मनुष्यों को देख कर विद्याधर गन्धर्व आदि ब्रह्माजी की प्रार्थना करने लगे। मनुष्यों की सृष्टि अति सुन्दर तथा यज्ञादि कर्म करने वाली हुई। जिससे देवता लोग भी प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने ऋषियों की सृष्टि विद्या, योग, तप, तथा समाधि से युक्त होकर उत्पन्न की।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ इक्कीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—कर्दम ऋषि ने तप कियौ, होय ब्रह्म में लीन।
नारायण ने प्रसन्न हो, मुनिवर को वर दीन ॥

विदुरजी बोले—हे मैत्रेयजी स्वायम्भुव मनु ने मैथुन धर्म द्वारा कि प्रकार प्रजा की वृद्धि की ? आपने मुझसे कहा था कि स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र और तीन कन्यायें उत्पन्न हुई थीं जिनके नाम प्रियव्रत, उत्तानपाद, देवहूति आकूति तथा भगवान रुचि और दक्ष प्रजापति को ब्याही हुई मनुजी की कन्याओं के वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! श्रीब्रह्माजी ने कर्दम ऋषि को प्रजा उत्पन्न करने के लिए आज्ञा दी। तब उन्होंने सरस्वती नदी के तट पर द हजार वर्ष तक तपस्या की। तत्पश्चात् षोडशोपचार से भगवान् हरि की आराधना करने लगे। तब भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने ब्रह्मस्वरू का दर्शन दिया। भगवान् के तेजोमय स्वरूप के दर्शन करके कर्दम ऋ अति प्रसन्न हुये। भगवान् के सिरपर सुवर्ण मय मुकुट झिलमिला रहा था कानों में कुण्डल, चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए थे उनकी मधुर २ मुस्कान कर्दम जी के सम्पूर्ण ताप को हर रही थी। भगवा गरुड़ के कन्धों पर सवार थे। कर्दम ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया औ हाथ जोड़ कर उन की स्तुति करने लगे।

कर्दम जी बोले—हे विश्वात्मा ! आप सृष्टि के आधार हैं। आप मा से परे हैं। मैं आप को प्रणाम करता हूँ।

हे प्रभो ! अर्थ, धर्म, काम की पूर्ति के लिये मुझे एक अर्द्धाङ्गिनी प्राप्ति की इच्छा है। आपकी मैं शरण में आया हूँ। मेरी इस कामना को पू कीजिए। हे देव ! मैं सदा आप की आज्ञा का पालन करता हुआ आ गृहस्थ जीवन को भोग सकूँ। हे देव ! आप काल स्वरूप हैं। ब्रह्म इस घुमाने की धुरी हैं। द्वादशमास इसके आरे हैं। तीन सौ साठ दिन जो हैं षटऋतु नेमि हैं। क्षण पल आदि इस में धारे हैं। तीनों चातुर्मा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इसकी नाभि है। यह कालचक्र सम्पूर्ण जगत की आयु को चीण करता हुआ सदा घूमता रहता है, किन्तु भगवत् जनों की आयु कभी चीण नहीं होती है। हे देव! आप भक्तों को विषय सुख प्रदान इस लिए करते हैं कि जिससे हम लोग पितृ ऋण, देवऋण, ऋषिऋण से उऋण हो कर मोच्च प्राप्त कर सकें। आपके सगुण दर्शन मुझे प्राप्त हुए। इस लिए मुझे भोग और मोच्च दोनों की प्राप्ति होनी चाहिये। श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवान् नारायण कर्दमजी की ऐसी निष्कपट स्तुति को सुन कर अपनी गम्भीर वाणी में बोले—हे कर्दम जी! तुमने नियम संयम से एक सहस्र वर्ष तक मेरा तप किया है। तुम्हारे हृदय की इच्छा को समझ कर मैंने उसकी व्यवस्था पहले ही करदी है। मेरे प्रति किया हुआ तप कभी विफल नहीं होता है। तुम जैसे महात्माओं की उपासना तो और भी फलदायक होती है।

प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्त्त में सार्वभौम सम्राट हैं। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर स्ववश किया है। उन की धर्म पत्नी शतरूपा के गर्भ से देवहूति नाम की कन्या उत्पन्न हुई है जो योवन, शील और गुणों में अद्वितीय है। वह तुम्हारे योग्य भार्या है। तुम उस को अपनी पत्नी बना कर सन्तान उत्पन्न करो। उस पत्नी से तुम्हारे नौ कन्यायें उत्पन्न होंगी। जिनके साथ मरीचि आदि ऋषि विवाह कर के पुत्र उत्पन्न करेंगे। कुछ काल पश्चात् मैं भी तुम्हारे वीर्य में प्रविष्ट हो कर देवहूति के गर्भ से अवतीर्ण हूँगा, तथा सांख्य शास्त्र का उपदेश करूँगा। श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी! भगवान् नारायण कर्दम ऋषि को यह वर देकर अपने धाम को चले गए।

हे विदुर जी! कर्दम ऋषि काल की प्रतीचा में वहीं सरस्वती तटपर आश्रम बना कर रहने लगे। एक समय मनु अपनी महारानी शतरूपा के साथ कन्या को रथ में बैठाल कर पृथ्वी पर विचर रहे थे। जब वे सरस्वती के तट पर कर्दम ऋषि के आश्रम पर पहुँचे तब वे महर्षि को देख कर अति प्रसन्न हुए। कर्दम ऋषि अग्नि होत्र से निवृत्त हो कर बैठे थे। उग्र तपस्या के कारण उनका तेज देदीप्यमान हो रहा था। शरीर लम्बा, नेत्र कमल के समान सुन्दर, सिर पर जटायें, कमर में चीर शोभायमान था। स्वायम्भुव

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

मनु ने कर्दम जी को प्रणाम किया तथा कर्दम जी द्वारा उचित सत्कार पाकर अति प्रसन्न हुये। तब कर्दम जी मधुर वाणी में इस प्रकार बोले—हे मनु जी! आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं। आप लोकपाल हैं। आप साक्षात् विष्णु हैं अनेकों रूप धारण करते हैं। आप मणि जड़ित रथ पर सवार हैं। आप प्रजा की रक्षा करने के लिए धनुष धारण करते हैं, आप प्रजा रक्षण में तत्पर हैं। हे वीर! कृपा कर मुझे यह बताइये कि आपका यह शुभ आगमन यहाँ किस हेतु हुआ है? मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा।

—❀—

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

दोहा—बिनय कीन्ह मनु आयकर, कर्दम ऋषि के पास।
देवहूति सङ्ग ब्याह करि, पुजवो मम मन आस॥

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी! कर्दमजी ने जब इस प्रकार मनुजी के कर्मों तथा उत्तम गुणों का वर्णन किया, तब मनुजी बोले—हे मुनि श्रेष्ठ! आपने तप, विद्या तथा योग के द्वारा एक हजार वर्ष व्यतीत किये हैं। आपका आत्मबल, ब्रह्मतेज, अपूर्व है। आप ब्रह्मा जी के मुख से प्रगट हुए हैं तथा हम क्षत्रिय उनकी भुजाओं से उत्पन्न हैं दोनों एक ही शरीर से उत्पन्न होने के कारण दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध है। आपने प्रशंसा के रूप में अनेक राजधर्मों का उपदेश मुझे दिया है। आपके गुण और तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। मैं चाहता हूँ कि अपनी कन्या देवहूति जो शील गुण, अवस्था आदि में अद्वितीय है। उससे आप पाणिग्रहण करें। उसने भी नारदजी के द्वारा आपके तप, विद्यागुण आदि को सुनकर आपको पति बनाना निश्चय किया है। हे ब्रह्मदेव! मैं अपनी यह सुन्दर कन्या श्रद्धा पूर्वक अर्पण करता हूँ। बुद्धिमान पुरुषों को चाहिये कि स्वयं प्राप्त भोगों का परित्याग न करें। जो मनुष्य स्वयं प्राप्त भोगों का निरादर करते उन्हें फिर उनकी प्राप्ति के लिए दूसरों के सामने हाथ पसारने पड़ते हैं, इस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उनका निरादर तथा मान भंग होता है। आपने ब्रह्मचर्य अवस्था पूर्ण करली है। आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी नहीं हैं, अतः मेरी इस कन्या को स्वीकार कर के मेरी इच्छा को पूर्ण कीजिए।

कर्दमजी बोले--हे आर्य ! आप का यह कथन सत्य है कि मेरी विवाह करने की इच्छा है। आपकी कन्या शीलवान गुणवान तथा अति रूपवान् है, जिसे देख कर एक बार विश्वावसु गन्धर्व मूर्छित होकर विमान से गिर गया था। वही कन्या स्वयं आकर मुझ से विवाह की प्रार्थना कर रही है। इससे अधिक बढ़ कर मेरे लिये और क्या सौभाग्य होगा। वह रमणी रत्न लक्ष्मी के समान है। जिन्होंने लक्ष्मी जी की आराधना नहीं की है, उन्हें तो इनके दर्शन भी प्राप्त नहीं हो सकते। मैं इस शर्त के साथ विवाह करने को प्रस्तुत हूँ कि जब तक इन के सन्तान उत्पन्न होती रहेगी तब तक मैं गृहस्थ आश्रम में रहूँगा। तत्पश्चात् मैं सन्यास आश्रम ले कर परमात्मा में लीन होजाऊँगा।

श्रीमैत्रेयजी बोले–हे विदुर जी ! इतना कह कर मुनिवर कर्दम जी चुप हो गए। मनुजी ने अपनी कन्या और अपनी पत्नी की अनुमति ले कर देवहूति का विवाह कर्दम जी के साथ कर दिया। महारानी शतरूपा ने अनन्त धन, वस्त्र, आभूषण दामाद को दहेज में दिये। इस प्रकार देवहूति का विवाह कर्दमजी के साथ सम्पन्न करके मनुजी अपनी बर्हिष्मिती पुरी को चले आये। वे सदा भगवत् परायण रहते थे। भोगों में उनकी लालसा कदापि नहीं रहती थी। मनुजी ने मनुसंहिता भी बनाई जिसमें वर्णाश्रम, धर्म आदि समस्त नियमों का वर्णन किया है।

—❀❀—

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

दोहा–निज पत्नी से प्रसन्न हो, कर्दम कीन्ह बिहार।
तप बल से सब रचि दिये, सुन्दर भोग अपार॥

श्रीमैत्रेयजी बोले–हे विदुर जी ! देवहूति ने अपने पति कर्दम जी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की बड़े श्रद्धा और प्रेम से श्री उमा की भाँति सेवा करना आरम्भ किया। उसने कपट, द्वेष, पाप, मद, मत्सर तथा सम्पूर्ण काम वासनाओं को त्याग कर पवित्रता पूर्वक उनकी सेवा की। बहुत काल तक सेवा करने के कारण अति दुर्बल हो गईं। एक दिन कर्दम ऋषि दया वश बोले—हे प्रिये! तुमने मुझे अपनी सेवा और भक्ति से अति प्रसन्न किया है। तुम्हारा शरीर भी अति क्षीण होगया है। इस कारण मैंने जो कुछ भी तप,योग उपासना, आदि की हैं उन पर तुम्हारा भी अधिकार हो गया है। तुम मेरे से दिव्य दृष्टि प्राप्त कर के मेरे ऐश्वर्य को देखो। तुम्हें पतिव्रत धर्म पालन करने के कारण दिव्य भोगों की प्राप्ति होगई है। कर्दम जी के ऐसे मीठे बचन सुन कर देवहूति अति प्रसन्न हुई, और वह विनय पूर्वक बोली–हे स्वामी! आप शक्तिमान हैं। आपने योगशक्ति प्राप्ति की है। हे स्वामी ! मेरे साथ विवाह.होते हुए पर्याप्त समय हो गया है किन्तु गृहस्थ सुख का उपभोग अभी प्राप्त नहीं हुआ है। पतिव्रता स्त्री का धर्म पति के द्वारा सन्तान उत्पन्न करना है। मैं उसी लालसा से अति दुर्बल हो गई हूँ। अतः मेरे लिए ऐश्वर्य भोग की सम्पूर्ण सामग्री एकत्र कीजिये। एक सुन्दर भवन निर्माण कीजिये, जिसमें अनेक प्रकार की ऐश्वर्य की सामिग्री प्रस्तुत हों।

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे विदुरजी ! अपनी प्रिया की मन इच्छा को समझ कर कर्दम जी ने अपने योग बलसे एक सुन्दर विमान की रचना की जिस में सुन्दर भोगों की समस्त वस्तुएँ एकत्रित थीं। उस विमानमें रत्न जटित खम्भे,पताकाएँ रङ्ग बिरंगे पुष्प,तथा चित्रकारी थीं। जिसमें बहुत से सरोवर, मूंगे की चौकियाँ,देहलियाँ, तथा हीरों से जड़ी हुई किनारें थी। बन, वाटिका,उपवन शोभायमान थे। दास, दासियों से सम्पन्न उस सुन्दर विमान में रङ्ग बिरंगे चँदोवे तथा बन्दनवार सजाये गये थे। सुन्दर विमान को देख कर देवहूति अति प्रसन्न हुई। तब कर्दमजीने कहा--हे सुन्दरी ! तुम इस विन्दु सरोवर में स्नान कर के इस विमान में बैठो। यह तुम्हारी संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करेगा। देवहूति ने पति की आज्ञानुसार उस सरोवर में स्नान कर के उत्तम वस्त्रों को धारण किया और वहाँ पर सहस्रों दासदासियाँ

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

को अपनी सेवा में देखा। हे विदुर जी ! जब कर्दम जी ने अपनी भार्य्या को सर्वाङ्ग सुन्दरी नवयोवना देखा तब कर्दमजी ने भी अपने शरीर को बदल कर बढ़िया २ वस्त्र धारण करके सर्वाङ्ग सुन्दर बना लिया तब दोनों उस विमान पर चढ़ कर बिहार करने लगे। वे दीर्घकाल तक मेरु पर्वत की घाटियों में बिहार करते रहे। तत्पश्चात् श्री वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन पुष्पभद्र, मानस तथा चैत्ररथ, आदि उद्यानों में बिहार किया। इस प्रकार श्री कर्दमजी ने इच्छानुसार चलने वाले उस विमान में बैठ कर बहुत काल तक विहार किया, किन्तु वह इतना लम्बा समय एक मुहूर्त्त के समान ही व्यतीत होगया। यह रति सुख काल देवहूति को कुछ भी न मालूम हुआ। कर्दमजी ने अपने वीर्य को नौ भागों में विभक्त करके नौ कन्याएँ उत्पन्न कीं। देवहूति के एक साथ ही नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तत्पश्चात् कर्दम जी ने सन्यास आश्रम ग्रहण करके बन जाने की इच्छा की। यह देख कर देवहूति अति व्याकुल हो कर अश्रु बहाने लगी। वह बोली कि अब इन कन्याओं के भरण पोषण का प्रबन्ध तथा वर खोज किस प्रकार किये जावेंगे मैंने कोई सुख प्राप्त नहीं किया है, और न मैंने आप की ही कुछ सेवा की है। मैं तो आपकी महिमा को पूर्ण रूप से न समझ कर इस संसार के मायाजाल में ही फँसी रही।

❋ चौबीसवाँ अध्याय ❋

(कपिल जी के जन्म की कथा)

दो०—देवहूति के गर्भ से, प्रगटे कपिल सुजान।
कर्दम मुनि ने मुदित हो, कीन्ही विनय महान॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे बिदुर जी ! मनुकुमारी देवहूति के ऐसे कातर बचन सुन कर श्रीकर्दम जी बोले—हे राजकुमारी ! तुम्हें इतने दुखी होनेकी बात नहीं है, कुछ ही काल में तुम्हारे गर्भ से भगवान् श्री हरि का जन्म होगा, जो तुम्हें सांख्य योग का उपदेश करेंगे।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! प्रजापति कर्दम जी के इस प्रकार समझाने पर देवहूति का दुःख दूर हो गया और भगवान् श्री पुरुषोत्तम की

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आराधना करने लगी। कुछ काल पश्चात् कर्दम जी के वीर्य से देवहूति के गर्भ में भगवान्ने अवतार ग्रहण किया। जिस प्रकार काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार देवहूतिके गर्भ से श्री हरिका जन्म हुआ। उस काल देवता लोग आनन्द मग्न होकर पुष्पों की वृष्टि करने लगे। गन्धर्व अप्सरा नाच गान करने लगे। चारों दिशाओं में आनन्द छागया। उसी समय सरस्वती नदी के तट पर कर्दम जी के आश्रम पर मरीचि आदि पुत्रों सहित प्रजापति ब्रह्माजी पधारे। ब्रह्माजी को यह विदित होगया था कि देवहूति के गर्भ से कर्दमजी के घर भगवान् ने अवतार ले लिया है।

श्रीब्रह्माजी कर्दमजीसे बोले—हे तपोधन! तुमने मेरी आज्ञाका पालन कर के मेरा मान रक्खा है। तुमने सहस्र वर्ष तक निष्कपट भाव से भगवान् की आराधना की है। इसी तप के बल से स्वयं आदि पुरुष भगवान् ने तुम्हारे यहाँ अवतार लिया है। अब मेरी यह आज्ञा है कि तुम अपनी नौ कन्याओं का विवाह मेरे इन मरीचि आदि पुत्रों को उनके गुण और स्वभाव के अनुसार कर दो। इससे तुम्हें भी यश की प्राप्ति होगी और संसार का भला होगा तत्पश्चात् ब्रह्माजी देवहूति से बोले—हे राजकुमारी! तुम्हारे गर्भ से साक्षात् भगवान् ने ही अवतार लिया है। वे तुम्हारे अज्ञानरूपी मोह को अपने ज्ञान से नष्ट कर के कीर्ति का विस्तार करेंगे। तथा संपूर्ण जगत में "कपिल" नाम से प्रसिद्ध होंगे।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! जगत् पिता ब्रह्माजी श्री कर्दमजी तथा देवहूति को समझा कर तथा अपने पुत्रों को वहीं छोड़कर अपने लोक को चले गये कर्दम जी ने उनके स्वभाव और गुणों के अनुसार ब्रह्मा जीकी आज्ञा मान कर मरीचि आदि ब्रह्मर्षियों के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह कर दिया।

(१) कला का विवाह मरीचि के साथ (२) अनुसुइया का विवाह अत्रि के साथ, (३) श्रद्धा का अङ्गिरा के साथ, (४) हविर्भू का पुलस्त्य के साथ (५) गति का पुलह के साथ, (६) क्रिया का क्रतुके साथ, (७) ख्यातिकाविवाह भृगुजीके साथ, (८) अरुन्धती का वशिष्ठजीके साथ तथा (९) वी कन्या शान्ति का विवाह अथर्वा ऋषि के साथ कर दिया। कर्दमजी तथा देवहूति ने उन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विवाहित ऋषियों का बड़ा सत्कार किया तथा सम्मान के साथ उन्हें विदा कर दिया। वे ऋषि लोग अपनी अपनी पत्नियों के साथ प्रसन्नता पूर्वक अपने अपने स्थानों को चले गये।

श्री कर्दमजी यह जान कर कि मेरे यहाँ भगवान् ने अवतार लिया है, वे एकान्त में उनके निकट गये और इस प्रकार बोले। हे जगत् के स्वामी! आपने मुझे मेरे यहाँ जन्म लेने का वरदान दिया था उसी वचन को सत्य करने के लिए आपने यह सगुण रूप धारण किया है। आपका यह अवतार सांख्य योग के उपदेश के हेतु ही हुआ है। यह ज्ञान, लोक में प्रायः लुप्त सा होता जा रहा है, उसीका पुनर्द्धार इस लोक में आपके द्वारा होगा। आप ऐश्वर्य, वैराग्य, ज्ञान, वीर्य तथा षट ऐश्वर्यों से युक्ति हैं। आप ही परःब्रह्म, सनातन तथा आदि शक्ति हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड, प्रकृति, महतत्व, काल, प्रजापति ब्रह्मा, तीनों अहंकार आदि सभी तत्व आपही से उत्पन्न हुए हैं। यह सम्पूर्ण लोक तथा लोकपाल मनु आदि आप ही के अन्श रूप हैं। हे लोकेश्वर! मैं अब अपने सभी करने योग्य कर्मों से निवृत हो चुका हूँ। देवऋण, पितृऋण, तथा मातृ ऋण इन सब से उऋण हो चुका हूँ। केवल मेरी इच्छा है कि अब सन्यास मार्ग को स्वीकार करके आप की आराधना कराता रहूँ। अतः हे स्वामी! अब मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए।

श्री कर्दमजी के बचन सुन कर कपिलजी बोले—हे महामुने! मैंने अपने बचनों को पूर्ण करने के लिए तुम्हारे यहाँ अवतार लिया है। वैदिक लौकिक सभी प्रकार के कर्म मेरे ही तक पहुँचने के साधन हैं। मेरा यह जन्म तत्व ज्ञानियों के लिए आत्म दर्शन तथा तत्व का सही सही निरूपण करने के हेतु हुआ है। क्यों कि यह आत्म ज्ञान चिरकाल से लुप्त सा हो गया है। हे महामते! मैं आपको सहर्ष आज्ञा देता हूँ—आप निष्काम भाव से अपनी इच्छानुसार कर्म करते हुए संसार में बिचरो। सम्पूर्ण कर्मों का फल मुझे अर्पण कर के मेरी आराधना करो। मैं ही परम तत्व तथा स्वयं प्रकाश परमात्मा हूँ। तुम्हें मेरा साक्षात्कार प्राप्त होने पर परमपद की प्राप्ति होगी मैं माता देवहूति को भी सांख्ययोग का उपदेश करूँगा, जिससे यह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भी संसार सागर से पार हो जावेगी । श्रीमैत्रेयजी बोले–हे विदुर जी! कपिल भगवान् से आज्ञा प्राप्त करके कर्दमजी ने उनकी परिक्रमा की और फिर बन की ओर चल दिये । श्रीकर्दमजी ने अहङ्कार ममता तथा सम्पूर्ण द्वन्दों को त्याग कर परब्रह्म में ध्यान लगा दिया उनका चित्त तरङ्गहीन सरोवर की भाँति शाँत हो गया । भगवत् भक्ति के द्वारा उनका चित्त स्थिर हो गया उन्हें समतत्व भाव से सब में आत्मा का भास होने लगा। सम्पूर्ण भूतों में परमात्मा को देखने लगे । इस प्रकार भगवत् परायण होकर श्रीकर्दमजी ने परमात्म तत्व की प्राप्ति कर ली तथा मोक्ष को प्राप्त हो गये।

—❀❀—

॥ पच्चीसवाँ अध्याय ॥

दोहा–देवहूति माता कपिल, कीन्हें प्रश्न अनेक।
भक्तियोग महिमा सुनी, कपिल मातु शिर टेक ॥

श्रीशौनकजी बोले–हे सूतजी ! श्री कपिल मुनिसाक्षात् भगवान् होने के कारण सांख्ययोग का उपदेश देने के लिए ही अपनी योग माया से इस पृथ्वी पर जन्मे थे। उनकी पवित्र कीर्ति तथा आत्मज्ञान रूपी पवित्र योगका उपदेश सुनने की अति प्रवल इच्छा है। अतः आप उनकी पवित्र कीर्ति तथा माता देवहूति को दिया गया आत्मज्ञान का उपदेश हमें सुनाइये ।

श्रीसूतजी बोले–हे शौनक जी ! ऐसा ही प्रश्न श्रीविदुरजी ने भगवान मैत्रेयजी से किया था, तब मैत्रेयजी उन से बोले ।

श्री मैत्रेय जी ने कहा—हे विदुर जी ! श्रीकर्दमजी के बन चले जाने पर श्री कपिलदेव जी अपनी माता के साथ उसी विन्दुसर नामक तीर्थ में सरस्वती के तट पर रहने लगे। एक समय जब कपिल मुनि अपने नित्य कर्मों से निवृत होकर शान्तभाव से बैठे थे। उस समय उनकी माता देवहूति को ब्रह्मा जी के कहे हुए बचनों का स्मरण हो आया तब देवहूति ने कपिल जी से कहा ।

देवहूति बोली–हे परमात्मन् ! मैं इन विषय वासनाओं की अतृप्ति से अति दुखी हूँ । ये इन्द्रियाँ किसी प्रकार भी तृप्त नहीं होती हैं सदा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विषय भोगों की लालसा बनी रहती है, तथा अज्ञान रूपी सागर में डुबो कर मुझे पाप की ओर ले जा रही हैं। मेरे लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि स्वयं प्रकाश ज्ञान के सागर, भगवान् ने मेरे उदर से जन्म लिया है। आप सर्व शक्तिमान् हैं, अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ हैं। मेरी इच्छा है कि आप मुझे प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त कराइये। मैं आपकी शरण में हूँ। आपका अवतार भागवत ज्ञान प्रदान करने के लिए ही हुआ है अतः आप मुझ दुर्बुद्धिनी अवला स्त्री जाति को वह तत्व ज्ञान प्रदान कीजिये। माता के गूढ़ बचनों को सुन कर भगवान् कपिलदेव मन ही मन अति प्रसन्न होकर मुस्कराये और बोले—हे माता! मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए केवल आध्यात्म योग है। इसी आध्यात्म योग साधन से मनुष्य का कल्याण हो जाता है। और वह सांसारिक दुःख सुख से रहित होकर बन्धन मुक्त हो जाता है। हे माता उसी योग साधन को मैंने पूर्व काल में नारदादि मुनियों से कहा था, उसे ही तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ।

हे माता! सम्पूर्ण इन्द्रियों का स्वामी यह मन है। यह मन ही जीव को बन्धन तथा मोक्ष की ओर ले जाता है। विषयों में मन की आसक्ति होने पर जीव को बन्धन प्राप्त कराता है। तथा परमात्मा में इस मन की आसक्ति होने पर जीव को मोक्ष प्राप्त कराता है। जिस समय यह मन अपने पन तथा मैं मेरे पन से अलग होकर कामादि दोषों से मुक्त हो जाता है, उस समय वह शुद्ध सात्वकी अवस्था को प्राप्त कर लेता है। तब उस काल यह जीव भगवद्भक्ति में लीन होकर ज्ञान तथा वैराग्य के द्वारा अपने को प्रकृति से परे, स्वयं प्रकाश, अखण्ड, आत्मा रूप, सुख दुखादि से मुक्त समभाव में अनुभव करता है, और प्रकृति को नाशवान देखता है। ज्ञानी पुरुष आसक्ति को ही आत्मा का बन्धन कहते हैं। किन्तु यदि वही आसक्ति भगवद्जनों में होती है, तो वह मोक्ष का कारण बन जाती है। हे माता! जो प्राणी समत्व भाव से सब को एक सा अनुभव करते हैं, शान्त तथा सीधे स्वभाव से रहते हैं, जो किसी से शत्रुता अथवा मित्रता नहीं करते हैं, सदा मेरे में लीन रहकर सर्वस्व त्याग कर मेरे अर्पित कर देते हैं। मेरी पवित्र कीर्ति कथा तथा यश गायन को स्वयं करते हैं, तथा दूसरों से कहते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उन्हें संसार जनित ताप कभी कष्ट नहीं दे सकते। उन महापुरुषों के सत्संग से मेरी उत्तम कथाओं का अमृत प्राप्त होता है। जिसके द्वारा भक्ति योग की उपलब्धि होती है। यह भक्त शीघ्र ही विषयोंको त्यागकर ज्ञान वैराग्य से तथा मेरी भक्ति के द्वारा मुझे इसी शरीर (जन्म) में प्राप्त कर लेता है।

देवहूति बोली–हे ब्रह्मन्! आप की उत्तम भक्ति का क्या रूप है। तथा मुझ जैसी अबला नारी के योग्य कैसी भक्ति उचित है आपकी प्राप्ति कराने वाला योग क्या है? उसकी बिधि किस प्रकार है। हे विश्वनि! आप मुझे अति सुगम मार्ग बताइये जिसके अनुसरण से मेरा उद्धार हो सके।

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी! अपनी जन्मदाता माता देवहूति का गूढ़ तथा सार युक्त अभिप्राय समझ कर श्री कपिलदेव जी प्रसन्न हो कर प्रकृति तथा पुरुष तत्व को विस्तार पूर्वक समझाने लिए सांख्य शास्त्र का वर्णन करने लगे।

श्री कपिलदेव बोले–हे माता! सम्पूर्ण इन्द्रियों द्वारा तथा मन से भगवान् के प्रति स्वाभाविक आसक्ति का होना ही उनकी परम भक्ति है। वह भक्ति मुक्ति से अधिक बढ़कर है। उस भक्ति के द्वारा सम्पूर्ण कर्म दावानल के द्वारा जलाये हुए बन की भाँति भस्म हो जाते हैं। मेरे भक्त मेरे अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति की भी इच्छा नहीं करते मोक्ष तो उन्हें स्वतः अनायास ही प्राप्त हो जाता है। वे केवल मेरे दिव्य स्वरूपकी झाँकी प्राप्त करते रहते हैं तथा मेरे मन्द हास्य मधुर चितवन हास विलास के इच्छुक रहते हैं उन्हें अष्ट सिद्धि तथा दिव्य ऐश्चर्य के प्राप्ति की भी इच्छा नहीं होती है किन्तु मेरे बैकुण्ठधाम में पहुँचने पर उन्हें वे सम्पूर्ण सिद्धियाँ तथा दिव्य ऐश्वर्य स्वतः उपलब्ध हो जाते हैं। जिन भक्तों का केवल एक मात्र मैं ही आश्रय हूँ उन्हें दिव्य भोगों की प्राप्ति होती है तथा मृत्यु भी उन्हें नहीं मार सकती। वे कालरूपी भवसागर से पार हो जाते हैं। मैं परमात्मा हूँ प्रभु हूँ सम्पूर्ण भूतों का स्वामी हूँ। केवल मेरे आश्रय में आने पर ही इस महा प्रलय काल के मृत्यु भय से प्राणी छूट सकता है। ये सम्पूर्ण तत्व सूर्य वायु जल आदि मेरी प्रेरणा से ही कार्य करते हैं। तथा मृत्यु अपना कार्य करती है। योगीजन मेरे चरणों का आश्रय लेकर निर्भय रहते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे माता ! कल्याण का मुख्य मार्ग यही है कि मनुष्य सब ओर से अपनी इन्द्रियों को बस में कर के कठिन भक्ति योग द्वारा मेरेमें अपने चित्त को लगा कर मुझ में स्थिर कर दे।

❀ छब्बीसवाँ अध्याय ❀

दोहा—महतत्वादि वर्णन कियौ, कपिल देव हरषाय।
देवहूति सुनने लगी, प्रभु में चित्त लगाय॥

भगवान् कपिलदेव जी बोले—हे माता ! मैं तुम्हें महतत्व आदि के प्रकृति के सम्पूर्ण तत्वों की उत्पत्ति लक्षण तथा गुणों का वर्णन करता हूँ इन तत्वों के ज्ञान से मनुष्य प्रकृति के गुणों से परे हो जाता है। जीव के मोक्ष का केवल एक मात्र साधन आत्म दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर लेना है। मैं तुम्हारे सम्मुख उसी ज्ञान को कहता हूँ। जिसके अन्तर्गत यह सारा विश्व समाया हुआ है, तथा जिसकी सत्ता से यह सारा जगत प्रकाशमान् है, उसी को ज्ञानीजन, 'आत्मा' एवं पुरुष, कहते हैं यह पुरुष अनादि निर्गुण प्रकृति से परे, अन्तःकरण में व्याप्त, स्वयं प्रकाश तथा सर्व व्यापी है। उस पुरुष को जिसे आत्मा तथा जीवात्मा भी कहते हैं, त्रिगुणमयी वैष्णवी माया को स्वयं स्वीकार कर रक्खा है। प्रकृति को गुणों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की सृष्टि रचते हुए देख कर उस पुरुष ने अपनी ज्ञान शक्ति को उस के आवरण में खो दिया है, तथा उसी में मोहित हो कर अपने स्वरूप को भूल गया है, वह पुरुष (आत्मा) प्रकृति के गुणों में लीन हो कर अपने पन को स्वीकार कर के अपने को सब का कर्त्ता मान बैठा है। इस कर्तापन के अभिमान से वह अकर्ता स्वतन्त्र साक्षी, तथा सच्चिदानन्द पुरुष (आत्मा) परतन्त्र तुथा भोगों के विषय में फँस कर, कर्म बन्धन युक्त हो जाता है, तथा जन्म मृत्यु के चक्कर में फँस जाता है। उस पुरुष के (आत्मा) कार्य रूप शरीर, कारण रूपी इन्द्रिय और कर्त्तारूप इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं में अपनेपन का आरोप मान लेना यह प्रकृति का ही मुख्य कारण है, क्योंकि उस प्रकृति ने उसकी ज्ञानशक्ति को अपने आवरण में आच्छादित कर लिया है। अतः वह अपने वास्तविक रूप को भूल गया है। किन्तु वास्तव में पुरुष (आत्मा) प्रकृति से परे है।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अज्ञानवश वह पुरुष प्रकृति के गुणों में मोहित होने के कारण अपने को प्रकृति में स्थित मान लेता है, तथा दुख सुखों का अनुभव करने लगता है। इस का अर्थ यह है कि भोगतत्व तथा कार्य तत्व आदि सभी अहंकार के कारण हैं, किन्तु फिर भी जितने विकार हैं, वे "जड़" में ही होते हैं। इसलिए कारतत्वादि में जड़ की ही प्रधानता रहती है, और भोग तत्व चेतन में ही आरोपित होता है। इसलिए उस की प्रधानता चेतन में रहती है।

देवहूति बोली—हे ब्रह्मन् ! इस स्थूल तथा सूक्ष्म जगत को उत्पन्न करने वाले प्रकृति तथा पुरुष [आत्मा] के क्या लक्षण हैं ? उनका वर्णन आप मुझ से करिये।

श्री कपिलदेव बोले—हे माता ! जो त्रिगुणात्मक हैं, अव्यक्त हैं, कार्य, कारण रूप तथा नित्य हैं, सम्पूर्ण जगत का आश्रय हैं, उस प्रधान तत्व को ही ज्ञानीजनों ने प्रकृति कहा है। पाँच महाभूत पाँच तन्मात्राएँ दस इन्द्रियाँ तथा चार अन्तःकरण इस प्रकार इन चौबीस तत्वों को पण्डित लोगों ने प्रकृति को उत्पन्न करने वाला ब्रह्म कहा है। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये पाँच महाभूत माने गए हैं, तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच तन्मात्रा कही गई हैं। कान, त्वचा, नेत्र जिह्वा, नाक, मुख, हाथ, पैर, लिंग, गुदा यह दस इन्द्रियाँ मानी गई हैं, और मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार ये चार अन्तःकरण के रूप हैं। संकल्प, निश्चय, चिन्ता तथा अभिमान ये चार वृत्तियों के गुण हैं। तत्व ज्ञानी पुरुषों ने इन चौबीस तत्वों का ही निरूपण किया है पच्चीसवाँ तत्व चेतन शक्ति रूप, परमात्मा है जो प्राणियों के भीतर जीव रूप से तथा बाहर काल रूप से समाया हुआ है।

जब आदि पुरुष भगवान् ने सम्पूर्ण प्राणियों के उत्पत्ति स्थान रूपी अपनी माया में चेतन शक्तिरूपी अपने वीर्य को प्रविष्ट किया तब उस वीर्य के तेज से महतत्व की उत्पत्ति हुई। उस महतत्व ने प्रलयकालीन अन्धकार को पी कर तेज को प्रकट किया। हे माता ! अब मैं तुम्हें चतुर्व्यूह की उपासना सुनाता हूँ। जो भगवान् की प्राप्ति का स्थान चित्त है, उसी को ज्ञानीजन महतत्व कहते हैं तथा उसी चित्त में वासुदेव, निवास करते हैं। इस महतत्व को ही आध्यात्म रूप से चित्त कहते हैं तथा आधिभूत में महतत्व कहते हैं। इस

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चित्त के अधिष्ठाता देवता भगवान् वासुदेव हैं, जिन्हें क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। अहङ्कार के देवता रुद्र हैं तथा उपास्यदेव संकर्षण हैं। बुद्धि के देवता ब्रह्म हैं, तथा उपास्यदेव प्रद्युम्न हैं। मनके देवता चन्द्रमा हैं और उसके उपास्य देव अनिरुद्ध हैं। चित्त का लक्षण स्वाभाविक अवस्था में स्वच्छ विकार रहित, तथा शान्तिमय होता है जिस प्रकार फेन तथा तरङ्ग आदि रहित स्वच्छ जल होता है। तत्पश्चात् भगवान् के वीर्य रूपी चित्तशक्ति से महतत्व उत्पन्न हुआ तथा महतत्व के विकृत होने पर अहङ्कार की उत्पत्ति हुई। वह अहङ्कार तीन प्रकार का है। एक वैकारिक दूसरा तेजस तथा तीसरा तामस। वैकारिक अहङ्कार से मन तेजस अहङ्कार से इन्द्रियाँ और तामस अहंकार से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई। इस क्रिया शक्ति प्रधान अहङ्कार को ही ज्ञानीजन संकर्षण अर्थात सहस्रशीर्षा अनन्त देव कहते हैं। यह अहङ्कार देवता रूप होने से कर्त्ता इन्द्रिप रूप होने से कारण एवं पंचभूत रूप होने से कार्य के लक्षणों वाला है। सत्व, रज, तम आदि गुणों के अनुसार शान्त घोर तथा मूढ़ लक्षणों वाला भी है। ऊपर कहे हुए वैकारिक अहङ्कार के विकार से मन उत्पन्न हुआ। जिस से संकल्प, विकल्प, तथा कामनाएँ उत्पन्न हुईं। तन को वश में करने के लिए इसके अधिष्ठाता देवता अनिरुद्ध की आराधना करनी चाहिए। तत्पश्चात् तेजस अहङ्कार के विकृत होने पर बुद्धि तत्व की उत्पत्ति हुई। जो वस्तुओं का विशेष ज्ञान कराता है इन्द्रियों से कार्य कराता है। स्मृति, निन्द्रा, निश्चय आदि सभी बुद्धि के कार्य हैं। इस बुद्धि तत्व के आराध्यदेव प्रद्युम्न हैं। इन्द्रियों के कर्म तथा ज्ञान के अनुसार दो भेद हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। परमात्मा की चेतन शक्ति से प्रेरित होकर तामस अहङ्कार में विकार उत्पन्न हुआ, और उस से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई। शब्द तन्मात्रा से आकाश तथा श्रोतेन्द्रिय प्रकट हुईं; जिस के द्वारा शब्द का ज्ञान होता है। इस शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न आकाश तत्व में विकार उत्पन्न होने से स्पर्श तन्मात्रा उत्पन्न हुई। उस स्पर्श का ज्ञान कराने वाली त्वचा प्रकट हुई। स्पर्श तन्मात्रा तथा वायु में विकार उत्पन्न होने पर रूप तन्मात्रा तथा तेज उत्पन्न हुआ। उन से उन का ज्ञान कराने वाले

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नेत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् रूप तन्मात्रा और तेज में विकार उत्पन्न होने पर रस तन्मात्रा तथा उससे जल और रस का ज्ञान कराने वाली जिह्वा उत्पन्न हुई। इसके पश्चात् जल में विकार उत्पन्न होने पर, गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न हुई। उससे पृथ्वी तथा गन्ध का ज्ञान कराने वाली ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न हुई। गन्ध अनेक प्रकार के पदार्थों के मिलने से सुगन्ध, दुर्गन्ध आदि की हो जाती है। प्रत्येक तत्व में उस के गुण तथा उस के उत्पन्न करने वाले आदि तत्व के गुण मिले रहते हैं। इसी तरह पृथ्वी तत्व में उस के पूर्वज आकाश, वायु, जल, तेज, आदि के गुण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध विद्यमान हैं।

जब यह चौबीस तत्व सृष्टि रचने में असमर्थ रहे तब अदृष्टा काल भगवान् ने उस में प्रवेश कर के उन तत्वों में चेतन शक्ति उत्पन्न कर के उन्हें परस्पर मिला दिया। उन तत्वों के परस्पर मिलने से क्षोभ उत्पन्न हुआ, तथा उस क्षोभ से एक अण्डे की उत्पत्ति हुई। उस अण्डे से ही विराट भगवान् की उत्पत्ति पण्डित जनों ने कही है। वह अन्न, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार महतत्व से घिरा हुआ था। इन सबके ऊपर प्रकृति का सातवाँ आवरण था। उस तेजमान अण्डे से उत्पन्न विराट् भगवान् के प्रथम मुख उत्पन्न हुआ। उससे बोलने की शक्ति तथा अग्नि उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् नासिका छिद्र उत्पन्न हुए। उनसे घ्राणेन्द्रिय तथा वायु उत्पन्न हुई। इसके पश्चात् नेत्र उत्पन्न हुए। जिस से नेत्रेन्द्रिय तथा उस के स्वामी सूर्य प्रकट हुए। तत्पश्चात् कान उत्पन्न हुए तथा श्रोतेन्द्रिय और उन के देवता उत्पन्न हुए तत्पश्चात् विराट् भगवान् के त्वचा प्रकट हुई। उस के ऊपर रोम, मूँछ-दाढ़ी तथा बाल उत्पन्न हुए। त्वचा से औषधियाँ उत्पन्न हुईं। तत्पश्चात् लिंग और वीर्य तथा इन का देवता वरुण उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् हाथ उत्पन्न हुए। उन का देवता इन्द्र प्रकट हुआ। तत्पश्चात् चरण तथा उस के देवता विष्णु प्रकट हुए। तदनन्तर नाड़ियाँ तथा रुधिर उत्पन्न हुआ। उन से सरितायें उत्पन्न हुईं। तत्पश्चात् उदर प्रकट हुआ। उस से बड़े-बड़े महासागरों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् मन तथा हृदय,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रगट हुआ जिसका देवता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् बुद्धि तथा उसका देवता ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। फिर अहङ्कार तथा उसका देवता रुद्र प्रगट हुआ। सब से अन्त में चित्त तथा उसका देवता क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुआ। हे माता! इन सब देवताओं में क्षेत्रज्ञ देवता मुख्य है। क्यों कि विराट् पुरुष में चेतन शक्ति उत्पन्न करके उसे उठाने वाला क्षेत्रज्ञ ही है।

जब विराट् पुरुष में उपरोक्त देवताओं की उत्पत्ति हो गई और वे अपने अपने स्थानों में प्रवेश करने लगे किन्तु विराट् पुरुष में चेतन शक्ति न आई तब चित्त में क्षेत्रज्ञ ने प्रविष्ट होकर विराट् पुरुष को जल में खड़ा कर दिया। क्षेत्रज्ञ के प्रविष्ट होते ही विराट् पुरुष तत्काल खड़ा हो गया। इस लिये हे माता! उसी क्षेत्रज्ञ का चिंतन बुद्धि द्वारा करना चाहिये।

——:❀:——

॥ सत्ताईसवाँ अध्याय ॥

दोहा–प्रकृति मनुष्य के ज्ञान बिन, जीव सहत संताप।
माया में फंस कर सदा, करत अनेकन पाप॥

भगवान् कपिलदेव बोले–हे माता! जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब का सम्बन्ध जल के शीतल, चंचल, उष्ण आदि गुणों से जिस प्रकार नहीं होता है, उसी तरह इस प्रकृति से निर्मित शरीर में व्याप्त रहने वाले आत्मा का भी उस शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। और शरीर जनित सुख दुःखादि में वह लिप्त नहीं होता है, क्योंकि वह आत्मा निर्विकार अकर्ता तथा निर्गुण है, किन्तु जब वह अज्ञान के कारण प्रकृति के गुणों से सम्बन्ध जोड़ लेता है, तब अहङ्कार के गुण (मन इन्द्रिय तथा शरीर) में मोहित होकर अपने को कर्त्ता मान बैठता है। उस कर्त्तापन अभिमान के कारण देह से उत्पन्न पाप तथा पुण्य के कर्म बन्धनों में बँध कर अपनी शान्ति तथा स्वतन्त्रता को नष्ट कर बैठता है। उन कर्म बन्धनों के फल स्वरूप उत्तम, मध्यम तथा नीच योनियों में जन्म लेकर इस संसार चक्र में भ्रमण करने लगता है। जिस तरह प्राणी स्वप्न में दुःख सुख

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अनुभव करता है किन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं है इसी प्रकार यह जीवात्मा अविद्या वश भोगों का चिंतन कर के दुःख सुख का अनुभव करता और वह इस संसार चक्र से मुक्त नहीं होता है, इसलिये हे माता जी ! अपना कल्याण चाहने वाले प्राणी को विषयों का चिंतन न करके कठिन भक्ति योग तथा वैराग्य से अपने चित्त को वश में कर के भक्ति मार्ग पर लगाने नियम पूर्वक अभ्यास करने से, मेरे में सच्ची प्रीति रखने से मेरी कथा कीर्तन आदि के सुनने से सब जीवों में एकीभाव रखने से किसी में आशक्ति न रखने से, ब्रह्मचर्य, मौनव्रत, तथा ईश्वरोपासना रखने से, शास्त्र के अनुसार कर्म करने से, संतोष से, एकान्त में रहने से शान्ति स्वभाव से, दया धैर्य से परिमित भोजन करने से मैं तथा मेरे पन के मिथ्या अभिमान से दूर रहने से परमात्मा के अतिरिक्त और किसी वस्तु को न देखने से, योग साधनों से यह प्राणी ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है। जिस तरह जल में पड़े हुए सूर्य के प्रति विम्ब से सूर्य का ज्ञान होता है, उसी प्रकार भूत, इन्द्रिय, मन से अहंकार का ज्ञान होता है, तथा सत् परमात्मा और अहंकार अर्थात् (भूत इन्द्रिय मन) के संयोग से सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का आभास होता है जो सुषुप्ति अवस्था में भी जागृत रहता है, तथा हमेशा अहङ्कार रहित है जो सब का दृष्टा है, वही आत्मा भ्रम वश अहङ्कार का नाश होने के कारण अपने को भी नष्ट हुआ मान बैठता है। जिस प्रकार धन के नष्ट होने पर धनिक अपने को नष्ट मान बैठता है। इसी तरह वह आत्मा भी अपने को नष्ट प्रायः समझता है। ज्ञानी पुरुष सब बातों का ज्ञान करके अहङ्कार सहित सम्पूर्ण तत्वों के स्वामी तथा स्वयं प्रकाश इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

माता देवहूति बोली–हे ब्रह्मन् ! यह पुरुष (आत्मा) तथा प्रकृति दोनों नित्य तथा एक दूसरे से सम्बन्ध रखने वाले हैं, इस कारण प्रकृति पुरुष को नहीं त्याग सक्ती और न वह पुरुष (आत्मा) उस प्रकृति को त्याग सकता है जिस प्रकार गंध पृथ्वी को और पृथ्वी गंध को नहीं त्यागती है, उसी भाँति पुरुष तथा प्रकृति भी परस्पर एक दूसरे को नहीं त्याग सकते फिर जिस प्रकृति के कारण अकर्त्ता आत्मा को कर्मबन्धन का दोष लगता है, वह आत्मा किस प्रकार मोक्ष पद को प्राप्त कर सकता है, इस प्रकृति

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तो प्रकृति के गुणों का सम्बन्ध आत्मा के साथ होने से, वह आत्मा कभी भी संसार चक्र से मुक्त नहीं हो सकता है।

श्रीकपिलदेव बोले—हे माता! जिस तरह काष्ठ से उत्पन्न होने वाला अग्नि उस काष्ठ को भी भस्म कर देती है, उसी प्रकार निष्काम कर्म योग से अर्थात् फलों की इच्छा न करके सम्पूर्ण कर्म भगवान् के अर्पण कर देने से, मेरी कथा श्रवण से, भक्ति से, तत्वज्ञान से, तीव्र वैराग्य से, मेरे ध्यानयोग से, चित्त की एकाग्रता से, उस पुरुष (आत्मा) का अज्ञान अहर्निशि नष्ट होता चला जाता है। फिर जब उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब प्रकृति उसे अपने रूप में मोहित नहीं कर सकती अर्थात् आत्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान होने से देहादि के अभिमान को त्याग कर वह प्रकृति के गुणों के बन्धन से मुक्त होजाता है। जिसको तत्व ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उसका मन सदा मुझ में ही लगा रहता है। तथा प्रकृति उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जब वह पुरुष (आत्मा) अनेकों जन्म जन्मान्तरों तक अपने अपने आत्म चिन्तन में लीन रहता है, उसे सम्पूर्ण भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब वह मेरे लोक को प्राप्त हो जाता है। यदि वह योगी अणिमा सिद्धियों के चक्कर में नहीं फँसता है, तो वह मेरे परमपद को प्राप्त होने के कारण मृत्यु को भी जीत लेता है।

—❀❀—

॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय ॥

(भगवान् का अष्टाङ्ग योग की विधि का वर्णन करना)

दो०—अष्टाङ्ग योग वर्णन कियौ, कपिल देव हरषाय।
देवहूति माता सुनहिं, भगवत् में चितलाय॥

भगवान् कपिल देव बोले—हे माता! मैं तुम से उस योग का वर्णन करूँगा जिसके करने से मनुष्य परमात्मा में लीन हो जाता है। पुरुष को शास्त्रों के अनुसार कर्म करना तथा प्रारब्धि से प्राप्त भोगों में सन्तुष्ट रहना, तत्व ज्ञानियों की सेवा करना। विषय कामनाओं से अलग रहना, कर्म बन्धन से मुक्त करने वाले कर्मों में लगे रहना, उदर के लायक पवित्र

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding

भोजन करना, एकान्त तथा सुरक्षित स्थान में रहना, मनक्रम बचन से सब पर दया करना, सत्य बोलना, किसीकी चोरी न करना, ब्रह्मचर्यसे रहना, अधिक वस्तुओं को एकत्र न करना, धार्मिक ग्रन्थों का अध्यन करना, मन कर्म, बचन से भगवान् का चिंतन करना प्राणायाम से अपनी इन्द्रियों को बस में करना, कुमार्गमें गये हुए चित्तको शनैःशनैः वहाँ से हटाकर परमात्मामें लीन करना।

योग साधन करने वाले साधक को पहले एक आसन पर अधिक काल तक बैठने का अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम के अभ्यास के हेतु स्वच्छ, पवित्र, स्थान होना चाहिये। वहाँ पर कुश, मृगचर्म, आदि का आसन बिछावे। उस आसन पर शरीर को सीधा रख कर स्थिर को तथा आनन्द पूर्वक बैठे। फिर पूरक, कुम्भक तथा रेचक या इसके विरुद्ध रेचक, कुम्भक तथा पूरक क्रिया द्वारा प्राण मार्ग को शुद्ध करे। इस प्रकार चित्त स्थिर हो जाता है, जिस प्रकार अग्नि से सोना तप कर शुद्ध हो जाता है; उसी प्रकार प्राणायाम द्वारा योगी अपनी प्राण वायु को शुद्ध कर लेता है। उससे मन तथा चित्त वश में हो जाता है। प्राणायाम द्वारा बात, पित्त, कफ के दोषों को दूर कर, किसी वस्तु पर ध्यान को स्थिर करके पापों को दूर करे। विषयों के विरुद्ध फल को सोच कर दुर्गुणों को दूर करे। जब इस प्रकार योग के अभ्यास करने से मन स्थिर तथा पवित्र हो जावे तब नासिका के अग्रभाग में अपनी दृष्टि लगा कर भगवान् श्रीविग्रह का ध्यान करें।

भगवान् नारायण का मुख कमल करोड़ों काम देवों से भी अधिक सुन्दर है। कुछ २ ललाई लिये हुये नेत्र कमल के समान प्रफुल्लित हैं मुख कमल प्रफुल्लित हैं शरीर का रङ्ग नील कमल के समान श्याम है चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। पीताम्बर शोभायमान कण्ठ में कौस्तुभ मणि तथा वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह सुशोभित है वैजयन्तीमाला, चरणों तक शोभायमान है। अङ्गों में बहुमूल्य रत्न जड़ित आभूषण धारण किये हुये हैं। वे भक्तों के सहस्र दल वाले हृदय कमल पर विराजमान हैं। उनकी किशोरावस्था है। वे भक्तों की ओर मुस्करा रहे हैं इस प्रकार भगवान् के श्री विग्रह का ध्यान करें।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तत्पश्चात भगवान् के प्रत्येक अङ्ग का अलग अलग ध्यान करे। पहले चरण कमलों का ध्यान करे। जिन में बज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल के चिन्हहै। फिर नखों का ध्यान करे, जिनसे पवित्र गङ्गा जी का प्रादुर्भाव हुआ है। फिर पिंडलियों का ध्यान करे। जिन्हें जगतमाता लक्ष्मी अपनी जाँघों पर रख कर सेवती हैं। फिर अतसि पुष्प के समान विशाल जाँघों का ध्यान करे, जो गरुड़ के कन्धों पर सुशोभित हैं। फिर कटि प्रदेश का ध्यान करे जिसमें पीताम्बर के ऊपर रत्नजटित कर्धनी शोभायमान है। तत्पश्चात् भगवान् के उदर प्रदेश में नाभि सरोवर का ध्यान करे जो सम्पूर्ण लोकों के आश्रय ब्रह्माजी का उत्पत्ति स्थान है। फिर भगवान् के स्तनों का ध्यान करे। फिर वक्षःस्थल का चिन्तन करे, जिस में श्री लक्ष्मी का निवास है, तथा जिसके ऊपर बनमाला शोभायमान है। फिर कण्ठ का ध्यान करे। जिस में कौस्तुभ मणि शोभायमान है। तत्पश्चात् भगवान् की भुजाओं का चिन्तन करे, जिसमें लोकपालों की रक्षा करने वाले आयुध शोभायमान हैं। फिर साकार भगवान् के मुख कमल का चिन्तन करे जिसमें सुन्दर नासिका, मकराकृत कुण्डल, कपोलों की सुघड़ाई काली घुँघराली अलकों तथा चंचल नेत्रों का ध्यान करे। तत्पश्चात् भगवान् की मधुर चितवन और मुस्कान का ध्यान करे। फिर उनकी धनुषाकार भौंहें और हास्य का ध्यान करे। तत्पश्चात् अरुण ओष्ठों का तथा दाड़िम के समान सुन्दर दाँतों का ध्यान करे। इस प्रकार भगवान् के ध्यान में स्थित होकर सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों से चित्त को हटा ले। जिस प्रकार तेल के समाप्त होने पर दीप शिखा समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार अवगुणों के समाप्त होने पर कर्मबन्धन भी समाप्त हो जाते हैं जिस प्रकार काष्ठ से उत्पन्न होने वाली अग्नि काष्ठ से पृथक है उसी प्रकार भूत, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण आदि से उन का साक्षी यह आत्मा भी पृथक है। तथा उस (पुरुष) आत्मा से भी परमात्मा भिन्न है। जो उस आत्मा का भी साक्षी है, किन्तु उस परमात्मा का साक्षी कोई भी नहीं है और न उन से भिन्न ही कुछ है।

देह दृष्टि से अर्थात् जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज ये चार प्रकार के प्राणी अर्थात् जीवात्मा हैं, ये केवल शरीर भेद से ही भिन्न प्रतीत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होते हैं किन्तु वास्तव में ये सब एक ही है। यह एक ही आत्मा भिन्न २ शरीरों के कारण भिन्न २ प्रतीत होती है। अतः भगवद्भक्त को सम्पूर्ण जीवोंको एक ही मान कर भगवान् की माया को उनकी कृपा से जीत कर अपने ब्रह्म स्वरूप में लीन हो जाना चाहिये।

—❀—

॥ उन्तीसवाँ अध्याय ॥

(भक्ति का मर्म तथा काल की महिमा का वर्णन)

दोहा—भक्ति भेद वर्णन कियौ, कही काल की चाल।
समुझत जो इस को मनुज, मोक्ष ब्रह्म तत्काल ॥

माता देवहूति ने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपने मुझे प्रकृति, पुरुष तथा महतत्वादि के भेद तथा लक्षण समझाये हैं। जैसा सांख्य शास्त्र में वर्णन किया है। अब आप मुझ अबला नारी पर कृपा करके भक्ति योग के शुद्ध व सच्चे स्वरूप का वर्णन कीजिए। जो ज्ञान का देने वाला है जिसे आप ने ज्ञान का वास्तविक स्वरूप कहा है। इसके अतिरिक्त प्राणियों की जन्म मरण गति का वर्णन मेरे को समझाइए। जिसके ज्ञान से जीव को वैराग्य तथा कर्मों में अनाशक्ति उत्पन्न होती है। काल का क्या स्वरूप है? इन सब का तत्व से निरूपण करने में आप समर्थ हैं आप योगेश्वर हैं तथा स्वयं प्रकाश होने से ज्ञान के सूर्य हैं।

कपिलदेव जी बोले—हे माता! तत्व ज्ञानियों ने भक्ति योग के अनेक भेद वर्णन किये हैं। तामसी पुरुष जो शत्रु भाव से अथवा हिंसा, दम्भ से मुझे प्रेम करते हैं—वे मेरे तामस भक्त हैं।

२—जो पुरुष कामनासक्त होकर कामना पूर्ति की इच्छा से मेरी भक्ति करते हैं, अनेक मूर्तियों को पूजते हैं श्रद्धा से उनका साधन करते हैं वे राजस भक्त होते हैं।

३—भगवत् प्रेम अथवा भगवान् की आराधना करना मनुष्य का धर्म है यह समझ कर जो मेरी पूजा करते हैं वे सात्विक भक्त हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

४—जो मनुष्य निष्काम भाव से अनन्य प्रेम होने के कारण मेरी निगु ण भक्ति करता है अर्थात् मुझ परमात्मा को निष्काम तथा अनन्य प्रेम के साथ निरन्तर आराधना करता रहता है, उस मेरे भक्त को सालोक्य, सार्ष्टि, सामिष्य, सारुप्य तथा सामुज्य मोक्ष की भी इच्छा नहीं होती है। वह इन पाँच प्रकार की मुक्ति की कोई चाहना न कर के निरन्तर मेरी निगु ण भक्ति में लीन रहता है यह निगु ण भक्ति योग ही महान् उच्चतम शक्ति है जिसे प्राप्त कर के पुरुष त्रिगुणमयी मेरी माया को पार करके मेरे अप्राकृत स्वरूप की उपलब्धि करता है।

हे माता! जो पुरुष नित्य नैमित्तिक कर्मों को नियम से करता है। उन कर्मों में निष्काम भावना रखता है अर्थात् उनके फल की कोई कामना नहीं करता है। जो नित्य शास्त्र निहित कर्मों को करता है, जो सर्व भूतों में मुझे विद्यमान समझ कर मेरी मूर्ति का पूजन, बन्दन, दर्शन, स्तुति आदि करता है, दीनों पर दया करता है। तथा समदर्शी होता है सांसारिक भोगों से विरक्त रहता है, अध्यात्म तत्व को प्रदर्शन करने वाले शास्त्रों का नित्य नियम से अध्ययन मनन तथा श्रवण करता है। मेरे नाम संकीर्तन करने तथा अहङ्कार के त्याग करने से मेरा भक्त सहज ही में मुझे प्राप्त कर लेता है।

जिस भाँति पुष्प से उड़ कर गन्ध वायु के द्वारा नासिका में पहुँच जाती है उसी भाँति भक्ति योग के द्वारा मनुष्य का चित्त सम्पूर्ण विकारों से रहित हो कर मुझ परमात्मा में पहुँच जाता है मैं सर्वात्मा तथा अन्तर्यामी होने के कारण सब भूतों में व्याप्त हूँ मेरी सत्ता के बिना पत्ता तक भी नहीं हिल सकता मैं कण कण में समाया हूँ। इसी लिए मैं सर्व भूतात्मा हूँ। जो मनुष्य मुझ परमात्मा को सर्व भूत स्थित न समझ कर केवल मूर्ति में ही मुझे मान कर मेरी प्रतिमा की ही पूजा करता है, वह मूर्ख केवल पूजा का स्वाँग करता है। जो मनुष्य सभी भूतों में स्थित, परमात्मा मुझ परमात्मा का अनादर कर के केवल मूर्ति पूजन करता है, वह ज्ञानी मूर्ख मुझे जानता ही नहीं है, उस का यह पूजन कर्म ऐसे ही है, जैसे राख में किया हुआ हवन होता है, जो व्यर्थ तथा निष्काम होता है। जो अहं-

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कारी पुरुष सब प्राणियों से शत्रुता रखता है, तथा उनकी हिंसा करता है, और मेरी पूजा करता है, उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि वह मुझ अन्तर्यामी से ही शत्रुता करता है। जो मनुष्य उत्तम उत्तम वस्तुओं से मेरा पूजन करे किन्तु दूसरे प्राणियों की निन्दा करे तो वह मेरी ही निन्दा करता है, तथा मुझे उसकी पूजा कभी स्वीकार नहीं है मेरा साधक जभी तक मेरी प्रतिमा की पूजा करे जब तक उसे सर्व भूतों में स्थित मुझ परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान अपने हृदय में प्राप्त न हो। जब उसे तत्व से मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाय तब वह इन सब कामों को त्याग दे। जो प्राणी आत्मा तथा परमात्मा में भेद मानता है, वह मृत्यु चक्कर से कभी मुक्त नहीं हो सकता। तत्व जानने वाले मेरे साधक को चाहिये कि मुझे सब भूतों में विराजमान समझ कर समत्व भाव से मेरी पूजा करे।

हे माता जी! पत्थर आदि अचेतन की अपेक्षा लता वृक्षादि जीव उत्तम हैं। इन वृक्षादि से श्वास धारी जीव श्रेष्ठ हैं। उन श्वास धारियों से मन वाले जीव श्रेष्ठ हैं। उनमें भी इन्द्रियों वाले प्राणी उत्तम हैं। उन इन्द्रियों वाले प्राणियों से रस ग्रहण करने वाले मछली आदि श्रेष्ठ हैं। रस ग्रहण करने वाले प्राणियों से भी गन्ध ग्रहण करने वाले भ्रमर आदि प्राणी श्रेष्ठ हैं। गन्ध वालों से शब्द ग्रहण करने वाले सर्पादि प्राणी श्रेष्ठ हैं। उनसे भी श्रेष्ठ रूप को ग्रहण करने वाले कौआ आदि प्राणी हैं। उनसे भी श्रेष्ठ दोनों ओर दाँत वाले प्राणी श्रेष्ठ हैं। उन प्राणियों में भी बिना पैर वाले श्रेष्ठ हैं बहुत से पैर वाले श्रेष्ठ हैं, उनसे भी चार पैर वाले श्रेष्ठ हैं। उन से भी दो पैर वाले श्रेष्ठ हैं। उन सब से मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों में भी भेद को जानने वाले श्रेष्ठ हैं उन में भी तत्व ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, जिसने अपना तन तथा कर्म मुझे समर्पण कर दिया है।

हे माता जी! जो तत्व ज्ञानी अपने ज्ञान से सब जीवों को मेरा अंश रूप मानता है, और सब में मुझे व्याप्त समझ कर उनका आदर करता है वही मुझे भली प्रकार तत्व से पहिचानता है। जो मनुष्य भक्ति योग तथा अष्टाङ्ग योग दोनों में से किसी एक का साधन करता है, वह अवश्य ही

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मुझे प्राप्त कर लेता है। भगवान् के ब्रह्म स्वरूप का ही दूसरा नाम 'काल' है। प्रकृति तथा पुरुष (आत्मा) ये दोनों काल के ही रूप हैं किंतु काल इन दोनों से परे है अर्थात् अलग है। यह काल ही विष्णु होकर पालन करता है तथा ब्रह्मा होकर उत्पत्ति करता है।

यह काल ही प्रमादी प्राणियों का संहार करता है। इसी के भय से सूर्य तपता है वायु चलता है समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ते हैं। इन्द्र बर्षा करता है बनस्पतियाँ तथा बृक्षादि फलते फूलते हैं। उसी काल भगवान् के भय से यह विश्व अपने अपने कार्य नियमवत् करते हुए स्थिति हैं काल भगवान् स्वयं अनादि हैं तथा दूसरों के उत्पत्ति कर्त्ता हैं। यह स्वयं अनन्त हैं तथा दूसरों का अन्त करने वाला मृत्यु हैं। यह संहार शक्ति है। ब्रह्मा आदि का भी काल है।

—०—

॥ तीसवाँ अध्याय ॥

विषयासक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन करना।

श्री कपिलदेव बोले—हे माता! यह जीव काल की प्रेरणा से अनेकों योनियों में चक्कर लगाता है, किंतु फिर भी काल भगवान् की शक्ति को वह नहीं जानता है। वह विषयासक्त जीव अनेकों भोगों की लालसा से उन्हें जुटाता है किन्तु काल उन्हें नष्ट कर देता है तब वह जीव मोह वश क्लेश मानने लगता है। इसका कारण यह है कि यह जीव जिस योनि में जन्म लेता है उसी में अज्ञानवश वह सुख अनुभव करने लगता है। वह उन सम्बन्धियों से प्रेम करने लगता है। स्त्री, पुत्र, भाई बन्धुओं को अपना मान कर उनके भरण पोषण में रत हो जाता है। अनेक प्रकार के मनोरथ करता है उनके पूर्ण करने का प्रयत्न करता है। यदि उसके इच्छित मनोरथ पूर्ण हो गये तो बहुत प्रसन्न हो जाता है और यदि पूर्ण न हुए तो वह दुखी होने लगता है। वह प्राणी भोगादि में लीन रह कर विषयों में आसक्त हो जाता है। उन स्वार्थी नरक में ले जाने वाले स्त्री

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

...Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पुत्रादि को अपना मान बैठता है। उनके पालन पोषण के हेतु अनेकों प्रकार के पाप करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, छल कपट से संसार को ठगता है, और अपने लिये पाप की गठरी तैयार करता है।

जब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं और वह कमाने योग्य नहीं रहता हैं तब उसके स्त्री पुत्रादि उसका अनादर करते हैं उसे क्लेश पहुँचाते हैं। उसे बुरा भला कहते हैं बूढ़े बैल की भाँति उसे घर से बाहर निकाल देते हैं। उसकी वृद्धावस्था होने के कारण वह पुरुषार्थ हीन हो जाता है, तब दूसरों के टुकड़े खाकर अपमान सहता है, और कुत्ते की भाँति अपने शेष जीवन को व्यतीत करता है। मृत्यु के समय कफ से कण्ठ रुँध जाता है, शोक से व्याकुल स्त्री पुत्रादि से घिर कर मृत्यु के दबा लेने से बोल भी नहीं सकता है। इस प्रकार उस विषयाशक्त प्राणी को अपना वह शरीर त्यागना पड़ता है। उसके कुटुम्बी सब रोते रह जाते हैं। उस समय उसके शरीर में इतनी पीड़ा होती है कि वह अचेत हो जाता है तथा उसका विवेक नष्ट हो जाता है। दो यमदूत उस प्राणी को उस स्थूल शरीर से निकाल कर, यमपुर की ओर ले जाते हैं। वह स्थूल शरीर वहीं पड़ा रह जाता है। यमदूत उस लिंग शरीर (सूक्ष्म जीवात्मा) से कण्ठ में रस्सी का पाश डाल लेते हैं, और उसे यातना देते हुए घसीट कर यमपुरी की ओर ले जाते हैं। वह जीव कर्मानुसार दुख भोगता हुआ उन यमदूतों के द्वारा दुःख त्रास तथा भय को प्राप्त होता हुआ रोता, चिल्लाता, अनिच्छा पूर्वक यमपुरी की ओर घसीट कर ले जाया जाता है। उस यमलोक का मार्ग निन्यानवे हजार योजन है। इतने लम्बे यमपुरी के मार्ग को वह दो तीन मुहूर्त अर्थात् लगभग छः घड़ी में पार करके वहाँ पहुँचता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के नरकों में डाला जाता है। दहकती हुई अग्नि, अनेक प्रकार के हिंसक, बिच्छू साँप कृम, कीटक, उसे कष्ट देते हैं। वह उनके द्वारा काटा जाता है जलाया जाता है। डसा जाता है तथा अनेक प्रकार के असह्य कष्टों को प्राप्त होता है। वह हाय हाय करके रोता चिल्लाता है अपने कर्मों को स्मरण करके पछताता है, और उन रांध, पीव, रुधिर के नरकों को कर्मानुसार भोगता है। वह प्राणी स्त्री हो अथवा पुरुष सब को अपने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। श्री कपिलदेव जी बोले–हे माता जी! अनेक प्रकार की नारकी यौनियाँ तो उस प्राणी को यहीं भोगना पड़ती हैं, केवल मनुष्य शरीर ही उत्तम होता है। कर्मानुसार प्राणी को ये नारकी यौनि दे दी जाती हैं। वह बार बार उन में जन्म लेता है तथा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। माता के उदर में नारकी कष्ट पाता है इस प्रकार वह प्राणी मर कर घोर पापों का फल तामिस्त्र, अन्ध तामिस्त्र आदि नरकों को भोगता है। जब उन नरकों के भोगने से उसके पाप कुछ कम हो जाते हैं तब कूकर सूकर कीटक कृम आदि का जन्म लेता है, और इन नारकी यौनियों में पड़ कर असह्य कष्ट भोगता है। जब इस प्रकार उसके सारे पाप नष्ट होकर उसका मल दूर हो जाता है, और शुद्ध हो जाता है, तब उस प्राणी को मनुष्य यौनि प्राप्त होती है।

—❀❀—

❀ इकत्तीसवाँ अध्याय ❀

❀ मनुष्य यौनि में जीव के कष्टों का वर्णन ❀

भगवान् कपिल देवजी बोले–हे माता! जब यह प्राणी मनुष्य यौनि में जन्म लेने को होता है तब पिता के वीर्य कण के द्वारा माता के रज में मिलकर उदर में पड़ जाता है। वहाँ पर एक रात्रि में कँवल बन जाता है, पाँच रात्रियों में गोलाकार हो जाता है। तथा दस रात्रियों में बेर के मानिन्द कठोर हो जाता है, अण्डज प्राणियों के अण्डा बन जाता है। एक मास पश्चात् उस के सिर बन जाता है। दो महीने में उसके हाथ पाँव आदि बन जाते हैं। तीसरे महीने में अस्थि, चर्म, स्त्री, पुरुषादि के चिन्ह, नख रोम आदि बन जाते हैं। चौथे महीने में सातों धातुएं उत्पन्न हो जाती हैं। पाँचवे मास में क्षुधा पिपासा आदि का ज्ञान हो जाता है। छटवे महीने में वह झिल्ल युक्त होकर दाहिनी कोख में चमकने लगता है। उस समय वह माता के भोजन तथा जल से रस प्राप्त करके पुष्टि पकड़ने लगता है। वह उदर के कृमि, मल, विष्ठा आदि में पड़ा यातना भोगता है। उसके अङ्ग कोमल

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होते हैं, उन कीटाणुओं द्वारा तथा माता के खाये हुए चरपरे, लेह अम्ल भोजन से उसे महान् पीड़ा होती है। वह पिंडात्मक प्राणी माता के उदर के बन्धन में कसा रह कर तड़फड़ाने लगता है, उस समय भगवान् की प्रेरणा से उसे स्मरण शक्ति उत्पन्न हो जाती है उस समय वह अपने सैकड़ों जन्मों के कर्मों को स्मरण करके रोने लगता है व्याकुल होने लगता है। सातवें महीने में उसकी विवेक शक्ति जाग्रत हो जाती है। वह प्रसूति वायु से प्रेरित होकर इधर उधर घूमने लगता है। उस समय उसे गर्भ में अति कष्ट प्राप्त होता है, तब वह परमात्मा से प्रार्थना करता है। जीव कहता है हे ईश्वर! मैं बड़ा पापी हूँ मुझे इस अधोगति से बाहर निकालिये। आप ही इस संसार के उत्पत्ति कर्त्ता हैं आप अविकारी, अविनाशी तथा माया से रहित हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मैं अहङ्कार, इन्द्रिय आदि गुणों से युक्त हूँ, और आप प्रकृति और पुरुष के नियन्ता होने के कारण इन दोनों से परे हैं, सर्वज्ञ हैं, यह जीव अपने गुण और कर्मों के अनुसार बन्धन युक्त होकर संसार चक्र में भ्रमण करता है, किन्तु आप सर्वज्ञ होने के कारण इस संसार चक्र से अलग रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। माता का उदर साक्षात् मल मूत्र तथा रुधिर का कुण्ड है। मैं इस नरक में सड़ा हुआ कष्ट पा रहा हूँ। हे परमात्मा! आप मुझ दीन को यहाँ से शीघ्र निकालिये। हे दीनबन्धो! मैं निरन्तर आपका भजन करता रहूँगा तथा आप ही की शरण में रहूँगा। हे भगवन्! इस उदर के कष्ट से भी बढ़कर संसार कष्ट है उस संसार कष्ट से तो यह उदर का कष्ट ही अच्छा है। पृथ्वी पर गिरते ही आपकी माया जीव को घेर लेती है और प्राणी इस संसार चक्र से कभी मुक्त नहीं हो सकता है। मुझे ऐसा मार्ग दिखाइये जिसके अनुशरण से मैं इस संसार चक्र से मुक्त हो सकूँ।

पिलदेव बोले—हे माता! वह गर्भस्थ बालक दस मास पूर्ण होने पर इस भाँति ज्ञान से युक्त होकर भगवान् की प्रार्थना करता है, तब नीचे को मुख किए हुए माता के उदर रूपी नर्क में लटके हुए उस बालक को प्रसव काल की वायु बाहर धकेलती है। उसके द्वारा वह बड़ा कष्ट सहता हुआ नीचे को सिर किये हुए विष्ठा और मूत्र में पड़ा हुआ छटपटाने लगता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है। फिर वह उदर से बाहर आ जाता है। पृथ्वी पर आते ही उस का सारा ज्ञान लुप्त हो जाता है और वह रोने लगता है। इस प्रकार जीव उस नरक से मुक्त होकर इस संसार रूपी घोर नर्क में आता है, यहाँ पर मैली कुचैली खाट जिसमें खटमल, कीड़े जूँ उसे काटते रहते हैं। मल, मूत्र, विष्टा में पड़ा हुआ रोता रहता है। उसे ज्ञान कुछ नहीं होता है। केवल कष्ट प्रतीत होने पर रोने लगता है। इस प्रकार उस का बालकपन कौमारावस्थापन समाप्त होने पर युवा हो जाता है। फिर देहाभिमान से अहंकार, क्रोध, तथा काम बढ़ जाता है और अज्ञानवश कामासक्त होकर विषय वासनाओं में लीन हो जाता है। उदर में की हुई भगवान् की प्रार्थना तथा उस प्रतिज्ञा को भूल जाता है। वह अपनी इच्छा शक्ति के लिये अनेक प्रकार के पाप करता है। अविद्या के द्वारा कर्म सूत्र में बँधता रहता है वह भगवान् की माया रूपिणी स्त्री के चक्कर में ऐसा पड़ जाता है कि वह अपने सर्वस्व को खो बैठता है। इस स्त्री रूपिणी माया की शक्ति इतनी प्रवल है कि अपने भ्रू विलास से बड़े शक्ति शाली वीरों को भी स्ववश कर लेती है जो मनुष्य मेरी प्राप्ति करना चाहता हो तथा योगाभ्यास के द्वारा आत्मज्ञान का इच्छुक हो वह स्त्री रूपिणी मेरी इस माया से सदा अलग रहे। क्यों कि वह मनुष्य के लिए नरक का खुला द्वार है। यह सेवा आदि के बहाने मनुष्य को धीरे धीरे अपने वश में कर लेती है, और उसे मृत्यु रूपी कुए में ढकेल देती है, जिस प्रकार पुरुष के लिए स्त्री सङ्ग बुरा है उसी प्रकार स्त्री के लिए भी पुरुष का सङ्ग त्याज्य है। अन्त समय मनुष्य की आशक्ति स्त्री में रहती है, तो वह स्त्री योनि को प्राप्त हो जाता है। और वह पुत्र आदि में लिप्त रहती है। यह सम्पूर्ण पुत्र गृह, स्त्री तथा स्त्री के लिये पति सब नरक में ले जाने वाले साधन हैं। जीवात्मा सूक्ष्म शरीर से अन्य लोकों में जाता है तथा अपने उपार्जित कर्मों के फल को भोगता हुआ अनेक प्रकार के शरीर धारण करता है वह उपाधि रूप सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर) सदा जीव के साथ रहता है केवल यह भूत तथा इन्द्रियों से बना हुआ स्थूल शरीर पृथ्वी पर पड़ा रह जाता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर के योग को जन्म कहते हैं, और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इनके वियोग को मृत्यु कहते हैं। अतः योगी पुरुष को मृत्यु आदि से कभी भय भीत नहीं होना चाहिये क्योंकि यह जीव कभी नहीं मरता है संसार से विरक्त होकर आसक्ति को त्याग कर संसार में बिचरे।

—❀❀—

॥ बत्तीसवाँ अध्याय ॥

धूम मार्ग तथा अचिरादि मार्ग में जाने वाले जीवों की गति का वर्णन तथा भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता का वर्णन करना।

श्री कपिलदेव जी बोले—हे माता जी! ये सम्पूर्ण पुरुष जो कामासक्त होकर सकाम भाव से गृहस्थ का पालन करते हैं, और कर्मों के फलके भोगने की बार बार इच्छा करते रहते हैं वे भगवान् से बिमुख रहते हैं। वे जिन देवताओं तथा पितरों की आराधना करते हैं, उन्हीं के लोक को प्राप्त होते हैं। अर्थात् चन्द्रलोक में जाकर सोमरस पीते हैं। उनके पुन्य क्षीण होने पर फिर मृत्यु लोक में आजाते हैं। प्रलयकाल के समय गृहस्थ आश्रमियों को प्राप्त होने वाले ये संपूर्ण लोक नष्ट हो जाते हैं। इनके विरुद्ध जो ज्ञानी पुरुष भगवत् भक्तिमें लीन रहते हैं गृहस्थ धर्म में अनासक्त शुद्ध चित्त, अहंकार रहित, ममता रहित रह कर अपने धर्म का पालन करते हैं वे अन्त समय में देवयान मार्ग के द्वारा सूर्य लोक को जाते हैं, और भगवान् को प्राप्त करते हैं। वे मुमुक्षु प्राणी ब्रह्मा की आयु पर्यन्त सत्य लोक में रहते हैं, जिस समय ब्रह्मा, इन सम्पूर्ण भूतों तथा इन्द्रियों को अहङ्कार सहित अपने में लीन करके त्रिगुण मयी प्रकृति के साथ मिलकर परमात्मा में बिलीन हो जाते हैं, उस समय वे योगी जन भी अपने शरीर को त्याग कर उन ब्रह्माजी में लीन हो जाते हैं, और उन्हीं के साथ २ परब्रह्म सच्चिदानन्द घन स्वरूप परमात्मा में लीन हो जाते हैं। वे पहिले अहंकार के कारण ब्रह्म में लीन नहीं होते हैं। हे माता! इस कारण तुम भी भगवान् के चरणों में भक्ति भाव से जाओ क्योंकि वे सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। जब काल रूप परमात्मा की प्रेरणा से तीनों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

गुणों में क्षोभ उत्पन्न होता है, तब ब्रह्माजी सहित सम्पूर्ण ऋषि महर्षि योगी जन तथा स्थावर, जङ्गम प्राणी निष्काम कर्म के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होने पर भी कर्त्तापन के अभिमान के कारण ईश्वरेच्छा से सर्वकाल के आरम्भ में पहिली भाँति प्रकट होजाते हैं, औरये सम्पूर्ण सिद्धेश्वर तथा योगी जन अपने कर्मानुसार ब्रह्म लोक के आनन्द को भोगकर ईश्वर की इच्छा से फिर इस लोक में जन्म लेते हैं। जिन पुरुषों की इसलोक में आसक्ति रहती है तथा कर्मों में श्रद्धा रखते हैं वे ऐसे पुरुष इस लोक में आकर कामना पूर्ति के लिए नित्य कर्मों का अनुष्ठान करते रहते हैं वे लोग इन्द्रियों के वश में रहते हैं उनकी बुद्धि रजोगुण के कारण मन्द रहती है। उनकी आसक्ति कामनाओं में लगी रहती है वे लोग अर्थ, धर्म और काम के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ, अनुष्ठान तथा पितरों की आराधना करते रहते हैं। वे लोग भगवान् की कथा वार्ताओं से प्रेम नहीं करते हैं। जिस प्रकार विष्टा में रहने वाला कीट विष्ठा को ही पसन्द करता है तथा विष्ठा ग्रहण करने वाले कूकर, शूकर, अमृत के समान सर्वोत्तम भोजन को पसन्द नहीं करते हैं, उसी भाँति जो पुरुष भगवन् कथामृत को त्यागकर उपरोक्त निंदित कर्मों को करते रहते हैं वे अवश्य ही मन्द भाग्य हैं। वे धूम मार्ग के द्वारा पितृ लोक [अर्य्यमा] को जाते हैं तथा फिर अपने ही कुल में जन्म लेते हैं। जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब वे वहाँ से धकेल दिये जाते हैं। हे माता! तुम सम्पूर्ण आसक्ति को त्याग कर तथा अपने मनको वश में करके भक्ति योग द्वारा भगवान् बासुदेव में अपनी आसक्ति लगाओ केवल भक्ति योग ही ऐसा सुगम मार्ग है। जो ब्रह्म को प्राप्त कराने वाले ज्ञान तथा वैराग्य को उत्पन्न करता है। जब यह प्राणी विषमता को त्यागकर सर्वत्र समत्व भाव का अनुभव करता है तब उसे भगवान् के दर्शन होते हैं।

तब वह प्राणी अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है। वही जीव ज्ञान स्वरूप हैं। वही जीव परब्रह्म है। वही परमात्मा के नाम से पुकारा जाता है। वही ईश्वर है। वही आत्मा तथा पुरुष है। वही परमात्मा जीव रूप से अनेक शरीरों में प्रतीत होता है। इस संसार से विरक्त हो जाना तथा असङ्ग बुद्धि हो जाना अर्थात् संग रहित सब में एक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रूप से स्थित रहना त्याग और ग्रहण आदि से रहित हो जाना यही योगियों के योग साधन का केवल फल है। सम्पूर्ण प्रकार के योगों द्वारा योगी असंग बुद्धि को ही प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म एक है वह ज्ञान का भण्डार तथा निर्गुण है। किन्तु फिर भी वहिःमुखी इन्द्रियों के द्वारा केवल भ्रान्ति के कारण अनेक पदार्थों में फँसा रहता है, और उनके अनेक रूप प्रतीत होते हैं। जिस भाँति सर्व प्रथम एक परःब्रह्म से महतत्व उत्पन्न हुआ। उससे विकारिक, राजस, तामस तीन प्रकार का अहङ्कार उत्पन्न हुआ। उन तीनों अहंकारों से पंच महाभूत, ग्यारह इन्द्रियाँ बनीं। उन्हीं के संयोग से यह स्वयं प्रकाश ब्रह्म जीव नाम से पुकारा गया। इस भाँति इस जीव की उत्पत्ति स्थान वास्तव में वह ब्रह्म ही है! क्योंकि वह उस ब्रह्म ही से उत्पन्न हुआ है। लेकिन इस जीव के उस ब्रह्म स्वरूप को वही ज्ञानी पुरुष देख सकता है जो श्रद्धा भक्ति तथा वैराग्य के द्वारा योगाभ्यास में रत, रह कर एक चित से असंग बुद्धि को प्राप्त हो चुका है।

हे माताजी! मैंने तुम्हें इस भाँति ब्रह्म का स्वरूप समझाया। प्रकृति और पुरुष का भेद भी तुम्हारी समझ में आ गया है। हे माता! निर्गुण ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान योग तथा मेरे लिए किया हुआ भक्ति योग इन दोनों का फल केवल एक ही है। और वह मुझ भगवान् तक पहुँचने का फल है; जिस प्रकार किसी ग्राम अथवा नगर तक जाने के अनेक मार्ग होते हैं उसी प्रकार अनेक शास्त्रों में मेरे तक पहुँचने के भिन्न भिन्न मार्गों का निरूपण किया गया है। अनेक प्रकार के कर्म, यज्ञ, दान, तप, ज्ञान वेदाध्यन, इन्द्रियों के संयम आदि सभी सकाम और निष्काम कर्म, ज्ञान तथा वैराग्य ये सभी साधन मुझ सगुण तथा निर्गुण परमात्मा को प्राप्त करने के हैं।

हे माता जी! मैंने आप के सामने तीनों गुण, निर्गुण तथा सगुण का भेद चार प्रकार के भक्ति योग तथा प्राणियों की नाना प्रकार की गतियाँ और मृत्यु के पश्चात उनके लोकों की प्राप्ति आदि सभी भली प्रकार समझा दिये हैं। हे माता! इस ज्ञान को दुराचारी, दम्भी, घमण्डी तथा नास्तिक के सामने कभी उपदेश न करे। यह मेरा उपदेश भक्तों के लिए श्रद्धा पूर्वक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अवश्य करना चाहिये। इस के एक बार भी सुनने तथा कहने से मेरे पर:ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है।

—❀❀❀—

॥ तेंतीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—तत्व ज्ञान और मोक्ष विधि, कही कपिल समुझाय।
सुन कर महिमा ईश की, गई मातु हरषाय॥

श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी! भगवान् कपिल मुनि के उपदेश को सुन कर माता देवहूति अति प्रसन्न हुईं और उनकी स्तुति करने लगीं—

देवहूति बोली—हे ब्रह्मन्! जगत के रचने वाले ब्रह्मा के भी रचियता आप हैं। ब्रह्मा आप ही के द्वारा सृष्टि रचते हैं, आप के ही एक रूप से अनेक रूप वाली सृष्टि बनती है, प्रलय काल होने पर इस सम्पूर्ण सृष्टि को आप अपने उदर में लीन कर लेते हैं। मुझे बड़े गौरव का विषय है कि उन्हीं भगवान् को मैंने अपने उदर में रक्खा। केवल आपके एक बार नाम स्मरण करने से चाण्डाल भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है फिर आपके दर्शन प्राप्त कर के तो उससे भी महान्‌तम परम फल की प्राप्ति होती है। आप साक्षात् ब्रह्म हैं, मैं आप को प्रणाम करती हूँ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! माता के ऐसे मधुर भक्ति पूर्ण बचनों को सुनकर कपिलदेव बोले—हे माता! मैंने तुम्हारे सामने उत्तम सांख्य योग का सुगम मार्ग प्रदर्शन किया है आप इसके द्वारा अवश्य ही मुझ परमात्मा को प्राप्त कर लेंगी। जो दुर्बुद्धि भेद बुद्धि के कारण मेरे बचनों पर विश्वास नहीं करते वे नरक को प्राप्त होते हैं।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! इस प्रकार अपनी माता को उपदेश कर के तथा उनकी अनुमति प्राप्त कर के कपिलदेव जी उस आश्रम से चले गये। माता देवहूति उसी आश्रम में पुत्र वियोग सहती हुई योगाभ्यास से

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अपने चित्त को एकाग्र करके भगवान् का चिन्तन करने लगीं । उनका शरीर उग्र तपस्या के द्वारा सूख कर काँटा हो गया । बाल सफ़ेद हो गये। उन्होंने अपने पति कर्दमजी के योगवल से प्राप्त सम्पूर्ण भोगों की आसक्ति त्याग कर कठिन भक्ति योग द्वारा भगवान् के एक २ अङ्ग का ध्यान करके फिर सम्पूर्ण विग्रह का ध्यान करने लगीं । समाधि योग द्वारा परब्रह्म स्वरूप का दर्शन प्राप्त कर लिया । जिस स्थान पर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई वह 'सिद्धपद' नाम से प्रसिद्ध हुआ । हे विदुरजी ! कठिन योग से माता देवहूति के हृदय के सम्पूर्ण मैल दूर हो गये तथा उन्हें देदीप्यमान करने वाला परम पद प्राप्त हुआ ।

भगवान् कपिलदेव जी माता की आज्ञा लेकर उस आश्रम से ईशान कौण की तरफ चले गये। समुद्र के मध्य में एक द्वीप पर अपना स्थान बना कर तीनों लोकों को शान्ति प्रदान करने के हेतु योग मार्ग का साधन करने लगे, तथा समाधिस्थ हो गये । वहाँ गन्धर्व, अप्सरा सिद्ध मुनिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ।

हे विदुर जी ! मैंने तुम्हें भगवान् कपिलदेव जी माता देवहूति का सम्वाद सुनाया जो मोक्ष को देने वाला उत्तम मार्ग है । जो पुरुष नित्य नियम पूर्वक इस मार्ग का अनुसरण करता है उसे अवश्य परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

❀ तृतीय स्कन्ध समाप्त ❀

—❀❀—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ वृहद् सुखसागर ॥

॥ चौथा स्कन्ध ॥

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां ।
विदुर काष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥
निरस्त साम्याति शयेन राधसा ।
स्वधामनि ब्रह्मणि रस्यते नमः ॥ (अन्यत्र से)

अर्थ—जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भक्तों पर अति कृपा करने वाले हैं तथा भक्ति हीन साधक हठ पूर्वक जिनकी परछाईं को भी नहीं छू सकते हैं। तथा जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के समान किसी का भी ऐश्वर्य नहीं है उनसे अधिक तो हो ही क्या सकता है। ऐसे ऐश्वर्यवान् भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र को जो सर्वदा अपने ब्रह्म स्वरूप में विहार करते हैं। मैं बारम्बार उन श्रीकृष्णचन्द्र को नमस्कार करता हूँ।

❀ प्रथम अध्याय ❀

दोहा—मैत्रेयजी वर्णन कियो, मनु पुत्रिन को बंश ।
भई जगत् की उत्पती, मिलि देवन को अंश ॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद और तीन कन्यायें अकूति, देवहूति तथा प्रसूति महारानी शतरूपा के गर्भ से उत्पन्न हुईं। महाराज मनु ने आकूति का विवाह शतरूपा की अनुमति लेकर रुचि प्रजापति के साथ कर दिया यद्यपि रुचि प्रजापति उनके भाई थे किन्तु पुत्रि का धर्म के अनुसार यह विवाह सम्पन्न कर दिया गया। रुचि प्रजापति भगवान् के बड़े भक्त थे। तपस्या के प्रभाव से उनका ब्रह्म तेज देदीप्यमान हो रहा था। आकूति के गर्भ से रुचि प्रजापति ने एक बालक तथा कन्या उत्पन्न की। वह बालक साक्षात

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु थे तथा वह कन्या उनकी प्रिय पत्नी लक्ष्मीजी थीं। मनुजी ने पुत्रि का धर्म के अनुसार आकूति के परम तेजस्वी पुत्र को प्रसन्न हो कर ले लिया तथा उस कन्या को जिसका नाम दक्षिणा था रुचि प्रजापति ने ही अपने घर रक्खा। जब वह कन्या विवाह योग्य हुई तब उसका विवाह भगवान् विष्णु के साथ हुआ। भगवान् विष्णु ने दक्षिणा के गर्भ से बारह पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति इष्म, कार्व, विभु, स्वहन, सुदेव, तथा रोचन था। स्वायम्भुव मन्वन्तर में ये ही 'तुषित' नाम के देवता कहलाये। उस मन्वन्तर में मरीचि इत्यादि सप्त ऋषि भगवान् विष्णु इन्द्र, तथा प्रियवर्त्त और उत्तानपाद मनु पुत्र थे वह मन्वन्तर इन्हीं प्रियवर्त्त और उत्तानपाद के पुत्र पौत्र दौहित्र आदि से भरपूर था। हे विदुर जी! मनुजी ने देवहूति का विवाह परम तेजस्वी कर्दमजी के साथ किया था तीसरी कन्या प्रसूति को दक्ष प्रजापति ने ग्रहण किया था। इस सारी त्रिलोकी में उनकी सृष्टि फैली हुई है। हे विदुरजी! मैंने देवहूति तथा कर्दम जी से उत्पन्न नौ कन्याओं का वर्णन पहले ही कर दिया है वे कन्याऐं नौ ब्रह्मर्षियों को ब्याह दी थीं। श्री मरीचि ऋषि को कर्दम जी की कला नाम की बेटी ब्याही थी जिससे कश्यप तथा पूर्णिमा नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिनकी उत्पत्ति से यह सारा विश्व है। पूर्णिमा के व्रज और विश्वभ दो पुत्र और देवकुल्या नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। यही अगले जन्म में गङ्गा नदीके रूपमें प्रगट हुई। अत्रिजी की स्त्री अनुसुइया के गर्भ से दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा चन्द्रमा नाम के तीन पुत्र भगवान् विष्णु, शंकर तथा ब्रह्मा के अंश रूप प्रगट हुए। विदुर जी बोले—हे मैत्रेय जी! इस संसार को उत्पन्न करने वाली पालने वाली तथा मारने वाली इन तीनों शक्तियों ने किस कारण अत्रि मुनि के यहाँ अवतार लिया। मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अत्रि मुनि को ब्रह्मा जी ने सृष्टि उत्पन्न करने के लिए कहा तब दोनों तपस्या के हेतु ऋक्षभान पर्वत पर गये। उस पर्वत पर एक विशाल अशोक तथा पलास का बन था। जहाँ पर निर्विन्ध्या नदी बहती थी। उस सुन्दर बन में अत्रि मुनि प्राणायाम से अपने को वश

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

कर के सौ वर्ष पर्यन्त केवल वायु आहार करके एक पैर से खड़े रहे। उनकी इच्छा भगवान् के समान पुत्र उत्पन्न करने की थी। उनकी तपस्या के प्रभाव से प्रभावित होकर भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव तीनों उस स्थान पर आये। उस समय देवता लोग पुष्पों की वृष्टि करने लगे। तीनों महान् शक्तियोंको देख कर अत्रि मुनि अति प्रसन्न हुये तथा एक पैरसे खड़े होकर पृथ्वी पर लेट कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा उनकी पूजा की। वे तीनों ही आदि देव अपने २ बाहनों पर चढ़े हुए थे। उनके नेत्र कृपा की बृष्टि कर रहे थे। मन्द मन्द मुस्कान तथा मन्द हास्य, कृपा वृष्टि कर रही थीं। अत्रि मुनि उनके तेज को देख कर चौंधिया गये तथा नेत्र बन्द करके मधुर शब्दों में उनकी प्रार्थना करने लगे। अत्रि मुनि बोले—हे जगत् के नियंता! आप ही अपने तीन गुणों से रजो गुण से ब्रह्म, तमोगुण से शंकर, तथा सतो गुण से विष्णु रूप धारण करते हो। मैं आपको कोटानिकोटि नमस्कार करता हूँ। जिनका मैंने चिन्तन किया था आप तीनों में से वे कौन हैं।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! अत्रि मुनि के ऐसे बचन सुन कर नारायण की वह तीनों शक्तियाँ हँसी और बोलीं—हे ब्रह्मदेव! तुमने जिस यज्ञ पुरुष भगवान् की आराधना की थी वह हम तीनों ही हैं, तुम सत्य संकल्प हो। तुम्हारा संकल्प पूर्ण करने के लिए ही हम तीनों अपने अन्श रूप से उत्पन्न होंगे। इतना कह कर वे तीनों देव मुनि के देखते देखते अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् समय आने पर विष्णु के अन्श से दत्ता त्रेयजी, महादेव जी के अन्शसे दुर्वासा ऋषि तथा ब्रह्माजी के अन्श से चन्द्रमा उत्पन्न हुए।

हे विदुर जी! अब मैं अङ्गिरा के वंश का वर्णन करता हूँ। अङ्गिरा ऋषि की पत्नी श्रद्धा के गर्भ से सिनीवाला, कुहु, राका, अनुमति ये चार कन्यायें उत्पन्न हुईं उनके दो पुत्र तथ्य तथा बृहस्पतिजी भी उत्पन्न हुये।

पुलस्त्य जी की पत्नी हवि भू के गर्भ से अगस्त्य मुनि तथा विश्रवा उत्पन्न हुए। अगस्त्य जी अगले जन्म में जठराग्नि बने तथा विश्रवा के इडविडा नाम की पत्नी से कुवेर उत्पन्न हुए। उनकी दूसरी पत्नी केसिनी के गर्भ से रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण तीन पुत्र उत्पन्न हुये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

महर्षि पुलस्त की पत्नी गति के गर्भ से कर्म श्रेष्ठ, वरीयान, तथा सहिष्णु तीन पुत्र उत्पन्न हुये। महर्षि क्रतु की धर्म पत्नी क्रिया के गर्भ से बाल खिल्यादि साठ सहस्र ऋषि उत्पन्न हुए। हे विदुर जी ! महर्षि वशिष्ठ जी की पत्नी अरुन्धती के गर्भ से चित्रकेतु, सुरोचि, विरत्रा, मित्र उल्वण वसु भूद्यान तथा द्यु तमान सात पुत्रों का जन्म हुआ। वशिष्ठजी की दूसरी पत्नी के गर्भ से शक्ति आदि कई पुत्र उत्पन्न हुये। अथर्वण ऋषि की पत्नी चिति के गर्भ से दधीचि नामक तपस्वी पुत्र उत्पन्न हुये जिनका दूसरा नाम अश्वासिरा था।

हे विदुर जी ! भृगु ऋषि की पत्नी ख्याति से धाता, विधाता नाम के दो पुत्र तथा श्री नाम की कन्या उत्पन्न हुई। धाता विधाता दोनों ऋषियों को मेरु ऋषि की पुत्री ख्याति तथा नियति ब्याही थीं। उन पत्नियों से मृकण्ड तथा प्रण नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। मृकण्ड के मार्कण्डेय तथा प्राण के वेद शिरा ऋषि उत्पन्न हुये। भृगुजी के पुत्र कार्व से शुक्राचार्य उत्पन्न हुये। हे विदुरजी ! इन सब ब्रह्मर्षियों ने सन्तति उत्पन्न करके सृष्टि को बढ़ाया। मनुजी की तीसरी पुत्री प्रसूति दक्ष प्रजापति को ब्याही गई थी।

उस प्रसूति के गर्भ से सोलह कन्यायें उत्पन्न हुईं। जिन में दक्ष प्रजापति ने ब्रह्माजी की आज्ञा से तेरह कन्यायें धर्म को एक कन्या अग्नि को एक कन्या पितृगण को तथा एक कन्या भगवान् शङ्कर को ब्याह दी। धर्म की तेरह पत्नियों के नाम, श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री तथा मूर्ति थे। उन पत्नियों ने क्रमशः शुभ, प्रसाद, अभय, सुख, मोद अहङ्कार, योग, दर्प, अर्थ, स्मृति क्षेम तथा लज्जा नाम के तेरह पुत्र उत्पन्न किये। मूर्तिदेवी के गर्भ से भगवान् नर नारायण के उत्पन्न होने पर देवता लोग अति प्रसन्न हुये। और उनकी पूजा करने लगे। वे ही नर नारायण दुष्टों का संहार करने के लिये अर्जुन तथा श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए। अग्निदेव ने स्वाहा के गर्भ से पावक पवमान तथा शुचि नामके पुत्र उत्पन्न किये। इन तीनों से पैंतालीस प्रकार के अग्नि प्रकट हुये। वे ही पिता तथा पितामह सहित उनचास अग्नि कहलाये। पितृगणों से सुधा नाम की पत्नी के द्वारा धरिणी दो

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

वयुना दो कन्यायें उत्पन्न हुईं। इन दोनों का वंश नहीं चला। भगवान् शङ्कर की पत्नी सती के भी कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। क्योंकि सती युवावस्था में ही अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में भस्म हो गई थीं।

॥ दूसरा अध्याय ॥

भगवान् शिव तथा दक्ष प्रजापति की शत्रुता

दोहा—दक्ष प्रजापति के लिए, नहिं शिव कीन्ह प्रणाम।
क्रोधित हो तब दक्ष ने, दीन्ह शाप तिहि ठाम॥

विदुरजी बोले—हे मैत्रेयजी! मुझे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य है कि दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सतीजी क्यों भस्म हो गईं तथा शांति मूर्ति आत्माराम भगवान् शङ्कर से दक्ष प्रजापति की शत्रुता क्यों हो गई?

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! एक समय सम्पूर्ण प्रजापतियों ने यज्ञ किया। जिसमें सब बड़े २ देवता ऋषि महर्षि आदि पधारे। उस काल प्रजापति दक्ष भी उस यज्ञ में आये। उनके तेज से सम्पूर्ण यज्ञमण्डप सूर्य के समान जगमगाने लगा। उनके स्वागत के लिए ब्रह्माजी तथा शङ्कर जी के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रजापति ऋषि, महर्षि तथा देवता उठ खड़े हुए। शिवजी का ऐसा व्यवहार देखकर दक्ष प्रजापति को बड़ा क्रोध आया और बोले—हे देवताओ तथा ऋषि, महर्षियो! मेरी बात सुनो मैं अहङ्कार वश नहीं कह रहा हूँ किन्तु लोक मर्यादा तथा शिष्टाचार की रक्षा के हेतु ही कहता हूँ कि यह निर्लज्ज शंकर सब लोकपालों की कीर्ति को मिट्टी में मिला रहा है। इसने अहङ्कार वश सत्पुरुषों के आचरण को भी धूल में मिला दिया है। मैंने भोला शङ्कर सत्पुरुष समझ कर अपनी सुन्दर कन्या सती इसको ब्याह दी। इस नाते से भी यह मेरे पुत्र के समान हुआ। इसको उठ कर मेरा सम्मान करना चाहिये था। मुझे प्रणाम करना चाहिये था। किन्तु इसने ऐसा नहीं किया। मेरी इच्छा न होते हुए भी इस अपवित्र, भ्रष्ट कर्म करने वाले, घमण्डी धर्म की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले, भूत, प्रेत के साथी इस नङ्ग धड़ङ्ग पागल को मैंने अपनी कन्या दे दी। यह शरीर में भस्म लगाता है। कण्ठ में नर मुण्डों की माला पहिनता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

यह तो केवल नाम मात्र का शिव है। वैसे अमङ्गल रूप है। यह बड़ा मत वाला; तमोगुणी है। मैंने अपने पिता ब्रह्माजी के कहने से अपनी परम सुन्दरी कन्या इसे देदी। श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! दक्ष प्रजापति ने सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषि महर्षियों के सम्मुख सदा शिव भगवान् शंकर का इस प्रकार अपमान किया और उन से बुरा भला कहा। भगवान् शंकर चुपचाप बैठे हुए निरुत्तर भाव से सुनते रहे। यह देखकर दक्ष प्रजापति का क्रोध और भी बढ़ गया और वे महादेव जी को शाप देने के लिए उद्यत हो गये। उन्होंने श्राप दिया कि इस शिव को इन्द्र, उपेन्द्र, आदि बड़े बड़े देवताओं के साथ यज्ञ का भाग न मिले। उन्हें ऐसा करने से सब ने रोका किन्तु उन्होंने किसी की न सुनी और शाप देकर घर को चले गये। जब महादेवजी के गण नन्दीश्वर को शाप का पता चला तब उसने दक्ष को शाप दिया और बोले—जो नीच, अभिमान वश भगवान् शंकर से बैर करता है वह मूर्ख दक्ष तत्व ज्ञान से हीन हो जावे यह दक्ष यज्ञादि अनुष्ठान करता रहता है किन्तु फिर भी पशु के समान है इस लिये यह स्त्री लम्पट हो और इसका मुख बकरे के समान हो जावे। जो इसके अनुयायी हों, और भगवान् शंकर से द्वेष करते हों वे जन्म मरण के चक्कर में पड़ते रहें। शंकरजी से बैर करके कर्मकाण्ड करके भक्ष्याभक्ष्य अन्न गृहण करें तथा संसार में भीख माँगते फिरें। नन्दीश्वर का ऐसा घोर शाप सुनकर भृगु जी ने यह शाप दिया कि शिव भक्त शास्त्रों के विरुद्ध कर्म करने वाले तथा पाखण्डी हों। उन्हें सुरा अति प्रिय होवे।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! भृगु मुनि के ऐसे घोर शाप को सुन कर भगवान् सदा शिव कुछ खिन्न से होकर अपने अनुचरों के साथ वहाँ से चले आये। उन प्रजापतियों ने एक सहस्र वर्षों में उस यज्ञ को पूर्ण किया और प्रयाग में यज्ञान्त स्नान कर के अपने २ घरों को चले आये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

॥ तीसरा अध्याय ॥

सती का दक्ष प्रजापति के गृह जाना।

दोहा—पिता यज्ञ सुन कर सती, मनमें अति हरषाय।
करि उल्लंघन पति बचन, पहुँची पितुगृह जाय॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी दक्ष प्रजापति तथा भगवान शङ्कर में परस्पर बैर बिरोध बढ़ता ही गया। कुछ काल पश्चात् ब्रह्माजी ने दक्ष को सब प्रजापतियों का स्वामी बना दिया। इस कारण दक्ष का गर्व और अधिक बढ़ गया। उसने अनेकों यज्ञ किये पहले बाजपेय यज्ञ किया फिर बृहस्पति यज्ञ किया। उस यज्ञ में सभी देवर्षि, ब्रह्मर्षि, ब्रह्मनिष्ठ महा पुरुषों को निमन्त्रित किया। सभी देवता पितर आदि अपनी अपनी गृहणियों के सहित बड़े आदर सत्कार से पधारे। इस समय आकाश में विमानों को जाते हुये देख कर दक्ष प्रजापति की पुत्री सती ने इसका कारण जानने की इच्छा की सती ने देखा असंख्यों विमान कैलाश के निकट हो कर जा रहे हैं जिनमें अति सुन्दरी, गन्धर्व तथा यक्षों की स्त्रियाँ रत्नभूषणों से सुसज्जित होकर अपने अपने पतियोंके साथ जारही हैं। उन्होंने आश्चर्य मय होकर इस का कारण शंकरजी से पूछा और बोली—हे देवाधि देव! मैंने सुनाहै कि मेरे पिता तथा आपके श्वसुर दक्ष प्रजापति ने एक बड़ा भारी यज्ञ किया है। मुझे प्रतीत होता है कि ये देवता, यक्षगन्धर्व अपनी अपनी पत्नियों सहित सज धज कर तथा विमानों में बैठकर वहीं जारहे हैं। वहाँ पर अन्य सम्बन्धी भी अपने इष्ट मित्रों के साथ तथा मेरी बहिनें भी अपने पतियों के साथ अवश्य ही पधारी होंगी। मेरी इच्छा है कि मैं भी आपके साथ पिता के यज्ञ में जाकर अपने पिता माता के उपहार को स्वीकार करूँ। मेरा मन माता पिता, बहिनों मौसियों आदि को देखने के लिए बड़ा इच्छुक है। हे भगवन्! आप संसार की उत्पत्ति कर्त्ता हैं। यह त्रिगुणमयी सृष्टि आप ही में विराजमान है किंतु मैं स्त्री जाति होने से आप के तत्व ज्ञान से अज्ञान हूँ। इसी कारण अपनी जन्म भूमि देखने के लिये मैं अति उत्सुक हूँ, हे पतिदेव! बहुत सी स्त्रियाँ जिनका मेरे पिता दक्ष से कोई नाता नहीं है किन्तु वे भी अपने पतियों के साथ उस यज्ञ की शोभा देखने के लिये बड़े

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आनन्द से जा रही हैं। मेरे तो वे पिता हैं। मुझे तो अवश्य जाना चाहिये आप यह कहेंगे कि बिना बुलाये वहाँ नहीं जाना चाहिये तो इसके लिए यह है कि पति, गुरु, माता, पिता, तथा इष्ट, मित्रों के यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं। हे कृपानाथ ! आप मुझ दासी पर कृपा कर के मुझे वहाँ जाने की आज्ञा अवश्य दीजिये।

श्री मैत्रेयजी बोले—सती को अपने पिता के यहाँ जाने की उत्कण्ठा तथा उत्सुकता देखकर शंकर जी को दक्ष प्रजापति के पूर्व वैमनस्य का ध्यान हो आया और उसके दुर्वचनों का स्मरण करके हँसते हुये बोले-हे प्रिये ! तुम्हारा यह कथन सत्य है कि गुरु, माता, पिता, तथा बन्धुजनों के यहाँ बिन बुलाये भी जा सकते हैं, किन्तु यह तभी हो सकता है जब उन से कोई द्वेष भाव न हो। उस दक्ष प्रजापति को अति अभिमान है उसका विवेक अभिमान के कारण नष्ट हो चुका है। सत्पुरुषों के छः गुण तप, धन, बल, युवावस्था तथा उच्च कुल होते हैं। और नीच पुरुषों में ये ही अवगुण बन जाते हैं। उन्हें इन गुणों की प्राप्ति से अहंकार बढ़ जाता है। ऐसे अभिमानी तथा अनादर करने वाले सम्बन्धी के यहाँ कदापि न जाना चाहिये। अस्त्र के घावों की पूर्ति तो कुछ काल में ही हो जाती है किन्तु कुवचनों से भिदे हुए मर्म स्थानों में जो घाव उत्पन्न हो जाते हैं उन की पीड़ा कभी दूर नहीं होती है। यह मैं जानता हूँ कि तुम प्रजापति की प्रिय पुत्री हो किन्तु मेरे आश्रय होने के कारण तुम को भी वह अपमान जनित दृष्टि से देखता है। इस लिये तुम्हें वहाँ जाने पर सम्मान प्राप्त नहीं होगा हे सुन्दरी ! तुम यह कहोगी कि आपने मेरे पिता का आदर क्यों नहीं किया था ? तो हे सुन्दरी ! तत्त्व ज्ञानी परमेश्वर के अतिरिक्त किसी को प्रणाम नहीं करते तथा मस्तक नहीं झुकाते वे तो केवल भगवान् वासुदेव को ही अपना सिर झुकाते हैं तथा उन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे देहाभिमानियों के सम्मुख कभी नम्रता प्रकट नहीं करते हैं। जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, उसमें वासुदेव का वास नहीं होता है। जिस अन्तःकरण में वासुदेव का वास नहीं होता है उसके लिये मस्तक नहीं झुकाया जाता है। मैं केवल शुद्ध चित्त से भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन करता रहता हूँ। इसलिये हे सुन्दरी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मैंने उनका कोई तिरस्कार नहीं किया उन्होंने ही कटु वचनों से मेरा अनादर किया था। दक्ष प्रजापति तुम्हारे पिता हैं किन्तु मेरे शत्रु होने के कारण तुम को वहाँ नहीं जाना चाहिये और न उन के अनुयायियों को देखने की इच्छा करनी चाहिये।

हे प्रिये ! तुम को मेरी बात अवश्य माननी चाहिए यदि ऐसा न करोगी तो इसका फल तुम्हारे लिए उत्तम न होगा। ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर शान्त हो गये।

॥ चौथा अध्याय ॥

दोहा—दक्ष प्रजापति ने कियो, निज पुत्री अपमान।
सती यज्ञ में जल मरी, सह्यो न मान कुमान॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! सती की अपने पिता दक्ष प्रजापति के यहाँ जाने की प्रबल इच्छा देखकर शंकर जी ने बिचारा कि यदि सती को न जाने दिया जायगा तो यह प्राण त्याग देगी और जाने पर भी प्राण त्यागने की सम्भावना है। सती जी व्याकुल होकर कभी द्वार पर आतीं कभी अन्दर लौट जातीं वे अति चंचल हो उठीं, तथा अनमानी सी होने लगीं। अपने स्वजनों को देखने की प्रवल इच्छा के कारण उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे, तथा शरीर काँपने लगा और शंकर जी की ओर रोष पूर्ण दृष्टि से देखने लगी मानों उन्हें भस्मकर देंगीं। सती की यह दशा देख कर शंकर जी ने काल की गति को ही इसका मुख्य कारण समझा तथा होन हार प्रवल समझ कर उन्होंने अपने हजारों सेवक तथा बाहनों सहित सती को दक्ष के यहाँ भेज दिया। भगवान् शंकर के बाहन बृषभराज आगे आगे चल रहे थे। तथा अन्य पार्षद अपने २ वाहनों पर उनके पीछे चल रहे थे। सती बैल पर सवार थीं, उन के साथ मैंना (पक्षी), गद, दर्पण तथा कमल इत्यादि क्रीड़ा की सामिग्री थी। चँवर, श्वेत छत्र दुन्दभी, शङ्ख, माला आदि सभी सङ्गीत तथा नृत्य का सामान उनके साथ था।

सती कुछ ही काल में अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में पहुँच गईं वहाँ पर वेदज्ञ ब्राह्मण अपने ऊँचे स्वरों से वेद ध्वनि कर रहे थे। यज्ञ मण्डप अनेकों प्रकार की सामिग्री से सम्पन्न था। उनकी शोभा अद्वितीय थी।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सती को देखकर उन की माता और बहनें अति प्रसन्न हुईं और गद्गद् कण्ठ से उन्हें छाती से लगाया किन्तु दक्ष प्रजापति ने सती को देखते ही कुदृष्टि कर के मुँह फेर लिया। सती अपने इस अपमान को न सह सकीं। उन्हें माता मौसियों बहिनों तथा अन्य स्वजनों के दिए हुए उपहार कुछ भी अच्छे न लगे।

जब सती जी ने यज्ञ मण्डप में जाकर यह देखा कि यज्ञ में मेरे पति भगवान् शंकर को कोई भाग नहीं दिया गया है तब उन्हें अति क्रोध आया। ऐसा प्रतीत होने लगा मानों उन के क्रोध से सब लोक नष्ट हो जावेंगे। दक्ष के इस अभिमान को तथा शिवजी के साथ किये हुए द्वेष भाव को वे अधिक न सह सकीं। सती जी के अपमान को देख कर उन के सेवक दक्ष प्रजापति को मारने के लिए दौड़े किन्तु सती ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। और वे यज्ञ में आकर इस प्रकार लड़खड़ाती हुई वाणी में बोलीं—पिता जी! इस संसार में भगवान् शंकर से बढ़कर कोई देव नहीं है। इस लिए उनको देवाधिदेव महादेव कहते हैं। वे तत्वज्ञानियों से श्रेष्ठ तथा सब के प्रिय हैं। वे किसी प्राणी से बैर नहीं करते हैं। हे पिताजी! आपके अतिरिक्त उन से कोई भी शत्रुता नहीं करता है। सत् पुरुष किसी के गुण देख कर कभी उन से द्वेष नहीं करते और न उन में अवगुण ही देखते हैं। वे सदा गुणों को ही देखते हैं। उस के अवगुणों पर दृष्टि नहीं करते। वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो दूसरों के थोड़े से गुण को भी विशेष गुण मानते हैं। किन्तु आपने उन सर्व शक्तिमान भगवान् शंकर को दोषी ठहराया है। जो मूर्ख मनुष्य इस शरीर को ही आत्मा मान बैठते हैं वे ही सदा महा पुरुषों की निन्दा करते हैं। महापुरुष उनके दोषों पर कोई ध्यान नहीं देते किन्तु उनकी चरणरज उन्हें स्वयं नष्ट कर देती है। भगवान् 'शिव' का इन दो अक्षरों का नाम सम्पूर्ण कल्याणों का करने वाला है एक बार भी अनायास ही मुख से निकलने पर सम्पूर्ण पापों को उसी क्षण नष्ट कर देता है। किन्तु ऐसे मङ्गल मय भगवान् शिव से आप शत्रुता करते हैं। आप अवश्य ही अमङ्गल स्वरूप हैं। जिनके चरण कमलों का रस पान सदा ब्रह्मादि देवता जिनको कि आप यज्ञ में प्रसन्न कर रहे हैं करते रहते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वे सकाम पुरुषों को इच्छित फल देते रहते हैं। आप कहते हैं कि वह केवल नाम के शिव हैं और वे अशिव तथा अमङ्गल रूप हैं। मुण्ड माला, चिता को भस्म तथा जटाजूट रखाये भूत, पिशाचों के साथी हैं। तो क्या आप ब्रह्मा, इन्द्रादि से भी अधिक ज्ञानी हैं। वे उनकी यह अशिवता नहीं जानते जो उनके चरणों की रजको नित्य अपने सिर पर रखते हैं। आपही उनकी अशिवता को भली प्रकार जानते हैं। केवल यह आपकी अज्ञानता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो कोई अपने स्वामी की निन्दा सुने वह उस निन्दा करने वाले को अवश्य दण्ड दे। यदि दण्ड देने की शक्ति न हो तो कानों में उँगली डाल कर शीघ्र वहाँ से उठ दे और यदि शक्ति हो तो उसकी जीभ काटले। इसके लिए यदि प्राणों को न्यौछावर करना हो तो प्राण भी त्याग दे। अब मैं आप से उत्पन्न इस शरीर को अवश्य त्याग दूँगी। क्योंकि आप के रक्त से यह शरीर अपवित्र है। मनुष्य दूसरे के धर्म की निन्दा न करे। अपने ही धर्म में रत रहे। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों ही धर्म के मार्ग उत्तम हैं। वेद ने दोनों ही मार्गों को उत्तम बताया है। आप प्रवृत्ति मार्ग (यज्ञ, यज्ञादि) को उत्तम मानते हैं किन्तु भगवान् शंकर तो इन दोनों मार्गों से भी परे परःब्रह्म रूप हैं। उन्हें तो किसी भी कर्म के करने की आवश्यकता नहीं है। आप आत्म ज्ञानी भगवान शङ्कर का अपराध करने वाले हैं। इसका उचित दण्ड मैं अपने शरीर को त्याग कर अवश्य दूँगी। क्योंकि शंकर जी हँसकर जब मुझे दक्ष कुमारी कहेंगे तो अवश्य लज्जा आयेगी। इस प्रकार कह कर सती मौन हो गईं तथा उत्तर दिशा की ओर मुँह कर के बैठ गईं। उन्होंने आचमन से अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके पीले वस्त्र से शरीर ढक लिया। नेत्र बन्द करके प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान वायु को एक करके नाभि चक्र में स्थापित किया तत्पश्चात उदान वायु को नाभि चक्र से ऊपर ले जाकर शनैः शनैः हृदय चक्र में बुद्धि के साथ स्थित किया फिर उदान वायु को ऊपर उठाकर कण्ठ मार्ग के द्वारा हृदय से भृकुटियों के मध्य में स्थापित किया। फिर भगवान शङ्कर के चरणों में अपना ध्यान लगा कर योग मार्ग के द्वारा वायु तथा अग्नि तत्व को धारण करके शरीर को अपने तेज से भस्म
In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर दिया सती का निर्दोष शरीर जिस में दक्ष अभिमानी का रक्त था। उसे योगाग्नि ने जला दिया। सती के इस प्रकार देह त्याग पर सम्पूर्ण उपस्थित देवता, ऋषि महर्षि तथा ऋत्वजों को बड़ा आश्चर्य हुआ वहाँ पर भयंकर कोलाहल तथा हाहाकार मच गया। सबने दक्ष को बुरा भला कहा शंकर जी का द्रोही होने के कारण उस का अपयश होने लगा।

जब शिवजी के पार्षदों ने सती के प्राण त्याग को देखा तब वे अति कुपित हो कर अपने अपने अस्त्र शस्त्रों के साथ दक्ष को मारने के लिए दौड़ पड़े। जब भृगुजी ने यज्ञ में विघ्न देखा तब उन्होंने (अपहन्त रक्ष) मन्त्र से दक्षिणाग्नि में आहुति डाली जिसके प्रभाव से यज्ञ कुण्ड से ऋभु नाम के सहस्रों देवता उत्पन्न हो गए। उन्होंने ब्रह्म तेज से जलती हुई लकड़िकयाँ ले कर शिवजी के सेवकों पर आक्रमण किया और सम्पूर्ण सेवक गण उनके भय से इधर उधर भाग निकले।

—❀❀—

॥ पांचवाँ अध्याय ॥

दोहा—वीर भद्र ने जाय कर, कियो दक्ष यज्ञ नाश।
शिव द्रोही का जगत में, होवे इस विधि ह्रास ॥

श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी ! जब भगवान् शंकर जी को नारद जी द्वारा सती के भस्म होने तथा उनके सेवकों को दक्ष प्रजापति के यज्ञ से भगा देने का समाचार मालूम हुआ तब उनके क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने अति क्रोधित होकर अपनी एक जटा को नोच डाला, जो अग्नि तथा विद्युत के समान तेजोमय थी। उसे नोंच कर झट पृथ्वी पर पटका तथा भयंकर अट्टहास किया। उस से तत्क्षण एक विशालकाय भयंकर पुरुष प्रकट हुआ। उस का शरीर इतना लम्बा चौड़ा था कि वह आकाश को छूता था। उस के सहस्र भुजायें थीं। उस का श्याम रङ्ग था। तथा अग्नि के समान जलते हुए तीन नेत्र थे। उस पुरुष की दाढ़ें बिकराल तथा अति तीक्ष्ण थीं। उनकी लाल लाल जटायें अग्नि के समान थीं। कण्ठ में मुंड माला तथा हाथों में अस्त्र शस्त्र थे। उसने प्रकट होकर भगवान्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भूतनाथ से पूछा—हे देवाधि देव ! मुझे क्या आज्ञा है ? तब भगवान् शंकर ने कहा- हे वीर भद्र ! तू मेरे अन्श से प्रगट हुआ है इस लिये मेरे सम्पूर्ण पार्षदों का अधिपति हो कर शीघ्र ही दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जा और उसे नष्ट भ्रष्ट कर दे ।

हे विदुर जी ! भगवान् शंकर की आज्ञा प्राप्त करके वह वीरभद्र तुरन्त उनकी परिक्रमा करके दक्ष प्रजापति के यज्ञ की ओर हाथ में त्रिशूल ले कर दौड़े । उसके वेग को सहन करने में पृथ्वी असमर्थ थी । उसके सिंहनाद से सारा आकाश गूँज उठा वे साक्षात् संहारकारी रुद्र थे । उनके पीछे बहुत सेवक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर दौड़ पड़े । उनके पैरों के नूपर की भयंकर ध्वनि बजती जाती थी ।

जब दक्ष प्रजापति की यज्ञशाला में बैठे हुए सब ऋत्विज, ब्राह्मण, तथा अन्य सदस्यों ने सामने से आते हुए एक प्रलयकारी बवण्डर को आते देखा तो वे सब आश्चर्य में डूब गये । यह आँधी कहाँ से आई ? न तो यह लुटेरे डाकुओं का गिरोह है, और न गौओं के लौटने का ही समय है जिसके कारण यह धूल आकाश में छा रही है । फिर यह धूल कहाँ से आई ? दक्ष की पत्नियाँ कहने लगीं हो न हो पिता से अपमानित होकर सती के देह त्याग का समाचार सुन कर यह उपद्रव भगवान् शंकर जी के क्रोध से उत्पन्न हुआ है, जो हम सबको नष्ट करने के लिये इधर बढ़ा आ रहा है । अवश्य ही दक्ष प्रजापति के पाप का फल है और भगवान् शंकर जी के कोप का ताण्डव नृत्य है ।

दक्ष पत्नियाँ तथा यज्ञ मण्डप में बैठे हुए अन्य सभी उपस्थित गण जब इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि सहसा कुछ ही क्षण में वीरभद्र ने अपने अनुचरों सहित दक्ष प्रजापति के यज्ञ मण्डप को चारों ओर से घेर लिया । उस भयंकर उत्पात को देखकर दक्ष भी डर गये । भगवान् रुद्र के सेवकों ने आते ही यज्ञ मण्डप को उखाड़ना आरम्भ कर दिया । किसी ने खम्भे उखाड़े किसी ने कलश तोड़े किसी ने यज्ञ अग्नि में रुधिर की वर्षा कर दी, किसी ने यज्ञ शाला नष्ट कर दी, किसी ने सभा मण्डप अतिथी मण्डप नष्ट कर दिया । यज्ञ अग्नियों को बुझा दिया । किसी ने वेदी नष्ट

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भ्रष्ट कर दी। किसी ने स्त्रियों को डरपाया किसी ने मुनियों को डरा कर भगा दिया। किसी ने भागते हुए देवताओं को पीटा। मणीमान् पार्षद ने भृगु ऋषि को पकड़ लिया। वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति को बाँध लिया। चंडीश ने पूषा को बाँध लिया तथा नन्दीश्वर ने भगदेव को बाँध लिया। हे विदुरजी! भगवान् शंकर के सेवकों की भयंकर मार से सब देवता ऋषि ऋत्विज आदि भाग निकले किन्तु भृगुजी हवन करते रहे। वीरभद्र ने भृगुजी की दाढ़ी तथा मूछें उखाड़ लीं क्योंकि भृगुजी ने मूँछ हिला कर शंकर जी का अपमान प्रजापति की सभा में किया था। भगदेव को पृथ्वी पर पटक कर उस की आँखें बाहर खींच लीं। क्योंकि भगदेवजी ने महादेवजी के विरुद्ध दक्ष को सैन देकर संकेत किया था। पूषा के दाँत उखाड़ लिये क्यों कि शिवजी को जब दक्ष ने बुरा भला कहा था तब वह दाँत निकाल कर हँसने लगा था। तत्पश्चात् वीरभद्र दक्ष की छाती पर चढ़ कर उस का सिर अपने खड्ग से काटने लगे किन्तु उसकी त्वचा बड़ी दृढ़ थी वह तलवार से नहीं कटी तब उन्होंने उसके कटे हुए सिर को यज्ञ की जलती हुई अग्नि में डाल दिया। यह देख कर सभी भूत प्रेतादि अनुचर प्रसन्न होकर धन्य है ऐसा कहने लगे वीरभद्र ने क्रोधित होकर संपूर्ण यज्ञशाला में आग लगा दी। उस को नष्ट करके शंकर जी के पास कैलाश को चले गये।

॥ छटवाँ अध्याय ॥

दोहा—गये विरंच सुर साथ ले, शंकर जी के धाम।
करि प्रसन्न कैलाश पति, पूरन कीन्हें काम॥

श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुरजी! भगवान् रुद्र के सेवकों ने जब दक्ष प्रजापति के यज्ञ को इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर के देवताओं के अङ्ग प्रत्यङ्ग भी नष्ट भ्रष्ट कर दिये तब देवता लोग अति भयभीत होकर ऋत्विजों को साथ लेकर भगवान् ब्रह्मा जी के पास गये। उन्हें प्रणाम करके सारा हाल सुनाया। भगवान् ब्रह्मा तथा श्री नारायण अन्तर्यामी थे वे भविष्य के फल को जानते थे। अतः वे दक्ष के यज्ञ में नहीं गये थे। देवताओं से दक्ष प्रजापति के यज्ञ विध्वन्स सुन कर परम तेजस्वी ब्रह्मा जी बोले—हे देवताओ! शंकर जी परम समर्थ तथा महादेव हैं। ऐसे सामर्थवान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

यदि कोई दोष भी हो जाताहै तो भी उसकी उपेक्षा की जातीहै। तुम लोगों ने भगवान् शंकर के यज्ञ भाग को न दे कर उनका बड़ा अपराध किया है। तुमको चाहिये कि भगवान् शंकर के पैर पकड़ कर उन्हें प्रसन्न करो,क्योंकि वे भोलेनाथ शिव शंकर हैं। अति शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले हैं। दक्ष ने कटु बचन कह कर उनका अति अपमान किया था तिस पर भी सती को अपमानित करके शंकर जी की प्रिया का उन से वियोग करा दिया। यदि तुम यज्ञ को पुनः यथावत् आरम्भ करके समाप्त करना चाहते हो तो उन से क्षमा याचना करो। यह यज्ञ तो क्या है उनके क्रोधित होनेपर यह सारा विश्व भी नहीं बच सकता उनके प्रभाव को देवता तो क्या मैं भी नहीं जानताहूँ।

देवताओं को इस प्रकार समझा कर ब्रह्मा जी सब के साथ भगवान् शंकर के प्रियधाम कैलाश पर्वत पर गए उस कैलाश धाम पर अनेक प्रकार की औषधियाँ, तप, मन्त्र, योग, इत्यादि निवास करते हैं। गन्धर्व व अपसराएँ वहाँ पर नृत्य करती रहती हैं। ठण्डे व स्वच्छ जल के झरने नित्य झरते रहते हैं। यक्ष तथा सिद्ध पत्नियों का वह क्रीड़ा स्थल है। वहाँ अनेक प्रकार के पक्षी कोयल, मोर-भ्रमर, इत्यादि गूँजते रहते हैं। वहाँ पर कल्प, वृक्ष, पारिजाति, मन्दार, ताल, तमाल, आदि के वृक्ष सघन छाया करते रहते हैं। चम्पा, गुलाब, मौलश्री, पन्नाग, इलायची आदि के सुगन्धित पुष्प मीठी मीठी सुगन्धि वायु के द्वारा फैलते रहते हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के वन्य पशु, बानर,शूकर, सिंह, कृष्णामृग आदि स्वच्छन्दता से घूमते रहते हैं। उस कैलाश पर्वत के चारों ओर नन्दा, अलकनन्दा नाम की दो नदियाँ बहती रहती हैं। वहाँ पर यक्ष राजकुवेर की अलकापुरी शोभायमान है। वहाँ पर सौगन्धिक नाम का बन अति रम्य है। हे विदुरजी! उन नन्दा तथा अलकनन्दा नदियों में रति को भी लजाने वाली देवाङ्गनाएँ अपने प्रियतमों के साथ जल बिहार करती हैं। उनके कुचों से लगा हुआ कुंकुम धुल कर जल को पीला कर देता है। तथा कुंकुम की सुगन्धि से मिश्रित होकर जल को वहाँ पर आने वाले हाथी अपनी हथनियों के साथ प्यासे न होने पर भी पीते हैं।अलकापुरी के पश्चात् देवगणों ने सौगंधिक बन को पार किया और उससे आगे भगवान् शंकर जी का

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

निवास स्थान एक वट वृक्ष दृष्टि आया। वह वट वृक्ष सौ योजन ऊँचा और ७५ योजन में फैला हुआ था। वहाँपर सूर्य की निरणें नीचे नहीं पहुँच सकती उस वट वृक्ष पर कोई पक्षियों का घोंसला भी नहीं रहता है। वहाँपर योग मुद्रा में बैठे हुए देवाधिदेव भगवान् शंकर जी को विराजमान देखा। भगवान् शंकर जी की मूर्ति अति सौन्दर्यमयी क्रोधहीन शान्ति थी वहाँ पर सनकादिक, सिद्धिगण के साथ यक्षराज कुवेर उन शंकर जी की सेवा कर रहे थे। भगवान् शंकर के कान्तिमान शरीर पर भस्म, मृगचर्म थी सिर पर जटा और दण्ड धारण किये हुए थे। उनके सुन्दर भाल पर 'बालेन्दु' (चन्द्रमा) शोभयमान था। वहाँ पर बहुत से ब्रह्मज्ञानियों के बीच में नारदजी बैठे हुए थे और भगवान् शंकर से ब्रह्म का उपदेश सुन रहे थे, भगवान् शंकर का बाँया चरण उन की दाहिनी जाँघ पर तथा उनका बांया हाथ बांये घुटने पर था। तर्क मुद्रा में बैठे हुए थे। काष्ठ की टेकनी का सहारा लेकर एकाग्र मन से ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे। उसी समय देवताओं सहित पितामह ब्रह्मा वहाँ पहुँचे उन्हें देखते ही भगवान् शंकर उठ खड़े हुए और सिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया। शङ्कर जी के निकट बैठे हुए ऋषि महर्षियों ने भी ब्रह्मा जी को प्रणाम किया।

श्री ब्रह्माजी नम्रता से बोले—हे देवाधिदेव! मैं आप के प्रभावको जानने में असमर्थ हूँ। आप परःब्रह्म हैं। जगत के स्वामी हैं। मकड़ी की भाँति आप ही इस जगत् रूपी जाले को फैला कर उसे अपने में लीन कर लेते हो। आप ही ने वैदिक कर्मों के विस्तार के लिये दक्ष को कारण मात्र बना कर यज्ञ कराया है। यह सम्पूर्ण मर्य्यादा आप ही ने बाँधी है। हे देव! दक्ष के शुभ कर्म में यह अशुभ फल क्यों कर प्राप्त हुआ। हे देवाधिदेव! आप यदि यह कहें कि यह मेरे क्रोध के कारण हुआ है यह भी ठीक नहीं है क्यों कि यह सारा विश्व आप ही में समाया हुआ है। आप में कभी भेद बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। जो कामासक्त पुरुष हैं तथा अज्ञानी हैं आप उन्हें भी नहीं मारते हैं क्यों कि वे तो स्वयं मरे होते हैं।

हे शम्भो! आप को यह जगत् की माया कभी नहीं छूती है इस कारण कर्म मार्ग में आसक्त पुरुषों के द्वारा कोई अपराध हो जाने पर भी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कृपा ही करते हैं। आप यज्ञ पुरुष हैं। इस लिये आप को यज्ञ का भाग पाने का पूर्ण अधिकार है, किन्तु इस दुर्बुद्धि दक्ष ने आप को यज्ञ भाग नहीं दिया था इसी कारण से उसके यज्ञ का नाश हुआ। अतः मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप इस अपूर्ण यज्ञ को फिर से पूर्ण करने की कृपा करें। और दक्ष पुनः जीवित हो उठें, भगदेव को पुनः नेत्र प्राप्त हो जावें। भृगुजी को पुनः दाढ़ी मूँछ प्राप्त हो जावें, तथा पूषा के दाँत ज्यों के त्यों ठीक हो जावें जिन जिन देवताओं के अङ्ग भङ्ग हो गए हैं वे भी ठीक हो जावें। यज्ञ का शेष भाग आप का भाग होगा, और उसी भाग से आप यज्ञ को पूर्ण कीजिये।

॥ सातवाँ अध्याय ॥

भगवान् शङ्कर के द्वारा दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पूर्ति

दोहा—दक्ष प्रजापति ने कियो, शिर धर चरण प्रणाम।
कीन्हों पूरन यज्ञ तब, शिव शङ्कर भगवान्॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे प्रिय विदुर जी! ब्रह्माजी ने भगवान् शङ्कर की इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न हो कर कहा—

हे जगत् के कर्ता ब्रह्मा जी! मैं दक्ष जैसे दुर्बुद्धि अज्ञानी पुरुषों के दोषों की ओर कभी ध्यान नहीं देता हूँ और न उनकी कभी चर्चा ही करता हूँ केवल मैंने उसे उपदेश रूप में यह नाम मात्र का दण्ड दे दिया है, जिससे उस का अहंकार नष्ट हो जावे। उस का सिर यज्ञ की अग्नि में जल गया है, अतः उसके बकरे का सिर जोड़ दिया जावे। भगदेव को मित्र देवता के नेत्र दिये जाते हैं उनके नेत्रों से अपना यज्ञ भाग देख सकता है। पूषा के दाँत नष्ट हो गये हैं, अतः वह दक्ष के दाँतों से अपना भोजन करे। शेष देवताओं के अङ्ग ज्यों के त्यां ठीक हो जावें। जिन याज्ञिकों की भुजायें नष्ट हो गई हैं, वे अश्वनीकुमारों की भुजाओं से काम लें, जिनके हाथ कट गये हैं, वे पूषा के हाथों से अपना कार्य करेंगे। भृगुजी की दाढ़ी मूछें बकरे के समान उत्पन्न हो जायें।—

मैत्रेयजी बोले—हे विदरजी! भगवान् शङ्कर के ऐसे बचन सुन कर सब ऋषि प्रसन्न हुए और सब देवताओं ने भगवान् शङ्कर से दक्ष के यज्ञ में

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पधारने के लिए विनय की तब भगवान् शंकर सब देवताओं तथा ब्रह्मा जी के साथ दक्ष प्रजापति के यज्ञ में आये। भगवान् शंकर ने अपने कथनानुसार यज्ञ पशु बकरे का सिर दक्ष प्रजापति के लगा कर जोड़ दिया। दक्ष जी इस प्रकार बैठे हो गये मानों सोकर जगे हों। उन्होंने गद्‌गद् कण्ठ से भगवान् शंकर की प्रार्थना की। उन्हें अपनी पुत्री सती का स्मरण हो जाने के कारण उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। दक्ष जी बोले—हे जगत्पते! मैं आपका अपराधी हूँ आपने मुझे उत्तम मार्ग पर लाने के लिये ही यह दण्ड रूपी उपदेश दिया है।

हे प्रभो! आप तो पापियों को भी नहीं त्यागते हैं, फिर मुझ जैसे उत्तम कर्म करने वाले को कैसे त्याग सकते हैं। आप ही ब्रह्मरूप तत्व ज्ञान के देने वाले हैं। आप ही रुद्ररूप होकर संहार करते हैं। मेरी प्रवृत्ति केवल कर्मकाण्डों में ही होने से मैं तत्व मय ज्ञान से अनभिज्ञ हूँ इसी कारण मैं आपके स्वरूप के तत्व को न जान सका। मैं अपने अपराध के कारण नीच योनियों में जाने वाला था, आपने मुझ दीन पर दया करके उन नरकों से बचा लिया। मैं आपको प्रसन्न करने में अपने को अयोग्य पाता हूँ केवल आप ही मुझ पर दया करके प्रसन्न होवें।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! दक्ष प्रजापति ने जब इस प्रकार भगवान् शंकर की अनुनय विनय के साथ प्रार्थना की, तब वे अति प्रसन्न हुए और दक्ष के यज्ञ को पूर्ण किया। यज्ञ की पूर्णाहुति के लिये ब्राह्मणों ने तीन पात्रों में चरु तैयार किया। दक्ष प्रजापति ने ज्यों ही शुद्ध चित्त से भगवान यज्ञ पुरुष का ध्यान किया त्यों ही भगवान प्रगट हो गये। उनकी कान्ति अनेक सूर्यों के समान थी। वे गरुड़ पर सवार थे। उनका श्याम वर्ण था, अष्टभुजायें, शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा अस्त्र शस्त्र धारण कियेहुए थे, देदीप्यमान मुकुट सिर पर पहिने हुए उनके श्रीविग्रह की छटा अनुपम थी। पार्षद गण सफेद दूध के फेन के समान पंखा चँवर ढुला रहे थे तथा श्वेत छत्र शोभायमान था। भगवान् के पधारने पर ब्रह्मा, शिव, दक्ष प्रजापति तथा इन्द्रादि देवताओं ने प्रार्थना करना आरम्भ किया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दक्ष बोले--हे भगवन् ! आपकी माया अतीत है। मुझ जैसे अज्ञानी उसे कैसे समझ सकते हैं। जब आपकी कृपा हो तभी आपकी उस दुस्तर माया से पार हो सकते हैं। ऋत्विजों ने कहा--हे प्रभो नन्दीश्वर के शाप से हमारी बुद्धि कर्मों में ही रत रहती है, अतः हम कर्मों को ही प्रधान मान कर आपकी प्रसन्नता के लिए यज्ञ करते हैं, और उसी को आपका रूप मानते हैं।

भगवान् शंकर बोले—हे देवाधि देव ! अज्ञानी पुरुष मुझे आचार भ्रष्ट कहते हैं। किंतु आपकी आज्ञा से मैं उनका कुछ भी बुरा नहीं मानताहूँ सदा आप ही के चरणों में रत रहता हूँ।

भृगुजी बोले—हे प्रभो ! आपकी माया के परदे के कारण यह आत्म-ज्ञान नष्ट सा हो गया है। इसी कारण देहाभिमानी पुरुष तत्व से आपको नहीं पहचानते हैं किन्तु फिर भी आप अपने भक्तों पर दया करके उन पर प्रसन्न रहते हैं इस लिए आप मुझ पर कृपा करके प्रसन्न हूजिये।

ब्रह्माजी बोले—हे प्रभो ! इन द्विजों के द्वारा पुरुष पदार्थों को अलग अलग रूप में देखता है। यह पदार्थ वास्तव में आपका स्वरूप ही है। वह सब इन्द्रियों का ही विषय है। इस कारण आप माया से परे हैं। इन्द्र ने कहा--हे प्रभो ! आपका विग्रह जो अष्टभुजा तथा आयुधों से युक्त है दैत्यों का संहार करने वाला है, और हमको आनन्द देने वाला है यह आपका स्वरूप सत्य तथा नष्ट न होने वाला है। याज्ञिकों की पत्नियाँ बोलीं-हे यज्ञ मूर्ते ! भगवान् शंकर के कुपित होने पर यह यज्ञ नष्ट होगया था। किंतु अब उन्होंने प्रसन्न हो कर उसे पूर्ण किया है। अतः आप अपनी पवित्र दृष्टि से उसे देखिये।

ऋषियों ने कहा—हे पुरुषोत्तम ! आप कर्म करते हुए भी अकर्मा हैं उनमें लिप्त नहीं होते हैं दूसरे मनुष्य नित्य उनकी उपासना करते हैं किन्तु लक्ष्मी जी नित्य आपके पास रहते हुए भी आपके पास रहते हुए भी आप उनसे अलग से ही रहते हैं।

सिद्धों ने कहा—हे प्रभो ! हमारा यह मन आपकी विशुद्ध अमृतमयी कथा पान करने में लगा रहता है। यह मन ब्रह्मानन्द में मग्न रहने के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

कारण संसार सागर में नहीं डूबता है और न त्रय ताप ही उसे जला सकते हैं।

दक्ष की पत्नियों ने कहा—हे परमेश्वर! हम आपको नमस्कार करती हैं आप लक्ष्मी जी सहित हमारी रक्षा करें। आप के बिना यज्ञ की पूर्णाहुति नहीं है और न यज्ञ पूर्ण ही होता है।

लोकपालों ने कहा—हे प्रभो! यह सारा जगत आप के द्वारा दृष्टिगोचर होता है। आप हमारे हृदय में विराजमान रहते हैं। यह अशुद्ध इन्द्रियाँ आप को नहीं देख सकती हैं। आप इस जगत से परे हैं। किन्तु फिर भी इस जगत में दृष्टि गोचर होते हैं। यह आप की लीला है।

योगेश्वरों ने कहा-हे जगत पते! जो आत्म ज्ञानी तत्व से सम्पूर्ण विश्व में तथा अपने में कोई भेद न देखकर सब को सम भाव से देखता है वह आप को अति प्रिय है। जो प्राणी आप की सेवा न करके दूसरों की सेवा करते हैं। आप उन पर भी कृपा करते हैं इस जगत को आप अपनी माया से रचते हैं, तथा संहार करते हैं आप ही विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं हम आपको नमस्कार करते हैं।

वेदों ने कहा—हे प्रभो! धर्म मर्यादा के लिये आप इस शुद्ध स्वरूप को स्वीकार करते हैं। आप निर्गुण हैं। आप के भेद को ब्रह्मादि कोई भी नहीं जानता। आप के लिए नमस्कार है।

अग्निदेव बोले—हे प्रभो! मैं आप ही का तेज हूँ तथा देवताओं का मुख हूँ यज्ञों की आहुति देवताओं तक पहुँचाता हूँ अग्निहोत्र दार्श, पौर्णमास, 'चातुरमास्य' यज्ञपशु और सौम ये पाँचों यज्ञ आपही के रूप हैं। आश्रावय, अस्तु श्रौष्ट, यजे, ये यजामहे, तथा वष्ट् इन यजुर्वेद के मन्त्रों से आप का ही पूजन किया जाता है मैं आपको नमस्कार करता हू।

देवताओं ने कहा—हे भगवन्! आप सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए हैं तथा कल्प के अन्त में आपने प्रलय करके सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में लीन करके क्षीर सागर में शयन किया था। हे प्रभो! महलोक के रहने वाले सिद्धगण जो आपके भक्त हैं वे ही भक्तों की रक्षा करते हैं।

गन्धर्वों ने कहा—ये देवता आदि सभी आपके अन्श हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust... Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विद्याधर बोले—हे देव ! यह जीव मनुष्य देह को प्राप्त करके देहाभिमान के कारण मैं मेरेपन का अभिमानकर बैठता है और वह दुर्बुद्धि विषयों में लिप्त हो जाता है। आपमें लीन रहने वाले ही मुक्ति को पाते हैं।

ब्राह्मणों ने कहा—हे प्रभो ! आप यज्ञ पुरुष हैं आप ने ही अग्नियेत्र यज्ञपात्र, देवता, पशु, घृत उत्पन्न किए हैं। आप ही ने बाराह रूप धारण करके इस पृथ्वी को रसातल से ला कर स्थापित किया है। हम आप को प्रणाम करते हैं।

श्री मैत्रेयजी बोले—जब सब देवताओं ने इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान् बोले—हे देवताओ ! संसार की उत्पत्ति करने वाला ब्रह्मा मैं ही हूँ। तथा महादेव मैं ही हूँ। मैं सर्वात्मा, सब का साक्षी, स्वयं प्रकाश उपाधि रहित ईश्वर हूँ। अपनी त्रिगुणमयी माया से ब्रह्मा विष्णु तथा शंकर रूप धारण करके जगत की सृष्टि पालन तथा संहार करता हूँ। मैं ही परःब्रह्म हूँ। जो अज्ञानी ब्रह्मा, विष्णु और शंकर तथा अन्य जीवों को भेद रूप से देखता है वह वास्तव में अज्ञानी है। जिस प्रकार शरीर के सब अङ्ग एक ही होते हैं उसी प्रकार यह सभी जाव मुझ से भिन्न नहीं हैं। ब्रह्मा; विष्णु तथा रुद्र तथा ये सम्पूर्ण जीव सब एक ही हैं जो इनमें भेद नहीं देखता है वही सच्चा आत्मज्ञानी मुझे प्रिय है श्री मैत्रेयजी बोले—भगवान के इस प्रकार कहने के पश्चात् दक्ष ने एकाग्र चित्त से भगवान शंकर की पूजा करके यज्ञ के शेष भाग को उन्हें प्रदान किया तथा यज्ञ समाप्त कर के अमृत स्नान किया। सब देवताओं ने उन्हें आशीर्वाद दिया और वे अपने अपने लोकों को चले गये।

हे विदुर जी ! दक्ष प्रजापति की पुत्री सती ने दूसरे जन्म में हिमालय की पत्नी मैंना के गर्भ से जन्म लिया। उस जन्म में भी उन्होंने शंकर जी को ही अपना पति बनाया। मैंने यह पवित्र चरित्र उद्धव जी के मुख से सुना था। शंकर जी का यह पवित्र चरित्र यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला तथा पापों को नष्ट करने वाला है। नित्य, प्रति इसका पाठ करने वाले भक्त की संसार वासना दूर हो जाती है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ आठवाँ अध्याय ॥

दोहा—ध्रुव चरित्र वर्णन कियो, मैत्रेयजी सुख पाय ।
विदुर देव सुनने लगे, मन में अति हरषाय ॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे प्यारे विदुरजी ! ब्रह्माजी के हम नौ पुत्र सनकादिक, नारद, ऋभु, हंस, अरुणी तथा यति ने गृहस्थआश्रम स्वीकार नहीं किया था। ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। अतः इनका कोई वंश नहीं चला। ब्रह्माजी के अधर्म नाम पुत्र की स्त्री का नाम मृषा था। उसके दम्भ पुत्र तथा माया कन्या उत्पन्न हुई। उस अधर्म के पुत्र पुत्री को निऋति ने अपने यहाँ रख लिया दम्भ तथा माया से लोभ तथा शठ उत्पन्न हुए। उनसे क्रोध हिंसा और कलह तथा उनकी बहिन गाली प्रगट हुई। उनसे भय तथा मृत्यु उत्पन्न हुई। भय और मृत्यु से यातना तथा नर्क उत्पन्न हुआ। हे विदुरजी अधर्म का यही वंश है। इसके सुनने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है क्योंकि उसक धारणा धर्म की ओर बढ़ जा है।

अब मैं ब्रह्माजी के पुत्र स्वायंम्भुव मनु के पुत्र वंश की कथा सुनाता हूँ। स्वायंभुव मनु की पत्नी शतरूपा के गर्भ से प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुये उनमें उत्तानपाद के सुनीति तथा सुरुचि नाम की दो भार्यायें थीं, सुनीति बड़ी रानी थी किंतु सुरुचि पर राजा का अधिक प्यार रहता था। सुनीति के ध्रुव नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और सुरुचि के उत्तम नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। एक समय महाराज उत्तानपाद ध्रुव को गोद में लिये बैठे थे कि उसी समय छोटी रानी सुरुचि वहाँ पर आई और उसने ईर्षा तथा क्रोध से युक्त होकर ध्रुव को राजा की गोद से झपट कर नीचे खींच लिया और उत्तम को गोद में बैठाती हुई बोली—हे मूर्ख ! तू राजा की गोद में बैठने का अधिकारी नहीं है। इनकी गोद में वह बालक बैठ सकता है जो मेरी कोख से उत्पन्न हुआ है। तू मेरी कोख से उत्पन्न नहीं हुआ है। इस कारण तू राजसिंहासन तथा राजा की गोद में बैठने योग्य नहीं है यदि तेरी इच्छा राजसिंहासन प्राप्त की है तो भगवान नारायण का भजन कर उनकी कृपा से जब तू मेरे गर्भ से उत्पन्न होगा तभी राजपद को प्राप्त कर सकता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! अपनी सौतेली माता सुरुचि के ऐसे कठोर बचन सुनकर ध्रुवको बड़ा क्रोध आया तथा चोटिल सर्प की भाँति फुफकारें मारता हुआ तथा लम्बी २ साँस लेकर सिसकता हुआ अपनी माता सुनीति के पास गया। सुनीति ने अपने बच्चे को इस दशा में देखकर व्याकुलता से गोद में उठा लिया और उसके रोने का कारण पूछने लगी। जब ध्रुव ने महल के सभी उपस्थित लोगों के सम्मुख अपनी माता सुनीति से सौतेली माता सुरुचि के इस दुर्व्यवहार का दुःख सुनाया तो सभी लोग अति दुःखी हुए। और माता सुनीति का साहस टूट गया। वह शोक से सन्तप्त होकर फूट २ कर रोने लगी। उसने रोते हुए अपने पुत्र को समझाया और बोली हे पुत्र! तुम किसी की इच्छा मत करो। जो दूसरों का बुरा चाहताहै भगवान् स्वयं उसका बुरा करता है। तुम्हारी सौतेली माता ने जो कुछ कहा है वह सब कुछ सत्य है। मैं तो उनकी टहलनी हूँ। तू मुझ दुर्भाग्यनी से पदा हुआ है इसलिये उत्तम के समान राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता है और न राजा की गोद में बैठ सकता है। यदि ऐसा चाहता है तो अपनी सौतेली माँ के लिये हुए उपदेशोंको ग्रहण करके भगवान् श्रीनारायण की आराधना करो। वे ही सम्पूर्ण मनोरथों का कार्य करनेवाले हैं। उन्हींकी आराधना से तुम्हारे परदादा ब्रह्माजीने परमपद प्राप्त किया है। और उन्हीं की आराधना से तुम्हारे दादा स्वायंभुव मनु ने अनेकों यज्ञ कर के उन्हें प्रसन्न किया है। सम्पूर्ण लौकिक तथा अलौकिक सुखों को देने वाले अन्त में मोक्ष देने वाले वे ही भगवान् नारायण हैं। उनके अतिरिक्त तुम्हारे दुखः को दूर करने वाला और कोई नहीं है।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! माता सुनीति के इन सार्थक बचनों को सुनकर ध्रुव को कुछ ज्ञान उत्पन्न हुआ। बुद्धिसे अपने चित्तको स्थिर करके पिता के नगर से चल दिये। ध्रुव के दृढ़ संकल्प को समझ कर नारद जी मार्ग में ध्रुव के निकट आये। नारद जी ने ध्रुव के सिर पर अपना पवित्र हाथ फेरा तथा बोले—हे बेटा ! तुम अभी पाँच वर्ष के हो और इधर कहाँ जाते हो। तुम को अभी खेल कूद ही में प्रसन्न रहना चाहिये। तुम माता के कहे हुए कटु वचनों का कोई ध्यान न करके अपने घर लौट

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding: ...

जाओ। अभी तुम्हारी अवस्था ही क्या है जो तुम ऐसे मान अपमान का ध्यान करते हो। मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार ही सुख दुःख तथा मान अपमान मिलता है। भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है। इसलिए जो कुछ भाग्य में है उसी पर सन्तोष करके अपने घर रहो। माता के उपदेश से तुम जिन भगवान् की प्राप्ति करना चाहते हो ये भगवान् आसानी से प्राप्त नहीं होते हैं उनकी आराधना बच्चों का खेल नहीं है बड़े २ योगीजन जन्म जन्मान्तर तक अनासक्त रहकर उनकी कठोर तपस्या करते हैं तब भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिए तुम व्यर्थ में ही कष्ट सहने के लिए कहीं मत जाओ और अपने घर लौट जाओ।

देवर्षि नारदजी के ऐसे मधुर बचन सुनकर ध्रुव बालक बोले—हे भगवन्! जिन मनुष्यों को सुख दुःख सताते हैं तथा जो सांसारिक भोगों की इच्छा करते हैं उन्हीं को क्लेश कष्ट पहुँचा सकते हैं उन्हीं लोगों के लिए ग्रह में रहना आराम दायक है, किन्तु मुझ जैसे मूर्ख की बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुँचती है। मैं क्षत्रिय हूँ मेरा स्वभाव भी क्रोधी है माता सुरुचि के वचन मेरे हृदय में बाण की भाँति पीड़ा दे रहे हैं। इस कारण आपके वे सुख दायक बचन मेरे हृदय को स्पर्श नहीं करते हैं भगवन्! आप मुझे तो भगवत् प्राप्ति का आसान सा साधन बताइये, जिसे प्राप्त करके फिर किसी की प्राप्ति की इच्छा नहीं रहती। आप ब्रह्मज्ञानी हैं, तथा ब्रह्माजी के पुत्र हैं। आपसे बढ़ कर उत्तम गुरु मुझे और कोई नहीं मिल सकता। मैं सौभाग्य से ही आपके दर्शन मुझे प्राप्त हुए हैं।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! छोटे से बालक ध्रुव की ऐसी ज्ञान भरी बात सुनकर नारदजी अति प्रसन्न हुए, तथा इस प्रकार बोले—बेटा ध्रुव! तुम्हारी माता सुनीति ने जो उपाय बताया है, वही उत्तम उपाय है। भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के हेतु उन्हीं का भजन करो। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों के देने वाले ही श्रीवासुदेव हैं। बेटा! अब तुम जमुना किनारे जाओ, वहाँ कालिन्दी के तटपर मधुवन में सदा भगवान् का निवास रहता है। वह स्थान श्रीहरि का निजधाम है वहाँ त्रिकाल स्नान करके यथा विधि आसन बिछाकर चित्त को स्थिर करना, फिर रेचक, पूरक, कुम्भक

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विधि से प्राणायाम द्वारा शनैः शनैः अपने मन इन्द्रियाँ तथा प्राण के दोष को दूर करके एकाग्रता अर्थात् चित्त (मन) को एक ही स्थान पर लगाये रखने का साधन करना। जब चित्त भली प्रकार स्थिर हो जाय और कुछ काल तक एक ही स्थान पर ठहरने लगे, इधर उधर दूसरे विचारों में न डोले, तब उसे भगवान् के स्वरूप के ध्यान में लगा देना।

बेटा ! भगवान् के स्वरूप का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए भगवान् मेरी ओर प्रसन्न बदन से देख रहे हैं वे मेरी ओर मुस्करा रहे हैं, मुझे वर देने आये हैं। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग, अति सुन्दर तथा मनोहारी हैं। उन की युवावस्था है शरीर की गठन अति सुन्दर तथा सुडौल है। अति बलशाली हैं। उनके शिर पर रत्न जटित मुकुट झिलमिला रहा है। कानों में मकराकृत कुण्डल हैं, करोड़ों सूर्यों के समान उनके मुख मण्डल की छटा चमचमा रही है। भक्तों के अतिरिक्त उनके मुख मण्डल की ओर अन्य कोई दृष्टि भी नहीं कर सकता है, उनका तेज अपार है। गोल मुखाकृति चित्त को खींच लेती है। केशर तथा कस्तूरी का तिलक शोभायमान है। कण्ठ में गज मुक्ताओं का हार तथा कौस्तुभमणि शोभायमान है। वक्षःस्थल पर वनमाला तथा श्रीवत्स का चिन्ह शोभा दे रहा है। उन्होंने मेघ वर्ण श्याम शरीर पर दुपट्टा पहना हुआ है, कटि भाग में पीताम्बर तथा करधनी शोभा पा रही है उनके चार भुजायें हैं, जिनमें भक्तों को अभय देने वाले आयुध शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म शोभा पा रहे हैं। उनकी भुजाओं में भुज दण्ड, बाजूबन्द कङ्कणादि बिभूषित हैं। उनके चरणों में नूपुर शोभा पा रहे हैं। उनके नख चन्द्र अति मनोहर हैं, उनके चरण तथा करतल लाल लाल हैं। उनके ओठों का रङ्ग बिम्बाफल के समान रक्त वर्ण है। इस प्रकार भगवान् की मङ्गलमयी मूर्ति का ध्यान स्थिर चित्त से करना चाहिये तथा जब तक सम्भव हो उसी मूर्ति पर ध्यान लगाये रखना चाहिये। इस प्रकार ध्यान लगाने से साधक का मन परमानन्द में मग्न हो जाता है फिर चित्त नहीं करता है कि वह लौट कर अन्यत्र डोले। हे बेटा ! इस प्रकार ध्यान करते हुए तुम को एक मन्त्र बताता हूँ उस का जप करते रहना चाहिए। वह मन्त्र है :—

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र का सात रात्रि तक जप करने से मनुष्य आकाश में घूमने वाले सिद्धों का दर्शन प्राप्त कर लेता है। देशकाल तथा स्थल के अनुसार जो पूजा की सामग्री प्राप्त हो सके उनसे नित्य ही भगवान् वासुदेवका पूजन करे। उनके पूजनमें इसी मन्त्रका प्रयोगकरकेषोडशोपचार से उनका पूजन नित्य करे। उनके पूजन में शुद्ध जल, पुष्प तथा जङ्गली फल फूल दूर्वा वल्कल तथा तुलसी का प्रयोग करें। सदा मौन रहे कन्द फल फूलका परिमित सेवन करे। तत्पश्चात् उनकी कथाओं व लीलाओं का मन ही मन चिन्तन करे। भगवान् की पूजा तथा अर्पण आदि ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, इस द्वादश अक्षर मन्त्र से ही करे।

हे ध्रुव! इस प्रकार भगवान् का पूजन तथा उनकी आराधना करने से वे अति प्रसन्न हो जाते हैं। और अर्थ धर्म, काम, मोक्ष को देते हैं। नारद जी का उपदेश ग्रहण करके ध्रुव ने उन की परिक्रमा की तथा मधु-वन की ओर चल दिये। नारदजी वहाँ से चल कर राजा उत्तानपाद के नगर में आये। राजा ने नारदजी का विधिवत् पूजन किया और उन्हें आसन बैठने को प्रदान किया।

तब श्रीनारदजी पूछने लगे—हे राजा! तुम्हारा चेहरा क्यों उदास हुआ है तुम उदास क्यों प्रतीत हो रहे हो क्या कारण है।

राजा ने कहा—हे ब्रह्मर्षि! मैं बड़ा नीच तथा निर्दयी हूँ, मैंने स्त्रीके वश में होकर अपने पाँच बर्ष के छोटे से बालकको घरसे निकाल दिया। हाय! वह नन्हा सा बच्चा न जाने कहाँ भूखा प्यासा घूमता होगा कहीं रोता होगा, उसे तो कोई भेड़िया ही उठा ले गया होगा। न जाने मेरी बुद्धि पर क्या परदा पड़ गया था उस बालक के अपमान पर मैंने कुछभी नहीं कहा मैंने उसका मन तनिक भी नहीं रक्खा-सौतेली माँ के दुर्व्यवहार से दुखी हो कर घर से निकल पड़ा है। वह मेरी गोदमें बैठाथा उसे उस पिशाचनी सौतेली माँ ने मेरी गोद से नीचे गिरा दिया और मैं बैठा देखता रहा इतना कह कर राजा के नेत्रों से अश्रु बहने लगे।

तब नारदजी बोले—हे राजा! तुम उस बालक की तनिक भी चिन्ता न करो जिसका रक्षक भगवान् है उसका कोई बाल भी बाँका नहीं

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर सकता है। वह बड़ा प्रभाव शाली बालक है। भविष्य में वह बालक अपने यश को सारी पृथ्वी पर फैलायेगा। वह सामर्थवान् है। अपने दादा मनु तथा परदादा ब्रह्मा के समान ब्रह्मज्ञानी तथा लोकपालों से पूजित होगा। उसके प्रभाव से तुम्हारा भी यश इस संसार में फैलेगा।

श्रीमैत्रेयजी बोले–हे बिदुरजी! देवर्षि नारद के ऐसे बचन सुन कर राजा उत्तानपाद के चित को कुछ शान्ति हुई किन्तु पुत्र शोक के कारण अहर्निशि चिंता मग्न रहने लगे। उधर बालक ध्रुव ने यमुना जी के तट पर मधुवन में जाकर स्नान किया और उस दिन पवित्रता के साथ बिना कुछ खाये पीये रात्रि व्यतीत की। तदुपरान्त नारदजी के बचनों के अनुसार मन को एकाग्र करके भगवान् नारायण की उपासना प्रारम्भ की। ध्रुव ने तीन तीन रात्रि के अनुसार अपना आहार आरम्भ किया। अर्थात् तीन तीन रात्रि व्यतीन होने पर कैथ तथा बेर खाकर निर्वाह करने लगे। इस प्रकार भगवान् की आराधना में एक मास समाप्त किया। दूसरे मास में ध्रुव छः छः रात्रि के अन्तर से शरीर निर्वाह के लिये केवल सूखे पत्ते खाकर भगवान् की उपासना की। तीसरे मास में नौ नौ दिन व्यतीत होने पर जल पीकर भगवान् का मनन किया। और समाधि योग में रहे। चोथे मास में बारह दिन के पश्चात् केवल वायु पीकर भगवान् के ध्यान में रहे और ध्यान योग द्वारा उनका पूजन किया। पाँचवे महीने के आरम्भ में ध्रुव ने अपनी श्वाँस को रोक कर एक पैर से खड़े होकर परब्रह्म का ध्यान किया उन्होंने अपनी श्वाँसादि को रोक कर मन को एकाग्र करके हृदय में स्थित भगवान् नारायण के स्वरूप का चिन्तन करना आरम्भ किया। उन्होंने महतत्व आदि एवं प्रकृति तथा पुरुष के आदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी परब्रह्म की आराधना की। उस समय उनके तेज से तीनों लोक कम्पायमान हो उठे। एक पैर से खड़े हुए ध्रुव के अँगूठे से पृथ्वी दब गई। ध्रुव संपूर्ण इन्द्रियों के द्वारा तथा प्राण वायु को रोक कर भगवान् नारायण का ध्यान करने लगे। उनकी श्वाँस के रोकने से तथा उनका संबन्ध सम्पूर्ण भूत प्राणियों में होने से सब को श्वासें रुक गई सम्पूर्ण लोकों में खलबली मच गई तथा श्वाँस प्रश्वास के रुक जाने से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

...Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तीनों लोकों में घबराहट उत्पन्न हो गयी। सम्पूर्ण देवता लोग लोकपालों के साथ भगवान् के पास गए।

देवताओं ने कहा—हे भगवन्! इस का क्या कारण है कि हम सब प्राणियों तथा स्थावर, जङ्गम आदि सभी का प्राणवायु रुक गया है। हम आपकी शरण में आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।

श्रीनारायण बोले—हे देवताओ! घबड़ाने की बात नहीं है। मेरे भक्त बालक ध्रुव ने अपनी पाँच वर्ष की अवस्था में ही तथा इतने अल्प काल केवल पाँच मास में ही कठिन तपस्या के द्वारा मुझे प्रसन्न किया है। जितने अल्पकाल में इस मेरे भक्त बालक ध्रुव ने मुझे प्रसन्न किया है, उतने काल में किसी ने भी तपस्या कर के मेरी प्राप्ति नहीं की है। वह मेरे में अभेद रूप से लीन हो गया है। और मैं विश्वात्मा हूँ इसी कारण उनके श्वांस रोकने से विश्व की सभी आत्माओं की श्वाँस रुक गई हैं अब तुम लोग निर्भय हो कर अपने २ लोक को जाओ। मैं अभी तुम्हारा कष्ट निवारण करने के लिए उस बालक ध्रुव के पास जाता हूँ।

॥ नवा अध्याय ॥

दो०—कीन्ह घोर तप कुँवर ने, बन में आसन मारि।
हो प्रसन्न ध्रुव से तभी, दिए दरश असुरारि॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! भगवान् नारायण से आज्ञा ले कर देवतागण स्वर्गलोक को गये। भगवान् गरुण पर सवार होकर ध्रुव जी के निकट मधुवन में आये। उस समय ध्रुव जी ध्यान योग से भगवान का ध्यान कर रहे थे। भगवान् की वह अपूर्व झाँकी हृदय कमल से सहसा लुप्त हो गई। ध्रुवजी ने घबराकर अपने नेत्र खोल दिए तब उन्होंने देखा कि जिस देदीप्यमान ज्योति के दर्शन मैं हृदय में कर रहा था वह साक्षात् मेरे सम्मुख खड़ी है। उन ज्योतिर्मय भगवान के दर्शन प्राप्त करके बालक बड़े आश्चर्य में आये, तथा प्रेमा वेग में विह्वल होकर उनके चरणों पर गिर पड़े। उनकी ओर एक टक निहारने लगे मानों उन्हें नेत्रों द्वारा पी जावेंगे। वे प्रभु के चरणों पर पड़े २ उनकी विनय करने लगे किन्तु अपने को असमर्थ सा देखकर घबराने लगे। तब उनके मन की बात सर्व

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर भगवान् ने अपने शंखको ध्रुव के कण्ठ से छुवा दिया। उस शंखके स्पर्श करते ही ध्रुवको अपूर्व ज्ञान उत्पन्न हुआ तथा भगवान् की स्तुति करने लगे।

ध्रुवजी कहने लगे—हे परमात्मा! आप ही विश्वात्मा हैं प्रत्येक प्राणी के घट २ में निवास करते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों में चेतन शक्ति उत्पन्न करते हैं। हे प्रभु! मैं आप को प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! आप एक हो कर भी अनन्त हैं यह सम्पूर्ण भूत प्राणी आप ही से उत्पन्न हुए हैं। आप मुझे अपने भक्तजनों का सङ्ग प्रदान कीजिये। जिनके सत्संग से आपके कथा मृत को पान कर के मत्त हो जाऊँगा। जो भक्तजन आप के कथामृत को नित्य निरन्तर पीते हैं वे सांसारिक विषय बासना स्त्री पुत्रादि में मोह नहीं करते हैं उनसे अलग रहकर सदा आप में रमते हैं। हे परमात्मा! मैं आप के स्थूल रूप को भली प्रकार जानता हूँ किन्तु आपके सूक्ष्म रूप को जो इस विश्व मोहिनी माया से परे है मैं नहीं जानता हूँ।

हे भगवन्! ब्रह्मरूप हो कर इस सृष्टि की रचना करते ही आप शुद्ध सत्वमय नित्य मुक्त तथा सब के साक्षी हैं। आपही सर्वज्ञ, निर्विकार, परमात्मा आदि अन्त और मध्य रहित षड्एश्वर्य से पूर्ण त्रिगुणमयी सृष्टि के स्वामी तथा माया से परे अखण्ड अनन्त अनादि ब्रह्म हो।

हे प्रभो! जो भक्तजन आपके परमानन्दमय स्वरूप का ध्यान निष्काम भाव से सदा करते रहते हैं उनके लिये ये साँसारिक भोग, राज्य लक्ष्मी आदि कुछ भी नहीं है। केवल आपके चरणों की आराधना सर्वोत्तम फल है। लेकिन फिर भी आप मुझ जैसे सकाम भाव से आराधना करने वाले प्राणियों की कामना पूर्ण करते रहते हैं।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! जब ध्रुवजी ने भगवान की प्रशंसात्मक स्तुति इस प्रकार की तब भगवान् बोले—हे राजकुमार! मैं तेरे अन्तःकरण की बात को जानता हूँ। तेरी सभी इच्छायें पूर्ण होंगी। तुझे वह दुर्लभ पद देता हूँ जो बड़े २ योगीजनों को भी प्राप्त नहीं होता है। जिस लोक को अभी तक कोई प्राप्त नहीं कर सका है तथा जिसके चारों ओर ज्योतिश्चक्र घूमता रहता है। तथा जिसके आधार पर यह सम्पूर्ण ग्रह नक्षत्र घूमते हैं प्रलयकाल में भी जिसका नाश नहीं होता है। नक्षत्रों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के साथ सप्तर्षि जिसकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं वह ध्रुवलोक तुमको प्राप्त होगा। इस लोक में भी छत्तीस सहस्र वर्ष तक पृथ्वी का शासन कर के तथा अनेकों दक्षिणा वाले बड़े २ यज्ञों द्वारा मेरी आराधना करेगा तुम्हारा भाई उत्तम शिकार में यक्षों द्वारा मारा जावेगा उस समय उसकी माता सुरुचि पुत्र विरह के कारण दावानल में भस्म हो जावेगी। तत्पश्चात् सर्वोत्तम ऐश्वर्य भोग कर अन्त समय में मेरे लोक को प्राप्त करेगा।

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी! बालक ध्रुव को ऐसा वर दे कर भगवान् नारायण अपने लोक को चले गये, भगवान् के दर्शन प्राप्त कर के उनके दर्शनों का संकल्प तो ध्रुव ने पूर्ण कर लिया किंतु उनने चित्तको शांति तथा विशेष प्रसन्नता प्राप्त न हुई। तथा वे अपने घर को लौट आये।

श्री विदुर जी बोले भगवन्! भगवान् के दर्शन प्राप्त करके भी हे ध्रुव जी को प्रसन्नता क्यों नहीं हुई उन्होंने इतनी छोटी अवस्था में यश पुरुष भगवान् को प्राप्त कर के भी अपने को कृत कृत्य क्यों नहीं माना।

श्री मैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी! अपनी सौतेली माता सुरुचि के वचनों से ध्रुवजी का इतना हृदय बिंधा हुआ था कि भगवान् के संमुख वर माँगने के समय उनको उन वचनों का ध्यान बना रहा। इसी कारण ध्रुवजी ने श्री हरि से मुक्ति माँगी। जब उन का वह मनोमालिन्य भगवान् की कृपा से दूर हुआ तब उन्हें इस बात का ध्यान आया और पछता कर कहने लगे आहा! जिस भगवान् के चरण रज की प्राप्ति के लिये सनकादिक बड़े बड़े तपस्वी तथा योगीजन तरसते रहतेहैं, तथा समाधि योग से जन्मजन्मान्तर तक उन की आराधना करने पर भी उन के दर्शन प्राप्त नहीं होते हैं उन श्री हरि को मुझ बालक ने छः मास में ही प्राप्त कर लिया किन्तु उनसे कुछ नहीं माँगा। केवल नष्ट होने वाला सांसारिक भोग ही मांगा मुझे तो मुक्ति माँगनी चाहिये थी। मेरी बालक बुद्धि ने मुझे घेर लिया मैंने नारद जी की आज्ञा का पालन नहीं किया। पहले विश्वात्मा भगवान् को प्रसन्न होना ही अति कठिन है। किन्तु वे मेरी तपस्या से प्रसन्न भी हो गये फिर भी मैंने नाशवान् संसार को माँगा। तथा अभिमान बढ़ाने वाला उच्च पद माँगा। ध्रुव जी इस प्रकार मन ही मन पछताने लगे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हे विदुर जी ! जिनको भगवान् के चरणारविन्दों के मकरन्द का स्वाद लग गया है वे उनके अतिरिक्त और किसी सान्सारिक वस्तु की इच्छा नहीं करते हैं।

ध्रुव इस प्रकार पछताते हुए अपने नगर को लौट पड़े। जब राजा उत्तानपाद ने ध्रुव के लौटने का समाचार सुना तो पहले तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ किन्तु नारदजी की बात का स्मरण होते ही वे तत्काल नगर से बाहर आये। उनके साथ बहुत से कुल के वृद्ध, मन्त्री, बन्धु बान्धव तथा ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम सवारियों के सहित चले। माँगलिक बाजे आगे २ बजते थे। कुमार ध्रुव की अगवानी के लिए उन की दोनों माताएँ सुरुचि तथा सुनीति उत्तम पालकियों पर बैठ कर चलीं। तपस्वी ध्रुव को देखते ही राजा तुरन्त रथ से नीचे उतर पड़े तथा झपट कर उसे गोद में उठा लिया। अब ध्रुव पहले के ध्रुव नहीं थे। उन्होंने विश्वात्मा भगवान् के पवित्र चरणों का स्पर्श करके परम पद प्राप्त कर लिया था उनके मुख कमल से अपूर्व आभा तथा ज्योति छिटक रही थी। राजा उत्तानपाद उन्हें बार २ कण्ठ से लगा कर आँसू बहाने लगे। ध्रुव जी ने अपने पिता के चरण स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया फिर दोनों माताओं के चरण स्पर्श किये छोटी माता सुरुचि ने ध्रुव को हृदय से लगा लिया और उसे चिरञ्जीव होने का आशीर्वाद दिया। सुरुचि अपने कृत पर पछताने लगी और वह आँसू बहाने लगी। सुनीति भी अपने पुत्र को छाती से लगा कर अपने दुखों को भूल गई। सभी पुरवासी लोग ध्रुव जी की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार बड़े आदर भाव से ध्रुव जी को छोटे भाई उत्तम के साथ हथिनी पर चढ़ा कर राजा उत्तानपाद नगर में लाये तथा उत्तम महलों में ले गये। सभी नगर निवासियों ने ध्रुव जी के दर्शन किये और सफेद सरसों अच्छत पुष्प आदि की वर्षा करने लगे। ध्रुव जी अपने पिता के महलों में पहुँचे जो अनेक प्रकार की बहुमूल्य एश्वर्य की सामिग्रियों से सजा हुआ था।

समय आने पर राजा उत्तानपाद ध्रुव जी को राज सिंहासन देकर तपस्या के लिये बन को चले गये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ दसवाँ अध्याय ॥

यच्चों द्वारा उत्तम का मारा जाना तथा ध्रुव का उनसे युद्ध,

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! प्रजापति शिशुमार की पुत्री भ्रमि से ध्रुवजी ने विवाह किया । उन के कल्प तथा वत्सर नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए । उनकी दूसरी पत्नी वायु की पुत्री इला के गर्भ से उत्कल नाम का पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई । उत्तम का अभी विवाह नहीं हुआ था । वह शिकार खेलते हुए यच्चों द्वारा मारे गए । भाई की मृत्यु को सुन कर ध्रुव को बड़ा दुःख हुआ तथा यच्चों से बदला लेने के लिये वे शीघ्र ही एक उत्तम रथ पर सवार होकर तथा अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो कर अलकापुरी की ओर चल दिये । वहाँ जाकर उन्होंने दशों दिशाओं को गुंजायमान करने वाली शङ्ख ध्वनि की । जब यच्चों ने शङ्ख नाद सुना तो वे शीघ्र ही अस्त्र शस्त्र लेकर ध्रुवजी से युद्ध करने के लिये नगर से बाहर निकल पड़े । महा रथी ध्रुव बड़े ही धनुर्धर थे उन्होंने अकेले ही सम्पूर्ण यच्चों को मार डाला तत्पश्चात् यच्च लोग पुनः एक विशाल सैना संख्या में १३ अर्बुद (१३००००) लेकर ध्रुवजी पर टूट पड़े । परिघ, फर्शा, खड्ग, त्रिशूल आदि से उन पर प्रहार करने लगे । एक बार ध्रुवजी को उन्होंने अपने शस्त्र वर्षा से इस प्रकार ढक लिया जैसे सूर्य को बादल ढक देते हैं किन्तु मुनियों ने ध्रुव जी को नारायणास्त्र के चलाने की अनुमति दी । पर्वत निवासी मुनियों की आज्ञा मान कर ध्रुव जी ने आचमन कर नारायणशास्त्र का प्रयोग किया जिससे यच्चों की रची हुई अनेक प्रकार की माया नष्ट हो गई ।

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

स्वायम्भुव मनु का ध्रुवजी को उपदेश देना,

श्रीमैत्रेयजी बोले—ध्रुवजी के द्वारा असंख्यों यच्च मारे गए । तब उनके पितामह स्वायम्भुव मनु आकाश मार्ग से एक विचित्र रथ पर चढ़ कर ध्रुवजी के निकट आये और उन से बोले—हे बेटा ! यच्चों के ऊपर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये क्यों कि क्रोध ही नरक का मार्ग है ।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

क्रोध को त्याग कर तुम इन निर्दोष यक्षों को न मारो क्योंकि एक प्राणी के लिए तुमने सहस्रों प्राणियों का संहार कर दिया है । प्राणियों की हिंसा करना भक्तजनों के योग्य नहीं है । तुमने बाल्यकाल में ही सर्वात्मा श्रीहरि को प्रसन्न करके परमपद प्राप्त किया है । तुम भगवान् विष्णु के परमप्रिय भक्त हो । भक्तजनों के मार्ग दर्शी हो । अतः तुम्हें यह निन्दनीय कार्य न करना चाहिये । परमात्मा के प्रसन्न होने पर मनुष्य इस लिङ्ग शरीर से मुक्त होकर ब्रह्म पद प्राप्त करता है इसलिये अब मेरे कहने से इन निरपराधप्राणियों की हत्या से उपहरत हो जाओ क्योंकि यक्ष लोग भगवान् शंकर के सखा कुवेरजी के सेवक हैं । अपने अनुचरों की हत्या से कुवेर जी अप्रसन्न हो जावेंगे । तुम्हारे भाई को मारने वाले ये यक्ष नहीं हैं । सब को मारने वाला वह विश्वात्मा परमेश्वर ही है ।

वही सबको उत्पन्न करता है तथा सबको मारता है । वही प्रभू अपनी माया शक्ति से समस्त प्राणियों का सृजन, पालन, तथा संहार करते हैं । वह अविनाशी निर्गुण नित्य मुक्त तथा अन्तःकरण में निवास करता है । तुम मेरे उपदेश से, मैं मेरे पन के भाव को त्याग कर इस शत्रु भाव को भी त्याग दो । भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे । इस प्रकार स्वायंम्भुव मनु के समझाने पर ध्रुव जी ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर के अपने धनुष वाण को रथ में रख दिया ।

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

ध्रुवजी को कुवेर से बरदान प्राप्त करना तथा विष्णु लोक को जाना ।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! अपने परदादा स्वायंभुव मनु के समझाने से ध्रु व जी का क्रोध शान्त हो गया । जब कुवेरजी को यह सब प्रतीत हुआ तब वे ध्रुवजी के निकट आये और बोले—हे बेटा ! तुमने अपने दादा के समझाने पर शत्रुताको त्याग दिया है । मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ । वास्तव में न तो यक्षों ने तुम्हारे भाई को मारा और न तुमने यक्षों को ही मारा है । इन समस्त प्राणियों का विनाश करने वाले केवल काल भगवान हैं यह अपनत्व केवल अज्ञान से उत्पन्न होता है इसी कारण मनुष्य एक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दूसरे को मारने वाला समझता है। हे ध्रुव! अब तुम जाओ और भगवान् का भजन करो। तुम्हें जिस वर की इच्छा हो वह निःशंक भाव से मुझ से माँगलो यक्षराज के ऐसे बचन सुनकर ध्रुवजी ने भगवान की अखण्डस्मृति का वर माँगा। इडविडा के पुत्र कुवेरजी ने ध्रुवजी से प्रसन्न होकर उन्हें भगवान् की स्मृति का वरदान दिया और वे अन्तरध्यान हो गये।

ध्रुवजी अपनी राजधानी को लौट आये और आनन्द पूर्वक राज करते हुए अनेकों बड़ी २ दक्षिणाओं वाले यज्ञों से यज्ञ पुरुष भगवान् को प्रसन्न किया। छत्तीस हजार वर्ष तक धर्म पूर्वक राज्य करके स्त्री पुत्रादि को त्याग कर बद्रिकाश्रम को भजन करने चले गये। वहाँ उन्होंने इन्द्रियों को वश में करके अपने मन को भगवान के स्वरूप में लीन कर दिया और समाधिस्थ हो गये। ध्रुवजी के अन्त समय में एक सुन्दर विमान आकाश से उतरा उस में दो पार्षद नन्द, सुनन्द चतुर्भुज रूप धारण किये हुए थे उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म था। उन्होंने आकर ध्रुव जी से कहा हे मङ्गलमय ध्रुव जी! अब आप भगवान् के परमधाम को चलिये। जिसको आपने उन यज्ञ पुरुष की आराधना करके पाँच वर्ष की अवस्था में ही प्राप्त कर लिया था। आप विष्णुलोक के अधिकारी हैं। आप अपने ध्रुव लोक को पधारिये। यह श्रेष्ठ विमान भगवान् ने आपके लिये भेजा है। आप इस पर सवार हो जाइये भगवान के पार्षदों के ऐसे अमृतमय बचन सुनकर ध्रुव जी ने स्नान संध्या वन्दन किया और मङ्गलमय वस्त्र, आभूषणों से अलंकृत होकर बद्रिकाश्रम के निवासी मुनियों को प्रणाम किया, और उस विमान की पूजा कर के प्रदक्षिणा की तथा पार्षदों को प्रणाम करके विमान पर चढ़ने को उद्यत हुए। उस समय उन्होंने अपने काल को अपने सम्मुख खड़ा हुआ देखा।

तब उन्होंने काल के सिर पर पैर रखकर तेजोमय दिव्य शरीर से उस विमान में प्रवेश किया उस समय आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। ज्यों ही ध्रुव जी उस विमान पर बैठे त्योंही उन्हें अपनी माता सुनीति का स्मरण हो आया। और वे सोचने लगे कि अपनी माता को छोड़ कर मैं अकेला ही उस उत्तम लोक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

को जा रहा हूँ। तब ध्रुव जी के मन की बात जान कर पार्षदों ने कहा-हे ध्रुव जी! आप चिंता न करें। आपकी माता आपसे पहले ही उत्तम विमान पर बैठ कर आपके आगे २ चल रही हैं। तब उस दिव्य विमान पर बैठ कर ध्रुव जी आकाश लोक को पार करके सप्तर्षि मण्डल से ऊपर विष्णु लोक में पहुँचे। हे विदुरजी! महाराज उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवजी ने तीनों लोकों के ऊपर वह ध्रुव लोक प्राप्त किया जिसके चारों ओर अविनाशी परमात्मा का ज्योतिश्चक्र सदा घूमता रहता है। नारदजीने ध्रुवजी के प्रति प्रचेताओं की यज्ञशाला में ये तीन श्लोक कहे थे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पतिव्रता सुनीति के पुत्र ध्रुव जी ने अपनी तपस्या के बल से वह परम पद प्राप्त किया है जो बड़े २ राजाओं की तो बात ही क्या? जन्म जन्मान्तर तक तपस्या करने पर बड़े २ तपस्वी भी नहीं प्राप्त कर सकते।

श्री मैत्रेयजी बोले-हे विदुरजी! मैंने तुम्हें परम कीर्तिवान ध्रुव जी का चरित्र सुनाया है यह चरित्र धन, यश तथा आयु को बढ़ाने वाला तथा परम मंगलमय है। इसके श्रवण करने से भगवान् का लोक प्राप्त होता है। सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। जो भक्तजन इस पावन चरित्र को श्रद्धा से बार बार पढ़ते तथा सुनते हैं उनके सुनने वाले को शील आदि गुण प्राप्त होते हैं उनके सभी दुख नष्ट हो जाते हैं। उन्हें महतत्व की प्राप्ति होती है। तेज प्राप्त होता है, इस पवित्र चरित्र को प्रातः तथा सायंकाल ब्राह्मण समाज तथा भक्तजनों के मध्य में पढ़ना, कीर्तन करना अति उत्तम है। जो भक्त इसे निष्काम भाव से पूर्णिमा, अमावस्या द्वादशी श्रवण नक्षत्र क्षय तिथि, वितीपात योग, संक्रान्ति तथा रविवार के दिन हरि भक्तों को सुनाता है वह आत्मा को जीत कर सिद्ध हो जाता है।

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

दोहा-मैत्रेय जी वर्णन कियौ, ध्रुव राजा कौ वंश।
अङ्ग आदि राजा भये, सब उन्हीं के अंश॥

श्रीसूतजी बोले-हे शौनक जी! श्री मैत्रेय जी के मुख से ध्रुव चरित्र सुन कर श्री विदुर जी अति प्रसन्न हुए और मैत्रेय जी पूछने लगे-हे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रह्मन् ! प्रचेता लोग कौन थे तथा किस के पुत्र थे । उन्होंने किस वंश में जन्म लेकर कहाँ यज्ञ किया । देवर्षि नारद ने पाँच रात्र दर्शन को बना कर भगवत् भक्तों का अति भला किया है प्रचेता लोगों का गुण गान तो श्री नारदजी ने भी किया है । मुझे उन के चरित्र सुनने की अति इच्छा है। श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! धर्मात्मा ध्रुव के बन गवन के पश्चात् उनका पुत्र उत्कल राज सिंहासन पर बैठा । किन्तु वह शान्त चित्त आसत्ति रहित परम ज्ञानी तथा वासनाओं से मुक्त था । वह ब्रह्म को आत्मा में तथा आत्मा को ब्रह्म में देखता था । इस कारण वह मूर्ख पागल, बहरा, गूँगा, अन्धा सा प्रतीत होता था, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था । उसको पागल समझ कर प्रजा ने उसके छोटे भाई वत्सर को राजा वनाया वत्सर की पत्नी स्व वींथि के गर्भ से पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु, तथा जय छः पुत्र उत्पन्न हुए । पुष्पार्ण, के प्रभा तथा दोषा नाम की स्त्रियों से प्रातः मध्याह्न तथा साँय ये तीन पुत्र प्रभा के उत्पन्न हुए । दोषा के गर्भ से प्रदोष निशीथ व्युष्ट ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । व्युष्ट के पुष्पकरणी नाम की भार्या से सर्वतेज नाम का पुत्र हुआ । उसकी आकूति नाम की पत्नी से चक्षुः नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । वही चक्षुः चाक्षुष मन्वन्तर में मनु हुए । चक्षु की पत्नी नड्वला के गर्भ से प्रस, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान, ऋतु, ब्रत, अग्निष्टोम अतिरात्र, प्रद्युम्न शिवि, तथा उल्मुक, ये बारह पुत्र उत्पन्न हुए । उल्मुक की पत्नी पुष्करिणी के गर्भ से अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा तथा गय ये छः उत्पन्न हुये । अंगकी पत्नी सुनीथाके गर्भ से बेन उत्पन्न हुआ जिसकी क्रूरता से दुखी होकर राजा अंग बन को चले गये थे। ऋषियों ने तंग आकर बेन को अपनी हुङ्कार से मार डाला । उसके शरीर के मथने से आदि सम्राट विष्णुके अन्शावतार राजा पृथु उत्पन्न हुए । श्रीविदुरजी बोले— हे मुनिवर ! ऐसे गुणवान शीलवान साधु स्वभाव वाले राजाअंगके बेन जैसा दुष्ट पुत्र कैसे हुआ । उसका क्या कारण था । मुझे बेनके क्रूर कर्म सुनाइये।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! एक समय राजा अंग ने अश्वमेध यज्ञ किया । उस में देवताओं ने अपना भाग नहीं लिया ऋत्विजनों ने आश्चर्य में आकर राजा अंग से आकर कहा कि हे राजन् ! न जाने किस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS

कारण से देवता लोग आहुति लेने के लिए नहीं आते हैं। हमारे वेदमन्त्र भी शुद्ध हैं। यज्ञ के नियमां का पालन भी किया गया है। आपकी सामग्री भी उत्तम हैं फिर भी देवता लोग आहुति लेने नहीं आ रहे हैं। हमारी सलाह यह है कि आपके निःसन्तान होने के कारण ही यह दोष है। इस लिए पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ पुरुष भगवान् का आवाहन करना चाहिए। उनके आने पर देवता लोग स्वतः खिच आवेंगे। राजा अङ्ग ने ऋत्विजों की बात मान कर ऐसा ही किया। ऋत्विजों ने पुत्र प्राप्त करने वाला पुरोडास नाम का चरु बनाया और अग्निकुण्ड में आहुति दी। आहुति के देते ही अग्निकुण्ड से शुभ्र वस्त्रधारी दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। सोने के पात्र में सिद्ध खीर लिए हुये था। राजा अङ्ग ने याजकों की आज्ञानुसार वह खीर ले ली। तथा उसे सूँघ कर पुत्र प्राप्ति के हेतु अपनी पत्नी को दे दी। उस खीर के प्रभाव से राजा अङ्ग के वह वेनु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु उसकी माता सुनीथा अधर्म वंश के मृत्यु की पुत्री होने के कारण वह अधर्मी हुआ वह दुष्ट बालक नित्य हिंसा करता था। भोले भाले प्राणियों को सताता था। सभी पुरवासी उस से भयभीत रहते थे, और बेन आया, बेन आया इस प्रकार चिल्ला उठते थे। महाराज अङ्ग ने उसे बहुत समझाया और सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया किन्तु उसने अपनी आदत न छोड़ी उससे दुखी होकर राजा अङ्ग एक दिन बोले कि ऐसे पुत्रवान होने से तो निपुत्र ही अच्छा है। ऐसा कहकर वे रात्रीमें सब घरबार को छोड़ बनको चले गये। प्रातःकाल प्रजा को जब पता चला तो प्रजा दुखी हुई और उन को खोजने के लिये इधर उधर गए किन्तु महाराजका कोई पता न चला। सभीलोगदुखी होकरलौट आये।

❀ चौदहवाँ अध्याय ❀

दोहा—बेन चरित्र बर्णन कियो, मैत्रेय जी हरषाय।
विदुर देव ने मुदित हो, सुनी कथा चितलाय॥

श्रीमैत्रेयजी बोले-हे महाभाग विदुर जी! भृगु आदि ब्रह्म वेत्तामुनि गणों ने जब देखा कि राजा अङ्गबन को चले गये हैं, और प्रजा का रक्षक अब कोई नहीं रहा है। चोर डाकुओं तथा बर्बर लोगों का आतङ्क

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

छा रहा है तब माता सुनीथा की अनुमति से तथा मन्त्रियों की सम्मित से बेन को राजा बना दिया। बेन के राजा होते ही चोर डाकू उसके भय से स्वयं ही भयभीत हो गये, और जा छिपे। राजा बेन सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त होकर पृथ्वी तथा आकाश को कंपाता हुआ पृथ्वी पर बिचरने लगा।

उसने यह घोषणा करदी कि कोई भी ब्राह्मण यज्ञ, दान, जप, तप, धर्म कर्म न करे। यदि ऐसा करेगा तो वह प्राणदण्ड का भागी होगा। दुष्ट बेन के ऐसे अत्याचारों को देखकर ऋषिमुनि ब्राह्मण सभी अति दुखी रहने लगे। अधर्म की वृद्धि होने लगी, हिंसा, चोरी, अराजकता आदि की वृद्धि हो गई। यह देख कर मुनिगणों ने परस्पर विचार किया कि इस दुराचारी बेन को अपने तेज से शीघ्र ही भस्म कर दिया जावे। इस को हमने राजा बनाया यह अति बुरा किया। तब मुनिगण सब मिल कर राजा बेन के पास गए और शान्ति भाव से उसको समझाने लगे।

मुनिगण बोले—हे राजन्! हम आपके पास आपके हित की बात समझाने को आये हैं उसे आप ध्यान पूर्वक सुनें। अभी आपकी अवस्था छोटी है। यदि आप हमारे उपदेशानुसार चलोगे तो आपकी आयु, तेज, बल तथा कीर्ति बढ़ेगी। राजा को सदा धर्म का आचरण करना चाहिए। उनके ऐसा करने से प्रजा में धर्म की वृद्धि होती है, और उसे स्वर्ग मिलता है। यदि वह निष्काम भाव से धर्म कर्म करता है तो उसे मोक्ष मिलता है। राजा को सर्वत्र शान्ति तथा प्रजा के सुख का ध्यान रखना चाहिए। सम्पूर्ण वर्णाश्रम-धर्मों का पालन करना चाहिए। प्रजा के धर्म करने से उस का षष्ठांश धर्म राजा को भी प्राप्त होता है। इस लिये हे वीर! आपको यज्ञादि धर्मानुष्ठान आदि धर्म कर्म बन्द नहीं कराना चाहिये। इस से देवता लोग कुपित होकर राजा तथा प्रजा का नाश कर देते हैं। राजा बेन ने कहा—अरे मुनियो! तुम लोग महा मूर्ख हो। तुम लोग स्वयं अधर्मी हो। इस लिए मुझे अधर्म की ओर ले जाते हो। राजा ईश्वर होता है। तुम को मुझ ईश्वर के अतिरिक्त किसी दूसरे ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिये। जो मूर्ख परमेश्वर स्वरूप राजा का तिरस्कार करते हैं, उन्हें इस लोक और पर लोक में कहीं सुख नहीं मिलता है। अरे मूर्खो तुम मुझ यज्ञपुरुष को त्याग

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

कर एक कुल्टा नारी की भाँति किसी दूसरे पुरुष में आशक्त हो रहे हो। जिस प्रकार कुल्टा नारी अपने पति को त्याग कर परपति की सेवा करती है। वरदायक ! सम्पूर्ण देवता-- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, कुवेर, मेघ, अग्नि तथा वरुण सभी मेरे शरीर में व्याप्त हैं। अतः राजा ही सर्वदेव मय है, और शेष देवता उसके अंश मात्र हैं। इस लिए हे द्विजगण। तुम इस अज्ञान को छोड़ कर मेरा ही भजन करो और मुझे ही बलि अर्पण करो।

श्री मैत्रेयजी बोले--हे विदुरजी ! बेन के ऐसे दुष्ट बचन सुनकर और अपना अपमान समझ कर वे सब मुनि गण कुपित हो उठे और बोले-- तू महापापी है। यदि जीता रहेगा तो संसार का नाश कर देगा। तू इस सिंहासन के योग्य नहीं है। तू ने हमारे सामने यज्ञपुरुष भगवान् की निंदा की है। ऐसा कह कर उन ब्राह्मणों ने उस दुराचारी बेन को अपने तेजसे निस्तेज कर के अपनी हुँकारों से ही उसे मार डाला, और मार कर सभी ऋषिगण अपने २ आश्रमों को चले गये। तब बेन की माता सुनीथा ने शोकाकुल हो कर मन्त्र बल से अपने पुत्र के शव की रक्षा की।

एक दिन मुनिगण सरस्वती नदी के उत्तम जल में स्नानादि कर के नित्य कर्म से निवृत होकर भगवान की कथा वार्ता करने लगे। उस समय प्रजा में अनेक प्रकार के आतंक, दुःख सन्ताप देख कर वे बोले—कि राजा के बिना प्रजा की रक्षा होना कठिन है। बेन के मरने से चारों ओर अराजकता फैल रही है। चारों ओर चोरों का उपद्रव बढ़ रहा है। ऐसा सोच कर वे लोग नगर में आये और उन्होंने मरे हुए राजा बेनकी जाँघ को बड़े जोर से मथा। उस जाँघ को मथने से उस जाँघ में से एक बौना पुरुष प्रकट हुआ। उस का रङ्ग कौवे की भाँति काला था। उसके सभी अङ्ग छोटे थे। उसके जबड़े बड़े थे। टाँग तथा भुजा छोटी थी, नाक चपटी नेत्र लाल तथा बाल ताँबे के रङ्ग वाले थे। उस पुरुष ने दीनता पूर्वक मुनियों से पूछा मैं क्या करूँ ! तब ऋषियों ने कहा अरे तू बैठ जा, तू निषाद है। उस काले पुरुष के प्रकट होते ही बेन के पाप उस निषाद के रूप में बाहर निकल आये उस के वंशधर जङ्गलों में रहने वाले निषाद नाम से प्रसिद्ध हुए।
In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

दोहा—दुष्ट बेनकी भुजन को, मथ्यो विप्र सुख मान।
प्रगट भये पृथु रूप में, जगदीश्वर भगवान ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने राजा बेन की भुजाओं का मथना आरम्भ किया। उन दोनों भुजाओं से एक स्त्री तथा एक पुरुष उत्पन्न हुए। तब ब्राह्मण अति प्रसन्न हुए और उन्होंने उस पुरुष को विष्णु का अवतार तथा उस स्त्री को लक्ष्मी का अवतार कहा। वे बोले-इस पुरुष के सुयश का प्रथम स्थान होने से इसका नाम पृथु होगा राजाओं में सर्व श्रेष्ठ राजा होगा। यह सुन्दरी कन्या जिसका नाम अर्चि होगा। इसी को अपना पति बनायेगी। संसार की रक्षा के लिए भगवान विष्णु ने अवतार लिया है।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! वे ब्राह्मण लोग पृथु की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे। देवता लोग आकाश से पुष्प वृष्टि करने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरायें नाचने लगीं। ब्रह्माजी देवताओं के साथ वहाँ पधारे उन्होंने राजा पृथु की हस्त रेखायें तथा पगों में कमल चिन्ह देखा। राजा पृथु के हाथ में अन्य रेखाओं से बिना कटा हुआ चक्र का चिन्ह था। जिसके हाथ में दूसरी रेखाओं से बिना कटा चक्र का चिन्ह होता है वह भगवान् का ही अंश होता है। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणों ने राजा पृथु का राज्याभिषेक किया। उन्हें अनेक भाँति के उपहार भेंट किये। कुबेर ने छत्र प्रदान किया, वायु ने दो चँवर, धर्म ने कीर्ति वाली माला, इन्द्र ने क्रीट, यम ने दण्ड, ब्रह्मा ने कवच सरस्वती ने उत्तम हार भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र, लक्ष्मीजी ने सम्पत्ति भगवान् शङ्करजी ने तलवार, अम्बिका ने ढाल, चन्द्रमा ने अश्व, विश्वकर्मा ने सुन्दर रथ, अग्नि ने सुदृढ़ धनुष दिया। सूर्य ने अपने तेज से बाण दिए पृथ्वी ने पादुकायें, आकाश के देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। गन्धर्वों ने नृत्य गान किया ऋषियों ने आशीर्वाद दिया। समुद्र ने शङ्ख, नदियों ने मार्ग तथा सूत, मागध और बन्दीजन स्तुति के लिये प्रगट हुए।

उनकी स्तुति सुनकर पृथु बोले-अरे सूत, मागध और बन्दीजनो! तुम मेरी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funded by IKS

स्तुति किस प्रकार करोगे। अभी तो मेरे गुणों का विस्तार इस संसार में प्रगट नहीं हुआ है। अरे भाइयो ! तुम्हारी वाणी व्यर्थ न होने के लिये इस समय मुझ से भिन्न किसी अन्य की स्तुति करो। जब मेरे गुण इस लोक में प्रगट हो जावें तब अपनी सुन्दर वाणी से मेरी स्तुति करना। हे भाइयो ! उत्तम पुरुष भगवान् के गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी की स्तुति नहीं करते। ऐसा कौन नीच पुरुष होगा जो उन सर्व गुण सम्पन्न भगवान् के रहते हुए अपनी स्तुति करायेगा। जब तक उसके कोई गुण प्रगट नहीं हुए हैं तब तक उसका गुणानुवाद करना केवल उसे उल्लू बनाना है। उत्तम पुरुषों को अपने गुणों की स्तुति से घृणा होती है। अतः हे सूतो ! अभी मेरे कर्म तथा गुण लोक में प्रसिद्ध नहीं हुए हैं। हमने कोई प्रशंसा का कार्य भी नहीं किया है। इसलिये तुम मेरी स्तुति किस प्रकार करोगे।

❀ सोलहवाँ अध्याय ❀

दोहा—बन्दीजन स्तुति करहिं, ले ले गुण अरु नाम।
मुदित होय वर्णन करहिं, सुयश कीर्ति शुभ काम ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! महाराज पृथु के इस प्रकार कहने पर मुनियों की अनुमति से बन्दीजन इस प्रकार स्तुति करने लगे।

हे देव ! आप साक्षात् भगवान् विष्णु ही हैं। आप अपनी माया से ही अवतार धारण करते हैं। हम आपका वर्णन किस प्रकार कर सकते हैं। आपकी महिमा का वर्णन करने में तो ब्रह्मादि देवता भी असमर्थ हैं। फिर भी हम अपनी बुद्धि के अनुसार आप की कीर्ति का वर्णन करते हैं। ये धर्मात्मा राजा पृथु धर्म की रक्षा के लिये ही लोक में अवतरित हुए हैं। ये पापियों को दण्ड देंगे। यज्ञादि कर्मों का प्रचार करेंगे। प्रजा में सुख शान्ति, वृष्टि आदि की व्यवस्था करेंगे। यह सूर्य के समान तेज युक्त तथा प्रतापी होंगे। सब को समान भाव से देखेंगे। यह समयानुसार धन संचय करेंगे और दुर्भिक्ष काल में प्रजा के लिए व्यय कर देंगे। ये दीन पुरुषों के हितकारी तथा बड़े दयालु होंगे। ये पृथ्वी के समान सब की सहने वाले होंगे। इन्द्र की भाँति जल वृष्टि करेंगे। अपनी मधुर मुस्कान से सब प्रजा को आनन्द देंगे। इनके कार्य विचित्र होंगे। तथा उनको पूर्ण करने का ढङ्ग भी विचित्र होगा।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ये प्रतापवान पृथु वरुण के समान होंगे। ये शत्रुओं का दमन करनेवाले होंगे। अपनी निंदा तथा स्तुति से उदासीन रहेंगे। ये सबके लिये समान दण्ड देंगे। अपने कर्मों से प्रजा को सुख देंगे। ये सत्य प्रतिज्ञ, ब्राह्मण भक्त, दृढ़ संकल्प, शरणागतवत्सल तथा बड़ों की सेवा करने वाले होंगे। ये धर्मात्मा होंगे। भगवान् नारायण ने ही इनके रूप में अवतार लिया है। ये महान प्रतापी सम्राट होंगे। ये समस्त भूमण्डल की रक्षा करेंगे! स्त्रियाँ इनके गुणों का वर्णन करेंगी। ये प्रजा पालक सम्राट होकर प्रजा हित के लिए गौ रूप धारी पृथ्वी का दोहन कर के सम्पूर्ण तत्वों को उस में से खींच लेंगे। अपने धनुष की नोक से पर्वतों को तोड़ पृथ्वी को समतल बना देंगे। ये महावीर सरस्वती के उद्गम स्थानपर सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे। तथा अंतिम यज्ञ होने के समय इन्द्र उन के अश्व को चुरा कर ले जावेगा। इनकी भेंट सनतकुमार जी से होगी। उनकी सेवा से इन्हें परम ब्रह्म की प्राप्ति होगी। ये अपने तेज से प्रजा के सम्पूर्ण दुखों को हर कर भू मण्डल का राज करेंगे तथा देवता, असुर सभी इनके गुणों का वर्णन करेंगे।

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

चौ०—कुपित होइ पृथु भूमि हँकारी, थर थर कंपहि महि अति भारी।
भूमि तबहि वहु अस्तुति कीन्हीं, आयसु प्रभु निज शिर धरि लीनी॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! जब बन्दीजनों ने महाराज पृथु का गुणानुवाद तथा प्रशंसा का वर्णन किया तब महाराज पृथु ने उनको अनेक प्रकारके गहने व वस्त्र दिये। तत्पश्चात ब्राह्मण, पुरोहित, मन्त्री, सेवक आदि पुरवासियों को सन्तुष्ट किया।

विदुरजी बोले—हे ब्रह्मदेव! पृथ्वी ने गौ का रूप क्यों धारण किया था? महाराज पृथुने किस प्रकार उसे दुहा! बछड़ा कौन बना! दुहनेका पात्र कहाँसे आया। पृथ्वीको समतल किस प्रकार किया! इन्द्रने घोड़ा क्यों चुराया! सनत्कुमारजीने क्या ज्ञान दिया। येसबचरित्र विस्तार पूर्वक सुनानेकी कृपाकीजिये।

श्री सूत जी बोले—हे शौनक जी! विदुर जी के इस प्रकार पूछने पर श्रीमैत्रेयजी बोले-हे विदुरजी! राजा पृथु का राज्याभिषेक करनेके पश्चात्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ब्राह्मणों ने उन्हें सम्राट् बना दिया किन्तु पृथ्वी अन्न हीना होने के कारण प्रजा भूखी मरने लगी और क्षुधा से पीड़ित त्राहि त्राहि करते हुए महाराज पृथु के पास आकर करुण क्रन्दन करने लगे। प्रजा का करुण क्रन्दन सुन कर महाराज प्रथु अति दुःखी हुए और इसका कारण सोचने लगे। जब उन्हें मालूम हो गया कि पृथ्वी ने अन्न औषधि आदि को अपने में छिपा लिया है तब क्रोधित होकर धनुष बाण लेकर पृथ्वी को मारने के लिये उद्यत हुए। पृथ्वी भय के कारण गौ रूप धारण कर के भागने लगी। महाराज पृथु उसका पीछा करते हुए उसके पीछे दौड़े। जब पृथ्वी ने देखा कि मेरी रक्षा कहीं नहीं हो सकती है तब वह महाराज पृथु की शरण में गई और बोली स्त्री पर हाथ उठाना सत्पुरुषों के लिये किसी प्रकार भी उचित नहीं है। आप दीन वत्सल हैं। मैं नौका रूप से इस जगत को धारण किये हुए हूँ। आप मुझे तोड़ कर जल के ऊपर प्रजा को किस प्रकार से रख सकेंगे।

महाराज प्रथु बोले—हे पृथ्वी! तूने मेरी आज्ञा का उलंघन किया है। तू देवताओं के साथ यज्ञ में भाग तो लेती है किन्तु उसके बदले में हमारी प्रजा को अन्न नहीं देती है। जो गौ चारा तो खावे किन्तु दूध देते समय लतियावे तो उसको इस अपराध के कारण अवश्य दण्ड देना चाहिए। तूने अपनी खोटी बुद्धि से अब अन्न अपने में छिपा लिया है। तू मेरी कोई परवाह न करके उन्हें बाहर नहीं निकालती है। स्त्री पर हाथ उठाना अवश्य अनुचित है किन्तु दुष्टा अपने पालन कर्त्ता तथा अन्य प्राणियों के लिये निर्दयता का बर्ताव करे तो वह स्त्री हो अथवा निपुंसक हो या पुरुष हो अवश्य दण्ड देना चाहिए। उसका मारना न मारने के समान है। इसलिए मैं अपने इन बाणों से तुझे छिन्न भिन्न करके अपनी प्रजा को योग बल से धारण करूँगा। महाराज पृथु का क्रोध साक्षात् काल के समान था। पृथ्वी भयभीत होकर विनय, करने लगी। पृथ्वी बोली–हे महाराज! आप आदि पुरुष हैं। प्रजा की रक्षा के लिए ही आपने यह रूप धारण किया है। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप धर्मपरायण हैं फिर मुझे किस प्रकार मार सकते हैं। आप परम पुरुष तथा जगत

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के विधाता हैं। आप अन्न न देने के कारण मुझे मारना चाहते हैं मेरी रक्षा करो। मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

पृथ्वी का दोहन

दोहा–ध्रुव वंश में पृथु भये, राजा अति मति मान।
पृथ्वी का दोहन कियौ, खींचे रत्न महान॥

श्री मैत्रेयजी बोले--हे विदुरजी! महाराज पृथु के इस प्रकार क्रोधित होने पर पृथ्वी ने उनकी अनेक प्रकार से स्तुति की और बोली—हे प्रभो! मैं आप से जो प्रार्थना करती हूं उसे ध्यान पूर्वक सुनें और अपने क्रोध को शाँत करें। तत्व को जानने वाले मुनियों ने इस लोक तथा परलोक में कल्याण के हेतु कृषि, अग्नि होत्र इत्यादि अनेक उपाय निकाले हैं। जो मनुष्य उन उपायों को साधन रूप से काम में लाता है उसको अभीष्ट फल अवश्य मिलता है। किंतु जो उन साधनों को काम में नहीं लाता है उसका प्रयत्न निष्फल होता है। आदि काल में जिन अन्य औषधियों आदि को ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया था मैंने देखा कि दुराचारी दुष्ट लोग जो नियमादि का पालन नहीं करते हैं वे उन को खाये जाते हैं तब मैंने उस अन्न को अपने में छिपा लिया। आप राजा लोगों ने मेरा आदर सत्कार करना बन्द कर दिया है और चोरों की भाँति मेरे अन्न को चुराते हैं इस लिये मैंने यज्ञ की सामिग्री समाप्त होने के भय से उस सम्पूर्ण सामिग्री को अपने गर्भ में सुरक्षित रक्खा है यदि आप मेरे से उस सब सामिग्री को लेना चाहते हैं तो मेरे योग्य बछड़ा एक दोहन पात्र तथा दुहने वाले पुरुष का प्रबन्ध कीजिये। मैं दूध के रूप में आप को सब पदार्थ दे दूँगी। हे राजन्! आप मुझे समतल कर दीजिये जिस से वर्षा का जल मेरे में भरा रहे और समुद्र में न चला जावे। पृथ्वी के ऐसे वचन सुन कर महाराज पृथु ने स्वायंम्भुव मनु को बछड़ा बना कर स्वयं अपने हाथ से पृथ्वी को दुह कर सम्पूर्ण धान्य को प्राप्त कर लिया। अन्य विज्ञजनों ने भी पृथ्वी को योग्य बछड़ा बना कर इच्छित वस्तुएँ प्राप्त करलीं। ऋषियों ने भी पृथ्वी को योग्यबछड़ा बनाकर इच्छित वस्तुऐं प्राप्त करलीं। ऋषियों ने बृहस्पतिजी को बछड़ा बना कर वेद रूप पवित्र ग्रन्थ निकाले। देवताओं ने इन्द्र को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बछड़ा बनाकर सुवर्ण मय पात्र में अमृत, वीर्य तथा बल के रूप में दूध प्राप्त किया। दैत्यों ने प्रह्लाद जी को बछड़ा बनाकर मदिरा तथा ताड़ी रूपी दूध प्राप्त किया। गन्धर्व तथा अप्सराओं ने विश्वावसु को बछड़ा बना कर कमल पात्र में सङ्गीत, माधुर्य्य तथा सौन्दर्य रूपी दूध प्राप्त किया। पितरों ने अर्य्यमा को बछड़ा बनाकर काव्य रूपी दूध प्राप्त किया। सिद्धों ने कपिलदेवजी को बछड़ा बना कर अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्तकीं। इसी प्रकार सबने पृथ्वी को दुहा। हे विदुरजी! पृथ्वी को दुह कर महाराज पृथु अति प्रसन्न हुए और पृथ्वी को अपनी कन्या के रूप में स्वीकार किया। तत्पश्चात् महाराज पृथु ने धनुष की नोंक से पर्वतों को तोड़ कर सम्पूर्ण पृथ्वी को समतल बना दिया। उन्होंने प्रजा के लिए गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग आदि बनवाए और पिता की भाँति प्रजा का पालन करने लगे।

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

महाराज पृथु का सौ अश्वमेध यज्ञ करना।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! महाराज पृथु ने ब्रह्मावर्त्त क्षेत्र में जिस स्थान पर सरस्वती नदी पूर्वाभिमुख हो कर प्रवाहित होती हैं। वहाँ महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए। उन यज्ञों में भगवान् यज्ञेश्वर स्वयं पधारे थे। वहाँ पर गन्धर्व अप्सरायें, सिद्ध, विद्याधर, नन्द, सुनन्द, नारद, दत्तात्रेय, कपिल, सनकादिक, योगेश्वर, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि सभी देवेश्वर पधारे थे। नदियाँ, समुद्र, वृक्ष आदि ने अनेक प्रकार की सामिग्री उपहार में भेंट की थीं।

धर्मात्मा पृथु के इस उत्कर्ष को देख कर देवराज इन्द्र को ईर्ष्या उत्पन्न हुई क्यों कि महाराज पृथु के अन्तिम सौवें यज्ञ के समाप्त होने पर वे इन्द्रासन के अधिकारी हो जाते हैं, अतः जिस समय उन का सैवाँ यज्ञ हो रहा था उस समय इन्द्र ने छिप कर उनका यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। इन्द्र ने कपट वेष धारण कर रक्खा था जब वह घोड़े को ले कर आकाश मार्ग से जा रहा था उस पर अत्रि मुनि की दृष्टि पड़ी, तब उन्होंने महाराज पृथु से उसे पकड़ने के लिए कहा महाराज पृथु का वीर पुत्र इन्द्र को मारने के लिए दौड़ा। और बोला—अरे! खड़ा रह! खड़ा रह! उस समय

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इन्द्र अपने सिर पर जटाजूट तथा भस्म लगा कर धर्मात्मा प्रतीत होता था पृथु कुमार ने इन्द्र को धर्म समझ कर उस पर बाँण छोड़ना उचित न समझा राजकुमार बिना युद्ध किये ही पीछे लौट आया तब अत्रि मुनि ने इन्द्र को मारने के लिये पृथुकुमार से फिर कहा। मुनि के ऐसा कहने पर पृथु कुमार इन्द्र को मारने के लिये फिर दौड़े किंतु इन्द्र घोड़े को छोड़ कर अन्तर्ध्यान होगया। पृथुकुमार घोड़े को लेकर यज्ञ में आया।

हे विदुरजी! उस पृथु कुमार का ऐसा पराक्रम देख कर महर्षियों ने उस का नाम बिजिताश्व प्रतिष्ठित किया। यज्ञ पशु को यज्ञ शाला में बाँध दिया गया उस समय इन्द्र ने फिर घोर अन्धकार उत्पन्न कर दिया और उस अँधेरे में छिप कर उस घोड़े को चुरा कर फिर ले गया। अत्रि मुनि ने उसको फिर आकाश में जाते हुए देखा। उसके पास कपाल खड्ग देखकर पृथुकुमार ने उसे नहीं रोका। उन्होंने मुनिके कहने पर उसे बाँण का लक्ष बनाया तब इन्द्र फिर घोड़े को छोड़ कर अन्तर्ध्यान होगया। तब विजिताश्व उस घोड़े को लेकर फिर यज्ञ में आगया। तब इन्द्र ने अपने उस पाप के खंड अर्थात् पाप के चिन्ह उस पाखण्ड वेष को त्याग दिया, और उस वेष को निम्नांकित पुरुषों ने ग्रहण कर लिया। इन्द्र के इस षड़यन्त्र का पता चलने पर महाराज पृथु को अति क्रोध आया उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर इन्द्र को मारने का बिचार किया। जब ऋत्विजों ने महाराज पृथु के असह्य क्रोध को देखा तब उन्होंने उन्हें समझाया हे महाराज! आप धर्मात्मा तथा बुद्धिमान हैं यज्ञ की दीक्षा लेने पर यज्ञ पशु के अतिरिक्त अन्य किसी का वध नहीं करते हैं। वह बेचारा इन्द्र तो आप के सुयश के कारण स्वयम ही ईर्ष्यावश मृत्युवत् हो रहा है। हम लोग अपने मंत्रों से उस इन्द्रको इस यज्ञ में यहाँ बुला कर हवनकुण्ड में भस्म किये देते हैं।

हे विदुरजी! ऐसा कहकर उन ऋत्विजनोंने इन्द्र का आवाहन किया। वे अग्नि में आहुति डालना चाहते ही थे कि उसी समय प्रजापति ब्रह्मा ने आकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। ब्रह्माजी बोले—हे ऋत्विजनों! जिस इन्द्र को तुम मारना चाहते हो वह स्वयं भगवान् का अवतार है, और जिन देवताओं की आराधना तुम कर रहे हो वे सब इन्द्र के अङ्ग हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजा पृथु के यज्ञ में इन्द्र ने जो पाखण्ड रूप से विघ्न डाला है वह धर्म का नाश करता है। अब इन्द्र से अधिक शत्रुता न करो। क्योंकि वह जिन जिन पाखण्ड मार्गों का प्रचार करेगा वे सभी धर्मके विरुद्ध आचरण फैलावेंगे महाराज पृथु के ९९ यज्ञ ही समाप्त करदो। तत्पश्चात् पृथु से बोले-हे राजा पृथु! तुम तो मोक्ष के अभिलाषी हो। तुम्हें इन यज्ञों की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा मङ्गल होगा। तुम और इन्द्र दोनों ही परमात्मा का अवतार हो अतः अपने स्वरूप इन्द्र के निमित्त क्रोध को त्याग दो। तुम्हारा सौवाँ यज्ञ निर्विघ्नता से समाप्त नहीं हुआ है इसकी कोई चिंता न करो और इस यज्ञ को बन्द करदो। इन्द्र ने भी पाखण्ड धर्म चलाया है उसका नाश करो इन्द्र के चलाये हुए पाखण्ड की ओर तुम्हारी सारी प्रजा खिंची जा रही है बेनु के दुराचार से धर्म लुप्त होगया था किंतु तुमने धर्म का पुनः विस्तार किया है उस पर इन्द्र का फैलाया हुआ यह प्रचण्ड पाखण्ड पुनः अधर्म को उत्पन्न कर रहा है। इनको नष्ट करने में तुम्हीं समर्थ हो।

हे विदुरजी! प्रजापति ब्रह्मा के इस प्रकार समझाने पर महाराज पृथु ने उनकी बात स्वीकार करली और यज्ञ के हठ को त्याग कर इन्द्र से संधि करली। तत्पश्चात् यज्ञान्त स्नान किया और ब्राह्मणों को अनन्त धन राशि दक्षिणा में दी। देवता तथा पितरों ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

दोहा-पुत्र समान पाली प्रजा, करे यज्ञ जप दान।
विष्णु आय दर्शन दिये, दोन्हों अति सम्मान॥

श्री मैत्रेयजी बोले-हे विदुरजी! महाराज पृथु के निन्यांनवे यज्ञ होने पर भगवान विष्णु अति प्रसन्न हुए और इन्द्रको साथ लेकर महाराज पृथु की यज्ञ शाला में प्रगट हुए।

भगवान् विष्णु बोले-हे राजा पृथु! तुम्हारे यज्ञ में इन इन्द्र ने भी विघ्न डाला है उसके लिए क्षमा करो। जो तत्वज्ञानी भगवत् प्रेमी भक्त होते हैं वे किसी से द्रोह नहीं करते हैं शत्रु को भी सम भाव से देखते हैं तुम्हारे जैसे भक्तजन भी यदि क्रोध युक्त माया में लिप्त हो जांय तो

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

औरों का तो कहना ही क्या है। ज्ञानी पुरुष इस मोह जनित मायासे दूर रह कर गृह, स्त्री पुत्रादि सब से अलग रहता है।

हे राजन्! यह आत्मा निर्गुण, स्वयं, प्रकाश, सर्व व्यापक तथा सब का साक्षी होने से इस पञ्चभूत रचित शरीर से अलग है। जो तत्व ज्ञानी पुरुष इस लिंग शरीर से आत्मा को अलग मानता है वह इस देह से मोह नहीं करता है। और न देहादि के मिथ्या अभिमान को ही करता है और न इस देह से कोई सम्बन्ध ही रखता है। वह मुझ परमात्मा में लीन रहता है। वह अपने वर्णाश्रम के धर्मानुसार मेरी आराधना करता है उसे मेरे तत्वज्ञान की प्राप्ति होने पर परम शांति ब्रह्म तथा कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य तत्व से यह जानता है कि आत्मा, मन, शरीर ज्ञान तथा क्रिया आदि का साक्षी होते हुए भी उनसे अलग रहता है वह मोक्ष को पा लेता है। हे राजन्! आवागमन तो लिंग शरीर का ही है इसका सम्बन्ध आत्मा से कुछ भी नहीं है। अतः तुम इस लिंग शरीर से मोह त्याग कर प्रजा की रक्षा करो। राजा का धर्म प्रजा की रक्षा करना है उसका पालन करना है प्रजा के धर्म का छटवाँ भाग राजा को प्राप्त होता है। किन्तु जो राजा प्रजा पर कर तो लगाता है किन्तु उस का धर्म से पालन नहीं करता है तो उसका पुण्य प्रजा छीन लेती है तथा पुण्य क्षीण होजाता है। हे राजन्! तुम मेरे परम भक्त हो तुम से मैं अति प्रसन्न हूँ तुम्हारी जो इच्छा हो वह बर माँग लो।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! भगवान् विष्णु के ऐसे प्रिय वचन सुनकर राजा पृथु अति प्रसन्न हुए। इन्द्र लज्जित होकर महाराज पृथु के चरणों पर गिरने लगे किन्तु राजा पृथुने उन्हें रोककर कण्ठ से लगा लिया। महाराज पृथु ने भगवान् विष्णु का पूजन किया। तब गद्गद् कण्ठ से इस प्रकार बोले—हे भगवन्! आप सभी के वर दाता हैं। ब्रह्मा आदि भी आप ही से वर प्राप्त करके सृष्टि रचते हैं। बुद्धिमान पुरुष इन सांसारिक भोगों का वर कभी नहीं माँगते अतः मेरी तो आप से यही प्रार्थना है कि यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे सहस्र कान दे दीजिए। जिनसे आपके गुणानुवाद, कीर्तन, कथा, भली प्रकार श्रवण करता रहूँ। इस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिये। हे प्रभो ! लक्ष्मी जी भी आपसे प्रेम करती हैं तथा आपकी सेवा करती हैं और मैं भी आपसे अनन्य प्रेम करता हूँ, तथा सेवा करता हूँ कहीं हम दोनों (लक्ष्मीजी तथा पृथु) में परस्पर शत्रु भाव उत्पन्न न हो जाय। किंतु हे देवाधि देव ! आप अपनी नित्य सेविका लक्ष्मी जी से उतना ही प्रेम करते हैं जितना मुझसे। अतः मुझे आशा है कि आप मेरा ही पक्ष लेंगे। आप तो अपने ही स्वरूप में रमण करने वाले हैं आप को लक्ष्मी जी से क्या प्रयोजन है। हे प्रभो ! मुझे तो केवल आप के चरण कमल के मकरन्द के पान करने की लालसा है। बस मुझे तो वरदान दीजिये जिस से मैं उस मकरन्द का पान करता रहूँ।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! राजा पृथु के ऐसे बचन सुन कर भगवान् अति प्रसन्न हुए। और मधुर मुस्कान के साथ ऐसे मीठे बचन बोले—हे राजन ! तुम्हारी अविचल भक्ति मेरे में है। मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। राजा पृथु ने उनकी बार बार पूजा की। भगवान् प्रसन्न होकर अन्तर्ध्यान हो गये। राजा पृथु अपनी राजधानी को चले गये।

—❀❀—

॥ इक्कीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—दीन्ह प्रजा उपदेश, पृथु, पालौ निज निज धर्म।
वेद बचन मानों सभी, करो सदा सत् कर्म ॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! महाराज पृथु का नगर अनेक प्रकार के एश्वर्य्यों की सामग्रियों से सुसज्जित था। वह भव्य नगर सोने के द्वार रङ्ग विरंगे झाड़ फनूस तथा सुगन्धित पुष्प बाटिकाओं आदि से शोभायमान था। महाराज पृथु ने अपने नगर में प्रवेश किया और न्याय पूर्वक पृथ्वी का शासन करने लगे। महाराज पृथु का निवास गंगा यमुना के मध्यवर्ती प्रान्त में था। उनका शासन सातों द्वीपों में था एक समय उन्होंने एक महा सभा की दीक्षा ली। उस महा सभा में सभी ब्रह्मर्षि देवर्षि राजर्षि तथा देवतागण पधार थे। इस बड़े समाज में महाराज पृथु सूर्य के समान प्रकाशमान थे। उनका शरीर विशाल तथा ऊँचा था। भुजायें

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by ... Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लम्बी शरीर का रंग गोरा, नेत्र कमल के समान, सुन्दर नासिका, सुन्दर मुख, सौम्य स्वरूप तथा कंधे ऊँचे थे। उनकी छाती चौड़ी थी। कटि भाग का पिछला भाग स्थूल तथा नाभि भ्रमर के समान थी। उनके पंजे उभरे हुए। घुँघराले तथा चमकीले काले बाल और गर्दन शङ्ख के समान थी। वे बहुमूल्य धोती तथा ऊपर से चादर ओढ़े हुए थे। महाशत्र की दीक्षा लेने के कारण इनका शरीर आभूषणों से रहित, प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त था। उन्होंने विशाल समाज में खड़े होकर एकबार सबकी ओर देखा और समाजको प्रसन्न करतेहुए शुद्ध व गम्भीर वाणी में इस प्रकार भाषण किया।

राजा पृथु ने कहा—हे सदस्य गण! ईश्वर आपका कल्याण करे। आप सभी महानुभाव मेरी प्रार्थना सुनें। मैं आप लोगों के सम्मुख कुछ निवेदन करूँगा। सापुत्रुषों के सम्मुख अपने हृदय का भाव प्रकट करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। आप सब लोगों ने मुझे मर्य्यादा के अनुसार प्रजा पालन हेतु राजा बनाया है। मैंने धर्म के अनुसार प्रजा का पालन किया है अतः मुझे उन्हीं लोकों की प्राप्ति होनी चाहिए जो कि वेद के अनुसार भगवान् के प्रसन्न होने पर जिन लोकों की प्राप्ति होती है। जोराजा प्रजा से केवल कर बसूल करता है और उसकी रक्षा नहीं करता है तो वह पाप का भागी होता है। अतः हे प्रजाजनो! आप लोग परस्पर शत्रु भाव त्याग कर भगवान् का भजन करते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहो। हे देव, महर्षि तथा पितरगणों! आप लोगतो मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें। आप लोगों को भी इस पुण्य का फल प्राप्त होगा। मरने के पश्चात् कर्त्ता, उपदेष्टा तथा समर्थक इन तीनों को समान फल प्राप्त होता है।

हे सज्जनों! विद्वानों के मत से कर्म का फल देनेवाले भगवान् ही हैं। जितने भी एश्वर्य युक्त तथा तेजोमय मनुष्य देखने में मिलते हैं वे सब उन्हीं के पुण्य का ही प्रताप है। मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, प्रियव्रत, अङ्ग प्रहलाद, बलि आदि जितने भी महान पुरुष हुए हैं उन सब के मतानुसार अर्थ धर्म, काम, मोक्ष, स्वर्ग नरक, आदि को देने वाले भगवान ही हैं। इस विषय में वेन आदि का जो मत भेद है वह मान्य नहीं है।

हे सज्जनो! उन्हीं के चरण नख से गंगाजी उत्पन्न हुई हैं जो समस्त

... Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पापों को नष्ट करती हैं। वे ही प्रभु सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करते हैं। आप सब लोग अपने वर्णाश्रमों के अनुसार मानसिक, वाचिक, कायिक, क्रियाओं से उनका ध्यान, स्तुति या पूजन करें। निश्चय ही आप लोगों को फल प्राप्त होगा। भगवान् के भक्त, ब्राह्मण, गौ, तथा साधुओं पर विशेष ध्यान रक्खा जावे। उनकी सेवा की जावे। उनके कुपित होने पर इस संसार में नर्क के अतिरिक्त और कोई फल प्राप्त नहीं होता है।

श्रीमैत्रेयजी बोले—महाराज पृथु के इस भाषण से सभी देवता, पितृ, ब्राह्मण, साधुजन अति प्रसन्न हुए और उनकी भूरि २ प्रशंसा करने लगे। वे बोले—हे राजन्। आपके प्रताप से नर्क में गए हुए आपके पिता बेन का उद्धार हो गया जिस प्रकार प्रहलाद ने अपने पापी पिता हिरण्यकश्यप का उद्धार कर दिया था। आपका सुयश इस पृथ्वी पर सदा फैलता रहे। आप अनन्त वर्ष तक जीवित रहें। आप धर्मात्मा राजा हैं। यह भाषण आपही के योग्य है। आप ब्राह्मण जाति में प्रविष्ट हो कर क्षत्रियों की रक्षा करते हैं। तथा क्षत्री जाति में प्रविष्ट हो कर ब्राह्मणों की रक्षा करते हैं। तथा इन दोनों जातियों में प्रविष्ट हो कर सारी प्रजा की रक्षा करते हैं। हम आप को नमस्कार करते हैं।

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

सनकादिक का राजा पृथु को उपदेश करना।

दो०--करहिं प्रजा पालन नृपति, सुनहिं कथा चितलाय।
तत्व ज्ञान उपदेश किय, सनकादिक तहँ आय॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! जिस प्रकार महर्षि, देवर्षि तथा प्रजाजन राजा पृथु की इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उसी समय वहाँ सनकादिक सिद्धेश्वर पधारे। राजा ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत पूजन किया और चरणोदक अपने सिर पर चढ़ा कर स्वर्ण सिंहासन पर उन्हें बैठाया। षोडशोपचार से उनका पूजन करके राजा पृथु बड़े विनय भाव से बोले—हे सिद्धेश्वरो! आज कौन सा मेरा पुण्य उदय हुआ है। जिसके कारण आपके दर्शन हुए हैं। अवश्य ही यह ब्राह्मणों की कृपा का फल है। हे ब्रह्म-
In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

...Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

षियो ! आप सम्पूर्ण लोकों में भ्रमण करते हैं किन्तु पापी लोग आपको नहीं देख सकते। जिन गृहों पर आप जल, फल, आसन आदि सेवा स्वीकार कर लेते हैं। वे दरिद्र होते हुए भी अति भाग्यशाली हैं। तथा जिन गृहों में में आपके चरणों का धोवन नहीं छिड़का गया है वे एश्वर्य शाली होते हुए भी दरिद्र के समान हैं। मैं आपका स्वागत करता हूँ।

श्री मैत्रेयजी बोले–राजा के ऐसे मीठे और गम्भीर बचन सुन कर श्री सनत्कुमार जी प्रसन्न होकर मुस्कराते हुए बोले–हे राजा पृथु ! आप सर्वज्ञ होते भी जगत के कल्याण के लिए मुझ से प्रश्न पूछने की इच्छा करते हो यह आप ही के योग्य है आपका प्रेम भगवान् में है ऐसा प्रत्येक का नहीं होता है। भगवान् की भक्ति तत्वज्ञान से भगवत् धर्म के आचरण से ज्ञान योग से परमात्मा की उपासना से हरि कीर्तन तथा उन की कथा सुनने से होती है कभी किसी की निन्दा न करने से एकांत सेवन से, यम नियमों का पालन करने से, उत्तम साधुओं का संग करने से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और यह अहङ्कारात्मक, लिंग शरीर, नष्ट हो जाता है और वह जीवात्मा और परमात्मा के भेद से रहित हो जाता है। जब तक अन्तःकरण में रूप उपाधि बनी रहती है तब तक पुरुष इन्द्रियों के विषय तथा जीवात्मा इन दोनों से सम्बन्ध उत्पन्न करने वाले अहङ्कार का अनुभव करता रहता है और इस जगत को इन्द्रियों का भोग मान लेता है। सदा विषय चिंतन में रहकर उन्हीं में फँसा रहता है फिर वह संसार में लिप्त होकर अपने ज्ञान तथा पूर्व स्मृति को भूल जाता है। ज्ञान के नाश करने पर वह अपना नाश कर बैठता है। धन तथा इन्द्रिय विषयों का निरन्तर चिंतन करते रहने से मनुष्य अपने आत्मबल को खो देता है और वह काल भगवान् के वशीभूत होकर निरंतर स्थावर, जंगम योनियों में जन्म लेता रहता है। अर्थ, धर्म, काम मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति में विषयों का चिंतन अति बाधक है। इन चारों पदार्थों में मोक्ष सर्व श्रेष्ठ है। हे राजन् ! भगवान् सभी प्राणियों में वास करते हैं। उन्हें तुम अपने में ही समझो कि वह मैं ही हूँ। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर वह आत्मा ईश्वरमय हो जाता है और शीघ्र ही भगवान् को प्राप्त कर लेता है तुम निरंतर

In Public Domain...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रीवासुदेव की शरण में रह कर उन का भजन करो उनकी नौका बना कर तुम अवश्य ही इस अगम्य भवसागर को पार कर लोगे। श्रीमैत्रेय जी बोले—परमज्ञानी सनत्कुमारजी के बचन सुनकर राजा पृथु अति प्रसन्न हुए।

राजा बोले—हे भगवन्! आपने मुझ दीन पर कृपा करके यह तत्व ज्ञान दिया है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ। हे ब्रह्मन्! यह शरीर, स्त्री पुत्रादि धन, कोषादि, पृथ्वी सब आप ही का है। मैं यह सब आपको अर्पण करता हूँ मेरे पास केवल हाथ जोड़ने के अतिरिक्त आपके लिए और क्या है। यह सब कुछ तो आपही का है। आपको मैं क्या दे सकता हूँ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—महाराज पृथु ने उन महर्षियों की अनेक प्रकार से पूजा की। वे सिद्धेश्वर सब के देखते २ आकाश मार्ग से चले गये। धर्मात्मा पृथु ने इस प्रकार सार्वभोम साम्राज्य, लक्ष्मी का भोग धर्म से, अहङ्कार शून्य होकर विषयों में आसक्ति न रख कर किया। उनकी भार्या अर्चि के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष द्रविण तथा वृक था। महाराज पृथु दुष्टों का दमन करते हुए इन्द्र के समान पृथ्वी का राज्य करने लगे।

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

दोहा—कीन्ह कठिन तप राउ पृथु, हरि में चित्त लगाय।
होय ब्रह्म में लीन तब, सुर पुर गये सिधाय॥

श्री मैत्रेयजी बोले—एक दिन राजा पृथु ने विचार कियाकि पृथ्वी का शासन करते हुए अब मेरी अवस्था ढल चुकी है जिसके लिए मैंने जन्म लिया था वह प्रजा पालन कर्तब्य भी पूरा हो चुका है। मैंने अर्थ, धर्म काम तीनों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करली है। केवल चौथा पुरुषार्थ मोक्ष ही प्राप्त करना है। अतः अब मुझे भगवत् भजन करना चाहिये। ऐसा विचार कर के उन्होंने सारी पृथ्वी अपने पुत्रों को सोंप दी और वे सपत्नी तपोवन को चले गये। वहाँ पर बान प्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके कठोर तप करने लगे। कुछ काल तक कन्द मूल फल खाते हुए फिर कुछ काल तक सूखे पत्ते खाये फिर केवल जल पीकर रहने लगे। गर्मियों में पञ्चाग्नि का सेवन करते थे। वर्षा ऋतु खुले मैदान में व्यतीत करते थे और जाड़ों में कण्ठ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तक जल में खड़े रहते थे। सम्पूर्ण नियम तथा संयम का पालन करते हुए कठोर तप करने लगे। जब तपस्या के प्रभाव से उनके कर्म फल नष्ट हो गए तब परब्रह्म परमात्मा में उनकी अचल भक्ति हो गई। उन्होंने अन्त काल में अपने चित्त को परमात्मा में स्थिर कर दिया। एड़ी से गुदा को बंद करके प्राण वायु को शनैः शनैः ऊपर उठाया और नाभि चक्र, हृदय चक्र वृत्ता स्थल कण्ठ तथा मस्तक में क्रमशः लेजाकर स्थित कर दिया। फिर उसे और ऊपर लेजाकर ब्रह्म रन्ध्र में स्थित करके अपने शरीर को त्याग दिया महाराज प्रथु की भार्या अर्चि भी उनके साथ कठिन तप कर रही थीं। उन्होंने पति की खूब सेवा की। जब महाराज पृथु के शरीर को चेतना शून्य देखा तब उन्होंने विलाप किया। तत्पश्चात् चिता बनाकर उस शव को चिता पर रख दिया फिर नदी में स्नान करके अपने पति को जलान्जलि दी और देवताओं की स्तुति करके चिता की तीन बार परिक्रमा की और अग्नि में प्रवेश कर गईं।

देवताओं ने पुष्पों की वृष्टि की तथा देवाङ्गनाऐं अति प्रसन्नता से इस प्रकार बोली—अरे! यह पतिव्रता स्त्री धन्य है जिसने अपने पति महाराज पृथु की मन, वाणी तथा शरीर से कठिन अति सेवा का है। यह उन्हीं लोकों को प्राप्त होगी जिन लोकों में लक्ष्मी सहित भगवान नारायण निवास करते हैं।

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे विदुर जी! महाराज पृथु ने भगवान का उत्तम धाम प्राप्त किया और उसी धाम को उनकी पत्नी अर्चि भी गईं। जो पुरुष इस पवित्र चरित्र को नियम पूर्वक शुद्ध चित्त से पढ़ता है अथवा सुनता है वह धर्मात्मा पृथु के लोकों को जाता है ब्राह्मण ब्रह्म तेज पाता है, क्षत्रिय राजा होता है, वैश्य सम्पत्ति प्राप्त करता है, और शूद्र साधु हो जाता है। स्त्री अथवा पुरुष कोई भी इसे तीन बार आदर पूर्वक सुनता है वह पुत्रवान, धनवान, कीर्तिवान, यशस्वी तथा विद्वान् हो जाता है और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त करता है।

—❋:❋—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ चौबीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—मैत्रेयजी वर्णन कियौ, पृथु का वंश महान।
शिव शंकर उपदेश किय, सभी प्रचेतन आन॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! धर्मात्मा पृथु के पाँच पुत्र थे। विजिताश्व, हर्यक्ष, धूम्रकेश, वृक, द्रविण। महाराज पृथु ने विजिताश्व को राजा बनाया। विजिताश्व अपने चारों छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य देकर यज्ञ कर्म में प्रवृत हो गए। उनकी पत्नी का नाम शिखण्डिनी था। उनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पावक, पवमान तथा शुचि वे तीनों अग्नियाँ थीं जो वशिष्ठजी के श्राप से उत्पन्न हुये थे। महाराज विजिताश्व ने इन्द्र से अन्तर्द्धान होने की विद्या प्राप्त की थी इस लिये उन्हें अन्तर्ध्यान भी कहते थे। विजताश्व के नमस्वती नाम की दूसरी भार्या से हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। विजिताश्व ने राजपाट छोड़ कर भगवान की आराधना के द्वारा दिव्यलोक प्राप्त किया।

राजा हर्विधान के द्वारा उनकी पत्नी हर्विधानी के गर्भ से वर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य तथा जितिव्रत छः पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज हर्विधान के पुत्र वर्हिषद्, बड़े धर्मज्ञ, याज्ञक, कर्मकाण्डी और योगाभ्यासी थे उन्होंने इतने यज्ञ किये कि पूर्व दिशाओं में पृथ्वीको कुशों से पाट दिया। उनका नाम "प्राचीनवर्हि" विख्यात हुआ। महाराज प्राचीनवर्हि ने समुद्र की कन्या शतद्रुति से पाणि ग्रहण किया। वह शतद्रुति ऐसी सुन्दरी थी कि उसके सौन्दर्य को देख कर अग्नि प्रदक्षिणा के समय अग्निदेव मोहित हो गये थे। उस नवोढ़ा के नूपुरों की झनकार से देवता, असुर, गन्धर्व मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य सभी मोहित हो गये। उस सुन्दरी के गर्भ से राजा प्राचीनवर्हि के द्वारा दस पुत्र उत्पन्न हुये जिनका नाम प्रचेता रक्खा गया। वे सब एक ही से रूप गुण, और विद्या में थे। उन्होंने समुद्रमें प्रवेश करके दस सहस्त्र वर्ष तक तपस्या करके भगवान श्री हरिको प्रसन्न किया मार्ग में उन्हें भगवान शंकरके दर्शन हुए थे। उन्होंने उन्हें भगवान की प्राप्ति की विधि तथा एक स्तोत्र बताया था। जिसके द्वारा उन्हें भगवान प्राप्त हुएथे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री विदुर जी बोले—ब्रह्मन् ! भगवान् शंकरजी ने उन प्रचेताओं को कौन सी विधि बतलाई और वह कौन सा स्तोत्र था जिसके द्वारा उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हुई।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी। जब प्रचेता लोग तपस्या के लिये जा रहे थे, तब मार्ग में एक सरोवर से निकलते हुए भगवान शंकर दर्शन हुये। उन्होंने भगवान् शंकर को प्रणाम किया। तब भगवान् शंकर के प्रसन्न होकर बोले—हे प्रचेताओ ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मन की इच्छा मैं जानता हूँ। उसकी सिद्धि के लिये मैं तुम्हें यह स्तोत्र सुनाता हूँ। इसका निरन्तर जप करने से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी।

भगवान् रुद्र इस प्रकार स्तुति करने लगे—हे परमात्मा ! आपका जन्म आत्मज्ञानियों के कल्याण के लिये होता है। आप सदा अपने परमानन्द स्वरूप में लीन रहते हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। हे पद्मनाभ! आप समस्त लोकों के रचने वाले हैं। आप तन्मात्रा तथा इन्द्रियों के स्वामी हैं। आप चित्त के स्वामी स्वयं प्रकाश वासुदेव हैं। आपकी मुखाग्नि से संसार का संहार होता है। आप ही संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सूर्य, अग्नि, पितर तथा देवता हैं। आप को नमस्कार है। आप ही वायु, आकाश, बैकुण्ठधाम हैं आप ही दुःखदायक मृत्यु हैं, तथा आप ही योगयोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं। आपही कर्त्ता कारण और कर्म रूप से ब्रह्मा विष्णु और रुद्र हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं।

हे परमात्मा ! हमें आपके दर्शनों की इच्छा है हमें अपने मनोहर रूप के दर्शन दीजिये। आपका श्यामवर्ण है चार भुजायें हैं। कमल के समान मुख तथा कमल दल के समान बड़े २ नेत्र हैं सुन्दर भौं हैं, मनोहर नासिका तथा दन्तपंक्ति है। आपके अनमोल कपोल हैं। मुख मण्डल की कांति करोड़ों सूर्यों समान है आपकी घुँघुराली अलकें, मकराकृत मण्डल अति सुन्दर है। शरीर पर पीताम्बर शोभाययान हैं। हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं। कण्ठ में कौस्तुभ मणि तथा बनमाला शोभायमान है। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह सुशोभित है। आपके अङ्ग प्रत्यङ्ग आभूषण से युक्त होकर करोड़ों कामदेवों की छवि को लज्जित

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करते हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। हे परमात्मा ' आप अपनी माया से अनेकों रूप धारण करते हैं। आप ही आदि पुरुष तथा सृष्टि के रचियिता हैं। अपनी माया शक्ति से सोई हुई सृष्टि को पुनः जागृत करते हैं तथा सत्य, रज, तम तीन गुणों से महतत्व, अहंकार तथा पाँच भूतोंकी उत्पत्ति करके जगत की रचना करते हैं।

प्रलय काल में आप ही लोकों का संहार करते हैं। आप अनुमान से ही ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं। आप काल रूप हो कर सब को चाट जाते हैं। हे भगवन्! हम आपके आश्रय हैं।

हे राजकुमारो ! तुम सब लोग शुद्ध हृदय से अपने धर्म का पालन करते हुए भगवान् के इस स्तोत्र का जप करो। और स्तवन तथा चिन्तन द्वारा उनकी पूजा करो। मैंने तुम्हें यह योगोपदेश नाम का उपदेश वर्णन किया है यह स्तोत्र प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने हम सब प्रजापतियों को सुनाया था। जिस के प्रताप से हम लोग सृष्टि रचने में समर्थ हुए। जो पुरुष नित्य प्रति अस्त काल में श्रद्धा पूर्वक इस स्तोत्र का जाप करेगा वह इस दुस्तर संसार सागर से पार हो जावेगा और सुगमता से भगवान् को प्राप्त कर लेगा। उसकी जो इच्छा होगी वह अवश्य इस स्त्रोत्र द्वारा पूरी होगी। इसको श्रद्धा पूर्वक ऊषा काल में उठ कर हाथ जोड़ कर सुनना तथा सुनाना चाहिये। इस से बढ़ कर कर्म बन्धनों को छुड़ाने वाला और कोई उपाय नहीं है। अतः राजकुमारो ! तुम एकाग्र चित्त से इस स्त्रोत्र का जप करते हुए भगवान् की तपस्या करो अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी।

॥ पच्चीसवाँ अध्याय ॥

❀ पुरंजनोपाख्यान ❀

दो०—प्राचीनवर्हि नृप को दियो, नारद मुनि आख्यान।
जीव पुरंजन रूप में, पावत दुःख महान॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी ! भगवान् शंकर के द्वारा उपदेश प्राप्त करके उन प्रचेताओं ने दस सहस्र वर्ष जल में खड़े होकर तपस्या की उधर एक दिन राजा प्राचीनवाह के पास नारदजी गए और उन्होंने अध्यात्मविद्या का उपदेश किया। नारद जी ने कहा—हे राजन् ! तुम

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जो यह यज्ञादि करते हो उससे कोई लाभ नहीं है। यह तो केवल स्वर्गकी प्राप्ति का साधन है, किंतु कर्म बन्धन से मुक्ति का साधन नहीं है। तुमने हजारों पशु यज्ञ में बलि दिये हैं वे सब आकाश में तुम्हारी मृत्यु का अवसर देख रहे हैं। तुम्हारी मृत्यु होने पर वे अपने लोहे के सीगों से तुम्हें छेदेंगे। इस विषय में मैं तुम्हें एक प्राचीन पुरञ्जनों का व्याख्यान सुनाता हूँ।

प्राचीन काल में पुरंजन नाम का एक राजा था। अविज्ञात उसका मित्र था। उस पुरंजन राजा के सभी कार्य बड़े रहस्यमय होते थे। वह पृथ्वी पर घूमघूम कर अपने रहने योग्य स्थान खोजने लगा। उसको भोग भोगने की इच्छा थी। उसे अपने योग्य कोई स्थान न मिला। उसने एक दिन हिमालय पर्वत के दक्षिणी प्रान्त आर्यावर्त्त में नौ द्वारों का एक नगर देखा। वह नगर अनेक प्रकार के बगीचों, परकोटों, अट्टालिकाओं आदिसे सुशोभित था। उस में भोग की सभी सामग्रियाँ उपस्थित थीं। उस नगर के बाहर वृक्ष लताओं का सुन्दर उपवन था। उस के मध्य में एक सरोवर था। जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी क्रीड़ा करते थे। राजा पुरंजन ने दैव वश वहाँ एक सुन्दरी को देखा। उस सुन्दरी के साथ दस सेवक थे। प्रत्येक सेवक के नीचे सौ सौ नायिकाएँ थीं। पाँच फण वाला सर्प उस सुन्दरी का द्वारपाल था। उसकी अवस्था सोलह वर्ष की थी। उसके अङ्ग प्रत्यंग अति सुन्दर थे रंग साँवला, तथा पीले रंगकी साड़ी पहिने हुए थी, वह पति की खोज में थी। उस सुन्दरी को देखकर पुरञ्जन मोहित होगया। और बोला—हे सुन्दरी! तुम किस की कन्या हो, कहाँ रहती हो इस नगर में क्यों आई हो? तुम्हारे यह दस सेवक कौन हैं। ये स्त्रियाँ कौन हैं और यह सर्प कौन है? तुम उमा, रमा, ब्रह्माणी तो नहीं हो! किन्तु तुम इन में से तो मुझे कोई प्रतीत नहीं होती हो। क्यों कि लक्ष्मी भगवान विष्णु के पास रहती हैं। यदि देवांगना होती तो तुम्हारे पैर पृथ्वी को स्पर्श न करते मैं बड़ा वीर और पराक्रमी हूँ। तुम्हारा पति बनने योग्य हूँ। तुम मुझे अपना पति बना लो।

श्री नारदजी बोले—राजा पुरंजन के ऐसे मधुर बचन सुन कर रमणी अति मोहित हुई और बोली-हे नरोत्तम! हमारे उत्पत्ति कर्त्ता का हमें पता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नहीं है और न हमें अपने नाम तथा गोत्र का पता है। इस पुरी के अतिरिक्त हमें और कुछ पता नहीं है। यह पुरुष मेरे मित्र तथा ये स्त्रियाँ मेरी सखी हैं। यह सर्प हमारी पुरी का रक्षक है। हे नर श्रेष्ठ! आपका कल्याण हो आपको विषय भोगों की इच्छा है। इसकी पूर्ति के लिए मैं तथा मेरे यह सेवक प्रस्तुत हैं। आप पुरी में सौ वर्ष तक निवास कीजिए। मैं आपके साथ रमण करूँगी। ये सन्यासी, ब्रह्मचारी लोग विषय भोगों को जानते ही नहीं हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष का दाता यह गृहस्थाश्रम ही है, मेरी जैसी स्त्री आपको प्राप्त नहीं हो सकती है। नारदजी बोले–हे राजन् वे दोनों स्त्री पुरुष उसी नगर में भोग भोगने लगे। हे राजन्! उस नगरी में सात द्वार ऊपर और दो द्वार नीचे थे, इन में पाँच पूर्व की ओर, एक दक्षिण की ओर, एक उत्तर की ओर, और दो पश्चिमकी ओर थे। राजा पुरञ्जन अपने सेवक विषूचीन के साथ जब अंतःपुर में जाता तो वहाँ स्त्री पुत्रादि के मोह में बड़ा आनन्द प्राप्त करता था। वह कामासक्त होकर उस रमणी के जाल में फँसा रहता था। मदिरा पान, गाना बजाना, हँसना खेलना आदि सभी कार्यों में दोनों अति आनन्द लेते थे। जब उसकी पत्नी शोकाकुल हो जाती थी तो वह भी दुखी होकर रोने लगता था। इस प्रकार वह स्त्री के वशीभूत हो उसी की आज्ञा का पालन करता था।

॥ छब्बीसवाँ अध्याय ॥

राजा पुरंजन का बन में शिकार खेलने जाना और रानी का क्रोधित होना।

श्री नारदजी बोले–हे राजन्! एक समय पुरंजन अपने ग्यारहवें सेनापति को साथ लेकर पाँच अश्वों के द्रुतगामी रथ में सवार होकर पञ्चप्रस्थ नाम के बन में शिकार खेलने गया। उस रथ में दो पहिये, दो बम्ब, एक धुरी, तीन ध्वज दण्ड, पाँच डोरियाँ, एक लगाम, एक सारथी, एक बैठने का स्थान, पाँच आयुध, दो जुये, सात पैंदे जुड़े हुए थे। उसकी चाल पाँच प्रकार से थी। उसका सब सामान सुनहला था। राजा पुरंजन अपनी रानी को एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ता था, लेकिन उस दिन वह अकेला ही उसकी परवाह न करके बनके लिए मृगया हेतु चला गया। उसकी आसुरी वृत्ति बढ़ी हुई थी। उसका चित्त दया शून्य तथा कठोर था। उसने

In Public Domain. ... Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अपने पैने वाणोंसे अनेकों निर्दोष वन्य पशुओं को मार डाला। हे राजन् शास्त्र में पशु हिंसा करना निषेध है। मनुष्यों की इस बुरी प्रवृत्ति को रोकने के लिए यह नियम बना दिया गया है कि शास्त्र विहित कर्मों के हेतु वन्य पशुओं को आवश्यकता के अनुसार मारें, व्यर्थ पशु हिंसा न करे। जो पुरुष कर्मानुष्ठान के लिए ऐसा करते हैं उन्हें पाप नहीं लगता। लेकिन जो मनमाना कर्म करते हैं और अभिमान के वश रहकर हिंसा कर्म करते हैं वे अधर्म योनियों में जन्म लेते हैं। उस पुरंजन ने अनेकों जीवों की हिंसा की। उसकी निर्दयता पूर्ण हिंसा से सभी अति दुःखी हुए। पुरंजन हिंसा करते करते बहुत थक गया, तब वह भूखा प्यासा अपने महल को लौटकर आया। तत्पश्चात् वह स्नान भोजन, अङ्गराग लेपन आदि से निवृत हुआ तब उसे अपनी प्रियतमा का स्मरण आया वह मदोन्मत्त होकर अपनी प्रिया को ढूँढ़ने लगा, किन्तु वह कहीं दृष्टि न आई। तब वह रनिवास की सेविकाओं से पूछने लगा। हे नारियों ! वह घर की शोभा तथा लक्ष्मी मेरी प्रिय भार्या कहाँ चली गई, उसके बिना घरकी यह समस्त सामिग्री सुहावनी नहीं लगती है।

स्त्रियों ने कहा—हे राजन् ! आपकी प्रियतमा कुपित होकर पृथ्वी पर पड़ी हुई हैं।

श्री नारदजी बोले—हे राजन् ! उस राजा पुरन्जन का सम्पूर्ण ज्ञान उस स्त्री सङ्ग के कारण नष्ट हो गया था। जब उसने अपनी स्त्री को बुरी दशा में पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा तो वह व्याकुल होकर अति दुखी हृदय से उसे समझाने लगा। उस पुरन्जन ने उसके चरण छुये। उसे गोद में बैठाला और बड़े प्रेम से इस प्रकार बोला—हे प्रिये ! सेवाकों को शिक्षा के हेतु अवश्य दण्ड देना चाहिए, क्योंकि स्वामी का दिया हुआ वह दण्ड शिक्षा ही है उस पर स्वामी की कृपा ही है अतः सेवकों के ऊपर तुम्हारा यह क्रोध उचित ही है। हे सुन्दरी ! अब तुम अपना क्रोध त्यागकर मुझ सेवक पर कृपा करो और मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर देखो। आपका मलिन मुखार-विंदु अच्छा प्रतीत नहीं होता। मुझसे जो अपराध हुआ हो उसे क्षमा करो ब्राह्मणों को छोड़कर यदि किसी अन्य से कोई आपका अपराध हुआ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तो उन्हें मैं अवश्य दण्ड दूँगा । तुम्हारा अपराध करके त्रिलोकी में कोई भी जीवित नहीं रह सकता । मैंने अभी तक कभी भी तुम्हारा यह कान्तिमान मुख कान्तिहीन डरावना नहीं देखा है । मैं तुम्हारे बिना पूछे आखेट के लिये अवश्य चला गया था, यही मेरा अपराध है । मुझे अपना समझ कर क्षमा करो ।

॥ सत्ताईसवाँ अध्याय ॥

पुरन्जन नगर पर चण्ड वेगका आक्रमण तथा काल कन्या का चरित्र ।

श्रीनारदजी बोले-हे राजन् राजा पुरन्जन के इस प्रकार अनुनयविनय करने पर वह सुन्दरी अति आनन्दित होकर अपने हावभाव से पुरन्जनको लुभाती हुई प्रसन्न हुई उसने स्नानादि करके अपना शृङ्गार किया, और वह भोजन आदि से निवृति होकर राजाके निकट आई । राजाने प्रसन्न होकर उसे आलिङ्गन किया और अनेक प्रकार की रहस्यमयी बातें होने लगीं । इसी प्रकार राजा पुरन्जन के दिन रात व्यतीत होने लगे और काल की गति का कुछ भी पता न चला । इस प्रकार बिहार करते हुए उस कामी पुरन्जन की युवा अवस्था आधे क्षण के समान समाप्त हो गई । हे राजन् ! उस पुरन्ञ्जन से ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ कन्यायें उत्पन्न हुईं । ये सब पौरंजनी नाम से प्रसिद्ध हुईं । इसी काल में राजा पुरंजन की आयु का आधा भाग समाप्त हो गया । उस राजा ने पुत्र तथा पुत्रियों का विवाह योग्य वधुओं तथा वरों के साथ कर दिया उस पाञ्चाल राज्य के पुत्र पौत्रों से वह पाञ्चाल देश भर गया । फिर उस राजा ने तुम्हारी भाँति अनेकों यज्ञों की कामना से पशु हिंसा कर के देवता, पितर, आदि की पूजा की । वह अपने आत्म कल्याण के लिये अनेकों हिंसामय यज्ञ करने लगा । अन्त में वृद्धावस्था आ गई । जो कामी पुरुषों को अच्छी नहीं लगती है ।

हे राजन् ! चण्डवेग नाम के एक गन्धर्व ने जिसके आधीन तीन स साठ महाबली गन्धर्व तथा कामासक्त कृष्ण और शुक्ल वर्ण की उतनी ही गन्धर्विणियाँ थीं । ये सभी समय समय पर उस पुरंजन की नगरी को लूटने लगे । उनको उस पाँच फण वाले अजगर ने रोका । वह अकेला ही अजगर सातसौ बीस गन्धर्व तथा गंधर्विणियों से संग्राम करता रहा । वह अजगर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लड़ते२ थक गया।पुरंजनको अब अधिक चिन्ता हुई वह प्रजा से कर लेकर विषय भोगों में लिप्त रहता था।उसे इन विपत्तियों का कुछ भी पता नहीं था।

हे राजन्! उसी समय काल की कन्या जरा वरकी खोज करती हुई उधर आ निकली। एक बार वह मुझे भी मिली, किन्तु मैंने उसे अस्वीकार कर दिया तब उसने मुझे शाप दिया कि तुम एक स्थान पर दो घड़ी से अधिक न ठहर सकोगे। तब उस कन्या ने यवनराज भय को पति बनाने की चेष्टा की, तब भय ने जरा कन्या से कहा कि तू मृत्युलोक में जा और मेरी सेना लेजा कर सारे लोक को भयभीत करके भोग। तेरे साथ मेरा भाई प्रज्वर भी रहेगा तुम दोनों की सहायता से मैं सारे लोक पर राज्य करूँगा।

॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय ॥

पुरंजन का स्त्री योनि में जाना तथा अविज्ञात के उपदेश से मुक्त होना।

श्री नारदजी बोले—हे राजन्! यवनराज भय के सेवक और उसका भाई प्रज्वर तथा काल कन्या जरा इस लोक में विचरण करने लगे। एक दिन घूमते २ पुरंजनपुरी में आ धमके। काल कन्या के सङ्ग से पुरंजन भी श्रीहीन हो कर निर्बल हो गया था। उसके सम्पूर्ण बल वैभव को गन्धर्वों ने पहिले ही लूट लिया था। अब उसके पुत्र, पौत्र, पुत्रबधू, भी अनादर की दृष्टि से देखने लगे। उसका पांचाल देश शत्रुओं ने ऊजड़ कर दिया। उस पुरंजन की केवल ममता ही स्त्री पुत्रादि में रह गई थी। इसी बीच में यवनराज के भाई प्रज्वर ने उसका नगर जला दिया। नगर को जलता हुआ देख कर उसके सभी सेवक कुटुम्बी भी उसे छोड़ कर भाग निकले। अब पुरंजन दुखी होकर रोने लगा मैं मेरे पन के भाव से उसकी बुद्धि मारी गई थी। वह सोचने लगा कि मेरे मरने के बाद मेरी स्त्री अकेली इतने बड़े कुटुम्ब का किस प्रकार पालन करेगी? वह मेरी बड़ी सेवा करती थी। मेरी आज्ञा का पालन करती थी। मेरे पीछे उसकी न जाने क्या दशा होगी। इसी प्रकार विचार करके वह पुरंजन व्याकुल होने लगा।

हे राजन्! ज्ञानी को इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए किंतु उसका ज्ञान नष्ट हो चुका था। उसको बलपूर्वक यवनराज के सेवकों ने उसे बाँ

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding by IKS

लिया और उसे पशु की भाँति बाँध कर ले चले। उस सर्प ने बहुतेरा रोका किन्तु वह असमर्थ रहा तब वह भी साथ चल दिया। उस पुरंजन ने जिन २ पशुओं को निर्दयता से मारा था वे सब उसे अपने तीक्ष्ण सींगों तथा दाँतों से मारने, खाने, काटने लगे। पुरन्जन को अन्त समय में अपनी स्त्री का ध्यान रहा था अतः वह स्त्री योनि में विदर्भ राज की कन्या वैदर्भी के रूप में उत्पन्न हुई। उस का विवाह पाण्डव नरेश मलयध्वज के साथ हो गया। सात पुत्र उत्पन्न हुए। तथा प्रत्येक पुत्रके दस दस करोड़ पुत्र हुए। मलयध्वज की बड़ी पुत्री का विवाह अगस्त्य मुनि के साथ हुआ। उस के द्रढ़च्युत तथा द्रढ़च्युत के इध्मवाह पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजा मलयध्वज ने पृथ्वी अपने पुत्रों में बाँट कर आप स्वयं तपस्या करने बन को चले गये। उनके साथ वैदर्भी भी गई, जो सदा सेवा करती थीं। राजा मलयध्वज ने कठिन तपस्या कर के भगवान् श्रीहरी की आराधना की। एक दिन वे भी चल बसे, तब वह वैदर्भी अकेली रह गई, और पति शोक से व्याकुल हो कर रोने लगी। जब वह विलाप कर रही थी तब उसके पास एक ब्राह्मण आया।

ब्राह्मण बोला—हे मनस्वनि। तू कौन है, किस की बेटी है, जिस के लिए तू विलाप कर रही है, यह कौन है? तू मुझे भूल गई है मैं तेरा पुराना मित्र हूँ। तुम्हें याद होगा कि तुम्हारा एक अविज्ञात नाम का मित्र था। हे सुभगे! पहिले हम तुम दोनों का निवास एक ही स्थान पर था। किन्तु तुम विषय भोगों की लालसा से मुझे त्याग कर पृथ्वी पर चले आये। तुमने नवछोर का महल देख कर उस में निवास करना स्वीकार कर लिया। उस में एक द्वारपाल, तीन परकोटे, छः वैश्यकुल तथा पाँच बाजार थे। उसकी स्वामिनी एक सुन्दरी थी।

हे राजन! इन्द्रियों के पाँच विषय पाँच बगीचे, नव इन्द्रियें छिद्र द्वार थे, अन्न, तेज, जल तीन परकोटे थे। मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ छः वैश्यकुल थे, कर्म करने वाली पाँच कर्मेन्द्रियाँ पाँच बाजार थे बुद्धि उस नगर की स्वामिनी थी। हे देवी! तुम न विदर्भराज की बेटी हो और न यह पड़ा हुआ मलयध्वज तुम्हारा पति है, पहिले तुम पुरंजनी के पति भी नहीं थे, पहले तुम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पुरुष रूप में थे। अब तुम स्त्री रूप में हो। यह मेरी सब कुछ माया है। वास्तव में तुम न पुरुष थे, न स्त्री थे, तुम हंस रूपी जीवात्मा थे। तुम अपने वास्तविक स्वरूप का ध्यान करो। मैं ईश्वर हूँ तुम जीवात्मा हो, तुम विचार पूर्वक देखो तुम में और मुझ में कोई भेद नहीं है। जो तुमहो वही मैं हूँ। मुझमें तुम में समानता है। तुम यह कहोगे कि तुम इन बातों को जानते हो और मैं नहीं जानता हूँ। तो इसका कारण केवल उपाधि भेद है। एकात्मा माया के आधीन है, इसलिए वह अल्पज्ञ है, दूसरा माया का अधीश्वर होने के कारण सर्वज्ञ है। हम दोनों में यही भेद है, मैं सर्वज्ञ हूँ, तुम अल्पज्ञ हो ईश्वर और जीवात्मा में यही भेद है। हे राजन्! परमात्मा रूपी ब्राह्मण के इस प्रकार समझाने पर भटके हुए जीवात्मा को भूला हुआ ज्ञान पुनः प्राप्त हो गया।

॥ उन्तीसवाँ अध्याय ॥

पुरंजनो पाख्यान का अर्थ समझाना

राजा प्राचीनवर्हि बोले—हे ब्रह्मन्! मैं आपके इस तात्पर्य को भली प्रकार न समझ सका। कृपा कर इसका अर्थ समझाइए। श्री नारदजी बोले—हे राजा! वह पुरंजन नाम का जो राजा था वह जीवात्मा है। जो अपने रहने के लिए अनेक शरीररूपी नगर बनाता है। इसीलिए उसका नाम पुरंजन कहा गया। वह अविज्ञात नाम का उसका मित्र परमात्मा है। नौ द्वार दो हाथ दो पैरों का यह मनुष्य शरीर है। बुद्धि तथा अविद्या पुरंजनी नाम की स्त्री समझो। दस इन्द्रियाँ उसके मित्र हैं। इन्द्रियों की प्रवृत्ति इस पुरंजनी की सहेलियाँ है। पाँच प्रकार की वायु पाँच फणों का सर्प है। मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ ग्यारह बलवान योद्धा हैं, शक इत्यादि पाँचों विषय पाँचाल देश नाम से कहे गये हैं। जिस देश में यह नव द्वारों का नगर स्थित है उस नगर में नौ छिद्र अर्थात् द्वार हैं, दो नेत्र गोलक, दो नासिका छिद्र, दो कर्ण छिद्र, एक मुख छिद्र, एक लिङ्ग और एक गुदा ये नव द्वार हैं। शरीर रूपी यह रथ है। जिस पर सवार होकर यह जीवात्मा शिकार को गया। उसमें ज्ञानेन्द्रिय रूपी पाँच अश्व लगे हुए हैं। पुण्य, पाप दो प्रकार के पहिये हैं। तीनों गुण सत्व, रज, तम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तीन ध्वजा हैं, पाँच प्रकार की वायु डोरियाँ हैं। मन बाग डोर है, तथा बुद्धि उसको चलाने वाला सारथी है। हृदय निवास स्थान है। सुख, दुःख जुये हैं। इन्द्रियों के विषय अस्त्र, शस्त्र हैं। सप्त धातु तथा त्वचा पर्दे हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ उस रथ की चाल हैं। इस रथ पर बैठकर वह जीवात्मा मिथ्या विषयों की ओर दौड़ लगाता है और इन इन्द्रियों के विषयों को भोगता है।

वह सम्वत् सर चण्डवेग नाम का गन्धर्व है। उसके आधीन तीन सौ साठ गन्धर्व रूपी दिन हैं तथा तीन सौ साठ गन्धर्विणियाँ रूपी रात्री हैं। वे क्रम से चक्कर लगाकर मनुष्य की आयु को नष्ट करते हैं।

वह काल कन्या वृद्धावस्था है जिसे कोई पसन्द नहीं करता और जो मृत्यु की बहिन है। ज्वर आदि रोग उस मृत्यु के भाई हैं। यह जीवात्मा अज्ञानवश दैविक; और दैहिक तथा भौतिक तापोंको भोगता है,और सौ वर्ष तक शरीर में पड़ा रहता है। यह निगुण होते हुए भी मैं मेरे पन के अभिमान से कर्मबन्धन में बँध जाता है, और स्वयं प्रकाश होते हुए भी अज्ञानवश परमात्मा को भूल जाता है, और प्रकृति के गुणों में बँध जाता है। प्रकृति के गुणों के कारण वह अभिमान के बशीभूत हो जाता है, और सात्विक राजस, कर्म करने लगता है। उसी के अनुसार योनियों में जन्म लेकर चक्कर लगाता है। सात्विक कर्मों से उत्तम लोक प्राप्त करता है। राजस तथा तामस गुणों से अनेक प्रकार की योनियाँ भोगता है। कभी वह जीवात्मा मनुष्य तो कभी स्त्री, कभी पशु तथा पक्षी इस प्रकार वह चौरासी लाख योनियों को भोगता है। उसकी आधि दैविक, आधि भौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीन प्रकार के कष्टों से कभी मुक्ति नहीं हो सकती है। वह जो जो कार्य करता है उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। केवल कर्म बन्धन से मुक्त होने का उपाय निष्काम भाव से कर्म करते हुये परमात्मा में सुदृढ़ भक्ति होना है। यह भक्ति भाव भगवान की कथाओं, उनके गुणानुवाद से उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण प्रजापति ब्रह्मा, शङ्कर, मनु सनकादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारी, महर्षि देवर्षि कर्म कुशल होने पर भी तप उपासना तथा समाधि के द्वारा उन सर्वात्मा प्रभु को ढूंढ़ २ कर थक गये लेकिन उसे आज तक न प्राप्त कर सके।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वेद विहित जितने भी यज्ञादि कर्म हैं, वे सब भिन्न भिन्न देवताओं के रूप में परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं, लेकिन उन के स्वरूप को वे भी नहीं जानते हैं। भगवान् जिस जीव पर जिस समय कृपा करते हैं उसी समय वह कर्म बन्धन से छूट जाता है।

हे राजन् ! मैंने तुमको तुम्हारे प्रश्न का उत्तर अब तक समझाया है अब मैं तुम्हें तुम्हारे कल्याण के लिये एक गुप्त साधन कहता हूँ उसे सुनो एक पुष्प बाटिका में एक हिरण मस्त हो कर अपनी हिरणी के साथ विहार करता फिरता है। वह नई नई दूब चबाता है। उस के सामने फाड़ खाने वाले भेड़िये उसे मारने को ताक लगा रहे हैं। उस के पीछे एक व्याध बाण चढ़ा कर मारने को प्रस्तुत है किन्तु वह हिरण अपने विषय भोगों के आनन्द में इतना मस्त है कि उसे इन बातों का पता ही नहीं है। हे राजन् इस का तात्पर्य सुनों, वह काल ग्रसित हिरण आप ही हो। तुम पुष्पों की भाँति इन स्त्रियों के सौन्दर्य में लुब्ध रहते हो। इन स्त्रियों का निवास स्थान यह राज महल पुष्प वाटिका है। तुम विषय भोगों को भोगते रहते हो तथा अपने मन को उन स्त्रियों में लगा रक्खा है। ये भेड़िया रूपी दिन रात तुम्हारी आयु को क्षीण करते रहते हैं, पीछे काल वाण लेकर मारने को प्रस्तुत है। किन्तु तुम स्त्री, पुत्र आदि में इतने मस्त हो कि तुम्हें काल की कोई परवाह नहीं है। अब तुम गृहस्थ को त्याग कर परमात्मा में लीन हो जाओ। राजा प्राचीनवर्हि बोले-हे ब्रह्मन् ! आपने जो उपदेश मुझे दिया है वही जीव के कल्याण का मार्ग है।

वे आचार्य लोग वास्तव में कल्याण मार्ग को नहीं जानते। इस लिए इन्होंने मुझे यह उपदेश नहीं किया, उन्होंने मुझे कर्म काण्ड में ही अब तक रक्खा। अब मैं इन को त्याग कर कर्म रहित धर्म का पालन करूँगा।

श्री नारद जी बोले-हे राजा ! जिस लिंग शरीर से मन के द्वारा मनुष्य कर्म करता है, वह मरने के पश्चात् भी उस के साथ रहता है। इस लिए वह लिंग शरीर अपरोक्ष रूप से परलोक में स्वयं उसी शरीर से किये कर्मों का फल भोगता रहता है। मैं मेरेपन के अभिमान से अपने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर्त्ता मान कर यह जीव जो कर्म करता है उनका फल उन पर आरोपित हो जाता है, और वह उसे भोगने पड़ते हैं। कभी २ ऐसा देखा गया है, कि मनुष्य ने इस जन्म में कोई कर्म नहीं किया है। लेकिन उसे उस का फल भोगना पड़ता है। तो इसका कारण यह है कि उसने पूर्व जन्म में वह कर्म किया है जिस का फल उसे भोगना पड़ा है। हे राजन्! मन के द्वारा मनुष्य के तीनों जन्मों का पता चलता है। कभी २ मनुष्य स्वप्न में ऐसी अनेक बातें देखता है जो उसने इस जन्म में कभी नहीं देखीं तो इस का कारण यही है कि उसने पूर्व जन्म में ये वस्तुएं अवश्य देखी हैं। जीवात्मा सदा मन के साथ रहता है बुद्धि, मन, इन्द्रियों से युक्त यह लिंग देह बना हुआ है, जब तक जीवात्मा के अन्दर से मैं मेरेपन का अभिमान दूर नहीं हो जाता, तबतक उसे जन्म, मरण के चक्कर में फँसा रहना पड़ता है।

हे राजन्! पंच तन्मात्राओं से निर्मित सोलह तत्वों वाला यह शरीर लिंग शरीर कहलाता है, यह चेतन शक्ति से युक्त होने पर जीवात्मा कहा जाता है। यही भिन्न २ शरीरों को धारण करता है, तथा त्यागता है। यही जीवात्मा हर्ष, शोक, दुःख, सुख आदि का अनुभव करता है। जिस प्रकार तृण आदि में रहने वाली जौंक जब तक दूसरे तृण को प्राप्त नहीं कर लेती तब तक पहले तृण को नहीं छोड़ती है। उसी प्रकार जीवात्मा शरीर त्याग कर जब तक दूसरा ग्रहण नहीं करता, तब तक पहले शरीर के अभिमान को नहीं त्यागता हैं। अतः यह लिंग शरीर ही जन्म ग्रहण करने का कारण होता है।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुर जी! राजा प्राचीनवर्हि ने नारद जी से जीव तथा ईश्वर के शरीर का ज्ञान प्राप्त कर के अति हर्ष प्रकट किया और सम्पूर्ण राजपाट त्याग कर तपस्या के लिए बन को चले गये। हे विदुर जी! नारदजी के बताये हुए इस आत्म ज्ञान का चिन्तन जो पुरुष करेगा वह अवश्य ही इस लिंग शरीर के बन्धन से छूट जायेगा।

—❀❀—

❀ तीसवाँ अध्याय ❀

प्रचेताओं को श्री हरि का दर्शन प्राप्त करना।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री विदुरजी बोले—हे भगवन् ! राजा प्राचीनवर्हि के पुत्रों प्रचेताओं का आपने वर्णन किया था उन्होंने किस प्रकार भगवान् के दर्शन प्राप्त किये ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! पिता की आज्ञा से तथा भगवान् शङ्कर की कृपा से उनके बताये हुए मार्ग से प्रचेताओं ने दस सहस्र वर्ष तक समुद्र में खड़े होकर कठिन तप किया । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने अपनी अपूर्व छटा से उन्हें दर्शन दिए । भगवान् गरुड़ के कन्धे पर सवार थे । उनकी कान्ति से सम्पूर्ण दिशायें प्रकाशमान हो उठीं । पीताम्बर धारण किये हुए शङ्ख चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुए अङ्ग प्रत्यङ्ग से अपूर्व छटा छिटक रही थी ।

श्रीभगवान् बोले—हे प्रचेताओ ! मैं तुम्हारी तपस्या से अति प्रसन्न हूँ तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँगो । जो पुरुष सायंकाल के समय नित्य तुम्हारा स्मरण करेगा उसका प्रेम अपने भ्राताओं में सदा रहेगा । जो सायंकाल प्रातःकाल इस रुद्रस्तोत्र का जप करेगा उसे इच्छित वर प्राप्त होगा हे प्रचेताओ ! तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होगीं तुम्हारे एक विश्व विख्यात पुत्र ब्रह्मा के समान होगा । उसकी सन्तान से तीनों लोक भर जावेंगे ।

हे राजकुमारो ! कण्डुऋषि के वीर्य से तथा प्रम्लोचा अप्सरा के गर्भ से एक अति सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई है जो वृक्षों ने पाली है यह तुम्हारी पत्नी बनेगी । वह तुम सब को समान दृष्टि से देखती हुई प्रेम करेगी । तुम लोग दस लाख दिव्य वर्षों तक आनन्द भोगोगे । फिर मेरे दिव्य लोक को प्राप्त करोगे ।

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! प्रचेताओं ने भगवान् के दर्शन प्राप्त करके अति प्रसन्नता से उनकी स्तुति की और उन्होंने सन्त समागम तथा नित्य हरि कथामृत पान करते रहने का वर माँगा । भगवान् तथास्तु कह कर अन्तर्ध्यान हो गये ।

प्रचेता लोग समुद्र से बाहर निकले तब वृक्षों ने उनका मार्ग रोका उन्होंने कुपित होकर उन वृक्षों को भस्म करना आरम्भ किया । किन्तु ब्रह्मा जी ने उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया । तब वृक्षों ने लाकर उस कन्या को प्रचेताओं को दिया । उन्होंने उस कन्या से विवाह किया । उसके गर्भ से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu ... Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दक्ष प्रजापति ने शंकर जी के शाप से मुक्त होने के लिए वह शरीर त्याग कर जन्म लिया। वही चाक्षुष मन्वन्तर में प्रजापति बने।

॥ इकत्तीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—प्रचेताओं की सब कथा, सुनी विदुर चितलाय।
मैत्रेयजी वर्णन करो, मन में अति हरषाय॥

श्री मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी! प्रचेताओं को दस लाख वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् भगवान् के वाक्यों का स्मरण हो आया। वे सम्पूर्ण राज्य पाट को अपनी पत्नी मारिषा के पुत्र को देकर पश्चिम दिशा की ओर समुद्र तट पर चले गये वहाँ आत्म चिन्तन में ब्रह्म सूत्र का सङ्कल्प करके मन, वाणी तथा प्राण को वश में करके एकासन पर बैठ गए और परब्रह्म का चिंतन करने लगे। उसी समय वहाँ पर नारदजी पधारे उन्हें देखते ही प्रचेता लोग खड़े हो गये। नारद जी जब आसन ग्रहण करके बैठ गये तब नारदजी ने उन्हें यह उपदेश किया। हे प्रचेताओ! उसी मनुष्य का जन्म सफल है, जिसके मन, कर्म तथा वाणी से भगवान का ही चिन्तन होता रहता है। मनुष्य जितने भी यज्ञ, कर्म, सन्यास वैराग्य आदि करता है वह आत्मज्ञान के लिए करता है। उस आत्म ज्ञान से ही भगवत् प्रेम होता है। जिस प्रकार जड़ के सींचने से वृक्ष के तना, शाख आदि सभी अङ्गों का पोषण होता है उसी प्रकार केवल भगवान् की आराधना से सभी लाभ प्राप्त होते हैं। तुम लोग भी अपने को भगवान् से अभिन्न समझ कर उनकी आराधना करो। वे ही सम्पूर्ण देहधारियों के एक मात्र आत्मा हैं। जगत की उत्पत्ति स्थित तथा लय उन्हीं के द्वारा होती है। श्री मैत्रेय जी बोले—हे विदुरजी! नारदजी के इस प्रकार उपदेश करने तथा ध्रुव आदि भक्तों के चरित्र सुनने पर उन प्रचेताओं को और भी ज्ञान उत्पन्न हुआ। और वे भगवान् के चिन्तन में लग गये। श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! मैंने तुम्हें यहाँ तक स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपाद के वंश का वर्णन किया है। अब तुम्हें मैं राजा प्रियव्रत के वंश का वर्णन करूँगा। हे राजन! मैत्रेयजीके मुखसे भगवानकी यह पवित्र कथा सुनकर विदुरजी भगवान् के प्रेम में लीन होगये, और मैत्रेयजी के चरणों में अपना मस्तक रख दिया।

In Public Domain. ... Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजन्! मैत्रेयजी की बारम्बार प्रशंसा करते हुये विदुरजी उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर अपने स्वजनों से मिलने के लिये हस्तिनापुर चले आये। जो भक्त भगवान् के इस चरित्र को सुनेगा व सुनायेगा उसे दीर्घायु, धन, यश ऐश्वर्य सदगति की प्राप्ति होगी।

॥ समाप्त ॥

जय राधे जय राधे राधे जय राधे जय श्री राधे।
जय कृष्णा जय कृष्णा कृष्णा जय कृष्णाजय श्रीकृष्णा॥
श्यामा गोरी नित्य किशोरी प्रीतम जोरी श्री राधे।
रसिक रसीले छैल छवीले गुण गरबीले श्री कृष्णा॥
रासविहारिणि रसविस्तारिणि प्रियउर धारिणी श्रीराधे।
नव नव रङ्गी नवल त्रिभङ्गी श्याम सुअङ्गी श्रीकृष्णा॥
प्राण पियारी रूप उजारी अति सुकुमारी श्री राधे।
नैन मनोहर महा मोद कर सुन्दर वर तर श्रीकृष्णा॥
शोभा श्रेणी मोहा मैनी कोकिल बयनी श्री राधे।
कीरति वन्ता काम निकन्ता श्री भगवन्ता श्री कृष्णा॥
चन्दा वदनी कुन्दारदनी शोभा सदनी श्री राधे।
परम उदारा प्रभो अपारा अति सुकुमारा श्री कृष्णा॥
हंसा गमनी राजत रमनी क्रीड़ा कमनी श्री राधे।
रूप रसाला नैन विशाला परम कृपाला श्री कृष्णा॥
कीर्तिकुमारी भानु दुलारी मोहन प्यारी श्री राधे।
यशुदानन्दन जनमनरंजन बृजकुल चन्दन श्री कृष्णा॥
काँचन बेली रतिरस रेली अति अलबेली श्री राधे।
सब सुखसागर सब गुणआगर रूपउजागर श्रीकृष्णा॥
रमणी रम्या तर तट तम्या सुगुण अगम्या श्रीराधे।
धाम निवासी प्रभा प्रकाशी सहजसुहासी श्री कृष्णा॥
शक्त्वाह्लादिनि अतिप्रियवादिन उरउन्मादिनी श्रीराधे।
अङ्ग अंग टोना सरससलोना सुभग सुठोना श्रीकृष्णा॥
राधानामिनि गुणअभिरामिनि, हरिप्रियस्वामिनिश्रीराधे।
हरे हरे हरि हरे हरे हरि हरे हरे हरि श्री कृष्णा॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ❀

वृहद् सुखसागर

॥ पाँचवाँ स्कंध ॥

अहमेवास मेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत् न प्रतीयेत् चात्मनि ।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ २ ॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेस्वनु ।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ३ ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वय व्यतिरेकाभ्याँ यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थ—भगवान् नारायण प्रजापति ब्रह्मा की तपस्या से सृष्टि के आरम्भ में अति प्रसन्न हुए तब उन्होंने ब्रह्माजी को वर माँगने के लिए कहा। तब ब्रह्माजी ने निम्नलिखित चार वर माँगे जिन्हें चतुश्लोंकी भागवत् कहते हैं।

१—हे भगवन् ! आपके सूक्ष्म अप्राकृत रूप को जिसे 'पर' कहते हैं तथा स्थूल या प्राकृत रूप जिसे 'अपर' कहते हैं इन दोनों पर, अपर स्वरूप का मुझे ज्ञान प्राप्त हो जावे।

२—हे परमात्मन् ! आप मुझे वह बुद्धि दीजिये जिससे मैं आपकी लीलाओं के गुह्य तम भेद को समझ सकूँ।

३—आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा कीजिये जिससे मैं सृष्टि रचते हुए भी अपने को कर्त्ता मान कर अहंकार बुद्धि को प्राप्त न होऊँ। आलस्य त्याग कर आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ।

४—हे परमात्मन् ! उत्पत्ति भरण पोषण करने वाला होने के कारण मुझे अभिमान प्राप्त न हो।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ पहला अध्याय ❀

दो०–प्रियव्रत रजा भये, किये सप्त भू भाग।
सात समुद्र निर्माण करि, जीते सब नर नार॥

राजा परीक्षित ने पूछा–हे ब्रह्मन्! महाराज प्रियव्रत बड़े आत्मज्ञानी तथा भगवत् भक्त होते हुए भी किस प्रकार गृहस्थ आश्रम में फँस गये। मुझे यह समझाकर कहिये।

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजन्! राजकुमार प्रियव्रत बड़े आत्मज्ञानी तथा भगवत् भक्त होते हुये भी देवर्षि नारदजी के परम भक्त थे। उनकी कृपा से ही उन्हें परमार्थ तत्व का ज्ञान प्राप्त हुआ था। वे सदा ब्रह्माभ्यास में अपना जीवन व्यतीत करने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे। किन्तु उनके पिता स्वायम्भुव मनु ने उन्हें राज्य शासन करने की आज्ञा दी। राजकुमार प्रियव्रत अखण्ड समाधि योग के द्वारा अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके भगवान् की शरण में जा चुके थे। उनके सामने बड़ा कठिन प्रश्न उपस्थित हो गया। उन्हें राज्य शासन की तनिक भी इच्छा नहीं थी!

जब ब्रह्माजी को राजकुमार प्रिय व्रत के ऐसे परमार्थ बादी विचारों का पता चला तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि सृष्टि का विस्तार किस प्रकार होगा। नारदजी ने राजकुमार प्रियव्रत को गृहस्थ मार्ग से विमुख करके परमार्थ मार्ग की ओर लगा दिया है। इस प्रकार चिंतित होकर वे स्वयं अपने हंस पर सवार होकर आकाश मार्ग से चले। मार्ग में देवता लोगों ने उनका बड़ा स्वागत किया। इस प्रकार स्थान २ पर आदर सम्मान पाते हुए वे मृत्यु लोक में राजकुमार प्रियव्रत के पास आये। वहाँ पर प्रियव्रत के निकट आत्म विद्या का उपदेश करते हुए श्री नारदजी को देखा। जब नारद जी तथा प्रियव्रत ने हंस पर आये हुये ब्रह्माजी को देखा तब वे दोनों उठ खड़े हुये और उनका बड़ा स्वागत करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी ने मधुर वाणी में राजकुमार प्रियव्रत से इस प्रकार कहा–हे बेटा! मैं तुम्हारे हृदय की सब बातों को जानता हूँ। मैं तुम्हें जो उपदेश दूँ, वह ध्यान पूर्वक सुनो उसमें तुम्हारा भला है। मैं, शिवजी, तुम्हारे पिता, स्वायम्भुव मनु त

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तुम्हारे गुरु यह नारदजी सभी भगवान् की आज्ञा का पालन करते हैं उनके विधान को कोई भी शरीर धारी टाल नहीं सकता है। उसी परमात्मा के दिये हुए इस शरीर से जन्म, मरण शोक, मोह, दुःख, सुख प्राणी भोगता हैं, किन्तु प्राणी सदा कर्म करता रहता है। सभी प्राणी सात्विक, राजस, तामस तीन प्रकार के कर्मों में जुटे हुए हैं। उसी के अनुसार सुख दुःख तथा योनियाँ मनुष्य भोगते हैं।

यदि तुम यह कहो कि ये सब कर्मों के बन्धन तो बन्धनवाले जीवों के लिये ही हैं मुक्त पुरुष के लिये नहीं हैं वह तो स्वतंत्र है। ऐसे जीवों पर कर्म तथा काल का कोई अधिकार नहीं है, किन्तु वे भी प्रारब्ध के भोग भोगने के लिए शरीर धारण करते हैं, किन्तु उनमें अभिमान नहीं होता है वे वासना शून्य होकर स्वतंत्र होकर भी भगवत् इच्छा से प्रारब्ध भोग भोगते हैं। जो पुरुष इन्द्रियों के आधीन हैं वे तो जन्म मरण का दुःख भोगते ही हैं। जो आत्मा में रमण करते हैं उनका गृहस्थ आश्रम भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। अतः तुम्हें गृहस्थाश्रम भोगने में भी कोई हानि नहीं है। यद्यपि तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ईर्ष्या आदि छः हों शत्रुओं को जीत चुके हो किन्त फिर भी भगवान् के दिये भोगों को भोगो। इसके पश्चात् समय आने पर परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाना।

श्री शुकदेवजी बोले—ब्रह्माजी के ऐसे बचन सुन कर राजा प्रियव्रत ने नम्रता पूर्वक उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और जो आज्ञा कह कर चुप हो गये। उनके गुरु नारदजी को अपने किये कराये आत्म ज्ञान को इस प्रकार व्यर्थ होते हुए देखकर भी उन्हें कोई खेद न हुआ क्योंकि वे समदर्शी थे। ब्रह्माजी नारद तथा प्रियब्रत से पूजा प्राप्त करके अपने लोक को चले गये। राजा प्रियब्रत ने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती के साथ विवाह किया। उनके दस पुत्र जिनके नाम आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञवाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतप्रष्ठ, सवन, मेधातिथि, नीतिहोत्र तथा कवि थे। उनके ऊर्जस्वती नाम की एक कन्या भी थी जिसका विवाह श्रीशुक्रचार्यजी के साथ हो गया। राजा प्रियव्रत के तीन पुत्र कवि, महावीर, तथा सवन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नेष्ठिक ब्रह्मचारी थे। राजा प्रियव्रत ने ग्यारह अरब वर्ष तक पृथ्वी का राज्य करके अपने सातों पुत्रों को राज्य दे दिया।

एक समय राजा प्रियव्रत के राज्य में भगवान् सूर्य सुमेरु की परिक्रमा करने के कारण आधे समय प्रकाश व आधे समय अन्धकार रखते थे। राजा प्रियव्रत को यह बात पसन्द न आई। उन्होंने रात्रि को भी दिन करने के विचार से जब सूर्य अस्ताचल को जाते थे तब वे अपने रथ में बैठ कर पृथ्वी पर प्रकाश करते थे। इस प्रकार उनके राज्य में कभी अन्धकार नहीं होता था। उन्होंने अपने रथ के पहियों की लीक से सात समुद्र तथा सात द्वीप बना दिये थे। उन द्वीपों का नाम जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौन्च, शाक, तथा पुष्कर था। पहले द्वीप की अपेक्षा आगे के द्वीपों का परिमाण क्रमशः दूना होता गया है। उन्होंने सात समुद्र बनाये जम्बू द्वीप के चारों ओर खारा समुद्र है। फिर उसके चारों ओर प्लक्ष द्वीप घिरा हुआ है उसके चारों ओर मीठा समुद्र है। उसे शाल्मलिद्वीप घेरे हुए है। उसके चारों ओर दूध का समुद्र है। उसे नवद्वीप घेरे है। उसके चारों ओर मदिरा का समुद्र है। उसे कौन्चद्वीप घेरे है। उसे क्षीर समुद्र घेरे हैं। उसे शाक द्वीप घेरे हुए है। उसके चारों ओर मट्ठे का समुद्र है। फिर उसको पुष्कर द्वीप घेरे है,और उसके चारों ओर मीठे जलका समुद्र घेरे है। शुक्राचार्य की पुत्री देवयानीका जन्म ऊर्जस्वतीसे हुआहै। इस प्रकार अतुल पराक्रमी राजा प्रियतम अपने राजपाटको पुत्रोंको देकर भगवत् भजनकेलिएवनकोचले गये

॥ दूसरा अध्याय ॥

❀ आग्नीध्र का चरित्र ❀

दोहा—आग्नीध्र राजा भये, कीन्हों तप मन लाय।
पूर्वचित्त मोहित भई, निजपति लियो बनाय॥
नौ पुत्रन को जन्म दे, गई अप्सरा लोक।
नौ वर्षन को राज्य दे, गये नृपति सुरलोक॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब महाराज प्रियव्रत तपस्या में लग गये तब जम्बूद्वीप का राजा आग्नीध्र हुआ। वह पुत्र प्राप्ति की लालसा से सुर सुन्दरियों के क्रीड़ा स्थल मन्दराचल पर्वत पर ब्रह्माजी की आराधना

In Public Domain

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

करने लगे। ब्रह्माजी ने उनके मन की बात समझ कर उनके पास पूर्वचित्ति नाम की एक अप्सरा भेज दी। आग्नीध्रजी के उस रम्य आश्रम पर वह अप्सरा आकर उन्हें मोहित करने का प्रयत्न करने लगी। आग्नीध्रजी समाधि योग में अपने नेत्र बन्द किये बैठे थे। जब उस सुन्दरी के नूपुरों की झनकार उनके कानों में पड़ी तब उन्होंने नेत्र खोल दिये। भाषण में पटु तथा प्रिय बादी राजा आग्नीध्र ने उस सुर सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिये इस प्रकार मीठे बचन कहे हे सुन्दरी! तुम इस पर्वत शिखर पर क्यों भ्रमण करती फिरती हो? तुम्हारी ये भौंहें बिना डोराके धनुष के समान हैं। तुम इनसे मुझ जैसे मतवाले मृगों की मृगया करना चाहती हो। तुम्हारे कटाक्ष पैने बाण के समान हैं। इन्हें तुम किस प्रकार छोड़ना चाहती हो। ये मतवाले भौंरे तुम्हारे चारों ओर लगकर तुम्हारा गुणगान कर रहे हैं। तुम्हारे नूपुरों की झनकार अंग की कान्ति नितम्बों की आभा कहाँ से आई है। तुम्हारा वल्कल वस्त्र किधर रहगया। तुम दिगम्बर क्यों रहती हो।

तुम्हारी छाती पर यह दो सींग क्या हैं। इन में क्या भरा है। इन पर यह लेपन किसका लगा है। जिसकी गन्ध से मेरा सारा आश्रम महक उठा है। तुम कहाँ रहती हो। तुम्हारा क्या भोजन है। तुम्हारा मुख कितना सुन्दर है। आओ कुछ दिन मेरे निकट रहकर तपस्या करो। तुम मुझे ब्रह्माजी ने प्रदान की हो।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! आग्नीध्र देवताओं के समान सुन्दर थे। तथा वे स्त्रियों को प्रसन्न करने में चतुर थे। अपनी मीठी मीठी बातों से उस अप्सरा को प्रसन्न करके उसके साथ विवाह कर लिया उसके गर्भ से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलाव्रत, रम्यक, हिरण्यम, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल नौ पुत्र पैदा हुये। तत्पश्चात् वह अप्सरा अपने लोक को चली गई। राजा आग्नीध्र ने जम्बू द्वीप को नौ वर्ष 'खण्डों' में बांट कर एक एक बर्ष अर्थात् खण्ड अपने पुत्रों को दे दिया। उन नौ भाइयों ने मेरू की पुत्री मेरूदेवी, प्रतिरूपा, उग्र, दण्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी भद्रा तथा देववीहि क्रमशः इन नौ कन्याओं से विवाह किया।

—❀❀—

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तीसरा अध्याय ॥

❀ राजा नाभि की कथा ❀

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! आग्नीध्र के पुत्र महाराज नाभि निःसन्तान थे। अतः उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिये भगवान् श्रीनारायण की आराधना की। भगवान् यज्ञ पुरुष प्रकट हुए। उनके श्री अङ्ग की कान्ति अनुपम थी। शरीर पर रेशमी पीताम्बर था। वक्षःस्थल पर बनमाला तथा श्री वत्स का चिन्ह सुशोभित था चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किए हुए थे। राजा नाभि ने उन की पूजा की और ऋत्विजों ने भी स्तुति की।

ऋत्विज बोले-हे भगवन् ! आपकी पूजा करना हम लोग नहीं जानते हमारा आपको नमस्कार है, आपके अनन्त गुण हैं। आप साक्षात् परमात्मा हैं। आप प्रेम के वशीभूत हैं, प्रेम से अर्पण की हुई तुलसी, दूब,विशुद्धजल से ही आप प्रसन्न होते हैं। आप यज्ञ पुरुष हैं। यज्ञादि करने का कोई प्रयोजन नहीं है। तो भी अनेक कामनाओं की सिद्धि के लिये यज्ञ किये जाते हैं। आप राजा नाभि की आराधना से प्रसन्न होकर प्रकट हुए हैं। आपके दर्शनों के अतिरिक्त और हम क्या माँगें। केवल हम आपसे यही वर चाहते हैं कि खाते, पीते, गिरते, उठते, रोग तथा मरणादि की अवस्था में आपके गुणों का सदा उच्चारण करते रहें। आपसे एक हमारी तुच्छ प्रार्थना है कि राजर्षि नाभि के कोई पुत्र नहीं है अतः आपके समान इन्हें पुत्र प्राप्त हो। आप भक्तों के अनेकों कार्य करते हैं। हम दुर्बुद्धियों ने इस तुच्छ कामना के लिये आप का आवाहन किया है। अतः हमें क्षमा प्रदान करें।

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! राजा नाभि के लिये ऋत्विजों ने भगवान् की जब इस प्रकार बन्दना की तब श्री भगवान् बोले-हे ऋत्विजो ! तुम लोगों ने यह बड़ा कठिन वर माँगा है कि मेरे समान राजा नाभि के पुत्र हो। मेरे समान तो मैं ही हूँ और कोई नहीं हो सकता। हे ब्राह्मणो ! तुम्हारा बचन मिथ्या न होने के लिये मैं स्वयं ही अपने अन्शावतार से राजा नाभि के यहाँ आऊँगा मैं अद्वितीय हूँ। मेरे समान अन्य कोई नहीं हो

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri.

सकता। इस प्रकार कह कर भगवान अन्तर्ध्यान होगए कुछ काल के पश्चात् महारानी मेरूदेवी के गर्भ से भगवान् ने जन्म लिया।

—❀:❀—

॥ चौथा अध्याय ॥

ऋषभ देवजी का शासन

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा परीचित् ! भगवान् विष्णु ने अपने अन्श से ऋषभदेव का अवतार धारण किया। वे सम्पूर्ण महाभूतियोंसे युक्त थे। प्रजा, ब्राह्मण, देवता, सब उनके शासन के लिए अति लालायित थे। उनका यश, ऐश्वर्य, पराक्रम सब अति श्रेष्ठ था इसीलिए उनका नाम ऋषभ 'श्रेष्ठ' रक्खा गया। एक समय इन्द्र ने राजा नाभि के राज्य में जल वर्षा नहीं की। तब ऋषभ ने अपनी योग माया से अजनाभ खण्ड में जल वर्षाया। राजा नाभि ने जब यह जाना कि सब लोगों की इच्छा ऋषभ देवको राजा बनाने की है तब उन्होंने ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर के वे भगवान् की आराधना में लीन हो गए। राजा नाभि ब्राह्मणों के बड़े भक्त थे उनके विषय में अनेकों लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। उनके समान कोई भी दयावान ब्राह्मण भक्त तथा सौभाग्यशाली नहीं था, जिनके घर में स्वयं भगवान् ने अवतार लिया था। भगवान् ऋषभ देवने पहले गुरुकुल में बास किया फिर गुरु को दक्षिणा से सन्तुष्ट करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये इन्द्र की कन्या जयन्ती से विवाह किया। जयन्ती के गर्भसे सौपुत्र उत्पन्न हुए। ये सब के सब उन्हीं के समान गुण वाले थे। किन्तु उनमें भरतजी सब से अधिक गुणवान थे अजनाभ खण्ड का नाम भारतवर्ष उन्हीं के नामसे हुआ है। उन शेष राजकुमारों में नौ राजकुमार जो भारत से छोटे थे, नव्वे भाइयों में अति श्रेष्ठथे। उनसे छोटे नौ राजकुमार भगवतभक्तथे। औरशेष इक्यासी राजकुमार पिताकी आज्ञा पालक, महान वेदज्ञ होने से ब्राह्मण होगये थे।

महाराज ऋषभदेव यद्यपि ईश्वर ही थे किन्तु फिर भी संसार के मार्ग प्रदर्शन करने के लिये कर्म करते थे, क्योंकि महान पुरुष जैसा आचरण करते हैं वैसा ही अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। उन्होंने वेद विधि से सौ यज्ञ किये। प्रजा का पालन किया। एक समय ब्रह्मावर्त्त में घूमते हुए

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मसमाज में पहुँचे और वहाँ अपने पुत्रों को इस प्रकार शिक्षा देने लगे।

❀ पाँचवाँ अध्याय ❀

दोहा—ऋषभदेव अवधूत ने, दिये पुत्रन उपदेश।
जग माया को जाल है, त्यागो सब लवलेश॥

श्री ऋषभदेवजी बोले—हे पुत्रो! इस जगत में मनुष्य देह प्राप्त कर के विषय भोगों में फँस जाना जीव के लिये अति पापमय है। विषय भोग तो कूकर शूकर आदि को ही प्राप्त होते हैं। इस मनुष्य देह को धारण करने का कारण तो केवल दिव्य तप करना है। स्त्री सङ्ग नरक की ओर ले जाने का मार्ग है विषयों में आसक्त होकर स्त्री, पुत्र, धन आदि लौकिक कामों में जब प्राणी प्रेम करने लगता है तो उसकी प्रवृत्ति इन्द्रियों के भोग ही में लग जाती है, और यही दुःखमय कर्म बंधन में बाँधने का कारण बन जाते हैं। जब तक जीव को आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता है। तब तक वह अज्ञान वश अपने स्वरूप को नहीं पहचान सकता है। और मुझ वासुदेव में उसका प्रेम नहीं होता है। उसकी आशक्ति विषय वासनाओं में होने से वह क्लेश उठाता रहता है।

स्त्री तथा पुरुष इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध एक प्रकार की दुर्भेद्यग्रन्थि है। इसी में बँधकर प्राणी देहाभिमान के कारण गृह, धन, पुत्र आदि में मैं मेरे पन का मोह कर लेता है। जब तक उसकी यह ग्रन्थि ढीली नहीं पड़ती है तब तक वह इनसे मुक्त नहीं होता है। जब वह अहङ्कार को त्याग कर इस दाम्पत्य भाव को समाप्त करके मैं मेरे पन से अलग हो जाता है तब वह परमपद को प्राप्त कर लेता है। जिन प्राणियों को मेरे लोक प्राप्त करने की इच्छा हो वह राजा हो अथवा गुरु हो या पिता हो अपनी प्रजा, अपने शिष्य अथवा अपने पुत्र को ऐसी ही शिक्षा देनी चाहिये। अज्ञान वश उस शिक्षा को न माने तो भी उन पर क्रोध न करके उन्हें समझा बुझाकर ऐसा कर्म करने दे उनको विषय, भोग आदि के कर्मों में लगाना तो इसी प्रकार है जैसे जानकर किसी अन्धे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

को गड्ढे में ढकेल देना जिस प्रकार नेत्रों वाला पुरुष अन्धे को मार्ग प्रदर्शन कराता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अज्ञानियों का पथ प्रदर्शन करें। मैंने यह मनुष्य शरीर अपनी इच्छा से धारण किया है। मेरा स्वरूप शुद्ध सात्विकी तथा धर्म का है। अधर्म मेरे पीछे रहता है। इसी लिए मुझे साधुजन ऋषभ अर्थात् श्रेष्ठ कहते हैं। तुम सब पुत्र मेरे अन्श से उत्पन्न हुए हो इस लिये तुम अपने बड़े भाई भरत की सेवा करो। वह परमज्ञानी तथा महायोगी है। उसकी सेवा करना मेरी सेवा करना है। ब्राह्मणों की ओर संकेत कर के बोले-हे ब्राह्मणों! मैं ब्राह्मणों से अधिक सर्वोत्तम किसी को नहीं समझता। ब्राह्मणो के मुख में डाली हुई अन्न की आहुति मुझे प्राप्त होती है। मैं उस आहुति को अग्नि होत्र से भी अधिक बढ़कर प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ। मैं ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ तथा अनन्त हूँ। स्वर्ग, मोक्ष आदि सब मेरे आधीन हैं। किन्तु मेरे भक्त ऐसे भी हैं जो मुझ से ऐसी कोई इच्छा नहीं करते। इस लिये हे पुत्रो तुम सम्पूर्ण जगत को मेरा ही शरीर समझ सब की सेवा करो।

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित्! ऋषभदेव जी के सभी पुत्र योग्य थे किन्तु फिर भी ऋषभदेव ने उन को उत्तम शिक्षा दी। ऋषभदेव ने अपने बड़े पुत्र भरत को राजगद्दी पर बैठा दिया और वे स्वयं परमहंस वृत्ति में हो गये। उन्होंने घर पर रह कर भी सब कुछ त्याग दिया। तत्पश्चात् वे वस्त्रों को त्याग कर दिगम्बर हो गये? उन के बाल बिखरे हुए तथा वेष पागल जैसा प्रतीत होता। वे सन्यासी होकर ब्रह्मावर्त्त देश से चले गए। वे मौन होकर रहने लगे। जड़, अन्धे, गूँगे, बहरे, पागलों की सी चेष्टा करने लगे। वे अवधूत बन कर सर्वत्र बिचरने लगे। जब ऋषभदेव ने देखा कि यह मनुष्य लोग मेरे योग साधन में विघ्न डालते हैं तब उन्होंने अजगर वृत्ति धारण कर ली। तब वे लेटे २ ही खाने, पीने, चबाने तथा मल मूत्र त्यागने लगे। वे लेटे २ अपने मल मूत्र को शरीर से लपेट लेते थे। किन्तु उनके मल मूत्र में बड़ी सुगंधि आती थी। उस सुगंधि को लेकर पवन चालीस कोस तक देश को सुगंधित करता था। वे गौ, मृग, काक आदि वृत्तियों को धारण करके उन्हीं के समान चलते फिरते लेटते खाते फिरते थे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे राजा परीक्षित्! परमहंसों को त्याग का आदर्श सिखाने के लिये उन मोक्ष पति भगवान् ने कई प्रकार की योग चर्चाओं को प्रगट किया। सब प्रकार की सिद्धियाँ उनकी सेवा करती थीं। किन्तु वे उनमें आसक्त नहीं थे।

॥ छटवाँ अध्याय ॥

❀ ऋषभदेव का त्याग ❀

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन्! महाराज ऋषभदेव जी को सम्पूर्ण सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त होने पर उन्होंने स्वीकार क्यों नहीं किया?

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! परमहंस ऋषभदेव जी जानते थे कि सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राणी को लुभाने वाली वस्तु हैं। यह मन बड़ा चंचल होता है न जाने कब मस्त हाथी की भाँति अपने रस्से को तुड़ा कर चलायमान हो जाय। मन को चलायमान करने वाली इन सिद्धियों से प्रेम नहीं करना चाहिये। इसलिए उन्होंने सब का त्याग कर दिया।

भगवान् ऋषभदेव अपनी योगमाया से पृथ्वी तल पर बिचरने लगे। उन्होंने स्थूल शरीर को लिंग शरीर में लीन करके लिंग शरीर को भी योग से भस्म कर दिया। भगवान् ऋषभदेवजी का अवतार मोक्ष मार्ग की शिक्षा देने के लिये हुआ था। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है, कि सम्पूर्ण भूखण्डों में भारतखण्ड पुण्य कर्म क्षेत्र होने से पवित्र है। वंशों में राजा प्रियव्रत का वंश परम पवित्र है, जिसमें स्वयं भगवान् ने ऋषभदेव जी का अवतार ग्रहण किया। जिन योग सिद्धियों के लिये बड़े २ योगीजन सदा इच्छुक रहते हैं उन्हें उन्होंने तुच्छ समझ कर त्याग दिया।

हे राजन्! मैंने तुम्हें भगवान् ऋषभदेव का पवित्र चरित्र सुनाया है। यह समस्त पापों का नाश करने वाला है। उन भगवान् ऋषभदेवको नमस्कार है।

॥ सातवाँ अध्याय ॥

भरत जी का चरित्र

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! महाराज ऋषभदेव ने भरत को प्रजा की रक्षा का भार सोंप दिया था। राजा भरत बड़े धर्मात्मा तथा प्रजा भक्त थे वे सारी प्रजा को पुत्रवत् समझ कर उसका पालन करते थे। उन्होंने अनेकों यज्ञ किये वे सम्पूर्ण यज्ञों का फल भगवान् को अर्पण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

देते थे। राजा भरत ने धर्म पूर्वक एक करोड़ वर्ष तक राज किया। तत्पश्चात् उस राज का मोह त्याग कर सारी पृथ्वी अपने पुत्रों को दे दी और स्वयं राजमहल को त्याग कर हरिहर क्षेत्र में रहने लगे। जो गण्डकी नदी के तट पर है। उस पवित्र आश्रम में एकान्त भाव से रहकर भगवान् की आराधना करने लगे। उन का चित्त चतुर्भुजधारी भगवान् में समा गया। वे तीनों समय स्नान करते थे। हरीहर क्षेत्र में मृग बहुत रहा करते थे। इसी प्रकार सारे संसार से आसक्ति त्याग कर भजन करने लगे।

॥ आठवाँ अध्याय ॥

दो०—मृग शावक के मोह से, गए भरत मृग यौन।
अन्त समय करनी कठिन, पावै तैसी जौन॥

श्री शुकदेव जी बोले--एक समय राजर्षि भरत गण्डकी नदी में स्नान कर रहे थे उसी समय एक हिरणी वहाँ जल पीने आई। वहाँ पर उसने सिंह की गर्जना सुनी; उस से वह भयभीत होकर जल में कूद पड़ी अभी उस की प्यास भी पूरी नहीं भुजी थी। वह गर्भवती थी, अति व्याकुल होने के कारण उस का गर्भ खण्डित हो गया और एक नन्हा सा बच्चा नदी के जल में गिर पड़ा इस दयनीय दृश्य को देख कर राजर्षि भरत को बड़ी दया आई। उन्होंने उस बच्चे को उठा लिया तथा उसे बड़े लाड़ चाव से पालने लगे।

हे राजन्! उस मृग शावक के मोह तथा प्रेम में राजर्षि भरत इतने लीन हो गये कि उसे सदा गोद में रखते थे उसकी हर समय चिन्ता करते रहते थे उसे हरी हरी दूब तथा ठण्डा जल पिलाते थे स्वयं नहीं खाते थे उसे पहिले खिला पिला कर सावधान करते थे। यदि कहीं वह चला जाता तो अति चिन्ताकुल हो कर कहते—न जाने मृग छौना कहाँ चला गया। बेचारी हिरणी अपनी धरोहर मुझे दे गई थी। उसको हरी हरी दूब पड़ी है। वह भूखा होगा। इस प्रकार कहते हुए वे प्रेमाश्रु बहाने लगते। उनके सभी नित्य कर्म स्नान भजन पूजा आदि धीरे धीरे छूटने लगे। यहाँ तक कि वे उसके लाड़ चाव तथा मोह में अपने आत्म स्वरूप को भी भूल गये। उसी काल में उनका शरीरान्त हो गया और अन्तिम समय में मृगछौना में मोह होने के कारण उन्होंने मृग का जन्म पाया।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजर्षि भरत मृग बने हुये गण्डका नदी के तट पर पुलस्त्य तथा पुलह के आश्रम पर रहने लगे। उस मृग को पूर्व जन्म की स्मृति बनी हुई थी। वे चित्त में अति व्याकुल हो कर पछताने लगे तथा अन्तिम समय की प्रतीक्षा करने लगे। वे किसी में आसक्ति न रख कर सूखे पत्ते घास झाड़ आदि खा कर गण्डकी का जल पीते थे। वहीं रह कर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

॥ नवाँ अध्याय ॥

❀ राजा भरत का ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ❀

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! राजा भरत ने मृग शरीर त्याग कर एक आङ्गिरस गोत्री ब्राह्मण के घर जन्म लिया। राजा भरत को इस जन्म में भी भगवान् की कृपा से अपनी पूर्व स्मृति बनी हुई थी। वे किसी में आसक्ति न रखते हुए रहने लगे। उनका पिता उन पर अति स्नेह रखता था उस ब्राह्मण ने भरत को विद्या अध्ययन कराने का प्रयत्न किया किन्तु कर्म में आसक्ति होने के भय से उन्होंने सब ओर से अपनी रुचि को मोड़ लिया। वे विद्या न पढ़ सके। कुछ काल पश्चात् वह ब्राह्मण मर गया। तब भरत के बड़े भाइयों ने भरत को खेती के कार्य में लगा दिया। जो काम भरत को बता देते थे, वे उसे कर लेते थे जो कुछ रूखा सूखा बुरा भला उन्हें खाने को देते वे खा लेते थे। इसी प्रकार अपना जीवन पागल की भाँति ब्यतीत करने लगे।

एक दिन कुछ डाकुओं के सरदारों ने उन्हें देवी की बलि चढ़ाने के लिये पकड़ लिया उन का बलि पशु कहीं भाग गया था भरत को खेत में बैठा देख कर उसी को बाँध कर ले चले। जब देवी के मन्दिर में ले गये और मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर के तलवार से भरत का शिर काटने लगे तब देवी सहसा मूर्ति से प्रगट हो गई और कुपित होकर सभी डाकुओं को मार डाला तथा उनका रक्त पान करने लगी।

हे राजन्! भगवान् सदा अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। उन्होंने देवी के रूप में उन की रक्षा की।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ दसवाँ अध्याय ॥

❀ जड़भरत से राजा रहूगण की भेंट होना ❀

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन सिन्धु सौवीर प्रान्त का राजा रहूगण अपनी पालकी में बैठकर कहीं जा रहे थे। उनका एक कहार थक गया। उस पालकी के जमादार ने जड़ भरत को बैठा देख कर उन्हें पालकी में लगा दिया वह बोला तुम बड़े हट्टे कट्टे इसी कार्य के योग्य हो। जड़ भरत चुपचाप बिना कुछ बोले कहे सुने पालकी के नीचे लग गये। किन्तु वे चींटी आदि जीव हत्या के भय से बच कर चलते थे। जिसके कारण पालकी ऊँची नीची हो जाती थी। राजा रहूगण ने कहारों को बहुतेरा सावधान किया और कहा कि यह क्या बात है जो पालकी ऊँची नीची हो जाती है। तब कहारों ने कहा—महाराज! एक नया कहार जो अभी पालकी में लगाया गया है कदम मिलाकर नहीं चलता है। तब राजा ने जड़ भरत से कहा—रे भय्या! तुम अवश्य ही बहुत दुब्ले पतले तथा थके हुए हो क्योंकि बड़ी दूर से पालिकी ला रहे हो। तुम्हें बुढ़ापे ने भी घेर लिया है? तब राजा ने जड़ भरत को इस प्रकार ताना मारा तब भी भरत चुपचाप पालकी उठाये चलते रहे। किन्तु पालकी अब भी ठीक नहीं चलती थी। अब राजा ने क्रोधावेश में जड़ भरत को डाटते हुए कहा अरे मूढ़ तू जीता हुआ भी मुर्दे के समान है। इस अपने हट्टा कट्टा शरीर को ले जाकर क्या करेगा? तू नहीं जानता मैं यहाँ का राजा हूँ। तू मेरी आज्ञा का पालन न करके ढीटता पूर्वक ठीक नहीं चलता है। तू पागल तथा मूर्ख प्रतीत होता है। मैं अभी दण्ड देकर तेरा इलाज करता हूँ।

राजा रहूगण को राजा होने का अभिमान था। इस कारण परम ज्ञानी जड़भरत के प्रति ऐसे न कहने योग्य बचन कह गया। उसे उनके ज्ञान का इसी प्रकार पता नहीं था जैसे राख से ढकी अग्नि का पता नहीं चलता है। जड़भरत मुस्कराये तथा बोले—हे राजन्! तुम्हारा बचन सत्य है मैं कोई बुरा नहीं मानता हूँ। क्योंकि भार ढोने का कार्य तो यह शरीर ही करता है यदि मार्ग चलते हैं तो ये पैर ही मार्ग चलते हैं। यह जो कुछ भी आप कह रहे हैं वह इस शरीर के प्रति ही कह रहे हैं। मोटा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दुबला पतलापन जो कुछ भी है वह इस स्थूल शरीर का ही है। वह पंच भूतों का बना हुआ एक ढेर है। यह स्थूलपन, दुबलापन, भूख, प्यास थकावट उस जीव को कुछ भी नहीं प्रतीत होती है। यह जीना, मरना, आदि विकार भी शरीर के होतेहैं। हे राजन्! स्वामी सेवक का भाव तो संसार के लिये लौकिक व्यवहार में है। किन्तु वैसे कौन किस का स्वामी और कौन किसका सेवक है। मैं मूर्ख, पागल, जड़, उन्मत्त हूँ, आप दण्ड देकर मुझको मारेंगे पीटेंगे, किन्तु, पागलको चतुर तथा बुद्धिमान नहीं बना सकते।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! जब जड़ भरत के ऐसे सार युक्त बचन उस राजा रहूगण ने सुने तो वह शीघ्र ही पालकी से नीचे उतर आया और उनके चरणों में शिर रख कर बोला—हे देव! आप इस अवधूत वेश में कौन है? क्या कपिल मुनि हैं अथवा दत्तात्रेय हैं। मैंने आपका बड़ा अपराध किया है, आपके शरीर पर यज्ञोपवीत भी है आप ब्रह्मकुल में उत्पन्न प्रतीत होते हैं। हे द्विजवर! मैंने ब्राह्मण से पालकी उठवा कर घोर पाप किया है। ब्राह्मणों का तिरस्कार करने वाले की रक्षा स्वयं महादेव जी भी नहीं कर सकते और की तो शक्ति ही क्या है? हे ब्रह्मदेव! आपने जो यह कहा है कि मुझे कोई श्रम नहीं हुआ है यह कथन किस प्रकार सत्य है? हम जब युद्ध करते हैं तो थकावट होती है। आपने स्वामी सेवक का लौकिक व्यवहार कहा है वह किस प्रकार सत्य है। व्यवहारको भी प्रमाण मानते हैं। आप जो कहते हैं कि देहादि का प्रभाव जीव पर कुछ नहीं पड़ता है यह वह कैसे सत्य है। जब किसी वर्तन में जल भर कर उसे आग से तपाते हैं तो उस बर्तन के प्रभाव से उस जल पर प्रभाव पड़ता है वह गर्म हो जाता है, उस जल के प्रभाव से चावल आदि पक जाते हैं। इसी प्रकार शरीर के प्रभाव से जीव भी दुःख सुखादि का भागी होता है।

ऐसा कह कर राजा रहूगण भरत के चरणों में गिर कर क्षमा याचना करने लगा।

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

❀ राजा रहूगण को जड़ भरत का उपदेश करना ❀

जड़ भरत ने कहा—हे राजन्! तुम ज्ञानी न होते हुए भी पण्डितों की

CC-0. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सी बातें करते हो। तुमने अनेकों तर्क वितर्क किये हैं। उनसे मैं तुम्हें ज्ञानी नहीं कह सकता। तत्व ज्ञानी पुरुष लौकिक व्यवहार से बनाये हुए नियमों को नहीं मानते तुम यदि शास्त्रों से तत्व का निर्णय करना चाहो सो भी नहीं। वैदिक कर्म तथा शास्त्र विहित कर्म सब स्वर्गादि की प्राप्ति कराने वाले हैं। किन्तु उनसे तत्व ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। तत्व ज्ञानी इन स्वर्गादि को धूल कण के समान भी नहीं मानता है। जो मनुष्य कर्मों को ही प्रधान मानता है उसे कभी तत्व ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य तीनों गुण सत, रज, तम ये बर्तता रहता है तब तक उन्हीं के अनुसार कर्म करता हुआ फल को भोगता है। सब से मुख्य तथा प्रधान वस्तु यह मन ही है। यही मायामय मन सारे जगत को बन्दर की भाँति नचाता है। यह जीव से मिलकर उसे अभिमान के वशीभूत करता है तथा सुख दुःखादि प्राप्ति का कारण बनता है, यह मन ही उस अकर्मा जीव को बन्धन में बाँधता है। अतः ज्ञानी पुरुष इस मन को ही नरक में ले जाने वाला तथा मोक्ष पद दिलाने वाला मानते हैं। विषया सक्त मन जीव को नरक में डालता है। विषय हीन मन मोक्ष पद प्राप्त करता है।

हे राजन्! मन की वृत्तियाँ ग्यारह हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक अहङ्कार। तथा ग्यारह ही उस मनके विषय हैं। पाँच प्रकार के कर्म पाँच तन्मात्रायें तथा एक शरीर इस प्रकार ग्यारह मन के विषय हुए। मैं मेरे पन को ही अहङ्कार कहते हैं। ये मन की वृत्तियाँ स्वभाव कर्म तथा काल के अनुसार असंख्यों प्रकार की बन जाती हैं। इस सबका अस्तित्व आत्मा से ही है। इनका सम्बन्ध परमात्मा (क्षेत्रज्ञ) से कुछ भी नहीं है, केवल (आत्मा) जीव से ही है। किन्तु (क्षेत्रज्ञ) परमात्मा उनका साक्षी रहता है।

हे राजन्! जीवात्मा तथा परमात्मा के भेद से यह क्षेत्रज्ञ दो प्रकार का माना है। परमात्मा सर्वव्यापी स्वयं प्रकाश अजन्मा सृष्टि का आदि कारण रचियता, पालन कर्ता, संहार कर्ता है। वह सच्चिदानन्दघन है। वह सर्व साक्षी है, वह सारे जगत् में व्याप्त है, वह आसक्ति रहित माया से परे है। जब तक मनुष्य तत्व ज्ञान से जीवात्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं करता है तब तक इसी प्रकार सन्सार में चक्कर लगाता रहता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है। जब उसे अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ! तब परम तत्व रूपी परम आत्मा में वह आत्मा मिल जाता है। जीव आत्मा है, परमेश्वर परमआत्मा है। जिस प्रकार एक जल की बिन्दु दूसरी ओर एक अथाह समुद्र वास्तव में जल-जल दोनों ही हैं, किन्तु एक केवल बिन्दु मात्र है, दूसरा अथाह समुद्र है जीव और परमात्मा में यही भेद है। अतः हे राजन् ! तुम सर्व प्रथम उस आदि कारण मन को पहिले मारो।

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

राजा रहूगण के प्रश्न करना तथा भरत का समझाना

राजा रहूगण बोले—हे ब्रह्मदेव ! आपको नमस्कार है । आपने लोक हित के लिए ही यह शरीर धारण किया है। आप इस पार्थिव शरीर में उदासीन रहकर बिचरते हैं। आपका तत्व ज्ञान मुझे अमृत मय प्रतीत हो रहा है। हे देव! आपने अध्यात्म वेग का गूढ़ उपदेश भी मुझे दिया है, उसे सरल करके समझाने की कृपा कीजिये। हे भगवन् ! आपने अभी जो यह बात कही है कि, भार ढोने का काम तथा उसकी क्रिया केवल व्यवहार में ही है वास्तव में नहीं है, वे तत्व ज्ञान से कुछ भी नहीं है। यह बात मेरी समझ में नहीं आई, आप कृपा करके मुझे समझाइये।

जड़ भरत बोले—हे राजन ! यह शरीर मेरा आपका इन कहारों का तथा अन्य प्राणियों का जो बना है वह पृथ्वी तत्व से ही तो बना है पाषाण आदि भी पृथ्वी से ही बने हैं अतः इस शरीर तथा पाषाण में क्या भेद है। केवल यह शरीर पृथ्वी पर चलता है, पत्थर नहीं चलता है इसमें एक चेतन शक्ति है, जो इस पार्थिव तत्व को चलाती है । जब वह निकल जाता है तो यह भी पत्थर की भाँति अचल हो जाता है । आपकी पालकी का जो भार था वह पार्थिव शरीर पर ही तो था जीव पर नहीं था। ये सम्पूर्ण प्राणी जीव सब पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं उनमें तथा आप में तथा मुझ में क्या भेद है। केवल व्यवहारिक नाम का, आप सिंधु प्रान्त के राजा हैं, ये आपके कहार हैं, मैं अन्य स्थान का रहने वाला हूँ, किन्तु वास्तव में सब एक ही तत्व के पिण्ड हैं। केवल व्यवहारिक भेद है।

हे राजन ! 'पृथ्वी' शब्द का अर्थ ही मिथ्या है। इन तत्वों की सत्ता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नहीं हैं सब नाश हो जाते हैं। परमात्मा तत्व के अतिरिक्त और कोई तत्व नहीं रहता। यह सब परमात्मा की माया है। जो सर्व व्यापी चेतन तथा निर्विकार है उसे ही 'भगवान्' कहते हैं। किन्तु हे राजन्! वह परमात्मा महान् पुरुषों के चरणों की रज में लोटने पर ही प्राप्त होते हैं। जहाँ संत-जनों के समाज में उनका नित्य निरन्तर कीर्तन होता रहता है।

हे राजन्! पूर्व जन्म में मैं भी चक्रवर्ती राजा भरत था जिसके नाम से देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है मैंने विरक्त रह कर भगवत् भजन किया किन्तु प्रारब्ध वश मेरी ममता एक मृग शावक में हो गई उसी कारण मुझे मृगयोनि भोगनी पड़ी किंतु भगवान् की कृपा से मुझे अपने पूर्व जन्म का स्मरण बना रहा। फिर मैंने यह मनुष्य योनि प्राप्त की है। अब मैं संसार से आसक्ति त्याग कर संसार से छिप कर रहता हूँ। इसलिये हे राजा रहूगण! तुम भी मोह बन्धन काट कर उन्हीं भगवान का स्मरण करो। प्राणी भगवान की कृपा से ही संसार चक्र से मुक्त होता।

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

दोहा—भवाटवी के अर्थ को, भरत कही समुझाय।
नृपति रहूगण भ्रम सभी, तत्क्षण गये बिलाय॥

जब भरत ने कहा—हे राजा रहूगण! यह जीव समूह एक वणिकसमाज के समान है जिसकी आसक्ति धन सुख में है। इसकी आसक्ति विषय भोगों में ही रहती है। यह जीव विषय सुखों की लालसा से संसार में पहुँच कर भटकने लगता है। संसार रूपी जङ्गल में छः चोर उसे लूट लेते हैं। उसका सारा धन छीन लेते हैं। यह संसार जङ्गल अनेक प्रकार की झाड़ियों, लताओं, झाड़, झंखाड़ों से भरा पड़ा है। उसमें तीव्र डांस, मच्छर, सर्प, विच्छू आदि हैं। कभी प्राणी गन्धर्व नगर में जाकर सुख भोगने लगता है। कभी आंधी वर्षा में व्याकुल होने लगता है। कभी भूख प्यास सताती है। कभी दावाग्नि में जलता है कभी झिंगुर, उल्लू, कर्कश शब्द सुनाते हैं। कभी वह शोक मोह में व्याकुल होकर मूर्छित हो जाता है। कभी प्रसन्न होने लगता है। कभी दुर्गम मार्गपर चलने से कांटे कङ्कड़ पैरों में कष्ट देते हैं। कुटुम्ब अधिक होने के कारण वह भाई बन्धुओं से

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

झुँझलाने लगता है। इस प्रकार वह कभी महान् क्लेश कभी महान् सुख का अनुभव करने लगता है।

वह बणिक समाज एक दूसरे से शत्रु तथा मित्र भाव रखता हुआ आगे बढ़ता है। जो साथी मर जाते हैं उन्हें त्यागता जाता है। उन प्राणियों में न तो कोई लौटकर आया न भगवान् ही में लीन हुआ। इस भवाटवी में वह वणिक समाज में भटकने लगता है कभी वह किसी शाखा को पकड़ कर उस पर रहने वाले पक्षियों को मित्र बनाता है कभी दूसरी शाखा को पकड़ कर आश्रय खोजता है। जब उन मित्रों से धोखा पाता है तो फिर दूसरों को मित्र बनाता है इसी प्रकार आयु समाप्त हो जाती है। स्त्री पुत्रों में मोह करते हुए विषय भोगों में फँसा रहता है।

हे राजा रहूगण ' तुम भी इसी प्रकार संसार जङ्गल में फँसे हुए हो अब तुम अपनी दण्ड नीति को बदल कर सबको अपना मित्र बनाओ। भगवान की सेवा करके संसार मार्ग को पार कर जाओ।

राजा रहूगण बोला—धन्य है भगवन्। आपने अपने उपदेश से मेरा मोह जाल काट कर सही मार्ग प्रदर्शन किया है। आपके एक महूर्त के सत्सङ्ग से मेरा उद्धार हो गया। आप तत्ववेत्ता हैं। तत्ववेत्ताओं की ऊपरी ढङ्ग से किसी प्रकार भी पहिचान नहीं हो सकती मैं उनको नमस्कार करता हूँ। वे अवधूत वेष में विचरते रहते हैं।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! उस राजा रहूगण को जड़ भरत ने इस प्रकार तत्वज्ञान दिया। वह राजा उस जड़ भरत के चरणों में स्तुति करके शान्त चित्त से पृथ्वी पर विचरने लगा।

राजा परीक्षित बोले—हे भगवन ! मैं इस भवाटवी को भली प्रकार न समझ सका आप इसे स्पष्ट करने की कृपा करें।

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

भवाटवी का स्पष्टीकरण

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! सत्व, रज, तम इन तीन गुणों से शुभ, अशुभ तथा मिश्रित ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं। इन्ही कर्मों के अनुसार देहाभिमानी जीवों को संयोग, वियोग, सुख दुःखादि प्राप्त होते हैं

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उनके भोगने के स्थान को संसार कहते हैं मन आदि छः ज्ञानेन्द्रियाँ इनके द्वार हैं। ये जीव बंजारों की भाँति भगवान का आश्रय छोड़कर इस दुर्गम संसार वन में भटकते फिरते हैं। मन सहित छः इन्द्रियाँ चोरों के समान हैं ये उनके कर्मों को चुराती हैं। तथा उन्हें भोगती हैं। इस संसार बन में कुटुम्बी स्त्री पुत्रादि भेड़िये तथा गीदड़ों के समान हैं ये स्वार्थी तथा अर्थ लोलुपी उसके सम्पूर्ण धन को छीन लेते हैं। यह गृहस्थाश्रम कर्म भूमि है इसके आसक्त व्यक्ति के प्राणों को नीच पुरुष डाँस तथा मच्छरों के समान नोंचते तथा खाते हैं। कभी यह प्राणी असत् वस्तुओं में आनन्द का अनुभव करने लगता है और उनकी ओर दौड़ धूप करने लगता है यही उनके लिए गन्धर्व नगर हैं।

कभी स्त्री में आसक्त होकर कामांध सा हो जाता है, और सत्पुरुषों की मर्यादा को त्याग देता है। उसकी आँखों में रजोगुण की धूल भरजाती है। मिथ्या विषयों में आनन्द मानने लगता है। जब उसके पूर्व पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब वह प्राणी मुर्दे के समान हो जाता है। वह दुःख देने वाले पाखंडों में फँस जाता है, उसके अपने कुटुम्बियों से जब खाने को नहीं मिलता है तब दूसरों के प्रति हिंसा भाव उत्पन्न करता है। पेट की असह्य ज्वाला से अपने कुटुम्बियों को भी फाड़ खाने को दौड़ता है। कभी विषय सुखों में आसक्त होकर पराई स्त्री तथा पराये धन को लुक छिप कर उड़ाने की चेष्टा करता है तथा राजा के दण्ड से मारा जाता है। वह बेईमानी, चोरी करता है तथा दूसरों शत्रुता से रखता है। उस प्राणी के उपरोक्त विघ्नों के अतिरिक्त सुख, दुःख, अभिमान, प्रमाद, रागद्वेष भय, शोक, उन्माद, मद, मत्सर, ईर्ष्या, जन्म, जरा मृत्यु आदि अनेक विघ्न हैं।

काल चक्र सदा ही सजग रहकर सबको ग्रसित करता है। वह प्राणी ही काल चक्र के अनुसार एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में जन्म लेता है। उसे योग वियोग का दुःख सहना पड़ता है। जब तक प्राणी भगवान का आश्रय नहीं लेता है तब तक वह इसी प्रकार इस संसार वन में भटकता हुआ दुःख सहता रहता है।

हे राजन्! यही भवाटवी का तात्पर्य है। अब तुमको भरत जी का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

महात्म्य सुनाता हूँ। जिस राजा भरत ने अपने राज्य, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि को त्याग कर भगवान् में आसक्ति की थी उनके समान अन्य कोई राजा नहीं हो सकता। जब उन्होंने अपना मृग शरीर त्यागा था उस समय उच्च स्वर से कहा था, धर्म की रक्षा करने वाले धर्मानुष्ठान में चतुर सांख्या योग के प्रकट करने वाले प्रकृत पुरुष, महामूर्ति, घट घट के वासी भगवान् विष्णु को मेरा नमस्कार है। ऐसे अनुपम भक्त के समान और कौन हो सकता है। जो मनुष्य राजा भरत के पवित्र चरित्र को सुनता तथा कहता है उसकी आयु, धन, यश की वृद्धि होती है, और अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है।

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

❀ भरत वंश के अन्य राजाओं का वर्णन ❀

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित्! भरतजी के पुत्र सुमति ने ऋषभदेव की तरह परमहंस वृत्ति स्वीकार की थी। उनकी पत्नी बृद्धसेनासे देवताजित पुत्र उत्पन्न हुआ। देवताजित के असुरी के गर्भ से देवद्युम्न नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। देवद्युम्न के धेनुमती के गर्भ से परमेष्टी पुत्र उत्पन्न हुआ परमेष्ठी से सुवर्चला के गर्भ से प्रतीह नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रतीह की भार्या से प्रतिहर्त्ता प्रस्तोता तथा उद्‌गना ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये। प्रतिहर्त्ता की पत्नी स्तुति के गर्भ से अज और भूमा दो पुत्र उत्पन्न हुए। भूमा के ऋषिकुल्या नाम की पत्नी से उद्‌गीत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उस के प्रस्ताव और प्रस्ताव के विभु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। विभु के प्रथुषेण, प्रथुषेण के नक्त तथा नक्त के उदार, कीर्ति, राजा गय का जन्म हुआ। राजा गय साक्षात् भगवान् के अंशावतार थे। उन्होंने यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा प्रजा का अपने पुत्र के समान लाड़ चाव से पालन किया। राजर्षि गय ने अपने यज्ञ से भगवान् विष्णु को तृप्त किया। राजर्षि गय के गयन्ती के गर्भ से चित्राथ सुगति तथा अवरोध तीन पुत्र उत्पन्न हुए। चित्ररथ की पत्नी अर्ण के गर्भ से सम्राट नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सम्राट के मरीचि तथा मरीचि के विंदुमान नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। विंदुमान के मधु, मधु के वीरव्रत तथा बीरव्रत के मन्थु और प्रमन्थु नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। मन्थु के पुत्र भौवन, तथा भौवन के त्वष्टा

In Public Domain, ...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

त्वष्टा की पत्नी बिलोचना के गर्भ से विरज पुत्र उत्पन्न हुआ। विरज के विषूची नाम की पत्नी से शतजित आदि सौ पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। प्रियव्रत वंश का यही अन्तिम राजा विरज भगवान् का अति भक्त और कीर्तिमान था।

—❀—

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

भुवन कोष का वर्णन !

दोहा—भुवन कोष वर्णन कियो, मुनि शुकदेव सिहाय।
नृपति परीक्षित सुन रहे, भगवत में चित लाय॥

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे मुनि श्रेष्ठ! जिस भूमण्डल का विस्तार आपने पहले वर्णन किया था और कहा था कि राजा प्रियव्रत के रथ की लकीर से सात समुद्र तथा सात द्वीप बन गये थे उसका वर्णन विस्तार पूर्वक करने की कृपा करें।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् की माया का विस्तार करना अति दुस्तर है अनेकों आयु पर्यन्त तक मन तथा वाणी से उनका कोई वर्णन नहीं कर सकता। किन्तु फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार मुख्य मुख्य बातों का वर्णन करता हूँ।

यह जम्बूद्वीप जो भूमण्डल के मध्य में है इसका विस्तार एक लाख योजन है। इसकी आकृति कमल के समान गोलाकार है। इस द्वीप में नौ नौ हजार योजन के विस्तार वाले नौ वर्ष हैं। ये वर्ष आठ पर्वतों में बँटे हुए हैं। वे पर्वत इन वर्षों की सीमा बनाते हैं। इस जम्बूद्वीप के मध्य में बीचों बीच इलावृत नाम का दसवाँ वर्ष है। जिसके बीच में सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है। इसका कुल विस्तार पृथ्वी के ऊपर चौरासी हजार योजन है। तथा सोलह हजार योजन पृथ्वी के नीचे धँसा है। यह कुल का कुल सुवर्णमय है। इलावृत वर्ष के उत्तर भाग में नील, श्वेत पर्वत तथा श्रङ्गवान पर्वत है जिनके द्वारा रम्यक, हिरण्य, तथा कुरु वर्ष की सीमा बनती है। इनका विस्तार पूर्व से पश्चिम की ओर खारे समुद्र तक है इनकी चौड़ाई दो सहस्र योजन के लगभग है। इलावृत वर्ष के

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दक्षिण में निषध हेमकूट तथा हिमालय ये तीन पर्वत फैले हुये हैं। ये पर्वत दस दस हजार योजन ऊँचे पूर्व से पश्चिम को फैले हुये हैं। इन पर्वतों से हरिवर्ष, किंपुरुष वर्ष तथा भारतवर्ष की सीमा बनती हैं। इलावृत्त के पूर्व तथा पश्चिम की ओर उत्तर दिशा में नील पर्वत और निषध पर्वत तक फेले हुए गन्धमादन और माल्यवान नाम के दो पर्वत, दो दो हजार योजन चौड़े हैं। ये पर्वत भद्राश्व तथा केतुमाल नाम के वर्षों की सीमा बनाते हैं। इन पर्वतों के अतिरिक्त मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद ये चार पर्वत दस २ हजार योजन लम्बे मेरु पर्वत से निकले हैं। इन पर्वतों पर आम, जामुन, कदम्ब तथा बड़ के चार बड़े वृक्ष हैं। इन वृक्षों में से प्रत्येक ग्यारह सौ योजन ऊँचा तथा सौ सौ योजन विस्तार में है। हे राजन्! इन पर्वतों पर क्रमशः दूध, मधु, ईख के रस तथा मीठे जल के चार बड़े सरोवर हैं। इन का सेवन, यक्ष गन्धर्व तथा किंनर लोग करते हैं। इन पर्वतों पर नन्दन, चैत्र रथ, वैभ्रा जल, सर्वतोभद्र नाम के चार उत्तम वन हैं। इन में देवतागण अपनी पत्नियों के साथ विहार करते हैं। मन्दराचल पर्वत पर ग्यारह सौ योजन ऊँचा आम्र वृक्ष है। उससे आम्र गिर कर रस पर्वत पर बहता रहता है। उससे अर्णोदा नामकी नदी प्रगट होती है। यह नदी मन्दराचल पर्वत से निकल कर इलावृत वर्ष के पूर्व भाग में बहती है। देवी पार्वती की दासियाँ यक्षिणी इस सुगन्धित जल का सेवन करती हैं। इस प्रकार जामुन के वृक्ष से बिना गुठली के बड़े २ फल गिरते हैं। यह नदी मेरु मन्दर पर्वत से निकल कर इलावृतवर्ष के दक्षिणी भाग को सींचती है। इस नदी की सूखी मिट्टी से जम्बूनद नाम का सोना बनता है। जिसे देवता तथा गन्धर्व अपने आभूषणों के उपयोग में लाते हैं। सुपार्श्व पर्वत पर कदम्ब का जो विशाल वृक्ष है उस से पाँच मधुकी धाराएँ बहती हैं। वे धारायें इलावृतवर्ष के पश्चिमी भाग को सींचती हैं। इसकी सुगन्धि सौ सौ योजन तक फैलती है कुमुद पर्वत पर जो वट वृक्ष है उस के नीचे अनेकों नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ इलावृतवर्ष के उत्तरी भाग को सींचती हैं। इन नदियों में स्नान करने से सम्पूर्ण शारीरिक रोग दूर होजाते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funded by IKS

हे राजन् ! मेरु पर्वत के मूल भाग से चारों ओर बीस पर्वत निकले हैं तथा पूर्वी भाग से जठर और देवदूत नाम के दो पर्वत निकले हैं इसी प्रकार पच्छिमी भाग से पवन तथा पारिमात्र नाम के दो पर्वत निकले हैं। दक्षिण भाग से कैलाश और कर्चर पर्वत निकले हैं उत्तरी भाग से त्रिभुङ्ग, तथा मकर नाम के पर्वत निकले हैं यह कहा जाता है कि सुमेरु पर्वत के बीचों बीच भगवान् ब्रह्माकी ब्रह्मपुरी है। जो चौरस तथा एक करोड़ योजन विस्तार में है। उसके नीचे आठों दिशाओं में इन्द्रादि लोक पालों की आठ पुरियाँ हैं जो परिमाण में ब्रह्मपुरी से चौथाई है।

❀ सत्रहवाँ अध्याय ❀

दोहा—गङ्गा की उत्पत्ति कही, व्यास पुत्र हरषाय।
जिहि विधि आई भूमिपर,कथा कही समझाय ॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! जब विरोचन पुत्र राजाबलि की यज्ञ शाला में विराट् भगवान ने अपना चरण फैलाया तो उनका बाँया पैर ब्रह्म लोक में गया। उनके नख से ब्रह्माण्ड कटाह का ऊपरी भाग फट गया उस छिद्र से एक जल धारा ब्रह्मलोक से बहने लगी। उनके चरण कमल की केसर के मिलने से वह लाल रङ्ग की हो गई। पहले इसका नाम 'भगवत्पदी' था। वह धारा सहस्रों युग व्यतीत होने पर ध्रुवलोक में आई, वहाँ इसे बिष्णु पद भी कहते हैं। उस ध्रुवलोक में ध्रुवजी का निवास है। वे उस जलको नित्य अपने शिर पर चढ़ाते हैं। उस ध्रुव लोकके आस पास सप्तर्षिगण तपस्या करते हैं। उस ध्रुवलोक से गङ्गाजी आकाश में होकर उतरती हैं और चन्द्रमण्डल को सींचती हुई मेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरती हैं। उस स्थान से सीता, अलकनन्दा, चक्षु तथा भद्रा नामकी चार धाराओं में बँट जाती हैं और चारों दिशाओंको सींचती हुई समुद्र में आ गिरती है। सीता नदी ब्रह्मपुरी से निकल कर गन्धमादन के शिखर पर गिरती है तथा भद्राश्व वर्षको सींचती हुई पूर्व की ओर खारे समुद्र में गिरती हैं। इसी भाँति चक्षु नदी माल्यवान पर्वत पर गिरकर उस स्थान से केतुमाल वर्ष को सींचती हुई पश्चिम की ओर खारे समुद्र में

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गिरती है। भद्रा नदी मेरु पर्वत से उत्तर की ओर दूसरे पर्वत पर गिरती है तथा श्रृङ्गवान पर्वत से निकलकर कुरुदेश के उत्तरी भाग को सींच कर उत्तरी समुद्र में गिरती है। अलकनन्दा नदी ब्रह्मपुरी से निकल कर दक्षिण की ओर हेमकूट पर्वत पर गिरती है। वहाँ से हिमालय के शिखरों को चीर कर भारतवर्ष में आकर दक्षिण की ओर समुद्र में गिरती है इसको भागीरथी गङ्गा कहते हैं। इन दस वर्षों में भारतवर्ष ही उत्तम कर्म भूमि है। बाकी वर्ष तो स्वर्ग बासी पुरुषों के स्वर्ग से बचे हुए पुण्य भोगों को भोगने का स्थान है। इसलिए इन्हें भूलोक के स्वर्ग भी कहते हैं। वहाँ के मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की होती है उनमें दस हजार हाथियों का बल होता है। अन्त में जब उनके भोग समाप्त हो जाते हैं। जब उनकी आयु केवल एक वर्ष रह जाती है तब उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं वहाँ पर सदा त्रेता युग बना रहता है। वहाँ उत्तम आश्रम, रम्य वाटिकायें तथा घाटियाँ हैं।

इन नव वर्षों में भगवान् नारायण विभिन्न मूर्तियों से विराजमान हैं इलावृत वर्ष में केवल भगवान् शंकर ही पुरुष हैं। वहाँ पार्वती जी के शाप से सभी पुरुष स्त्री हो जाते हैं। वहाँ पर अर्वों खर्वों अनुचरियों के सहित पार्वती जी से सेवा प्राप्त करने वाले भगवान् शंकर, वासुदेव, प्रद्युम्न अनिरुद्ध तथा संकर्षण इन चतुर्व्यूह परमात्मा के विग्रह का चिन्तन करते रहते हैं। वहाँ पर तामसी मूर्ति रहती हैं। वहाँ पर मंत्र 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुण संख्या नायानन्तायाव्यक्ताय नमः' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए भगवान् शंकर स्तुति करते हैं। भगवान् शंकर कहते हैं हे प्रभो आपके चरण कमल सम्पूर्ण भक्तों का आश्रय है और आप स्वयं अनुपम ऐश्वर्यों के देने वाले हैं। आप अपने भक्तों को दर्शन देते हैं, और उन्हें मुक्त भी कर देते हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सर्वश्रेष्ठ आपके सौन्दर्य तथा अरुण नयन को देखकर नागपत्नियों का चित्त वश हो उठता है। वे लज्जावश आपकी पूजा करने में असमर्थ हैं। आप ही जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा लय करते हैं। आप अनन्त हैं। आप सहस्रशीर्षा हैं तथा पृथ्वी को सरसों के दाने के समान धारण किए

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

आप अहंकार स्वरूप त्रिगुणमय तेज से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करते हैं। ब्रह्मा भी आप से उत्पन्न हुये हैं। ये सम्पूर्ण प्राणी आपने ही बनाये हैं जो आपकी माया से मोहित होकर कर्म बन्धन में बँधते हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

दोहा–वर्ष नाम वर्णन कियौ, व्यास पुत्र सुज्ञान।
विविध रूप धरि के प्रभू, पूजा लेत महान॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित! भद्राश्ववर्ष में धर्मराज के पुत्र भद्रश्रवा का राज्य है। वहाँ पर भगवान् हयग्रीव की पूजा होती है। ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः मंत्र से पूजा होती है। इस मन्त्र का अर्थ है-चित्त को सुख करने वाले ओंकार स्वरूप भगवान् धर्म को हम नमस्कार करते हैं। वहाँ के रहने वाले इसी मन्त्र से भगवान् की आराधना करते हैं।

हरिवर्षखंड में नृसिंह भगवान् की पूजा होती है। वहाँ पर दैत्यकुलभूषण भक्तवर प्रहलादजी रहते हैं। वे ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्ते जसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदन्ष्ट्र कर्माशयान रन्यप २ तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयम भयमात्मनि भूयिष्ठाः 'ॐ क्ष्रौम' ! इस मन्त्रसे सदा जप करते रहते हैं। इस मन्त्र का अर्थ है—ॐकार स्वरूप भगवान् नृसिंहजी को नमस्कार है। हे वज्रनख तथा वज्र दाड़ों वाले हमारे निकट प्रगट होकर दर्शन दें। हमारी इच्छाओं को जला दीजिए, जला दीजिए। अज्ञानान्धकार को नष्ट कीजिए, नष्ट कीजिए। आपका तेज अग्नि से भी अधिक है हम नमस्कार करते हैं।

'ॐस्वाहा' का अर्थ है–हमारे हृदय में प्रकाशित हूजिये। ॐ क्ष्रौम मन्त्र का जप करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं। हे प्रभो! सम्पूर्ण जगत का कल्याण हो, दुष्ट लोग दुष्टता छोड़कर उत्तम मार्ग पर चलें, हमारा मन शुभ कर्मों में लगा रहे।

केतुमाल वर्ष में लक्ष्मीजी संवत्सर नाम प्रजापति के पुत्र तथा कन्याओं के साथ भगवान् कामदेव की आराधना करती हैं। उन की आयु छत्तीस २

Bhagwan Das Ji Collection, Digambar Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हजार वर्ष की है। उन कन्याओं के गर्भ भगवान् के सुदर्शनचक्र के भय से प्रतिवर्ष खण्डित होजाते हैं। लक्ष्मीजी रात्रिमें संवत्सर की कन्याओं के साथ आराधना करती हैं। दिनमें उनके पतियों के साथ आराधना किया करती हैं।

मन्त्र–ॐ ह्रीं ह्रीं हू । ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुण विशेषै विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषणां धिपतच ये षोडशकलाय च्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् । इस मन्त्र से लक्ष्मी जी सदा भगवान् की स्तुति करती हैं।

रम्यकवर्ष के अधिपति मनुजी को भयवान् ने मत्स्यरूप दिखाया था अतः वहाँ मत्स्य भगवान की पूजा होती है। ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौज से सहसे बलाय महामत्स्याय नमः मन्त्र से वहाँ के निवासी स्तुति करते हैं।

हिरण्मयवर्ष में कच्छप भगवान की पूजा होती है। वहाँ के अधिपति अर्यमा कच्छप भगवान्की आराधना करते हैं। ॐनमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण विशेषणाययानुपलक्षितस्थानायनमोवर्ष्मणे नमोभूम्नेनमोनमोऽवस्थानाय नमस्ते।इस मन्त्रसे निरन्तर जपकरते हुए भगवान्कीस्तुतिकरते हैं।

उत्तर कुरुवर्ष में बाराह भगवान की पूजा होती है। ॐनमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय [महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते। वहाँ के निवासियों सहित पृथ्वी इस परम मन्त्र का जप करती हुई उनकी स्तुति करती है।

॥ उन्नींसवा अध्याय ॥

किम्पुरुष तथा भारत वर्ष का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजन्! किम्पुरुष वर्ष में सीता पति श्रीरामचन्द्रजी कीं उपसना होती है। वहाँ पर श्री हनुमानजी किन्नरों के साथ भगवान राम की उपासना करते हैं। श्री हनुमानजीॐनमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्य लक्षण शीलव्रताय नमः उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवाद निकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषायमहाराजाय नमः इस मन्त्र का जप करते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funded by IKS

भारतवर्ष में भगवान् नर नारायण अव्यक्त रूप से कल्पांत तक तप करते रहते हैं। यहाँ श्री नारदजी साँख्ययोग तथा भगवान् की महिमा पाँचरात्र दर्शन का उपदेश सावर्णि मुनिके करने के हेतु भगवान् श्रीनरनारायणकी उपासना करते हैं तथा वर्णाश्रम धर्म का उपदेश करते हैं। मन्त्र-ॐ नमो भगवते उपशय शीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंच्चनवित्ताय ऋषि ऋषभाय नरनारायण परमहंस परमगुरवे आत्मारामोधिपतये नमो नमः इस मन्त्र का अर्थ है कि ॐकार स्वरूप अहंकार हीन निर्धनों के धनशांत-रूप भगवान नर नारायण को नमस्कार है। परमहंस के गुरु आत्मारामों के स्वामी को बार बार नमस्कार है। इस मन्त्र का जप करते हुए स्तोत्रों द्वारा भगवान् की स्तुति करते हैं।

वह परमात्मा जगत का कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता रहता है। शरीर में व्याप्त होते हुए भी इन्द्रियों के विषयों से अलग रहता है। द्रष्टा होते हुए भी अदृष्टा रहता है। भगवान ब्रह्मा ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य मृत्यु के समय भगवान में चित्त को लगावे।

हे राजा परीक्षित्! भारतवर्ष कर्म प्रधान वर्ष है इस वर्ष के लिये देवता भी तरसते हैं वे कहते हैं कि भारतवर्षमें जन्म लेने वाले प्राणी धन्य हैं। जो भगवान की सेवा के योग्य जन्म प्राप्त करते हैं। इस भारत वर्ष में अनेकों ऊँचे २ रम्य पर्वत अनेकों नद नदी विद्यमान हैं। जिन पर बड़ेबड़े आत्मज्ञानी ऋषि आश्रम बनाकर रहते हैं। इस भारतवर्ष में जन्म लेने के लिए देवता लालायित रहते हैं। वे ब्रह्मलोक से बढ़कर कर्म भूमि भारतवर्ष को मानते हैं। वे कहते हैं कि भारतवर्ष में जैसा कर्म करते हैं वैसा ही दिव्यलोक प्राप्त होता है। अहा! इन भारतवासियों का कैसा सौभाग्य है कि जब भारतवासी यज्ञादि कर्म करते समय भिन्न भिन्न देवताओं को हविं प्रदान करते हैं,तब स्वयं यज्ञ पुरुष पधारकर उस हविं को लेते हैं जो मनुष्य सकाम भाव से उन्हें भजते हैं, उनकी कामना पूर्ण करते हैं और जो निष्काम भाव से भजते हैं उन्हें मोक्ष पद देते हैं।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा! महाराज सगर के पुत्रों के खोदने से जम्बूद्वीप में आठ उपद्वीप और बन गये थे उनके नाम स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आवर्तन, रमणक, मन्दहरिण, पाँचजन्य, सिंहल तथा लंका है। हे राजन्! जैसा मैंने गुरूजी से सुना था वैसा ही तुम्हें सुना दिया है।

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

अन्य छै द्वीपों तथा लोकों का वर्णन

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! अब मैं तुम्हें अन्य महा द्वीपों का वर्णन सुनाता हूँ। जम्बूद्वीप के चारों ओर क्षार का समुद्र है उसके चारों ओर परिमाण में दुगना प्लक्षद्वीप है। इन द्वीपों में प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष अति विशाल होनेसेही उस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप पड़ा है इस द्वीप के अधिपति, प्रियव्रतके पुत्र महाराज इष्मजिह्व थे। उन्होंने इस द्वीप को सात वर्षों में बाँट कर अपने सातों पुत्रों को दे दिया था। इन वर्षों के नाम शिव, यवस, सुभद्, शाँत, क्षेम, अमृत तथा अभय है। प्रत्येक पुत्र ने अपने नाम से ही इन वर्षों के नाम रख लिये। यहाँ सात पर्वत तथा सात मुख्य नदियाँ हैं। मणिकूट, बज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव तथा मेघमाल ये सात पर्वत हैं, तथा अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरां तथा सत्यम्भरा ये सात नदियाँ हैं। इन वर्षों के निवासी एक सहस्र वर्ष की आयु वाले हैं। इनके शरीर से देवताओं की सी सुगन्धि निकलती है। ये लोग सूर्य की उपासना करते हैं।

प्लक्षद्वीप ईख रस के समुद्र से घिरा है। उस के चारों ओर शाल्मली द्वीप घिरा है। जो परिमाण में प्लक्षद्वीप से दुगना है। इस शाल्मली द्वीप के चारों ओर मदिरा का समुद्र है। शाल्मली (सेमर) के विशाल वृक्ष के नाम से ही इस द्वीप का नाम शाल्मली द्वीप पड़ा है। यहाँ भगवान गरुड़ देव का निवास है इस द्वीप के राजा प्रियव्रत के पुत्र महाराज यज्ञबाहु थे। उन्होंने इस द्वीप को सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष पारिभद्र आप्यायन तथा अविज्ञात नाम के सात वर्षों में बाँट दिया था। उन्हें उन्हीं नामों से अपने पुत्रों को सौंप दिया। इस द्वीप में भी सात ही पर्वत तथा सात मुख्य नदियाँ हैं। इस द्वीप में चन्द्रमा की उपासना करते हैं।

हे राजन्! इसी प्रकार मदिरा के समुद्र को घेरे हुए कुलद्वीप है जो घृत समुद्र से घिरा है। इस में एक कुशों का विशाल झाड़ होने से कुश

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नाम से पुकारा जाता है। इसके स्वामी प्रियव्रत पुत्र महाराज हिरण्यरेत थे। उन्होंने इसे सात भागों में बाँट कर अपने पुत्रों को दे दिया था। इस में भी सात पर्वत तथा सात ही नदियाँ हैं। इस द्वीप में भगवान हरि का पूजन करते हैं।

हे राजन्! घृत समुद्र को घेरे हुये दूने परिमाण में क्रौंचद्वीप है। यह द्वीप भी दूध के समुद्र से घिरा हुआ है। इस द्वीप में क्रौन्च पर्वत है इस लिये इसे क्रौन्चद्वीप कहते हैं। इसके राजा प्रियव्रत पुत्र महाराज घृतपृष्ठ थे। उन्होंने इस द्वीप को सात भागों में बांट कर सातों पुत्रों को उन्हीं के नाम वाले वर्ष दे दिये। इस द्वीपमें भी सातों वर्षों में सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं। यहाँ पर जल देवता (आपोदेवता) की उपासना करते हैं।

हे राजन्! क्षीर सागर को घेरे हुए बत्तीसलाख योजन विस्तार में शाकद्वीप है। जिसके चारों ओर मट्ठा का समुद्र है। इस द्वीप में शाक नाम का वृक्ष है उसी के नाम से इस द्वीप का नाम शाक द्वीप रक्खा गया है। राजा प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि उसके स्वामी थे। उन्होंने इस द्वीप को सात भागों में बाँट कर समान नामवाले अपने पुत्रों को प्रत्येक वर्ष का स्वामी बना दिया। इन सातों वर्षों में सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं। इस द्वीप के निवासी वायु रूप भगवान् हरि की आराधना करते हैं।

हे राजन् मट्ठे के समुद्र को घेरने वाला दुगने विस्तार में पुष्कर द्वीप है। वह मीठे जल से घिरा हुआ। इस द्वीप में एक विशाल कमल पुष्प है उसी के नाम से इसे पुष्कर (कमल) द्वीप कहते हैं।

इस द्वीप के मध्य में मानसरोवर नाम का पर्वत है। इस पर्वत का विस्तार दस सहस्र योजन लम्बाई ऊँचाई में है। इस कमल को ही ब्रह्मा जी का आसन मानते हैं। इस द्वीप का स्वामी प्रियव्रत पुत्र महाराज वीतिहोत्र थे उन्होंने इस द्वीप को दो भागों में बाँट कर अपने पुत्र रमणीक तथा धातकि को दे दिये। इस द्वीप में ब्रह्माजी की उपासना करते हैं।

हे राजन्! इस द्वीप के आगे लोकालोक नाम वाला पर्वत है। उस के आगे स्वर्ण की भूमि है। लोकालोक पर्वत सूर्य से प्रकाशित तथा अप्रकाशित भाग के मध्य में है। इसको त्रिलोकी से बाहर मानते हैं। मैंने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तुम्हें विस्तार पूर्वक सम्पूर्ण भू भागों का वर्णन सुना दिया। स्वर्ग तथा पृथ्वी के मध्य में सूर्य भगवान् विराजते हैं। सूर्य और ब्रह्माण्ड के बीच पच्चीस करोड़ योजन का फासला है।

❀ इक्कीसवाँ अध्याय ❀

सूर्य की गति तथा उनके रथ का वर्णन

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित् ! अब मैं तुम्हें द्युलोक का वर्णन सुनाता हूँ। भूलोक तथा द्युलोक के मध्य में अन्तरिक्ष लोक है। इस द्युलोक में सूर्य भगवान् नक्षत्र तारों के मध्य में विराजमान रह कर तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। उत्तरायण दक्षिणायण तथा विषुवत् इन तीनों मार्गों से चलने के कारण कर्क, मकर तथा समान गतियों से छोटे बड़े तथा समान दिन रात्रि बनाते हैं। जब भगवान् सूर्य मेष तथा तुला राशि पर रहते हैं तब दिन रात्रि समान रहते हैं जब वे वृष, मिथुन, कर्क, सिंह कन्या, पाँच राशियों में रहते हैं तब क्रमशः रात्रि एक एक मास में एक एक घड़ी बढ़ती जाती है तथा दिन घटते जाते हैं। जब सूर्य वृश्चिक, मकर, कुम्भ, मीन तथा मेष में रहते हैं तब क्रमशः दिन प्रति मास एक एक घड़ी बढ़ता जाता है और रात्रि कम होती जाती है।

हे राजन् ! सूर्य की परिक्रमा का मार्ग मानसोत्तर पर्वत पर इक्यावन लाख योजन है। मेरु के पूर्व की ओर इन्द्रपुरी है, दक्षिणकी ओर यमपुरी है, पश्चिम की ओर वरुणपुरी है तथा उत्तर की ओर चन्द्रपुरी है। इस पर्वत के चारों ओर सूर्य परिक्रमा करते हैं इसलिए उन पुरियों में कभी दिन कभी रात्रि कभी मध्यान्ह होता रहता है। सूर्य भगवान् जिस पुरी में उदय होते हैं उसके ठीक सामने अस्त होते प्रतीत होते हैं। जिस पुरी में मध्यान्ह होता है उसके ठीक सामने अर्ध रात्रि होती है।

सूर्य भगवान् की चाल पन्द्रह घड़ी में सवासौ करोड़ साढ़े बारह लाख योजन से कुछ अधिक है। इसी प्रकार चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र भी साथ घूमते रहते हैं। सूर्य का रथ एक मुहूर्त (दो घड़ी में) चौंतीस लाख आठ सौ योजन चलता है। इनके रथ का संवत्सर नाम का एक पहिया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है जिसके बारह अरे बारह मास हैं छः नेमि छः ऋतु हैं तीन आमन चौमासे हैं, इस रथ की एक धुरी मानसोत्तर पर्वत पर रक्खी है। दूसरा सिरा मेरु पर्वत पर रक्खा है। इस रथ में बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा तथा नौलख योजन चौड़ा है। इस का जुआ छत्तीस लाख योजन लम्बा है। अरुण नाम का सारथी गायत्री आदि छन्दों के सात घोड़ों को जोतते हैं। रथ के आगे आगे पोरुये के समान अंगुष्ठ प्रमाण में साठ सहस्त्र बालखिल्य ऋषि स्वस्ति बाचन करते हुए चलते हैं। इसी प्रकार गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, नाग संख्या में चौदह दो दो के हिसाब से सात जोड़ में उनकी उपासना अलग अलग नामों से अलग अलग महिनों में करते हैं।

हे राजन् ! भगवान् भुवन भास्कर इस प्रकार नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लम्बे परधि को एक क्षण में दो सहस्त्र योजन के हिसाब से तय कर जाते हैं।

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

दोहा—व्यास पुत्र कहने लगे, ग्रह गति स्थित काल।
कुम्हकार कौ चाक ज्यों, घूमत निज निज काल ॥

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! आपने सूर्य की गति का वर्णन किया अब कृपा करके ग्रहों की गति का वर्णन कीजिये। इस ज्योतिश्चक्र में ये समस्त ग्रह नक्षत्र किस प्रकार स्थित हैं ? श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! जिस प्रकार कुम्हार के चलाने पर उसका चक्र स्वयं अपनी धुरी पर घूमता है उसी प्रकार ज्योतिषस्वरूप भगवान् के चलाने पर यह ग्रह,नक्षत्र, तारे, सूर्य, चन्द्रमा आदि सभी स्वतः अपनी अपनी गति पर चलते रहते हैं, ध्रुव तथा मेरु पर्वत को दाऐं रखकर भगवान् सूर्य तथा ग्रह नक्षत्रों की चाल बिपरीति प्रतीत होती है। क्यों कि काल भेद के अनुसार उन की गति भिन्न भिन्न है। भगवान् भुवन भास्कर काल को बारह मासों में बाँट कर एक मास की एक एक राशि में तप करते हैं दो दो मॉस की छः ऋतु मानी गई हैं। प्रत्येक मास चन्द्रायन से शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष दो पक्षों का माना गया है। सूर्य भगवान् जब छः मास भोग लेते हैं तब उसे 'अयण' कहते हैं। अयण दो हैं—एक उत्तरायण दूसरा दक्षिणायण। जितने का फल

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में सूर्य भगवान् बारह राशियों को भोग लेते हैं उसे संवत्सर कहते हैं।

हे राजन्! सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा बिराजते हैं। चन्द्रमा ग्रह की चाल अति तीव्र है। वह सब नक्षत्रों से आगे रहता है। जिस मार्ग को सूर्य एक वर्ष में तय करते हैं उसे चन्द्रमा एक मास में तय कर लेता है। जितने मार्ग को सूर्य एक मास में तय कर लेता है उसे चन्द्रमा सवा दो दिन में तय कर लेता है।

चन्द्रमा साठ साठ घड़ी के एक एक नक्षत्र को तय करता है अभिजित सहित अट्ठाइस नक्षत्र हैं। ये कृष्णपक्ष में क्षीण कला तथा शुक्ल पक्ष में पूर्ण कला से रहता है।

चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अट्ठाईस नक्षत्र रहते हैं। ये विराट् भगवान् के काल चक्र में स्थित हैं इनमें दो लाख योजन ऊपर शुक्र ग्रह घूमता है। यह सूर्य की शीघ्र, मन्द गति से आगे पीछे कभी साथ साथ चलता है वह वर्षा करने वाला ग्रह है। बुध की गति भी शुक्र के अनुसार है यह शुक्र से दो लाख योजन ऊपर रहता है। यह शुभ है। कभी सूर्य से आगे कभी पीछे कभी साथ साथ रहता है। जब यह सूर्य से आगे चलता है तब आँधी बवण्डर आदि उत्पन्न करता है। यह कभी मार्गी कभी वक्री हो जाता है। इस से दो लाख योजन ऊपर मंगल ग्रह है। यह अमंगलकारी है। यह कभी वक्री तथा मार्गी दोनों चालों से चलता है। यदि मार्गी रहे तो एक राशि को तीन पक्ष में तय कर लेता है। इससे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति ग्रह रहता है यह एक राशि को तेरह महीने में तय करता है।

बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि का ग्रह घूमता है। यह एक राशि को ढाई वर्ष में तय करके सारे ज्योतिष चक्र को तीन वर्ष में तय करता है यह अशुभ तथा मन्द गति ग्रह है।

हे राजन्! इन सब ग्रहों से ऊपर ग्यारह लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षि ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते हैं। ये सब लोकों की शुभ कामना करते रहते हैं।

—:❀:—

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by MoE-IKS

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

शिशुमार चक्र का वर्णन करना

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! सप्तर्षियों से भी तेरह लाख योजन की दूरी पर ऊपर की ओर ध्रुवलोक है। वहाँ भगवान् के परम भक्त ध्रुवजी विराजते हैं। सप्तर्षियों के साथ साथ इन्द्र, अग्नि, प्रजापति कश्यप, धर्म आदि भी नक्षत्रों के रूप में ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते हैं। काल भगवान् की प्रेरणा से यह सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र घूमता रहता है, तथा ध्रुव लोक की-प्रदक्षिणा करता रहता है। जिस प्रकार खलिहान में गाढ़े हुए खम्भे के चारों ओर बैल अपनी अपनी दूरी से घूमते रहते हैं। उसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्र, परस्पर एक दूसरे से न टकरा कर अपनी अपनी गति से घूमते रहते हैं। प्रकृति तथा पुरुष (परमात्मा) के योग से सब नक्षत्र ग्रह यथावत् चक्कर लगाते रहते हैं।

कोई २ विद्वान् इस ज्योतिश्चक्र को शिशुमार जलजन्तु में आरोपित करता है। शिशुमार की कल्पना करके उसकी कुण्डली मुख नीचे को मानते हैं पुच्छ के सिरे पर ध्रुवलोक का अनुमान करते हैं। पुच्छ के मध्य में इन्द्र अग्नि धर्म तथा प्रजापति की स्थित करते हैं। मूलमें धाता विधाता की स्थित मानते हैं। उनके कटि भाग में सप्तर्षि हैं। चौदह नक्षत्र दाहिने अङ्ग में तथा चौदह नक्षत्र बाँये अङ्ग में कल्पना करते हैं। पीठ में मूल उत्तराषाढ़ा तथा पूर्वाषाढ़ा हैं, पेट में आकाश गङ्गा की कल्पना करते हैं। कटि भाग में पुनर्वसु तथा पुष्प नक्षत्र की स्थापना मानते हैं। दोनों चरणों में आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्र हैं। दोनों नथुनों में अभिजित तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र की कल्पना करते हैं कानों में धनिष्ठा तथा मूल नक्षत्र हैं बाँईं पसलियों है मघा आदि आठ नक्षत्र हैं। तथा दाहिनी पसलियों में मृगसिरा से आदि आठ नक्षत्र हैं। ऊपर मुँह पर अगस्त्य, ठोड़ी में यम लिंग प्रदेश में शनि, उदर में ब्रहस्पति, वक्षः में सूर्य, हृदय में परमात्मा, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्थित हैं दोनों स्थानों में दोनों अश्विनी कुमार, प्राण तथा अपान वायुमें बुध, कण्ठ में राहु तथा रोमोंमें तारागणों कीकल्पनाहै।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे राजा परीक्षित्! विराट् भगवान् का यह सर्वदेवमय ज्योतिश्च[क्र] है। जो मनुष्य तीनों कालों में इस स्वरूप का ध्यान करता है वह पापों [से] मुक्त हो जाता है।

चौबीसवाँ अध्याय

दोहा–पृथ्वी के नीचे बसैं, अतस्लादिक सब लोक।
सुतल लोक में रहत हैं, दैत्य वंश आलोक॥ (बलि)

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित्! विद्वानों के कथनानुसा[र] भगवान् सूर्य से दस हजार योजन नीचे राहु की स्थिति मानते हैं। सूर्य [का] आदि तप्त भाग दस हजार योजन है। इस राहु के कारण अमावस्या त[था] पूर्णिमा को ग्रहण होता है। भगवान् का सुदर्शनचक्र राहुके सन्मुख घूम[ता] रहता है उसके तेज के सन्मुख राहु का तेज निस्तेज रहता है। जब रा[हु] सूर्य, चन्द्र की गति में अन्तर आ जाने पर एक बराबर आ जाते हैं त[ब] चन्द्र ग्रहण तथा सूर्य ग्रहण हो जाते हैं। राहु के दस हजार योजन नी[चे] विद्याधर चारण तथा सिद्ध गण रहते हैं। उन से नीचे अन्तरिक्ष में य[क्ष] राक्षस भूत पेतादि रहते हैं।

हे राजन्! अब मैं तुम्हें नीचे के अतल, वितल, सुतल, तलातल, मह[ा]तल, रसातल, तथा पाताल लोकों का वर्णन सुनाऊँगा, ध्यान पूर्वक सुनो। ये सब लोक विस्तार में दस दस हजार योजन से कम नहीं है। इन लोक[ों] में योग, ऐश्वर्य, सुधा सम्पत्ति ऐसा ही हैं जैसी स्वर्ग आदि लोकों में है। वहाँ पर वैभव, क्रीड़ा स्थल, उद्यानभवन आदि इन्द्रपुरी के समान सुसज्जि[त] हैं। वहाँ सूर्य का प्रकाश न पहुँचने के कारण अन्धकार को निरन्तर मणि[यों] के प्रकाश से नाश करते रहते हैं। इन लोकों में मय दानव की बनाई [हुई] अनेकों पुरी हैं। वहाँ पर अनेकों औषधियाँ तथा रत्न राशि विद्यमान है। वहाँ कभी वृद्धावस्था ही नहीं आती। सदा दस सहस्र हाथियों का [बल] रहता है। वहाँ पर केवल भगवान् के सुदर्शन चक्र का भय रहता है [जो] असुरियों के गर्भ स्राव कर देता है।

हे राजन्! अतुल लोक में मय का पुत्र बल रहता है। उसने अ[पनी] माया से तीन प्रकार की राक्षसियाँ उत्पन्न की। वे रमणियाँ हाटक नाम[क]

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मदिरा पिला कर उन असुरों के साथ रमण करती हैं। उस मदिरा से दस सहस्र हाथियों का बल आ जाता है।

इस लोक के नीचे वितल लोक है, वहाँ हाटकेश्वर भगवान शङ्कर जी विराजते हैं। वहाँ से हाटवी नाम की नदी निकलती है।

इस लोक से नीचे सुतल लोक है, वहाँ दानवीर बलि राज्य करते हैं। भगवान गदाधर सदा उनके सिंहद्वारपर गदालेकर द्वारपाल के रूपमेंरहतेहैं।

सुतल लोक के नीचे तलातल लोक है। वहाँ त्रिपुराधिपति मय दानव रहता है। पहिले भगवान शङ्कर ने उसके ये तीनों लोक भस्म कर दिये थे किन्तु फिर उस मय की प्रार्थना पर तीनों लोक उत्पन्न कर दिये गये।

इस तलातल लोक से नीचे महातल है, जिसमें रुद्र के पुत्र नाग रहते हैं। वे पक्षिराज गरुड़ से डरते हैं।

महातल से नीचे रसातल है, वहाँ निवात कवच, कालेय तथा हिरण्य पुरवासी दानव तथा दैत्य रहते हैं, वे सदा इन्द्र से डरते रहते हैं।

इस लोक से नीचे पाताल लोक है, जहाँ अनेक प्रकार के बड़े २ नाग सौ २ फन वाले सहस्र २ फन वाले रहते हैं। उनका राजा वासुकि नाग है। इन नागों के पास ज्योतिर्मय मणियाँ हैं। जिनके प्रकाश से वहाँ के अन्धकार का नाश होता रहता है।

॥ पच्चीसवाँ अध्याय ॥

भगवान् संकर्षण की कथा तथा स्तुति।

दो०—सब से नीचे रहत हैं, संकर्षण भगवान।
रजकण सम ब्रह्माण्ड को, धारि रहे श्रीमान ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! पाताल लोक से तीस हजार योजन नीचे अनन्त भगवान अपनी तामसी नित्यकला से विराजमान रहते हैं। वे पंचरात्र के अनुयायी संकर्षण कहाते हैं। उनके एक सहस्र मस्तकहैं। यह ब्रह्माण्ड सरसों के दाने के समान उनके एक शिर पर रक्खा है। अनेकों नागराजों की कन्यायें उनकी मनोहर झाँकी के लिये तरसती रहती हैं। भगवान् अनन्त देव अङ्ग पर नीलाम्बर तथा कानों में दो कुण्डल धारण किये हुये हैं। उनकी झाँकी अनुपम है। उनका सुन्दर कर कमल मूठ पर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रक्खा है उनके फण में बैजन्ती माला है। हे राजन्! एक बार नारद जी ने भगवान् संकर्षण की महिमा इस प्रकार गई थी। भगवान् अनन्त सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय करते हैं। यदि कोई पापी भी एक बार उनका नाम लेता है, तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जब भगवान् अनन्त प्रलय करते हैं तब क्रोधसे युक्त भ्रकुटियों में से संकर्षण नामक रुद्र प्रकट होते हैं। वे संख्या में ग्यारह तथा सब त्रिशूल लिये हुए रहते हैं। भगवान् संकर्षण के गुण सहस्र जीभों से भी वर्णन नहीं कर सकते। ये भगवान् अनन्त सारे विश्व को धारण किये रहते हैं।

हे राजन्! मैंने जैसा सुना था वैसा वर्णन कर दिया। अब बताओ क्या वर्णन करूँ?

॥ छब्बीसवाँ अध्याय ॥

❀ भिन्न भिन्न नरकों का वर्णन करना ❀

चौपाई—निज निज करनी के अनुसारा। भोगे जीव नरक अधिकारा॥
नाना क्लेश देहि यम दूता। अधमयोनि पावें सब भूता॥

राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन्! मनुष्यों को जो अनेक प्रकार की गतियाँ मिलती हैं। ऐसा क्यों होता है? किन किन पापों से नरक प्राप्त होता है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! मनुष्य सात्विक, राजस, तामस तीन प्रकार के स्वभावों से भिन्न २ कर्म करते हैं। इस लिये उन की गतियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। पाप कर्मों के कारण सहस्त्रों नारकी गतियाँ प्राप्त होती हैं। चौरासी लाख योनियाँ नरक हैं, किन्तु मुख्य २ नरक अट्ठाईस बताये हैं उनका वर्णन मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

त्रिलोकी के भीतर दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे नरकों की स्थापना जल के ऊपर है। उस दक्षिण दिशा में नरक मार्ग में पितृगण भी रहते हैं जो अपने वंशजों की शुभ कामना करते रहते हैं अट्ठाईस नरकों के नाम—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक शाल्मली, वैतरणी, प्रमोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

अवीची, अयरेपान, चार कर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रेत दन्तशूल, अवटरोधन, पर्यावर्तन, सूचीमुख हैं।

१—जो पुरुष किसी के धन, स्त्री, पुत्रादि का हरण करता है वह तामिस्र नरक में गिरता है। इस नरक में डण्डे लगाये जाते हैं। उसे अनेक प्रकार की पीड़ायें दी जाती हैं। २—जो प्राणी किसी को धोखा देता है उसे अन्धतामिस्र नरक मिलता है। ३—जो प्राणी अहंकार वश में मेरे पन के अभिमान में रहता है वह सब को अपना कहता है उसे रौरव नरक मिलता है। रुद्र नाम कीड़े उसे काटते हैं इसीलिए उसे रौरव कहते हैं। ऐसा ही महारौरव नरक है। ४—जो प्राणी दूसरे के माँस को राँध–राँध कर खाते हैं, उन्हें कुम्भी पाक नरक में यमदूत तेल में डाल कर राँधते हैं। ५--जो माता पिता तथा ब्राह्मणों का विरोध करता है उसे कालसूत्र नरक मिलता है। कालसूत्र नरक में अग्नि का दाह होता है उसमें प्राणी जलाया जाता है। ६--जो निज धर्म के मार्ग को त्याग कर पाखण्ड मार्ग पर चलता है असिपत्रवन नामक नरक मिलता है। उन बन के पत्ते तलवार के समान पैने तथा नौकदार होते हैं। प्राणी उनसे छेदा जाता है। ७--जो प्राणी राजा तथा राजकर्मचारी किसी को अकारण दण्ड देता है उसे सूकर मुख नरक प्राप्त होता है। उसके अङ्गों को कोल्हू में पेला जाता है।

८--जो प्राणी खटमल, मक्खी, मच्छर आदि की हिंसा करता है उसे अन्धकूप नरक मिलता है। मच्छर, खटमल आदि का स्वाभाविक गुण ईश्वर ने रक्तपान करने का बनाया है, मूर्ख मनुष्य उन्हें ईश्वर की गति के विरुद्ध सताता है तो उसे अन्धकूप नरक मिलता है। उसे वहाँ जू, खटमल मच्छर खाते हैं। ६--जो प्राणी बिना मंत्र यज्ञ किये तथा किसी दूसरे को दिये खा लेता है उसे कृमि भोज नरक मिलता है, वहाँ उसे कीड़ों के कुन्ड में डाल कर कीड़ों द्वारा खिलाया जाता है। १०-जो किसी के धन की चोरी करता है। यमदूत सन्दन्श नामक नरक में तपाये हुए खम्भे में बाँधकर दण्ड देते हैं। ११-जो स्त्री या पुरुष अगम्य पुरुष या स्त्री से भोग करते हैं यम के दूत गर्म लोहे की स्त्री से पुरुष को तथा गर्म लोहे के पुरुष से स्त्री को चिपटाते हैं। १२-जो पशुओं से व्यभिचार करते हैं उन्हे व्रजकंटक, शाल्मली

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नरक में डालते हैं। १३–जो राजा तथा राज कर्मचारी कुल के नियमों का उल्लंघन करते हैं। उन्हें वैतरणी नरक में डालते हैं। उसमें मल, मूत्र पीव, रुधिर बहता रहता है। १४–जो शूद्रा स्त्री के साथ भोग करता है उसे प्रमोद नामक नरक में, रुधिर, विष्ठा, पीव आदिके समुद्र में डालते हैं। १५-ब्राह्मण आदि उत्तम कुल के पुरुष कुत्ते, गधे पालते तथा यज्ञ कर्म के अतिरिक्त पशु हिंसा करते हैं उन्हें विशसन नामक नरक प्राप्त होता है। १६–जो किसी के घर में आग लगा देते हैं,या लूटते हैं, उन्हेंसारमेयादन नामक नरक में डालते हैं। १७–जो झूँठ बोलता है उसे अवीचिमान नामक नरक मिलता है। १८-जो ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी मदिरापान करता है वह अयरेपान नरक में गिरता है। १९-जो नरमेध से भैरव काली आदि का भजन करता है वह रक्षोगण भोजन नामक नरक में गिरता है। यम के दूत उसी का रक्तपान करते तथा माँस खाते हैं। २०–जो प्राणी उग्र स्वभाव से दूसरों को दुःख देते हैं उन्हें दन्दशूक नामक सर्पों का नरक मिलता है, वहाँ साँप उसे खाते हैं। २१-जो अपने घर आये हुए अतिथि तथा अभ्यागतों को क्रोधित होकर बुरी दृष्टि से देखता है, उन्हें पर्यावर्तन नरक मिलता है। २२--जो धन के मद में अभिमानी रहता है उसे सूची मुख नरक मिलता है।

हे राजा परीक्षित्! इसी प्रकार सहस्रों कर्मों के अनुसार सहस्रों ही नरक हैं। इसलिए अपनी भलाई चाहने वाले प्राणी को सदा पाप से बच कर भगवत् भजन करना चाहिये। जिससे उसे नरक का दुःख न भोगना पड़े।

❀ पञ्चम स्कन्ध समाप्त ❀

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ श्री गणेशायनमः ❀

वृहद् सुखसागर

॥ षष्ठम् स्कंध ॥

नमः परस्मै पुरुषाव भूयसे सदुद्भवस्थान निरोध लीलया ।
गृहीत शक्ति जितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलव्यवर्त्मने ॥

अर्थ—उस परमात्मा को मेरा कोटानिकोट नमस्कार है जो संसार की उत्पत्ति स्थिति तथा लय करने के हेतु सत्य, रज, तम तीन गुणों वाली शक्तियों को स्वीकार कर के ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का रूप धारण करते हैं। जो अन्तर्यामी रूप से सब जीवों के हृदय में विराजमान हैं। जिनकी प्राप्ति का मार्ग बुद्धि से परे है जो स्वयं अनन्त हैं।

॥ पहिला अध्याय ॥

अजामिलोपाख्यान

चौपाई—दुष्ट अजामिल अघ भंडारा। करत पाप नित बेशुम्बारा।
अन्त समय नारायण लीन्हा। भक्त जानि प्रभु निजपद दीन्हा ॥

राजा परीक्षित बोले–हे ब्रह्मन्! आपने द्वितीय स्कंध में निवृत मार्ग का वर्णन किया है उसमें जीव के मोक्ष होने की बात कही है। आप ने तृतीय स्कंध में प्रवृति मार्ग का वर्णन किया है जिस में स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति कही है। तथा जीवों के बार बार जन्म मरण के विषय में चर्चा की है। आपने चौथे स्कंध में मन्वन्तरों का वर्णन किया है। साथ ही साथ प्रियव्रत तथा उत्तानपाद के वंशों का भी वर्णन किया है। पाँचवे स्कंध में आपने द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी तथा नर्कों का वर्णन किया है। हे भगवन्! अब मैं उस उपाय को पूछता हूँ जिसके करने से मनुष्य इन

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भयङ्कर नर्कों में न जावे । आप कृपा करके उस उत्तम मार्ग का उपदे कीजिये ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! मनुष्य मन,वाणी तथा कर्म से अनेक पाप करता है । यदि उन पापों का, प्रायश्चित वह इस जन्म में नहीं कर लेता है तो उसे अवश्य नरक भोगना पड़ता है। अतः मनुष्य को अपनी बुद्धिमानी से तथा सावधानी से अपने इन पापों को इस प्रकार प्रायश्चित के द्वारा धो डालना चाहिये जिस प्रकार एक चतुर वैद्य रोग को शीघ्र दूर कर देता है ।

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन् ! मनुष्य यह जानते हुए भी कि यह पाप कर्म है फिर भी उनमें इस प्रकार प्रवृत हो जा जाता है जिस प्रकार हाथी स्नान करने पर फिर धूल सिर पर डालने में प्रवृत्त होजाता है। मनुष्य पापों का प्रायश्चित कर लेता है फिर उन्हीं को करने लग जाता है ।

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजन् ! यह तुम्हारा कहना ठीक है कि कर्म द्वारा कर्म के फल का पूरा नाश नहीं होता है कुछ न कुछ बीज अवशेष रहता है, वह शेष बीज रूपी कर्म उसको फिर पाप में लगा देता है इसलिये सच्चा प्रायश्चित तो तभी होता है जब वह मनुष्य भगवत् स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है भगवत् ज्ञान से ही सम्पूर्ण वासना तथा कर्म पाप जड़ से नष्ट हो जाते हैं । जिस प्रकार बाँस के बन को अग्नि जला देती है उसी प्रकार भगवत् ज्ञान पापों को नष्ट कर देता है। तथा ज्ञानी पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय दमन, सत्य, मन की एकाग्रता, मन की पवित्रता यम तथा नियम आदि इन नौ साधनों से पापों को नष्ट कर लेता है केवल भक्ति के द्वारा ही सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं । हे राजन् ! यह भक्ति पथ सर्वोत्तम है इस विषय में मैं तुम्हें एक उपाख्यान सुनाता हूँ ।

हे राजन् ! प्राचीन काल में कन्नौज नगर में एक अजामिल नाम ब्राह्मण रहता था । उसने एक दासी को अपनी पत्नी बना लिया था । दासी के संसर्ग से वह दूषित होकर भ्रष्टाचारी होगया । उसके दस पुत्र उनके लालन पालन के लिए तथा उस दासी की मनोकामना पूर्ण करने के लिए वह धन प्राप्ति हेतु चोरी बटमारी, धोकेबाजी, जुआ बाजी आदि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

निन्दनीय वृत्ति करता था। उसके एक पुत्र जो सब से छोटा था उसका नाम नारायण रक्खा। उस पर वह अति प्रेम करता था। उसकी तोतली बोली सुन कर उसका हृदय सदा उसी नारायण के ध्यान में रहता था। जब उस की अस्सी वर्ष की उम्र ब्यतीत होने को आई तब उसकी मृत्यु कासमय आ गया। मृत्यु के समय उसे अपने पुत्र नारायण की विशेष चिन्ता हुई। उस का हृदय नारायण में लीन हो गया। उसी समय यम के दूत उस के सिर पर आ धमके। उसके प्राणों को खींचने लगे। उन यमदूतों को देख कर अजामिल अति भयभीत तथा व्याकुल हो कर उच्च स्वर से नारायण नारा-यण पुकारने लगा। उसी समय भगवान् के पार्षद अपने स्वामी नारायण का नाम सुन कर वहाँ आ गए उस समय यम के दूत उसके प्राणों को खींच ही रहे थे। उसी समय भगवान् के पार्षदों ने आकर रोक दिया तब धर्म राज के दूतों ने कहा अरे! तुम चार भुजा वाले श्रेष्ठ पुरुष कौन हो? तुम शिरों पर मुकुट, शरीर पर पीताम्बर तथा कण्ठ में बनमाला धारण किये हुये हो। तुम लोग धर्मराज की आज्ञा का क्यों उलंघन करते हो।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! जब यम के दूतों ने पार्षदों से इस प्रकार कहा तब भगवान् के पार्षद हँस कर गम्भीर वाणी में इस प्रकार बोले—

अरे यम के दूतो! तुम लोग हमें बताओ कि धर्म का लक्षण तथा धर्म का तत्व क्या है? दण्ड किस को दिया जाता है। तथा दण्ड का क्या विधान है। मनुष्यों में सभी पाप करने वाले दण्डनीय हैं। अथवा उन में से कुछ ही दण्ड देने योग्य हैं।

यमदूतों ने कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ! वेदों ने जिन कर्मों को उत्तम कहा है वह धर्म है तथा जिनका निषेध किया है वह अधर्म है। वेद स्वयं भगवान् ने बनाये हैं। उन्हीं के अनुसार कर्म करना चाहिये। मनुष्य सतो-गुण, रजोगुण तथा तमोगुण के अनुसार पुण्य, पाप, तथा मिश्रित कर्म करता है। उसके इन कर्मों के साक्षी सूर्य, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सन्ध्या, दिन, रात, दिशायें, जल, पृथ्वी, काल तथा धर्म हैं। ये ही सब के साक्षी हैं। इन्हीं के द्वारा मनुष्य दण्ड पाता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे देवताओ ! जीव का केवल स्थूल शरीर ही नहीं है। इसके भीतर एक दूसरा लिङ्ग शरीर है। जब जीव इस स्थूल शरीर से निकलता है तब उस लिंग शरीर को लेकर जाता है। इस लिङ्ग शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं जिनसे जीव लेना देना, चलना, फिरना आदि कर्म करता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ जिनसे जीव रूप, रस आदि विषयों का ज्ञान करता है। एक मन तथा पाँच तन्मात्रायें इस प्रकार सोलह तत्व और सत्रहवाँ स्वयं जीवात्मा को लेकर बाहर जाता है। यह लिङ्ग शरीर ही जन्म मृत्यु के चक्कर में बारबार दुःख सुख, शोक, हर्ष प्राप्त करता है। यह अज्ञान वश जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छः शत्रुओं को नहीं जीत लेता है तब तक रेशम के कीड़े की भाँति अपने कर्म के जाल में फँसता रहता है।

वह बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रहता है। अपने पूर्व जन्म के कर्मानुसार स्थूल, सूक्ष्म, शरीर प्राप्त करता है।

हे सिद्ध पुरुषो ! यह अजामिल बड़ा पापी हत्यारा तथा दुराचारी है। पहले यह बड़ा सदाचारी जितेन्द्रिय मन्त्रवेत्ता तथा श्रेष्ठ पुरुष था। किन्तु एक कुलटा वेश्या के सम्पर्क में आने से इसके वे सब कर्म क्षीण हो गये। यह एक दिन अपने घर लौट रहा था उस समय एक निर्लज्ज शूद्र को शराब पीकर अर्द्ध नग्न वेश्या के साथ बिहार करते देखा तभी से इसकी प्रवृत्ति उस वेश्या की ओर हो गई और इस का सम्बन्ध उस वेश्या से हो गया। इसने अपनी बिवाहिता पत्नी को त्याग दिया और उसी वेश्या के यहाँ यह रहने लगा। अब यह यमराज के यहाँ जाकर अपने दण्डों का भोग भोगेगा।

❁ दूसरा अध्याय ❁

भगवान् विष्णु के पार्षदों द्वारा भागवत् धर्म का वर्णन करना तथा अजामिल का परमधाम जाना।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! यम के दूतों का ऐसा भाषण सुन कर पार्षदों ने कहा—हे यमदूतो ! यह बड़े दुख की बात है कि तुम लोग अजामिल जैसे धर्मात्मा को इस प्रकार खींच रहे हो। यदि प्रजा के रक्षक समदर्शी, परोपकारी, प्रजा के प्रति दुर्व्यवहार करें तो

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किसका सहारा लेगी। तुम लोग नहीं जानते कि इस अजामिल ने चाहे करोड़ों पाप किये हों किन्तु इसने मृत्यु के समय चाहे किसी भी भाव से भगवान् के नाम का उच्चारण किया है। इसने बारम्बार नारायण नारायण संकीर्तन किया है। अब यह कल्याण का पात्र बन गया है इसने कोटि २ जन्मों के पापों का प्रायश्चित कर लिया है। चाहे यह कितना ही पापी, ब्रह्मघाती, परस्त्रीगामी, गाय मारने वाला क्यों न हो किन्तु जब इसने भगवान नाम उच्चारण किया है तो यह भगवान् का परम भक्त है। बड़े २ ब्रह्मर्षियों ने पापों के अनेकों प्रायश्चित, कृच्छ, चान्द्रायण व्रतआदि का वर्णन किया है किन्तु जैसी सिद्धि भगवत् नाम से होती है वैसी अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकती इसलिए हे यमदूतो! तुम अजामिल को नहीं ले जा सकते हो। इसने अन्त समय में भगवान् नाम उच्चारण कर के सारे पापों का प्रायश्चित कर लिया है जो मनुष्य गिरते पड़ते उठते बैठते खाते पीते, चोट लगते, हँसी परिहास में हरि हरि का उच्चारण करता है तो वह यमकी सम्पूर्ण यातनाओं से मुक्त हो जाता है। महर्षियों ने बड़े पापों के लिए बड़े प्रायश्चित तथा छोटे पापों के लिये छोटे प्रायश्चितों का विधान किया है। बड़े २ यज्ञ, जप, तप, दान आदि से भी पाप नष्ट नहीं होते हैं जो केवल भगवत् नाम उच्चारण से ही हो जाता है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! पार्षदों ने अजामिल को यम के दूतों से बचा लिया अजामिल ने भगवान् के पार्षदों को सिर झुका कर प्रणाम किया। अजामिल कुछ कहना ही चाहता था कि वे अन्तर्ध्यान हो गये। अजामिल के हृदय में शुद्ध भगवत् प्रेम उत्पन्न हो गया था। उसने पार्षदों के मुख से धर्म का स्वरूप सुन लिया था वह अपने मन में पछताने लगा कि मैंने एक दासी के संसर्ग से अपने ब्राह्मणत्व को खोदिया मैंने अनेकों पाप तथा हत्यायें की। मैं अवश्य ही नरक में जाने योग्य हूँ। मेरे सामने अभी जो यम के दूत खड़े थे और मुझे खींच रहे थे तथा वे दिव्य पुरुष जिनकी चार भुजायें थीं कहाँ चले गये। मैंने आज देवताओं के दर्शन किए। मैंने नारायण का नाम उच्चारण किया इसी कारण मुझे उन देवताओं के दर्शन हुए। अब मैं अवश्य ही उत्तम कर्म करूँगा। दीन दुखियों का उपकार करूँगा। सब के साथ मित्र व्यवहार करूँगा मैं

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अब सांसारिक विषयों में न रहूँगा। मैं मेरे पन के अभिमान को त्याग कर ईश्वर में लीन हो जाऊँगा।

हे राजा परीक्षित्! भगवान् के पार्षदों का एक क्षण का सत्सङ्ग होने से ही अजामिल को कठिन बैराग्य उत्पन्न हो गया। वह वहाँ से हरिद्वार को गया। वहाँ पर एक मन्दिर में आसन लगा कर योग साधन के द्वारा मन बुद्धि को जीत कर अपने को आदि चिन्तन में लगा दिया। अजामिल ने फिर उन्हीं चारों पार्षदों को अपने सन्मुख खड़ा देखा। उसने उनको नमस्कार किया तथा गङ्गा तट पर अपना शरीर छोड़ दिया। अजामिल भगवान् के पार्षदों के साथ दिव्य बिमान में बैठ कर बैकुण्ठ धाम को चला गया। हे राजन्! बुरे सङ्ग से अजामिल नरक में जाने वाला था किन्तु उन पार्षदों के सत्सङ्ग से ही अजामिल बैकुण्ठ को चला गया। यह गोपनीय इतिहास समस्त पापों का नाश करता है। जो इसका श्रवण करता है, वह कभी नरक में नहीं जाता है। हे परीक्षित्! केवल एक बार भगवत् नाम उच्चारण से अजामिल जैसे पापी तर गए जो नित्य श्रद्धा पूर्वक भगवान् का कीर्तन करते हैं उनका तो कहना ही क्या है।

॥ तीसरा अध्याय ॥

राजा परीक्षित् ने कहा—हे भगवन्! जब यम के दूत अजामिल को छोड़ कर चले गये तब यमराज ने क्या किया? यह मुझे सुनाइये।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् के पार्षदों ने जिन यमराज के दूतों को भगा दिया उन दूतों ने यमराज से इस प्रकार निवेदन किया-हे दण्ड पाणि! संसार में प्राणी तीन प्रकार के कर्म करते हैं। एक पाप कर्म दूसरा पुण्य कर्म तथा तीसरा पाप पुण्य दोनों मिश्रित। आप हमें कृपा करके बतलाइए कि जीवों को कर्मों के फल देने वाले कितने शासक हैं। यदि बहुत से दण्ड देने वाले हैं तो यह बतलाइए कि कौन सुख का अधिकारी है और कौन दुख का? इस व्यवस्था में न्याय होना कठिन है किसी पापी को पुण्य फल मिल सकता है, और किसी पुण्यात्मा को पाप फल मिल सकता है? हम तो आप ही को सबका शासक मानते हैं। आप ही सबको दण्ड देते हैं, किन्तु इस समय आप का भी दण्ड संसार में नहीं माना

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रहा है। आज चार भुजा वाले चार सिद्धि पुरुषों ने एक महा पापी अजामिल नाम के पाणी को हम से छुड़ा लिया है। उसके मुख से एक बार नारायण शब्द निकल गया था। तत्काल वे सिद्धि पुरुष आये और डरो मत डरो मत ऐसा कहने लगे।

श्रीशुकदेवजी बोले--हे राजन्! अपने दूतों के ऐसे वचन सुन कर उन्हें भगवान् के चरणों का स्मरण हो आया और वे बोले—अरे दूतो! मेरे अतिरिक्त इस संपूर्ण जगत का स्वामी तथा दण्ड देने वाला एक और है। जिन्होंने कि मुझे भी उत्पन्न किया है। उन्होंने इस जगत को एक सूत्र में पिरो दिया है। उन्होंने मुझे इन्द्र, निऋति, वरुण, अग्नि, शंकर, चन्द्रमा, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहों आदित्य, विश्वेदेवा, आठोंवसु, उनन्चास मरुद्गण, सिद्धि, साध्य ग्यारहोंरुद्र, भृगु आदि प्रजापति तथा बड़े २ देवताओं को उत्पन्न किया है उन्होंने ही सम्पूर्ण प्राणियों को बनाया है। उन्हीं की प्रेरणा से मैं सब को दण्ड देता हूँ। वे मुझे भी दण्ड दे सकते हैं। भगवान् का भागवत् धर्म अति गोपनीय है उस भागवत् धर्म के रहस्य को केवल हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं। मैं, ब्रह्मा जी, नारद, भगवान् शंकर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रहलाद, जनक, भीष्म पितामह, राजा बलि तथा शुकदेव जी! भगवान् के नामोच्चारण की महिमा अपार है। श्रद्धापूर्वक एक बार उच्चारण कर लेने से ही करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। उसी भगवन्नाम नारायण के उच्चारण से वह पापी अजामिल बैकुण्ठ को चला गया।

हे दूतो! ज्ञानी पुरुष आजन्म इसलिए भगवन्नाम उच्चारण करते रहते हैं। कि उसका अभ्यास निरन्तर बना रहे और अन्त समय में भी वह स्मरण रहे। जो पुरुष भगवान् से विमुख हैं, घर गृहस्थी के भार को ढोते रहते हैं उन्हीं को मेरे पास लाया करो और जो भगवन्नाम उच्चारण करते हैं वे सीधे बैकुण्ठ धाम जाने के अधिकारी हैं। अरे दूतो! तुमने भगवान् के पार्षदों का तिरष्कार करके भगवान् का तिरष्कार किया है। वे तुम्हें क्षमा प्रदान करें मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

श्रीशुकदेवजी बोले--हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के नाम संकी-

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

र्तन तथा चरित्र श्रवण से ही मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप इस प्रकार उड़ जाते हैं जिस प्रकार ताली पीटने से वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी उड़ जाते हैं। कलि के मल को धोने वाला केवल हरिनाम संकीर्तन ही है। यह अत्यन्त रहस्य मय इतिहास भगवान् अगस्त्यजी ने मुझे सुनाया था।

॥ चौथा अध्याय ॥

चौपाई—दक्ष कीन तप घोर अपारा। भये प्रकट तप जग आधारा।
मनवाँछित बर दीन्हा तबही। भये मनोरथ पूरन सब ही॥

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन्! आपने तृतीय स्कन्ध में सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन सुनाया है अब मैं उसे विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ।

श्री सूतजी बोले—हे शौनक जी! राजा परीक्षित् के ऐसे प्रिय वचन सुनकर शुकदेव जी अति प्रसन्न हुए और बोले।

श्री शुकदेवजी ने कहा—राजा प्राचीनवर्हि के प्रचेता नाम के दस पुत्र थे। जब वे समुद्र से बाहर निकले तो वृक्षों ने उन का मार्ग रोका जिससे उन प्रचेताओं ने क्रोधित हो कर अपने मुख की अग्नि से उन वृक्षों को जलाना आरम्भ कर दिया। तब चन्द्रमा ने अनेक प्रकार से उनकी स्तुति कर के उनके क्रोध को शान्त किया और प्रमलोचा अप्सरा की कन्या उन्हें दे दी। प्रचेताओं ने उसका पाणिग्रहण किया। तथा उस कन्या के गर्भ से प्रचेताओं द्वारा प्राचेतस दक्ष उत्पन्न हुए। उसी दक्ष की सृष्टि से तीनों लोक भर गये। इस दक्ष को अपनी पुत्रियाँ अति प्यारी थीं। हे राजा परीक्षित्! दक्ष ने यह सम्पूर्ण सृष्टि सर्व प्रथम अपने संकल्प से उत्पन्न की। किन्तु जब इन्होंने देखा कि सृष्टि की बृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने अघमर्षण तीर्थ में विन्ध्याचल के निकटवर्ती पर्वतों में जा कर घोर तपस्या की। वहाँ पर 'हंस गुह्य' नामक स्तोत्र से भगवान् की स्तुति की। जिस से भगवान् प्रसन्न हुए अब मैं तुम्हें स्तोत्र सुनाता हूँ।

दक्ष प्रजापति बोले—हे भगवन्! आप जीव तथा प्रकृति से परे हैं उनके नियन्ता तथा शक्ति देने वाले हैं। प्राणियों ने सत्व, रज, तम से उत्पन्न होने वाली सृष्टि को ही सत्य मान लिया है, वे प्राणी आपके स्वरूप का ज्ञान करने में असमर्थ हैं। आप सीमा रहित तथा अनादि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे परमात्मा! जीव आप ही का सखा है। किन्तु वह जीव आपके सखा भाव को नहीं पहचानता। आप दोनों (जीवात्मा तथा परमात्मा) एक ही शरीर में निवास करते हैं किन्तु जीवात्मा आपको नहीं पहचान सकता। आप ही सब के ज्ञाता तथा सर्वेश्वर हैं मैं स्वयं आपके स्वरूप को नहीं जानता। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिस प्रकार यज्ञ करने वाले याज्ञिक 'समिन्धेवां' नाम के पन्द्रह मन्त्रों से अग्नि को प्रकट करते हैं उसी प्रकार तत्व ज्ञानी अपनी सत्ताईस शक्तियों के अन्तर्गत छिपे हुये आपको अपनी बुद्धि से खोज लेते हैं। यह सम्पूर्ण जगत आप ही की माया है। आप ही उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले हैं। आप स्वयं ब्रह्मा हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! जब दक्ष प्रजापति ने भगवान् की इस प्रकार प्रार्थना की तब वे अपने दिव्य मनोहर श्रीविग्रह से प्रगट हुये और उस दक्ष प्रजापति से बोले—हे भाग्यवान दक्ष! तुमने सृष्टि की बृद्धि के लिए तपस्या की है। मैं तुम से अति प्रसन्नहूँ। सृष्टि की बृद्धि करना ही मेरी इच्छा है। ब्रह्मा, शंकर, तुम, मनु तथा इन्द्रादि देवतादि यह सब मेरे ही उत्पन्न किये हुए हैं। सृष्टि के आदि में मैं ही था और अन्त में मैं ही रहता हूँ। हे दक्ष! तुम्हें पंचजन प्रजापति की कन्या 'असिन्की' देता हूँ। उसे तुम पत्नी बनाओ। स्त्री सहवास से तुम्हारी सृष्टि बढ़ेगी। अब तक मानसी सृष्टि होती थी किन्तु अब से मेरी माया के द्वारा स्त्री पुरुष के सम्भोग से सृष्टि उत्पन्न होगी।

श्री शुकदेवजी बोले--सर्वेश्वर भगवान् ऐसा कह कर अन्तर्ध्यान हो गये।

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

श्री नारद जी के द्वारा दक्ष के पुत्रों को विरक्त होने का उपदेश करना तथा नारद जी को दक्ष का शाप देना।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! भगवान् के वरदान से दक्ष प्रजापति अपूर्व शक्ति सम्पन्न हो गये। उन्होंने असिन्की के गर्भ से हर्यश्व के दस हजार पुत्र उत्पन्न किये प्रजापति दक्ष के सभी पुत्र स्वभाव तथा आचरण में एक समान थे। दक्ष ने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लिये कहा। वे पश्चिम दिशा की ओर तपस्याके लिए चल दिये। उन्होंने सिन्धु नदी के सङ्गम पर नारायण सर नामक तीर्थ में महान तपस्या की। एक समय देवर्षि नारद उधर आ निकले और उन्होंने कहा अरे हर्यश्वो तुम लोग बड़े मूर्ख हो! जब तुम लोगों ने पृथ्वी का आदि अन्त नहीं देखा तब सृष्टि की उत्पत्ति कैसे करोगे तुम्हें पता नहीं है एक ऐसा देश है जिसमें एकही पुरुष निवास करता है। एक ही बिल है जिससे बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं है। एक ऐसी स्त्री है जो अनेक रूप धारण करती है एक पुरुष ऐसा है जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है। एक नदी ऐसी है जो आगे पीछे दौनों ओर बहती है। एक विचित्र घर जो पच्चीस पदार्थों से निर्मित है। एक हंस ऐसा है जिसकी बिचित्र कहानी है।

एक चक्र ऐसा है जो बज्र के समान है अरे मूर्खों जब तक तुमने उसे नहीं देखा तब तक तुम सृष्टि नहीं रच सकते हो।

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित! वे सभी पुत्र बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने नारद जी की बात को समझ लिया और वे उस पर विचार करने लगे। वे बोले-यह लिंग शरीर ही जीव कहलाता है। यह आत्म बन्धन है। इसका विनाश जाने बिना मोक्ष कर्मों से कोई लाभ नहीं है ईश्वर एक है। वह सभी अवस्थाओं में सब का साक्षी है। सब का आश्रय है किन्तु वह किसी का आश्रय नहीं है। वही परमात्मा है मनुष्य पाताल रूपी बिल से नहीं लौटता। बिना परमात्मा को जाने सभी कर्म बृथा हैं बुद्धि ही व्यभिचारिणी स्त्री है। वह जीव को अनेक भोगों में डाल देती है, वह इसी कुलटा स्त्री के पीछे अनेक गतियों में घूमता रहता है, संसार माया ही नदी है, यह शरीर पच्चीस तत्वों से बना है, इसके काल चक्र की धार छुरे के समान पैने हैं। यह स्वतन्त्र है। यह सब बिचार कर दक्षप्रजापति के पुत्रों ने नारदजी की परिक्रमा की और उन्होंने मोक्ष की प्राप्ति का निश्चय किया, जहाँ पहुँच कर फिर लौटना नहीं पड़ता।

हे राजा परीक्षित! नारद जी की यह करतूत जब दक्ष प्रजापति को ज्ञात हुई तो वे शोक से अति व्याकुल हुए और पछताने लगे कि उन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

सन्तान का होना भी दुःखदायी है। ब्रह्माजी ने दक्ष को बहुत समझाया तब दक्ष ने असिन्की के गर्भ से एक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये उन पुत्रों का नाम सबलाश्व था। वे भी तपस्या के लिये उसी नारायण सरोवर पर गये उन्होंने परब्रह्म स्वरूप का कठोर तप किया। उन्हंने जल पीकर जीवन धारण किया। उन्होंने ओ३म् नमो नारायण पुरुषाय महात्मने विशुद्ध सत्व, विष्णयाय महाहंसाय धीमहि॥ इस मन्त्र का जप किया। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पर आये और उन्हें भी पहली तरह समझाने लगे। उन्होंने कहा—हे सबलाश्वो! तुम भी अपने बड़े भाइयों का अनुकरण करो।उन दक्ष प्रजापति के पुत्रों ने भी अपने बड़े भाइयों का अनुकरण किया।

जब दक्ष प्रजापति को यह पता चला कि मेरे पुत्रों को नारद जी ने फिर कर्त्तव्य च्युत कर दिया है। तब वे अति क्रोधित हुए। उसी समय उनकी भेंट नारदजी से हुई। उन्हें देखते ही प्रजापति बोले—अरे दुष्ट! तुमने पाखण्ड से यह साधूवेश बना रक्खा है। तुमने मेरे नादान बच्चों को पदच्युत कर दिया है। अभी वे ऋषि ऋण, देवऋण तथा पितृऋण से भी उत्तीर्ण नहीं हुये हैं। तुमने उन्हें झूँठ मूँठ वैराग्य का स्वाँग सिखाया है। अरे नारद! बिना सांसारिक अनुभव किये सच्चा वैराग्य प्राप्त नहीं होता है। तुम मेरी वंश परम्परा नाश करने पर तुले हो। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम लोक लोकान्तरों में भटकते रहो। तुम्हें कहीं भी ठहरने को स्थान नहीं मिलेगा।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! सन्त शिरोमणि भगवान नारद ने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्ष प्रजापति का श्राप शिरोधार्य किया सन्तजन उन्हें ही कहते हैं जो दूसरों से कभी बदला नहीं लेते और उनकी बुराई को सह लेते हैं।

॥ छटवाँ अध्याय ॥

❀ दक्ष प्रजापति की कन्याओं के वंश की कथा ❀

चौ०—कन्या साठ दक्ष प्रगटाईं, जिनकी सन्तति है जग माँही।
देवन के सङ्ग कीन्ह विवाह, फैला जग में अमित उछाह॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! अब मैं तुम्हें दक्ष प्रजापति

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की साठ कन्याओं के वंश का वर्णन सुनाता हूँ। उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

दक्ष प्रजापति ने अपनी दस कन्यायें धर्म को ब्याह दीं, तेरह कन्यायें कश्यप जी को दे दीं। सत्ताईस कन्याएं चन्द्रमा को ब्याह दीं, दो भूत को ब्याह दीं, दो अङ्गिरा को ब्याह दीं, दो कन्यायें कृशाश्व को और चार कन्याये भी कश्यप जी को ही देदीं। इन्हीं कन्याओं के बंश से सारी त्रिलोकी भर गई थी।

धर्म की दस पत्नियों के नाम-भानु, लम्बा, कुकुभ, जामि, विश्वा साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्त्ता, तथा संकल्पा थीं। भानु का पुत्र देवऋषभ था तथा देवऋषभ का पुत्र इन्द्रसेन था दक्षकन्या लम्बा का पुत्र विद्योत, तथा विद्योत के पुत्र मेघगण थे। कुकुभ का पुत्र संकट तथा संकट का पुत्र कीकट और कीकट के पुत्र अभिमानी देवता थे।

दक्ष कन्या जामि के पुत्र स्वर्ग तथा स्वर्ग का पुत्र नन्दी था। विश्वा के विश्वदेव पुत्र था। उसके आगे कोई सन्तान न थी दक्षकन्या साध्या के साध्यगण तथा साध्यगण के पुत्र का नाम अर्थसिद्धि था।

मरुत्वती के पुत्र मरुत्वान तथा जयन्त थे। जयन्त को उपेन्द्र भी कहते हैं।

मुहूर्त्ता के पुत्र मुहूर्त्त के अभिमानी देवता थे। संकल्पा का पुत्र संकल्प तथा संकल्प का पुत्र काम था। बसु के पुत्र आवसु थे—उनके नाम द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष वसु, विभावसु उन बसुओं के भी पुत्र उत्पन्न हुये। द्रोणवसु की स्त्री अभिमति के गर्भ से हर्ष शोक, भय आदि उत्पन्न हुए। प्राण की भार्या ऊर्जस्वती के गर्भ से सह, आयु पुरोजव तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुववसु के नागों के अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। अर्कवसु की पत्नी धारा से द्रविणिक नाम के पुत्र हुये। अग्नि के कृत्तिका कृत्तिका के पुत्र स्कन्द हुये। दोष की स्त्री से शिशुमार उत्पन्न हुआ। बसु की स्त्री से विश्वकर्मा भी उत्पन्न हुए। विश्वकर्मा के पुत्र चाक्षुष मनु उत्पन्न हुए चाक्षुष के विश्वदेव तथा साध्यगण पुत्र थे। विभावसु के व्युष्ट रोचि तथा आतप तीन पुत्र उत्पन्न हुए आतप के दिवस पुत्र था जो सब जगत को कार्य में लगाता रहता है।

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे राजन् !भूत की भार्या दक्ष पुत्री सरूपा के गर्भ से करोड़ों रुद्रगण उत्पन्न हुये जिनमें ग्यारह रुद्रगण मुख्य हैं। अङ्गिरा की पत्नी स्वधा से पितृगण उत्पन्न हुए तथा दूसरी पत्नी सती के अथर्वाङ्गि-रस वेद ही पुत्र के रूप से उत्पन्न हुआ। कृशाश्व की पत्नी अर्मि के गर्भ से धूम्रकेश तथा धिषणा से वेद शिरा, देवल, वयुन तथा मनु उत्पन्न हुये। कश्यपजी की चार पत्नियाँ कद्रू, विनता, पतङ्गी, तथा यामिनी से शलभ पतंगी से पतंगे विनता के गरुड़ अरुड़ तथा कद्रू के सर्प उत्पन्न हुए।

हे राजन् ! चन्द्रमा की सत्ताईस स्त्रियाँ सत्ताईस नक्षत्र थे। उनके कोई सन्तान नहीं हुई। कश्यप जी की अन्य तेरह स्त्रियों की संतानें सुनो।

कश्यपजी की स्त्री तिमि के जल जीव उत्पन्न हुए। सरया के बाघ इत्यादि उत्पन्न हुये। सुरभि के गाय, भैंस इत्यादि उत्पन्न हुए। ताम्रा के बाजपक्षी इत्यादि उत्पन्न हुए। युनि के गर्भ से अप्सरायें उत्पन्न हुईं। क्रोधवशा के बिच्छू आदि उत्पन्न हुए। इलासे वृक्ष लता आदि उत्पन्न हुए। सुरसा से राक्षस उत्पन्न हुए। अरिष्टा से गंधर्व तथा काष्ठा से अश्व आदि एक खुर वाले पशु पैदा हुए। दनु के इकसठ पुत्र पैदा हुए। ये सबके सब राक्षस थे। दिति के गर्भ से हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु उत्पन्न हुए। अदिति के गर्भ से देवता उत्पन्न हुए, विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा सविता, भरा, धाता, विधाता, बरुण, मित्रा, इन्द्र तथा वामन ये बारह आदित्य कहलाते हैं।

विवस्वान की स्त्री छाया के गर्भ से शनैश्चर तथा सावर्णि मनु दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा तपसी नाम की कन्या पैदा हुई था। विवश्वान की संज्ञा पत्नी ने अपने गर्भ से दोनों अश्वनीकुमार उत्पन्न किये। सूर्य की पुत्री तपसी से संवरण ने विवाह किया। अर्यमा की स्त्री मातृका के गर्भ से चर्षणी उत्पन्न हुए उन्होंने वर्ण व्यवस्था चलाई। पूषा के कोई सन्तान न थी। कुमारी रचना त्वष्टा की भार्याथी उसके गर्भ से संनिवेश तथा विश्वरूप दो पुत्र उत्पन्न हुए। देवताओं ने विश्वरूप को बृहस्पतिजी के रुष्ट हो जाने पर अपना पुरोहित बनाया था।

—❀❀❀—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सातवाँ अध्याय ॥

देवताओंको त्यागकर गुरु बृहस्पतिका जाना तथा विश्वरूपका पुरोहितबनना।

राजा परीक्षित् ने पूछा हे ब्रह्मन् ! गुरु बृहस्पति क्यों देवताओं को त्याग कर चले गये थे और विश्वरूप को दैत्य पक्ष की कन्या के पुत्र होते हुए भी देवताओं ने उन्हें कैसे पुरोहित बनाया ?

श्रीशुकदेव जी बोले–हे राजन् ! देवराज इन्द्र त्रिलोकी का राज्य प्राप्त करके अपने को बड़ा ऐश्वर्यशाली समझने लगा। उसे अहङ्कार ने दवा लिया। एक दिन वह अपनी सभा में राज्य सिंहासन पर बैठे थे, देवतागण उनकी स्तुति कर रहे थे। गन्धर्व अप्सरायें तथा किन्नर उनका गुण गान कर रहे थे। उनंचास द् मरुगण, आठोंबसु, आदित्य 'ऋभु' विश्वेदेवा आदि सभी उनकी सेवा कर रहे थे। देवराज इन्द्र अपनी इन्द्राणी शची के साथ आराम से सिंहासन पर विराजमान थे। उसी समय वहाँ देवगुरु बृहस्पतिजी पधारे देवराज इन्द्र ने न तो उन्हें प्रणाम किया और न उठकर उनका स्वागत किया। यह देखकर बृहस्पति जी उसी क्षण समझ गये कि अब देवराज को ऐश्वर्य का मद छा गया है वे तुरन्त ही उल्टे पैर वहाँ से चले आये और अपनी योग माया से अन्तर्ध्यान हो गये। जब देवराज इन्द्र को कुछ होश आया तो वह अपने मन में अति पछिताने लगा और अपने को धिक्कारने लगा।

जब देवराज इन्द्र को यह पता चल गया कि गुरु बृहस्पतिजी हमें त्याग कर कहीं चले गये तो वे अति व्याकुल हुए। जब यह बात दैत्य तथा दानवों के गुरु शुक्राचार्य जी को पता चली तो उन्होंने दैत्यों तथा दानवों को देवताओं से अपना बदला लेने का अच्छा अवसर समझकर युद्ध के लिये उत्साहित किया। गुरु शुक्राचार्य जी के उकसाने पर दैत्यों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। देवतागण दैत्यों से परास्त हो गये। तब देवराज इन्द्र व्याकुल होकर ब्रह्माजी के पास गये और ब्रह्माजी को गुरु बृहस्पतिजी के कहीं चले जाने की करुण कहानी सुनाई।

ब्रह्माजी ने कहा—देवराज ! यह बड़े दुख का विषय है कि तुम लोगों ने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अहंकारवश गुरु बृहस्पति जी को रुष्ट कर दिया है। तुम लोग ऐश्वर्य मद में चूर रहते हो। तुमने अपनी अनीति का यह फल पाया है कि आज दैत्यों ने तुम्हें हरा कर तुम्हारी सब सम्पति छीन ली है। पहिले के दैत्य दानव भी गुरु शुक्राचार्य को अपमानित करने के कारण निर्बल तथा हत भाग्य हो गये थे किन्तु उन्होंने अनुपम विनय से उन्हें मना लिया और वे अब समृद्धिशाली बने हुये हैं। अब मेरी राय यह है कि तुम त्वष्ठा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाओ। वे दैत्यवंश की कन्या से उत्पन्न तथा तुम्हारे पुत्र हैं। तुम लोग उनकी सेवा करो। उन के प्रसन्न होने पर तुम्हारा काम सिद्ध हो जायेगा।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! ब्रह्मा जी के ऐसे बचन सुन कर देवताओंका चित्त प्रसन्न हुआ और शीघ्र ही विश्वरूप ऋषिके आश्रम पर गये

देवताओं ने कहा—वत्स! तुम्हारा कल्याण हो हम एक अति आवश्यकीय कार्य से तुम्हारे पास आये हैं। तुम अवश्य ही हमारी इच्छा पूर्ति करोगे। हे पुत्र! सत्पुत्र का कर्त्तव्य है कि माता पिता की सेवा करे तुम सत्पुत्र हो हम तुम्हारे पितर हैं अतः तुम हमारी सेवा रूपी प्रार्थना स्वीकार करो। तुम हमारी पुरोहिती स्वीकार करो।

देवताओं की ऐसी विनय भरी बातें सुनकर विश्वरूप ने देवताओं की पुरोहिती स्वीकार करली। वे बोले—हे देवताओ! यह पुरोहिती अति नीच कर्म है इससे तप क्षीण होता है किन्तु आप लोगों की बात भी नहीं टाली जा सकती है अतः मुझे तुम्हारा बात स्वीकार है। श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! विश्वरूप बड़े तेजस्वी थे वे देवताओं की पुरोहिती करने लगे। उन के प्रभाव से देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त करली। उसका कारण विश्वरूप का नारायण कवच का उपदेश ही था।

॥ आठवाँ अध्याय ॥

विश्वरूप द्वारा नारायण कवच का देवताओं को उपदेश करना।

राजा परीक्षित बोले—हे देव! वह नारायण कवच मुझे भी सुनाइये जिसके प्रभाव से देवराज इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! जब विश्वरूप देवताओं के पुरोहित बन गये तब उन्होंने असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिए नारायण कवच का उपदेश किया। विश्वरूप बोले—हे देवराज ! विपत्ति काल में तथा किसी प्रकार का भय उपस्थित होने पर नारायण कवच को धारण करना चाहिए। उसकी विधि इस प्रकार है प्रथम हाथ मुँह धोकर पवित्र होवे तथा आचमन कर के हाथ में कुश की पवित्री पहिने और उत्तर दिशा की ओर मुँह कर के बैठे। तत्पश्चात् मौन हो कर रहे। 'ॐ नमो नारायण' इस अष्टाक्षर से ॐ आदि आठ अक्षरों का पैरों, घुटनों, जांघों, पेट, हृदय, वक्षःस्थल, मुख तथा शिर में क्रमशः न्यास करे अथवा मकर अक्षर से ॐ कार पर्यन्त विपरीति ढङ्ग से अर्थात् प्रथम सिर फिर मुख, वक्षःस्थल, हृदय, पेट, जांघें घुटनों तथा पैरों का न्यास करे।

तत्पश्चात् "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" द्वादश अक्षर मन्त्र से ॐ को आदि कर के दाहिनी तर्जनी से बाँई तर्जनी तक दोनों हाथों की उँगलियों तथा दोनों अँगूठों की दो दो गाँठों में न्यास करे। तत्पश्चात् ॐ विष्णवे नमः मंत्र के एक एक अक्षर से ॐ का हृदय में, वि का ब्रह्मरन्ध्र में, ष का भौंहों में, ण का चोटी में, वे का दोनों नेत्रों में न का अंग की सब गाठों में अङ्गन्यास करे। तत्पश्चात् ॐ मः अस्त्रायफट् कह कर दिशाओं को बाँधे। इस प्रकार वह पुरुष मन्त्र से युक्त हो जाता है ? तत्पश्चात् भगवान का चिन्तन इस प्रकार करे।

भगवान् नारायण गरुड़ पर अपना चरण रक्खे हैं सम्पूर्ण सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। वे अपनी अष्ट भुजाओं में आयुध धारण किये हुए हैं। उनके अस्त्र मेरी रक्षा करें। बामन भगवान् मेरी पृथ्वी पर रक्षा करें। श्री त्रिविक्रम भगवान् मेरी रक्षा आकाश में करें। भगवान् नृसिंह दुर्ग, जङ्गल, रण भूमि में मेरी रक्षा करें। भगवान् बाराह मार्ग में मेरी रक्षा करें। परशुराम जी पर्वत पर तथा लक्ष्मण जी के साथ भगवान् राम प्रवास में मेरी रक्षा करें। नारायण भगवान् मारण मोहन आदिसे मेरी रक्षा करें। नर अहङ्कार से तथा दत्तात्रेय योग के विघ्नों से मुझे बचावें। भगवान् कपिलदेव कर्म बन्धनोंसे रक्षा करें। सनत्कुमार कामदेव से मेरी रक्षा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करें। हय ग्रीव भगवान् मूर्ति आदि को नमस्कार न करने के विघ्नों को दूर करें। भगवान् कच्छप नरकों से मेरी रक्षा करें। धन्वन्तरि रोग से रक्षा करें। भगवान् ऋषभदेव भयङ्कर द्वन्दों से रक्षा करें बलराम जी मनुष्यों से रक्षा करें। भगवान् शेष सर्पों से रक्षा करें। श्री व्यास जी अज्ञान से रक्षा करें। बुद्धि देव प्रमाद से रक्षा करें। कल्कि भगवान् कलियुग के पापों से रक्षा करें। प्रातःकाल केशव गदा लेकर रक्षा करें, दिन चढ़े भगवान् गोविन्द बाँसुरी लेकर रक्षा करें। मध्याह्न में भगवान् विष्णु चक्र से रक्षा करें। दोपहर के पश्चात् मधुसूदन धनुष से मेरी रक्षा करें। सायंकाल में ब्रह्मा सूर्यास्त के बाद हृषीकेश, अर्धरात्रि में भगवान् पद्मनाभि, रात्रि के पिछले प्रहर में श्रीहरि रक्षा करें। ऊषाकाल में भगवान् जनार्दन, सूर्योदय से पूर्व दामोदर रक्षा करें। सन्ध्याओं में भगवान् विश्वेश्वर रक्षा करें। भगवान् के सभी आयुध रक्षा करें।

इस नारायण कवच को देवराज इन्द्र ने धारण कर के शत्रुओं का नाश कर दिया।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो पुरुष इस कवच को सुनता है तथा धारण करता है वह भय से मुक्त हो जाता है।

———❀———

॥ नवाँ अध्याय ॥

चौ०--विश्वरूप बध मघवा कीन्हा, पुत्रशोक त्वष्टा को दीन्हा।
क्रोधवन्त त्वष्टारिसि आया, बृत्रासुर दानव प्रगटाया॥

श्रीशुकदेवजी बोले--हे राजन्! विश्वरूप के तीन शिर तथा मुख थे वह एक मुख से सोमरस पान करता था दूसरे मुख से मदिरापान करता था तथा तीसरे मुख से अन्न भक्षण करता था। वह असुर कुल की कन्या से त्वष्ठा आदित्य द्वारा उत्पन्न हुआ था। अतः देवताओं की प्रसन्नता के लिये वह प्रत्यक्ष रूप से मंत्रोच्चारण इत्यादि उच्च स्वर से बोलता था किन्तु गुप्त रूप से यज्ञ भाग असुरों को भी दे देता था। इस कपट का पता जब देवराज इन्द्र को चला तब उन्होंने शीघ्र ही विश्वरूप के तीनों शिर तलवार से काट लिये। विश्वरूप के तीनों शिरों में से सोमरस पान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करने वाला शिर पपीहा तथा मदिरा पीने वाला शिर गोरपा तथा अन्न खाने वाला तीतर बनकर उड़ गया। उसब्रह्महत्या का पाप इन्द्र ने चार भागों में बाँट दिया एक भाग पृथ्वीको दिया उसके ऊसर में पाप है उसे यह वरदान दियाकि तेरे खाबड़ खूबड़ गड्ढे स्वतः भरते रहेंगे। पापका दूसरा भाग वृक्षों को दिया उनके गोंद रूप से पाप निकलता है उन्हें यह वर दिया कि तुम्हारा कटा हुआ भाग फिर ठीक हो जायेगा। तीसरा भाग स्त्रियों को दिया जो मासिक धर्म में रज के रूप में बाहर निकलता है स्त्रियां ने यह वर प्राप्त किया कि सर्वदा पुरुष का सहवास कर सकें उन्होंने इन्द्र का पाप धारण कर लिया। पहले स्त्रियाँ केवल ऋतुकाल में ही पुरुष सहवास करती थीं। अब उन्हें सर्वदा पुरुष सहवास का वरदान मिल गया। चौथा भाग जल ने लिया। जल में फैन के रूप में वह पाप दृष्टि आता है जल नें यह वरदान प्राप्त किया कि उसकी वृद्धि सदा होती रहेगी।

हे राजा परीक्षित्! विश्वरूप के मरने पर उसका पिता त्वष्टा अति कुपित हुआ तथा उसने इन्द्र के मारने के लिये हवन किया दक्षिणाग्नि से एक प्रबल दैत्य उत्पन्न हुआ जिसका रङ्ग काला बाल ताम्र के समान थे वह एक बाण प्रति दिन बढ़ता था उसके नेत्र बड़े डरावने तथा सूर्य के समान चमकीले थे जब वह नाचने तथा चिल्लाने लगता तब पृथ्वी काँप उठती थी, जब वह जंभाई लेकर गुफा के समान अपना मुँह खोलता था तो ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश को लील जायगा।

हे राजन्! त्वष्टा के उस क्रोधी व तामसी पुत्र ने सारे लोकों को घेर लिया उसका नाम वृत्रासुर था। इन्द्र अपने देवताओं को लेकर उस पर टूट पड़ा किन्तु उस अकेले ने ही सारे देवताओं को हरा दिया। तब देवता लोग वृत्रासुर के द्वारा सताये जाने पर भगवान् की शरण में गये।

देवताओं ने अनेक प्रकार से भगवान् की प्रार्थना की तब भगवान् पश्चिम दिशा की ओर से प्रकट हुए देवता लोग भगवान् का दर्शन करके उनकी प्रार्थना करने लगे।

देवता बोले–हे भगवन्! ये सम्पूर्ण लोक आपही ने उत्पन्न किये हैं। आप ही ने स्वर्गादि लोक बनाये हैं। आपको नमस्कार है। आप

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विघ्न डालने वाले असुरों को आप चक्र से मार डालते हैं। सत्य, रज, तम से ही उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट सृष्टि उत्पन्न होती है। हे भगवन्! हम आपकी शरण में हैं। हम सब देवताओं को वृत्रासुर ने अति भयभीत कर रक्खा है वह तीनों लोकों को निगलने वाला है उसको मारने में आप ही समर्थ हैं हे विश्वात्मन्! हम आप को नमस्कार करते हैं।

श्री शुकदेव जी बोले–हे राजन्! जब देवताओं ने भगवान् की इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान् अति प्रसन्न हो कर बोले–हे देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुति से अति प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसन्न होने पर जगत् में कोई भी कार्य तथा पदार्थ दुर्लभ नहीं है। हे देवराज इन्द्र! तुम शीघ्र ही ऋषि-राज दधीचि के पास जा कर उन से शरीर माँग लो। उन का शरीर विद्याव्रत तप से अत्यन्त दृढ़ बन चुका है। उन्हें ब्रह्म ज्ञान है वे तुम्हारी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे। अर्थ व वेद के ज्ञाता दधीचि ने ही पहिले यह नारायण कवच त्वष्टा को बताया था त्वष्टा ने अपने पुत्र विश्वरूप को सिखाया था। विश्वरूप ने तुम्हें सिखाया था, जिस के प्रभाव से तुमने दैत्यों को परास्त किया था। अश्विनीकुमारों के माँगने पर वे महर्षि तुम्हें अवश्य अपना शरीर दे देंगे। उन के शरीर की हड्डी से विश्वकर्मा एक ऐसी आयुध बना देंगे जिनका नाम वज्र होगा। उसमें मैं स्वयं प्रविष्ट कर जाऊँगा। उस के प्रहार से वह महाबली वृत्रासुर अवश्य मारा जायगा तुम्हें फिर अपना वैभव प्राप्त हो जायगा। इतना कह कर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये।

॥ दसवाँ अध्याय ॥

❀ देवताओं द्वारा दधीचि की हड्डी प्राप्त तथा वृत्रासुर का आक्रमण ❀

श्री शुकदेव जी बोले–हे राजन्! भगवान् श्री हरि के आदेशानुसार देवराज इन्द्र अश्वनीकुमार आदि देवताओं को साथ लेकर दधीचि ऋषि के आश्रम पर गये। वहाँ जाकर दधीचि ऋषि से बड़ी नम्रता के साथ उनका शरीर माँगा। दधीचि ऋषि देवताओं से धर्म का मर्म सुनने के लिये बोले अरे देवगण! मनुष्य को यह शरीर अति प्रिय होता है मुझे भी अपना यह शरीर अति प्रिय है। बोलो मैं किस प्रकार तुम्हें दे दूँ।

तब देवताओं ने कहा—हे भगवन्! आप ब्रह्मज्ञानी हैं आप का तप

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पराकाष्ठा को पार कर चुका है। आपकी उदारता तथा महान् तप की सर्व भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं यह अवश्य है कि याचक बड़ा स्वार्थी होता है उसे अपने स्वार्थ के वशीभूत होने के कारण दाता के कष्ट का अनुभव नहीं होता है तथा दाता को भी याचक के कष्ट का अनुभव न होने पर ही मुंह से नाहीं निकलती है अन्यथा नहीं। अतः आप हमारे कष्ट को समझ कर हमारी याचना पूर्ण कीजिये।

दधीचि मुनि बोले—हे देवताओ! यह तो मैंने तुमसे धर्म का मार्ग जानने के लिये ही कहा था। वह शरीर ही क्या है जो दूसरों की भलाई के काम न आए। यह कुछ काल पश्चात् स्वयं मुझे छोड़ देगा इसलिये मैं ही इसे क्यों न छोड़ दूं, जिससे यह तुम्हारे काम आजाय। इतना कह कर दधीचि ऋषि ने अपने शरीर को त्याग दिया और परब्रह्ममें लीन होगये। देवता लोग उनकी हड्डी ले आये तथा विश्वकर्मा ने उससे एक उत्तम आयुधवज्र बनाकर देवराज इन्द्र को दिया।

हे राजन! देवराज इन्द्र एरावत हाथी पर चढ़कर उस आयुधवज्र को धारण करके देवताओं के साथ वृत्रासुर पर टूट पड़े। वृत्रासुर के साथी राक्षस दैत्य दानव बड़ी बीरता से लड़े किंतु देवताओं के सामने न ठहर सके क्योंकि उन पर भगवान की कृपा थी। जब वृत्रासुर के साथी भागने लगे तब वृत्रासुर ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—अरे दैत्यो! इस मुक्ति के मार्ग को त्याग कर कहाँ जाते हो। मुक्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है एक तो योग साधन से तथा दूसरे युद्ध भूमि में मर कर तुम्हारे हाथ उत्तम मुक्ति लगी है। इसे त्यागकर जाना उचित नहीं है।

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

वृत्रासुर की वीरता तथा भगवत्प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृत्रासुर के समझाने पर भी असुर सेना भाग निकली। तब वृत्रासुर ने क्रोधित होकर देवताओं को ललकार कर कहा—रे कायरो! तुम भागते हुए असुरों पर क्यों पीछे से चोट करते हो यदि शक्ति है तो मेरे सामने आओ।

हे राजा परीक्षित! वृत्रासुर महाबली दैत्य था। उसकी भयङ्कर गर्जना

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तथा शरीर के विस्तार और भयङ्कर आकृति से ही देवता लोग डर रहे थे। बृत्रासुर की भयानक गर्जन से सब देवता मूर्छित होगये तब बृत्रासुर उन्हें त्रिशूल हाथ में लेकर बुरी तरह रोंदने लगा। तब देवराज इन्द्र ने क्रोधित होकर बृत्रासुर पर गदा का प्रहार किया। गदा बृत्रासुर तक पहुँची भी नहीं कि उसने अपने बाँये हाथ से उस गदा को पकड़ कर एरावत हाथी के माथे में दे मारी। उनकी चोट से एरावत हाथी व्याकुल होकर अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया। तथा मुँह से रुधिर की वमन करने लगा। तब देव राज इन्द्र ने अपने अमृतमयी हाथ को एरावत पर फेरा और उसकी पीड़ा शाँत की। तब बृत्रासुरने हँसकर कहा-अरे पापी! तूने मेरे भाई तथा अपने गुरु विश्वरूप का सिर काट कर गुरु हत्या की है। तू बड़ा पापी कपटी तथा हत्यारा है। तूने बलि पशु की भाँति मेरे भाई के सिर काटे हैं। ऐसा कर्म राक्षस भी नहीं करते हैं। तेरे जैसे पापी को चील,कुत्ते,गिद्ध नोंच २ कर खायेंगे। मैं अब अपने त्रिशूल से तेरी गर्दन काटकर भाई का बदला चुकाऊँगा। मैं तेरे सामने खड़ा हूँ तू अपने अमोघ बज्र को चला। यह बज्र भगवान की शक्ति से सम्पन्न है। विजय तो मुझे ही प्राप्त होगी। जिस तरफ भगवान स्वयं सहायक हैं उसी तरफ विजय है। मैं उन्हीं भगवान के चरणों में अपने को लीन कर दूँगा। भगवान अपने निज जनों को ऐश्वर्य धन सम्पत्ति जो क्षण भंगुर है नहीं देते हैं। ये सब वस्तुयें तो उसे नाश की ओर ले जाने वाली हैं। अपने भक्त को तो वे परम भक्ति ही देते हैं। तुझे ये त्रिलोकीके ऐश्वर्य अवश्यही ले डूबेंगे। तू इस नाशवान वैभव पर फूल रहा है। मेरे पर भगवान की अति कृपा होने के कारण ही ऐसी वस्तुऐं नहीं दी हैं। इतना कह कर बृत्रासुर भगवत्प्रेम में लीन हो गया और भगवान की प्रार्थना करने लगा। हे परमात्मा! आप मुझपर कृपा करके अपने चरणों का आश्रय दीजिए। मुझे जन्ममरण काकोईभयनहींहै। हे प्रभो! मैं केवल यही चाहता हूँ कि मैंजहाँभी जन्मलूँ आपकेही भक्तों के सम्पर्क में रहूँ आपके चरणोंमें मेरी भक्तिसदा बनी रहे। हे नाथ! मैं अब आपके दर्शनों के लिये ही छटपटा रहा हूँ। हे प्रभो! मेरी आसक्ति पुत्र, स्त्री, धन, आदि किसी में भी न हो यही मेरी अन्तिम अभिलाषा है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

चौपाई—अस्ति दधीचि बज्र बनवाया। बज्र लेइ मघवा तब धाया।
वृत्रासुर पर तुरत चलाया। मारि दैत्य तब धरनि गिराया॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृत्रासुर इस रण क्षेत्र में भगवान् के चरणों को स्मरण करते हुए अपना शरीर त्यागना चाहता था। विजय की अपेक्षा भगवत्प्राप्ति उत्तम समझता था। वह एक भयङ्कर त्रिशूल ले कर इन्द्र पर टूट पड़ा। जब इन्द्र ने त्रिशूल को अपनी ओर आते हुए देखा तब अपने बज्र से वृत्रासुर की विशाल भुजा त्रिशूल सहित काट दी। तब वृत्रासुर ने इन्द्र की ठोढ़ी तथा ऐरावत हाथी पर ऐसी चोट की कि इन्द्र के हाथ से बज्र छूट वृत्रासुर के निकट आ गिरा। वृत्रासुर के इस पराक्रम को देख कर सभी हाहाकार करने लगे। इन्द्र बड़े सङ्कट में पड़ गया इन्द्र ने लज्जित हो कर अपना बज्र नहीं उठाया तब वृत्रासुर ने इन्द्र से ज्ञान युक्त बचन कहे—अरे देवराज! यह जय पराजय तो दैव वश है। हम तुम दोनों तो जुआ के खेलने वाले हैं। यह युद्ध भूमि चौपड़ है अस्त्र पासे हैं। न जाने किस की विजय हो। जो मनुष्य जय, पराजय को अपनी मानता है वह मूर्ख है। जिस प्रकार कठपुतली नट के नचाने से नाचती है। उसी प्रकार यह विश्व उस परमात्मा रूपी नट के नचाने से नाचती है। यह सब कुछ परमात्माधीन समझो। जो परमात्मा के इस तत्व को नहीं जानता वही अपने को कर्त्ता भोक्ता मानता है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! वृत्रासुर के ऐसे ज्ञान युक्त बचन सुन कर देवराज ने उस का बड़ा आदर किया और अपने बज्र को उठा लिया तब मुस्करा कर बोले।

देवराज ने कहा—हे दानव श्रेष्ठ! तुम अवश्य ही परमात्मा के भक्त हो तुमने आसुरी प्रकृति त्याग कर महान् पुरुषों का ज्ञान प्राप्त कर लिया तुम्हारा शुद्ध मन भगवान् वासुदेव में लग गया है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! इस प्रकार धर्म विषयक वार्ता करते हुए दोनों महाबली युद्ध करने लगे वृत्रासुर ने एक भयङ्कर परिघ घुमा कर देवराज इन्द्र में मारी। तब देवराज इन्द्र ने अपने बज्र से ...

In Public Domain.

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की दूसरी भुजा भी काट गिरा दी। अब वृत्रासुर की दोनों भुजा कट जाने से उसके शरीर से अविरल खून की धारा बहने लगी। तब वृत्रासुरने अपने मुख को फाड़ कर देवराज इन्द्र को ऐरावत हाथी सहित निगल लिया यह अद्‌भुत दृश्य देख कर सभी देवतागण हाहाकार करने लगे। किन्तु देवराज इन्द्र नारायण कवच के प्रभाव से मरे नहीं। अपने बज्र की नोंक से वृत्रासुर का पेट फाड़ कर बाहर निकल आये। बाहर निकल कर उन्होंने बज्र से वृत्रासुर का सिर काट कर गिरा दिया। वृत्रासुर का सिर कटने में एक वर्ष का समय लग गया था। जिस समय वृत्रासुर की मृत्यु का योग आया था उसी समय उसकी मृत्यु हुई उस से पहिले नहीं। वृत्रासुर का प्राण निकल कर सभी देवताओं के देखते २ ज्योति भगवान् में समा गई।

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

इन्द्र पर ब्रह्म हत्या का आक्रमण करना

चौपाई—हत्या धाय इन्द्र पर आई। भय से ब्याकुल इन्द्र लुकाई।
कमलतन्तु में इन्द्र दुराया। तप बल नहुष इन्द्र पद पाया॥

श्री शुकदेवजी बोले—वृत्रासुर दैत्य की मृत्यु पर देवराज इन्द्र के अतिरिक्त सभी देवता, गन्धर्व लोकपाल अति प्रसन्न हुए। किन्तु देवराज इन्द्रको कोई प्रसन्नता नहीं हुई सभी ऋषि, पितर, भूत, गन्धर्व अपने अपने लोकों को चले गये।

राजा परीक्षित ने कहा—हे भगवन्! वृत्रासुर दैत्य पर विजय प्राप्त कर के भी देवराज इन्द्रको प्रसन्नता क्यों नहीं हुई। उस का क्या कारण था।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृत्रासुर के भय से सभी ऋषि, महर्षि, देवता भयभीत थे। उसके बध के लिये बार बार देवराज इन्द्र से प्रार्थना करते थे किन्तु इन्द्र ब्रह्म हत्या के भय से उसे नहीं मारना चाहते थे। तब ऋषियों ने देवराज इन्द्र से कहा कि हम तुम से अश्वमेध यज्ञ करा कर तुम्हारे ब्रह्महत्या के पाप को छुटा देंगे। श्रीशुकदेवजी बोले—ब्राह्मणों के इस प्रकार आश्वासन देने पर देवराज ने वृत्रासुर को मार डाला। जब यह ब्रह्महत्या चाण्डालिनी के समान अपने बाल बखेरे खून से लथ पथ इन्द्र के पीछे दौड़ी और ठहरजा ठहरजा चिल्लाती हुई इन्द्र को भयभीत करने लगी। देवराज

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इन्द्र तीनों लोकों में भागते फिरे किन्तु उन्हें ब्रह्म हत्या से कहीं भी छुटकारा नहीं मिला तब वे मान सरोवर में आकर कमल नाल के तन्तु में जा छिपे वहाँ पर ब्रह्महत्या के भय से एक हजार वर्ष तक भूखे प्यासे छिपे रहे। अग्नि देव उनका मुख होने के कारण उन्हें भोजन न मिला। क्योंकि अग्नि देव जल में प्रवेश नहीं कर सकते थे। इतने काल तक राजा नहुष देवराज के पद पर स्वर्ग में शासन करते रहे किन्तु ऐश्वर्य मद में अन्धे होकर सची के साथ सम्भोग करने की इच्छा की। सची ने ब्राह्मणों की सहायता से उन्हें स्वर्ग से च्युत कर दिया। तब फिर इन्द्र को खोज कर उन से अश्वमेध यज्ञ कराया और ब्रह्महत्या से इन्द्र को मुक्त किया।

हे राजन्! जो इस उत्तम आख्यान को सुनता है उसकी विजय शत्रुओं पर होती है और सारे पापों को नष्ट करके उत्तम भक्ति प्राप्त करता है। यह कथा विशेषतः पर्वों के अवसर पर अवश्य सुननी चाहिए। यह शत्रु पर विजय तथा आयु की वृद्धि करती है।

—❀—

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

❀ वृत्रासुर के पूर्व जन्म की कथा तथा राजा चित्रकेतु का चरित्र ❀

राजा परीक्षित ने पूछा—हे ब्रह्मन्! वृत्रासुर स्वभाव से बड़ा तमोगुणी था किन्तु फिर भी उसकी भगवान् में ऐसी प्रीति किस कारण से हो गई? इस संसार में असंख्यों प्राणी हैं उन में से कुछ ही अपने कल्याण का उपाय करते हैं। उन में भी विरले मुक्ति की इच्छा करते हैं। तथा उन में से विरले को ही मोक्ष मिलती है। उस महापापी वृत्रासुर को ऐसी परमगति किस प्रकार प्राप्त हुई। श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! इस विषय में महर्षि देवल अपने पिता व्यास जी तथा देवर्षि नारद के मुख से जो सुनी है वह सुनाता हूँ।

प्राचीन काल में चित्रकेतु नाम का चक्रवर्ती सम्राट सूरसेन देश में राज करता था। उस राजा के एक करोड़ रानियाँ थीं। वे स्वयं महान् सुन्दर, उदार, युवा, कुलीन तथा विद्वान थे। किन्तु फिर भी उनकी रानियों

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बाँझ थीं। बिना सन्तान के यह राज्य धन,ऐश्वर्य,सब फीका प्रतीत होता था।

एक समय राजा चित्रकेतु के यहाँ अङ्गिरा ऋषि आये। अङ्गिरा ऋषि ने राजा से कुशलक्षेम पूछी और उनके उदास होनेका कारण पूछा। हे राजा परीक्षित्! अङ्गिरा ऋषि सर्वज्ञ थे, किन्तु फिर भी राजा से ही उसकी व्यथा सुनना चाहते थे। राजा चित्रकेतु ने अङ्गिरा ऋषि के पूछने पर अपने खिन्न रहने का कारण सुनाया। वे बोले–हे देवर्षि! मैं पृथ्वी का सार्वभौम सम्राट हूँ मुझे सर्व श्रेष्ठ ऐश्वर्य तथा सम्पत्तियाँ प्राप्त हैं जिनके लिये देवता भी तरसते हैं किन्तु एक पुत्र के बिना पिण्डदान न मिलने कारण मेरे पितर भी अति दुःखी हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित्! राजा चित्रकेतु की ऐसी दुःख भरी बात सुन कर उन को दया आई और उन्होंने त्वष्टा देवता के योग्य चरु तैयार किया। उस चरु से त्वष्टा का पूजन किया और वह चरु राजा चित्र-केतु की बड़ी रानी कृतद्युति को दे दिया। उस चरु के प्रभाव से रानी गर्भवती हुई और दस मास के पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ।

पुत्र जन्म को सुन कर राजा चित्रकेतु तथा उसके सम्पूर्ण राज्य में अति उत्सव मनाया गया। राजा ने अनेकों हाथी, घोड़े, गाय, अन्न, वस्त्र स्वर्ण ब्राह्मणों तथा याचकों को दान में दिये। उस बालक का लालन पालन बड़े आनन्द से होने लगा किन्तु राजा का प्रेम अन्य रानियों के प्रति कम होगया। उनको दासी के तुल्य समझा जाने लगा। तथा बड़ी रानी कृतद्युति पर राजा का विशेष अनुराग रहने लगा। इस सौतिया डाह के कारण उन रानियों ने उस बालक को विष दे दिया जब उस बालक की माता उस बच्चे को दूध पिलानेके लिए उसके निकट गई तो उस मृत बालक को देखकर वह रुदन करने लगी। जब यह समाचार महा-राज चित्रकेतु के पास पहुँचा तो वे फूट २ कर रोने लगे। उनके रुदन को सुनकर सारे नगर में रुदन होने लगा।

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित्! उन राजा और रानी के करुण क्रन्दन से सभी इतने आर्त्त थे कि कोई उन्हें समझाने में समर्थ नहीं था। उस समय उस राजा के पास महर्षि अङ्गिरा तथा देवर्षि नारद दोनों आये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

अङ्गिरा तथा नारदजी के द्वारा राजा चित्रकेतु को उपदेश।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! शोक ग्रस्त मुर्दे के समान राजा चित्रकेतु मृतशव के पास पड़े हुए थे। देवर्षि नारद तथा अङ्गिरा ऋषि ने उन्हें बड़ी युक्ति से समझाना आरम्भ किया। वे बोले—हे राजन्! तुम जिस बालक के लिये शोक कर रहे हो तुम्हें पता है कि वह बालक पूर्व जन्म में तुम्हारा कौन था। उससे भी पूर्व तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध था। यह तो मिलना, बिछुड़ना, मरना, जीना होता ही रहता है। भगवान् की माया से प्राणी उत्पन्न और नष्ट होते हैं। पहले जन्म में तुम भी थे और मृत्यु के पश्चात् भी तुम अवश्य रहोगे। यह असत्य वस्तु नष्ट हो जाती है। जीवात्मा सदा अमर रहता है। जिस प्रकार एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है उसी प्रकार माता पिता के संसर्ग से पुत्र उत्पन्न होता है। जब उन दोनों मुनि श्रेष्ठों ने राजा को इस प्रकार समझाया तब राजा ने अपने आँसू पोंछते हुए उनसे पूछा हे भगवन्! आप लोग कौन हैं? भगवान् के भक्त दुःखियों के दुःखदूर करने के लिये विचरते रहते हैं। आप अवधूत वेष में छिपे हुए हैं। आप सनतकुमार, नारद अङ्गिरा, देवाल, शुकदेव, दुर्वासा आदि ऋषियों में से तो नहीं हो। कथा करके मुझे बताइये।

महर्षि अङ्गिरा ने कहा—हे राजन्! जिस समय तुम पुत्र प्राप्ति के लिए अति शोकाकुल थे उस समय पहले पहल मैंने तुम्हें पुत्र प्राप्त कराया था। इस समय तुम्हारे पुत्रशोक को देखकर हम दोनों ऋषि तुम्हें उपदेश करने आये हैं मेरा नाम अङ्गिरा है, और इसका नाम देवर्षि नारद है। मैं तुम्हें उसी समय उपदेश करना चाहता था किन्तु तुम्हारी पुत्र लालसा प्रवल होने के कारण मैंने तुम्हें पुत्र ही देना उत्तम समझा। किन्तु अब तुमने देख लिया पुत्र प्राप्ति में कितना सुख है। ये जितने भी ऐश्वर्य राज्य, लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, मन्त्री सेवक आदि हैं वे सब अनित्य हैं। तथा शोक और दुःखके कारण हैं। ये मिथ्या और नाशवान हैं। केवल जीवात्मा पंचभूत ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेंद्रिय को साथ लेकर जाता है। उसका यह लिङ्ग

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शरीर ही इन क्लेश और सन्तापोंको सहाता है। यह जीवात्मा कभी नहीं मरता। केवल अपने कर्मानुसार दुःख भोगता रहता है। यह जान कर तुम शोक कोत्याग दो। देवर्षि नारद ने कहा--हे राजन्! तुम सावधान चित्त से मंत्रो- पनिषद मुझ से ग्रहण करो। इस मंत्र के धारण करने से सात रात में ही तुम को भगवान् संकर्षण के दर्शन हो जावेंगे तुम भगवान् के परमपद को प्राप्त कर लोगे।

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

चित्रकेतु का वैराग्य तथा संकर्षण के दर्शन।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! इसके बाद नारद जी ने मृत राजकुमार के जीवात्मा को शोक से व्याकुल कुटुम्बियों को प्रत्यक्ष बुला कर दिखलाया।

देवर्षि नारद ने कहा—हे जीवात्मा! देखो तुम्हारे माता पिता सम्बन्धी सब तुम्हारे बिछोह से शोकाकुल हैं। इस लिये तुम अपने शरीर में पुनः आ कर शेष आयु अपने सम्बन्धियों के साथ व्यतीत करो। पिता के दिये हुये राज्य तथा भोगों को भोगो। जीवात्मा ने कहा—हे नारद जी! मैं अपने कर्मों के अनुसार न जाने कितनी योनियाँ—देवता, पशु, मनुष्य आदि में भटकता रहा हूँ। उनमें से न जाने कितने जन्मों में मेरे माता पिता रहे हैं। अनेक जन्मों में सभी एक दूसरे के भाई बन्धु, पुत्र, पौत्र, शत्रु, मित्र होते रहते हैं। जैसे स्वर्ण आदि के क्रिय विक्रय एक दूसरे में होते रहते हैं, वैसे ही जीव भी एक योनि के बाद दूसरी योनि में जन्म लेता रहता है। जिस प्रकार अस्थाई रहने वाले स्वर्ण आदि पदार्थ मनुष्य से क्षणिक सम्बन्ध रखते हैं। उसी प्रकार यह जीव भी क्षणिक सम्बन्ध रखता है। जिसका जितना सम्बन्ध है वह उतना ही उसके पास रहता है। जीव नित्य तथा अहंकार रहित है। वह जब तक जिस शरीर में रहता है उसे तभी तक अपना समझता है। सच पूछा जावे तो यह जीव नित्य, अविनाशी, जन्म मरण से रहित, सब का आश्रय तथा स्वयं प्रकाश है। यह ईश्वर रूप होने के कारण स्वयं को बिश्व में प्रगट करता है। इस का न कोई मित्र है न शत्रु है वास्तव में यह अद्वितीय है। यह आत्मा

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

स्वतन्त्र है। यह आत्मा शरीर आदि के कर्म तथा गुणों को ग्रहण न कर के उदासीन रहता है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जीवात्मा यह कह कर चला गया। जीवात्मा के ऐसे बचन सुन कर सब को आश्चर्य हुआ तथा सब का मोह दूर हो गया और वे मृत बालक के शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया कर के शोक मोह, दुःख से निवृत हो गये।

हे राजन्! जिन रानियों ने बालक को विष दिया था, वे बालहत्या के कारण श्रीहीन होगईं उन स्त्रियों ने जमुना जी के तट पर जाकर ब्राह्मणों की बताई हुई बिधि से बालहत्या का प्रायश्चित किया। राजा चित्रकेतु को भी नारद तथा अँगिरा के उपदेश से वैराग्य प्राप्त हो गया और वे घर गृहस्थ आदि को त्याग कर चले गये। उन्होंने यमुनाजी में बिधि पूर्वक तर्पण आदि किया। तत्पश्चात् इन्द्रियों को वश में कर के तथा मौनवृत धारण कर के देवर्षि नारद और अङ्गिरा के निकट आये, उनके चरणों में प्रणाम किया। तब नारदजी ने इस प्रकार उपदेश किया।

देवर्षि नारद बोले—ॐकार स्वरूप परमात्मा आप ही के चतुर्व्यूह रूप चार प्रकार के दर्शन हैं, आप बासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षण स्वरूप से चित्त, बुद्धि, मन तथा अहङ्कार के स्वामी हैं। मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप अपने परमानन्द में ही मग्न रहते हैं। आपमें द्वेष भाव नहीं है। राग द्वेषादि जो आप अपनी माया से प्रगट करते हैं उन सब से रहित हैं। आप विराट् स्वरूप हैं, आप मन तथा वाणी से परे हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आप में ही ओत प्रोत है, आप ही उसकी स्थिति, उत्पत्ति तथा लय करने वाले हैं। आपके पर:ब्रह्म स्वरूप को मेरा नमस्कार है। उत्तम भक्त आपकी सेवा में सदा लगे रहकर आपके चरण कमलों की उपासना करते हैं। आप ओंकार स्वरूप हैं। मैं आप को नमस्कार करता हूँ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! नारदजी राजा चित्रकेतु को उपदेश कर के अङ्गिरा के साथ ब्रह्मलोक को चले गये। राजा चित्रकेतु ने नारद के बताये हुये मार्ग से सात दिन तक केवल जल पीकर शान्त चित्त

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

अनुष्ठान किया। राजा चित्रकेतु को उस अनुष्ठान के प्रभाव से विद्याधरों का आधिपत्य मिल गया। कुछ काल पश्चात् राजा चित्र केतु को भगवान शेष के दर्शन हुए। उनका रङ्ग गौरवर्ण, शरीर पर नील वस्त्र धारण किए हुए शिर पर मुकुट बाजूबन्द, करधनी आदि आभूषण धारण किये थे। नेत्र रतनारे तथा मुख प्रसन्न था। राजा चित्रकेतु भगवान अनन्तके दर्शन पाकर गद् गद् हो गये उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। चित्रकेतु ने उन की इस प्रकार स्तुति की।

चित्रकेतु बोले—हे परमात्मन्! आप विश्व के स्वामी तथा अजेय हैं। किन्तु फिर भी भक्त जन आप को जीत लेते हैं। आप भक्तों के अधीन रहते हैं जो जन निष्काम भाव से आपको भजते हैं वे सर्व श्रेष्ठहैं। उन्हें आप सर्वस्व अर्पण कर देते हैं। जगत की उत्पत्ति, स्थिति, लय आप ही के अधीन है। एक परमाणु से लेकर महतत्व तक सब में आप ही व्याप्त हैं। आदि, मध्य, अन्त सब में आप ही हैं और आप इनसे रहित भी हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता है केवल आप ही शेष रहते हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कोष आप की प्रेरणा से स्वयं स्वतःघूमता रहता है। आपके आदि मध्य, अन्त का फिर भी कुछ पता नहीं चलता है इसी कारण आप को अनन्त कहते हैं। जो नर पशु सकाम भाव से आपको भजते हैं वे वास्तव में अज्ञानी हैं। उनकी वह इच्छा पूर्ण हो जाती है, किन्तु उनकी तृप्ति शेष रहती है। तृप्ति तो तभी पूर्ण होती है, जब आप उसे प्राप्त हो जाते हैं, आप निष्काम भाव से भजने पर प्राप्त होते हैं। हे भगवान! मैं आपकी सेवा तथा निवेदन करने में असमर्थ हूँ। जिस प्रकार सूर्य के सामने दीपक व्यर्थ है उसी प्रकार आपके सामने मेरी भेंट तथा अन्य वस्तुऐं व्यर्थ हैं, आप तो केवल प्रेम भाव भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन! विद्याधरों के राजा चित्रकेतु ने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान शेष बोले—

भगवान् ने कहा—हे राजा!तुम्हें देवर्षि नारद तथा महर्षि अँगिरा ने जो विद्या बताई है उससे तुमने मुझे प्राप्तकर लियाहै। मैं ही इस जगत में समस्त प्राणियोंमें व्याप्तहूँ।यह जगत मुझमें स्थितहै। मैं जगतमें स्थितहूँ। वेद और

... Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रह्म दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। मैं जगत का कर्त्ता हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ, जब जीव मेरे ब्रह्म स्वरूप को भूल जाता है तभी अपनेसे मुझको अलग मान बैठता है। इसी कारण यह संसार चक्र में भ्रमण करता है। केवल यह मनुष्य जन्म ही ऐसा है कि इसमें मुझे पहचानने का ज्ञान प्राप्त होता है, यदि वह इस में मुझे नहीं पहिचान पाता है, तो फिर वह किसी योनि में मुझे नहीं पहिचान सकता। मनुष्य जितने भी यज्ञादि कर्म, दान इत्यादि करता हैं, दुःखों से मुक्त होने को करता है, किन्तु कर्मों से वह दुःख मुक्त नहीं हो सकता है जब तक उसे मेरा ज्ञान प्राप्त नहीं होताहै,तब तक उन यज्ञादि शुभ कर्मों का फल भोग कर फिर संसार चक्र में घूमने लगता है। उस जीव को परम सुख तो तभी मिलता है, जब वह मुझे प्राप्त कर लेता है। कर्म के चक्कर में पड़ने वालों को उल्टा फल मिलता है। मेरे में श्रद्धा बढ़ाने के लिये ही शुभ कर्म किये जाते हैं। मेरे में श्रद्धा बढ़ने पर कर्मों का त्यागकर देना चाहिये।

जो तत्वज्ञानी हैं उन्हें भली प्रकार जान लेना चाहिये कि जीवात्मा की भलाई केवल इसी में है कि वह ब्रह्म तथा आत्मा, (जीवात्मा) की एकता का ज्ञान प्राप्त कर के दोनों को एक समझे। हे राजा! तुम इसी विधि से मुझे प्राप्त कर लोगे। इतना कह कर भगवान अन्तर्ध्यान होगये।

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

राजा चित्रकेतु को पार्वती जी का शाप देना–

चौ०–जगदम्बा की हँसी उड़ाई। दीन्ह शाप जगदम्बा माई।
चित्रकेतु की कथा सुनाई। असुर योनि जिहि कारण पाई॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित्! विद्याधर चित्रकेतु भगवान संकर्षण से वर प्राप्त करके उन्हीं के प्रेम में सदा स्वच्छन्द विचरने लगे उन्हें उनकी कृपा से एक दिव्य विमान प्राप्त होगया था। वे कभी सुमेरु की चोटियों पर, कभी घाटियों में, कभी आकाश में बिहार करने लगे। राजा चित्रकेतु की आज्ञा से विद्याधरों की पत्नियाँ उनके गुणगान करती रहती थीं। एक दिन चित्रकेतु अपने विमान पर चढ़ कर जारहे थे तो उन्होंने मार्ग में भगवान् शंकर के आश्रम को देखा। वहाँ पर भगवान् शंकर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पार्वती जी को गोद में बैठाले हुए सिद्ध, चारणों को उपदेश दे रहे थे। यह देख कर चित्रकेतु को बड़ा विस्मय हुआ और बोले—अरे ! इन महान् पुरुषों को तो देखो, इन्हें तनिक भी लज्जा नहीं है। सभी के सामने स्त्री को गोद में लेकर आलिङ्गन कर रहे हैं। साधारण मनुष्य तो भी एकान्त में स्त्री सहवास तथा आलिङ्गन आदि करते हैं। किन्तु इन महान् आत्माओं की यह दशा है ? जब ये ही ऐसा करते हैं तो दूसरों पर इनका क्या प्रभाव पड़ेगा ? मुनियों की सभा में पार्वती को अपनी गोद में बैठा कर उसका आलिङ्गन कर रहे हैं।

विद्याधर चित्रकेतु के ऐसे बचन सुनकर भगवान् शंकर जी तो हँसने लगे कुछ भी न बोले क्योंकि वह तो परमज्ञानी तथा जितेन्द्रिय थे, किन्तु पार्वती जी से न रहा गया। पार्वती जी बोलीं अरे ! हम जैसे निर्लज्ज को दण्ड देने के लिये तुम्हीं को विधाता ने बनाया है, क्या ? ये सब ब्रह्मा जी, नारद, भृगु, अङ्गिरा आदि जितने बैठे हैं ये कोई भी धर्म का मर्म नहीं जानते हैं, तभी तो वे धर्म की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले भगवान् शंकरजी को नहीं रोकते हैं। जिन शंकरजी की सेवा सदा ब्रह्मादि देवगण करते रहते हैं, उन्हें तू ही मार्ग सिखाने आया है। यह ढीठ क्षत्रिय भूतभावन भगवान् शंकरजी का निरादर कर रहा है। अतः यह दण्ड देने योग्य है। हे दुर्बुद्धे ! जा तू असुर योनि में जन्म ले। उस पाप योनि में जाने से तू फिर कभी महान् पुरुषों का तिरस्कार न करेगा।

पार्वती जी के शाप को सुन कर चित्रकेतु रथ से उतर कर नीचे आये तथा बोले—हे माता ! मुझे आपका श्राप स्वीकार है। मैं श्राप से नहीं डरता हूँ। यह तो प्रारब्धानुसार प्राप्त होने वाले आगामी भोग की सूचना है। यह तो संसार चक्र है। मनुष्य अपने कर्मानुसार सुख, दुख भोगता रहता है। इस सुख तथा दुःख का देने वाला न यह आत्मा है न आप हैं और न कोई अन्य है। अज्ञानी तथा अविवेकी ही सुख दुःख देने का कारण दूसरों को मानते हैं। ये श्राप, वरदान, नरक, स्वर्ग, सुख दुःख सब केवल कल्पना मात्र है। इन सब का कारण मात्र केवल वह परमात्मा ही है जो अपनी माया से समस्त प्राणियों को बन्धन में तथा मोक्ष आदि में

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

डालता है। किन्तु उसका इनसे सम्बन्ध कुछ भी नहीं होता है।

हे माता! भगवान् समदर्शी हैं, उनका न कोई मित्र तथा न कोई शत्रु है। उनका अपना पराया कोई नहीं है केवल भगवान् की माया से उत्पन्न पाप तथा पुण्य कर्म ही जीव के सुख दुःख का हेतु बनता है। वही बन्धन, मोक्ष तथा जन्म मरण के आवागमन का हेतु है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! इस प्रकार भगवान् शंकर तथा पार्वती जी को प्रसन्न कर के चित्रकेतु अपने दिव्य विमान पर बैठ कर आकाश को चला गया।

तब भगवान् शंकर पार्वती जी से बोले हे पार्वती जी! देखा तुमने भगवत्भक्त का प्रभाव। वह तुम्हारे शाप से भयभीत नहीं हुआ है। परमात्मा के भक्त सुख दुःखादि तथा श्राप, अनुग्रह को प्रारब्ध का भोग मान कर सहते हैं। उनके लिए सब समान हैं। न वे दुःख में दुःख और न सुख में सुख अनुभव करते हैं। उनकी ज्ञान शक्ति का नाश नहीं होता है वे किसी भी योनि में रहें, कहीं भी रहें, उन्हें भगवान् के दर्शन प्राप्त होते रहते हैं। उनके लिए देवता राक्षस, मनुष्य, सर्प, पशु सब समान हैं। यह तो अज्ञान वश भेद प्रतीत होता है। आत्मा सब में एक है। हे पार्वती! मैं, ब्रह्मा, नारद तथा सनकादिक कोई भी उन परमात्मा के भेद को नहीं जानते फिर तुच्छ प्राणियों का तो कहना ही क्या है।

प्रिये! यह परमज्ञानी चित्रकेतु उन्हीं भगवान् का परम भक्त है, जिन का भक्त मैं हूँ। अतः तुम्हें भगवान् के भक्तों के प्रति ऐसा भाव नहीं रखना चाहिये।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! भगवान् शंकर जी के ऐसे बचन सुन कर पार्वती जी चुप हो गईं। चित्रकेतु ने पार्वती जी का शाप शिरोधार्य कर लिया, यदि वे चाहते तो वे भी पार्वती को शाप दे सकते थे किन्तु साधु जन ऐसा नहीं करते। वे शाप को सुन कर हँसते हुए प्रसन्न बदन चले गये। साधु पुरुष ऐसे होते हैं। उन्हीं चित्रकेतु ने उस बृत्रासुर का जन्म लिया था। वे पूर्व जन्म के संस्कार से ही भगवान् के भक्त थे।

जो भक्त जन इस कथा को सुनता है। वह बन्धन मुक्त हो जाता है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जो प्रातःकाल मौन हो कर इस उपाख्यान का पाठ करता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

—❀—

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

दिति अदिति की सन्तानोत्पत्ति मरुद्गणों का उत्पन्न होना

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! पहिले मैं तुम्हें अदिति के पुत्रों का वर्णन सुनाता हूँ। सविता की भार्या, पृश्नि के आठ सन्तानें हुईं। सावित्री, व्याहृति, जपी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य, तथा पंचमहायज्ञ भग की पत्नी के गर्भ से महिमा, विभु, प्रभु नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुये आशि नाम की एक पुत्री थी।

विधाता की चार पत्नियों के क्रमशः सायं, दर्श, प्रातः तथा पूर्णमास चार पुत्र हुए।

विधाता की पत्नी क्रिया के गर्भ से पुरीव्य नामक पाँच अग्नियाँ उत्पन्न हुईं वरुण की पत्नी चार्षणी के गर्भ से पुनः ब्रह्मा के पुत्र भृगुजी उत्पन्न हुये। बाल्मीकजी भी वरुण के पुत्र थे। मित्र तथा वरुण उर्वशी को देखकर मोहित हो गये उनका वीर्य स्खलित हो गया उन्होंने उस वीर्य को एक घट में रख दिया उस से अगस्त जी तथा ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ जी उत्पन्न हुए। मित्र की पत्नी रेवती के गर्भ से उत्सर्ग, अरिष्ट, पिप्पल तीन पुत्र हुए। देवराज इन्द्र की पत्नी शची के गर्भ से जयन्त, ऋषभ मीढ़वान उत्पन्न हुए। भगवान् उपेन्द्र की पत्नी कीर्ति के गर्भ से बृहच्छलोक नाम का पुत्र हुआ। हे राजन्! यह मैंने संक्षेप में कश्यप जी की पत्नी अदिति की सन्तान का वर्णन सुनाया। दिति की सन्तान का वर्णन सुनिये।

दिति के केवल दो पुत्र हुए एक हिरण्याक्ष दूसरा हिरण्यकशिपु। हिरण्यकशिपु की पत्नी का नाम कयाधु के चार पुत्र हुए—संह्लाद, अनुह्लाद ह्लाद, तथा प्रह्लाद इनकी एक सिंह का नामकी बहिनथी जिस का पुत्रराहु था।

ह्लाद की पत्नी धमनी के गर्भ से वातापि तथा इल्वल दो पुत्र हुए। अनुह्लाद की पत्नी सूर्म्या के बाष्कल तथा महिषासुर हुए। संह्लाद की पत्नी कृति के गर्भ से पंचजन नाम का पुत्र हुआ। प्रह्लाद के विरोचन

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तथा विरोचन के दैत्यराज बलि उत्पन्न हुए। बलि के बाणासुर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया था। दिति के जब दोनों पुत्र भगवान् के हाथ से मारे गए तब दिति ने उनच्चास मरुद्गणों को उत्पन्न किया। राजा परीक्षित ने पूछा–हे ब्रह्मन्! मरुद्गण तो देवताओं के मित्र तथा देवबुद्धि के थे वे असुर क्यों हुए कृपाकर इसका भेद प्रगट कीजिए।

श्री शुकदेव जी बोले–हे राजन्! इन्द्र की चालाकी से जब भगवान् ने दिति के दोनों पुत्रों हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु को मार डाला तब दिति को अति दुःख हुआ और पुत्रों की मृत्यु का मूल कारण इन्द्रको समझ कर इन्द्र को मारने के लिये एक पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा हुई। तब दिति ने अपने पति कश्यपजी की बड़ी सेवा की उसकी सेवा से सन्तुष्ट होकर कश्यप जी ने एक दिन प्रसन्न होकर कहा–प्रिये तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँग लो। जब दिति ने पति को अपने ऊपर प्रसन्न देखा तब वे बोलीं–हे देव! यदि आप मुझ से प्रसन्न हैं तो मुझे इन्द्र को मारने वाला एक पुत्र प्रदान कीजिए। कश्यप जी अपनी पत्नी दिति की ऐसी कुटिल बात सुन कर अति दुःखी हुए और पछताने लगे किंतु हो ही क्या सकता था। वर माँगने की कह ही चुके थे। तब कश्यप जी ने सोच कर कहा–हे प्रिये! तुम्हारे ऐसा ही पुत्र होगा जो देवता इन्द्र को मार डालेगा किन्तु तुम्हें एक वर्ष तक इस व्रत का साधन करना पड़ेगा। उस व्रत के साधन में मन, वचन तथा कर्म से किसी को सताना नहीं चाहिये किसी को अपशब्द न कहे, असत्य भाषण न करे, शरीर के बाल, नख आदि न काटे, अशुभ वस्तु न छुए, जल में भीतर स्नान न करे, क्रोध न करे, बुरे मनुष्यों से बात न करे, धुला वस्त्र पहिने, माँस का भक्षण न करे। शूद्र तथा रजस्वला का लाया हुआ अथवा देखा हुआ भोजन न करे। झूठे मुँह तथा बिना पैर धोये न सोये न बाहर जाय। न सन्ध्याकाल में सोए। नग्नावस्था में, अपवित्र अवस्था में, उत्तर पश्चिम सिर करके न सोये। भोजन करने से प्रथम गौ, लक्ष्मी तथा नारायण की पूजा करे। सदा शृङ्गार करके रहे। पति की पूजा करे सुहागिनों की पूजा करे। यह 'पुंसवन' व्रत पुत्र को देने वाला है। इसका साधन एक वर्ष तक करने पर तुम्हारे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इच्छा पूर्ण होगी। इसमें त्रुटि आने पर उसका फल विरुद्ध होगा।

हे राजन्! दिति ने बहुत अच्छा कह कर व्रत आरम्भ कर दिया। जब देवराज इन्द्र को इस बात का पता चला कि सौतेली माता दिति मुझे मारने वाला पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से व्रत कर रही है। तब वे वेष बदल कर माता दिति की सेवा करने लगे और उनके व्रत में त्रुटि की तलाश में रहने लगे। जब माता दिति व्रत में कोई त्रुटि न करते हुए बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से व्रत करने लगी तब इन्द्र को बड़ी चिंता हुई।

एक दिन असुरों की माता दिति व्रतों के कारण अति दुर्बल होनेसे थक कर झूँठे मुँह ही संध्या के समय सो गईं। दैव का ऐसा ही विधान था। इन्द्र ऐसे सुअवसर की खोज में सदा वहीं रहता था। जब उन्होंने यह त्रुटि देखी तब शीघ्र ही अपनी माया से माता दिति के उदर में प्रवेश करके अपने वज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। जब यह सातों टुकड़े रोने लगे तब इन्द्र ने प्रत्येक के सात सात टुकड़े और कर दिये तब वे उनच्चास टुकड़े बोले--अरे भाई इन्द्र! हम तो तुम्हारे भाई हैं। हम से शत्रु भाव क्यों रखते हो। हम तो उनच्चास मरुद्‌गण तुम्हारे साथ ही रहेंगे। तब वे इन्द्र के साथ मिल कर पचास हो गये। इन्द्र उन से शत्रु भाव त्याग कर उन्हें साथ ले कर गर्भ से बाहर निकल गये। जब माता दितिकी आँख खुली और अपने उनच्चास पुत्रों को बाहर इन्द्र के साथ देखा तब वह बोली बेटा इन्द्र! यह क्या विस्मय जनक घटना है। मुझे समझा कर बताओ। बेटा! डरने की बात नहीं है सत्य सत्य कहो। तब इन्द्र ने डरते हुए सारा वृतान्त सही सही बता दिया। माता दिति सुनकर चुप होगईं। इन्द्र अपने कुकृत्य पर पछताते हुए अपने भाई उनच्चास मरुद्‌गणोंको लेकर देवलोकको चला गया।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजन्! माता दिति देवराज इन्द्र के सत्य भाषण से प्रसन्न होगईं थीं। तुमने पूछा था वह मैंने सुना दिया।

—❀—

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

पुंसवन व्रत की विधि

चौ०—व्रत पुंसवन अति सुख दाता। चाहे पत्र करहि जो माता।

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजा परीक्षत् ने पूछा–हे भगवन्! आपने अभी पुंसवन व्रत की बात जो कही है उस व्रत की क्या बिधि है मुझे समझा कर कहिये।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! पुंसवन व्रत सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि करने वाला व्रत है। सुहागिन स्त्री अपने पति से आज्ञा लेकर मार्गशिर के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से व्रत को आरम्भ करे। उसे प्रथम मरुद्गणों के जन्म की कथा सुननी चाहिये। तत्पश्चात् प्रातःकाल दातुन आदि से निबृत होकर स्नान करे और श्वेत वस्त्र धारण करे तथा भली प्रकार अपना श्रृङ्गार करे। भोजन करने से प्रथम लक्ष्मी नारायण का शोडषोपचार से पूजन करे। उन से प्रार्थना करे–हे भगवन्! आप पूर्णकाम होने से किसी से कुछ लेने की इच्छा नहीं रखते। आप सब के स्वामी हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरे आराध्य देव हैं, तथा सम्पूर्ण बिपत्तियों तथा कृपा से युक्त हैं। आप सर्व शक्तिमान हैं। हे माता लक्ष्मी जी! आप नारायण की अर्द्धाङ्गिनी हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

हे राजन्! इस प्रकार स्तुति करके ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिषतये सह महाविभूति भिर्वलिमुपहारणि" (ॐ कार स्वरूप महानुभाव सब के स्वामी, भगवान् पुरुषोत्तम तथा उनकी महान विभूतियों को मेरा नमस्कार है। उन्हें पूजा की सामिग्री भेंट करती हूँ) इस मन्त्र से नित्य भगवान् लक्ष्मी नारायण की पूजा करे। उन्हें आह्वाहन, अर्घ्य पाद्य, आचमन, स्नान, धूप दीप नैवेद्य आदि समर्पित करे।

तत्पश्चात् "ॐनमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा" मंत्र से अग्नि में बारह आहुति देवे। इस प्रकार पूजन करने से सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं। तत्पश्चात् दण्डवत् करे तथा दसबार उपरोक्त मन्त्र का जप करे और इस स्तोत्र का पाठ करे।

हे लक्ष्मी नारायण! आप दोनों, सम्पूर्ण जगत में व्यापक तथा उसके कारण हैं। लक्ष्मीजी आपही की योग माया हैं। उन्हीं की शक्ति से आप सृष्टि रचते हैं। वे आपकी शक्ति हैं। आप ही यज्ञ पुरुष हैं। आप ही यज्ञ तथा उसके भोक्ता हैं। आप आत्मा तथा इन्द्रिय शरीर और अन्तःकरण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

माता लक्ष्मी जी हैं। माता लक्ष्मी नाम रूप हैं और आप उनके आधार तथा प्रकाशक हैं, आप वरदाता हैं, मेरी अभिलाषा पूरी कीजिये।

हे राजन् भगवान् की स्तुति करने के पश्चात् नैवेद्य को धर कर के और आचमन कर के पूजा करे। फिर उनकी स्तुति करे। भगवान् की पूजा के पश्चात अपने पति को भगवान् का स्वरूप समझ कर उसकी पूजा करे तथा वस्तु उपहार में भेंट करे और भोजन करे। पति भी अपनी पत्नी को उसकी प्रिय वस्तु लाकर देवे। हे राजन्! पति पत्नी में से कोई भी इस व्रत को कर सकता है। उसका फल दोनों को प्राप्त होता है। यह भगवान् विष्णु का व्रत नियम पूर्वक करना चाहिये। इसे बीच में नहीं तोड़ना चाहिये। इस प्रकार वह साध्वी स्त्री बारह महिने तक इस व्रत को करे मार्गशिर की अमावस्या को व्रत समाप्ति कर उद्यापन करे। उस दिन प्रातःकाल स्नान कर के बिधिवत् भगवान् की पूजा करे तथा उसका पति घृत मिश्रित खीर, की बारह आहुति दे। तत्पश्चात ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा कुटुम्ब के साथ स्वयं भोजन करे। उस हवन से बची हुई खीर को अपनी पत्नी को खिलावे वह खीर ही पुत्र देने वाली है।

हे राजा परीक्षित्! जो स्त्री इस व्रत को करती है वह सौभाग्यवती, सम्पति शालिनी पुत्रवती होती है। उसका पति दीर्घायु होता है। कन्या करती है तो वह उत्तम पति प्राप्त करती है विधवा वैकुण्ठधाम को जाती है। रोगी का रोग दूर होता है जो जिस कामना से व्रत करता है उसकी वही कामना पूरी होती है। हे राजन्! मैंने तुम्हें उत्तम पुंसवन व्रत की विधि सुनाई है। अब और क्या सुनाऊँ।

❀ छटवाँ स्कंध समाप्त ❀

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

❁ श्री गणेशायनमः ❁

वृहद् सुखसागर

॥ सप्तम् स्कंध ॥

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति बिना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रव से नमो नमः ॥

अर्थ—महा तपस्वी, दानी, यशस्वी, सदाचारी बड़े बड़े मंत्रवेत्ता अपनी साधना सहित अपने आपको जब तक भगवान् के अर्पण नहीं कर दें तब तक उन्हें कल्याण नहीं प्राप्त होता है। हम उन कल्याण मूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को नमस्कार करते हैं।

❁ प्रथम अध्याय ❁

दो०—जय विजय के शाप को, नारद रहे सुनाय ।
धर्मराज सुनने लगे, मन से ध्यान लगाय ॥

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् तो समदर्शी होने से स्वभावतः ही न किसी से बैर रखते हैं न किसी से प्रेम करते हैं फिर यह क्या बात है कि भगवान् देवताओं से प्रेम करते हैं दैत्यों का संहार करते रहते हैं। वे दैत्य बिचारे उनकी क्या हानि करते हैं और देवता उन्हें क्या प्रदान करते हैं न उनको देवताओं से लेना देना है और न दैत्यों से भय है फिर ऐसा क्यों है। भगवन् ! मुझे भगवान् के समत्व होने में बड़ा सन्देह है आप मेरे इस सन्देह को दूर कीजिये।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! वास्तव में तुमने यह बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। मैं अपने पिता व्यासजी को प्रणाम करके तुम्हारे सन्देह

In Public Domain ... Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

को दूर करता हूँ सुनो, भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है, हे परीक्षित ! वे वास्तव में निगु ण अजन्मा, अव्यक्त तथा प्रकृति से परे हैं। किन्तु फिर भी अपनी माया को धारण करके वे मारने वाले तथा मरने वाले दोनों रूपों को स्वयं धारण करते हैं। यानी मारने वाले भी वे ही हैं और मरने वाले भी वे ही हैं। प्रकृति के सत्य, रज, तम, तीन गुण हैं। परमात्मा के गुण नहीं हैं किन्तु वे समयानुसार अपनी माया से इन तीनों गुणों को स्वीकार करते हैं। जब सत्व गुण की वृद्धि होती है तब देवता बढ़ते हैं दैत्य राक्षसों का संहार करते हैं और जब रज, तम बढ़ते हैं तब देवताओं का नाश होता है दैत्य राक्षसों की वृद्धि होती है। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि व्याप्त रहती है किन्तु काष्ठ से अलग रहती है उसी प्रकार परमात्मा सब में व्याप्त रहता है, किन्तु फिर भी प्रकृति के गुणों से अलग रहता है। जब परमात्मा शरीरों का निर्माण करते हैं तब अपनी माया द्वारा त्रिगुण को उत्पन्न करते हैं। जब वे अनेक योनियों में रमना चाहते हैं तब सत्वगुण को उत्पन्न करते हैं जब शयन करना चाहते हैं तब तमोगुण को उत्पन्न करके सब का संहार करके अपने में लय करके सो जाते हैं। वे काल की सृष्टि करते हैं काल उनके आधीन रहता है। अतः कालानुसार किये कर्म भी उन्हीं के द्वारा किए गए कर्म हैं। इसलिए काल की इच्छा से सत्वगुण प्रधान होने पर भगवान देवताओं के प्यारे तथा रजोगुणी तथा तमोगुणी दैत्य राक्षसों के नाश करता प्रतीत होते हैं। किन्तु वास्तव में वे समत्व ही हैं।

हे राजन् ! इस विषय में तुम्हारे दादा युधिष्ठिर ने अपने राजसूर्य यज्ञ में देवर्षि नारदजी से एक प्रश्न पूछा था उनके सामने चेदिराज शिशुपाल भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के चक्रसुदर्शन से मर कर उसकी आत्मा की ज्योति उन्हीं में समा गई। इस आश्चर्यजनक घटना को देख कर सभी उपस्थित सभासदों को बड़ा आश्चर्य हुआ तब धर्मराज युधिष्ठिर ने देवर्षि नारदजी से इसका कारण पूछा। युधिष्ठिर बोले—हे राजन् ! यह शिशुपाल दमघोष का पुत्र जब से उत्पन्न हुआ था तभी से भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी से शत्रुता रखता था। यही दशा उस दुबु द्धि दन्तवक्र की थी। ये दोनों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by ... Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पानी पी पी कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जो साक्षात् नारायण हैं उन्हें गाली देते थे। किन्तु फिर भी ऐसे दुष्ट पातकी को कभी कोढ़ न हुआ और न उसकी जीभ ही गलकर गिरी, किन्तु उसके बदले उसे भगवान् का सायुज्य प्राप्त हो गया। वह हम सब के देखते २ भगवान् में समा गया और उसके बैकुण्ठ धाम को चला गया। उसे वह गति प्राप्ति हुई जो बड़े २ योगीजनों को दुर्लभ है। इस का भेद मुझे समझाइये। श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! तुम्हारे दादा धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसे बचन सुन कर नारदजी अति प्रसन्न हुए और बोले।

नारद जी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! निन्दा, स्तुति, तिरस्कार, सत्कार ये सब शरीर के ही गुण हैं न कि आत्मा के। आत्मा शरीर जभी धारण करता है जब उसे प्रकृति तथा पुरुष अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं रहता है। जब अविवेकी आत्मा इस शरीर को ही आत्मा जान लेता है तब उसे मैं मेरे पन का भाव उत्पन्न होने लगता है। इस "अहंम्" भाव से ही वह बन्धन में बंध कर अनेक प्रकार के शरीर कर्मानुसार धारण करता है। वह आत्मा अपने को शरीर से अलग समझे तो शरीर के किये हुए कर्म उस आत्मा पर आरोपित न हों और वह उन का फल भोगनेके लिए शरीर धारण न करे। वह तो शरीर (इन्द्रियों से) जनित कर्मों को ही भोगने के लिए शरीर धारण करता है। किन्तु वास्तव में वह अजन्मा, सत्य, निर्गुण, निर्विकार तथा स्वतन्त्र है। प्रकृति, सत्व, रज, तम के गुणों से मिल कर ही वह स्वतन्त्र आत्मा शरीर धारण कर के परतन्त्र सा प्रतीत होने लगता है।

किन्तु हे युधिष्ठिर ! भगवान् में जीवों के समान यह अभिमान नहीं होता है। किसी से द्वेष भाव नहीं रखते। वे जीवों को दण्ड भी देते हैं तो उनके कल्याण के लिए दण्ड देते हैं। जैसे माता पिता अपने पुत्र को कोई दण्ड या ताड़ना करते हैं तो उसके भले के लिए ही करते हैं किसी द्वेष भाव में नहीं।वेयही सम्बन्ध परमात्मा तथा जीवात्मा का है। जब जीवात्मा कुमार्ग पर चलने लगता है तो उसे ताड़ना कर के सही मार्ग पर लाते हैं। यह ताड़ना भी उन्हीं जीवों को देते हैं जिन पर उनकी अति कृपा होती है।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हे राजन् ! जो भी प्राणि उन्हें किसी भी भाव से, चाहे मित्र भाव से चाहे शत्रु भाव से, चाहे दास्यभाव से, चाहे भक्ति भाव से, चाहे प्रेम भाव से भजे उन सब को एक सा ही फल देते है। क्यों कि बैर भाव से भजन वाला प्राणी सदाशत्रु भाव रखने के कारण वह उन्हें एक क्षण को भी नहीं भूलता। सोते, जागते, खाते, पीते, उसका मन उन्हीं में लगा रहता है इस-शत्रुभाव से भी वह उन्हें उसी प्रकार प्राप्त करता है जैसा भक्ति भाव अथवा प्रेम भाव से उनकी प्राप्ति होती है। वल्कि शत्रुभाव से और भी अधिक ध्यान रहता है। इसी कारण भक्त भक्ति से भगवान को प्राप्त करते हैं। गोपियों ने प्रेम से, कंस ने भय से, शिशुपाल दन्तवक्र ने शत्रुभाव से, तुम लोगों ने स्नेह से, हम लोगों ने भक्ति भाव से इन भगवान् श्री कृष्णचन्द्र में अपना मन लगाया है। किन्तु हे युधिष्ठिर ! राजा बेन तो इन में से किसी श्रेणी में नहीं था। इस लिये उसकी दुर्गति हुई।

हे धर्मराज ! शिशुपाल तथा दन्तवक्र ये दोनों तो भगवान् विष्णु के पार्षद थे। उन्होंने तो शाप वश मृत्युलोक में यह शरीर धारण किया था।

धर्मराज युधिष्ठिर बोले—हे देवर्षि ! भगवान् के पार्षदों ने किस अपराध के कारण यह शरीर धारण किया वह कृपा कर सुनाइये।

नारदजी बोले—हे धर्मराज़ ! एक दिन ब्रह्मा जी के पुत्र सनकादिक भगवान् विष्णु का दर्शन करने के लिए उनके बैकुण्ठधाम में गये वहाँ उन्हें न पहिचान कर जय विजय नामक पार्षदों ने उन्हें अन्दर जाने से रोक दिया तब उन ब्रह्मज्ञानी मुनियों उन्हें शाप दिया कि हे दुष्टो ! तुम भगवान् के नित्यधाम में रह कर भी आसुरी भाव रखते हो तुम दोनों मृत्युलोक में जा कर असुर हो जाओ। उनके शाप से यह दोनों जय, विजय पहले जन्म में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु महाबली दैत्य दिति के पुत्र हुए फिर त्रेतायुग में रावण तथा कुम्भकरण हुए और अब तुम्हारे मौसेरे भाई शिशुपाल तथा दन्तवक्र हुए।

युधिष्ठिर बोले—हे भगवन् ! हिरण्यकशिप अपने पुत्र प्रहलाद से द्वेष क्यों करते थे। प्रह्लाद जी भगवत् भक्त कैसे हो गये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ दूसरा अध्याय ॥

दोहा—सुन कर बध हिरण्याक्ष का, स्वजन रहे बिलखाय।
हिरण्यकशिपु धरि धीर मन, रह्यौ उन्हें समझाय॥

नारदजी बोले—हे धर्मराज ! बाराह भगवान् ने पाताल लोक से पृथ्वी लाते समय हिरण्याक्ष को मार डाला था। अपने भाई के मरने पर हिरण्यकशिपु को बड़ा क्रोध आया और भगवान विष्णु से भाई का बदला लेने की प्रतिज्ञा की। उसने अपना भयंकर त्रिशूल उठा कर अपने राक्षसों शम्बर, रवक्ष, शतबाहु हयग्रीव, नमुचि, पुलोमा, विप्रचित आदि को सम्बोधित करके कहा—हे दैत्यो ! तथा दानवो ! तुमको पता होना चाहिये कि मेरे भाई का वध करने वाला विष्णु है उसका बध करना परमावश्यक है। वह देवताओं से मिल कर हमारा नाश करता है। देवता लोग उसकी स्तुति विनती करते रहते हैं अतः वह उन्हीं का पक्ष लेता है। तुम लोग मृत्यु-लोक में जाकर ब्राह्मण यज्ञ करने वाले, गौ, ऋषि, भजन पूजा करने वाले जो उस विष्णु का भजन करते है तथा यज्ञों द्वारा उसे भोजन देते हैं उन्हें नष्ट करदो जब उसे भोजन न मिलेगा तो वह स्वयं भूखा मर जायगा जब वह मर जायगा तब देवता स्वयं उसके बिना मर जाँयगे।

राक्षस तथा दैत्य तो ऐसा ही चाहते रहते हैं उन्होंने दैत्यराज हिरण्यकशिपु की आज्ञा शिरोधार्य करके पृथ्वी-तल पर खोज कर धर्म कर्म करने वालों को मारने लगे। नगर, ग्राम, गौ, खेत आदि में आग लगा कर नष्ट करने लगे।

हे राजन ! हिरण्यकशिपु ने अपने शोकाकुल परिवार को बड़ी युक्ति से सान्त्वना दी।

हिरण्यकशिपु बोला—हे माता, बहू, तथा पुत्रो ! तुम लोग भाई हिरण्याक्ष की मृत्यु पर शोक मत करो। वह महाबली था। उसने बाराह रूप धारी मायावी विष्णु से महा भयङ्कर युद्ध किया था। वह वीरगति को प्राप्त हुआ है जो बड़े सौभाग्य से प्राप्त होती है। यह शरीर अनित्य व नाशवान है जीवात्मा का स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है आत्मा को ही शरीर समझना अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

जीवात्मा संसार चक्र में भटकता रहता है। इस विषय में मैं तुम्हें एक इतिहास सुनाता हूँ।

ऊशीनर देश में सुयज्ञ नाम का एक बड़ा प्रतापी तथा यशस्वी राजा था। युद्ध में उसे शत्रुओं ने मार डाला। उसके मृत शव को लेकर उसकी रानियाँ तथा कुटुम्बी रोने लगे। उनके विलाप को सुन कर वहाँ यमराज बालक का वेष रखकर उनके निकट आये और बोले–

यमराज ने कहा–अरे! बड़े अचम्भे की बात है कि तुम लोग मुझसे सब अवस्था में बड़े होकर भी इतना विलाप कर रहे हो। नित्य मरना जीना देख कर भी इतने विवेक हीन हो रहे हो। अरे यह जहाँ से आया था वहीं चला गया। एक दिन तुम सबको भी वहीं जाना है। फिर इसके लिये इतना क्यों शोक करते हो? अरे! तुम मुझे तो देखो, मेरे माँ बाप सब मर कर चले गये किन्तु हम तो फिर भी आनन्द से फिरते हैं। हमें कोई चिन्ता नहीं। जिस ईश्वर ने उत्पन्न किया है वही ले लेता है भाग्यवश तिजोरी में रक्खी हुई वस्तु चली जाती है और बाहर पड़ी हुई बस्तु भी नहीं खोती है।

हे रानियो! सब की मृत्यु तथा जन्म पूर्व जन्म के कर्मानुसार होती है। यह मृत्यु तथा जन्म शरीर के ही होते हैं उस आत्मा की मृत्यु तथा जन्म नहीं होता है। वह तो उस शरीर को इस प्रकार त्याग देता है जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग देता है तथा नया जन्म इस प्रकार धारण कर लेता है जैसे मनुष्य नवीन वस्त्र धारण करता है। उसका सम्बन्ध शरीर से तभी तक रहता है जब तक वह उस शरीर में रहता है। वैसे वह शरीर से ऐसे ही अलग है जैसे काष्ट में रहने वाली अग्नि काष्ट से अलग होती है।

अरे मूर्खों! वह सुयज्ञ नाम का शरीर पड़ा हुआ है किन्तु इसका बोलता प्राणी चला गया है। वह तुम्हें पहिले भी दृष्टि नहीं आता था। और अब भी नहीं आ रहा है। यह आत्मा उस शरीर से अलग है। वह पञ्चभूत इन्द्रिय तथा मन से युक्त होकर अनेकों प्रकार के शरीर धारण करता है। जब उसे ज्ञान हो जाता है तब वह मुक्त भी हो जाता है। इस

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लिये तत्वज्ञानी इस नाशवान् शरीर के लिए कभी शोक नहीं करते हैं।

एक जङ्गलमें एक बहेलिये ने एक कुलिङ्ग पक्षी की मादा को जालमें फँसा लिया। उस मादा के फँसने पर वह नर रोने तथा पछताने लगा कि हाय अब मादा के मरजाने पर मैं कैसे रहूँगा। इसके नन्हे २ बच्चे कैसे पालूँगा? इसी समय व्याधाने एक तीर उस नर कुलिंग में भी मारा और वह भी मर गया।

रे मूर्खों! उस कुलिङ्ग की भाँति तुम सब भी मृत्यु के मुख में जाने वाले हो फिर भी मरे हुओं का शोक करते हो।

हिरण्यकशिपु बोला—हे माता! उस छोटे बालक की ऐसी ज्ञान भरी बात सुन कर सब का शोक दूर होगया और सब ने उशीनर नरेश सुयज्ञ की अन्त्येष्टि किया की। इतना कह कर वह बालक अन्तर्ध्यान हो गया। इस लिये तुम भी भाई हिरण्याक्ष का शोक न करो।

नारदजी बोले—हे राजन्! हिरण्यकशिपु की बातें सुन कर माता दिति तथा सब पुत्रों का शोक दूर हो गया।

॥ तीसरा अध्याय ॥

दो०—मारन हित निज शत्रु को, कठिन तपस्या कीन्ह।
ब्रह्माजी प्रमुदित भये, मन चाहा वर दीन्ह॥

नारद जी बोले—हे राजा युधिष्ठिर! हिरण्यकशिपु अजर अमर होने का विचार कर के भगवान् विष्णु पर विजय प्राप्त करने के लिए मन्दराचल पर्वत की घाटी में जा कर दारुण तप करने लगा। वह एक पैर के अगूँठे से पृथ्वी पर खड़े हो कर आकाश की ओर अपने हाथ उठा कर ऊपर की ओर देखता हुआ खड़ा हो गया। उस की जटायें प्रलयकाल के समान चमकती थीं। जब वह तपस्या में लग गया तब देवता लोग अपने अपने पदों पर सुख पूर्वक रहने लगे। तपस्या करते हुए हिरण्यकशिपु के शिर से धुएँ की लपट निकलने लगीं। उसके धुएँ से तीनों लोक भर गए, और नदी तथा समुद्र खोलने लगे। पृथ्वी डगमगाने लगी। तारे टूटने लगे और दशों दिशाओं में अग्नि की लपट फैल गई।

हिरण्यकशिपु की तपस्या के कारण स्वर्गलोक के देवता भी घबड़ा

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उठे तथा वे ब्रह्माजी के पास गए।

देवता बोले—हे जगत्पिता ! हिरण्यकश्यप के तप से तीनों लोक संतप्त हो रहे हैं। वह अजर अमर होने के लिये घोर तप कर रहा है। उस का विचार ब्रह्मा का पद लेने का है। वह अपने प्रभाव से बराबर जगत्की सृष्टि करना चाहता है। तथा आप के सत्यलोक में निवास करना चाहताहै। जैसा आप उचित समझें करें। हे जगत्पिता ! आप का सर्व श्रेष्ठ पद यदि उस दैत्य के हाथ में चला गया तो सज्जनों पर घोर संकट आ पड़ेगा।

हे युधिष्ठिर ! देवताओं के ऐसे वचन सुन कर ब्रह्मा जी भृगु तथा प्रजापतियों को साथ ले कर हिरण्यकशिपु के पास गये। वहाँ पर दीमक मिट्टी घास से ढका हुआ उस का शरीर देखा। उस की त्वचा तथा माँस मेदको चीटियाँ चाट गई थीं। वह अपने तप के तेज से तीनों लोकों को तपा रहा था। ब्रह्माजी ने कहा—वत्स ! हिरण्यकश्यप तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गई अब उठो। मैं तुम्हें वर देने के लिये यहाँ आया हूँ। अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहो वह वर माँग लो। तुमने देवताओं के सौ वर्ष तक बिना जल पिये तपस्या की है। हे दैत्य शिरोमणि ! तुमने अपनी तपस्या से मुझे प्रसन्न कर लिया है। तुम जो वर माँगोगे वही वर तुम्हें दूँगा। केवल तुम्हें अमर नहीं कर सकता हूँ।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर ! ब्रह्माजी ने इतना कह कर उसके मिट्टी के ढेर पर अपने कमण्डल का जल छिड़क दिया। वह दैत्य उस ढेर में से ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे अग्नि जल उठती है। उस का शरीर युवा पूर्ण अवयवों वाला तथा बलिष्ठ हो गया। उसने आकाश में ब्रह्माजी को खड़े हुए देखा तब हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और गद्‌गद् कंठ से पुलकित होकर आँसू बहाते हुये बोला—हे भगवान् ! इस सृष्टि के उत्पन्न, स्थित तथा प्रलय करने वाले आप ही हैं। आप रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण रूप धारण करते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपको मन इन्द्रिय तथा बुद्धि से भी नहीं जान सकते हैं। आप ही पंचभूत आदि महतत्व हैं। आप अनादि अनन्त तथा सर्वज्ञ हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे वह वर दीजिये कि आप के उत्पन्न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किये हुये किसी भी प्राणी से अर्थात् मनुष्य, पशु, पत्ती, देवता, दैत्य, नाग आदि से मेरी मृत्यु न हो सके। भीतर, बाहर, दिन तथा रात्रि में किसी भी जीव से किसी भी हथियार से, पृथ्वी तथा आकाश में कहीं भी मेरी मृत्यु न हो सके। युद्ध में मुझे कोई जीत न सके। मैं सब प्राणियों का एक छत्र सम्राट होकर राज्य करूँ। इन्द्रादि देवता मेरे सामने न टिक सकें। तपस्वियों तथा योगियों को जो ऐश्वर्य प्राप्त हैं वह मुझे भी प्राप्त हों।

—❀—

॥ चौथा अध्याय ॥

हिरण्यकशिपु के अत्याचारों की वृद्धि तथा प्रहलाद का प्रादुर्भाव।

दो०—हिरण्यकश्यिप के भयौ, सुत सुज्ञानी एक।
प्राणन का भय त्याग के, राखी अपनी टेक॥

ब्रह्माजी बोले—बेटा! मैं तुम्हें मुँह माँगा वर देता हूँ तुमने जो वर माँगे हैं वे अति दुर्लभ हैं किन्तु फिर भी तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने सब वर दे दिये हैं। ब्रह्माजी से वर प्राप्त कर के हरिण्यकशिप ने उनकी पूजा की और वह अपने नगर को चला आया। ब्रह्माजी से वर प्राप्त करके उसने अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने का विचार किया और तीनों लोकों में देवता, असुर, नाग, गन्धर्व, ऋषि, पितर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस आदि सब को जीत लिया। उसने लोकपालों की शक्ति को भी छीन लिया। इन्द्र को हरा कर स्वर्ग में वास करने लगा। अमरावती का एक छत्र सम्राट होकर महामनुस्वी हरिण्यकशिपि स्वतन्त्रतासे बिहार करने लगा। देवता लोग उनके चरणों की बन्दना करते थे। मतवाली मदिरा में वह मस्त रहता था। उनकी आँखें क्रोध में चढ़ी रहती थीं। शारीरिक मानसिक तथा योगबल में उसके समान कोई नहीं था। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के अतिरिक्त सभी लोकपाल उसकी सेवा करते थे। गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा अप्सरायें उसकी स्तुति करते थे। वह बड़ी २ दक्षिणा वाले यज्ञ करता था। यज्ञों की आहुति स्वयं ही लेता था। सारी पृथ्वी पर उस का राज्य था। धरती बिना जोते बोये ही अन्न देती थी। ऋतुयें फलती फूलती थीं, उसके भय से समुद्र तथा आकाश विचित्र वस्तुयें प्रदान करते

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

थे। उस दैत्यराज के कठोर शासन से सभी घबड़ा उठे। उन्होंने भगवान की आराधना की। तब देवताओं को यह आकाशवाणी हुई, अरे देवताओ! डरो मत। अभी कुछ दिन की प्रतिक्षा करो। मैं इस दुष्ट दैत्य के कर्त्तव्यों को भली प्रकार जानता हूँ। मैं इसका शीघ्र ही नाश करूँगा। जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म तथा मुझ से प्राणी द्वेष करने लग जाता है तब उस का शीघ्र ही विनाश हो जाता है। यह अपने पुत्र प्रहलाद से जब शत्रुता करेगा तब मैं इसे अवश्य ही मार डालूँगा।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। उन में प्रहलाद सब से छोटे भगवद्भक्त सत्य प्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय थे। वे प्रजा को भाई तथा पुत्र के समान मानते थे। प्रहलाद ने बचपन में ही भगवद्भक्ति में अनुराग लगा दिया था। भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरणों में उन का अटूट प्रेम था। किन्तु दुष्ट हिरण्यकशिपु भगवान् विष्णु से शत्रुता रखने के कारण उन के भजन से रुष्ट रहता था। अपने पुत्र को अपराधी मान कर वह उन्हें दण्ड देने पर उतारू हो गया।

युधिष्ठिर जी बोले—हे नारद जी! उस हिरण्यकशिपु ने अपने धर्मात्मा पुत्र प्रहलाद से क्यों बैर किया? और उसने उसको क्यों मार डालना चाहा? कृपा कर आप मुझ से कहिये।

—❀—

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

हिरण्यकशिपु द्वारा प्रहलाद के मारने का प्रयत्न करना

नारदजी बोले--हे धर्मराज! भगवान् शुक्राचार्य दैत्यों पर क्रोधित थे उनके पुत्र शंड और अमर्क प्रहलाद को तथा अन्य दैत्योंके बालकों को पढ़ाते थे। प्रहलाद गुरुजी के पाठ को याद करके उन्हें सुना देते थे किन्तु उन का मन किसी और ही वस्तु में रहता था। एक दिन हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र को गोद में बिठा कर उससे पूछा कि तुम्हें कौन सी बात उत्तम लगती है। प्रहलादने कहा-हेपिता जी! मुझे तो यह संसार अच्छा नहीं लगता। यह झूँठा प्रपंच है। इस सब को छोड़ कर बन में जाकर भगवान् का भजन करना ही अच्छा लगता है।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नारद जी बोले--प्रहलाद की ऐसी बात सुन कर हिरण्यकशिपु हँस पड़ा और बोला—बच्चों की भली प्रकार देख रेखन होने पर उन की बुद्धि ऐसे ही बिगड़ जाती है। मालूम होता है कि गुरूजी के यहाँ वैष्णव ब्राह्मण छिपे रहते हैं। उन्होंने इस बच्चे को बहकाया है। दैत्यराज ने पुरोहितों को समझा कर प्रहलाद को उत्तम शिक्षा देने का आदेश दिया। पुरोहितों ने प्रहलाद को पुचकार कर पूछा—बेटा! तुम्हारी यह उल्टी बुद्धि कैसे हो गई। तुमको किसी ने बहकाया है अथवा स्वयं ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है।

प्रहलाद ने कहा—हे गुरुदेव। मनुष्य भगवान् की माया में मोहित हो कर अपना तथा पराये का भेद मानते हैं। जब उन भगवान् की कृपा होती है तब मनुष्य की मैं, मेरे की पाशविक बुद्धि नष्ट हो जाती है। आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होने पर वह अपनें पराये का भेद भूल जाता है आप लोग मेरी बुद्धि को बिगड़ी समझते हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। मेरा चित्त स्वयं ही संसार से उठ कर परः ब्रह्म परमात्मा की ओर जा रहा है।

नारदजी बोले—भक्त प्रहलाद के ऐसे बचन सुनकर बेचारे पुरोहित डर गये और उस बच्चे को डराने के लिए बेंत ले कर धमकाने लगे। और बोले—यह दुर्बुद्धि दैत्यकुल में विष्णुरूपी काँटा कहाँ से उत्पन्न हो गया। विष्णु इस दैत्य वंश के लिए कुठार के समान हैं और यह बेंट के समान है। गुरुजनों ने उसे साम, दाम, दण्ड, भेद सब प्रकार से समझाया है। तब वे उसे उसकी माता के पास ले गये। माता ने उसे नहला धुला कर वस्त्राभूषणों से सजा दिया। तब सेवकगण प्रहलाद को पिता के पास ले गये। हिरण्यकशिपु ने उसे कंठ से लगा कर आशीर्वाद दिया तथा गोद में बैठाल कर पुत्र से पूछने लगा।

हिरण्यकश्यप बोला—बेटा! तुमने इतने दिनों की शिक्षा में कौनसी नई बात सीखी है वह हमें सुनाओ?

प्रहलादजी ने कहा—हे पिताजी! विष्णु भगवान की भक्ति नौ प्रकार से होती है। उनके गुण, लीला, नाम आदि उनका कीर्तन, उनके रूप, गुण, नाम का स्मरण उनके चरणों की सेवा, अर्चन, वन्दना तथा पूजा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

करना, दास्य तथा सरल भाव से पूजा करना तथा आत्म निवेदन कर देना। इस तरह नौ प्रकार की भक्ति मानी जाती है। मैंने अभी तक उसीका अध्ययन किया है। गुरूजी ने मुझे यह नहीं सिखाया है। अपने पुत्र प्रहलाद की यह बात सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध के मारे तिलमिला उठा और गुरु पुत्र से बोला—अरे दुष्ट ब्राह्मण! तू ने इस बच्चे को कैसी व्यर्थ की शिक्षा दी है। तू ने छिपे २ मित्र भाव दिखा कर शत्रु का काम किया है। गुरु पुत्र ने कहा—आपका यह पुत्र मेरे बहकाने से ऐसा नहीं कर रहा हैं। यह इसकी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि है। गुरूजीके ऐसे उत्तर देने पर हिरण्यकशिपु ने पूछा—रे प्रहलाद! यह खोटी बुद्धि तुमको किसने दी है?

प्रहलाद जी बोले—हे पिताजी! संसार के मनुष्य इन्द्रियों के वश में होने के कारण विषयासक्त हो रहे हैं। उनके भोग के लिये संसार रूपी नर्क में पड़े हुए हैं। यह विषय भोग किसी के सिखाने से थोड़े ही आते हैं अपने आप स्वयं प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार भगवत् प्रेम भी स्वयं ही पूर्व कर्मानुसार प्रकट होता है। यह किसी के सिखाने से नहीं आता है। जब उसके पापों के मल धुल जाते हैं तब हृदय में स्वयं प्रकाश हो जाता है। जिस का मन एक बार भगवान् के चरणों में लग जाता है। उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। किन्तु जिन्होंने तनिक भी भगवान् के चरणों की धूल का स्पर्श नहीं किया है उन्हें अनेक कर्म करने पर भी भगवत् प्राप्ति नहीं होता है।

प्रहलाद जी के ऐसे बचन सुन कर हिरण्यकशिपु क्रोध से तिलमिला उठा और गोद में बैठे हुए प्रहलाद जी को पृथ्वी पर पटक दिया। उसने दैत्यों को बुलाकर कहा कि तुम इसे शीघ्र मार डालो। मेरे पुत्र रूप में यह मेरा शत्रु विष्णु ही आया है। यह विष्णु की पूजा करता है। इस कृतघ्न ने मेरे पालन करने पर मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया है। रोग को होते ही यदि नष्ट नहीं किया जाता है तो यह बढ़कर घातक हो जाता है। शरीर के किसी अङ्ग में यदि खराबी आजावे तो उसे अवश्य काट कर फेंक देना चाहिये। यह पुत्र रूप में मेरा शत्रु है। इसको खाने, पीने, सोने, आदि किसी भी उपाय से मार डालो। अपने राजा की यह बात सुन कर दैत्यगण त्रिशूल ले ले कर प्रहलाद पर टूट पड़े। उनके मर्मस्थलों पर चोट

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करने लगे। किन्तु प्रहलादजी का चित्त तो मन,वाणी तथा कर्म से सर्व शक्ति मान परब्रह्म में लीन था। इसलिए उन दैत्यों के सभी प्रहार व्यर्थ रहे। प्रहलाद के शरीर पर कहीं भी चोट न आई। यह देखकर हिरण्यकशिपु को अति चिंता हुई उसने प्रहलाद को मारने के लिए मतवाले हाथियों के नीचे कुचलवाया। विषधर सर्पों से डसवाया। पर्वत से नीचे गिरवाया। विष दिया गया। बर्फ में दाबा गया, दहकती अग्नि में जलाया गया। कृत्या नाम की राक्षसी से जलवाया गया किंतु भगवत् परायण भक्त प्रहलादका बालभी बाँका नहीं हुआ। अब तो हिरण्यकशिप को और भी चिंता हुई। प्रहालाद के मारने का कोई भी उपाय न सूझा। वह सोचने लगा—मैंने मारनेके अनेकों उपाय किए किंतु यह अपने प्रभाव से बचता ही गया। यह बालक समझदार तथा निर्भय भावसे मेरे पास रहता है। अवश्य ही इसमें कोई अपूर्व सामर्थ है। बड़ा होने पर यह मेरी इन करतूतों को याद रखकर मुझसे शत्रुता करेगा। इसकी शक्ति अथाह है। अवश्य ही यह मेरा कालहै ऐसा कहकर हिरण्यकशिप अति चिंताकुल होगया। दैत्यराज की यह दशा देखकर गुरु पुत्र शण्ड तथा अमर्क ने एकान्त में समझाया—हे राजन्! आप चिन्ता न करें। हमारे पिता शुक्राचार्यजी के आने तक इसको वरुण पाश में बाँध कर अपने पास रक्खो। सम्भवतः हमारे उपदेश तथा गुरुजनों की सेवा से आगे इसकी बुद्धि सम्हल जावे। हिरण्यकशितु ने गुरु पुत्रों की यह बात सुन कर प्रहलाद को फिर पाठशाला में भेज दिया। गुरु पुत्र अर्थ, धर्म, काम इन तीनों पुरुषार्थों की शिक्षा प्रहलाद को देने लगे।

एक दिन गुरु जी कहीं बाहर चले गये। तब प्रहलाद जी ने सब असुर बालकों को अपनी मधुर वाणीसे अपने पास बुला लिया और भक्ति का उपदेश करने लगे। —❀❀—

॥ छटवाँ अध्याय ॥

प्रहलादजी का असुरों के बालकों को उपदेश देना

प्रहलादजी बोले—हे बन्धुओ! यह मनुष्य जन्म इस संसार में बड़े उत्तम कार्यों से मिलता है। इसी मनुष्य योनि में भगवान् की प्राप्ति हो

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri.

हो सकती है। किन्तु इस मनुष्य शरीर का कोई ठिकाना नहीं है। कब यह काल का ग्रास हो जावे। इस लिये बुद्धिमानों को भजन पूजन के लिये वृद्धावस्था का इन्तजार नहीं करना चाहिये। जब समय मिले तभी इस भगवत् प्राप्ति के साधन को करना चाहिये। बालकपन के बीस वर्ष खेल कूद में निकल जाते हैं। बुढ़ापे के अन्तिम बीस वर्ष दुर्बलता के कारण व्यर्थ हो जाते हैं। केवल युवावस्था के कुछ वर्ष शेष रहते हैं। इन वर्षों में मनुष्य आधा काल सोने में निकाल देता है तथा आधा काल स्त्री बच्चों के पालन पोषण उद्योग धन्धों तथा विषय भोगों में समाप्त कर देता है। भगवत् चिन्तन का उसे कोई भी समय नहीं मिला और उसने यह अमूल्य मनुष्य जीवन फिर जिसका पाना अति दुर्लभ है व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। यह संसारिक सुख तो जीव को प्रारब्ध वश प्रत्येक योनि में मिलते रहते हैं। किन्तु भगवत् प्राप्ति इसी मनुष्य योनि में होती है। इस लिये बुद्धिमान मनुष्य को अपने कल्याण का उपाय इसी मनुष्य योनि में करना चाहिये।

हे बालको ! जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं हैं वह गृहस्थी के जंजाल में फँस जाता है। जिस प्रकार रेशम का कीड़ा स्वयं अपने को अपने ही उत्पन्न किये हुए जाल में फँसा लेता है इसी प्रकार यह अपने ही किये कर्मों में स्वयं फँस जाता है। इस लिये तुम विषयासक्त दैत्यों का साथ छोड़ कर भगवान् का भजन करो। हे बन्धुओ ! भगवत् प्राप्ति के लिये कोई विशेष उपाय की आवश्यकता नहीं है। वे सब प्राणियों में व्याप्त रहते हैं। महतत्व, पञ्चभूत, तन्मात्राऐं तथा सम्पूर्ण प्रकृति में एक ही अविनाशी परमात्मा व्यापक है। उसकी माया के द्वारा सब उसे भूले रहते हैं तुम लोग आसुरी प्रकृति छोड़ कर सब पर दया करो। सब को भलाई करो। भगवान् तुम्हें अवश्य प्राप्त हो जावेंगे।

विशुद्ध भगवत् धर्म मैंने नारदजी के मुँह से पहले पहल सुना था।

दैत्यों के बालक बोले—हे प्रहलाद जी ! अभी आपकी छोटी अवस्था है। आपको नारद जी कब मिले थे यह सब हमें समझा कर कहिये जिससे हमारी शंका दूर होवे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सातवाँ अध्याय ॥

❀ प्रहलाद जी का माता के गर्भ में नारद जी द्वारा उपदेश प्राप्त करना ❀

नारदजी बोले—हे धर्मराज युधिष्ठिर ! जब उन असुरों के बालकों ने प्रहलादजी से इस प्रकार प्रश्न किया तब उन्हें मेरी बात का स्मरण हो आया। वे मुस्कराते हुए बोले–हे प्रिय बन्धुओ ! जिस समय मेरे पिताजी तपस्या के लिए मन्दराचल प्रर्वत पर चले गये थे, तब इन्द्रादि देवताओं ने अवसर पाकर हमारी नगरी पर आक्रमण कर दिया और लूट खसूट करने लगे। यहाँ तक कि राजमहल से देवराज इन्द्र ने मेरी माता कयाधु को भी बलात् अपने साथ ले लिया। मेरी माता कुररी की भँति रोती हुई इन्द्र के साथ जा रही थी। मार्ग में दैव वश नारदजी से भेंट हो गई। इन्द्र के इस अत्याचार को देख कर नारद जी ने इन्द्र से कहा–हे देवराज! इस निरपराध नारी को कहाँ लिये जाते हो। ऐसा कर्म तुम्हें उचित नहीं है। यह सती साध्वी तिरस्कार के योग्य नहीं है। इसे तुम तुरन्त छोड़ दो। इन्द्र बोले–हे भगवन् ! इसके गर्भ में हिरण्यकशिपु का महा प्रभावशाली पुत्र असुर रूप में विद्यमान है जब इसके वह बालक उत्पन्न हो जावेगा तब मैं उसे मार कर इसे छोड़ दूँगा।

नारदजी बोले–हे देवराज ! तुम उस बालक को मारने में समर्थ नहीं हो। इसके गर्भ में महाबली भगवत् प्रेमी महात्मा बालक है। नारद जी की यह बात सुन कर इन्द्र ने मेरी माता को छोड़ दिया। उसके गर्भ में भगवत् भक्त बालक होने कारण उसने बड़ी भक्तिभाव से मेरी माता को परिक्रमा की और अपने लोक को चला गया। मेरी माता वहीं नारद जी के आश्रम पर रहने लगी और वहाँ पर नारदजी का उपदेश ग्रहण करने लगी। मैं गर्भ में ही नारद जी से भगवत् धर्म को सुनता रहता था। देवर्षि नारद ने भगवत् धर्म के विशुद्ध रहस्य तथा शुद्ध ज्ञान का उपदेश मेरी माता को दिया। मेरी माता तो उस उपदेश को भूल गई किन्तु नारदजी की कृपा से मुझे वह अभी तक याद है। हे बन्धुओ ! तुम यदि मेरे में विश्वास करो तो तुम्हें भी वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri, Funding by IKS.

और भगवान् की प्राप्ति हो सकती है। हे मित्रो ! इस शरीर के छः विकार हैं एक जन्म, अस्तित्व की अनुभूति, बुद्धि, परिणाम, जय तथा विनाश। किन्तु आत्मा का इन छःहों विकारों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिये आत्मा शरीर की अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण है। १ शरीर अनित्य है। आत्मा नित्य है। २ शरीर विनासी है आत्मा अविनाशी है। ३ शरीर मलिन है आत्मा शुद्ध है। शरीर अनेक हैं आत्मा एक है। शरीर जड़ है आत्मा चेतन है शरीर आश्रित है आत्मा आश्रय है। शरीर विकारी है आत्मा निर्विकार है। शरीर दूसरे से प्रकाशित होता है आत्मा स्वयं प्रकाश है। शरीर कार्य है आत्मा कारण है। शरीर व्याप्य है आत्मा व्यापक है। शरीर संसक्त है तथा आत्मा असंग है। शरीर आवरण रूप है तो आत्मा निवारण है। शरीर तथा आत्मा में यही भेद है। इसका ज्ञान होने पर मनुष्य मैं मेरे पन के अभिमान से छूट जाता है और आत्मज्ञान से ब्रह्म पद प्राप्त कर लेता है। हे बन्धुओ ! यह सृष्टि आठ तत्वों से बनी है। मूल प्रकृति, महतत्व, अहंकार तथा पाँच तन्मात्राऐं। उसके सत्व, रज, तम, तीन गुण हैं। इन से सोलह विकार उत्पन्न होते हैं। मन सहित इन्द्रियाँ तथा शब्दादि पाँच विषय, सत्रहवाँ पुरुष तत्व और है। इन सब के समुदाय को देह कहते हैं। शरीर स्थावर जङ्गम दो प्रकार का है। इन सब से आत्मा पृथक रूप से रहता है। इसी प्रकार बुद्धि से विचार करने पर भगवत् भक्ति का ज्ञान प्राप्त होता। है सर्व प्रथम तुम लोगों को कर्म बीज नष्ट कर देना चाहिये। निष्काम भाव से कर्म करते हुये भगवान् का चिन्तन करते रहना चाहिये। भगवान् के प्रति प्रेम गुरु की सेवा से महात्माओं के सङ्ग से, कथा वार्त्ता सुनने से, कीर्तन पूजन आदि करने से होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छः शत्रुओं को त्याग देना चाहिये जब मनुष्य भगवतमय हो जाता है तब वह पागल की भाँति उनके प्रेम में कभी हँसता है कभी रोता है। कभी हे नारायण ! जगपते आदि कह कर पुकारने लगता है। इसी को ब्रह्म निर्वाण का आनन्द कहते हैं। इस लिये हे मित्रो ! तुम भी मेरे इन उपदेशों को ग्रहण कर के भगवत् मय हो जाओ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ आठवाँ अध्याय ॥

दोहा—हिरण्यकशिपु सुत बधन को, लीन्हो खड़ग उठाय ।
रक्षा की निज भक्त की, प्रगटे नरसिंह आय ॥

चौपाई—नखसों पेट फारि प्रभु दीन्हों, गोद उठाय भक्त उर लीन्हों ।
देवन ने तब स्तुति कीन्हीं, अभयदान निज भक्तन दीन्हीं ॥

नारदजी बोले—हे धर्मराज युधिष्ठिर ! प्रहलाद जी के इस मर्म स्पर्शी भगवत् धर्म को सुनकर सभी बालक हरे मुरारे गोविन्द प्यारे नाथ नारायण वासुदेव आदि का कीर्तन बड़े उच्च स्वर से करने लगे । उसी समय गुरुजी आगये । उन्होंने जब बालकों की यह दशा देखी तब वे अति भयभीत हो गये और वे घबड़ा कर उसी समय हिरण्यकशिपु के पास गये और यह सारा हाल उसे सुनाया । अपने पुत्र प्रहलाद की भगवान् के प्रति ऐसी बढ़ती भक्ति देखकर तथा साथ ही साथ और भी असुर बालकों में उसका प्रभाव जमता हुआ देखकर हिरण्यकशिपु को अति क्रोध आया उसने प्रहलाद को अपने हाथ से मार डालने का निश्चय किया ।

हिरण्यकशिपु बोला—रे नीच ! तू स्वयं तो बिगड़ताही जारहाहै किन्तु हमारे कुल के सभी बालकों को भी बिगाड़ना चाहता है । तू बड़ा उद्दण्ड तथा ढीठ होगया है । तूने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है । मेरे तनिक से क्रोध करने पर तीनों लोक काँप उठतेहैं किन्तु रे मूर्ख ! तू किसके बल भरोसे पर निडरता पूर्वक मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है ।

प्रहलाद जी बोले—हे पिताजी ! ब्रह्मा से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीटों तक की जो रक्षा करता है उसी परमात्मा के बल भरोसे पर मैं रहता हूँ । उसी ने सम्पूर्ण चराचर जगत को अपने वश में कर रक्खा है । वही समस्त बलों का बल है वह सर्व शक्तिमान काल है । वही प्राण है । वही विश्व का रचने वाला तथा संहार करने वाला है । आप अपने इस आसुरी भाव को छोड़कर उन्हीं भगवान् की शरण में जाओ । इस संसार में सब से बड़ा शत्रु मन है । वही मनुष्य को कुमार्ग में ले जाता है । यदि मारना है तो उस शत्रु को मारो सबके प्रति समत्व भाव रक्खो । जो मनुष्य मद, मत्सर, ईर्ष्या आदि इन छः शत्रुओं को जीत कर अपने को विजयी मान बैठते हैं वे मूर्ख हैं

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हिरण्यकशिपु प्रहलाद के ऐसे बचन सुनकर बोला—रे नीच! अब तेरे सिर पर काल खेल रहा है। इसलिये तू वे सिर पैर की बातें करता है, और मुझ जगत के स्वामी के अतिरिक्त किसी दूसरे का गुण गाता है अब मैं देखता हूँ तेरा वह जगदीश्वर यदि सर्वत्र है तो इस खम्भे में क्यों नहीं दिखाई देता। क्या तुझे तेरा जगदीश्वर इस खम्भे में भी दिखाई दे रहा है। अरे मूर्ख! हमें व्यर्थ में बहकाता है। मैं अभी तेरा सिर उड़ाता हूँ और देखता हूँ कि तेरा वह जगदीश्वर कैसे तेरी रक्षा करता है। मैं भी उसे देखूँ वह मेरे सामने तो आवे।

इतना कहकर क्रोध में भर कर उसने खड्ग खींच लिया और सिंहासन से कूद कर बड़े जोर से खम्भे में घूँसा मारा। उसी क्षण खम्भे में से एक बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ। मानों ब्रह्माण्ड ही फट गया हो। वह घोर ध्वनि लोकपालों सहित ब्रह्मा ने सुनी तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो प्रलय हो जावेगी। वह हिरण्यकशिपु प्रहलाद का वध करने के लिए बड़े जोर से दौड़ा था किन्तु उस घोर शब्द को सुन कर वह घबड़ाया सा इधर उधर देखने लगा। बार बार खम्भे की ओर देखता था लेकिन उसे वहाँ कोई दृष्टि न आया। जब वह खड्ग लेकर फिर प्रहलाद पर झपटा, तो ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए उस खम्भे को फाड़ कर एक बिचित्र रूप धारी भगवान प्रकट होगये। वह स्वरूप न तो पूरा मनुष्य का था और न पूर्ण सिंह का था! जब वह हिरण्यकशिपु उस शब्द करने वाले को खोज रहा था उसी समय खम्भ में से नरसिंह भगवान् निकले वह दैत्यराज सोचने लगा कि न यह मनुष्य है और न पशु है यह कौनसा अलौकिक प्राणी हैं उसी समय नृसिंह भगवान उसके सामने आकर खड़े होगये। उनका रूप अतिभयानक था। उनके पीले पीले नेत्र सोनेके समान चमकतेथे उनकी गर्दनके बाल लहरा रहे थे। पैनी पैनी डाढें धुरे के समान तीखी थीं। उनकी खुली हुई नासिका ऊपर उठे हुये कान तथा मुंह गुफा के समान था उनका विशाल शरीर स्वर्ग को छू रहा था। गर्दन मोटी तथा नाटी थी। चौड़ी छाती तथा पतली कमरथी। सफेद रोहें सारे शरीरपर थे। उनकी सैकड़ों भुजायें आयुधों से युक्त थीं उनके नख बड़े भयङ्कर और तलवार के समान तीक्ष्ण

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

थे। हिरण्यकशिपु सोचने लगा हो न हो महामायावी विष्णु ही मुझे मारने के लिये प्रकट हुआ है। किन्तु यह मेरा बिगाड़ ही क्या सकता है। इतना कह कर दैत्यराज नृसिंह भगवान् पर टूट पड़ा। किन्तु जैसे पतङ्ग आग में गिर कर लुप्त हो जाता है उसी प्रकार यह दैत्य भगवान् के नेत्र में लुप्त हो गया। वह दैत्य बड़े क्रोध से गदा घुमाता हुआ नृसिंह भगवान् पर चोट करने लगा नृसिंह भगवान् ने झटपट उस दैत्य को गदा सहित ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है। उस दैत्य से भगवान् खिलवाड़ करने लगे। वह दैत्य उन के हाथ से छूट गया। उस समय लोकपाल तथा देवता लोग आकाश में छिप कर युद्ध देखने लगे। जब उन्होंने हिरण्यकशिपु को भगवान् के हाथ से छूटा हुआ देखा तब वे अति भयभीत हुए। उस दैत्य ने भी समझा कि नृसिंह ने मुझे डर कर छोड़ दिया है। उस का साहस चौगुना हो गया और ढाल तलवार ले कर दौड़ पड़ा। वह पैंतरे बदल कर प्रहार करने लगा। तब नृसिंह भगवान् ने बड़े भयङ्कर स्वर में अट्टहास किया। उस दैत्यराज की आँखें भय के कारण बन्द हो गईं। तब झपट कर नृसिंह भगवान् ने ऐसे पकड़ लिया जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ लेती है। अब दैत्य भगवान् के पंजे में पड़ कर छटपटाने लगा। नृसिंह भगवान् ने सभा के द्वार पर ले जाकर इसे अपनी जाँघ पर रख लिया। तथा क्रीड़ा करते हुए उसे अपने नखों से ऐसे फाड़ने लगे जैसे गरुड़ विषधर सर्पों को फाड़ डालता है। उस समय उन की भयङ्कर विकराल आकृति की ओर देखा नहीं जा सकता था। वे अपनी जीभ को चाट रहे थे। रक्त से उन के बाल लाल हो गये थे। उस दैत्य को फाड़ कर पृथ्वी पर पटक दिया। उस समय अनेकों दैत्य अस्त्र शस्त्र ले कर उन पर टूट पड़े किन्तु उन सबों को उन्होंने अपने नखों से मार डाला।

हे युधिष्ठिर ! उस समय की ज्योति से सम्पूर्ण ग्रहों की ज्योति फीकी पड़ गई थी उन की स्वाँस से समुद्र में ज्वार भाटे आने लगे। उनके अट्टहास से आकाश पाताल सारा ब्रह्माण्ड डगमगाने लगा। उन के बढ़ते हुये क्रोध के सामने किसी के जाने का साहस नहीं था। वे नृसिंह भगवान् हिरण्यकशिपु के सिंहासन पर जा कर बैठ गये। जब स्वर्ग

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

देवताओं को हिरण्यकशिपु की मृत्यु का पता चल गया तब पुष्पों की वृष्टि होने लगी तथा ढोल, नगाड़े, मृदङ्ग बजने लगे। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, देवता, ऋषि, पितर, अप्सरा आदि सभी ने आ कर उनकी स्तुति की।

ब्रह्मा बोले—हे जगत् पिता! आप सर्व शक्तिमान हैं। आपके कर्म तथा पराक्रम विचित्र हैं। आप जगत् में व्याप्त रहते हुए भी निर्विकार हैं। मैं आप को नमस्कार करता हूँ।

भगवान् रुद्र बोले—हे भगवन्! आप के क्रोध का समय तो कल्प के अन्त में प्रलय के लिये होता है। यदि आपने इस दैत्य को मारने के लिए क्रोध किया है तो अब वह मारा गया आप का भक्त प्रहलाद आप की शरण में है इसकी रक्षा कीजिये।

इन्द्र ने कहा—हे परमात्मा! आपने हम देवताओं की रक्षा के लिए ही असुर को मारा है हम आपकी शरण हैं हमारा आप को नमस्कार है।

ऋषियों ने कहा—हे परमात्मा! आप तपस्या के बल से ही इस जगत् की रचना करते हैं। उस दुष्ट दैत्य ने तपस्या को बन्द कर दिया था। इसी लिए उसे मार कर आपने तपस्या की रक्षा की है। और हम लोगों को तपस्या करने का आदेश दिया है।

पितृगण बोले—हे परमात्मन्! इस दैत्य ने पिण्डदान बन्द कर दिया था। उसके मरने से अब हमें पिण्ड तर्पण आदि मिलते रहेंगे। हम आप को नमस्कार करते हैं।

सिद्धों ने कहा—हे देव! इस दुष्ट ने हमारी योग सिद्धि छीन ली थी। अब हमें पुनः प्राप्त हो गई। हम आप को नमस्कार करते हैं।

विद्याधरों ने कहा—हे परमात्मन्! इस दैत्य ने हमारी विद्यायें छीन ली थीं अब हमें पुनः प्राप्त हो गईं। हम आपको नमस्कार करते हैं।

नागों ने कहा—हे भगवन्! इस दुष्ट ने मणियों सहित हमारी स्त्रियों को छीन लिया था। अब हमें वे पुनः प्राप्त हो गई हैं हम आपको नमस्कार करते हैं।

मनुओं ने कहा—हे देवाधि देव! इस दैत्य ने हमारी मर्यादाओं का उल्लंघन किया था। इस को मार कर आपने जगत का उपकार किया है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri funding by IKS.

हमें आप आज्ञा कीजिये हम आप की सेवायें करें।

प्रजापति बोले—हे परमात्मन्! इसके भय से हम प्रजा की सृष्टि नहीं कर सकते थे। आपने इसे मार कर संसार का कल्याण किया है हम आप को नमस्कार करते हैं। गन्धर्वों ने कहा हे भगवान्! हम तो आपके नाचने गाने वाले दास हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं।

चारणों ने कहा—हे भगवन्! हम आपकी शरण में है इस दुष्ट को मार कर आपने भक्तों का भला किया है हम आपको नमस्कार करते हैं।

यक्षों ने कहा—हे प्रभो! इस हिरण्यकशिपु ने हमें अपनी पालकी ढोने वाला कहार बना रक्खा था। इसे मार कर आपने हमारा कष्ट दूर कर दिया। हम आप को नमस्कार करते हैं।

किम्पुरुषों ने कहा—हे परमात्मन्! हम लोग तुच्छ किम्पुरुष हैं। इसने भक्तोंको कष्ट दिया था यह इसी लिये मारागया।हम आपको नमस्कारकरते हैं।

बैतालिकों ने कहा—हे भगवन! हम समाजों में जाकर आपके पवित्र यश का गायन किया करते थे और अपना पेट पालते थे। इसने हमारी वह आजीविका बन्द करदी थी। अब वह मर चुका है। अतः हम आपको नमस्कार करते हैं। किन्नरों ने कहा-हे भगवन्! हम किन्नरों से यह दैत्य बेगार में ही काम लेता रहता था। इस पापी को आपने मार कर बड़ी कृपा की है। हम आपको नमस्कार करते हैं। भगवान् के पार्षदों ने कहा-हे भक्त वत्सल! हमने यह आपका अलौकिक रूप आज ही देखा है। यह दैत्य आपका वही पार्षद था जिसे सनकादिक ने शाप दे दिया था आपने उसी का उद्धार करने के लिये उसका वध करके इस योनि से उसे मुक्त किया है।

——

॥ नवाँ अध्याय ॥

प्रहलाद जी द्वारा नृसिंह देव की स्तुति।

नारद जी बोले-हे धर्मराज युधिष्ठिर! इन देवता लोगों की स्तुति से भी जब नृसिंह जी का क्रोध शान्त न हुआ तब स्वयं लक्ष्मी जी को देवताओं ने उन्हें शान्त करने के लिये भेजा किन्तु लक्ष्मी जी उन के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भयंकर रूप को देख कर उसके निकट न जा सकीं। तब ब्रह्मा जी ने निकट ही खड़े हुए प्रहलाद को नृसिंह जी का क्रोध शान्त करने के लिये भेजा। भक्त प्रहलादने नृसिंह भगवान्‌के सन्मुख जाकर हाथ जोड़कर उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। नृसिंह भगवान् ने जब उस नन्हें से बालक को अपने चरणों में पड़ा देखा तो उन्होंने दया वश उस बालक को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उसके सिर पर अपना अभय दायक कर कमल फेरने लगे। भगवान्‌के कर कमलके स्पर्श होते ही प्रहलादके शेष अशुभ संस्कार भी नष्ट हो गये। प्रहलाद को उसी क्षण परमात्मा का साक्षात्कार हो गया। उन के अङ्ग प्रत्यङ्ग पुलकायमान हो गये।

नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। आनन्द के उद्वेग में गद्‌गद् होकर मधुर वाणी से उनकी स्तुति करने लगे।

प्रहलादजी बोले—हे परमात्मन्! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, सिद्धि पुरुष जो निरंतर आपके निकट रह कर गुणगान करते रहतेहैं जब वे ही आप को प्रसन्न नहीं कर सके हैं तो आप मुझ असुर बालक से कैसे प्रसन्न हो सकते हैं। किन्तु हे परमात्मन्! मैं तो यह जानता हूँ कि उत्तम जाति, रूप, बल, विद्या तथा योगादि से आप प्रसन्न नहीं होते हैं, जैसे आप भक्ति से प्रसन्न होतेहैं। मेरी समझ से यदि ब्राह्मण भी भगवान् के चरणों से विमुख हैं तो उससे चाण्डाल ही उत्तम है। भगवन्! आप सत्वगुण में रहते हैं। यह सम्पूर्ण देवता आपके भक्तहैं आप जगत् के कल्याण के लिए ही अवतार धारण करते हैं। जिस दैत्य के बध के लिए आपने क्रोध किया था वह मारा गया अब आप क्रोध को शांत कीजिये। इस दैत्य की मृत्यु से सभी को अति आनंद मिला है। सब आपके आनंदमय स्वरूप के दर्शन की बाट देख रहे हैं। हे भयभंजन! आपने जगत का भय दूर कर दिया है। आपका भयावना मुख, लपलपाती हुई जीभ सूर्य के समान चमकती हुई आँखें, तीक्ष्ण दाढ़ें, आँतों की माला, रक्त से लथपथ आप की गर्दन आप के बिकराल नख, सम्पूर्ण दिशाओं को भयभीत कर रहे हैं। किन्तु मैं आप से तनिक भी भयभीत नहीं हूँ। मैं तो केवल इस भयंकर संसार के चक्र से भयभीत हूँ। मुझे आप अपने चरणों में शीघ्र बुला लीजिये। मैं न जाने कब तक आप के बिना इस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

संसार में भटकता रहूँगा मैं आप की कृपा से शीघ्र ही संसार सागर को पार कर जाऊँगा। आप की माया लिंग शरीर का निर्माण करती है और यह लिंग शरीर ही अविद्या के कारण अनेक कर्म करता हुआ यौनियों में भ्रमण करता है। आप की यह माया मुझे अति दुःख दे रही है। मैंने स्वर्गादि सब सम्पतियाँ देखली हैं। मेरे पिता के तनिक क्रोधित होने पर स्वर्ग की वह सम्पतियाँ उनके सामने लुटती फिरती थीं। अतः मुझे उन सम्पतियों की आवश्यकता नहीं है जिन को आप काल रूप धारण करके ग्रसित कर लेते हैं। मुझे तो आप अपने चरणों में ही ले लीजिये। जिन्हें प्राप्त कर के मैं सौभाग्यशाली हो जाऊँगा। हे प्रभो! जिस समय मेरे पिता ने मेरा वध करने के लिए खड्ग उठा लिया था और मुझ से कहा कि मेरे अतिरिक्त यदि कोई और ईश्वर है तो तुझे बचावे। उस समय आपने ही मुझे बचाया था।

हे भगवन्! यह सब जगत आप ही उत्पन्न करते हैं तथा संहार करते हैं और प्रलयकालीन जल में शयन कर जाते में। जब जल में शेष शैया पर शयन करते हुए आप की योग निद्रा समाप्त हो जाती है तब आप अपनी नाभि से वृहद् कमल प्रगट करते हैं उसी पर ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा जी अपने उत्पत्ति स्थान को जल में रह कर सौ वर्ष तक ढूँढ़ते रहे किन्तु उन्हें आप का विस्तार नहीं पाया। तब आपने ब्रह्मा जी को अपने विराट् स्वरूप का दर्शन दिया और उन्हें सृष्टि रचने के लिये आज्ञा दी। आपने बाराह अवतार ले कर पृथ्वी को धारण किया और हयग्रीव अवतार ले कर वेदों की रक्षा की। आप युगयुग में धर्म की रक्षा के लिये अवतार लेते हैं। आप कलियुग में गुप्त रूप से रहते हैं इसलिए आप को 'त्रियुग' भी कहते हैं।

हे भगवन्! स्तुति कर्मों का समर्पण, सेवा पूजा आप का चिंतन तथा कथाओं का श्रवण और नमस्कार इन्हीं से आप प्रसन्न होते हैं। नारदजी बोले—हे धर्मराज! भक्त प्रहलाद इस प्रकार भगवान् की स्तुति कर के उन के चरणों में झुक गये तब नृसिंह भगवान् का क्रोध शांत हो गया और वे प्रसन्न हो कर बोले—श्री नृसिंह भगवान् ने कहा—हे भक्त वर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रहलाद ! मैं तुम्हारी भक्ति से अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारी इच्छा हो वह वर माँग लो। बिना भक्ति के मेरे दर्शन होना अति कठिन है किन्तु मेरे दर्शन प्राप्त होने पर उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

प्रहलाद जी भगवान् के अनन्य भक्त थे। उन्हें वर का प्रलोभन चक्कर में नहीं डाल सकता था अतः उन्होंने उनसे किसी प्रकार की इच्छा प्रकट नहीं की।

॥ दसवाँ अध्याय ॥

प्रहलाद जी का राजतिलक करना तथा त्रिपुर दहन की कथा।

नारद जी बोले—हे धर्मराज ! प्रहलाद जी की बालक बुद्धि थी किन्तु उनका ज्ञान वृहद् था। वे वरदान को प्रेम भक्ति से उत्तम नहीं समझते थे। उन्होंने भगवान् से मुस्कराते हुए कहा—

प्रहलाद जी बोले—हे भगवन् ! मैं तो जन्म से ही विषय भोगी हूँ। तथा मेरी आसक्ति उन में पहिले से ही विशेष है अब आप से भोगों का वरदान माँग कर उन की और वृद्धि नहीं करना चाहता हूँ। मैं तो विषय भोगों से छुटकारा पाने का ही वरदान चाहता हूँ। आपने वरदान माँगने की जो बात कही है वह स्वार्थी सेवक की तरह है कि स्वार्थी सेवक अपने स्वामी से अपने लिए कुछ माँगे। मैं तो आप की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाला सेवक हूँ। तथा आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। आप मेरे से प्रसन्न हैं इस लिये मेरी कामना पूर्ण करना चाहते हैं, यह तो आप की महान् कृपा है। किन्तु मैं तो केवल आप से यही वर चाहता हूँ कि मेरी सम्पूर्ण कामनायें नष्ट हो जायें और कामना का बीज उत्पन्न ही न हो। हृदय में कामना उत्पन्न होते ही धर्म, धैर्य, श्री, लज्जा, बुद्धि आदि किनारा कर जाते हैं। जब मनुष्य की कामना नष्ट हो जाती है तभी भगवान् की प्राप्ति होती है। मैं आप के चरणों में बार बार नमस्कार करता हूँ।

भगवान् नृसिंह जी बोले—हे बेटा ! तुम्हें किसी वस्तु की कामना नहीं है फिर भी तुम मेरी आज्ञा से एक मन्वन्तर तक इस लोक का राज्य भोगना स्वीकार करो। डरना नहीं मैं ही समस्त प्राणियों में व्याप्त हूँ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तुम सदा मुझे अपने हृदय में देखते रहो। मेरी कथा, लीला श्रवण करते रहो। तत्पश्चात् अपना शरीर त्याग कर मेरे लोक को चले आना।

प्रहलाद जी बोले—हे परमात्मन्! मैं आपसे एक वर और माँगता हूँ कि मेरे पिता अपनी आसुरि बुद्धि से आपको शत्रु समझते थे आप उनको सद्गति प्रदान करें।

भगवान् नृसिंह बोले-हे वत्स! तुम्हारे जैसे मेरे भक्त के प्रताप से तुम्हारे पिता की ही मुक्ति नहीं हुई है बल्कि इक्कीस पीढ़ी तक की मुक्ति हो गई है। भला जिसका ऐसा परम भागवत् पुत्र है उसकी मुक्ति क्यों न होगी। वह मेरे अङ्ग स्पर्श से उसी क्षण मोक्ष को प्राप्त हो गया। हे वत्स! तुम भक्तों में आदर्श भक्त हो। तुम अपने पिता की अन्त्येष्ठि क्रिया करो। तुम्हारे कारण उसे भी उत्तम लोक मिलेंगे। तुम मेरे में मन लगा कर अपना कार्य करो।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! प्रहलादजी ने अपने पिता का अन्तिम संस्कार किया। तब नृसिंह भगवान् तथा ब्रह्माजी आदि देवताओं ने शुक्राचार्य जी के साथ प्रहलाद का राज्याभिषेक किया।

ब्रह्माजी बोले—हे परमात्मन्! यह दैत्य मुझ से वर प्राप्त करके अति शक्ति सम्पन्न होगया था उसका आपने संहार करके जगत् का भय दूर कर दिया है। जो आपका ध्यान करेगा उसके निकट भय न रहेगा।

श्रीनृसिंह जा बोले—हे ब्रह्माजी! आप ऐसे दैत्यों को ऐसा वर न दिया करिये। वे स्वभाव से ही क्रूर होते हैं फिर उन्हें ऐसा वर मिल जाय तो वे अति उग्र तथा उद्दण्ड हो जातेहैं। इनको वर देना तो साँप को दूध पिलाना है। इतना कहकर भगवान् नृसिंह जी अन्तर्ध्यान हो गये।

तत्पश्चात् प्रहलाद जी ने ब्रह्माजी तथा सब देवों की पूजा की तथा मस्तक टेककर प्रणाम किया। सब देवता लोग प्रहलादजी को शुभ आशीर्वाद देकर अपने २ लोकों को चले गये। हे धर्मराज! वे दोनों भाई त्रेतायुग में रावण कुम्भकर्ण तथा द्वापर में शिशुपाल दन्तवक्र हुये। जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के हाथ से मारे गये।

नारद जी बोले—हे धर्मराज! इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने त्रिपु

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दहन के समय शङ्कर जी का कष्ट दूर किया था।

धर्मराज बोले—हे ब्रह्मन्! भगवान् शङ्करजी ने त्रिपुर दहन कैसे किया यह कथा हमें अवश्य सुनाइये।

तब नारदजी बोले—हे धर्मराज! मय दानव ने तीन विमान एक सोने का एक चाँदी का, एक लोहे कः ऐसे बनाये थे कि वे तीन पुरों के समान प्रतीत होते थे। उन में दैत्य लोग रहते थे तथा सम्पूर्ण भोगों की सामग्री उपस्थित थीं वे तीन पुर आकाश में उड़ते रहते थे। और वे दानव, देवताओं को नष्ट करते रहते थे। जब देवताओं ने भगवान् शङ्करजी के पास जाकर प्रार्थना की कि ये असुर इन तीन पुरियों में बैठकर हमें नष्ट किये दे रहे हैं तब शङ्करजी ने उन तीनों पुरों को नष्ट करने का देवताओं को वचन दिया और भगवान् शङ्कर ने अपने वाणो से उन तीनों पुरों के दैत्यों को मार कर नीचे गिरा दिया। वह महा मायावी मय दानव उन मरे हुओं को उठा कर ले गया और उन्हें अमृत के कुएँ में डालकर फिर जीवित कर दिया। यह देख कर महादेव जी बड़े उदास हुए। तब भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रजी स्वयं गाय बने तथा ब्रह्माजी को बछड़ा बना कर उस अमृत के कुँए को मुँह लगा कर पी गये। दानव देखते ही रह गये। जब मय दानव को पता चला तब वह देव का विधान समझ कर शान्त हो गया। तब भगवान शङ्कर को शक्ति सम्पन्न करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उनसे त्रिपुरों को नष्ट करा दिया। भगवान शङ्करने एक ही मुहूर्त में अपने बाणों से तीनों पुरोंको भस्म कर दिया। हे युधिष्ठिर! मैंने तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रजी का प्रभाव सुना दिया अब बोलो क्या सुनाऊँ।

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

मनुष्य धर्म, वर्ण धर्म तथा स्त्री धर्म का वर्णन।

चौपाई—वर्ण धर्म नारद समझाये, मानव धर्म सभी बतलाये।
स्त्री धर्म निरूपण कीन्हा, बहु उपदेश नृपहिं मुनि दीन्हा॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! सन्त शिरोमणि प्रहलाद का चरित्र सुन कर तुम्हारे दादा धर्मराज युधिष्ठिर अति प्रसन्न हुये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

युधिष्ठिर बोले—हे ब्रह्मन् ! आप मुझे वर्णाश्रम धर्म तथा मानव धर्म के तत्व को समझाने की कृपा कीजिये।

तब नारद जी बोले—हे धर्मराज ! भगवान् नर नारायण बद्रिकाश्रम में अपने अन्शों से अवतार ग्रहण करके तप करते हैं उनको नमस्कार करके उन्हीं के मुख से सुना सनातन धर्म का वर्णन मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

हे धर्मराज ! धर्मवेत्ताओं ने धर्म के तीस लक्षण शास्त्रों में वर्णन किये हैं। उन में मुख्य २ सत्य, दया, शौच, तपस्या, उचित, अनुचित का विवेक, तितिक्षा, ब्रह्मचर्य, विषय, इन्द्रिय दमन, अहिंसा, त्याग, स्वाध्याय आदि हैं। मनुष्य को शनैः शनैः सांसारिक भोगों से निवृत हो कर भगवत् परायण होना ही मुख्य धर्म है।

हे धर्मराज ! ब्राह्मणों का मुख्य धर्म अध्ययन करना, अध्ययन कराना, दान देना, दान लेना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, ये छः कर्म हैं। क्षत्रियों का धर्म दान देना है दान लेना नहीं है। वैश्य को ब्राह्मण की सेवा करते हुए कृषि धर्म करना गौ, पशु आदि पालन है। शूद्र को इन उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा करना है।

ब्राह्मणों की उत्तम बृत्ति चार प्रकार की है—वार्ता, शालीन, यामाकर तथा शिलोच्छन। इन में उत्तरोत्तरबृत्तियाँ उत्तम हैं। क्षत्रिय दान लेने के अतिरिक्त ब्राह्मणों के शेष कर्म कर सकता है आपत्तिकाल में सभी बृत्ति मान्य हैं। खेतों में बीन कर गिरा हुआ अन्न संग्रह कर के निर्वाह करना शिलोच्छन्न बृत्ति तथा ऋतु, कहलाता है। बिना माँगे मिल गया उसे (शालीन) तथा अमृत बृत्ति कहते हैं नित्य माँग कर निर्वाह करना 'यामाकर, बृत्ति तथा मृत है। खेती कर के वार्त्ता बृत्ति प्रमृत है व्यापार 'सत्यावृत' कहलाता है। नीच वर्ण की दासता करना श्वान बृत्ति कहलाती है। ब्राह्मण क्षत्रिय को यह बृत्ति कभी नहीं करनी चाहिए।

हे धर्मराज ! शम, दम, तप, शौच, दया, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, सत्य तथा ईश्वर की भक्ति उत्तम ब्राह्मण के लक्षण कहे गये हैं। वीरता, उत्साह, धीरता, तेजस्वी का त्याग ब्राह्मणों के प्रति भक्ति भाव प्रजा की रक्षा करना, क्षमा ये क्षत्रिय के लक्षण हैं। अर्थ, धर्म, काम पुरुषार्थों की

Bhagwan Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्राप्ति करना वैश्य के लक्षण हैं। इन तीनों वर्णों की निष्कपट भाव से सेवा करना शूद्रों का लक्षण है।

हे धर्मराज ! अब तुम्हें स्त्री के लक्षण बताता हूँ ध्यान पूर्वक सुनो— स्त्री का धर्म पति की सेवा करना उसको सदा प्रसन्न रखना तथा उसके कुटुम्बियों से प्रेम रखना, पति में ईश्वरत्व भाव मान कर उस की सेवा करना स्त्री का परम धर्म है। अपने गृह को साफ सुथरा रखना तथा अपने को भी श्रृङ्गार आदि से विभूषित रखना चाहिये। स्त्री विनयी, संयमी तथा जो मिल जाय उसी में सन्तोष करने वाली, मिष्टभाषिणी हो तथा कलहकारिणी न हो। गृह कार्य में चतुर हो तथा लालची न हो। जो कुछ पति संग्रह करे उसे संतोष से भोगने वाली हो। पति का कभी अनादर करने वाली न हो। स्वयं लक्ष्मी का स्वरूप हो कर पति को नारायणस्वरूप माने।

हे धर्मराज ! धोबी, चमार, चाँडाल, जिस वृत्ति को वंश परम्परा से करते आ रहे हैं उन्हें वही वृत्ति करना उनका धर्म है इसके विरुद्ध कार्य करना अधर्म है।

॥ बारहवा अध्यायः ॥

❀ आश्रम धर्म व्यवस्था का वर्णन ❀

नारद जी बोले—हे धर्मराज ! मनुष्य जब ब्रह्मचर्य आश्रम में रहे तब गुरुदेव की सेवा करे उन्हें प्रातः सायं प्रणाम करे उन की आज्ञा का पालन कर के गुरुकुल आश्रम में विद्याध्ययन करे। कभी तेल, उबटन, सुरमा चन्दन आदि का लेप न करे। स्त्रियों तथा गुरुपत्नी आदि से अधिक समय तक व्यर्थ बात चीत न करे। जो कुछ भिक्षा पावे गुरु को अर्पण कर दे। उन की आज्ञा से भोजन करे यदि गुरु आज्ञा न दे तो भोजन न करे। उस दिन व्रत करे।

जब ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त कर के विद्याध्ययन पूर्ण करले तब गुरु को गुरुदक्षिणा दे कर अपने नगर में जाय, अथवा गुरु के ही निकट रह कर गृहस्थ आश्रम को भोगे। वहाँ पर उत्तम वृत्ति से गृहस्थ का पालन करते हुए देवयज्ञ पितृयज्ञ आदि नित्य करे अतिथि का सत्कार करे।

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri, Funding by IKS.

तत्पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करे। यह आश्रम यथा शक्ति बारह वर्ष, आठ वर्ष, चार वर्ष, दो वर्ष तथा एक वर्ष का होता है इस आश्रम में आकर केश न कटाये साबुन तेल आदि से स्नान न करे। मृगचर्म आदि धारण करे। बनमें तथा गुफाओं में पर्णकुटी बना कर रहे। अग्नि को न बुझने दे। नित्त नैमित्तक धर्म करे।

जब वानप्रस्थी वृद्धा अवस्था के कारण नियमों का पालन न कर सके तब अनशन वृत्त करे। अपनी आत्म शुद्धि के लिए मैं मेरेपन का अभिमान त्याग कर भगवत् चिंतन करे। अपने मन को भगवान् में लीन कर दे।

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

दत्तात्रेय जी तथा प्रहलाद जी का सम्वाद

नारद जी बोले—हे धर्मराज! वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात् ब्रह्म चिंतन के लिए सन्यास आश्रम ले ले। सन्यास आश्रम में सब संग्रहों का त्याग कर दे। केवल एक कोपीन तथा आवश्यकता होतो एक दन्ड धारण करे। किसी का आश्रय न लेकर अकेला ही स्वयं विचरण करे और ब्रह्म को अपनी आत्मा में देखे।

हे धर्मराज! एक समय दैत्य कुल भूषण भक्तवर प्रहलाद जी प्रजा की रक्षा के हेतु बिचर रहे थे। उनकी भेंट सह्य पर्वत की तराई में दत्तात्रेयजी से हो गई। वे अपनी परम हंस बृत्ति में पृथ्वीपर पड़े हुए थे। उन हृष्टपुष्ट सन्यासी को देखकर प्रहलादजी बोले—हे भगवन! आपका शरीर उद्योगी तथा भोगी पुरुषों के समान है उद्योग से लक्ष्मी मिलती है और लक्ष्मी से भोग मिलते हैं। भोग से शरीर बलिष्ट तथा हृष्ट पुष्ट होता है, किन्तु आप जैसे साधुओं के पास धन कहाँ से आया और धन के बिना भोग कहाँ से आये फिर भी आपका शरीर हृष्ट पुष्ट क्यों है। यह जानने की मेरी प्रवल इच्छा है।

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! प्रहलादजी के ऐसे बचन सुन दत्तात्रेयजी बोले—हे दैत्यराज! तुम भगवान् के परम भक्त तथा ज्ञानी हो तुम्हारी ज्ञान दृष्टि तीव्र है। सभी ज्ञानी जन तुम्हारा सम्मान करते हैं अतः मैं जो कहता हूँ वह सुनो।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे प्रहलाद जी ! संसार में तृष्णा ऐसी है कि यह कभी तृप्त नहीं होती अनेक भोग भोगने की लालसा लगी ही रहती है। जिसके कारण मनुष्य को यह संसार चक्र भोगना पड़ता है। न जाने इस पिशाचिनी तृष्णा ने मुझे कितनी बार इस जन्म मरण के चक्कर में भटकाया। अनंत कल्पों के बाद अब मुझे मनुष्य योनि प्राप्ति हुई है। इस मनुष्य योनि में यदि पुण्य करो तो स्वर्ग मिलेगा। पाप करोगे तो नरक तथा पशु पक्षी आदि की योनि मिलेगी यदि हम दोनों प्रकार के कर्म न करें तो मोक्ष मिल जाती है और यदि दोनों प्रकार के कर्म करते हैं तो मनुष्य योनि मिलती है। किन्तु हे असुर शिरोमणे ! मैं देखता हूँ कि मनुष्य कर्म करता है सुख के लिये किन्तु उनके बदले उसे दुःख ही मिलता है। इसलिए मैंने सभी कर्म त्याग दिये हैं।

आत्मा का स्वरूप सुख है। निश्चेष्ट रहना ही आत्मा के प्रकाश का कारण है। इसलिये मैंने अब सर्वस्व त्याग कर निश्चेष्ट भाव से रहना ही स्वीकार किया है। न मैं कर्म करूँगा न मुझे योनि में भटकना पड़ेगा। जो कुछ मिल जाता है खा लेता हूँ। नहीं मिलता है नहीं खाता हूँ। सम्पूर्ण विषयों से आसक्ति हटा दी है। यदि उत्तम भोजन मिल गया तो वह खा लिया कभी बुरा मिल गया तो वह खा लिया एक बार मिल गया तो खा लिया यदि दो बार मिल गया तो खा लिया और न मिला तो कोई चिन्ता नहीं। सोने को पृथ्वी मिल गई तो उत्तम है यदि घास पत्तो मिल गये तो उत्तम है और कहीं गद्दे गलीचे मिल गये तो उत्तम है आसक्ति किसी में भी नहीं है। मैंने अजगर तथा मधुमक्खी से पर्याप्त उपदेश ग्रहण किया है। जिस प्रकार मधुमक्खी शहद एकत्र करती हैं और चोर उसे तत्काल तोड़ कर ले जाता है। अतः भोगों को एकत्र करना मधुमक्खी की भाँति लुटाना है सदा अजगर की तरह दैव पर रहना चाहिए। प्रारब्ध वश भोग तथा अभोग दिये गये हैं उन्हें भोगे। विषय भोगों से विरक्त रहना ही उत्तम है। सब से विरक्त रह कर परमात्मा में चित्त को लीन करदे।

हे प्रहलाद जी ! तुम भगवत् प्रेमी हो इस लिए मैंने तुम्हें यह गुह्यतम ज्ञान बताया है।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नारदजी बोले—हे धर्मराज ! भक्त प्रवर प्रहलाद जी ने दत्तात्रेय जी की पूजा की और वहाँ से नगर को चले आये।

॥ चोदहवाँ अध्याय ॥

गृहस्थ धर्म का निरूपण

राजा युधिष्ठिर बोले—हे नारदजी ! मुझ जैसे गृहस्थ में आसक्त रहने वाले प्राणी का किस प्रकार उद्धार हो सकता है तथा यह मोक्ष पद किस प्रकार प्राप्त कर सकता हूँ। मुझे समझाकर कहिये।

नारदजी बोले—हे धर्मराज ! मनुष्य को चाहिये कि गृहस्थ आश्रम में रहकर गृहस्थ के धर्मों का पालन करे किन्तु उन सब कर्मों को भगवान् के लिए अर्पण करदे। सन्तजनों का समागम करे। भगवान् की कथाओं तथा लीलाओं का श्रवण करे। ज्यों ज्यों सत्सङ्ग से बुद्धि शुद्ध होती जाय त्यों त्यों धन सम्पत्ति, स्त्री, पुत्रादि से मोह को त्यागता जावे। क्योंकि वे सब नाशवान हैं तथा अपना शरीर भी नाशवान है वे किसी न किसी दिन अवश्य बिछुड़ते हैं। आवश्यकतानुसार ग्रहसेवन करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करे। माता पिता बन्धु बान्धव पुत्रादि से मोह को धीरे धीरे कम करता जावे ऊपर से इनके कार्यों का अनुमोदन करता हुआ अन्तः करण से सब का त्याग करता रहे।

भगवान् के दिये हुए भोग को भोगता हुआ उनका संचय न करे। अपनी आवश्यकतानुसार धन का संचय करे अधिक नहीं। सब में समत्व भाव रक्खे। देशकाल तथा प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करे। अर्थ,धर्म,काम के लिये अधिक प्रयत्न न करे न कष्ट करे। अपनी ... आदि का धीरे धीरे त्यागन कर दे। अपने आश्रम के अनुसार वृत्ति द्वारा नित्य देवता, ऋषि, मनुष्य, भूत, पितरों तथा अपनी आत्मा संतुष्ट करे। यदि धन पास है तो बड़े बड़े यज्ञ करने चाहिये और यदि नहीं तो श्रद्धानुसार अग्निहोत्र से ही भगवान् की आराधना करे।

द्विजातियों को अपनी सामर्थनुसार माता-पिता का श्राद्ध करना चाहिए। यदि धनवान् हैं तो भाई बन्धुओं का श्राद्ध भी करना चाहिये तथा दान आदि देना चाहिए। पर्वकाल नीचे वर्णन किए जाते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

कर्क मकर की संक्राँति, तुला मेष की संक्राँति, व्यतीपात तथा क्षय। तिथि, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण का समय, दोनों पक्षों की द्वादशी, श्रवण, धनिष्ठ, अनुराधा नक्षत्र, बैसाख की शुक्ला अक्षय तीज, कार्तिक शुक्ला अक्षयनवमी, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन महिनों की कृष्णाष्टमी, माघ शुक्ला-सप्तमी, माघ की मघा नक्षत्र की पूर्णमासी तथा ज्येष्ठ मास की पूर्णमासी जो अपने नामके नक्षत्रसे युक्त हो जैसे बैसाखमें विशाख चैत्रमें चित्रा आदि। द्वादशी तिथि में अनुराधा, श्रवण, उत्तरा फाल्गुन, उत्तराषाढ़, उत्तरा भाद्रपद, तथा एकादशी में तीनों उत्तरा नक्षत्र का योग, जन्म नक्षत्र तथा श्रवण नक्षत्र के योगवाली तिथि में सब पर्वकाल हैं इनमें किये हुए श्राद्ध काल पुण्यादि का फल कल्याण करने वाला तथा शुभ की बृद्धि करने वाला है। इन पर्वकालों में जितना हो सके उतना ही शुभ कर्म करे। यथाशक्ति आदि धर्म करे। इन शुभ पर्वकाल में स्नान जप, तप, होम व्रत देवाराधन शुभ का फल अक्षय है। बुद्धिमान जन ऐसे अवसर को कभी न चूके। इनके अतिरिक्त जात कर्म के समय पुंसवन में शवदाह के समय जो दान पुण्य किया जाता है उसका भी फल अक्षय है।

हे धर्मराज! गङ्गा पुष्कर कुरुक्षेत्र गया प्रयाग नैमिषारण्य फाल्गुन क्षेत्र, सेतुबन्धु, प्रभास, काशी, द्वारिका, मथुरा, पम्पासर, बिन्दुसरोबर, बद्रिकाश्रम आदि तीर्थों में स्नान तथा दर्शन से भी सहस्रगुना फल मिलता है।

हे धर्मराज! उत्तम पात्र के विषय में तो केवल इतना ही कहना है, कि भगवान् श्रीकृष्ण से उत्तम पात्र इस संसार में कोई भी नहीं है। तुम महान् भाग्यशाली हो जो तुम्हारे पास परमब्रह्म परमात्मा नित्य भाई बन्धु सखा के रूप में विराजते हैं।

——:❀:——

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

❀ मोक्ष धर्म का वर्णन करना ❀

चौ०—मोक्ष धर्म के रूप बताये, धर्मराज मुनि अति हरषाये।
बार बार मुनि कीन्ह प्रणामा, तब नारद गमने निज धामा॥

नारदजी बोले—हे धर्मराज! कुछ लोगों की निष्ठा कर्म में होती

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है, कुछ की तपस्या में निष्ठा होती है, कुछ की स्वाध्याय में, कुछ अपना जीवन उपदेश देने में ही व्यतीत कर देते हैं। कोई भक्ति योग का आश्रय लेते हैं तो कोई कर्मयोग का कोई अष्टांगयोग का ही साधन करते हैं। गृहस्थ को चाहिये इन पर्वकाल में अक्षय फल की प्राप्ति के लिये सतपात्र को हव्य, कव्य का दान दे। यदि ज्ञाननिष्ठ सतपात्र न मिले तो योगी तथा उपदेश कर्त्ता ब्राह्मण को ही दान देना शुभ है। देवकार्य में दो ब्राह्मण तथा पितृ कार्य में तीन, दो अथवा एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। श्राद्ध कर्म में अधिक विस्तार उत्तम नहीं होता।

धर्मज्ञ पुरुष को श्राद्ध में माँस आदि का भोजन अर्पण न करे स्वयं खाय। पितृगण पशुहिंसा से प्रसन्न नहीं होते हैं। मनुष्य को अपने धर्म का पालन करना चाहिए दूसरे के धर्म में रत नहीं होना चाहिए। जो अपने धर्म में दृढ़ नहीं रहता है वह अधर्मी है। अधर्म पाँच प्रकार के हैं। विधर्म, परधर्म, अभ्यास, उपमा तथा छल। १ कोई कार्य विधिवत् धर्म से करने पर भी बाधा उत्पन्न हो तो वह 'विधर्म' है। २ दूसरे का धर्म परधर्म है। ३ पाखण्ड तथा दम्भ को उपधर्म अर्थात् उपमा कहते हैं। ४ जो स्वेच्छा से धर्म मान लेता है वह अभ्यास है। शास्त्र के वचनों का अर्थ दूसरे प्रकार करना छल कहलाता है। अतः बुद्धिमान पुरुष इन अधर्मों से बचें।

हे धर्मराज! संकल्प के त्याग से काम को जीते, कामनाओं को त्याग कर क्रोध पर विजय प्राप्त करे। अर्थ से लोभ को त्यागे तत्व विचार से भय का त्यागन करे। अध्यात्म ज्ञान से शोक तथा मोह को जीते, सन्त सत्संग से दम्भ को जीते। इस प्रकार सभी दोषों पर विजय प्राप्त करके मन को जीत लेवे। काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर इन छः शत्रुओं पर भली प्रकार विजय प्राप्त करलो। तन पर विजय प्राप्त करने के लिये सन्यास धर्म स्वीकार करे। जो पुरुष सन्यास आश्रम को लेकर फिर गृहस्थाश्रम का सेवन करता है वह स्वान के समान अपने उगले हुए को खाता है।

कर्मत्यागी गृहस्थ, व्रतत्यागी ब्रह्मचारी, ग्रामवासी वानप्रस्थी तथा इन्द्रिय लोलुपी सन्यासी ये चारों आश्रम के कलङ्क रूप हैं।

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे धर्मराज ! यह शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े, मन लगाम है बुद्धि सारथि है, चित्त भगवान् को बाँधने की रज्जु है। दस प्राण धुरी हैं। धर्म, अधर्म दो पहिये हैं। अभिमानी जीव उस रथ पर बैठ कर अहंकार रूपी धनुष जीवात्मा वाण से परमात्मा लक्ष को प्राप्त कर सकता है। गुरु-देव के चरणों की कृपा से ज्ञानरूपी तीखी तलवार के द्वारा सब वन्धनों को काटकर अपने ध्येय को प्राप्त कर लेता है।

हे धर्मराज ! कर्म दो प्रकार के हैं। एक प्रवृत्ति परक दूसरा निवृत्ति परक। प्रवृत्ति परक कर्म मनुष्य को बार २ जन्म मृत्यु के चक्कर में डालता है। निवृत्ति परक कर्म भक्ति तथा ज्ञान का मार्ग है जो परमात्मा की प्राप्ति कराता है। जितने भी हिंसामय यज्ञ अग्निहोत्र बलि इत्यादि कर्म हैं यह सब प्रवृत्ति कर्म हैं। जो सकाम भाव होने के कारण अशान्ति देने वाले हैं। प्रवृत्ति परायण मनुष्य मरने पर अपने कर्मों के अनुसार सूक्ष्म शरीर धारण करके धूमाभिमानी देवताओं के पास होता हुआ दक्षिणायन मार्ग से चन्द्रलोक को जाता है। वहाँ पर उसके भोग समाप्त होने पर वह फिर वर्षा के द्वारा औषधि लता, अन्न आदि के रूप में इस संसार में जन्म लेता है। हे धर्मराज ! जिनके गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्ठ क्रिया तक सब संस्कार होते हैं उनको द्विज कहते हैं। उनमें से कुछ निवृत्ति मार्ग का अनुष्ठान करते हैं कुछ प्रवृत्ति मार्ग का अनुष्ठान करते हैं।

जो निवृत्ति परायण श्रेष्ठ पुरुष हैं वे यज्ञादि क्रियाओं को इन्द्रियों से हवन करते हैं अर्थात् यज्ञादि कर्मों को इन्द्रियों के द्वारा किया हुआ ही मानते हैं आत्मा से नहीं मानते। वे इन्द्रियों को मन में तथा मन को परावाणी में और परावाणी को वरणों में और वरणों को अ उ म, उन तीन स्वरों वाले ओंकार में तथा ओंकार को बिन्दु में और बिन्दु को नाद में नाद को प्राण में तथा प्राणों को ब्रह्म में लीन कर देते हैं। वह निवृत्ति परायण योगी उत्तरायण के मार्ग से ब्रह्मलोक को जाता है। तत्पश्चात् वह तेजस अहंकार में मिल जाता है फिर प्राज्ञ रूप में लीन हो जाता है। तत्पश्चात् सर्व साक्षी 'तुरीय' रूप में मिलकर मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है। वह आवागमन के चक्कर में फिर नहीं आता।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे धर्मराज ! विद्वत् जन तीन प्रकार के अद्वैतवाद को मानते हैं। एक भावाद्वैत, दूसरा क्रिया द्वैत तीसरा द्रव्याद्वैत। भेद भाव को न मान कर सब में एकता देखना भावाद्वैत है। मन तथा वाणी और शरीर से होने वाले समस्त कर्मों को स्वयं परमात्मा के द्वारा होते हुए मान कर उन कर्मों को परमात्मा के अर्पण कर देना क्रिया द्वैत है। अपने और परायों का कोई भेद न मानना यह द्रव्याद्वैत है। हे राजन् ! आपत्तिकाल को छोड़ कर सदा शास्त्र विहित कर्म करना चाहिये।

पूर्वकाल में पहिले महाकल्प में मैं एक उपर्वहण नाम का गन्धर्व था। किन्तु देवताओं के शाप से मैं शूद्र हो गया। इसीलिये मैं दासी का पुत्र हुआ। किन्तु सन्त समागम से मैं दूसरे जन्म में ब्रह्माजी का पुत्र हुआ। अब मैंने परमपद प्राप्त कर लिया है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! देवर्षि नारद के ऐसे वचन सुनकर तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को परब्रह्म जान कर युधिष्ठिर तथा नारदजी ने उनकी पूजा की। तब नारद जी वहाँ से विदा हो कर अपने लोक को चले गये। हे परीक्षित् ! मैंने तुम्हें दक्ष की पुत्रियों के वन्श का वर्णन सुना दिया उन्हीं के वन्श से यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।

❀ सातवाँ स्कंध समाप्त ❀

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वृहद् सुखसागर

॥ अष्टम स्कंध ॥

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षये॥
नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे।
पपुर्ज्ञान मयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम्॥

अर्थ—जिन भगवान् ने अपनी अति कृपा से ब्रह्माजी को श्रीमद्भागवत् का उपदेश किया था उन सर्व साक्षी परमात्मा वासुदेव को नमस्कार है जिन भगवान् वेदव्यास के मुख कमल के मकरन्द से टपकती हुई ज्ञान सुधा सन्त पुरुष पान करते हैं उन अमित तेजस्वी भगवान व्यास जी को वारम्बार नमस्कार है।

॥ पहिला अध्याय ॥

मन्वन्तरों का वर्णन।

दो०—मनवन्तर वर्णन किये, योगीश्वर शुकराय।
पाण्डु पौत्र सुनने लगे, मन में अति हरषाय॥

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्! आपने स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन किया है। इसी के अन्तर्गत मरीचि प्रजापति आदि की वन्शावली आदि का भी वर्णन आ चुका है। अब आप कृपा कर के दूसरे मन्वन्तरों की कथा सुनाइये जिन में भगवान् ने अनेक लीलाएँ कर के भक्तों को आनन्द दिया है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस कल्प में छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। उस में पहले मनु तो स्वायम्भुव मनु थे ही। जिन से देवता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आदि उत्पन्न हुए। स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति के कपिल मुनी हुए उनकी कथा मैं तुम्हें सुना चुका हूँ। अब आहुति के गर्भ से भगवान यज्ञ पुरुष ने अवतार लेकर जो लीला की है उसको मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

हे राजा परीक्षित् ! समस्त भोगों से विरक्त होकर स्वायम्भुव मनु शतरूपा के साथ तपस्या करने के लिये सुनन्दा नदी के तट पर चले गये। वहाँ एक पैर से खड़े होकर सौ वर्ष तक तपस्या करते रहे। मनुजी भगवान की स्तुति नित्य प्रति इस प्रकार करते थे। जिन भगवान की चेतना से यह विश्व चेतन है जो सदा प्रलयकाल में भी जगते रहते हैं जिनको यह विश्व नहीं जानता है और वे इस विश्व को जानते हैं। वे ही परमात्मा हैं। जिन में यह विश्व ओतप्रोत हो रहा है। उन भगवान की प्राप्ति के लिये इस जगत के भोगों की तृष्णा को त्याग देना चाहिये। जिनका न आदि है न अन्त है। न मध्य है न जिनका कोई अपना पराया है। वही सत्य परब्रह्म है। वे स्वयं प्रकाश अजन्मा सनातन होते हुए भी अपनी माया से जन्म स्वीकार करते हैं। वे भी कर्मों का अनुष्ठान करते हैं किंतु उनमें आसक्त नहीं होते हैं। इसी प्रकार प्राणी भी कर्मों से अनासक्त रहकर अपने कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता है। ज्ञान स्वरूप होने के कारण वे परमात्मा अहङ्कार रहित हैं। जगत को शिक्षा देने के लिए ही वे कर्म करते हैं मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

श्री शुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! एक समय मनुजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे उस समय उन्हें बड़बड़ाते हुए जानकर कुछ असुर तथा राक्षस उन्हें खाने के लिए दौड़े। तब यज्ञ पुरुष भगवान ने अपने पुत्र याम नामक देवताओं के साथ वहाँ जाकर उन असुरों का संहार किया। तब वे इन्द्र का पद धारण करके स्वर्ग का राज्य करने लगे।

हे परीक्षित ! दूसरे मनु स्वारोचिष हुए। उनके पुत्रों के नाम द्युमान, सुषेरण और रोचिषमान थे। उस समय इन्द्र का नाम रोचन तथा प्रधान देवताओं के नाम तुषित थे। अर्जस्तम्भ नाम के सप्तर्षि थे। उस समय वेद शिरा ऋषि की पत्नी तुषिता के गर्भ से भगवान विभु प्रगट हुए वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे। उन्हीं के प्रभाव से अट्ठासी हजार ऋषि भी ब्रह्मचारी रहे।

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तीसरे मनु प्रियव्रत के पुत्र उत्तम थे। उत्तम के पुत्र सवन, सृंजय यज्ञहोत्र आदि थे। वशिष्ठ जी के सात पुत्र सप्तऋषि थे। वेदश्रुत और भद्र देवताओं के प्रधान गण थे तथा सत्यजित नाम का इन्द्र था। उस काल धर्म की पत्नी सुनृता के गर्भ से भगवान सत्यसेन ने अवतार लिया। उस समय सत्यव्रत नाम के देवगण थे। भगवान ने सत्यजित इन्द्र के सखा बन कर दुष्ट राक्षसों का संहार किया। चौथे मनु तामस थे। वे उत्तम के सगे भाई थे। उनके दस पुत्र थे। सत्यक, हरि तथा वीर देवताओं के प्रधान गण थे। त्रिशिख इन्द्र था। ज्योति, धर्म आदि सप्तऋषि थे। उस तामस मन्वन्तर में हरिमेधा ऋषि की पत्नी हरिणा के गर्भ से भगवान् हरि ने अवतार लिया लिया। जिन्होंने गजेन्द्र की रक्षा की।

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन! वह गजेन्द्र कौन था और उनकी रक्षा भगवान् ने किस प्रकार की यह कथा मुझे सुनाइये। श्रीसूतजी बोले—हे शौनकजी! राजा परीक्षित के ऐसे मधुर बचन सुनकर शुकदेव जी अति प्रसन्न हुए और कथा सुनाने लगे।

—❀—

॥ दूसरा अध्याय ॥

❀ गजेन्द्र मोक्ष की कथा ❀

चौ०—गज और ग्राह लड़े जल माहीं। थकित भयौ गज अति मनमाहीं॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! क्षीरसागर में त्रिकूट नाम का एक बड़े विस्तार वाला पर्वत था। उसके चाँदी लोहे और सोने के तीन शिखर थे। उसके प्रकाश से दसों दिशायें जगमगाती रहती थीं। उस पर्वत में अनन्त धन राशि भरी हुई थी। वहाँ पर अनेक प्रकार के सुन्दर वन वृक्ष शोभायमान थे। जिन पर विविध जाति के पक्षी गुंजायमान करते रहते थे अनेक प्रकार के झरने झरते थे। उसकी रम्य कन्दराओं में सिद्ध चारण गन्धर्व नाग किन्नर तथा अप्सराएँ विहार करते रहते थे। उस पर्वत में बहुत सी नदियाँ और सरोवर थे जिनमें देवांगनायें स्नान करती थीं। उस त्रिकूट पर्वत की तराई में वरुण देवका ऋतुमान नाम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

का उद्यान था। उस उद्यान में अनेक प्रकार की मेवा, फलके वृक्ष तथा सुगन्धित पुष्पों की लता बेलें थीं। उसी उद्यान के निकट एक सरोवर था। उस सरोवर पर बहुत सी हथिनियों के साथ गजेन्द्र आनन्द के साथ निवास करता था। वह गजेन्द्र बड़ा शक्तिशाली था उसके भय से सभी जङ्गली पशु भाग जाते थे। वह अपनी टक्करों से पहाड़ के बड़े बड़े विशाल शृङ्गों को तोड़ता रहता था। एक दिन वह प्याससे व्याकुल होकर अपनी हथिनियों के साथ उस सरोवर के तट पर पहुँचा। उस सरोवर का जल अति निर्मल शीतल तथा मीठा था। उस में कमलों की महक उठती रहती थी उस गजेन्द्र ने पहले तो उस में घुस कर खूब जल पिया और स्नान करने लगा। तत्पश्चात् वह मदान्ध होकर एक बड़े गृहस्थी की भाँति अपनी हथिनियों और बच्चों को सूँड़ से नहलाने लगा। हे राजन्! उसी समय अकस्मात् प्रारब्धवश क्रोध में पकड़ कर एक ग्राहने उसका पाँव पकड़ लिया उस गजेन्द्र ने अपने पूरे बल से पैर को छुड़ाने का प्रयत्न किया लेकिन वह छुड़ा न सका। जब उस गजेन्द्र की हथिनियों तथा बच्चों ने देखा कि एक बलवान ग्राह गजेन्द्र को खींचे लिये जा रहा है तब वे घबड़ा कर चिंघाड़ने लगे और उसको बचाने का प्रयत्न करने लगे। किंतु वे भी असमर्थ रहे। गजेन्द्र अपनी पूरी शक्ति से ग्राह से युद्ध कर रहे थे कभी ग्राह जल में गजेन्द्र को खींच लेजाता तो कभी गजेन्द्र ग्राह को बाहर खींच लेता था। उन्हें लड़ते २ पूरे एक हजार वर्ष ब्यतीत होगए। अंत में लड़ते २ गजेन्द्र की शक्ति क्षीण होगई और उसका शरीर शिथिल होगया। किंतु ग्राह को शक्ति जल में रहने के कारण और भी अधिक बढ़ गई। वह गजेन्द्र को जल में खींचने लगा। जब गज ने अपने बचने का कोई उपाय न देखा तब उसका ध्यान जगत के रक्षक भगवान् की ओर गया। और उसी प्रभु का आश्रय लेकर उनकी स्तुति करना आरम्भ किया।

—❀❀—

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तीसरा अध्याय ॥

गजेन्द्र द्वारा भगवान् की स्तुति

चौ०–कीन्ही स्तुति गजने भारी, धाये प्रभु तजि निज असवारी ।
मार्‌यो ग्राह तुरत भगवाना, लिये राखि गज के तव प्राना ॥

श्री शुकदेव जी बोले–हे राजा परीक्षित ! गजेन्द्र निश्चय बुद्धि से अपने मन को एकाग्र करके पूर्व जन्म के सीखे हुए स्तोत्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगा ।

गजेन्द्र ने कहा–जो परमात्मा जगत के मूल कारण हैं जो घट घट वासी हैं जो संसार को चेतन शक्ति देते हैं । मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ जिनकी सत्ता से यह संसार प्रकट हुआ है तथा जो प्रकृति से परे स्वयं प्रकाश और विश्व के रचियता हैं जो समदर्शी हैं जो सबके आधार हैं किंतु उनका आधार कोई नहीं है । मैं उनको नमस्कार करता हूँ । जो प्रलय काल के घोर अंधकार से परे विराजमान रहते हैं । जिनकी लीलाओं का भेद कोई नहीं जानता है जो सबकी रक्षा करते हैं वे मेरी रक्षा करें ।

ज्ञानी पुरुष योग के द्वारा अपने अन्तः करण को शुद्ध करके जिनकी आराधना करते हैं मैं उनको नमस्कार करता हूँ । जो परमात्मा ज्ञान स्वरूप सर्व साक्षी हैं जो पुरुष और प्रकृति के रूप में व्याप्त रहते हैं । उनको मैं नमस्कार करता हूँ । जो शरण में आये हुओं की रक्षा करते हैं अपने भक्तों का कल्याण करते हैं उन परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देने वाले हैं जो अपने भक्तों की सदां रक्षा करते हैं जो अविनाशी सर्व शक्तिमान तथा अव्यक्त हैं उन आदि पुरुष परब्रह्म की मैं स्तुति करता हूँ । जिनकी माया में ब्रह्मा आदि देवता मोहित रहते हैं । जो भगवान् न देवता हैं न असुर हैं न मनुष्य हैं न पशु पक्षी हैं । न पुरुष हैं न स्त्री वे गुण कर्म कार्य कारण रहित हैं । वे मेरे उद्धार के लिए प्रकट हों । मैं अपनी रक्षा के लिए उनका आह्वान नहीं करता हूँ किंतु इस अज्ञानांधकार के आवरण को हटाने के लिए मैं उनका स्मरण करता हूँ । मैं अजन्मा विश्व के रचियता ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding...

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! जब गजेन्द्र ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की तब सर्वदेव मय भगवान् हरि तत्काल वहाँ प्रकट हुए। गजेन्द्र की स्तुति सुनकर गरुण पर सवार होकर चक्रपाणी भगवान् शीघ्र ही वहाँ आये उनके साथ देवता गण भी आये। सरोवर में महा शक्तिशाली ग्राह ने गजेन्द्र को पकड़ रखा था। जब गजेन्द्र ने देखा कि चक्रधारी भगवान् श्री हरि गरुण पर सवार होकर आकाश में आ रहे हैं तब उसने अपनी सूँड़ में कमल का अति सुन्दर एक पुष्प लेकर ऊपर उठाया और बड़े कातर स्वर में बोला--नारायण ! जगद्गुरो ! परमात्मा ! आपको मेरा नमस्कार है। जब भगवान् ने गजेन्द्र की असहाय पीड़ा को देखा तब वे शीघ्र ही गरुण से नीचे कूद पड़े और वे सरोवर में से गजेन्द्र तथा ग्राह दोनों को एक साथ कमल पुष्प के समान उठाकर बाहर ले आये तब भगवान् ने अपने चक्र से ग्राह का मुख फाड़ डाला और गजेन्द्र की रक्षा की।

—❀—

॥ चौथा अध्याय ॥

गज और ग्राह के पूर्व जन्म की कथा तथा उसका उद्धार

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! उस समय ब्रह्मा शंकर ऋषि, गंधर्व आदि सभी भगवान् की स्तुति करके पुष्पों की वृष्टि करने लगे सब लोग भगवान् की परिक्रमा करके अपने २ लोकों को चले गए। गजेन्द्र भगवान् के स्पर्श से अज्ञान से मुक्त हो गया था। वह गजेन्द्र पूर्व जन्म में द्रविड़ देश का राजा था। उसका नाम इन्द्रद्युम्न था राजा इन्द्रद्युम्न राजपाट त्याग कर मलय पर्वत पर तपस्वी वेश में रहते थे। एक समय वे स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान् की आराधना में मौन बैठे थे। उसी समय अगस्त मुनि अपने शिष्यों सहित वहाँ आये। राजा को निश्चल भाव से बैठा देख कर अपना अतिथि सत्कार न होने के कारण वे क्रोधित हुए और राजा को शाप दे दिया कि अभिमानवश ब्राह्मणों का अपमान करने के लिए हाथी के समान बैठा है अतः तू हाथी की यौनि प्राप्ति करे।

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! अगस्त जी राजर्षि इन्द्रद्युम्न को शाप देकर चले गये। राजा ने प्रारब्ध भोग समझ कर सन्तोष किया और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हाथी की योनि में जन्म लिया। किन्तु पूर्व जन्म के संस्कार से हाथी की योनि में भगवान की स्मृति बनी रही। हे राजन्! मैंने तुम्हें गजेन्द्र उद्धार की कथा सुना दी। जो पुरुष प्रातःकाल उठते ही पवित्र मनसे इस गजेन्द्र स्तुति का पाठ करता है उसे भगवान् की प्राप्ति होती है उसके सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाते हैं। श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है कि जो पुरुष रात के पिछले पहर में उठकर एकाग्र चित्त से मेरा तथा गजेन्द्र, सरोवर, पर्वत, कन्दरा, ब्रह्माजी शिवजी तथा मेरे निवास स्थान का मेरे सम्पूर्ण आयुधों का तथा गरुड़ लक्ष्मी, देवर्षि नारद, शङ्कर जी, भक्त प्रह्लाद, मत्स्य, कच्छ, बाराह आदि का स्मरण करता है वह सब पापों से छूट जाता है। हे प्यारे गजेन्द्र! जो ब्रह्ममहूर्त में जग कर तुम्हारे द्वारा की गई मेरी स्तुति का पाठ करेगा। उसे मैं उत्तम बुद्धि दूँगा। इतना कह कर भगवान् अपने धाम को चले गये।

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

चौपाई—गये देव ब्रह्मा के पासा। ब्रह्मा गये निज प्रभुहि निवासा।
देवन स्तुति कीन्ही भारी। प्रगट भये तब श्री असुरारी॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! पाँचवाँ मनु रैवत हुए। ये तामस मनु के सगे भाई थे। उनके पुत्रों के नाम अर्जुन, बलि, विन्ध्य, आदि थे विभु नाम का इन्द्र था भूतरय नाम के प्रधान देवगण थे। हिरण्य रोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्व, बाहु आदि सप्तर्षि थे। शुभ्र ऋषि की भार्या विकुण्ठ के गर्भ से भगवान् बैकुण्ठनाथ का अवतार हुआ, जिन्होंने लक्ष्मी जी के कहने पर बैकुण्ठ धाम का निर्माण किया।

छटवें मनु चाक्षुष थे, इनके पुत्र पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि थे। मलद्रम इन्द्र का नाम था। आपा आदि प्रधान देवता थे। हविष्यमाल तथा बारक आदि सप्तर्षि थे। वैराज की भार्या सम्भूति के गर्भ से अजित भगवान् का अवतार हुआ। जिन्होंने समुद्र मन्थन में देवता तथा दैत्यों की सहायता की थी तथा कच्छप अवतार भी ग्रहण किया था।

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्! भगवान् ने कच्छप अवतार किस प्रकार धारण किया तथा समुद्र मन्थन किस उद्देश्य से किया गया उस की कथा मुझे समझा कर कहिये।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सूतजी बोले—हे शौनकादिक ऋषियो ! राजा परीक्षित् के ऐसे बचन सुन कर श्रीशुकदेवजी अति प्रसन्न हुए और बोले।

श्रीशुकदेवजी बोले--हे राजन् ! राजा बलि के राज्य में दैत्य असुर तथा दानव अति प्रवल हो उठे थे। उन्हें शुक्राचार्य की शक्ति प्राप्त थी। इसी बीच में दुर्वासा के शाप से तीनों लोकों सहित देवराज इन्द्र शक्ति हीन हो गया था। दैत्यों की बढ़ती हुई प्रवल शक्ति को देख कर देवताओं को विशेष चिन्ता हुई वे सब ब्रह्माजी के पास गये। उस समय दैत्यराज बलि का राज्य तीनों लोकों पर था। देवता सदा उसके भय से भयभीत रहते थे। वे सब देवता ब्रह्मलोक में गये तथा ब्रह्माजी को साथ लेकर बैकुण्ठ धाम में श्री बैकुण्ठनाथ के पास गये। वहाँ पर उन्हें कुछ भी दृष्टि न आया तब ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की।

ब्रह्माजी बोले--हे देव ! आप निर्विकार हो कर भी इस विकार युक्त सृष्टि की रचना करते हैं। आप ही आदि पुरुष परमात्मा हैं। आप अनुमान के द्वारा ही जाने जाते हैं। आपको हमारा नमस्कार है आप सत्ययुग त्रेतायुग, तथा द्वापर में प्रगट रूप से विद्यमान रहते हैं। इस रथ रूपी शरीर के आप ही आधार रूप हैं। हे परमात्मा ! यह सृष्टि आपने ही बनाई है। इस में जरायुज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज ये चार प्रकार की सृष्टि आपने ही उत्पन्न की है।

हे विश्वनि ! यह चन्द्रमा आपका मन है। सूर्य आपके नेत्र हैं। अग्नि आपका मुख है। कालरूप मृत्यु भी आप ही हैं। दिशायें आपके कान हैं। वायु आपकी श्वाँस है। नाभि आपका आकाश है। हे विराट् स्वरूप परमात्मा आप हम पर प्रसन्न होइये। मैं शङ्कर, इन्द्र, समस्त प्रजापति लोकपाल आपही से उत्पन्न हुए हैं। आपके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं।

हे परमात्मा ! हम आपके दर्शनों के अभिलाषी हैं। आपकी मन्द मुस्कान, मधुर चितवन के दर्शन करना चाहते हैं। आप सर्व शक्तिमान हैं। मनुष्य जो कर्म करता है उन में से अधिकांश बिफल ही रहते हैं जो कर्म आप के द्वारा होते हैं वे सभी फल दायक तथा हित कारक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होते हैं क्योंकि वे निष्काम भाव से होते हैं। हम आपको बार बार नमस्कार करते हैं।

॥ छटवाँ अध्याय ॥

चौपाई–प्रगट होय प्रभु किय आदेशा। समुद्र मथौ सङ्ग लै असुरोशा॥
नेती बासुकि नाग बनाओ। मदराचल की रई चलाओ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! जब ब्रह्माजी ने अपनी देवमयी वाणी से भगवान् की इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान् देवताओं के बीच में प्रगट हो गये। उनके सर्वाङ्ग सौंदर्य से अपूर्व थे। चतुर्भुज स्वरूप पीताम्बर पहिने किरीट कुण्डल धारण किए हुए। कण्ठ में बनमाला तथा कौस्तुभमणि धारण किये हुये, मन्द-मन्द मुस्कराहट से सब को आनन्दित करते हुये प्रगट हुये।

सब देवताओं के साथ ब्रह्माजी ने स्तुति की। तब भगवान् मधुर वाणी में बोले–हे ब्रह्मा, शङ्कर तथा देवताओ! तुम सावधानी से मेरी आज्ञा सुनो। तुम्हारे लिए वही उत्तम मार्ग है। इस समय भगवान् दैत्यों के पक्ष में हैं। उनका अभ्युत्थान हो रहा है और तुम्हारी अवनति का समय है इसी कारण तुम लोग कष्ट पा रहे हो। किंतु सङ्कट काल को मैत्री पूर्ण भाव से व्यतीत कर देना चाहिये। तुम दैत्यों से मित्रता करलो और क्षीर सागर को मथ कर उसमें से अमृत निकाल कर पान करलो। दैत्यों की सहायता से यह कार्य बड़ी सुगमता से होगा। उनके हाथ केवल श्रम ही लगेगा। उत्तम फल तुम्हीं लोगो को प्राप्त होगा। इस कार्य की सिद्धि के लिये असुर तुम से जो शर्त स्वीकार करायें वह सब स्वीकार कर लो। शाँति पूर्वक अपना काम बनालो क्रोध मत करना, क्रोध से काम बिगड़ जाते हैं। जब काम बन जाय तब साँप की भाँति, अपना स्वर्थ बनाकर चूहे को निगल जाना। अमृत पीकर तुम अमर हो जाओगे तब दैत्यों को मारने में समर्थ होगे।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवताओं को यह आज्ञा देकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। तब देवराज इन्द्र देवताओं के साथ राजा बलि के निकट गये और भगवान् के आदेशानुसार अमृत निकालने को

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बात दैत्यराज बलि को सुनाई। बालि ने उसे स्वीकार कर लिया और दोनों दैत्य तथा देवता मिल कर अमृत मन्थन के लिए तैयार हो गये। दोनों दलों ने मिल कर मन्दराचल पर्वत को उखाड़ लिया किन्तु उसे समुद्र तक लाना अति कठिन था बहुत से देवता तथा दानव कुचल कर मर गये। तब भगवान अजित दैत्य तथा दानवों का उत्साह भङ्ग देख कर गरुड़ की पीठ पर सवार हो कर वहाँ प्रकट हुए और मन्दराचल पर्वत को खेल ही खेल में उठा कर गरुड़ की पींठ पर रख कर दैत्य तथा देवताओं के साथ समुद्र पर ले आये। मन्दराचल पर्वत की राई तथा वासुकि नाग की नेति बना कर समुद्र मंथन करने को उद्यत हुए किन्तु मन्दराचल बिना किसी आधार के होने से समुद्र के जल में डूबने लगा तब भगवान ने कच्छप का रूप धारण करके समुद्र में प्रवेश किया और उसे अपनी पींठ पर रख लिया। एक लाख योजन चौड़ी पींठ पर मन्दराचल घूमने लगा। भगवान ने दानव रूप से दानवों में शक्ति संचार किया। देवता रूप से देवताओं में शक्ति संचार किया तथा वासुकि नाग को निद्रा दे कर उसका कष्ट हर लिया तब मन्दराचल पर्वत के ऊपर भार रख कर उसे कच्छप ने नीचे से उठा दिया, तब समुद्र मन्थन आरम्भ किया।

प्रथम भगवान् अजित वासुकि नाग के मुख की ओर लगे सब देवता भी उधर ही लग गये। जब उल्टी बुद्धि वाले दानव दैत्यों ने देखा कि मुँह की ओर लगने में कोई लाभ अवश्य है तब वे पूँछ छोड़कर बोले कि हम पूँछ नहीं पकड़ेंगे यह शरीर का अशुभ अङ्ग है। हम किसी से शक्ति में कम नहीं है। अतः हम मुँह की ओर स्थान लेंगे। तब देवताओं ने मुँह छोड़ कर पूँछ पकड़ ली और दैत्यों ने मुँह पकड़ लिया। इस प्रकार दोनों दल समुद्र मन्थन करने लगे।

॥ सातवाँ अध्याय ॥

दोहा—प्रगट्यो सागर मथन से, काला गरल महान।
भक्तन को दुख देखकर, शङ्कर कीन्हों पान॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! समुद्र मंथन से पहले पहल जलका पाप रूप उग्रविष उत्पन्न हुआ। उस विष की ज्वाला से सभी देवता तथा दैत्य

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जलने लगे और उनके शरीरकी कान्ति फीकी पड़ गई। वह उग्र विष चारों ओर फैलने लगा जब इस विष से बचने का कोई उपाय नहीं देखा तब सब देवता दानव भगवान् शङ्कर की शरण में गये और भगवान् शङ्कर की इस प्रकार प्रार्थना करने लगे।

देवता लोग स्तुति करने लगे—हे भूतनाथ! सदाशिव! इस उग्र विष से हमारी रक्षा कीजिये। आप ही तमोगुण रूप भगवान् नारायण की तीसरी शक्ति हैं। आप ही प्रलय करते हैं। आप जगत् की स्थिति उत्पत्ति तथा लय करते हैं। आप स्वयं प्रकाश हैं। आप आत्माराम होकर अपने में ही रमण करते रहते हैं। आपकी मङ्गलमयी मूर्ति सबका मङ्गल करती है तभी आपका नाम शिव है। आप सब का कल्याण करते हैं। हे प्रभु! हमारा भी कल्याण कीजिये। आप अ–उ–म् तीन अक्षरों से युक्त ओउम्कार स्वरूप हैं।

हे परमात्मन्! आपके विराट् स्वरूप का यह चन्द्रमा पवित्र मन है, स्वर्ग लोक सिर है, समुद्र कोख है, वृक्ष रोम है पर्वत हड्डियाँ हैं। गायत्री छन्द आदि सात धातु हैं, आपके पाँच मुख हैं। जिनसे अड़तीस यन्त्र उत्पन्न हुए हैं। आप स्वयं प्रकाश हैं। अधर्म आपकी छाया, सत्व, रज, तम आपके तीन नेत्र हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। आपके प्रभाव को इन्द्रादि लोकपाल भी नहीं जानते हैं। यह कालकूट विष आप पान करके हमारे कष्ट को दूर कीजिये।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! सब जगत के बन्धु तथा सब का कल्याण करने की कामना करने वाले शंकर जी को दया आ गई। उनकी व्यथा से व्यथित होने लगे। उन्होंने भवानी जी से ये कहा—हे प्राणप्रिये! हलाहल विष के कारण यह सम्पूर्ण प्रजा व्याकुल हो रही है जो सामर्थ्यवान् हैं उन्हें चाहिये कि प्रजा के भय को दूर कर दें। दीन दुखियों की रक्षा करें। उसी से भगवान् प्रसन्न होते हैं।

सती जी भगवान् शङ्करजी के प्रभाव को भली प्रकार जानती थीं उन्होंने उनका अनुमोदन किया तब भगवान् शंकर उस विष को हथेली पर रख कर पान कर गये उस विष को शङ्करजीने कण्ठ से नीचे नहीं उतारा। वह

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कालकूट होने के कारण उसके प्रभाव से शङ्करजी का कण्ठ नीला पड़ गया। इसीलिए उन्हें नील कण्ठ कहते हैं। यही बात है कि सज्जन दूसरों के परोपकार के लिये स्वयं कष्ट सह लेते हैं। उस समय शङ्करजी के हाथ से थोड़ा सा विष पृथ्वी पर टपक गया था उसे साँप बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं ने ग्रहण कर लिया। —❀—

॥ आठवाँ अध्याय ॥

समुद्र मंथन से अन्य रत्नों का निकलना—

दो०—श्रीरम्भा विष वारुणी, अमीय शंख गजराज।
धन्वन्तरि,सुरधेन तरु, चन्द कल्प मणि बाज॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! समुद्र मन्थन से निकले हुए हलाहल विष को शङ्कर जी ने ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् दूसरा रत्न कामधेनु समुद्र से निकली वह देवताओं के यज्ञादि के लिये घृत दूध देने के लिये देवलोक को चली गई उसे ऋषियों ने ग्रहण कर लिया। फिर समुद्र मन्थन से उच्चै श्रवा घोड़ा निकला उसे दैत्यराज बलिने लेने की इच्छा की वह दैत्यों को दे दिया गया। तत्पश्चात् एरावत हाथी समुद्र से निकला वह इन्द्र ने ग्रहण किया। तत्पश्चात् कौस्तुभमणि समुद्र से निकली उसे अजित भगवान् ने ग्रहण किया। तत्पश्चात् कल्पद्रुम निकला वह देवताओं ने ले लिया इसके पीछे रम्भा नाम की अप्सरा समुद्र से निकली। वह भी देवलोक को चली गई। तत्पश्चात् लक्ष्मी जी प्रगट हुईं। उन्हें लेने के लिये दैत्य तथा देवता सभी मन ललचाने लगे किन्तु लक्ष्मी जी ने अजित भगवान् ही को अपना आश्रय बनाया तथा उनको वरण किया। तत्पश्चात् समुद्र से कन्या के रूप में वारुणी प्रगट हुई उसे दैत्यों ने ग्रहण किया। तत्पश्चात् चन्द्रमा पारिजात वृक्ष तथा शंख उत्पन्न हुए। सबसे पीछे धन्वन्तरि वैद्य अमृत का घट लिये हुए प्रगट हुए। जब दैत्यों ने उस अमृत के घट को देखा तो वे शीघ्र ही झपट कर उस घट को धन्वन्तरि के हाथों में से छीन कर ले गये। जब देवताओं ने यह देखा कि जिस अमृत के लिए इतने असह्य कष्ट सहे थे उसे दैत्य छीनकर ले गये तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। अन्तर्यामी भगवान् देवताओं के मन की भावना ताड़ कर तत्काल अपना मोहिनी रूप धारण

Digitized by Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किया। दैत्य लोग उस अमृत के पीने के लिये परस्पर लड़ने झगड़ने लगे। उनके झगड़े को देख कर मोहिनी रूप धारी भगवान् अति सुन्दरी स्त्री का रूप धारण करके बड़े हावभाव से उनकी ओर मधुर मुस्कान तथा कटाक्ष से देखते हुए धीरे धीरे चले। उनके उस विश्वमोहनी स्वरूपको देखकर दैत्य तथा देवताओं की तो बात ही क्या स्वयं ब्रह्मज्ञानी कामदेव को जलाने वाले आत्माराम शंकर जी भी मोहित हो बार बार उनकी ओर देखने लगे। जब दैत्यों ने उस नवयोवना सुन्दरी को अपनी ओर आते हुए देखा तब वे अपना सारा झगड़ा भूल कर उसी सुन्दरी की ओर एक टक देखने लगे तथा कामान्ध हो गये।

—❀—

॥ नवाँ अध्याय ॥

दो०—धरि मूरति प्रभु मोहिनी, बाँध्यौ अमृत लेय।
असुरन को झाँकी दई, देवन अमृत देय॥

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजन्! वे सभी दैत्य दानव परस्पर के झगड़े को त्याग कर उसी सुन्दरीकी ओर कामासक्त होकर देखने लगे। वह सुन्दरी अपने मधुर नूपुरों से तीनों लोकों को मोहित करती हुई उन दैत्यों के निकट गई। वे दैत्य बोले हे सुन्दरी! तुम कहाँ रहतीहो किस प्रयोजन से यहाँ आई हो। मालूम होता है कि तुम हमारे झगड़े का निवटारा करने के लिये ही हम पर कृपा कटाक्ष कर रही हो। तुम्हारा स्पर्श अभी तक देवता गंधर्व नाग किन्नर आदि किसी ने भी नहीं किया प्रतीत होताहै। आओ शुभगे! तुम्हारा स्वागत है। हमें अपने सुन्दर करकमलों से यह अमृतपान कराओ।

भगवान् बोले—हे देवताओ तथा दानवो! आप महर्षि कश्यपजी के पुत्र होने के कारण भाई२ हो फिर परस्पर लड़ते हो। मैं तो स्वेच्छा चारिणी स्त्री हूँ। बुद्धिमान ऐसी स्त्री पर कभी विश्वास नहीं करते फिर तुम लोग ऐसा क्यों करते हो। स्वयं सब मिलकर अमृतपान करलो।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब मोहिनी रूप धारी भगवान् से ऐसे नीति के बचन सुने तब उन कामान्ध दैत्यों को और विश्वास हो गया। वे बोले नहीं हमें तुम्हारा विश्वास है तुम जिस प्रकार बाँटोगी उसी प्रकार हम अमृतपान कर लेंगे। तब मोहिनी रूप धारी भगवान्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बोले—हे दानवो ! मैं जो कुछ भी उचित अनुचित करूँ आप लोगों को सब स्वीकार हो तो तुम्हें अमृत पिला सकती हूँ दैत्यों ने स्वीकार कर लिया क्योंकि वे तो काम के वशीभूत हो रहे थे। वे तो उस सुन्दरी के सुन्दर हाथों से ही अमृत पान करना चाहते थे।

तत्पश्चात् एक दिन व्रत उपवास करने के पश्चात् देवता तथा दैत्य अलग अलग २ पंक्ति बनाकर अमृतपान करने के लिये बैठ गये। भगवान् मोहिनी रूप धारी ने स्वयं अमृत का घट अपने हाथ में ले लिया। दैत्यों की ओर मधुर मुस्कान तथा कटाक्ष से देखने लगे। दैत्य उनकी विश्व-मोहनी मुस्कान तथा कटाक्ष में ऐसे मदहोश तथा उन्मत्त हो गये कि अमृत का पीना भूल कर उनकी दृष्टि एक टक उन्हीं विश्वविमोहक छवि पर लग गईं। वे उधर दैत्यों की ओर देखते हुए देवताओं को अमृत बाँटने लगे। दैत्यों ने कुछ भी चूँ न किया। एक तो वह बचन बद्ध थे दूसरे वे सुन्दरी को रुष्ट करना नहीं चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि सुन्दरी हमें अमृत अवश्य पिलायेगी। इस लिए चुपचाप उन्हीं की छवि को तथा मधुर नूपुरों युक्त चाल को देखते रहे।

भगवान् की इस चाल को राहू नाम का दैत्य समझ गया वह देवता का रूप बना कर देवताओं में जा कर बैठ गया और अमृत पीने को उद्यत होगया। जब अमृत उसके कण्ठ में पहुँच गया तब चन्द्रमा तथा सूर्य ने पुकार कर कहा कि ये राहु दैत्य है। झट भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका शिर काट दिया। राहु का शिर अमृत के प्रभाव से अच्छा हो गया। शरीर पृथ्वी पर गिर गया। राहु का शिर एक ग्रह बन कर स्थापित हो गया। वह कभी कभी उस बैर भाव के कारण सूर्य चन्द्रमा पर आक्रमण करता है उसे ग्रहण कहते हैं।

भगवान् की कृपा से देवताओं को अमृत बड़ी आसानी से प्राप्त हो गया यद्यपि एक ही में स्थान एक ही कर्म, एक ही परिश्रम दैत्यों ने भी किया और देवताओं ने भी किया किन्तु जिनकी श्रद्धा परमात्मा में होती है उनका परिश्रम सफल होता है और जिनकी श्रद्धा परमात्मा में नहीं होती है उनका परिश्रम विफल हो जाता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ दसवाँ अध्याय ॥

दोहा–चली गई जब मोहिनी, भयो विकट संग्राम।
मारन को उद्यत भये, ले ले कर निज नाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित ' जब दैत्य तथा दानवों को अमृत की प्राप्ति नहीं हुई और देवता लोग अमृत को पी गये तब दैत्यों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने तुरन्त अपने हथियार उठा लिये और देवताओं पर आक्रमण कर दिया। देवता लोग अमृत पीकर शक्तिशाली होगये थे। दूसरे उन्हें भगवान् के चरणों का आश्रय था। वे भी दैत्यों से अस्त्र शस्त्र लेकर भिड़ गये। हे राजा परीक्षित! क्षीर सागर के तट पर बड़ा भयङ्कर संग्राम देवता तथा असुरों में हुआ उसे देवासुर संग्राम कहते हैं। दोनों में बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र दोनों ओर से चलने लगे। हाथियों की चिंघाड़ रथों की गड़ गड़ाहट, घोड़ों की हिन-हिन हाट तथा पैदलों की मारो मारो काटो २ के चीत्कार से आकाश भर गया। किन्हीं की सवारी ऊँट की थी तो किसी की गिद्ध किसी की भालू की तो किसी की सिंहकी। किसीकी वकरा और सूअर की सवारियाँ थीं।

हे राजन्! विरोजन पुत्र बलि मय दानव के निर्मित वैतापस नामक विमान पर सवार होकर युद्ध कर रहे थे और विमान कभी दृश्य और कभी अदृश्य हो जाता था। वलि की शोभा उदयाचल पर उदित चन्द्रमा के समान वा नमुचि, शम्बर, बाणासुर, विपचित्ति, अयोमुख, कालिनाभ, हयग्रीव आदि दैत्य जो समुद्र मन्थन के समय उपस्थित थे बड़ा भयङ्कर युद्ध करने लगे। जब इन्द्र ने दैत्यों के बल को बढ़ता देखा तो वे अपने ऐरावत हाथी पर चढ़कर लोकपालों तथा अनेक बीर देवताओं के साथ युद्ध को चले। बलि इन्द्र से भिड़ा। तारकासुर स्वामी कार्तिक से। हेति वरुण से तथा प्रहेति मित्र से भिड़ गया। कलिनाभि, से यमराज मय-दानव से, विश्वकर्मा शम्भर से, त्वष्टा विरोचन से सविता, अश्विनीकुमार वृष पर्वा से भिड़ गये। बलि के सौ पुत्र सूर्यदेव से भिड़ गये। शुम्भ निशुम्भ से भद्र काली। भस्मासुर से महादेव जी, महिषासुर से अग्निदेव राहु से चन्द्रमा। शुक्राचार्य से बृहस्पति और नरकासुर से शनिश्चर देव

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भिड़ गये। इस प्रकार देवासुर संग्राम होने लगा। राजा वलि ने दस वाण इन्द्र पर तीन वाण एरावत पर तथा चार बाण उसके रक्षकों पर एक वाण महावत पर मारा। जब इन्द्रने यह देखा तब उन्होंने बड़ी फुर्तीसे दस भिल्ल वाण वलि पर मारे। उन से वलि के वाण कट कर गिर गये। तब वलि ने एक शक्ति इन्द्र पर छोड़ी किन्तु इन्द्र ने उस शक्ति को भी मार्ग में काट डाला। वलि जो जो अस्त्र मारते थे इन्द्र उन्हें तत्काल काट देते थे। हे राजन्! इन्द्रकी बीरतासे घबड़ाकर राजा वलि अन्तर्द्धान होगये तथा अपनी आसुरी माया प्रगट की। कभी देवताओं पर पर्वत वृक्ष और मूसलाधार जल वृष्टि करने लगे तो कभी सर्प, बिच्छू अन्य विषैले जन्तु डंक मारने लगे। मारो मारो काटो काटो चिल्लाती हुई सैकड़ों राक्षसियाँ तथा राक्षस प्रकट होगए। राजा वलि ने प्रलय कालीन अग्नि उत्पन्न करदी। जब देवता तथा इन्द्र दैत्यराज वलि की इस माया से घबड़ा उठे। तब उन्होंने भगवान् का ध्यान किया। वे अन्तर्यामी प्रभु वहीं पर प्रकट हुए। उन के प्रभाव से असुरों की वह कपट माया तुरन्त विलीन हो गई। जब कालनेमि दैत्य ने भगवान् को गरुण पर देखा तब उसने उन पर त्रिशूल से आक्रमण किया। तब भगवान् ने उस कालनेमि को पकड़कर उसके बाहनों सहित मार डाला। माली, सुमाली और माल्यवान को भी भगवान् ने चक्र से मार डाला।

—❀—

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

देवासुर संग्राम की समाप्ति का वर्णन

श्रीशुकदेव जी बोले–हे राजा परीक्षित! भगवान् की कृपा से देवताओं की व्याकुलता दूर हो गई वे बड़े उत्साह से युद्ध करने लगे। इन्द्र ने दैत्य राज वलि पर बज्र उठाया। वे बड़े निर्भय होकर युद्ध में डटे हुए थे। इन्द्र ने राजा बलि का अनादर करते हुए बज्र हाथ में लेकर इस प्रकार के बचन कहे–रे मूर्ख! तू नट की भाँति हमें धोखा देकर अपनी माया की चालों से हमें जीतना चाहता है। हम माया के स्वामी हैं। हम पर माया का कोई प्रभाव नहीं चल सकता है। तुझ जैसे मूर्ख लुटेरों को हम उसके स्थान से नीचे गिरा देतेहैं। अब मैं अपने सौ धार वाले बज्र से तेरा सिर काटता हूँ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

बलि ने हँस कर कहा—रे इन्द्र! हारजीत तो काल की प्रेरणा से होती है। अपना काम तो केवल कर्म करना है। यह सारा जगत् काल के आधीन है। इसलिए अपने को हारजीत से कोई शोक तथा हर्ष नहीं है। तुम स्वयं इस तत्व को नहीं जानते। जय पराजय यश अपयश की हमें कोई चिन्ता नहीं। हमें तुम्हारे इन कठोर बचनों का कोई दुःख नहीं है।

श्रीशुकदेवजी बोले--हे परीक्षित! राजा बलि ने इन्द्र को इस प्रकार डाट कर झेंपा दिया और उन्होंने कान तक खींच खींच कर अनेको बाणों का प्रहार किया दैत्यराज बलि के प्रहार से व्याकुल होकर इन्द्र ने बलि पर बज्र का प्रहार किया। उस बज्र के प्रहार से राजा बलि पर्वत के समान विमान से पृथ्वी पर गिर पड़े। राजा बलि के परममित्र भस्मासुर ने इन्द्र की हंसली पर प्रहार किया और एरावत में भी एक गदा मारी। उस गदा की चोट से एरावत हाथी मूर्छित हो गया तब इन्द्र का सारथि तुरन्त रथ ले आया और इन्द्र को बचा लिया। उस दैत्य ने सारथि पर भी चोट की किंतु इन्द्र ने बज्र से उसका भी सिर काट दिया।

नारदजी के मुख से भस्मासुर की मृत्यु सुन कर उस के भाई नमुचि, बलि, पाक इत्यादि ने इन्द्र को घेर लिया। तथा सौ बाणों से इन्द्र के सारथि तथा घोड़ों को घायल कर दिया। देवता बड़े घबड़ाये किंतु इन्द्र थोड़ी देर में शत्रुओं का नाश कर के अपने तेज से चमकने लगे तब उन्होंने अपने बज्र से दैत्यों के सिर काटना आरम्भ कर दिया नमुचि ने इन्द्र पर त्रिशूल का प्रहार किया किंतु इन्द्र ने अपने बाण से उस त्रिशूल को काट गिराया और नमुचि पर बज्र की चोट की किंतु नमुचि उस बज्र से नहीं मरा यह देख कर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस बज्र के प्रहार से वृत्तासुर जैसा महा दैत्य तथा पर्वतों के पङ्ख तक काट डाले किंतु यह तुच्छ दैत्य न मर सका। अब इसका ब्रह्मतेज समाप्त हो गया प्रतीत होता है। जब इन्द्र इस प्रकार विशाद कर रहे थे। उसी समय आकाश वाणी हुई कि इस दानव की मृत्यु सूखी तथा गीली वस्तु से न होगी। तब, देवराज इन्द्र ने विचार करके समुद्र के फेन से शत्रु को मारने का उपाय सोचा क्योंकि फैन न सूखा है और न गीला है। उस

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

फैंन के मारने से नमुचि का सिर कट गया। जब ब्रह्माजी ने देखा कि दानवों का नाश हो गया है तब उन्होंने नारद जी को देवताओं के पास भेज कर उन देवासुर संग्राम को बन्द करा दिया। देवता लोग नारद जी की बात मान शान्त होगये और अपने लोक को चले गये। तत्पश्चात दैत्यों ने युद्ध में मरे हुए दानवीर बलिको लेकर अस्ताचल की यात्रा की। वहाँ शुक्राचार्यजी ने अपनी संजीवनी विद्या से राजा बलि तथा मरे हुए दैत्यों को पुनः जीवित कर दिया। राजा बलि परम ज्ञानी थे जय पराजय हर्ष, विषाद को समान समझते थे इस लिए उन्हें अपनी पराजय का कोई दुःख नहीं हुआ।

—❀—

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

भगवान् के मोहिनी रूप को देख कर महादेव जी का मोहित होना।

दोहा—देखि मोहिनी रूप प्रभु, मोहे मनमथ नाथ।
आगे दौड़े मोहिनी, पीछे गौरीनाथ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित ! भगवान् शङ्कर जी को जब यह पता चला कि भगवान् ने मोहिनी रूप धारण कर के असुरों को छला है तब वे पार्वतीजी के साथ नन्दी पर सवार होकर भगवान् के बैकुण्ठ धाम को गए।

श्री शङ्कर जी ने कहा—हे आराध्य देव ! आप जगत् के स्वामी विश्वव्यापी तथा जगत् गुरु हैं। इस जगत् के आदि मध्य, अन्त, भी आप ही हैं। आप ही ईश्वर तथा आत्मा हैं। आप चिन्मात्र ब्रह्म हैं आप जगत से परे तथा द्वैत अद्वैत सब कुछ आप ही हैं। हे प्रभो! जब ब्रह्मा तथा मरीच आदि महर्षि भी आपके रहस्य को नहीं जानते तो फिर रजोगुणी तथा तमोगुणी असुर तथा मनुष्य तो आपको जान ही कैसे सकते हैं। हम आपके उस विश्वमोहिनी रूप को देखने आये हैं जिससे सभी मोहित होगए थे। जब भगवान् शङ्कर ने इस प्रकार प्रार्थना की तब विष्णु भगवान् हँसकर बोले—हे शंकरजी! उस समय धन्वन्तरि के हाथ से दैत्यों ने अमृत का कलश छीन लिया था। उस समय मैंने देवताओं को अमृत पिलाने तथा दैत्यों का मन हरने के लिये वह विश्व मोहिनी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

 समुद्र मंथन

In Public Domain. Chambal A

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

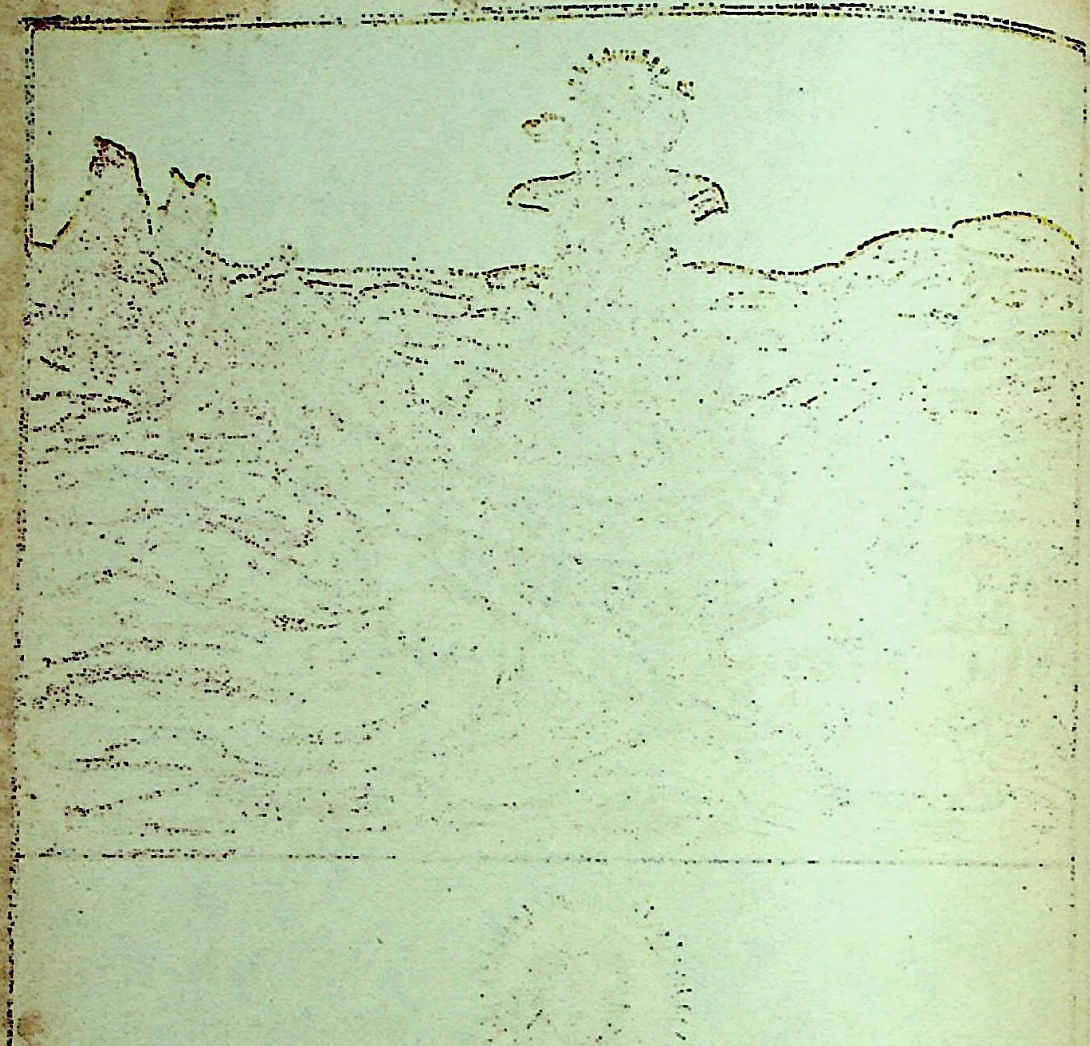

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रूप धारण किया था, हे देव शिरोमणि ! मैं आपको वह रूप दिखा तो सकता हूँ किन्तु वह रूप आपके देखने योग्य नहीं है। उस रूप के देखने से काम उत्तेजित हो उठता है।

भगवान् शंकर ने कहा—हे भगवन् ! कामदेव को तो मैंने पहिले ही जला दिया है। अब वह मुझ पर प्रभाव नहीं डाल सकता। आप मुझे अपना विश्व मोहिनी रूप दिखाइये। श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित ! शंकर जी के ऐसे बचन सुन कर भगवान् उसी क्षण अन्तर्ध्यान हो गए। कुछ समय बाद वहाँ पर एक अति मनोहर उपवन की सृष्टि हुई और उस में एक अति सुन्दरी गेंद उछालती हुई दृष्टि आई। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग अद्भुत थे। तथा सुन्दरता में अलौकिक थी। उसकी कमरमें कछनी और एक अति मनोहर पीली साड़ी पहिने हुए थी। जब वह गेंद उछालने के लिए दौड़ती थी तो उसके स्तन उछलते हुये अति मनोहर प्रतीत होते थे। उन पर हार की लड़ियाँ भी हिलने लगती थीं। उसके स्तनों के भार से उसकी पतली कमर अति मनोहर लगती थी। वह इधर-उधर दौड़ने और लचकने आदि से ऐसी प्रतीत होती थी मानो दोलड़ हो जायगी। वह अपनी ठुमुक २ चाल से गेंद को इधर उधर उछालती फिरती थी। उसके कपोलों पर अति मनोहर अलकें तथा कुण्डल झिलमिला रहे थे। वायु के झोंके से उसकी साड़ी सरक जाती थी तब वह अपने बाँये हाथ से उसे सम्हालती थी गेंद खेलते २ उस नव योवना सुन्दरी ने शंकर जी की ओर कटाक्ष भरे नेत्रों से देखा। बस शंकर जी का मन हाथ से चला गया। वे उसको बार २ निहारने लगे और उसके पीछे २ दौड़ने लगे वह गेंद के पीछे दौड़ती थी और शङ्कर जी उसके पीछे दौड़ते थे। उस समय शङ्कर जी को अपने सेवकों तथा पार्वतीजी का कोई ध्यान न रहा और वे उन्मत्त हाथी की भाँति उस कामुक हथिनी रूपी स्त्री के पीछे दौड़ने लगे। दौड़ते २ उस सुन्दरी की साड़ी खिसक कर कछनी तक आ गई। वह वस्त्र हीन मोहिनी शंकरजी को ओर लज्जित भाव से देखने लगी तथा अपने को शंकर जी से बचाने के लिए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की आड़ में छिपने लगी और शंकरजी की विफलता पर हँसने लगती थी। शंकर जी

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

का मन उनके वश में न रहा और वे काम के वशीभूत हो गये । उन्होंने लपक कर उस सुन्दरी के जूड़े को पकड़ लिया तथा उसे अपनी दोनों बाहुओं में भर कर आलिङ्गन किया। वह सुन्दरी अपने को शङ्कर जी से छुड़ाने की चेष्टा करने लगी। उस छीना झपटी में उसके केश बिखर गये वह वस्त्र हीन होगई। भगवान् शङ्कर के भुज पाशों से वह छूट कर आगे को दौड़ी तो भगवान् शंकर का वीर्य स्खलित हो गया । वह अमोघ वीर्य जहाँ जहाँ पड़ा वहाँ वहाँ सोने चाँदी की खान बन गई। आगे आगे मोहिनी रूप धारी भगवान् की माया तथा पीछे २ शङ्कर जी दौड़ते थे। वे अनेकों मुनियों के आश्रम, वन, पर्वत, सरोवर तथा उपवनों में इसी प्रकार दौड़ते २ पीछे २ गये। जब शंकरजी का वीर्य स्खलित हो गया तब उन्होंने भगवान् की माया में अपने को वशीभूत जान कर अपने स्वरूप का ध्यान किया और उन्होंने इस दुखद प्रसङ्ग को त्याग दिया। वे कहने लगे—भगवान् की माया अपार है। उसे जान लेना मेरी शक्ति से बाहर है। इस प्रकार सावधान हो कर शङ्कर जी अपनी पहली स्थिति में हो गए। उस क्षण भगवान् नारायण पुरुष शरीर धारण करके प्रगट हुए और हँसते हुए बोले—हे शंकर जी! मुझे प्रसन्नता है कि आप मेरी स्त्री रूपिणी माया से मोहित होकर फिर अपनी पहली स्थिति में आ गये। मेरी अपार माया जब अपना रूप रचती है तब बड़े २ जितेन्द्रिय पुरुष भी उससे छुटकारा नहीं पा सकते हैं। केवल आप ही ऐसे हैं जो मेरी माया में फँस कर फिर उससे निकल सके। किन्तु अब आप को मेरी यह माया नहीं सतावेगी। मैं ही काल रूप से सृष्टि में यह क्षोभ उत्पन्न करता हूँ। इस लिये अब मेरी इच्छा के बिना मेरे भक्तों को यह कामदेव नहीं सतावेगा । श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! भगवान् विष्णु से इस प्रकार सत्कार पा कर शंकर जी प्रसन्न चित्त पार्वती जी के साथ कैलाश पर चले गये। उन्होंने इस प्रसङ्ग को बड़े आनन्द के साथ बड़े बड़े ऋषि, महर्षियों तथा सती जी को सुनाया।

हे राजा परीक्षित्! मैंने तुम्हें भगवान्‌की यह ऐश्वर्यमयी लीला सुनाई है। समुद्र मन्थन आदिका वर्णन कियाहै। जो भगवान्‌के इन गुणोंका वर्णन करता है उसके समस्त क्लेश दूर होजाते हैं। मैं भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार करता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

अगले सात मन्वन्तरों का वर्णन करना

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! विवस्वान (सूर्य) के पुत्र सातवें मनु वैवस्वत हुए । जो वर्त्तमानकाल के मनु हैं । इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है । वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करुष, प्रषध्र तथा वसुमान् यह दस पुत्र थे । इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार तथा ऋभु ये प्रधान देवगण हैं । इनका इन्द्र पुरन्दर है । कश्यप, अत्री, वशिष्ठ विश्वामित्र गौतम, जमदग्नि तथा भारद्वाज, सप्तर्षि हैं । इसी मन्वन्तर में कश्यपजी की भार्या अदिति के गर्भ से बावन भगवान ने अवतार लिया था ।

हे राजा परीक्षित् ! सूर्य भगवान् की दो पत्नियाँ थीं संज्ञा तथा छाया उनकी तीसरी पत्नी का नाम बड़वा था । संज्ञा के तीन पुत्र यम, यमी तथा श्राद्धदेव थे । छाया के सावर्णि, शनिश्चर तथा तपती नाम की कन्या थी जो सम्वर्ण की पत्नी हुई । संज्ञा ने ही बड़वा का रूप धारण कर के अश्विनीकुमारों को उत्पन्न किया ।

हे राजन् ! आठवें मन्वन्तर में छाया के पुत्र सावर्णि मनु होंगे । उनके पुत्र निर्मोक, विरजस्क आदि होंगे । सुतपा, विरज तथा अमृतप्रभ ये मुख्य देवगण होंगे । विरोचन पुत्र वलि देवताओं के इन्द्र होंगे ।

विष्णु भगवान् ने इसी राजा बलि से तीन पग पृथ्वी माँग कर तीनों लोकों को ले लिया था । ये राजा बलि आगे चल कर इन्द्र होंगे । फिर इन्द्र पद को त्याग कर सिद्धि प्राप्त करेंगे । गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋषिश्रृङ्ग तथा मैं (व्यास जी) सप्तर्षि होंगे सार्वभौम नामक भगवान् का अवतार होगा । वे भगवान् (इन्द्र) पुरन्दर से देवलोक का राज छीन कर राजा बलि को देंगे । हे राजन् ! नवें मन्वन्तर में वरुण के पुत्र दक्ष सावर्णि होंगे । भूतकेतु, दीप्तकेतु, पुत्र होंगे । मरीच आदि देवगण होंगे । अद्भुत नाम का इन्द्र होगा ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

द्युतिमान आदि सप्तर्षि होंगे । ऋषभ के रूप में भगवान् का अवतार होगा। और वे अद्भुत इन्द्र को त्रिलोकी का राज्य देंगे ।

दसवें मन्वन्तर में उपश्लोक के पुत्र ब्रह्म सावर्णी दसवें मनु होंगे। भूरिषेण आदि उनके पुत्र होंगे तथा हविष्मान् आदि सप्तर्षि होगे। सुवासन तथा विरुद्ध आदि मुख्य देवगण होंगे। शम्भु नाम का इन्द्र होगा। विष्वक्सेन के रूप में भगवान् का अवतार होगा ।

ग्यारहवें मन्वन्तर में धर्म सावर्णि नाम के ग्यारहवें मनु होंगे। उनके सत्य आदि दस पुत्र होंगे । तथा विहङ्गम आदि देवगण होंगे । अरुण आदि सप्तर्षि होंगे । तथा वैधृत नाम का इन्द्र होगा । धर्मसेतु के रूप में भगवान् का अवतार होगा ।

हे राजन् ! बारहवें मन्वन्तर में रुद्र सावर्णि मनु होंगे। देववान् आदि उनके पुत्र होंगे । ऋतुधामा इन्द्र होगा । तथा हरित आदि देवगण होंगे। तपो मूर्ति आदि सप्तर्षि होंगे । सुधामा के रूप में भगवान् अवतार लेंगे।

तेरहवें मन्वन्तर में देवसावर्णि नाम के मनु होंगे । चित्रसेन आदि उनके पुत्र होंगे। सुकर्मा आदि देवगण होंगे तथा दिवस्पति नाम का इन्द्र होगा । निर्मोक आदि सप्तर्षि होंगे तथा योगेश्वर के रूप में भगवान् अवतार धारण करेंगे । चौदहवें मन्वन्तर में इन्द्र सावर्णि मनु होंगे। उस आदि उनके पुत्र होंगे । चाक्षुष आदि देवगण होंगे । सुरनी नाम का इन्द्र होगा अग्नि आदि सप्तर्षि होंगे । बृहद् भानु भगवान् का अवतार लेंगे । हे राजा परीक्षित ! ये चौदह मन्वन्तर ही भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों काल में वर्त्तते रहते हैं । एक सहस्र चतुर्युगी इन चौदह मन्वन्तरों में वर्त्ति इसी को एक कल्प कहते हैं।

—❀—

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

मनु आदि के कर्मों का वर्णन करना ।

राजा परीक्षित ने पूछा–हे भगवन् ! इस मनु सप्तर्षि इन्द्रादि कौन नियुक्त करता है तथा यह अपना कार्य किस प्रकार करते हैं ।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! मनु सप्तर्षि तथा प्रधान देव

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ही नियुक्ति भगवान् ही करते हैं। उन्हीं भगवान् की प्रेरणा से मनु आदि सब विश्व की व्यवस्था को चलाते हैं समय के उलट फेर से चतुर्युगी के अन्त में जब वेद तथा श्रुतियाँ नष्ट सी हो जाती हैं तब सप्तर्षि पुनः उनका उद्धार करते हैं और सनातन धर्म की रक्षा करते हैं। अपने अपने मन्वन्तर में स्वामी मनु भगवान् की प्रेरणा से पृथ्वी पर धर्म की मर्यादा को चारों चरणों से पूर्ण करते रहते हैं। तथा धर्म की स्थापना करते रहते हैं। मनु पुत्र सारे मन्वन्तर में काल तथा देश के अनुसार प्रजा तथा धर्म पालन करते रहते हैं। देवता लोग पंच महायज्ञ आदि कर्मों में अपना भोग स्वीकार करते रहते हैं। इन्द्र त्रिलोकी का ऐश्वर्य भोगता हुआ प्रजा का पालन करता है। समय समय पर वृष्टि करता है। भगवान् प्रगट में ऋषियों का रूप धारण कर के ज्ञान तथा योगादिक उपदेश करते रहते हैं। प्रजापतियों के रूप में सृष्टि रचते हैं। अपना स्वरूप धारण कर के काल के अनुसार प्राणियों का संहार करते हैं।

हे राजन् ! मैंने तुम को कल्प, महाकल्प तथा मन्वन्तर आदि का वर्णन सुना दिया। पुराण के ज्ञाता अवान्तर कल्प में चौदह मन्वन्तरों का ही निरूपण करते हैं।

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

राजा बलि का स्वर्ग पर विजय प्राप्त करना।

दो०—दैत्यराज बलि कोप करि, जीते सबरे देव।
तीनलोक का राज्य करि, सेवा उन से लेव॥

राजा परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन् ! भगवान् ने राजा बलि को क्यों बाँधा और उनने तीन पग पृथ्वी माँग कर त्रिलोकी का राज्य कैसे ले लिया। कृपा कर मुझे समझाइये।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! इन्द्र ने राजा बलि को हरा कर उसके राज्य तथा उसकी सम्पति को छीन लिया। तब श्री शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से अपने शिष्य राजा बलि को जीवित किया। राजा बलि ने तन मन से उनकी सेवा की और अपना सर्वस्व उनके चरणों में अर्पण कर दिया। दैत्यों ने भृगुवन्शी ब्राह्मणों की अति सेवा की। तब

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भृगुवंशी ब्राह्मणों ने राजा बलि से प्रसन्न होकर विश्वजीत नाम का एक यज्ञ कराया उस यज्ञ की अग्नि से अग्नि देवता ने राजा बलि को एक सोने का रथ हरे रङ्ग के घोड़े, सिंह के चिन्ह की ध्वजा, सोने का दिव्य धनुष तथा दो अत्तय तर्कश दिये। प्रहलाद जी ने प्रसन्न होकर राजा बलि को कभी न मुर्झाने वाली एक दिब्य माला दी। शुक्राचार्य जी ने एक दिव्य शङ्ख दिया। इस प्रकार महारथी दैत्यराज बलि, रथ, अस्त्र, शस्त्र, कवच आदि से सुसज्जित होकर एक विशाल दैत्य सैना के साथ इन्द्र से लड़ने के लिये अमरावती की ओर चला। दैत्यराज बलि ने अमरावती को घेर लिया।

वह इन्द्र की पुरी अमरावती अति सुन्दर उद्यान, उपवन तथा नन्दन वन से सुशोभित थी। उन उद्यानों में देवाङ्गनायें क्रीड़ा, बिहार करती थीं तथा सरोवरों में जल क्रीड़ा करती थीं। आकाश गङ्गा अमरावती को चारों ओर से घेर कर खाई का काम करती थी उस पुरी में बड़े बड़े विशाल भवन सोने का द्वार तथा मणियों से जड़े झाड़ कलश आदि विश्वकर्मा के बनाये हुए थे। उसमें दस करोड़ विमान देवताओं के विहारा के लिये रहते थे। वहाँ की देवाङ्गनाएँ सदा सोलह वर्ष की योवन तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण थीं। उनके अङ्गों से सुगन्धि निकलती थी। स्थान स्थान पर मृदङ्ग, शङ्ख, नगाड़े तथा देवङ्गनाओं के मधुर सङ्गीत सुनाई देते थे। उस अमरावती में अधर्मी, कामी, लोभी, पुरुष नहीं जा सकते थे। उस अमरावती को दैत्यराज बलि ने चारों ओर से घेर कर अपने महान् शङ्ख की घोर ध्वनि की, जिसे सुन कर सभी देवताओं के हृदय दहला उठे।

देवराज इन्द्र घबड़ा कर बृहस्पति जी के निकट गये और बोले-हे गुरुदेव! मेरे पुराने शत्रु बलि ने बड़ी तैयारी के साथ अमरावती पर धावा किया है। हम लोग उसका सामना नहीं कर सकते। न जाने उसने ऐसी शक्ति कहाँ से प्राप्त की है। उसमें इतना बल, इतना तेज कहाँ से आया है। बृहस्पति जी बोले-हे देवराज! मैं बलि की उन्नति का भेद जानता हूँ। भृगुवंशी ब्राह्मणों ने अपना तेज दे कर उसको शक्तिशाली बना दिया है। भगवान् नारायण के अतिरिक्त उस बलि के सम्मुख तुम तथा तुम्हारे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

देवता लोग नहीं ठहर सकते। इसलिए काल की गति को समझ कर तुम लोग स्वर्ग छोड़ कर छिप जाओ तथा फिर अपने अभ्युत्थान की प्रतीक्षा करो। जब वह अपने गुरु का तिरष्कार करेगा तब वह परिवार सहित स्वयं नष्ट हो जावेगा। देवगुरु बृहस्पति जी ने देवताओं को इस प्रकार सलाह दी तब वे सब देवता छिप छिप कर अमरावती को छोड़ कर चले गये। देवताओं के चले जाने पर दैत्यराज बलि ने अमरावती पर अधिकार कर लिया। बलि ने विश्व बिजयी हो कर सौ अश्वमेध यज्ञ किये उनके प्रभाव से राजा बलि का यश तीनों लोकों से बाहर सम्पूर्ण दिशाओं में फैल गया। वे ब्राह्मणों की कृपा से सम्पूर्ण पृथ्वी का राज भोगते हुए आनन्द से रहने लगे।

—❁—

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

कश्यपजी द्वारा अपनी भार्या अदिति से पयोव्रत का उपदेश करना।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! दैत्यों के भय से देवता गण भाग कर वन पर्वतों आदि में छिप कर महान् कष्ट सहने लगे। उनकी माता अादिति को अपने पुत्रों के प्रवास से तथा श्रीहीन होने से बड़ा क्लेश हुआ। उस समय कश्यप जी घोर तप में लगे थे। जब उनकी समाधि टूटी, तब वे आदिति के आश्रम पर गए। उन्होंने आश्रम की बिगड़ी व्यवस्था को देख कर अदिति से पूछा—हे प्रिये! आप उदास क्यों हैं और आश्रम की ऐसी बुरी व्यवस्था किस कारण हुई। तुमने ब्राह्मणों का कोई अहित तो नहीं किया। धर्म का पालन तो ठीक ठीक हुआ है गृहस्थ धर्म का पालन तो ठीक ठीक होता रहा है। तुमने किसी योगी, साधु, सन्यासी का अपकार तो नहीं किया है। तुम्हारे सभी पुत्र कुशल मङ्गल से तो हैं।

अदिति ने कहा—हे देव! गौ, ब्राह्मण, तथा धर्म की तो आप की यह दासी सब प्रकार से सेवा करती रही है। कोई अतिथि, भिक्षु, याचक भी अपने द्वार से विमुख नहीं गया है। मैंने गृहस्थोचित सभी धर्मों का पालन किया है यह समस्त रजोगुणी, तमोगुणी तथा सतोगुणी, आप ही

...Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की प्रजा है। देवता तथा असुर दोनों ही आप के पुत्र हैं आप दोनों में समभाव रखते। हे प्रभु! मैं आप की दासी हूँ। आप कृपा कर के मेरे पुत्रों के दुःख दूर कीजिये। दैत्यों ने उनकी पुरी अमरावती को छीन लिया है। वे दुःखी हो कर वन पर्वतों में छिपे फिरते हैं। मैं दुःख सागर में डूब रही हूँ मेरे पुत्रों के दुःख को दूर करने वाले आपही हैं।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! अदिति की यह दुःख भरी प्रार्थना सुन कर कश्यप जी बोले—हे प्रिये! यह जगत् जिन भगवान् की माया से ओत प्रोत है वे सब के स्वामी हैं। वे ही तुम्हारे पुत्रों के दुख को दूर करेंगे। तुम उन्हीं की आराधना करो।

अदिति ने कहा–हे भगवन्! मुझे वह उपाय बताओ जिसके करने से वे सत्य सङ्कल्प भगवान् मेरे पुत्रों के कष्टों को दूर करेंगे।

कश्यप जी बोले–हे प्रिये! जब मुझे सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा थी तब एक व्रत ब्रह्माजी ने मुझे बताया था। वही मैं तुम्हें बताता हूँ। उस व्रत का नाम पयोव्रत है। फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में बारह दिन तक दूध पी कर श्रद्धा भक्ति से भगवान् की आराधना करे। अमावस्या के दिन से इस व्रत को आरम्भ करे अमावस्या के दिन यदि मिल सके तो सूअर की खोदी मिट्टी ले कर उसे अपने शरीर में मल कर नदी तथा तालाब में स्नान करे। तथा उस समय इस मन्त्र का उच्चारण करे।

मन्त्र–त्वं देव्यादि बराहेण रसायः स्थानमिच्छता।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पापमानं ये प्रणशय ॥

इस मन्त्र को स्नान के समय कहते जाना चाहिये। तत्पश्चात् नित्य नैमित्तिक नियमों से भगवान् की मूर्ति, वेदी, सूर्य, जल, अग्नि तथा गुरुदेव के रूप में उन की पूजा करनी चाहिये। उनकी स्तुति इस प्रकार करे–हे परमात्मा! आप अन्तर्यामी हैं। समस्त प्राणी आप में निवास करते हैं इसी लिये आप का नाम बासुदेव है। आप सब के साक्षी हैं। मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप यज्ञ रूप हैं। आप समस्त शक्तियों को धारण करते हैं। हे केशव! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप वर देने में समर्थ हैं। इस प्रकार भगवान की स्तुति करे फिर मन्त्रों द्वारा अर्घ्य

In Public Domain,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

...द्य दे तथा आचमन समर्पण करे । गन्ध माला आदि से पूजन करके ...ध से स्नान कराये । तत्पश्चात् वस्त्र यज्ञोपवीत आभूषण, पाद्य, आचमन ...न्ध धूप आदि द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वारा समर्पित करे । तत्पश्चात् दूध ...त और मिष्ठान मिले चावलों का नैवेद्य लगावे और उसी द्वादशाक्षर मंत्र ...े हवन करे । उस नैवेद्य को भक्तजनों में बाँट कर स्वयं गृहण करे । तत्पश्चात् ...ाचमन कराके ताम्बूल भेंट करे । फिर एक सौ आठ बार द्वादशाक्षर ॐ ...मो भगवते वासुदेवाय: मंत्र का जप करे । यथा शक्ति से ब्राह्मणों को ...खीर का भोजन करावे । तत्पश्चात् भोजन करे । इसी प्रकार दूसरे ...दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत होकर भगवान् का पूजन करे । नित्य ...दूध पीकर रहना चाहिए और उपरोक्त क्रिया नित्य करनी चाहिये । इस प्रकार ...बारह दिन तक पूजा, होम, जप, ब्राह्मण भोजन आदि करते रहना चाहिए ।

फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा से त्रियोदशी तक ब्रह्मचर्य से रहे और पृथ्वी ...पर सोवे त्रिकाल स्नान करे असत्य और पाप की चर्चा न करे । सब ...भोगों को त्याग दे । त्रियोदशी के दिन शास्त्रोक्त विधि से भगवान् का ...पूजन करे । पंचामृत स्नान करावे दूध की खीरसे भगवान् का भोग लगावे ...तथा उसी खीर से होम करे । इसके बाद आचार्य तथा ऋत्विजों को वस्त्र ...भूषण से तृप्त करे । भूखों को अन्न वस्त्र बाँटे । प्रतिपदा से त्रियोदशी ...तक भागवत की कथा आदि सुने ।

हे देवि ! यह श्रेष्ठ आराधना ब्रह्माजी ने मुझे बताई थी । इस के ...करने से तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होंगे अतः यह पयोवृत नाम का ...अनुष्ठान सर्वयज्ञ व सर्व वृत्त तथा तपस्याओं का मुख्य साधन है !

—❀—

॥ सत्तरहवाँ अध्याय ॥

भगवान् का अदिति को वरदान देना ।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! कश्यपजी के बताये पयोव्रत अनुष्ठान अदिति ने बड़ी सावधानी से नियम पूर्वक किया । तब ...दिति की आराधना से प्रसन्न होकर पीताम्बर धारी भगवान् प्रगट हुए । ...की चार भुजायें थीं । तथा शङ्ख चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

थे। अदिति ने पृथ्वी पर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रेमाश्रु बहाने लगी। हे परीक्षित! भगवान् के स्वरूप को देवमाता अदिति एकटक देखने लगी और इस प्रकार स्तुति कर के बोली—हे भगवन्! आप यज्ञ पुरुष हैं। भवसागर से आप ही उतारने वाले हैं। आप की शरण में जो आता है उस की विपत्तियाँ नाश हो जाती हैं। आप ही जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा लय करने वाले विश्वरूप हैं मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

श्रीशुकदेव जी बोले—जब देवमाता अदिति ने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान् इस प्रकार बोले—हे देव माता! तुम्हारी अभिलाषा को मैं जानता हूँ। तुम अपने पुत्रों के दुःख से दुःखी हो। दैत्यों ने उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली है। तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम्हारे पुत्र दैत्यों को जीत कर अपनी सम्पत्ति प्राप्त कर लें तथा तुम्हारे इन्द्रादि पुत्र दैत्यों का नाश कर दें और खोये हुए यश को भी प्राप्त कर लें। किन्तु हे देवि! इस समय उन असुरों पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती क्योंकि मैं तथा ब्राह्मण इस समय उन के अनुकूल हैं। इस समय देवताओं की विजय नहीं हो सकती किन्तु हे देवि! तुम्हारे अनुष्ठान से मैं अति प्रसन्न हूँ। अतः तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए अपने अन्श से कश्यप के वीर्य में प्रवेश कर के तुम्हारे गर्भ में प्रवेश करूंगा। अब तुम कश्यप प्रजापति को मेरा स्वरूप समझ कर उन की सेवा करो इस गुप्त रहस्य को किसी के सम्मुख प्रकट न करना।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! इतना कह कर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गए। अदिति यह जान कर कि भगवान् मेरे गर्भ से अवतार लेंगे कश्यप जी की सेवा करने लगी। कश्यप जी ने अपने योगबल से इस रहस्य को समझ लिया था और अपने में भगवान् का अंश प्रविष्ट जान कर तपस्या का चिर संचित वीर्य अदिति के गर्भ में धारण किया। यह रहस्य मय भेद ब्रह्माजी को मालूम होगया तब उन्होंने इस प्रकार स्तुति की।

ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! आप की जय हो। आप त्रिगुणमय हैं आपको मेरा नमस्कार है। तीनों लोक आप की नाभि में स्थित हैं। आपका वैकुण्ठधाम तीनों लोकों से परे है। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

दो०—छोटे बनि याचक भये, तीन लोक के नाथ।
बलि के सम्मुख जाय कर, फैलाये निज हाथ॥

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! समय आने पर अदिति के गर्भ से आदि पुरुष भगवान् प्रकट हुए। उस समय सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्र तथा जगत् का वातावरण और शोभा अलौकिक थी। वायु सुगन्धित हो कर बहने लगी। सूर्य का प्रकाश मन्द गति से आने लगा। उस शुभ अभिजित नक्षत्र में विजया द्वादशी के दिन भगवान् का जन्म हुआ। उस दिन भाद्रपद शुक्ल पक्ष की श्रवण नक्षत्र वाली द्वादशी थी। सूर्य, आकाश के मध्य में थे। शङ्ख, ढोल, मृदङ्ग आदि बजने लगे तथा फूलों की वर्षा होने लगी। गन्धर्व, अप्सरायें नाचने लगीं तथा देवता उन की स्तुति करने लगे। अदिति ने भगवान् के अलौकिक दिव्य स्वरूप की झाँकी की। वह चतुर्भुज स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त था। उनके बड़े बड़े नेत्र कमल के समान थे। श्याम वर्ण पर पीताम्बर शोभायमान था। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह तथा बनमाला शोभायमान थी। सिर पर मुकुट कमर में करधनी तथा बाजूबन्द शोभायमान थे। उनकी क्रान्ति से कश्यप जी के घर का अन्धकार दूर हो गया। प्रजापति कश्यप ने जब भगवान् का अवतार हुआ देखा तब वे अति विस्मय में हो कर भगवान् की जय बोलने लगे। कश्यप जी ने बामन भगवान का जाति कर्म संस्कार किया। उनका उपनयन संस्कार होने लगा तथा गायत्री का उपदेश दिया। बृहस्पति जी ने यज्ञोपवीत दिया तथा कश्यप जी ने मेखला दी। पृथ्वी ने मृगचर्म और चन्द्रमा ने दण्ड तथा माता अदिति ने कोपीन धारण करने को दी। आकाश ने छत्र, ब्रह्मा जी ने कमण्डल, सप्तर्षियों ने कुशा तथा सरस्वती ने रुद्राक्ष की माला प्रदान की। इस प्रकार बामन भगवान् का उपनयन संस्कार हुआ। कुबेर जी ने भिक्षा का पात्र तथा जगत् जननी उमा ने भिक्षा दी। इस प्रकार ब्रह्मचारी बामन भगवान् का सब ने सम्मान किया और वे ब्रह्म तेज से शोभायमान होने लगे। हे राजन्! उस समय दैत्यराज बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों की आज्ञानुसार

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सौ वाँ अश्वमेध यज्ञ कर रहा था। उसका यह यज्ञ इन्द्र पद प्राप्ति के लिए अन्तिम यज्ञ था। यह यज्ञ नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगु कच्छ नामक स्थान पर हो रहा था। बामन भगवान् बटुक भेष में असह्य ब्रह्म तेज के साथ उसी स्थान पर पहुँचे। राजा बलि के यज्ञ में बैठे हुए सब ब्राह्मण ऋत्विज आदि ने उनको देखा किंतु उनके असह्य तेज को देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि सूर्य भगवान् स्वयं राजा बलि से प्रसन्न होकर वर देने को आ रहे हैं। बामन भगवान् के तेज से सबके तेज निस्तेज होगये। शुक्राचार्य अपने शिष्यों सहित बड़े विस्मय में आये तथा हजारों प्रकारकी कल्पनायें करने लगे। कहीं अग्निदेव अथवा सनत्कुमार तो नहीं हैं। अथवा इन्द्र तो विघ्न उपस्थित करने नहीं आरहा है। उसी समय हाथमें छत्रदंड तथा जल से भरा कमण्डल लेकर बामन भगवान् ने यज्ञ में प्रवेश किया। उनके गले में यज्ञोपवीत तथा कमर में मूँज की मेखला थी। बगल में मृग चर्म सिर पर जटा धारण किए हुए बौने ब्राह्मण के भेष में मायापति भगवान् ब्रह्मचारी के रूप में यज्ञ मण्डप में पधारे। उनके तेज से प्रभावित होकर सभी ब्राह्मण ऋत्विज अग्नियों सहित उठकर खड़े हो गए और उन्हें प्रणाम किया। बामन भगवान् के सभी अङ्ग लघुरूप में अति सुन्दर दिव्य तथा दर्शनीय थे। बलि ने उठकर उन्हें आसन प्रदान किया और मधुर वाणी से उनका सत्कार करते हुए उनके पैर धोये तथा उनकी पूजा की। दैत्यराज ने उनके चरणों के धोवन को अति पवित्र मान कर बड़े प्रेम से मस्तक पर धारण किया।

दैत्यराज बलि ने कहा—हे ब्राह्मण कुमार ! आपका शुभ आगमन अति उत्तम हुआ। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि बड़े २ ब्रह्मर्षियों का तेज तथा तपस्या ही स्वयं मूर्तिमान होकर मेरे यज्ञ को पवित्र करने के लिए पधारे हैं आपके चरणोदक से मैं तथा मेरा घर पवित्र हो गया। सम्पूर्ण फलों का फल मुझे अनायास ही मिल गया। आपके ये छोटे २ चरण जिस भूमि पर पड़े हैं वह सारी पृथ्वी पवित्र हो गई। ब्रह्मचारी जी आप जो चाहें धन, रत्न, सोना, गाय उत्तम भवन अन्न विवाह के योग्य

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कन्या, घोड़े, हाथी पीने की वस्तु जो चाहें मुझसे माँगलें मैं अवश्य ही मुँह माँगी वस्तु आपको दूँगा।

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

बामन भगवान् का तीन पग पृथ्वी माँगना बलि का बचन देना तथा शुक्राचार्य जी का राजा बलि को रोकना।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! बलि के धर्म युक्त तथा मधुर बचनों को सुनकर बामन भगवान् ने प्रसन्न होकर अति आदर किया।

भगवान् ने कहा—हे दैत्यराज! आप जो कुछ कह रहे हैं वह आप ही के अनुकूल तथा कुल परम्परा के योग्य है। क्यों न हो आप ब्राह्मण के भक्त तथा शुक्राचार्य जी के परम भक्त हो। आप के पितामह प्रहलाद जी भी तो ऐसे ही थे। आपके कुल में कोई ऐसा नहीं था जिसने दान देने की कह कर फिर न दिया हो। एक बार देने की प्रतिज्ञा करके उसे पूरा न किया हो। याचकों के मुख से दान की याचना सुनकर तथा शत्रु से युद्ध की ललकार सुनकर अपना मुँह मोड़ लिया हो। आपके वंश में ऐसा कायर कोई भी नहीं हुआ है आपके प्रपितामह हिरण्याक्ष बड़े ही वीर थे। उन्होंने हाथ में गदा लेकर सारे लोगों को विजय किया था उनके भाई हिरण्यकशिपु उनसे भी अधिक बढ़कर वीर थे। जिस समय हिरण्यकशिपु भगवान् विष्णु पर झपटा उस समय भगवान् विष्णु ने भी सूक्ष्म रूप बनाकर नासिका छिद्र से प्रवेश करके उसके हृदय में जा बैठे। तब वह वीर अति क्रोधित होकर सिंहनाद करता हुआ पृथ्वी स्वर्ग आकाश तथा पाताल को कम्पायमान करने लगा। प्रहलाद के पुत्र विरोचन जो आपके पिता थे वे बड़े ही ब्राह्मण भक्त थे यहाँ तक कि देवताओं ने ब्राह्मणों का वेश बनाकर उनकी आयु दान रूप में माँगी तब उन्होंने अपनी आयु भी अपने शत्रु देवताओं को दे दी। आप भी उन्हीं के अनुगामी हैं। हे दैत्य शिरोमणे! आप मुँह माँगी वस्तु देने वालों में सर्वोत्तम हैं। इसलिए मैं तो आपसे केवल तीन पग पृथ्वी अपने रहने के लिये माँगता हूँ यह मैं जानता हूँ कि आप सातों द्वीपों के स्वामी हैं किंतु मुझे केवल अपनी आवश्यकतानुसार ही चाहिये अधिक नहीं चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजा बलि ने हँसते हुए कहा—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण कुमार ! तुम्हारी बातें वृद्धों की सी हैं किन्तु बुद्धि बच्चों की जैसी है लेकिन अभी तुम बच्चे ही तो हो। मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ। तुम्हें द्वीप के द्वीप दान करने में समर्थ हूँ। तुमने मुझे अपने मधुर बचनों से सन्तुष्ट किया है किन्तु मुझसे केवल तीन डग पृथ्वी ही माँगी है। यह कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। हे ब्रह्मचारी जी ! मेरे पास आकर जिस याचक ने एक बार माँग लिया उसे फिर आजीवन अन्यत्र माँगने की आवश्यकता नहीं। अतः तुम अब भी जितनी आवश्यकता हो उतनी भूमि माँग लो।

भगवान् बोले—हे राजन् ! इस संसार में सन्तोष के अतिरिक्त मनुष्य की तृप्ति विषय वासनाओं से नहीं होती। सन्तोष के कारण ही इन्द्रियों की तृप्ति होती है। जिसको तीन पग भूमि में सन्तोष नहीं है उसे सारा भूखण्ड प्राप्त होने पर भी सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि उसके मन में और अधिक पाने की इच्छा बनी रहती है। हे राजन् ! पृथु, गय आदि राजा सातों द्वीपों के स्वामी थे। उनके पास भोगों की अपार सामिग्री थी किन्तु वे भी बिना सन्तोष अपनी तृष्णा को पूरी न कर सके। प्रारब्ध से जो कुछ मिल जावे उसी में संतोष कर लेना अति उत्तम है। संतोष के बिना तीनों लोकों का राज्य प्राप्त होने पर भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता है और इसी कारण जीव जन्म मरण के चक्कर में रहता है सन्तोषी ब्राह्मण का तेज बढ़ता है तथा असन्तोषी का तेज घटता है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! भगवान् के ऐसे बचन सुन कर राजा बलि हँस पड़े और बोले—अच्छी बात है जितनी आपको आवश्यकता हो उतनी ही ले लो। ऐसा कह कर तीन पग पृथ्वी दान करने का संकल्प करने के लिए राजा बलि ने जल पात्र उठाया। तब शुक्राचार्य जी ने राजा बलि से कहा।

शुक्राचार्य जी बोले—हे दैत्यराज ! तुम यह क्या करते हो मैं इन्हें भली प्रकार पहचानता हूँ। ये अविनाशी भगवान विष्णु ही कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से अवतीर्ण होकर देवताओं की भलाई के लिए तुम्हारे निकट बैठे हैं। ये अभी तुम्हारा सब कुछ छीन लेंगे। तुमने दान

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की प्रतिज्ञा की है। मैं इसे ठीक नहीं समझता। यह दैत्यों के साथ घोर अन्याय है। हे दैत्यराज! यह अभी तुम्हारा तीनों लोकों का राज्य, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, कीर्ति तथा तेज सर्वस्व छीन लेंगे और इन्द्र को दे देंगे। यह विराट् रूप हैं। अपने तीनों डगों से सारे लोकों को नापने में समर्थ हैं। ये विश्वव्यापी हैं। एक पग से पृथ्वी दूसरे पग से स्वर्ग लोक को नाप लेंगे। इन के शरीर से आकाश लोक भर जावेगा। तब तीसरे पग के लिए तुम कहाँ से पृथ्वी दोगे। रे मूर्ख! तू अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण न करने के कारण फिर भी नर्क में जायेगा। इसलिए नकार जाना ही उत्तम है। ऐसा दान उत्तम नहीं होता जिससे अपने जीवन निर्वाह का साधन ही चला जावे। दान, यज्ञ, तप, परोपकार वही उत्तम होता है जिसके साथ साथ अपना जीवन निर्वाह ठीक ठीक चलता रहे। मनुष्य को अपना धन पाँच भागों में बाँटना चाहिए। कुछ धर्म के लिए कुछ यश के हेतु कुछ धन की वृद्धि हेतु कुछ भोगों के हेतु तथा कुछ अपने कुटुम्बियों के लिए धन रखना चाहिये। यदि तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग होने का भय है तो मैं तुम्हें श्रुति का वचन सुनाता हूँ। किसी को देने की प्रतिज्ञा करना तो सत्य है तथा मना कर देना असत्य है। यह शरीर एक वृक्ष है तथा सत्य इसका फल फूल है। इस शरीर रूपी वृक्ष के न रहने पर वह सत्य रूपी फल फूल भी नहीं रह सकते हैं। अपने धन को खर्च कर देने का तात्पर्य यह है कि अपने शरीर को खर्च कर दिया। जब शरीर ही न रहा तब सत्य कहाँ से रहेगा। मैं दूँगा! ऐसा कह देने का अर्थ अपने धन को व्यय कर देना है धन के खाली हो जाने से उस का शरीर न रहेगा और न उसका सत्य ही रहेगा। जो मैं नहीं दूँगा! ऐसा कहता है यानी असत्य बोलता है तो वह धन को सुरक्षित रखने वाला है। धन के सुरक्षित रखने से शरीर सुरक्षित रहता है और शरीर के सुरक्षित रखने से सत्य सुरक्षित रहता है। किन्तु यह असत्य भाषण हर समय नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह अपकीर्त्ति का कारण हो जाता है और अपकीर्ति मृत्यु के समान है। असत्य भाषण स्त्रियों को प्रसन्न होने के लिए, हास परिहास में, विवाह आदि में, कन्या आदि की प्रशंसा करते समय अपनी आजी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विका की रक्षा के लिए। प्राण संकट में आने पर, गौ ब्राह्मण की रक्षा के लिए तथा किसी को मृत्यु से बचाने के लिए झूँठ बोलना पाप नहीं है।

—❀—

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

भगवान् बामन का बिराट रूप धारण करके पृथ्वी को नापना।

दोहा—तीन लोक के नाथ ने छल्यौ बली को आय।
लेकर के सब राज धन इन्द्रहि दीन्हों जाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब शुक्राचार्य जी ने राजा बलि को इस प्रकार समझाया तब राजा बलि ने शुक्राचार्य जी से मधुर वाणी में इस प्रकार कहा—राजा बलि ने कहा हे गुरुदेव! गृहस्थ आश्रम में रहने के लिये अर्थ धर्म काम का संचय किया जाता है और आपके कथनानुसार आजीविका की रक्षा करना अति आवश्यक है किन्तु हे गुरुदेव! मैं भक्त वर प्रहलाद जी का पौत्र हूँ। मैं एक बार देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब मैं इस ब्राह्मण से कैसे कहूँ कि अब मैं नहीं दूँगा। इस पृथ्वी ने कहा है कि असत्य से बढ़कर अधर्म नहीं है। मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ किन्तु झूँठे मनुष्य का भार नहीं सह सकती हूँ। मैं राज्य के नाश से तथा दरिद्रता से और नर्क में गिरने से इतना नहीं डरता हूँ। जितना ब्राह्मण के प्रति धोका देने से डरता हूँ। यह राज्य, पृथ्वी, धन सम्पत्ति, मृत्यु के पश्चात सब साथ छोड़ देते हैं। यदि उस धन, लक्ष्मी तथा भूमिसे ब्राह्मणोंको दान देकर सन्तुष्ट न किया गया तो उनके संचयसे लाभ ही क्या है। शिवि, दधीचि, आदि दानी पुरुषों ने अपना सर्वस्व त्याग दिया। फिर मुझे ही क्यों सोच विचार करना चाहिए। हे गुरुदेव! इस पृथ्वी का उपभोग पहले भी बड़े बड़े दैत्यों ने किया है किन्तु वे भी इस पृथ्वी को ज्यों का त्यों त्याग कर चले गए। हे प्रभो! युद्ध क्षेत्र में पीठ न दिखाने वाले बहुत से वीर हैं किन्तु ऐसे लोग अति दुर्लभ हैं जो उत्तम पात्र के मिलने पर श्रद्धा के साथ दान करें। यदि सत्पात्र को दान देकर वह दान देने वाला दुःख भोगता है तो वह दुःख भी उत्तम है। इसलिए मैं इस ब्राह्मण कुमार की इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा। हे ब्रह्मन्! जिन यज्ञ पुरुष भगवान् की आराधना बड़े २ ब्रह्म

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

देवता यज्ञों द्वारा करते हैं वे स्वयं ही हमारे यज्ञ में पधारे हैं। तो पृथ्वी दान करने में मुझे कोई हानि नहीं। क्योंकि मुझे पृथ्वी न दान करने पर भी ये बल पूर्वक मुझ से छीन लेंगे। यदि यह ब्राह्मण हैं तो मुझे ऐसा सत्पात्र दान देने के लिए कहाँ मिल सकता है। इसलिए मेरा दोनों प्रकार से ही भला है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! शुक्राचार्य जी ने जब यह देखा कि मेरा शिष्य दैत्यराज बलि मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है तब दैवी की प्रेरणा से उन्होंने दैत्यराज बलि को शाप दे दिया।

शुक्राचार्य ने कहा—"रे मूर्ख! तू अज्ञानी होते हुए भी पण्डितों की सी बातें करता है। तूने अहंकार वश मेरे बचनों को नहीं माना है। इस लिए शीघ्र ही अपनी लक्ष्मी को खो बैठेगा।" हे राजन् दैत्यराज बलि शाप के योग्य नहीं थे क्योंकि वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल थे वे गुरू श्राप को सुन कर भी अपनी प्रतिज्ञा से न टले। उन्होंने बामन भगवान् की विधि-वत पूजा की और तीन पग पृथ्वी देने का संकल्प हाथ में जल लेकर कर दिया। महारानी विन्ध्यावती ने जल का स्वर्ण पात्र लाकर बामन भगवान् के चरण पखारने के लिये दैत्यराज बलि को दिया। दैत्यराज बलि ने बड़े आनन्द से प्रेम मग्न होकर भगवान् के सुन्दर चरणों को पखारा और चर-णोदक अपने शिर पर चढ़ाया। उस समय आकाश से पुष्पों की वृष्टि होने लगी। देवता, गन्धर्व, अप्सराऐं गुणगान करने लगे।

हे राजा परीक्षित! इसी समय एक बिचित्र घटना घटी उन बामन भगवान् का वह स्वरूप बढ़ने लगा। बस विश्व विराट स्वरूप इतना बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, दसों दिशाऐं समुद्र, पाताल, देवता, मनुष्य, पशु पक्षी सभी उसमें समा गये। राजा बलि ने उस विराट स्वरूप में सम्पूर्ण चराचर जगत को देखा। चरण तल में रसातल तथा चरणों में पृथ्वी कुण्ड-लियों में पर्वत जाघों में मरुदगण, घुटनों में पक्षी देखे। विराट् भगवान् के वस्त्रों में सन्ध्या जघन स्थान में असुर, नाभि में आकाश, हृदय में नक्षत्र तथा कोख में, सातों समुद्र देखे इस प्रकार राजा बलि ने सर्वात्मा भगवान् में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा। भगवान् के पास चक्र सुदर्शन, सारंग धनुष,

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पाँच·जन्य शंख, कौमोद की गदा तथा चन्द्राकर ढाल, तलवार, अक्षय वाणों के दो तरकश सुन्ददादि पार्षदगण तुरन्त सेवा में आगए। भगवान् के मस्तक पर मुकुट, वक्षस्थल पर बनमाला कण्ठ में कौस्तुभ मणी कमर में करधनी, बाजूबन्द तथा शरीर पर पीताम्बर शोभायमान था। उन्होंने अपने एक पग से सारी पृथ्वी दूसरे पग से स्वर्ग नाप लिया। शरीर से आकाश तथा भुजाओं से दिशाओं को भर दिया। तीसरे पग के लिये बलि के पास कोई वस्तु शेष नहीं रही। भगवान् का दूसरा पग महलोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक में पहुँच गया था सत्यलोक में पहुँचने पर ब्रह्माजी ने उनके नख चन्द्र को अपने कमण्डल के जल से धोया उसी से गङ्गाजी की उत्पत्ति हुई।

॥ इक्कीसवाँ अध्याय ॥

राजा बलि का बन्धन।

दोहा—बलि बाँध्यौ सब धन हर्‌यौ ऐसी प्रभु की टेक।
बामन बनि याचक भये, नहीं निभायो भेक॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् के नखचन्द्र की ज्योति से सत्यलोक की ज्योति फीकी पड़ गई। उन्होंने सनकादिक महर्षियों सहित भगवान् के चरण के शुभागमन से अति आनन्द प्रकट किया तथा उन के चरणों की वन्दना की। उन्होंने उस चरण को अपने कमण्डल में धोया उसी से गंगा जी उत्पन्न हुईं। यह गंगा जी पृथ्वी पर जा कर तीनों लोकों को पवित्र करने वाली हैं।

जब दैत्यों ने बामन भगवान् के इस छल को देखा तब वे चिढ़ कर आपस में कहने लगे। अरे यह ब्राह्मण नहीं है यह तो मायावी विष्णु है। इसने देवताओं का कार्य करने के लिए ही ब्राह्मण का रूप धारण किया है। हमारे स्वामी राजा बलि यज्ञ में दीक्षित होने के कारण इससे कुछ नहीं कह सकते हैं। क्योंकि वे बड़े धर्मात्मा तथा सत्य निष्ठा हैं। ब्राह्मणों के तो यह परम भक्त हैं। वे कभी असत्य नहीं बोलते हैं। अतः इस समय हमारा यह धर्म है कि हम अपने शत्रु को मार डालें। ऐसा सोच कर दैत्यराज बलि ने असुरों के अपने हथियार उठा लिए और राजा बलि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के रोकने पर भी वे वामन भगवान् पर टूट पड़े । हे राजा परीक्षित्! जब भगवान् के पार्षदों ने दैत्यों को आक्रमण करते हुए देखा तब उन्होंने हँस कर उन्हें रोक दिया । नंद, सुनंद, जय, विजय, प्रवल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विहन, गरुड़, जयन्त, श्रुतिदेव, पुष्प दन्त तथा सात्वत यह सभी पार्षद दस २ हजार हाथियों के बल वाले थे। वे असुरों की सेना पर टूट पड़े । जब दैत्यराज बलि ने भगवान् के पार्षदों तथा अपने सैनिकों को लड़ते देखा तब शुक्राचार्य जी का शाप स्मरण करके उन्होंने अपने दैत्यों को रोक दिया । वे बोले—हे दैत्यो ! यह समय हमारे अनुकूल नहीं है। काल भगवान् को दबाना शक्ति से बाहर है। वही काल जो पहिले देवताओं की अवनति तथा हमारी उन्नति का कारण था अब वही हमारी अवनति तथा देवताओं की उन्नति का कारण हो रहा है। दैव के अनुकूल होने पर तुम लोगों ने देवताओं को सैकड़ों बार हराया । अब उसी दैव की प्रतिक्षा करो ।

श्रीशुकदेव जी बोले—राजा वलि के ऐसे बचन सुन कर दानव लोग दैत्यराज बलि को छोड़ कर रसातल को चले गये। भगवान् के संकेत से गरुड़ जी ने राजा बलि को वरुण पाश में बाँध लिया । उस दिन यज्ञ का अन्तिम दिन होने से सोमरस पान करने का दिन था। जब भगवान् ने बलि को बाँधा तब पृथ्वी आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओं में हाय हाय शब्द होने लगा । सब लोग राजा बलि के धैर्य तथा सर्वस्व दान की प्रशंसा कर रहे थे । हे राजा परीक्षित! बलि को बाँध कर भगवान् ने उस से कहा रे अभिमानी असुर ! तुमने तीन पग पृथ्वी देने के लिये मुझ से कहा था। दो पगों में मैंने भूलोक और स्वर्ग लोक नाप लिया, शरीर से आकाश भर गया। अब तीसरे पग के लिये मुझे भूमि दे कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो । प्रतिज्ञा के पूरा न होने पर तुम्हें नर्क भोगना पड़ेगा। तुम्हारे गुरु ने तो असत्य बोलने के लिये तुम से कहा ही था। अब तुम अवश्य नर्क में जाओगे। जो दाता याचक से देने की प्रतिज्ञा कर के नहीं देता है तो उसके सारे पुण्य फल नष्ट हो जाते हैं उसे नर्क में गिरना पड़ता है तुम्हें धनी होने का बड़ा अहंकार था तुमने मुझ से 'दूँगा' ऐसी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding by MoE-IKS

प्रतिज्ञा की थी। अब तुम इस धोखे तथा असत्य भाषण के बदले कुछ वर्षों तक नर्क भोगो।

——:❀:——

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

बलिके द्वारा भगवान् की स्तुति करना तथा बलि पर भगवान् का प्रसन्न होना।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! जब असुर शिरोमणि बलि का भगवान् ने इस प्रकार अनादर किया और उससे ऐसे कटु बचन कहे, तब भी दैत्यराज बलि अपने धैर्य तथा सत्य से नहीं डिगे और बोले, हे आराध्य देव! आपकी कीर्ति महान है। मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता। मैंने आपको धोखा नहीं दिया है। मैं अभी अपने बचनों को सत्य करके दिखाता हूँ। आपने एक पग से मेरी सारी पृथ्वी नापली है तथा दूसरे पग से स्वर्गलोक नाप लिया है अब आप तीसरे पग को मेरे सिर पर रख दीजिये। इतना कह कर दैत्यराज बलि ने अपना शिर झुका दिया दैत्यराज बलि बोले—भगवन्! मुझे नर्क में जाने का भय नहीं है और न मुझे तीनों लोकों के राज्य से च्युत होने का भय है। मैं बरुण पाश से भी नहीं डरता हूँ। मेरे पास चाहे कुछ भी न रहे। आप चाहे मुझे कितना ही दण्ड दें। इसका भी मुझे भय नहीं है यदि मुझे भय है तो अपनी अपकीर्ति होने का है। महान् पुरुषों द्वारा दिया हुआ दण्ड तो जीव के लिए उपदेश रूप है माता, पिता, भाई, बन्धु, मोह वश दण्ड नहीं दे सकते हैं आप हमारी भलाई के लिए असुरों को छिपे रूप से इस प्रकार दण्ड देकर शिक्षा देते रहते हैं। आप हमारे परम गुरु आराध्य देव तथा पूजनीय हैं। हम लोग धन, वल, वैभव आदि के मद में अन्धे हो जाते हैं तब आप उन वस्तुओं को हम से छीन कर हमें उपदेश रूपी नेत्र प्रदान करते हैं। हे भगवन्! आपने हमारा महान् उपकार किया है। असुर लोग आपसे वैरभाव रखते हैं परन्तु वे भी अनुपम मोक्ष प्राप्त करते हैं। वैसा ही दण्ड आप मुझे देकर अनुग्रहीत कर रहे हैं। इस दण्ड से न तो मुझे कोई कष्ट है और न लज्जा। आपने मेरे पितामह प्रहलाद जी पर अति कृपा की थी। हिरण्यकशिपु ने आप से बैर किया था। प्रहलाद जी

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

को अनेकों कष्ट दिये। प्रहलाद जी परम ज्ञानी होने के कारण उन्होंने अपनी सम्पूर्ण नाशवान विभूतियाँ आपके चरणों में न्यौछावर कर दीं। इसी कारण उन्हें आपका परम पद प्राप्त हुआ। ऐश्वर्य और लक्ष्मी के कारण ही जीव की बुद्धि मारी जाती है। वह अपने जीवन को नाशवान तथा अनित्य नहीं समझता है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित् ! जिस समय राजा बलि भगवान् से इस प्रकार कह रहे थे उसी समय भक्तवर प्रहलाद भी वहाँ पर आ गए। राजा बलि ने अपने पितामह को श्री सम्पन्न चतुर्भुज स्वरूप पीताम्बर धारण किये हुये देखा तब बलि ने वरुण पाश में बंधे हुए ही उन्हें सिर झुका कर प्रणाम किया। उनके नेत्रों में अश्रु झलक उठे तथा लज्जा से सिर नीचा होगया। जब भक्तवर प्रहलादजी ने भगवान् के दिव्य स्वरूप के दर्शन किये और नन्द सुनन्द आदि पार्षदों को देखा तब वे आपने स्वामी के प्रेम में पुलकित होगए और आनन्द विभोर होकर प्रेमाश्रु बहाते हुए सिर झुका कर उन्हें साष्टाङ्ग दण्ड प्रणाम किया।

प्रहलादजी बोले—हे भगवन् ! आपने इस बलि को तीनों लोकों का ऐश्वर्य तथा इन्द्र पद प्रदान किया था वही अब आपने इससे छीन लिया। जैसा आपका देना अति सुन्दर है वैसा आपका लेना भी अति सुन्दर है। आपने इस असुर से राज-लक्ष्मी छीन कर इस पर बड़ी कृपा की है। लक्ष्मी के मद में बड़े २ ज्ञानी पुरुष भी अन्धे हो जाते हैं। आप ही इन असुरों पर कृपा करते रहते हैं आपको मेरा नमस्कार है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् इतना कह कर प्रहलाद जी शान्त हो गए। उस समय ब्रह्माजी कुछ कहना चाहते थे किंतु इतने ही में दैत्यराज बलि की पतिव्रता पत्नी बिंध्यावती भगवान् के चरणों में प्रणाम करके इस प्रकार बोली—बिन्ध्यावती ने कहा, हे परमात्मन् ! आप अपने खेल के लिये ही इस सम्पूर्ण जगत की सृष्टि रचते हो। कुबुद्धि लोग ही अपने को इसका स्वामी मानते हैं वास्तव में तो आप ही इसके कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता हैं। अपने को झूँठ मूँठ कर्त्ता मानने वाले आपको क्या दे सकते हैं। वह तो स्वयं आप ही की कृपा के भिखारी हैं।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रह्माजी ने कहा—हे जगत्गुरो! अब आप इस दैत्य को छोड़ दीजिये। इसने आप को सर्वस्व दे दिया। सारी पृथ्वी तथा पुण्य कर्मों से उपार्जित स्वर्ग लोक भी दे दिया। यहाँ तक कि इसने अपने शरीर को भी आत्मा सहित आपके चरणों में समर्पित कर दिया। अतः अब यह दण्ड का भागी नहीं है। जो मनुष्य श्रद्धा तथा प्रेम से आपको एक तुलसीदल भी समर्पित कर देते हैं आप उसी में प्रसन्न हो जाते हैं। किंतु इस बलि ने तो अपने तीनों लोकों का राज्य दान में दे दिया है फिर दण्ड का भागी किस प्रकार हो सकता है।

श्री भगवान् बोले—हे ब्रह्मा जी! मेरी जिस पर कृपा होती है मैं पहले उसका धन छीन लेता हूँ क्योंकि मनुष्य धन के अहङ्कार में अन्धा होकर मुझे भूल जाता है और अनेक योनियों में भटकता रहता है। मेरी अति कृपा से ही उसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है। उत्तम कुल, रूप, विद्या धन, एश्वर्य आदि उसे प्राप्त होते हैं। परन्तु जो मेरे शरणागत होते हैं उन्हें ये वस्तुऐं मोहित नहीं करती हैं मैंने दानवराज बलि की भली प्रकार परीक्षा करली है इसका धन छीन लिया। राज-पद से अलग कर दिया। तथा इसे वरुण पाश में बाँध लिया। भाई बन्धु सेवक इसे त्याग कर चले गए। यहाँ तक कि गुरू ने इसे शाप दे दिया किन्तु इस धैर्यवान् ने अपना धैर्य नहीं त्यागा और इतना दुःख भोगने पर भी अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुआ तथा अपने धर्म पर अटल रहा। मैं अब इसे उत्तम लोक देता हूँ जिसके लिए बड़े २ देवता भी तरसते हैं। सावर्ण्य मन्वन्तर में यह मेरा भक्त इन्द्र होगा। तब तक यह विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित सुतल लोक में रहेगा। वहाँ पर रहने वाले प्राणियों को मानसिक रोग, थकावट, तन्द्रा नहीं व्यापती तथा कोई भी शत्रु उसे पराजित नहीं कर सकता।

तब भगवान् राजा बलि से बोले—हे महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने कुटुम्बियों सहित सुतल लोक में निवास करो। वह लोक देवताओं के लिए भी दुर्लभ है जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा न मानेगा उसको मेरा चक्र काट देगा। वहाँ पर मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। हे बलि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funded by IKS

मैं सदा तुम्हारे पास दुर्गपाल बन कर वहाँ पर रहूँगा। मेरे प्रभाव से तुम्हारे सभी आसुरी भाव नष्ट हो जावेंगे।

—❀—

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

बलि का बन्धन से मुक्त होना, और सुतललोक की यात्रा करना।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब विराट भगवान् ने राजा बलि से इस प्रकार कहा तब राजा बलि के नेत्रों में अश्रु झलक उठे। प्रेम में विह्वल हो कर गद् गद् वाणी से हाथ जोड़ कर बोले—हे भगवन्! मैंने तो आप को पूरा प्रणाम भी नहीं किया है केवल चेष्टा मात्र ही प्रणाम करने की है। उसी के फल स्वरूप आपने मुझे वह परम पद दिया है जो बड़े २ भक्तों को दुर्लभ है। आपने मुझ असुर पर अति कृपा की है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि वे वरुण पाश से शीघ्र ही मुक्त हो गए तब राजा बलि ने पृथ्वी पर लेट कर विराट भगवान् ब्रह्मा जी तथा शङ्कर जी को साष्टाङ्ग, प्रणाम किया और अपने असुरों को लेकर सुतल लोक चले गए। तब यज्ञ पुरुष भगवान ने स्वर्ग लोक का राज्य देवराज इन्द्र को दे दिया। जब प्रहलाद जी ने देखा कि राजा बलि बन्धन से मुक्त होकर भगवान् की अहेतु की भक्ति प्राप्त कर चुके हैं तब गद्गद् कण्ठ से उनकी स्तुति की।

प्रहलादजी बोले—हे भगवान्! आपने उस असुर को वह सदगति प्रदान की है तथा उसे कृपा प्रसाद दिया है जो ब्रह्माजी तथा शङ्कर जी को भी प्राप्त नहीं हुई है। आप हमारे दुर्गपाल बनकर रहेंगे। हे सर्व्यात्मन! जिनके चरणों की वन्दना ब्रह्मादि लोकपाल करते रहते हैं तथा जिनके चरण कमलों का मकरन्द किसी को भी प्राप्त नहीं होता है वे भगवान् हमारे द्वारपाल बन गए। आपकी यह अहैतुकी कृपा अवश्य ही हम दैत्यों पर है। श्री भगवान् बोले—बेटा प्रहलाद! अब तुम भी अपने पौत्र बलि के साथ सुतल लोक में आनन्द पूर्वक रहो। मैं नित्य गदा ले कर तुम्हारे पास दुर्गपाल बनकर रहूँगा। तुम्हें वहाँ मेरे दर्शनों का परमानन्द सदा प्राप्त होता रहेगा। तुम्हारे सब कर्म बन्धन नष्ट हो जावेंगे।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

श्री शुकदेवजी बोले—भक्तवर प्रह्लादजी ने 'जो आज्ञा' कह कर उन्हें प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके सुतल लोक को चले गये। तब भगवान् ने निकट में ही बैठे हुए श्रीशुक्राचार्य जी से कहा—हे ब्रह्मन्! आप अपने शिष्य के इस यज्ञ को पूर्ण कीजिये। इसमें जो त्रुटि रह गई हो उसे आप पूर्ण कर दीजिये। ब्राह्मणों की कृपा से सम्पूर्ण भूलें सुधरजाती हैं।

शुक्राचार्य जी बोले—हे भगवन्! जिस यज्ञ में यज्ञ पुरुष भगवान् स्वयं पधारे हैं भला फिर उस यज्ञ में त्रुटि तथा अपूर्णता किस प्रकार रह सकती है। वह तो आपके आगमन से ही पूर्ण हो गया किन्तु अब आप स्वयं मुझे आज्ञा कर रहे हैं तो मैं अवश्य उसका पालन करूँगा।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यज्ञ पुरुष भगवान की आज्ञानुसार शुक्राचार्य जी ने यज्ञ पूर्ण किया। बामन् भगवान् ने उन तीनों के राज्य को बलि से भिक्षा माँगकर अपने बड़े भाई इन्द्र को दे दिया और उन्होंने उपेन्द्र का पद ग्रहण किया।

हे राजा परीक्षित! मैंने तुम्हें भगवान् की यह उत्तम कथा सुनाई है जो मनुष्य नित्यप्रति यह कथा सुनता या सुनाता है उसे परमगति प्राप्ति होती है। देव यज्ञ, पितृ-यज्ञ, तथा मनुष्य यज्ञ आदि के आरम्भ करते समय भगवान् की इस लीला का अवश्य कीर्त्तन करना चाहिये। ऐसा करने से वह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाता है।

—:०:—

॥ चौबीसवाँ अध्याय ॥

भगवान् के-मत्स्यावतार की कथा का वर्णन करना।

दोहा—प्रलयकाल के बीच में, जल की राशि अपार।
सत्यव्रत के हेतु प्रभु, लियो मच्छ अवतार॥

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्! आदि पुरुष भगवान् ने लोकनिन्दित मत्स्य योनि क्यों धारण की। यह कथा मुझे कृपा पूर्वक सुनाइये।

सूतजी बोले—हे शौनकादिक ऋषियो! महाराज परीक्षित् के इस प्रकार पूछने पर श्री शुकदेवजीने मत्स्यावतार भगवान् की कथा का वर्णन किया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! कल्प के अन्त में ब्रह्मा जी के सो जाने पर ब्रह्मा नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। उस समय पृथ्वी लोकादि समुद्र में निमग्न हो गये थे। ब्रह्मा जी नींद के कारण सोना चाहते थे इस कारण उनके मुख से वेद निकल पड़े और उन वेदों को उनके निकट रहने वाला हयग्रीव नामक दैत्य चुरा कर ले गया। उस हयग्रीव से वेदों की रक्षा करने के लिये ही भगवान् ने मत्स्यावतार धारण किया।

हे राजा परीक्षित् ! उस समय सत्यव्रत नाम के एक राजर्षि थे। वे जल पी कर ही तपस्या कर रहे थे। वे राजर्षि सत्यव्रत इस वर्तमान महाकल्प में सूर्य के पुत्र श्राद्धदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए। तथा उन को भगवान् ने वैवस्वत मनु नियुक्त किया। एक समय राजर्षि सत्यव्रत जल में तर्पण कर रहे थे। उनकी अञ्जलि में छोटी सी एक मछली आ गई। राजर्षि सत्यव्रत ने उस मछली को फिर जल में डाल दिया तब मछली ने दीनता पूर्वक राजा सत्यव्रत से कहा—हे दयालू राजा ! मुझे जल में रहने वाले बड़े जन्तु खा डालेंगे। अतः तुम मुझे इस जल में न छोड़ो। राजा सत्यव्रत ने उस मछली को अपने कमण्डल में रख लिया और अपने आश्रम पर ले आये वह मछली कमण्डल के जल में एक रात में ही इतनी बढ़ गई कि उस कमण्डल में न समाई। तब राजा ने उस मछली को पानी के एक बड़े मटके में डाल दिया। किन्तु वह मछली दो घड़ी ही में तीन हाथ बढ़ गई और उस मटके में न समाई। तब राजा सत्यव्रत ने उस मछली को एक सरोवर में डाल दिया। वहाँ पर वह मछली इतनी बढ़ी कि उस सरोवर में भी न समाई। तब राजा ने उस मछली को उससे बड़े सरोवर में डाल दिया। वह उस सरोवर में भी न समाई तब सत्यव्रत को बड़ा आश्चर्य हुआ वे जिस जिस बड़े सरोवर में डालते थे वह मत्स्यराज उतना ही बढ़ता जाता था। अन्त में राजा ने उसे समुद्र के जल में डाल दिया। तब मत्स्य भगवान् ने राजा से कहा—हे राजन् ! तुम मुझे इस जल में न डालो मुझे यहाँ के जन्तु खा जायेंगे। मत्स्य की यह बात सुन कर राजा को ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने कहा—मुझे प्रतीत होता है कि आप मुझ को मोहित करने वाले अवश्य ही सर्व शक्तिमान

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अविनाशी भगवान् हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। फिर भी मैं जानना चाहता हूँ कि आपने किस उद्देश्य से यह रूप धारण किया है आपने यह बड़ा अद्भुत रूप धारण किया है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! राजा सत्यव्रत के ऐसे वच सुन कर मत्स्य भगवान् ने कहा–हे सत्यव्रत ! आज से सातवें दिन भूलो आदि तीनों लोक प्रलय होने के कारण समुद्र में डूब जावेंगे। उस सम तुम्हारे पास एक बड़ी नाव आवेगी। उस समय तुम सप्तर्षियों के सा सम्पूर्ण प्राणियों के सूक्ष्म शरीरों को लेकर उस नाव पर चढ़ जाना पृ के समस्त बीजों को भी साथ ले लेना। उस समय सब कुछ समुद्र में डू जावेगा। सर्वत्र अन्धकार छा जावेगा। उस समय सप्तर्षियों की दि ज्योति से तुम नाव पर चढ़ कर इधर उधर बिचरते रहना। तत्पश्चात् प्र आँधी चलेगी तुम्हारी नाव डगमगाने लगेगी। तब मैं तुम्हारे पास इ रूप में आऊँगा। तुम वासुकि नाग की रस्सी बना कर उस नाव मेरे सींग से बाँध कर अपनी रक्षा करना। हे राजन् ! जब तक ब्रह्मा रात रहेगी तब तक मैं उस प्रलय कालीन जल में तुम्हारी नाव को खींच हुआ समुद्र में बिचरूँगा। उस समय मैं तुम्हारे पूछने पर तुम्हें उपदे करूँगा। तब मेरी कृपा से तुम्हें मेरे वास्तविक स्वरूप पर:ब्रह्म का ज्ञा होगा इस प्रकार राजा सत्यव्रत को आज्ञा देकर मत्स्य भगवान् अन्तर्ध्या हो गए। राजा सत्यव्रत पूर्व की ओर मुख करके कुशासन पर बैठ तथा उस समय की प्रतीक्षा करते हुए मत्स्य भगवान् के चरणों का ध्या करते रहे। समय आने पर प्रलय कालीन भयङ्कर मेघ बरसने लगे सारी पृथ्वी जल में डूब गई। उसी समय राजा सत्यव्रत ने भगवान स्मरण किया और वहाँ पर एक नाव आती हुई देखी। तब वे सप्तर्षि सहित समस्त जीवों तथा धान्यों के बीजों को साथ ले कर उस नाव बैठ गये। तब सप्तर्षियों ने राजा सत्यव्रत से भगवान् का ध्यान करने लिए कहा। राजा के ध्यान करते ही उस प्रलय कालीन महा समुद्र मत्स्य भगवान् प्रगट हो गये। तब राजा ने वासुकि नाग में बाँध कर ना उन मत्स्य भगवान् के सींग से बाँध दी और इस प्रकार प्रार्थना करने लगे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजा सत्यव्रत ने कहा—हे प्रभो ! सम्पूर्ण जीवों का आत्मज्ञान अविद्या के कारण लुप्त होगया है। इसी कारण यह प्रलय कालीन पीड़ा उत्पन्न हुई है। यह अज्ञानी जीव अपने ही कर्मों में बँधा हुआ है। वह सुख प्राप्ति के लिए कर्म करता है किन्तु वे कर्म उस के लिए दुःख दायक होते हैं। जो भगवान् अज्ञान को नष्ट करते हैं वे ही मेरे अज्ञान को नष्ट कर दें। आप की सेवा से जीवात्मा निखर उठता है। उसका अन्धकार नष्ट हो जाता है। आप हम पर कृपा कीजिये। आप हमारे अज्ञान को नष्ट करने के लिए अपना उत्तम उपदेश दीजिये। आप सम्पूर्ण जगत् के मित्र, गुरु, प्रियतम तथा ईश्वर हैं। आप देवताओं के भी महादेव हैं। मैं आप की शरण आया हूँ। आप मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान दीजिये।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् जब मत्स्य भगवान् की प्रार्थना राजा सत्यव्रत ने इस प्रकार की तब उन्होंने प्रलयकालीन समुद्र के जल में विहार करते हुए राजा सत्यव्रत को आत्म-तत्व का उपदेश किया। उन्होंने अपने स्वरूप के सब रहस्य प्रकट किये। उन्होंने ज्ञान भक्ति तथा कर्म योग से पूर्ण दिव्य पुराण का उपदेश दिया जिस को "मत्स्य पुराण" कहते हैं। हे राजन् ! जब प्रलय काल का अन्त हो गया और ब्रह्मा की नींद दूर हुई तब भगवान् ने उस हयग्रीव दैत्य को मार कर उन वेदों को उस से छीन लिया तब ब्रह्मा जी को वे पुनः दे दिये। वे राजा सत्यव्रत ज्ञान से परिपूर्ण होने के कारण इस वर्तमान कल्प में वैश्वतनमनु हुए हैं। जो मनुष्य इस उत्तम आख्यान का श्रवण करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। जो नर प्रतिदिन इस अवतार की कथा कहता व सुनता है उसके सब सङ्कल्प पूर्ण हो जाते हैं। जब ब्रह्माजी उस प्रलय कालीन समुद्र में सोगए थे। तब उनके मुख से निकली हुई श्रुतियों को चुराकर वह हयग्रीव दैत्य पाताल लोक में चला गया था। जिन भगवान् ने सप्तर्षियों तथा सत्यव्रत को ब्रह्मतत्व का ज्ञान दिया था उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

❀ अष्टम स्कंध समाप्त ❀

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

वृहद् सुखसागर

॥ नवम स्कंध ॥

श्लोक–योगीन्द्रय नमस्तस्यै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसार सर्पदष्टं यो विष्णुरात्तमम् सुचयत्॥

अर्थ–जिन योगीराज श्रीशुकदेवजीने संसार रूपी सर्पसे डसे हुए राजा परीक्षित् को मुक्ति प्रदान की, उन ब्रह्मःस्वरूप योगीराज को नमस्कार है।

॥ पहिला अध्याय ॥

वैवस्वत मनु के पुत्रों की कथा—

दोहा–नर से नारी हो गये, सुद्युम्न राजकुमार।
देखि बुध मोहित भये, ब्याही सुन्दर नारि॥

राजा परीक्षित् ने कहा–हे ब्रह्मन्! अब तक आपने सब मनुओं का तथा उनके पुत्रों का वर्णन किया है उनके साथ ही साथ जिन जिन मन्वन्तरों में अनन्त शक्तिशाली श्री भगवान् ने अवतार ग्रहण किये हैं उनके चरित्र भी सुना है, किन्तु हे भगवन्! राजर्षि सत्यव्रत जिन्होंने भगवान् की कृपा शक्ति प्राप्ति की थी। जो वर्तमान काल के मन्वन्तर में मनु हैं उनके पवित्र कीर्ति वाले पुत्रों तथा वंश का वर्णन सुनने की अति आकांक्षा है। कृपा कर के सभी मनु पुत्रों का जो भूतकाल में हो चुके हैं जो विद्यमान हैं तथा भविष्य में होंगे सब का चरित्र सुनाने की कृपा कीजिये। सूतजी बोले—हे शौनकादिक ऋषियो! राजा परीक्षित् के इस प्रकार पूछने पर श्री शुकदेव जी बोले–

श्री शुकदेव जी ने कहा—हे राजा परीक्षित्! मैं तुम्हें मनु पुत्रों के उन वंश का वर्णन सुनाता हूँ।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे राजन्! सर्वात्मा भगवान् नारायण की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ उससे ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि से मरीचि उत्पन्न हुए उन से प्रजापति कश्यप हुये। कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुए। विवस्वान् की संज्ञा नाम की पत्नी से श्राद्ध-देव जिन का दूसरा नाम सत्यव्रत था जो कि आगे चल कर वैवस्वत मनु कहलाये उत्पन्न हुए। वैवस्वत मनु के श्रद्धा नाम की पत्नी से दस पुत्र उत्पन्न हुए उन के नाम इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुष, नरिष्यन्त, दृषध्र नभग तथा कार्व था।

हे राजन्! वैवस्वत मनु पहले निःसन्तान थे। भगवान् वशिष्ठ ने सन्तान प्राप्ति के लिए उन से पित्रावरुण का यज्ञ कराया वैवस्वत मनु की पत्नी श्रद्धा ने अपने होता से कन्या प्राप्ति की याचना की। तब होता ने श्रद्धा के कथनानुसार यज्ञ कुण्ड में कन्या के लिये आहुति दी। तब पुत्र के स्थान पर कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम इला था। यह देख कर वैवस्वत मनु को बड़ा खेद हुआ और वे गुरु वशिष्ठ जी से बोले—हे गुरुदेव! आप के ब्रह्मचारी होते हुये भी इस यज्ञ का फल विपरीत क्यों हुआ आपने पुत्र जन्म के लिए यज्ञ किया था फिर कन्या उत्पन्न कैसे हुई। आप जितेन्द्रिय हैं। निष्पाप हैं किन्तु फिर भी संकल्प उल्टा कैसे हुआ। हे राजन्! वशिष्ठ जी ने अपने योगबल से मालूम कर के वैवस्वत मनु से कहा-हे राजन्! तुम्हारे होता ने कन्या प्राप्ति के लिए ही आहुति दी है किन्तु मैं अपने तप के प्रभाव से तुम्हें उत्तम पुत्र ही दूँगा। हे राजा! वशिष्ठ जी ने इला नाम की कन्या को पुरुष बनाने के लिए भगवान् नारायण की स्तुति की। तब भगवान की कृपा से वह इला नाम की कन्या सुद्युम्न नाम का पुत्र बन गई।

एक बार राजा सुद्युम्न अपने मन्त्रियों के साथ शिकार खेलने बन में गए। वह राजकुमार हाथ में धनुष बाण ले कर हिरणों का पीछा करते हुए उत्तर दिशा की ओर मेरु पर्वत की तरहटी में चले गए। उस बन में भगवान शंकर पार्वती जी के साथ विहार करते हैं। वहाँ प्रवेश करते ही राजकुमार सुद्युम्न स्त्री हो गए। उन का घोड़ा घोड़ी हो गया। तथा उन के

...Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सब साथी भी स्त्री होगये। यह देख कर उनका चित्त बड़ा खिन्न हुआ।

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे राजन्! उस मेरु पर्वत की तरहटी में ऐसा कौनसा गुण था जिसके कारण ऐसा होगया। हमें यह ज्ञान कर बड़ा आश्चर्य है आप कृपा कर समझाइये।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक समय भूतनाथ भगवान् शंकर के दर्शनों के लिए बड़े बड़े तपस्वी उस बन में पधारे। उस समय अम्बिका देवी वस्त्रहीन होने के कारण उन तपस्वियों को देख कर अति लज्जित हुईं उन्होंने झटपट भगवान् शङ्कर की गोद से उठ कर अपने वस्त्र धारण किये। उन तपस्वी ऋषियों ने भगवान् गौरीशंकर को बिहार करते हुये देख कर वहाँ से लौट कर बद्रिकाश्रम को भगवान्—नारायण के दर्शनों को चले गये। तब भगवान् शङ्कर ने भगवती अम्बिका को प्रसन्न करने के लिए यह कहा कि जो पुरुष इस स्थान में आवेगा वह स्त्री हो जावेगा। हे राजन्! तभी से कोई पुरुष वहाँ प्रवेश नहीं करता है। इसी कारण राजा सुद्युम्न स्त्री हो गए। जब सुद्युम्न बन में बिचर रहे थे उसी समय वे बुध के आश्रम पर पहुँचे। बुध ने बहुत सी स्त्रियों को तथा उस परम सुन्दर स्त्री को अपने आश्रम पर देखा तो उन्होंने उसके साथ विवाह किया। उस सुन्दरी से बुधके द्वारा पुरुरवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जब सुद्युम्न स्त्री हो गये थे तब उन्होंने वशिष्ट जी का स्मरण किया! सुद्युम्न की यह दैविक दशा देख कर वशिष्ठजी को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सुद्युम्न को पुरुष बनाने के लिए शंकर जी की आराधना की भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर वशिष्ठ जी से कहा—हे वशिष्ठ जी! तुम्हारा यह राजा एक महीने तक स्त्री और एक महीने तक पुरुष रहा करेगा। इस प्रकार वशिष्ठजी की कृपा से सुद्युम्न पृथ्वी का शासन करने लगे। किन्तु प्रजा उन्हें नहीं चाहती थी। उनके तीन पुत्र हुए उत्कल, मय तथा विमल! राजा सुद्युम्न बृद्धावस्था में अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य देकर बन में तपस्या के हेतु चले गए।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ दूसरा अध्याय ॥

मनु के पृषध आदि पुत्रों का वर्णन—

दो०—मनु पुत्रन के वंश की, कही कथा मुनिराय ।
नृपति परीच्छित सुनि रहे, मन में अति हरषाय ॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! सुद्युम्न के बन चले जाने पर वैव-स्वत मनु ने यमुना तट पर श्रीहरि की सौ वर्ष तक आराधना की। तब उनको इक्ष्वाकु आदि दस श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्त हुई। उनमें से एक का नाम पृषध था वह गुरु वशिष्ठ के पास उनकी गौशाला की रक्षा करता था। एक दिन वीरासन से बैठा हुआ रात्रि में गौशाला की रक्षा कर रहा था किन्तु दृष्टि बचाकर एक सिंह गौशाला में घुस गया और एक गौ को दाब लिया। जब कुमार पृषध को पता चला तब उसने सिंह पर प्रहार करने के लिए तलवार चलाई किन्तु सिंह के धोखे से गाय का शिर कट गया और सिंह का एक कान कट गया। प्रातःकाल होते ही जब पृषध ने देखा कि सिंह के बदले गाय मारी गई तब उन्हें महान क्लेश हुआ। गुरु वशिष्ठ ने उन्हें शाप दिया कि तुम शूद्र हो जाओ। पृषध ने शाप को स्वीकार किया और आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर भगवान श्रीहरि की आराधना करने लगे। कुछ काल पश्चात् आत्मज्ञान से अपने मन को समाधिस्थ किया। तथा अंधे, बहरे, पागल की भाँति विचरने लगे। एक दिन वन में आग लग गई उसी अग्नि में अपने को ब्रह्म में लीन करके परमात्मा को प्राप्त किया।

हे राजन् ! मनु के सबसे छोटे पुत्र कावि थे। वे छोटी अवस्था में ही परमात्मा में लीन रहकर ब्रह्म पद प्राप्त कर गये।

हे राजन् ! मनुके पुत्र करुष ने करुष नामके क्षत्रियों को उत्पन्न किया। और वे तपस्या के प्रभाव से ब्राह्मण बन गये। मनु पुत्र नृग का पुत्र सुमति तथा सुमति का पुत्र भूतज्योति, भूतज्योति का पुत्र वसु था। वसु का पुत्र प्रतीक, प्रतीक का ओघवान् तथा ओघवान् का ओघवान् ही पुत्र था। तथा ओघवान् के ओघवती पुत्री थी।

मनुपुत्र नरिष्यन्त के चित्रसेन, चित्रसेन के ऋक्ष, ऋक्ष के पीढवान

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तथा पीढ़वान के ऋर्च उत्पन्न हुए। ऋर्च के पुत्र इन्द्रसेन, इन्द्रसेन के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के सत्यश्रवा तथा सत्यश्रवा के उसश्रवा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा उसश्रवा के देवदत्त तथा देवदत्त के अग्निवेश्य पुत्र उत्पन्न हुए। जो अग्निदेव का ही अवतार था। हे राजन्! ब्राह्मणों का "अग्निवेश्यापन" गोत्र राजा अग्निवेश्य ने ही चलाया। हे राजन्! अब दिष्ट में वंश का वर्णन सुनो। दिष्ट के पुत्र नाभाग उत्पन्न हुए। ये द्वितीय नाभाग थे उनका पुत्र भलनंद था। भलनंद के वत्सप्रीति, वत्सप्रीति के प्रांशु तथा प्रांशु के पुत्र प्रमति हुए। प्रमति के पुत्र खनित्र तथा खनित्र के चाक्षुष थे। चाक्षुष के विविंशति, विविंशति के रम्भ, रम्भ के खनिनेत्र पुत्र हुए। खनिनेत्र के करन्धम तथ करन्धम के अवीक्षित् पुत्र उत्पन्न हुए। राजा अवीक्षित् के चक्रवर्ती सम्राट मरुत हुए जिन्होंने ऐसे यज्ञ किये कि उन के यज्ञों का दिया हुआ दान तथा धन सोना, चाँदी, रत्न याचकों से नहीं चला वे वहीं पड़ा छोड़ कर जितना चल सका उतना ले गये। उसी राजा मरुत के यज्ञ का धन धर्मराज युधिष्ठिर गाड़ी छकड़ा तथा हथियारों पर लाद कर हस्तिनापुर लाये और राजसूय यज्ञ किया।

हे राजन्! मरुत के पुत्र का नाम दम था। दम के राज्यवर्धन तथा राज्यवर्धन के दुधृति तथा दुधृति के नर नाम का पुत्र हुआ। नर के केवल, केवल के बन्धुमान तथा बन्धुमान के वेगावन् पुत्र उत्पन्न हुए। राजा वेगवान् के बन्धु तथा बन्धु के तृणविन्दु उत्पन्न हुआ। राजा तृणविन्दु को अलम्बुषा नाम की अप्सरा ने अपना पति बनाया। उस अप्सरा के कई पुत्र तथा इडविडा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। इडविडा के गर्भ से विश्रवा द्वारा कुवेर जी का जन्म हुआ। राजा तृणविन्दु के पुत्र विशाल, शून्यबन्धु तथा धूम्रकेतु थे। राजा विशाल ने ही वैशाली नगरी बसाई। राजा विशाल के पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्र के धूम्राक्षु, तथा उनके संयम और संयम के कृशाश्व तथा देवज दो पुत्र थे। कृशाश्व के पुत्र सोमदेव थे उन्होंने अनेकों यज्ञ करके भगवान् को प्रसन्न किया। सोमदेव के पुत्र का नाम सुमति तथा सुमति के जनमेजय थे। ये सब विशालवन्शी राजा कहलाये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तीसरा अध्याय ॥

राजा शर्याति का वंश महर्षि च्यवन तथा सुकन्या की कथा ।

दोहा—च्यवन सुकन्या की कथा, अति उत्तम सुखदाय ।
पतिव्रत नारी धर्म की, शुक आदर्श प्रगटाय ॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! वैवस्वत मनु के पुत्र राजा शर्याति बड़े विद्वान थे उन्होंने अङ्गिरस गोत्र के ब्राह्मणों को यज्ञ के दूसरे दिन का कार्यक्रम बताया था । उसके एक कन्या थी जो उन्हें अति लड़ाली थी उसका नाम सुकन्या था ।

एक समय राजा शर्याति अपनी सेना हाथी घोड़ा तथा पैदलों के साथ वन में आखेट के लिये गये । साथ में रनिवास की सब रानियाँ तथा पुत्री सुकन्या भी थी । सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ घूमती घूमती च्यवन ऋषि के आश्रम की ओर निकल गई । वहाँ उसने देखा कि एक दीमक के ढेर में दो चमकीली वस्तु जुगनू की भाँति चमक रही हैं । उसने बाल सुलभ क्रीड़ासे उन चमकीले दोनों छिद्रों में एक लकड़ी घुसा दी । उन दोनों छिद्रों से रक्त बहने लगा । तब वह घबड़ाई और चुपचाप वहाँ से चली आई । उधर उसी क्षण से राजा के अस्तबल के सभी घोड़ों तथा हाथियों व सैनिकों का मल मूत्र रुक गया । सभी पछाड़ खाने लगे । राजा शर्याति यह विचित्र घटना देख कर बड़े चिन्तित हुए और इसका कारण मालूम करने लगे । उन्होंने सबसे पूछा कि किसी ने ऋषि च्यवन को तो नहीं सता डाला है । तब डरती हुई सुकन्या ने वह घटना सुनाई । उसे सुनकर राजा अति दुःखी हुए और अपनी पुत्री को साथ लेकर उस स्थान पर गये जहाँ च्यवन ऋषि सहस्रों बर्षों से तपस्या करते थे इसके कारण उनके शरीर से दीमक लग गई थी जो एक मिट्टी का ढेर सा प्रतीत होता था । शर्याति ने च्यवन ऋषि की प्रार्थना की तथा उन्हें प्रसन्न किया । च्यवन ऋषि ने अपनी सेवा के लिये राजा शर्याति से उनकी कन्या माँगी । राजा ने ऋषि की प्रसन्नता के लिये अपनी सुकुमारी सुकन्या ऋषि च्यवन को देदी और अपनी राजधानी को चले आये ।

राजा शर्याति की प्यारी पुत्री सुकन्या च्यवन ऋषि की तन मन से

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सेवा करने लगी। उसने सभी कामनाओं को दवा कर राजसी वस्त्र भूषण उतार दिये तथा सादा वेष में रहने लगी। वह क्रोधी च्यवन ऋषिकी मनो वृत्तियों के अनुसार ही कार्य करती थी। कुछ काल व्यतीत होने पर च्यवन ऋषि के आश्रम पर अश्वनीकुमार पधारे। च्यवन ऋषि ने उनका बड़ा सत्कार किया और वे बोले—हे देवताओ ! तुम लोग सामर्थ्यवान हो मुझे दोनों नेत्र प्रदान करके युवा अवस्था प्रदान करो। ऐसा सुन्दर स्वरूप दो जिसे देखकर युवतियाँ मोहित हो जाँय। इसके उपलक्ष में मैं भी तुम्हारी यह सेवा करूँगा कि आप लोगों को देवताओं के साथ सोमरस पान करा दूँगा। अश्वनीकुमार यह सुनकर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा–हे महर्षि ! आप इन सिद्धों के द्वारा बने हुए कुण्ड में स्नान करें। च्यवन मुनि का शरीर अति वृद्ध था। शरीर जर्जर हो गया था बाल पक गये थे। इस कारण अति कुरूप लगते थे। अश्वनी कुमारों ने च्यवन ऋषि के साथ उस कुण्ड में प्रवेश किया। तथा अति सुन्दर दिव्य स्वरूप धारण करके तीनों ही उस कुण्ड में से निकले। तीनों का स्वरूप एकसाही था तब अश्वनीकुमारों ने सुकन्या से कहा–तुम अपने पतिको पहिचान लो। सुकन्या तीनों अति सुन्दर रूपवान युवकों को देखकर अति आश्चर्य चकित हुई। उसने अश्वनीकुमारों से प्रार्थना की तब अश्वनीकुमारों ने सुकन्या के पति-ब्रत धर्म से प्रसन्न होकर उसके पति च्यवन मुनि को बता दिया। तथा वे दोनों देवता च्यवन मुनि से आज्ञा लेकर स्वर्ग लोक को चले गये।

कुछ समय पश्चात् राजा शर्याति यज्ञ का निमंत्रण देने के लिये च्यवन ऋषि के आश्रम पर आये। वहाँपर एक अति रूपवान् युवापुरुषको अपनी पुत्री सुकन्या के साथ बैठा हुआ देखकर उन्हें अति क्रोध आया और बोले हे दुष्टा ! तू ने वृद्ध ऋषि च्यवन को त्यागकर इस युवक का सहवास लिया है तू ने देव तुल्य ऋषि का तिरस्कार करके मेरा तिरस्कार किया है। तथा मेरे वंश को कलङ्कित किया है। तू उत्तम कुल में उत्पन्न होकर जार पुरुष की सेवा करती है। तू ने पिता तथा पति दोनों के वंश को नरक में डाल दिया ! जब राजा शर्याति इस प्रकार कहने लगे तब पवित्र कीर्ति वाली सुकन्या ने मुस्करा कर कहा–हे पिताजी ! ये ही च्यवन ऋषि हैं। अश्विनी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

कुमारों की कृपा से इन्होंने यह योवन और सौन्दर्य प्राप्त किया है। यह सुन कर राजा शर्याति अति प्रसन्न हुए और अपनी पुत्री को कण्ठ से लगाया।

च्यवन ऋषि ने राजा शर्याति से सोमयज्ञ कराया और उस यज्ञ में अश्वनीकुमारों को सोम पान कराया। इसके कारण इन्द्र अति क्रोधित हुआ। उसने राजा शर्याति को मारने के लिए अपना बज्र चलाया। महर्षि च्यवन ने इन्द्र के बज्र सहित इंद्र के हाथ को वहीं स्तम्भित कर दिया। तब इंद्र ने तथा अन्य देवताओं ने अश्वनी कुमारों को भी सोम रस देना स्वीकार किया। वैद्य होने के कारण अश्विनीकुमार को पहले सोम का भाग नहीं दिया जाता था।

हे राजा परीक्षित्! राजा शर्याति के तीन पुत्र थे। उत्तानवर्हि आनर्त तथा भूरिषेण। आनर्त के रेवत पुत्र हुये जिन्होंने समुद्र के भीतर कुशस्थली नामक नगरी बसाई। उनके सौ पुत्र थे कुकुद्मी की पुत्री रेवती थी जिसको लेकर राजा कुकुद्मी उसके पति प्राप्ति के लिए ब्रह्माजी के पास गये। ऐसे धर्मात्मा लोग ब्रह्म-लोक वे रोक-टोक चले जाते थे। ब्रह्माजी को उन्होंने नमस्कार किया और अपना अभिप्राय सुनाया। ब्रह्मा जी हँसकर बोले-हे राजन्! जिन राजाओं को तुम अपनी पुत्री का पति बनाना चाहते हो वे तो मृत्यु को प्राप्त हो चुके। उनके पुत्र पौत्रों में कोई भी रेवती के योग्य नहीं है। इस बीच में सत्ताईस चतुर्युगी ब्यतीत हो चुकी है। इस समय भगवान् नारायण के अंशावतार वल्देव जी पृथ्वी पर अवतार ले चुके हैं। वही नर रत्न तुम्हारी इस कन्या के योग्य हैं। राजा कुकुद्मी ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर अपने नगर को आये और अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या बलरामजी को ब्याह दी तथा स्वयं तपस्या के लिए वदरी-वन को चले गये।

—:❀:—

॥ चौथा अध्याय ॥

नाभाग और अम्बरीष की कथा

दोहा-अम्बरीष नाभाग थे, हरि के प्यारे भक्त। तन मन से रहते सदा उनमें ही अनुरक्त॥
दुर्वासा अति क्रोध करि, भेजो कृत्या काल। अम्बरीष मारन चली, वहीमरी तत्काल॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री शुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित् ! वैवस्वत मनु के पुत्र नभग के सब से छोटे पुत्र का नाम नाभाग था । वे बड़े विद्वान थे तथा गुरुकुल में वास करते थे । उनके भाइयों ने पिता की सारी सम्पत्ति आपस में बाँट ली और उसके लिए कुछ नहीं दिया । तब नाभाग ने पूछा-भाइयो ! मेरे हिस्से में क्या दिया है । तब भाइयों ने कहा कि तुम्हारे हिस्से में तुम्हें पिती जी को देते हैं । तब नाभाग ने अपने पिताजी से कहा कि मेरे भाइयों ने मेरे हिस्से में केवल आप को ही दिया है । तब पिताजी ने कहा-बेटा ! तुम कोई चिंता न करो । अङ्गिरस गोत्र के एक ब्राह्मण एक बड़ा यज्ञ कर रहे हैं किंतु वे प्रत्येक छटवें दिन अपने कर्म में भूल कर जाते हैं। तुम जा कर उन्हें ठीक कर्म बतलाओ और जब वे स्वर्ग को जाने लगेंगे तब यज्ञ का बचा हुआ धन तुम्हें दे देंगे । नाभाग ने अपने पिता की आज्ञानुसार ऐसा हो किया । यज्ञ समाप्त होने पर ब्राह्मण लोग स्वर्ग को चले गए । नाभाग उस बचे हुए यज्ञ के शेष भाग को जब लेने लगा तब एक काले रङ्ग का पुरुष उत्तर दिशा से आया और बोला—हे नाभाग ! यज्ञ भूमि का बचा हुआ तो शेष भाग मेरा होता है । नाभग ने कहा—हे पुरुष ! ऋषियों ने यह भाग मुझे दिया है । तब उस पुरुष ने कहा हम दोनों के इस झगड़े का निबटारा तुम्हारे पिता स्वयं कर देंगे तुम्हारे पिता जिसका भाग बतलादें वही स्वीकार है ।

नाभाग लौट कर अपने पिता के पास गया और जा कर अपना विवाद सुनाया पिता ने कहा-हे पुत्र ! दक्ष प्रजापति के यज्ञ में एक बार यह निश्चय हो चुका है कि यज्ञ भूमि का बचा हुआ शेष भाग रुद्र देव का हिस्सा है इस लिए वह धन तो महादेव जी को ही मिलना चाहिये। यह सुन कर नाभाग लौट कर उस पुरुष के पास आया तथा उन रुद्र भगवान् को प्रणाम कर के बोला-हे भगवन् ! यज्ञ भूमि का शेष भाग आप ही का है। मेरे पिता ने ऐसा निर्णय किया है । भगवान् मेरा अपराध क्षमा कीजिए। रुद्र भगवान् ने कहा—हे नाभाग ! तुम्हारे पिता ने न्याय पूर्वक निर्णय किया है और तुमने भी सत्य बता दिया है । अतः यह सब धन मैं तुम्हीं को देता हूँ । साथ ही साथ सनातन ब्रह्म तत्व का ज्ञान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भी देता हूँ। इतना कह कर भगवान रुद्र अन्तर्ध्यान हो गए। जो पुरुष प्रातः तथा सायंकाल इस कथा का स्मरण करता है वह प्रतिभाशाली तथा वेदज्ञ होने के साथ साथ अपने स्वरूप का भी ज्ञान प्राप्त करता है। उन्हीं धर्मात्मा नाभाग के पुत्र अम्बरीष थे। वे बड़े भगवद्भक्त थे तथा ब्राह्मण का शाप उन पर कभी प्रभावित नहीं होता था। राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मदेव! मुझे राजा अम्बरीष का चरित्र सुनाइये। ब्राह्मण ने क्यों उन्हें शाप दिया था और किस प्रकार उनका उस शाप से अहित नहीं हुआ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! राजा अम्बरीष सारी पृथ्वी के स्वामी तथा अतुल ऐश्वर्यवान थे। किन्तु वे इन सब को नाशवान समझकर भगवत् भजन में ही लीन रहते थे सर्वदा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों का स्मरण करते रहते थे। उनकी वाणी भगवान की कथा वार्ताओं में आनन्द लेती थी हाथ मन्दिर झाड़ने बुहारने में आनन्द लेते थे। उनके नेत्र भगवान के दर्शनों में रमे रहते थे। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान में ही लीन थीं। उन्होंने "धन्व" नामक निर्मल प्रदेश में सरस्वती नदी तट पर वशिष्ठ असित, गौतम आदि आचार्यों के द्वारा बड़ी बड़ी दक्षिणाओं वाले अनेकों अश्वमेध यज्ञ किये। तथा यज्ञपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को प्रसन्न किया। राजा अम्बरीष घर, स्त्री, पुत्र तथा अतुल धन राशि सब को छोड़ कर भगवान में ही लीन रहते थे। राजा अम्बरीष की भक्ति से प्रसन्न होकर उनकी रक्षा के लिए भगवान् ने अपना चक्रसुदर्शन नियुक्त कर, दियाथा। जो सदा उनकी रक्षा करता रहता था। राजा अम्बरीष की पत्नी भी उन्हीं के समान थी।

एक समय राजा अम्बरीष ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की आराधना के हेतु एक वर्ष तक द्वादशी प्रधान एकादशी व्रत का नियम धारण किया। व्रत की समाप्ति पर कार्तिक मास में उन्होंने तीन रात्रि का उपवास लेकर यमुना जी में स्नान करने के लिये मधुवन में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की आराधना की। पूजा करने के पश्चात ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा साठ करोड़ गौएं सुवर्ण के सींग वाली और चाँदी के खुरों वाली दान कीं जब ब्राह्मण लोग दान लेकर सन्तुष्ट हो चुके तब राजाने ब्राह्मणों की

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आज्ञा से व्रत का पारण करने को प्रस्तुत हुए। उस समय वहाँ अतिथि रूप में दुर्वासा ऋषि पधारे।

दुर्वासा जी को देखते ही राजा अम्बरीष व्रत का पान किये बिना ही उठ खड़े हुए। उन्हें बैठनेको आसन दिया और उनकी पूजा की। तत्पश्चात् उनसे भोजन की प्रार्थना की, दुर्वासा जी ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर के स्नान आदि के लिए नदी तट पर चले आये। उन्हें नित्यकर्म में बहुत देर लग गई। इधर द्वादशी केवल एक घड़ी शेष रह गई थी। राजा अम्बरीष बड़े धर्म सङ्कट में पड़े। उन्होंने ब्राह्मणों से परामर्श किया तो ब्राह्मणों ने कहा कि अतिथि को भोजन बिना कराए स्वयं भोजन करलेना तथा द्वादशी में पारण न करना दोनों ही दोष हैं। इसलिए ऐसे धर्म सङ्कट में जल पी लेना भोजन के समान ही है और नहीं भी है। इसलिऐ आप इस समय जल पीकर द्वादशी का पारण कर लीजिए। राजा अम्बरीष ने ऐसा ही किया और वे दुर्वासा जी की प्रतिक्षा करने लगे जब दुर्वासा जी आ गए राजा ने उनका स्वागत किया तब दुर्वासा ने समझ लिया कि राजाने मुझे बिना भोजन कराये ही पारण कर लिया है। दुर्वासा अति क्रोधी स्वभाव के थे भूख के कारण उन्हें और भी अधिक क्रोध हो आया। वे क्रोध के कारण थर थर काँपने लगे और उनकी आकृति भयङ्कर हो गई। उन्होंने राजा अम्बरीष को डाटकर कहा—

तू बड़ा क्रूर है। लक्ष्मी के मद में चूर रहता है। भगवान् की भक्ति का पाखण्ड रचता है। तूने आज धर्म का उल्लंघन करके अतिथि को बिना भोजन कराये स्वयं खा लिया है। इतना कहकर उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और उसमें से एक कृत्या हाथ में तलवार लेकर अम्बरीष को मारने के लिये प्रकट हुई। राजा अम्बरीष तनिक भी भयभीत न हुए और वहीं ज्यों के त्यों खड़े रहे। सुदर्शन उनकी रक्षा स्वयं कर रहा था। उस सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा की कृत्या को भस्म कर दिया। जब दुर्वासा जी ने देखा कि मेरी जटा से प्रकट हुई कृत्या भस्म हो गई है और चक्र सुदर्शन मेरी ओर आ रहा है। तब वे प्राण रक्षा के लिए भाग निकले। आगे आगे दुर्वासा जी भागते थे तथा पीछे पीछे भगवान् का चक्र दौड़ रहा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

था। दुर्वासा जी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल, वितल, समुद्र आदि सभी स्थानों में अपनी रक्षा के लिए गए। किन्तु जहाँ जहाँ भी जाते थे वहीं वहीं उनके पीछे असह्य तेज वाला वह चक्र सुदर्शन जाता था। जब दुर्वासा जी ने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखा तब वह ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी बोले—हे दुर्वासा जी! दो परार्द्ध के समाप्त होने पर मेरी भी आयु समाप्त हो जाती है। तथा यह सम्पूर्ण विश्व भी समाप्त हो जाता है। इन सब को वे ही भगवान् अपनी लीला से रचते तथा समाप्त करते हैं। मैं शङ्कर जी सब प्रजापति उन्हीं के बनाये हुए नियमों में बँधे हैं। भला हम उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर के उनके भक्त के द्रोही को कैसे बचा सकते हैं। ब्रह्मा जी से ऐसा कोरा उत्तर सुन कर दुर्वासा जी कैलाश पर्वत पर भगवान् शङ्कर के निकट गये।

महादेवजी बोले—हे दुर्वासा जी! जिन्होंने ब्रह्मा आदि प्रजापतियों को तथा इस ब्रह्माण्ड को पैदा किया है जिस में हम जैसे हजारों चक्कर काटते हैं। उन भगवान् की माया को नारद, ब्रह्मा, सनत्, कुमार, मरीचि, आदि कोई भी नहीं जान सकते। हम लोग उनके चक्र से तुम्हारा रक्षा कैसे कर सकते हैं। तुम उन्हीं भगवान की शरण में जाओ वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। इतनी सुन कर दुर्वासा जी लक्ष्मी नारायण के धाम को गये। दुर्वासा जी चक्र की अग्नि से जल रहे थे। वे काँपते हुए भगवान् लक्ष्मी-नारायण के चरणों में गिर पड़े। वे बोले—हे विश्वात्मन! मैं आपका अपराधी हूँ मुझे क्षमा कीजिये! मैंने आपके भक्त को सताया है। इस कारण आपका यह सुदर्शन मुझे असह्य पीड़ा दे रहा है। हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये।

श्री भगवान् बोले—हे दुर्वासा जी! मैं सर्वदा भक्तों के आधीन रहता हूँ। मेरे भक्तों ने अपने सरल स्वभाव से मुझे जीत लिया है। भक्तजन मुझे प्यार करते हैं और मैं उन्हें प्यार करता हूँ। अतः अपने साधु स्वभाव वाले भक्तों को त्याग कर मैं न तो अपने को स्वयं चाहता हूँ और न अपनी प्यारी लक्ष्मी को ही चाहता हूँ। जो मेरे प्रेमी भक्त घर वार स्त्री,पुत्र तथा लोक परलोक को त्याग कर केवल मेरी शरण में हैं उन्हें मैं कैसे त्याग सकता हूँ। पतिव्रता स्त्री की भाँति उन्होंने मुझे प्रेम बन्धन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में बाँध लिया है। वे भक्तजन मेरी सेवा के अतिरिक्त सालोक्य तथा सारूप्य मुक्तियाँ भी नहीं चाहते हैं क्योंकि मेरी सेवा को त्यागकर उन्हें वे मुक्तियाँ स्वीकार नहीं हैं। हे दुर्वासा जी ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ मेरे भक्त तो मेरे हृदय में निवास करते हैं मेरे अतिरिक्त वे और कुछ नहीं जानते। इसी प्रकार उनके अतिरिक्त मैं भी और कुछ नहीं जानता हूँ । हे दुर्वासा जी ! इसका एक उपाय है कि आप उसी मेरे भक्त के पास जाइये और उसी से क्षमा याचना करके कष्ट का निवारण कीजिए।

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

दुर्वासा जी के दुख का निवारण।

दो०—अम्बरीष निज भक्त की, कीन्ही रक्षा राम। दुर्वासा भागत फिरे, तीनलोक के धाम॥
अम्बरीष की शरण में, गये मुनी घबराय। चक्ररोकि नृपने लिए मुनिकेप्राण बचाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित् ! भगवान् के आज्ञानुसार दुर्वासा मुनि राजा अम्बरीषके निकट गये और उनके पैरों में गिर पड़े। राजा अम्बरीष दुर्वासा जी की इस दयनीय दशा को देखकर अत्यन्त दुःखी हुए और दया वश भगवान् के चक्र की स्तुति करने लगे।

अम्बरीष बोले—हे चक्रसुदर्न ! आप साक्षात् अग्नि हैं। आप ही सूर्य, चन्द्रमा हैं। आप पंचभूत तथा इन्द्रियों के स्वामी हैं। आप हजारों दाँत वाले हैं। मेरा आपको नमस्कार है। आप इन ब्राह्मण को क्षमा कीजिये। आप परमात्मा के तेज हैं। मर्यादा रक्षक हैं। असुरों को भस्म करने वाले अग्नि हैं आपको नमस्कार है। मैंने कुछ भी दान यज्ञ तथा धर्म का पालन किया हो। मैं ब्राह्मण भक्त हूँ तो दुर्वासा जी का ताप मिट जावे। यदि मैं सब प्राणियों को आत्मरूप से देखता हूँ तो भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों और दुर्वासा जी का कष्ट दूर हो जावे।

श्री शुकदेवजी बोले—राजा अम्बरीष के इस प्रकार प्रार्थना करने पर सुदर्शन चक्र शाँत हो गया। दुर्वासा जी का ताप मिट गया। और वे राजा को आशीर्वाद देते हुये बोले-हे राजन् ! मैंने आज भगवान के भक्तों का प्रभाव देखा । मैंने आपका अपराध किया किंतु फिर भी आपने मेरे दुःख को दूर किया। भक्त का हृदय कितना उदार है। हे राजन्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आपने मुझे प्राणदान देकर मुझ पर बड़ी कृपा की है।

हे राजा परीक्षित् ! दुर्वासा जी को भागते २ एक वर्ष का समय हो गया था। राजा अम्बरीष ने भी तब तक भोजन नहीं किये। उन्होंने दुर्वासा जी को भोजन कराके ही भोजन किया। जब दुर्वासा जी भोजन से तृप्त हो गये तब बोले—हे राजन् ! आप भगवान् के परम भक्त हैं। आपके दर्शन स्पर्श मात्र से ही मैं अति अनुग्रहीत हुआ हूँ। यह पृथ्वी तथा स्वर्ग की देवाङ्गनाएँ आपकी कीर्ति का वर्णन करेंगी। ऐसा कहकर दुर्वासा जी ब्रह्मलोक को चले गये।

हे महाराज ! जो राजा अम्बरीष की इस पवित्र कथा को कहता तथा सुनता है वह भगवान् का भक्त हो जाता है।

॥ छठवाँ अध्याय ॥

इक्ष्वाकु वंश वर्णन—

दो०—इक्ष्वाकु वंश वर्णन कियौ, मुनि ने अति हरषाय।
नृपति परीक्षित सुनि रहे, प्रभु से ध्यान लगाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! राजा अम्बरीष के विरूप केतुमान तथा शम्भु नाम के तीन पुत्र थे राजा विरूप के पृषदश्व तथा पृषदश्व के रथीतर पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा रथीतर के सन्तान हीन होने के कारण उन्होंने अंगिरा ऋषि के द्वारा अपनी पत्नी से पुत्र उत्पन्न कराये। वे सभी पुत्र ब्रह्मतेज से युक्त होने के कारण आङ्गिरस गोत्री ही कहलाये वे क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण थे।

हे राजन् ! मनु जी की नासिका छिद्र से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। राजा इक्ष्वाकु बड़े प्रतापी थे उनके सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनके तीन पुत्र विकुक्षि, निमि तथा दण्डक सब से बड़े थे। इन तीनों से छोटे पच्चीस पुत्र पूर्व भाग के राजा बने तथा पच्चीस पच्छिम भाग के राजा बने। तीनों बड़े पुत्र मध्य भाग के राजा थे तथा शेष पुत्र दक्षिण भाग के राजा थे। एक समय राजा इक्ष्वाकु ने बड़े पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध के हेतु वन्य पशु मार कर लाने की आज्ञा दी। विकुक्षि ने अनेकों वन्यपशु मारे किन्तु भूख लगने के कारण उन्होंने एक खरगोश को खा लिया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जब वे श्राद्ध के लिये माँस लाये तब गुरु बशिष्ठ ने जान लिया कि श्राद्ध के निमित्त लाया हुआ माँस अशुद्ध है। तब राजा इक्ष्वाकु को विकुक्षि के इस कार्य का पता चला तब उन्होंने विकुक्षि को देश से निकाल दिया। जब राजा इक्ष्वाकु ने परमपद प्राप्त कर लिया तब विकुक्षि अपने देश में लौट आया और राज्य करने लगा। राजा विकुक्षि के "पुरंजय,, नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह महाबली था उसने देवराज इन्द्र को बैल बना कर देवताओं की सहायता से दैत्यों का संहार किया था। इन्द्र को बाहन बनाने के कारण "इन्द्र वाह" तथा उस बैल की पीठ पर बैठने के कारण "ककुत्थ" नाम पड़ा।

राजा पुरंजय का पुत्र अनन्त था। अनन्त का पुत्र पृथु था। पृथु के विश्वरन्धि, विश्वरन्धि के चन्द्र तथा चन्द्र के युवनाश्व पुत्र उत्पन्न हुआ। युवनाश्व के शाबस्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने शावस्तीपुरी, बसाई। राजा शाबस्त के बृहदश्व तथा बृहदश्व के कुवलयाश्व उत्पन्न हुआ।

कुवलयाश्व को ही धुन्धुमार कहते हैं। उन्होंने उत्तङ्क ऋषि की प्रसन्नता के लिये धुन्धु नामक दैत्य को मारा था। राजा धुन्धुमार के इक्कीस सहस्रपुत्र थे सब के सब धुन्धु दैत्य के मुख से निकली हुई अग्नि में भस्म होगये केवल तीन पुत्र बचे। दृढ़ाश्व, कपिलाश्वतथा भद्राश्व। राजा दृढ़ाश्व के हर्यश्व, तथा हर्यश्व के निकुम्भ निकुम्भ के वर्हणाश्व, वर्हणाश्व के कृशाश्व तथा कृशाश्व के सेनजित् सेनजित् के युवनाश्व उत्पन्न हुए।

राजा युवनाश्व ने पुत्र प्राप्ति के लिये इन्द्र देवता का यज्ञ किया। एक दिन यज्ञ के बीच में रात्रि के समय जब सब सो रहे थे राजा युवनाश्व को बड़ी प्यास लगी। उन्होंने उठ कर भूल से अभिमंत्रित जल को पी लिया। जब प्रातः हुआ तथा ऋत्विजों ने कलश में जल न पाया तब उन्होंने मालूम किया कि इस पुत्र देने वाले जल को किसने पी लिया। तब राजा युवनाश्व ने रात वाली बात कही। ऋषियों ने देव का ऐसा ही विधान समझ कर भगवान् को नमस्कार किया। राजा युवनाश्व की दाहिनी कोख फाड़ कर पुत्र उत्पन्न हुआ उसको इन्द्र ने धाय बन कर दूध पिलाया। जब वह बच्चा भूख से रोने लगा तब इन्द्र ने कहा मेरा दूध पीयेगा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

(मांधाता) उन्होंने अपनी तर्जनी उङ्गली बालक के मुँह में डाल दी। राजा युवनाश्व की भी मृत्यु न हुई और वह बालक भी जीवित रहा। वही चक्रवर्ती राजा मांधाता हुए जिन्होंने सातों द्वीपों को जीत कर स्ववश किया था। उस राजा का नाम त्रसद्दस्यु भी था। क्योंकि रावण आदि दस्यु (लुटेरे) उसके भय से काँपते रहते थे। चक्रवर्ती राजा मान्धाता बड़े प्रतापी थे। उन्होंने बड़ी बड़ी दक्षिणा वाले कई यज्ञ किये। राजा मान्धाता के राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। इतना विशाल राज्य था। उनकी पत्नी बिन्दुमती के गर्भ से पुरुकुत्स, अम्बरीष (दूसरे) तथा माँगी मुचुकुन्द तथा पचास कन्यायें उत्पन्न हुईं। उन पचासों कन्याओं का विवाह सौभरि मुनि केसाथ कर दिया। सौभरि मुनि अपने योग बलसे युवा रूप धारण करके अनेक प्रकार की भोग सामिग्री तथा एश्वर्य युक्त होकर अपनी पचासों पत्नियों के साथ विहार करते थे। उनके आनन्द तथा सुख को देख कर राजा मान्धाता भी कहते थे कि मैं चक्रवर्ती राजा होते हुए भी सौभरि मुनि के समान सुखी नहीं हूँ।

कुछ काल पश्चात् सौभरि ऋषि को ध्यान आया कि मैंने अपना सम्पूर्ण तप का फल इन विषय भोगों में ही नष्ट कर दिया। तब वे तपस्या के लिये वन में चले गये उनके साथ उनकी पत्नियाँ भी चलीं गईं। वहीं पर तपस्या के बल से उत्तम गति प्राप्ति की उनके साथ उनकी पत्नियाँ भी सती होगईं।

॥ सातवाँ अध्याय ॥

राजा त्रिशंकू तथा हरिश्चन्द्र का चरित्र।

दो०—त्रिशंकु हरिश्चन्द्र को चरित, कह्यौ मुनी समझाय।
पाण्डु पौत्र सुनने लगे, मन में अति हरषाय॥
हरिश्चन्द्र दानी भये, सूरज कुल में आय।
धन सम्पति सुत नारि सब, किये दान हरषाय॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! महाराज मांधाता के पुत्र अम्बरीष गुणों में श्रेष्ठ थे। उन के पितामह युवनाश्व ने उन्हें पुत्रवत पाला था। राजा अम्बरीष का पुत्र यौवनाश्व तथा यौवनाश्व का हरीत पुत्र था। मान्धाता के तीसरे पुत्र पुरुकुत्स ने नागराज बासुकि की

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कन्या नर्वदा से विवाह किया। तथा गन्धर्वों को मार डाला। वासुकि ने प्रसन्न होकर पुरुकुत्स को वर दिया कि इस कथा के सुनने पर सर्पों का भय न रहेगा। राजा पुरुकुत्स के त्रसदस्यु (दूसरे) पुत्र थे। त्रसदस्यु के अनरण्य उनके हर्यश्व, उनके अरुण पुत्र थे। उन के त्रिवन्धन तथा उनके सत्यव्रत जिनका नाम त्रिशंकु था उत्पन्न हुए।

राजा त्रिशंकु वशिष्ठ जी के शाप से चाण्डाल हो गये थे। किन्तु विश्वामित्र के प्रभाव से सशरीर स्वर्ग को चले गये। जब देवताओं ने यह देखा तब उन्होंने उन्हें स्वर्ग से ढकेल दिया। विश्वामित्र जी ने राजा त्रिशंकु को वहीं बीच में रोक दिया वे आकाश में लटके हुए दृष्टि आते थे। राजा त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र थे। उनके कारण विश्वामित्र तथा वशिष्ठ दोनों परस्पर शाप देकर पक्षी रूप में अनेकों वर्ष तक लड़ते रहे।

राजा हरिश्चन्द्र निःसन्तान थे उन्होंने अपने उत्पन्न पुत्र की बलि देकर वरुणदेव को प्रसन्न करने का बचन दिया था। तब वरुणदेव ने राजा हरिश्चन्द्र को एक पुत्र दिया। और उक्ति बचनानुसार पुत्र की बलि माँगी तब राजा ने कहा कि अभी बच्चे को दस दिन का हो जाने दो इसके नाम कर्ण होने पर आपका यज्ञ इस बलि–पशु द्वारा किया जायगा। जब दस दिन समाप्त हो गये तब फिर वरुण ने पुत्र माँगा तब राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र स्नेह वश कहा कि जब इसके दूध के दाँत उग आयेंगे तब आपका यज्ञ किया जायगा। जब दाँत उग आये तब फिर वरुण ने राजा से पुत्र माँगा तब राजा ने कहा कि इसके ये दाँत गिरके नये दाँत उग आने पर आपका यज्ञ इस बलि पशु द्वारा करूँगा। इसी प्रकार राजा हरिश्चन्द्र हीला हवाला करते रहे।

जब रोहित को यह पता लगा कि वरुण मेरी बलि चाहता है तब वह धनुष वाण तलवार लेकर बन को चला गया। वहाँ इन्द्र के उपदेश से रोहित छः वर्ष तक बन में रहे। तब उन्होंने अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को मोल लेकर यज्ञपशु बनाने के लिए पिता के सामने उपस्थित किया। राजा हरिश्चंद्र को वरुण ने रुष्ट होकर महोदर रोग दे दिया। तब वि

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मित्र, वशिष्ठ, जमदग्नि आदि महर्षियों ने वरुण देव का यज्ञ किया। इन्द्र ने राजा हरिश्चन्द्र से प्रसन्न होकर एक सोने का रथ दिया।

हे राजन्! आगे शुनःशेष की कथा वर्णन करूँगा। सत्यवादी हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी के साथ सत्य की परीक्षा में दृढ़ रहने के कारण विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें ज्ञान का उपदेश दिया। उसके प्रभाव से राजा हरिश्चन्द्र ने परमपद प्राप्त किया था।

--❀--

॥ आठवाँ अध्याय ॥

राजा सगर का चरित्र वर्णन

दोहा—सगर प्रतापी नृपति ने, किये एक शत याग।
साठ सहस सुत नृपति के, कपिल किए सब खाक॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! रोहिताश्व का पुत्र हरीत था, तथा हरीत का पुत्र चम्प था जिसने चम्पापुरी बसाई। राजा चम्प का पुत्र सुदेव, उसका विजय, उसका भसक पुत्र था। भसक का पुत्र वृक तथा उसका पुत्र बाडक था। राजा बाडक का राज्य शत्रुओं ने छीन लिया वह वन को चला गया वृद्धावस्था के कारण उनकी मृत्यु हो गई किन्तु उसकी पत्नी के गर्भ होने के कारण उसे ऋषियों ने सती नहीं होने दिया। जब उस रानी की सौतों को उसके गर्भवती होने का पता चला तब उन्होंने उसे गर (विष) दे दिया उस गर का उस बालक पर कोई प्रभाव न हुआ। वह बालक स-गर उत्पन्न हुआ अर्थात् विष सहित उत्पन्न हुआ इसी कारण उसे सगर कहने लगे। राजा सगर जगत विख्यात चक्रवर्ती राजा थे।

राजा सगर एक बार यज्ञ कर रहे थे। उनके सौवें यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञ के घोड़े को इन्द्र चुरा कर लेगया और कपिल मुनि के आश्रम के पीछे बाँध आया। उसे भय था कि सौवें यज्ञकी समाप्ति पर सगर मेरा इन्द्रासन ले लेंगे। यज्ञ-पशु की चोरी होने से राजा सगर के साठ सहस्र पुत्रों को अति चिंता हुई। वे उस अश्व के रक्षक थे। जब उन्होंने बहुतेरा तलाश किया और कोई पता न चला तब उन्होंने पृथ्वी को खोदना आरम्भ किया पृथ्वी खोदते खोदते पाताल लोक में समुद्र तट पर जा निकले। वहाँ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कपिल मुनि का आश्रम था वे नेत्र बंद किये तपस्या कर रहे थे । उनके आश्रम के पीछे वह यज्ञ पशु (अश्व) बँध रहा था, उसे देखते ही वे समझे कि हमारे अश्व का चोर यही मुनि है। इसी ने चुराकर अपने आश्रम में बाँध लिया है । उन्हें अति क्रोध आया और कपिल मुनि को बुरा भला कहते हुए उनके आश्रम पर गये । ज्योंही कपिल मुनि ने अपने नेत्र खोल कर उनकी ओर देखा त्योंही वे सबके सब उनकी तेजाग्नि से भस्म होगये उन्होंने अज्ञानवश मुनि का तिरस्कार किया था इसी कारण उन्हें यह भयङ्कर फल प्राप्त हुआ । जब राजा सगर को अपने पुत्रों के भस्म होने का पता चला तो उन्हें महान क्लेष हुआ ।

राजा सगर की दूसरी पत्नी केशिनी के गर्भसे असमंजस उत्पन्न हुए असमंजस के पुत्र अंशुमान् थे । अंशुमान् पितामह सगर की बड़ी सेवा करते थे । असमंजस पूर्व जन्म में योगी होने के कारण पागलों की भाँति रहते थे। वे नगर के बच्चों को समुद्र में डुबो देते ! इस लिए राजा सगर ने रुष्ट होकर उन्हें नगर से बाहर निकाल दिया था । किंतु योगी असमंजस ने पुनः उन बच्चों को लाकर दे दिया । तब सबको अति आश्चर्य हुआ।

असमंजस के पुत्र अंशुमान् यज्ञ पशु को कपिलमुनि के आश्रम से लेने के लिए गये । उन्होंने कपिल देव की प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना तथा स्तुति से प्रसन्न होकर कपिलदेव ने वह अश्व देदिया तथा कहा कि तुम्हारे इन चाचाओं की मुक्ति गङ्गा जी के जल से होगी । अन्य कोई उपाय नहीं है अंशुमान प्रसन्न होकर वहाँ से अश्व लेकर यज्ञ में आगये और राजा सगर का यज्ञ पूर्ण कराया । राजा सगर अंशुमान को राज देकर बन्धन मुक्त हो गये तथा और्व ऋषि की कृपा से परमपद प्राप्त कर लिया ।

—❀—

॥ नवाँ अध्याय ॥

दोहा—भागीरथ अति तप कियो, भोगे कष्ट अपार ।
गङ्गाजी को लाय कर, कीन्हों कुल उद्धार ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित ! अंशुमान ने गङ्गा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

को पृथ्वी पर लाने के लिए घोर तप किया किंतु उनकी मृत्यु पहिले ही होगई। अंशुमान के पुत्र दिलीप ने अपने पिता की भाँति गङ्गाजी की तपस्या की किंतु वे भी मृत्यु को प्राप्त हो गये और गङ्गाजी न आईं तत्पश्चात् दिलीप के पुत्र राजा भागीरथ ने गङ्गाजी के लाने के लिए घोर तप किया। तब गङ्गा जी ने प्रसन्न होकर राजा भागीरथ को दर्शन दिया और वर देने के लिए कहा। तब भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा कि आप मृत्यु लोक में पधारें।

गङ्गाजी ने कहा—हे राजन्! जिस समय मैं स्वर्ग लोक से पृथ्वी पर आऊँगी उस समय मेरे वेग को कौन सहन करेगा। आकाश से पृथ्वी पर गिरते ही मेरी तीव्र धारा पृथ्वी में समाकर रसातल में चली जायगी इस कारण मेरे बेग को सहन करने वाला होना चाहिए। दूसरे मेरे में पापीजन पाप धोवेंगे, उन पापों को मैं कहाँ धोने जाऊँगी।

राजा भागीरथ ने कहा—हे माता! जिन साधु पुरुषों ने अपने इस लोक और परलोक को त्याग कर निरंतर भगवान् की आराधना की है वे निश्पाप भक्त जन अपने शरीर स्पर्श से तुम्हारे पापों को नष्ट कर देंगे। क्योंकि उनके पापों को स्वयं भगवान् नष्ट करते हैं। भगवान् रुद्रदेव तुम्हारे वेग को सहन करने में समर्थ हैं। ऐसा कहकर राजा भागीरथ ने भगवान् रुद्र को प्रसन्न किया। तब भगवान् रुद्र ने प्रसन्न होकर गङ्गाजी का वेग सहन कर के उन्हें अपनी जटाओं में धारण कर लिया। तब राजा भागीरथ अपने द्रुतगामी रथ पर सवार होकर शंख बजाते हुए आगे आगे चलते थे और पीछे २ गङ्गाजी की धारा चलती थी। गङ्गा सागर के संगम पर पहुँच कर गङ्गाजी ने भागीरथ के पूर्वज जो ब्राह्मण के तिरस्कार के कारण भस्म हो गये थे उनका उद्धार किया। वे स्वर्ग को चले गये।

हे राजा परीक्षित्! गङ्गाजी के एक बार के स्पर्श से राजा सगर के पुत्रों का उद्धार हो गया। जो नित्य प्रति गंगाजी का सेवन करते हैं उनका तो कहना ही क्या है। उन्हीं पुण्यात्मा राजा भागीरथ के पुत्र श्रुत थे। श्रुत के पुत्र नाभ थे। नाभ का पुत्र सिन्धु द्वीप, उसका पुत्र आम्रताप, उसका पुत्र ऋतुपर्ण था जो राजा नलका परम मित्र था जिसने उन्हें जुआ

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की विद्या सिखाई थी तथा राजा नल ने उसे रथ चलाने की विद्या सिखाई थी। राजा ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम तथा उन का पुत्र सुदासा, उसका पुत्र सौदास, सौदास का ही दूसरा नाम कल्याषपाद था। कल्याषपाद की पत्नी मदयन्ती थी। वह वशिष्ठ जी के श्राप से राक्षस हो गया था तथा निःसन्तान था।

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे भगवन्! राजा कल्याषपाद को वशिष्ठ जी ने क्यों श्राप दिया?

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! एक समय राजा सौदास आखेट के लिए गये वहाँ उन्होंने एक राक्षस को मार डाला। राक्षस के भाई ने बदला लेने के लिये रसोइये का भेष बना कर राजा का रसोइया बन गया। उसने राजा सौदास के गुरू बशिष्ठ को भोजन में मनुष्य का माँस राँध कर परस दिया। बशिष्ठ जी यह जान कर अति क्रोधित हुए और राजा सौदास को श्राप दिया कि तू राक्षस होजा। जब गुरू को यह पता चला कि यह कार्य तो दुष्ट राक्षस का था राजा का नहीं तब उन्होंने श्राप का समय बारह वर्ष कर दिया। राजा कल्याषपाद राक्षस हो गये। उनका शरीर श्राप के कारण काला पड़ गया। राजा कल्याषदास ने भी वशिष्ठ जी को श्राप देने के लिए हाथ में जल ले लिया। किन्तु पत्नी मदयन्ती के समझाने से राजा ने ऐसा नहीं किया उस जल को अपने पैरों पर छोड़ दिया। इसी लिये पैर अति काले पड़ गये।

राजा कल्याषपाद ने बन में एक ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी को बिहार करते हुए ब्राह्मण को खा डाला। इस से ब्राह्मणी ने राजा को श्राप दिया कि तू जब अपनी पत्नी से सहवास करेगा तब तेरी मृत्यु हो जायगी। जब राजा कल्याषपाद को बारह वर्ष व्यतीत हो गये। उन की राक्षसी प्रवृत्ति तो समाप्त हो गई किन्तु ब्राह्मणी के श्राप के कारण स्त्री से पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकते थे। तब बशिष्ठ जी की कृपा से मदयन्ती ने गर्भाधान किया। वह गर्भ सात वर्ष तक पेट ही में रहा। तब बशिष्ठ जी ने रानी के पेट में पत्थर मारा और उस पत्थर की चोट से पुत्र हुआ उस का नाम अश्म (पत्थर) अश्मक पड़ा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अश्मक के पुत्र का नाम मूलक था। वह क्षत्रिय वंश का मूल (प्रवर्तक) था। परशुरामजी ने सारी पृथ्वी को क्षत्रिय हीन कर दिया था तब स्त्रियों ने उसे छिपा लिया था। इसी से क्षत्रिय वंश चला। मूलक के दशरथ हुआ। दशरथ के रोडविदु, उसके विश्वसह पुत्र हुआ। विश्वसह का पुत्र खट्वाङ्ग राजा था जो चक्रवर्ती सम्राट था। राजा खट्वाङ्ग ने देवताओं की सहायता से दैत्यों का बध किया। जब उनकी आयु केवल दो घड़ी रह गई तब राजा खट्वाङ्ग ने सर्वस्व त्यागकर भगवान् में अपनी आसक्ति लगा दी। इसके प्रभाव से उन्हें परमपद प्राप्त हुआ।

॥ दसवाँ अध्याय ॥

भगवान् रामचन्द्र जी का चरित्र वर्णन–

दो०–सूर्य बंश में विष्णु ने, लियो राम अवतार।
दैत्यवन्श का नाश करि, कीन्ह सुयश विस्तार॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजन्! खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु हुए उनके पुत्र राजा रघु हुए। रघु के अज तथा अज के महाराज दशरथ हुए। राजा दशरथ अयोध्या के राजा थे उनकी तीन रानियाँथी कौशिल्या सुमित्रा तथा कैकेई। रानी कैकेई सबसे छोटी होनेके कारण महाराज का उस पर विशेष प्रेम था। भगवान् ने अपने चार अंशों से राजा दशरथ के यहाँ अवतार ग्रहण किया। कौशिल्या के गर्भ से रामचन्द्रजी ने जन्म लिया सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मणजी व शत्रुघ्नजी ने जन्म लिया तथा कैकेई के गर्भ से भरत जी उत्पन्न हुए। इन चारों भ्राताओं में परस्पर बड़ा घनिष्ट स्नेह था। क्यों न हो वे सब एक ही श्रीहरि के चार स्वरूप थे। भगवान् रामकी आज्ञा का पालन करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था।

भगवान् राम तथा लक्ष्मणजी ने अपने बाल्यकाल में ही ताड़का नाम की राक्षसी तथा सुबाहु राक्षस को मार गिराया था वह विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न पहुँचाया करते थे। मारीच को वायव्यास्त्र से दक्षिण समुद्र की ओर फेंक दिया था।

उसी बीच में राजा जनक जो मिथिला के अधीश्वर थे उन्होंने अपनी कन्या सीता का स्वयंवर किया। रामचन्द्र जी व लक्ष्मणजी विश्वामित्र जी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के साथ मिथलापुरी में गए तथा वहाँ भगवान् शङ्कर जी का विशाल दिव्य धनुष तोड़ कर सीता को प्राप्त किया राजा जनक के भाई की तीन कन्यायें और थीं उनका विवाह भी रामचन्द्र के तीनों लघु भ्राता लक्ष्मण, भरत, तथा शत्रुघ्न के साथ कर दिया जब महाराज दशरथ अपनी सेना के साथ अपने पुत्रों का विवाह कर के मिथिला से लौट रहे थे कि मार्ग में सामने से महावली परशुराम जी आ धमके और बोले—हे दशरथ ! भगवान शङ्कर का धनुष तोड़ कर तेरे पुत्र ने बड़ा अहित किया। तेरा पुत्र या तो मेरे इस धनुष को तोड़े अथवा मैं सब को अयोध्या जीवित न जाने दूँगा। मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय हीन कर दिया है अब भी मेरी बाहुओं में वही शक्ति विद्यमान है। इतना कह कर अपना धनुष श्रीराम को दे दिया। रामचन्द्र जी ने परशुराम जी के धनुष को एक क्षण में तोड़ कर पृथ्वी पर फेंक दिया। तब तो परशुराम जी अति लज्जित हुए और रामचन्द्र जी की बड़ाई करते हुए तपस्या के लिये महेन्द्रगिरि पर चले गये। हे राजन् ! तत्पश्चात् राजा दशरथ ने कैकेई के वरदान देने के रूप में जो दो वचन दिये थे धरोहर रूप में रक्खे थे। कैकेई ने दुर्बुद्धि दासी मंथरा के बहकाने पर भावीवश दोनों वर राजा से माँगे—एक यह कि रामचंद्र जी को चौदह वर्ष का बनवास तथा दूसरा यह कि भरत को राजगद्दी राजा दशरथ यह अनहोनी बात सुन कर अति दुःखी हुए। रामचंद्र जी ने पिता के बचन का पालन करने के लिये सीता तथा लक्ष्मण के साथ बन को प्रस्थान किया। राजपाट तथा राजसी वस्त्राभूषणों से ममता त्याग दी। वे तो साक्षात् भगवान् थे ही उन्हें ममता तो सता ही नहीं सकती थी। उधर महाराज दशरथ का पुत्र शोक में शरीरांत हो गया। तब भरत जी को ननिहाल से बुला कर राज्याभिषेक के लिये कहा किन्तु भरतजी ने अस्वीकार कर दिया और रामचन्द्र जी को बन से लौटाने के लिये पुरवासियों सहित बन में गए। किंतु रामचन्द्र जी बन से न लौटे और उन्हें अपनी चरणपादुका दे कर प्रजा का भार वहन करने की आज्ञा दे दी। भरत जी नन्द ग्राम में तपसी के वेष में रह कर भगवान् श्री रामचन्द्र जी की चरणपादुकाओं की सेवा करने लगे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पंचवटी नामक स्थान पर रामचन्द्रजी पर्णकुटी बनाकर अपने भ्राता लक्ष्मण तथा सीताजी के साथ रह कर कन्दमूल तथा फलों का सेवन करने लगे। वहाँ पर शूर्पणखाँ नाम की राक्षसी रहती थी। उसने कामासक्त होकर रामचन्द्र जी के साथ विवाह करने की इच्छा की। तब रामचन्द्रजी की आज्ञा से लक्ष्मणजी ने उसके नाक कान काट लिए। उसने खरदूषण त्रिशिरा आदि राक्षसों से सहायता माँगी। तब चौदह हजार राक्षसों से अकेले रामचन्द्र जी ने घोर संग्राम किया और उन्हें मार कर सुर पुर भेज दिया। वह राक्षसी अपने भाई रावण के पास लंका में गई और सीता के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई बोली—मैं उस सुन्दरी को तुम्हारे लिये ला रही थी इसी अपराध में मेरे नाक कान राम लक्ष्मण नामक तपस्वियों ने काट लिए हैं। तब रावण क्रोधित होकर मारीच दैत्य को मृग बना कर सीता को हरण कर लाया और उस सती साध्वी को अपनी भार्या बनाने का प्रयत्न करने लगा।

जब रामचन्द्र जी उस कपट वेषधारी मारीच को जो हिरण बना हुआ था मार कर अपनी कुटी के लिए लौटे तो मार्ग में लक्ष्मण जी को आते देखा। जब दोनों भाई कुटी पर पहुँचे तो वहाँ पर सीता को न पा अति व्याकुल हुए और सीता जी की खोज उस बन में करने लगे। उस कुटी से कुछ दूरी पर उन्हें एक बृद्ध जटायु नाम गिद्ध पड़ा हुआ मिला। उस गिद्ध ने रामचन्द्र जी से रावण नाम के राक्षस द्वारा सीता हरण तथा उसे छुड़ाने के लिए उस रावण से अपने युद्ध का सम्बाद सुनाया और बोला कि उसी रावण ने यह दशा की है मैं केवल आपके दर्शन करने तथा यह दुःखद सम्बाद सुनाने को ही जीवित हूँ। वह रावण समुद्र के किनारे दक्षिण की ओर लंका में रहता है यह कह जटायु ने शरीर त्याग दिया। तब रामचन्द्र जी ने अपने परम मित्र तथा भक्त जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया की और आगे बढ़ गए।

कुछ दूरी पर कवन्ध नाम के महा दैत्य का संहार किया फिर हनुमान जी की सहायता से सुग्रीव से मित्रता कर के बालि नाम के वानर राजा का संहार किया और सुग्रीव की सहायता से असंख्यों वानरों को दशों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दिशाओं में भेज कर सीता जी की खोज कराई। तब हनुमान जी तथा अङ्गदादि वानर सीता की खोज कर के लाये और विशाल वानर सेना लेकर लङ्कापुरी पर आक्रमण कर दिया। जब समुद्र ने रामचन्द्र जी की सेना को मार्ग नहीं दिया। तब उन के भ्रू भङ्ग से ही समुद्र काँप उठा और उस में रहने वाले सभी जलचर खौल उठे। तब समुद्र ने मनुष्य रूप धारण कर के अपने ऊपर एक विशाल पुल बनाने की प्रार्थना की। राम ने ऐसा ही किया और नल नील वानरों की सहायता से सेतुबन्ध नाम का पुल लङ्का तक बाँध दिया। तब उस पुल से सारी वानर सेना दूसरी ओर उतर गई और लङ्का को घेर लिया। वहाँ पर विभीषण की सहायता से कुम्भकर्ण, मेघनाद, धूमाक्ष, कुम्भ, निकुम्भ, सुरात्तक, नारान्तक, प्रसस्त, अहिरावण आदि समस्त राक्षसों सहित अभिमानी रावण को मार डाला। तब लंका का राज्य भक्तराज विभीषण को दे कर रामजी सीताजी के साथ तथा अपनी समस्त वानर सेना सहित पुष्पक विमान द्वारा चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने पर अयोध्या में आये।

अयोध्या नगर वासियों ने अपने परम प्रिय महाराजाधिराज रामचन्द्र जी को बन से लौटा देख कर बड़ी प्रसन्नता से इन का स्वागत व अगवानी की। भरत जी ने उन के चरणों में गिर कर उनकी पादुकाएँ प्रदान कीं तथा गुरु वशिष्ठजी की सहायता से रामचन्द्र जी का राज्य तिलक किया। रामचन्द्रजी अपनी माता तथा भाइयों सहित आनन्द पूर्वक अयोध्या का राज्य करने लगे।

---❀---

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्री रामचन्द्र जी के शेष जीवन का वर्णन।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ जी की सहायता से अनेकों बड़े बड़े यज्ञ किये। उनने कई बार सारी पृथ्वी को उन ब्राह्मणों को दान दे दिया केवल अपने तथा सीता जी के पास पहनने के वस्त्र ही रह गये थे किन्तु आचार्य ने उन्हें पृथ्वी लौटा दी क्योंकि उन्होंने स्वयं प्रकाश भगवान् राम को अपना आराध्यदेव तथा भगवान् राम ने उन ब्राह्मणों को अपना इष्टदेव स्वीकार किया था। एक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बार रामचन्द्रजी अपनी प्रजा की दशा देखने के लिये गुप्त रूप से घूम रहे थे तब उन्होंने यह अपवाद सुना। एक मनुष्य अपनी पत्नी से कह रहा था कि रे कुलटा ! मैं राम की तरह से तुझे घर से निकली हुई को फिर घर में नहीं रख सकता हूँ। रामचन्द्रजी ने यह अपवाद बहुतों के मुँह से सुना तब लोक-अपवाद के भय से उन्होंने अपनी पतिव्रता साध्वी पत्नी को त्याग दिया। सीता जी उस समय गर्भवती थीं। वे वाल्मीकि जी के आश्रम पर रहने लगीं। और वहीं पर लव-कुश दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए। वाल्मीकिजी ने उनका जाति कर्म संस्कार किया। लक्ष्मणजी के दो पुत्र थे अङ्गद तथा चित्र-केतु। इसी प्रकार भरत जी के पुत्रों का नाम तक्ष तथा पुष्कल था। शत्रुघ्न के सुबाहु तथा श्रुतिसेन नाम के पुत्र थे। शत्रुघ्नजी ने मधुवन में मधु के पुत्र लवण राक्षस को मार कर मथुरा नगरी बसाई।

सीता जी लव-कुश को वाल्मीकि जी को सौंप कर पृथ्वी में समा गईं। श्रीरामचन्द्रजी अपने शोका वेग को न रोक सके तथा सीता जी के पवित्र गुणों को बारम्बार स्मरण कर के अति दुःखी हुए। जब सामर्थ्यवान पुरुषों की यह दशा है तो गृहासक्त पुरुषों की तो कही ही क्या जा सकती है।

राम ने ब्रह्मचारी रह कर तेरह हजार वर्ष तक पृथ्वी का राज किया।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! भगवान् राम ने राज सिंहासन पर बैठने के बाद अपने भाइयों को दिग्विजय की आज्ञा दे दी। और आप स्वयं अपने भक्तों को दर्शन देते हुए सेवकों के साथ पुरी की देख-रेख करने लगे। उनके शासनकाल में अयोध्यापुरी लक्ष्मी, ऐश्वर्य तथा दिव्य वैभव से परिपूर्ण थी। जब वे नगर में घूमने को निकलते थे तब नगर निवासी उन के दर्शनों के लिए भेंट ले कर आजाते थे और उन पर पुष्पों की वर्षा करते थे। भगवान् राम इस प्रकार राम-राज्य कर के अपने लोक को भाइयों सहित चले गये।

—:०:—

॥ बारहवाँ अध्याय॥

इक्ष्वाकु वंश के अन्य राजाओं का वर्णन—

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन् ! कुश का पुत्र अतिथि था और

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अतिथि का निषद तथा उसका नभ और उसका पुण्डरीक था। पुण्डरीक का क्षेमधन्वा, उसका देवनीक, उसका अनींह, उसका पार्यात्र, उसका बलि स्थल उसका पुत्र बज्रनाभ था। बज्रनाभ का पुत्र खड़ग, उसका विध्रति और उसका हिरण्यनाभ पुत्र था। हिरण्यनाभ जैमिनी ऋषि का शिष्य और बड़ा योगी था।

याज्ञवल्कि ऋषि ने उसकी शिष्यता स्वीकार करके अध्यात्म योग की शिक्षा प्राप्त की थी। हिरण्यनाभि का पुत्र पुष्प उसका ध्रुवसन्धि उस का सुदर्शन, उसका अग्निवर्ण तथा अग्निवर्ण का पुत्र शीघ्र और शीघ्र का पुत्र मरु था। मरु का पुत्र प्रसुश्रुत उसका सन्धि और उसका पुत्र अमर्सण था अमर्सण का महश्वान तथा महश्वान का विश्वसाह्व। उसका प्रसेनजित, उसका तक्षक और तक्षक का पुत्र बृहद्बल था। उसी बृहद्बल को तुम्हारे पिता अभिमन्यु ने युद्ध में मारा था।

हे राजन्! अब इक्ष्वाकु वंश के आने वाले राजाओं का नाम सुनो। बृहद्बल का पुत्र बृहद्रण होगा। उस का पुत्र उरुप्रिय तथा उस का पुत्र वत्सवृद्ध उसका पुत्र पति॰योम उसका पुत्र भानु तथा भानुका पुत्रादिवाक होगा दिवाकका पुत्र सहदेव, उसका द्रहदश्व उसका पुत्र भानुमान उसका पुत्र प्रतीकाश्व और उसका पुत्रसुप्रतीक होगा। सुप्रतीकका पुत्रमरुदेव उसका सुनक्षत्र उसका पुत्र पुष्कर, उस का पुत्र अन्तरिक्ष उस का पुत्र सुतपा उस का पुत्र अमित्राजित उस का पुत्र बृहद्राज, उसका पुत्र वर्हि उसका पुत्र बृहंजय उस का पुत्र रणन्जय और रणन्जय का पुत्र सन्जय हागा। सन्जय का पुत्र शाल्व, उसका पुत्र शुद्धोद, उसका पुत्र लांगन उसका पुत्र प्रसेनजित और उसका पुत्र क्षुद्रक होगा। क्षुद्रक का रणक, उसका सुरथ और सुरथ से इस वंश का अन्तिम राजा सुमित्रहोगा। महाराज इक्ष्वाकु का वंश सुमित्र तक ही रहेगा क्योंकि कलियुग के आने पर यह वंश समाप्त हो जावेगा।

—❀—

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

राजा निमि के वंश का वर्णन करना।

दो०—राजा निमि के वंश को, कह्यो मुनीश सिहाय।
नृपति परीक्षित सुन रहे, मन में अति हरषाय॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र निमि थे। उन्हों ने वशिष्ठ जी के द्वारा एक यज्ञ प्रारम्भ कराया तब वशिष्ठ जी ने कहा हे राजन्! मैं इन्द्र का यज्ञ कराने जाऊँगा क्योंकि वह पहलेमुझे वर्ण कर चुके हैं तब मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा। राजा निमि यह बात सुन कर चुप होगये तथा वशिष्ठ जी इन्द्र के यहाँ यज्ञ कार्य को चले गये। राजा निमि ने जीवन को क्षण भंगुर समझ कर कि न जाने यह कब समाप्त हो जावे वशिष्ठ जी की प्रतिक्षा न करके दूसरे ऋषियों के द्वारा यज्ञ आरम्भ कर दिया। जब वशिष्ठजी इन्द्र का यज्ञ करा के लौटे तो उन्हें पता चला कि निमि ने उनकी बात न मानकर यज्ञ आरम्भ कर दिया है। निमि को अपने विद्वान तथा विचारशील होने का अहङ्कार है इसलिए उन्होंने निमि को यह श्राप दिया कि निमि का देहावसान हो जावे। तब राजा निमि ने भी वशिष्ठ जी को यह श्राप दिया कि आपने लोभ के कारण धर्म का अनुसरण नहीं किया है अतः आप का शरीर भी नष्ट हो जावे। इतना कह कर राजा निमि ने अपना शरीर त्याग दिया।

उधर वशिष्ठजी ने शरीर त्यागकर उर्वशी के गर्भ में मित्रावरुण के द्वारा जन्म लिया राजा निमि के ऋत्वजों ने उन के शरीर को सुगन्धित वस्तुओं में रख दिया जब राजा निमि के यज्ञ की समाप्ति हुई तब वहाँ देवता लोग आये उनसे ऋत्वजों ने यह प्रार्थना की कि आप लोग शक्तिमान हैं। यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे राजा निमि का यह शरीर पुनः जीवित हो जावे।

देवता लोगों ने प्रसन्न हो कहा--ऐसा ही होगा तब राजा निमि ने कहा मुझे यह शरीर बन्धन नहीं चाहिए। भगवान् के चरणों का ध्यान करने वाले इस शरीर बन्धन को नहीं चाहते क्यों कि यह शरीर किसी न किसी दिन अवश्य नष्ट होगा। अतः मैं इस शोक दुःख के कारण शरीर को पुनः धारण नहीं करना चाहता।

देवताओं के कहा--हे श्रेष्ठ मुनियो! राजा निमि शरीर धारण करना नहीं चाहते। ये प्राणियों के नेत्रों में सदा निवास करेंगे और वहाँ रह कर अपने सूक्ष्म शरीर से परमात्मा का भजन करेंगे। पलक उठाने तथा गिरने

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

से इनका पता चलेगा। तब उन महर्षियों ने राजा के शरीर का मन्थन किया और उनमें से एक सुन्दर कुमार प्रकट हुआ वही राजा जनक तथा मन्थन से प्रगट होने के कारण उस कुमार का नाम मिथिल रक्खा गया। उन्होंने ही मिथिलापुरी बसाई।

हे राजन्! जनक का पुत्र उदावसु उसका पुत्र नन्दिवर्धन, उस का पुत्र सुकेतु उसका पुत्र देवरात उसका पुत्र बृहद्रथ, उसका पुत्र महावीर्य उसका पुत्र सुधृति उसका पुत्र धृष्टकेतु उसका पुत्र हर्यश्व उसका पुत्र मरु था। मरु का प्रतीयक, उसका पुत्र कृतिरथ, उसका पुत्र देवमीढ उसका पुत्र विश्रुत उसका पुत्र महाधृति था। महाधृति का पुत्र कृतिरात उसका पुत्र महाराम उसका स्वर्णरोमा उसका पुत्र ह्रस्वरोमा, उसी राजा ह्रस्वरोमाके पुत्र महाराज सीरध्वजथे जिनकी पुत्री सीताजी थीं जो हलके अग्रभागसे उत्पन्न हुई थीं। सीरध्वज के पुत्र कुशध्वज उसके धर्मध्वज और धर्मध्वज के कृतध्वज और मितध्वज थे। कृतध्वज के केशिध्वज और मीतध्वज के खाण्डिक्य थे। केशिध्वज का पुत्र भानुमान तथा उसका पुत्र शतद्युम्न था। उसके शुचि उसके पुत्र सनद्वाज उसके पुत्र ऊर्ध्वकेतु उसके पुत्र अज, उसका पुरुजित उसके पुत्र अरिष्टनेमि उसका पुत्र श्रुतायु, उसके पुत्र सुपार्श्वक, उसके पुत्र चित्ररथ उसके पुत्र क्षेमधि हुए। उसके पुत्र समरथ उसके पुत्र सत्यरथ, सत्यरथ के उपगुरु उपगुरु के उपगुप्त उपगुप्त के वस्वनन्त, उसके पुत्र युयुध, उसके पुत्र सुभाषण उसके पुत्र श्रुतु उसके पुत्र जय, उसके विजय, विजय के ऋतु, उसके सनक, उसके बीतहव्य, उसके पुत्र धृति उसके पुत्र बहुलाश्व उसके पुत्र कृति उसके पुत्र महावशी थे।

हे राजा परीक्षित्! मिथिला में उत्पन्न सभीराजा मैथिल तथा मिथिलेश कहलाये वे सब बड़े आत्मज्ञानी तथा गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी सुख दुखादि विकारों से मुक्त थे। ये सब के सब याज्ञवल्क्यजी के शिष्य थे।

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

चन्द्रवंश का वर्णन

दोहा—चंद्रवंश में पुरुरुवा, भये नृपति महाभाग।
ब्याह उर्वशी सङ्ग कियौ, करते अति अनुराग॥

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

श्री शुकदेव जी बोले–हे राजा परीक्षित् ! चन्द्रमा के पवित्र वंश में पुरूरवा आदि अनेकों पवित्र कीर्ति वाले राजा हुए हैं । विराट् भगवान् के कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि मुनि थे। उन्हीं अत्रिमुनि के नेत्रों से यह चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । इस चन्द्रमा को ब्रह्माजी ने ब्राह्मण, औषधि तथा नक्षत्रों का स्वामी बनाया । उस चन्द्रमा ने तीनों लोकों को विजय करके राजसूय यज्ञ किया । इस कारण चन्द्रमा को अति अभिमान हो गया और देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को चुरा लाया । बार बार माँगने पर भी उन्होंने उसे नहीं लौटाया। ऐसी स्थिति में उस पत्नी के लिए देवता तथा दानवों में युद्ध आरम्भ हो गया। शुक्राचार्यजी ने चन्द्रमा का पक्ष लिया । तथा महादेवजी ने अङ्गिराजी के पुत्र बृहस्पतिजी का पक्ष किया तथा इन्द्रादि सभी देवताओं ने भी बृहस्पति जी का पक्ष लिया इस प्रकार तारा के लिये दैत्य तथा देवताओं में घोर संग्राम हुआ। तत्पश्चात् अङ्गिराजी ने ब्रह्मा जी के निकट जाकर युद्ध बन्दी की प्रार्थना की तब ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को डाट फटकार कर तारा बृहस्पति जी को दिला दी तारा के चन्द्रमा का गर्भ था तब बृहस्पति जी ने अपनी पत्नी से डाँट कर कहा–रे दुष्टे ! मेरे क्षेत्र में यह दूसरे का गर्भ है। इसे तू अभी त्याग दे। भय मत कर मैं तुझे भस्म नहीं करूँगा। क्यों कि एक तो तू स्त्री है और दूसरे निर्दोष भी है । दूसरे मुझे भी सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा है। पति की यह बात सुनकर तारा ने लज्जित भाव से उस गर्भस्थ बालक को गर्भ से अलग कर दिया। उस सोने के समान चमकते हुए बालक को देखकर बृहस्पति जी तथा चन्द्रमा दोनों ही मोहित होगए और उसे चाहने लगे। दोनों में परस्पर झगड़ा होने लगा तब देवता तथा ऋषियों ने तारा से पूछा कि यह किसका गर्भ है। तारा ने लज्जावश कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब बालक ने अपनी माता से क्रोधित होकर कहा– रे दुष्टा ! तू अपने इस कुकृत्य को मुझे शीघ्र बता । बतलाती क्यों नहीं है ? तब ब्रह्माजी ने तारा को एकांत में बुला कर पूछा तो तारा ने चन्द्रमा का ही गर्भ बतलाया और उस पुत्र को चन्द्रमा ने ले लिया । हे राजन् !

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उस पुत्र का नाम बुध रक्खा गया। उसी बुध के द्वारा इला नाम की अप्सरा के गर्भ से पुरुरवा उत्पन्न हुए।

एक समय इन्द्र की सभा में नारदजी पुरुरवा के रूप सौन्दर्य, शक्ति धन, सम्पत्ति आदि का गायन कर रहे थे उसे सुन उर्वशी अप्सरा मोहित होगई और वह अप्सरा पुरुरवा के निकट चली गई। वह उर्वशी अप्सरा मित्रावरुण के शाप से ही मृत्यलोकमें गई थी। किन्तु उर्वशी ने भी पुरुरवा के रूप सौन्दर्य से मोहित होकर उसे अपना पति बनाना स्वीकार किया। राजा पुरुरवा उर्वशी को देख कर अति प्रसन्न हुए और मीठी वाणी से वोले—हे सुर सुन्दरी! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ बोलो तुम्हारी क्या सेवा करूँ? आओ तुम मेरे साथ विहार करो।

उर्वशी ने कहा—हे राजन्! आप के रूप सौन्दर्य को देख कर कौन ऐसी सुन्दरी होगी जो आप में आसक्त न होगी। मैं आपके साथ अवश्य विवाह करूँगी किन्तु मेरी एक शर्त है कि मैं धरोहर के रूप में आप को दो भेड़ के बच्चे देती हूँ। आप उनकी रक्षा कीजिए। हे वीर! मैं केवल घी खा कर रहूँगी तथा मैथुन के अतिरिक्त और किसी समय आपको वस्त्र हीन न देख सकूँगी। राजा पुरुरवा ने यह शर्त स्वीकार करली और वह उर्वशी राजा पुरुरवा के साथ विहार करने लगी। उर्वशी के शरीर से कमल, केसर की सुगन्धि निकला करती थी। वे उसके प्रेम में अपना सर्वस्व भूल गये।

जब देवराज इन्द्र ने अपने यहाँ उर्वशी को नहीं देखा तउन्हें बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने उर्वशी को लाने के लिए गन्धर्वों को वहाँ भेजा। वह गन्धर्व अँधेरी रात्रि में आ कर भेड़ के दोनों बच्चों को जो उर्वशी ने राज पुरुरवा के पास धरोहर के रूप में रक्खे थे चुरा कर ले गये। जब उर्वशी ने अपने भेड़ के बच्चों की आवाज सुनी तब वह अति व्याकुल हुई और बोली—यह निपुंसक राजा अपने को बड़ा बली समझता है किन्तु यह तो मेरे बच्चों को भी न बचा सका। मैं तो मर गई। यह दिन में तो मर्द बनता है किंतु रात में स्त्रियों की भाँति सोता रहता है। यह सुन कर राजा को बड़ा क्रोध आया और वे वस्त्रहीन अवस्था में ही अपने हाथ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में तलवार ले कर गन्धर्वों पर दौड़ पड़े। गन्धर्वों ने भेड़ के बच्चों को तो छोड़ दिया और वे बिजली की तरह चमकने लगे। जब राजा पुरुरवा वस्त्र हीन अवस्था में उन दोनों भेड़ के बच्चों को लेकर उर्वशी के निकट आये तब उर्वशी ने उन्हें उस प्रकाश में वस्त्रहीन देखा। तो उर्वशी उन्हें त्याग कर अपने लोक को चली गई।

हे राजा परीक्षित् ! राजा पुरुरवा उर्वशी के वियोग में अति अनमने रहने लगे तथा पागल की भाँति इधर उधर भटकने लगे। तब एक दिन घूमते घूमते कुरुक्षेत्र में सरस्वती के तट पर उर्वशी को अपनी सखियों के साथ राजा पुरुरवा ने देखी। तब राजा ने मीठी वाणी में कहा—प्रिये ! मेरी बात सुनो। हे निष्ठुर ! मुझे अधिक दुखी न करो। मेरी एक बात सुन लो। तुमने यह मेरा सुन्दर शरीर त्याग दिया है अब यह शीघ्र ही तुम्हारे वियोग में ढेर हो जायगा और इसे भेड़िये तथा गीध भक्षण कर जावेंगे। उर्वशी ने कहा—हे राजन् ! तुम पुरुष हो। इस प्रकार की बातें न करो। स्त्रियों की किसी से मित्रता नहीं होता है। वे सचमुच फाड़ खाने वाले भेड़िये के समान होती हैं। उनका स्वभाव निर्दय तथा क्रूर होता है वे अपना स्वार्थ साधने में चतुर होती हैं। स्वार्थ के लिये अपने भाई तथा पति को भी मरवा डालतीं हैं। तनिक सी बात पर चिढ़ कर क्रूर बन जाती हैं। सीधे साधे पुरुषों को झूँठा विश्वास दिला कर अपने चक्कर में फँसा लेती हैं। नये नये पुरुषों की चाह से कुलटा तथा स्वेच्छाचारिणी बन जाती हैं। तुम राज राजेश्वर हो प्रत्येक वर्ष के पश्चात् एक रात्रि के लिए मैं तुम्हारे साथ रहा करूँगी। तब तुम्हारे द्वारा मेरे और भी सन्तान होंगी। राजा पुरुरवा ने देखा कि उर्वशी के गर्भ है तो वे अपने नगर को लौट आये। एक वर्ष पश्चात् राजा पुरुरवा फिर उर्वशी के पास गये तब तक उर्वशी एक बालक को माता हो चुकी थी जब वे रात्रि समाप्त होने पर उर्वशी से बिदा होने लगे तो तब उन्हें वियोग के कारण महान दुःख हुआ और अत्यन्त दीन होकर अश्रु बहाने लगे तब उर्वशी ने उन से कहा कि तुम इन गन्धर्वों की स्तुति करो। राजा पुरुरवा ने ऐसा ही किया। गन्धर्वों ने राजा से प्रसन्न होकर उसे एक अग्निस्थ पात्र अर्थात् अग्नि

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रखने का पात्र दिया। राजा पुरुरवा उसी को उर्वशी समझ कर बन-बन घूमने लगे किन्तु जब उन्हें इसका ध्यान आया तब उन्होंने उसको वन में ही त्याग दिया और अपने नगर को आये तथा रात्रिको उर्वशी का ध्यान करते रहते। जब त्रेतायुग आरम्भ हो गया तब उनके हृदय में तीनों वेद प्रगट हुए तब वे उस स्थानपर गए। जहाँ उन्होंने उस अग्निपात्र को त्यागा था। वहाँ पर देखा कि उस अग्निपात्र के स्थान पर शमी वृत्ती के बीच में पीपल का वृक्ष उगा हुआ है तब राजा पुरुरवा ने दो अरणियाँ अर्थात् मंथन काष्ठ बनाईं तत्पश्चात् उर्वशी लोककी प्राप्तिके लिए नीचेकी अरणी को उर्वशी तथा ऊपर की अरिणी को पुरुरवा तथा बीच की अरिणीको पुत्र रूप से ध्यान करते हुए अग्नि उत्पन्न करने वाले मंत्रों से रगड़ना आरम्भ किया। उस रगड़ से 'ताज बेदा' नाम का अग्नि उत्पन्न हुआ। उन अग्नि को तीन भागों में बाँटकर पत्र रूपसे राजा ने स्वीकार किया और उर्वशी लोक की प्राप्ति के लिये भगवान की अराधना की।

हे राजन्! सतयुग में एक मात्र मंत्र प्रणव, ॐकार था। सारे वेदशास्त्र उसीके अन्तरित्त थे। देवता केवल नारायण थे और कोई न था। अग्नि केवल एक थी तीन नहीं थी। केवल हंस वर्ण था। त्रेता के आरम्भ में राजा पुरुरवा ने ही तीन वेद तथा तीन अग्नियों को प्रकट किया और अग्नि को सन्तान रूपमें मानकर गन्धर्व लोक को चले गये।

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

ऋश्त्रीक जमदग्नि तथा परशुराम के चरित्र का वर्णन।

दो०-परशुराम के चरित्र को, वर्णन कीन्ह मुनीश।
नृपति परीत्तित सुनि रहे, शिर झुकाय जगदीश॥

श्री शुकदेवजी बोले-हे परीत्तित्! उर्वशी अप्सरा के गर्भ से राजा पुरुरवा के आयु, श्रुतायु सत्यायु रथ विजय तथा जय नाम के छः पुत्र उत्पन्न हुये। श्रुतायु के पुत्रका नाम बसुमान्, सत्यायु के पुत्र का नाम श्रुतन्जय, रय के पुत्र का नाम एन्द, जय के पुत्र का नाम अमित तथा विजय के पुत्र का नाम भीम था। भीम का पुत्र कान्चन उसका पुत्र होत्र तथा होत्र का पुत्र जन्हू था जिसने गङ्गाजी को अंजलि में पी लिया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

था। जन्हूव का पुत्र पुरु, उसका पुत्रवलाक, उसका पुत्र अजक और उसका कुश था। कुश के कुशाम्बु, तनय वसु कुशानाभ नाम के चार पुत्र थे। कुशाम्बु के पुत्र का नाम गाधिथा।

हे परीक्षित्! गाधि की कन्या सत्यवती थी। ऋश्त्रीक मुनिने गाधि से कन्या को माँगा किन्तु गाधि ने ऋश्त्रीक ऋषि को अयोग्य वर समझ उन से कहा—हे मुनिवर! हम कुशिक वंश के हैं हमारी कन्या मिलना कठिन है। यदि आप चाहते हैं तो एक सहस्र श्याम कर्ण घोड़े मुझे शुल्क रूप में ला कर दीजिये। ऋश्त्रीक ऋषि ने गाधि का तात्पर्य समझ वरुण देव के पास गए और वहाँ से एक सहस्र श्याम कर्ण घोड़े ला गाधि को दे दिये और उनकी कन्या सत्यवती से विवाह कर लिया। एक समय महर्षि ऋश्त्रीक से उनकी पत्नी तथा सत्यवती की माता (गाधि की पत्नी) दोनों ने पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना की। ऋश्त्रीक मुनि ने स्वीकार कर लिया और दोनों के लिये दो प्रकार का चरु तैयार किया। चरु तैयार करके वे स्नान के लिए चले गए तब सत्यवती की माता ने यह जान कर कि ऋषि ने सत्यवती के लिए उत्तम चरु तैयार किया होगा उसने सत्यवती का चरु स्वयं खा लिया और अपना चरु सत्यवती को खिला दिया। जब ऋषि को यह पता चला तब उन्होंने सत्यवती से कहा कि तुमने बड़ा अनर्थ किया। तुम्हारे जो पुत्र होगा वह क्षत्रिय स्वभाव का क्रूर होगा तथा तुम्हारी माता के जो पुत्र होगा वह ब्राह्मण स्वभाव का होगा। यह सुन कर सत्यवती घबड़ा गई और अपने पति को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना की। तब ऋश्त्रीक मुनि ने कहा तुम्हारा पुत्र ऐसा न हो तुम्हारा पौत्र ऐसा अवश्य होगा सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। सत्यवती कौशिकी नाम की नदी बन गई। जमदग्नि का विवाह रेणु ऋषि की कन्या रेणुका से हुआ। रेणुका के वसुमान आदि का पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सब, से छोटे परशुराम जी थे। उन्होंने सारी पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्री हीन कर दिया था।

परीक्षित ने पूछा—हे ब्रह्मन्! परशुराम जी ने किस अपराध में क्षत्रियों का संहार किया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! हैहय वंश का अर्जुन अतिबली तथा दत्तात्रेय जी की कृपा से सहस्र भुजाओं वाला और अजेय राजा था। उसने दत्तात्रेयजी से सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त करली थीं और वह योगेश्वर हो गया था। उसकी गति सर्वत्र वायु के समान बे रोक टोक थी। एक समय वह सहस्रबाहु अर्जुन बहुत सी स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जल विहार कर रहा था। उसने अपनी सहस्रबाहुओं से नदी का जल रोक दिया था। निकट में ही रावण का डेरा पड़ा हुआ था। जल के रुकने से उसका डेरा बहने लगा तब रावण ने आकर सहस्रबाहु अर्जुन को बुरा भला कहा तब सहस्रबाहु अर्जुन रावण को पकड़ कर अपनी पुरी माहिष्मती को ले गया। और उसको बन्दर की भाँति बन्दीगृह में डाल दिया। तब पुलस्त्यजी के समझाने से उसको छोड़ दिया।

एक समय वही सहस्रबाहु अर्जुन शिकार खेलते हुए बन में जमदग्नि के आश्रम पर पहुँच गया। राजा को आया हुआ देखकर जमदग्नि मुनि ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। सहस्रबाहु अर्जुन को जमदग्नि का वैभव देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ तब उसने मालूम किया कि यह सब कुछ इस कामधेनु के कारण है वह तुरन्त जमदग्नि के बिना पूछे ही उस कामधेनु को खोलकर अपने नगर को बलपूर्वक ले गया। जब परशुराम जी लौट कर आये तब उन्होंने अपने पिता से सब समाचार सुना तो वे अति क्रोधित हुए और अपना फर्शा लेकर माहिष्मती पहुँचे वहाँ जाकर सहस्रबाहु अर्जुन से घोर संग्राम हुआ। वहाँ अकेले परशुराम जी ने ही उसकी सारी सेना का संहार किया और अन्त में सहस्रबाहु अर्जुन की भुजाओं को अपने फर्शे से काट कर उसके सिर को भी काट दिया। तब वे अपनी गाय लेकर आश्रम को लौट आए और माहिष्मती का सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया। जमदग्नि यह सुन कर अति दुखी हुए और उन्होंने परशुराम से कहा—बेटा! तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह कर्म तुम्हारे योग्य नहीं था। हम लोग ब्राह्मण हैं हमारा भूषण क्षमा तथा दया ही है। किन्तु अब तुम तीर्थों में जाओ और अपने पापों को धो डालो।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

परशुरामजी के द्वारा अन्य साथियों का संहार तथा विश्वामित्रजीके वंशकावर्णन

चौ०-परशुराम क्षत्रिय कुल बालक, जग रक्षक संतन सुख दायक।
इक्कीसवार क्षत्री पुनि मारे, पृथ्वी के सब भार उतारे॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! पिता की आज्ञा से परशुराम जी तीर्थाटन को चले गए एक वर्ष तक तीर्थ यात्रा करते रहे और फिर अपने आश्रम को चले आये। एक समय परशुराम की माता रेणुका गङ्गा पर जल भरने गईं। वहाँ पर चित्ररथ गन्धर्व को अपनी स्त्रियों के साथ जल विहार करते देखा यह देख कर रेणुका का मन कुछ कुछ चित्ररथ की ओर खिंच गया जब वह जल लेकर आश्रम पर लौटीं तब विलम्ब होने के कारण जमदग्नि मुनि ने योग बल से उसके मनोभाव को जान लिया तब उन्होंने अपने पुत्रों से कहाकि इस दुष्टा को मार डालो किंतु पुत्रों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। जब जमदग्नि ऋषि ने अपने छोटे पुत्र परशुरामजी को अपनी माता तथा भाइयों को मारने की आज्ञा दी तो परशुराम जी ने अपनी माता तथा सब भाइयों को मार डाला। तब जगदग्नि ऋषि ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। तब परशुराम जी ने यह वर माँगा कि मेरे सब भाई तथा माता जीवित हो उठें और उन्हें मेरे द्वारा मारे जाने की स्मृति न रहे। परशुराम जी अपने पिता के प्रभाव को जानते थे तभी उन्होंने ऐसा किया था। पिता ने उन के भाइयों तथा माता को जीवित कर दिया।

एक समय परशुराम जी बाहर गए हुए थे उनके पीछे सहस्त्रबाहु अर्जुन के पुत्रों ने अवसर पाकर समाधि में बैठे हुए जमदग्नि जी को मार डाला। और उनका शिर काट कर अपने नगर को ले गए। परशुराम की माता हा राम, हा परशुराम करके अपनी छाती पीटने लगीं उसी समय परशुराम जी वहाँ पर आ गए। अपनी माता को इक्कीस बार छाती पीटते देखकर उन्होंने इक्कीस बार सम्पूर्ण पृथ्वी से क्षत्रिय वंश को नाश करने का प्रण किया। ऐसा प्रण करके वे माहिष्मती नगरी में गए और वहाँ पर सहस्त्रबाहु अर्जुन के पुत्रों को मार डाला। उनके सिरों का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by MoE

एक पर्वत सा खड़ा कर दिया और उनके रक्त से एक भयङ्कर नदी बहने लगी। जिसको देख कर ब्राह्मण द्रोहियों का हृदय काँपने लगा। उस काल में क्षत्रिय अत्याचारी तथा क्रूर कर्मा हो गए थे। इसी लिए भगवान् के अन्शावतार परशुराम जी ने सारी पृथ्वी से इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर के कुरुक्षेत्र के समन्त पन्चक नामक स्थान में पाँच सरोवर रक्त से भर दिये। और अपने पिता के सिर को ला कर धड़ से जोड़ दिया तथा यज्ञों के द्वारा यज्ञपति भगवान् का पूजन किया। उन यज्ञों में सारी पृथ्वी होता तथा ऋत्वजों को दान में दे दी।

परशुरामजी के प्रभाव से जतमदग्नि सप्तर्षियों में सातवें ऋषि गिने गए। परशुराम जी भी अगले मन्वन्तर में सप्तर्षियों के मण्डल में रहेंगे। अब वे महेन्द्र पर्वत पर रह कर सौम्य रूप से घोर तपस्या कर रहे हैं।

हे राजन्! गाधि के पुत्र परम तेजस्वी विश्वामित्र जी थे। उन्होंने क्षत्रिय होते हुए भी ब्रह्म तेज को प्राप्त किया था उनके सौ पुत्र थे। विश्वामित्रजी ने भृगुवन्शी अजीगर्त के पुत्र तथा अपने भान्जे शुनःशेष को जिसका नाम देवरात भी था अपना बड़ा पुत्र स्वीकार किया था। उन्होंने अपने उन्चास पुत्रों से कहा कि तुम इस शुनःशेष को अपना बड़ा भाई मानो किन्तु विश्वामित्र के उन पुत्रों ने मना कर दिया। तब विश्वामित्र जी ने उन्हें शाप दिया कि तुम मलेच्छ हो जाओ। जब विश्वामित्र के शेष पचास पत्रों ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर के उस शनःशेष को अपना बड़ा भाई मान लिया! मधुछन्द्रा उन सब में बड़ा था इस लिए मधुछन्द्रा के सभी भाई मधुछन्द्रा के नाम से ही विख्यात हुए। यह शुनःशेष वही था जिसको महाराज हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पशु के रूप में रोहित मोल ले आया था। तब विश्वामित्रजी ने प्रजापति वरुण की प्रार्थना करके हरिश्चन्द्र को रोग मुक्त करा दिया था और अपने इस पुत्र को भी पशु बन्धन से छुड़ा लिया था। विश्वामित्रजी ने अपने पुत्रों से प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम सब इस देवरात शुनःशेष को अपना बड़ा भाई मान कर इसकी आज्ञा का पालन करो।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हे राजा परीक्षित् ! ऊष्टक, हारीत, जय तथा कृतमान् आदि विश्वामित्र जी के पुत्र थे, उन्हीं पुत्रों के द्वारा कौशिक गोत्र में कई शाखा प्रशाखा हो गईं ।

—❀—

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

क्षत्रवृद्ध, रजि आदि के वंश की कथा ।

दो०–क्षत्रवृद्ध नृप आदि की, कही कथा मुनिराय ।
नृपति परीक्षित् सुन रहे, मन में अति हरषाय ॥

श्री शुकदेव जी बोले–हे राजन् ! राजा पुरुरवा का एक पुत्र आयु था। उसके नहुष, क्षत्रवृद्ध रजि, शक्तिशाली, रम्भ तथा अनेता थे । राजा पुरुरवा के पुत्र सुहोत्र के कास्य, कुश तथा गृत्समद नाम के तीन पुत्र थे। गृत्समद का शुनक पुत्र था शुनक के पुत्र शौनक जी थे। काश्य के काशि काशि का पुत्र राट्र तथा उका पुत्र दीर्घतया और उसके पुत्र धन्वन्तरि थे जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हुए। धन्वन्तरि के केतुमान् उसके पुत्र भीमरथ उसके दिवोदास तथा दिवोदास का पुत्र द्युमान् उसके पुत्र का नाम अलर्क था जिसने साठ हजार वर्ष तक राज किया।

अलर्क के सन्तति पुत्र हुआ उसके सुनीथ उसके सुकेतन उसके धर्मकेतु उसका सत्यकेतु पुत्र था । उसके धृष्टकेतु, उसके सुकुमार उसके नीतिहोत्र, उसके भर्ग तथा भर्ग के भर्गाशर्प पुत्र हुआ। ये सब के सब क्षत्रवृद्ध के वंश में उत्पन्न हुए।

अब आयुके पुत्र रम्भ के वंशका वर्णन सुनो। रम्भ का पुत्र रभस उसका गंभीर,उसका पुत्र अक्रिय था। अक्रियकी पत्नीसे ब्राह्मण वंश की उत्पत्ति हुई।

अब आयु के पुत्र अनेता का वंश सुनो–अनेता का पुत्र शुद्ध उसका पुत्र शुचि, उसका पुत्र चित्रकूद उसका पुत्र धर्मसारथि उसका पुत्र शान्तरय था। हे राजा परीक्षित् ! आयु के पुत्र रजि के परम तेजस्वी पाँच सौ पुत्र थे। राजा रजि ने दैत्यों को मार कर स्वर्ग का राज्य इन्द्र को दे दिया था किन्तु इन्द्र ने स्वर्ग का राज्य राजा रजि को ही दैत्यों से भयभीत होकर दे दिया। जब परम तेजस्वी रजि की मृत्यु हो गई तब उनके पुत्रों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ने इन्द्र के माँगने पर भी स्वर्ग का राज्य वापिस नहीं किया तब इन्द्र ने बृहस्पति जी की सहायता से राजा रजि के बेटों को मार डाला कोई भी शेष न बचा। तब चत्रवृद्ध के पौत्र कुश के प्रार्त बेटा हुआ प्रार्त के संजय हुआ। संजय के जय, उसके कृत, उसके हर्यबन, उसके सहदेव उसके हीन, उसके जयसेन, उसके संकृति उसके बलवान् जय बेटा हुआ। अब राजा नहुष के वंश का वर्णन सुनो।

—❀—

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

राजा ययाति का चरित्र

चौ०—नृपति ययाति बड़े मतमानी, व्याही शुक्र सुता देवयानी।
जग में कीन्ह वंश विस्तारा, फैल्यौ सुयश महान अपारा॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजा परीचित्! राजा नहुष के छः बेटा थे यति, ययाति, संयाति, आयाति वियाति, तथा कृति। नहुष के बेटा याति परमज्ञानी थे वे राज्य लक्ष्मी आदि से विरक्त रहते थे। इसलिये राजा नहुष ने ययाति को राजा बनाया। राजा ययाति ने दैत्यराज वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा को तथा शुक्राचार्य की बेटी देवयानी को अपनी पत्नी बना कर आनन्द पूर्वक राज्य करने लगे।

राजा परीचित् ने कहा-हे ब्रह्मन्! श्री शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे फिर उनकी बेटी राजा ययाति कैसे प्राप्ति कर सके मुझे समझा कर कहिये।

श्री शुकदेव जी बोले हे राजन्! एक समय दैत्यराज वृषपर्वा की प्यारी बेटी शर्मिष्ठा अपनी सहस्रों सखियों के साथ अपने श्रेष्ठ उद्यान में घूम रही थी। साथ में ही गुरु शुक्राचार्य की बेटी देवयानी भी थी। शर्मिष्ठा बड़ी मानिनी तथा अति सुन्दर राजपुत्री थी। किन्तु रूप लावण्य में देवयानी भी किसी प्रकार कम नहीं थी। वे सब की सब उस उद्यान के एक जलाशय में अपने अपने वस्त्र उतार कर स्नान करने लगीं। वे सब सुन्दरियाँ परस्पर एक दूसरे पर जल उलीच २ कर जल क्रीड़ा करने लगीं। उसी समय भगवान् शंकर जी पार्वती जी के साथ बैल पर चढ़ कर उधर से निकले भगवान् शंकरजी को देखकर सब की सब कन्याएं लज्जा से दौड़कर अपने२

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by MoE

वस्त्र पहिनने लगीं उस शीघ्रता में शर्मिष्ठा ने भूल से देवयानी के वस्त्र पहन लिए। इसपर देवयानी अति क्रोधितहुई और वह आग बबूला होकर बोली अरे देखो तो इस दासी ने मेरे वस्त्र पहिन लिये। जिन ब्राह्मणों की कृपासे इसका बाप राज करता है उसी ब्राह्मणकी कन्या के वस्त्रों को पहन कर अपवित्र कर दिया। जिन ब्राह्मणों के चरणों की बन्दना तथा सेवा बड़े बड़े लोक पाल, इन्द्र, ब्रह्मा तथा स्वयं नारायण भी करते हैं उन्हीं भृगुवंशी ब्राह्मणों के वंश में मेरा जन्म हुआ है इस असुर की कन्या ने मेरे वस्त्र पहन लिए। हाय हाय अब में इन्हें नहीं पहिन सकती। जिस प्रकार शूद्र के पढ़ने से वेद अपवित्र हो जाते हैं उसी प्रकार मेरे वस्त्र अपवित्र हो गये। देवयानी ने इसी प्रकार शर्मिष्ठा को अनेकों गालियाँ दीं। तब शर्मिष्ठा अति क्रोधित होकर तिलमिला उठी। और अपने इस अपमान को सह न सकी। चोट खाई हुई सर्पिणी के समान अपने दाँतों को पीसती हुई बोली—अरे टुकड़ों पर पलने वाली भिखारिन तू इतनी बढ़कर बातें कर रही है। जिस प्रकार कौए, कुत्ते, दरवाजे पर रोटी के टुकड़ों की प्रतीक्षा करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी हमारे दरवाजे पर रोटी के टुकड़ों की प्रतीक्षा करते रहते हो। इस प्रकार अनेकों चुभने वाली बातें शर्मिष्ठा ने देवयानी से कहीं तथा उसके वस्त्र छीन कर उसको कुँए में ढकेल दिया।

जब देवयानी को कुए में ढकेल कर शर्मिष्ठा अपनी सखियों के साथ घर को चली गई तब दैव वश वहाँ राजा ययाति शिकार खेलते हुए आ निकले। उन्हें प्यास लगी थी इस लिए वे उस कुए के निकट गए और उस कुए में देवयानी को पड़ा देखा वह देवयानी वस्त्र हीन थी। इस लिए उन्होंने अपना दुपट्टा नीचे डाल दिया और उसका हाथ पकड़ कर कुए से बाहर निकाल लिया।

तब देवयानी ने प्रेम पूर्वक राजा ययाति से कहा— हे आर्य ! आपने मेरा हाथ पकड़ा है अतः अब इसे दूसरा कोई नहीं पकड़ सकता है। हे वीर शिरोमणे ! कुए में गिरने के कारण मुझे अकस्मात आपके दर्शन हुए

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हैं। इसलिए भगवान् की कृपा से ही मेरा आपका सम्बन्ध हुआ है। इस लिए मैं आप को अपने पति रूप में स्वीकार करती हूँ। हे वीर श्रेष्ठ! पहिले मैंने बृहस्पति के पुत्र कच को श्राप दिया था ❀ इसी कारण से मेरा बिवाह ब्राह्मण कुमार के साथ न होकर क्षत्री कुमार के साथ ही होना निश्चित है। इस कारण तुम किसी बात की चिन्ता न कर के इसे प्रारब्ध का ही भोग समझो। तथा ययाति ने प्रसन्न होकर देवयानी के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

जब राजा ययाति अपने नगर को चले गए तब देवयानी रोती पीटती हुई अपने पिता शुक्राचार्य जी के पास गई। उसने शर्मिष्ठा के किए हुए अपमान तथा दुर्वचनों को शुक्राचार्य जी को सुनाया। इस पर शुक्राचार्य जी अति क्रोधित हुए और देवयानी को साथ लेकर वहाँ से चल दिये। जब दैत्यराज वृषपर्वा को इस बात का पता चला तब वे अति दुखी हुये और वे भयभीत होकर सोचने लगे कि कहीं गुरुदेव मुझे श्राप न दे दें। अथवा गुरुदेव के न रहने से शत्रुओं की शक्ति प्रबल न हो जावे। तब वृषपर्वा अपने गुरुदेव को मनाने के लिए उन के पीछे पीछे गये और गुरु शुक्राचार्य के चरणों में गिर कर उनकी अनुनय विनय करने लगे। शुक्राचार्य जी का क्रोध हवा हो गया तब वे बोले—हे राजन्! मुझे तो तुम से कोई अप्रसन्नता नहीं है किन्तु मेरी इस पुत्री देवयानी के प्रसन्न होने पर मैं यहाँ ठहर सकता हूँ। यदि यह प्रसन्न हो जावेगी तो मुझे लौटने में कोई आपत्ति नहीं है। तब वृषपर्वा ने गुरु पुत्री देवयानी को प्रसन्न करने के लिए कहा—हे बेटी! जो तुम्हारी इच्छा हो वह मुझ से कहो। मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिये तुम्हारी इच्छित वस्तु अवश्य दूँगा और तुम्हारी आज्ञा स्वीकार करूँगा तब देवयानी ने कहा—हे दैत्यराज! मेरे पिता जी

❀ एक समय वृहस्पतिजी का पुत्र कच देवतायों के कहने से शुक्राचार्यजी के निकट सञ्जीवनी विद्या सीखने आए वे शुक्राचार्य जी के घर पर ही रहते थे और विद्याध्यन करते थे। देवयानी का कच से हार्दिक प्रेम था। जब कच विद्या सीख कर घर पर जाने लगे तब देवयानी ने कच को वरण करना चाहा किन्तु कच ने उसे गुरु पुत्री समझ कर ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस पर देवयानी ने रुष्ट हो कर कच को यह श्राप दिया कि तुम अपनी पढ़ी हुई विद्या को भूल जाओ। कच ने भी श्राप दिया कि तुझे कोई ब्राह्मण पत्नी रूप में ग्रहण न करेगा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मुझे कहीं भी किसी को दे दें। मैं कहीं भी जाऊँ। शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों के साथ मेरी दासी बनकर मेरे साथ चले। शर्मिष्ठा बड़ी बुद्धिमती थी उसने अपने परिवार पर आये हुए इस संकट को टालने के लिए देवयानी की यह बात स्वीकार करली। वह अपनी एक सहस्र सहेलियों के साथ दासी बनकर देवयानी की सेवा करने लगी। शुक्राचार्य जी ने देवयानी का विवाह राजा ययाति के साथ कर दिया तब शुक्राचार्य जी ने ययाति से कहा—हे राजन्! इस दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा आपकी सेज पर कभी न आये। ऐसा कह कर अपनी पुत्री को विदा कर दिया।

कुछ काल उपरान्त देवयानी पुत्रवती हुई देवयानी के पुत्रवती होने पर एक दिन शर्मिष्ठा ने भी ऋतुकाल के समय राजा ययाति से एकान्त में सहवास की प्रार्थना की। राजा ययाति ने शर्मिष्ठा की प्रार्थना को धर्म युक्त समझकर शुक्राचार्य जी की बात की अवहेलना करकें उसमे संभोग किया। राजा ययाति से शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुए द्रुह्यु, अनु तथा पुरु और देवयानी के दो पुत्र हुये यदु तथा तुर्वसु। जब देवयानी को इस बात का पता चला कि शर्मिष्ठा के मेरे पति के द्वारा ही पुत्र उत्पन्न हुए हैं तब वह क्रोधित हो कर अपने पिता के निकट गई राजा ययाति ने देवयानी को अनेकों प्रकार से मनाने का प्रयत्न किया किंतु वह न मानी तब शुक्राचार्य जी ने राजा ययाति को यह श्राप दिया कि तू स्त्री लम्पट, मन्द बुद्धि तथा क्रूर है इसलिये तुझे शीघ्र बुढ़ापा आ जाये। तब राजा ययाति ने कहा—हे ब्रह्मदेव! आपकी पुत्री के साथ विषय भोग करते हुए अभी मेरी तृप्ती नहीं हुई है। इस श्राप के कारण तो आपकी इस पुत्री का अहित है तब शुक्राचार्य जी ने विचार कर कहा—अच्छा! जो तुम्हें प्रसन्नता से अपनी यौवनावस्था देदे तुम उससे अपनी वृद्धावस्था बदल सकते हो। तब राजा ययाति अपनी राजधानी को चले आये और उन्होंने देवयानी के पुत्र यदु से उसकी यौवनावस्था माँगी। राजा ययाति बोले—बेटा यदु! तुम अपनी यौवनावस्था मुझे दे दो और अपने नाना की दी हुई वृद्धावस्था को मुझसे ले लो। अभी विषय भोगों से मेरी तृप्ती नहीं हुई है। इस लिए कुछ काल तक तुम्हारी आयु लेकर आनन्द भोगने की इच्छा है।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

यदु ने कहा—हे पिता जी ! असमय में आई वृद्धावस्था को लेकर मैं जीवित भी नहीं रहना चाहता मुझे भी तो युवावस्था के आनन्द भोगने की लालसा है जब तक मनुष्य विषय भोगों का अनुभव नहीं करता है तब तक उसे वैराग्य प्राप्त नहीं होता है। हे राजन् ! इसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्य तथा अनु ने भी राजा ययाति को कोरा उत्तर दे दिया तब राजा ययाति ने अपने सब से छोटे पुत्र पुरु को बुला कर उस से उसकी युवा अवस्था माँगी।

पुरु ने कहा—हे पिता जी ! यह शरीर आप से ही उत्पन्न हुआ है आप की कृपा से ही मुझे उत्तम लोकों की प्राप्ति हो सकती है। मैं आपके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ। हे पूज्य पिता जी ! आप की आज्ञा पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है। उत्तम पुत्र को चाहिए कि पिता की आज्ञा को स्वयं पालन करे मध्यम बेटा वह है जो पिता के कहने से उन की आज्ञा पालन करे। अधम पुत्र वह है जो पिता की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं। वह तो केवल पिता के मल मूत्र के समान हैं। पुत्र कहलाने योग्य नहीं हैं। पुरु ने इतना कह कर अपनी युवा अवस्था अपने पिता राजा ययाति को दे दी और उनकी वृद्धावस्था स्वयं स्वीकार कर ली राजा ययाति पहिली भाँति विषय भोगने लगे। वे सारी पृथ्वी के सम्राट थे। उनकी प्रिय पत्नी देवयानी उन्हें अनेक प्रकार के सुख देने लगी तथा प्रसन्न रखने लगी। उन्होंने अनेकों बड़ी बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये तथा भगवान् को प्रसन्न किया। अनेक भोग भोगने पर भी राजा ययाति की भोगों से तृप्ति नहीं हुई।

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

राजा ययाति का वैराग्य लेना

श्री शुकदेव जी बोले-हे परीक्षित् ! राजा ययाति ने इस प्रकार एक सहस्र वर्ष तक अपनी पत्नी देवयानी के साथ विषय भोग किया किंतु उनसे फिर भी तृप्ति न होने पर उन्हें उस से घृणा होगई। उन्हें तीव्र वैराग्य उत्पन्न होगया विषय भोगों से मुँह फेर लिया। वे अपनी पत्नी देवयानी से बोले-हे प्रिये ! तुमने मुझे अपने प्रेमपाश में इस प्रकार फाँस लिया है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कि मेरा निकलना उससे अति कठिन हो गया। मैं सदा विषय भोग में ही फँसा रहा। इस विषय में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ। एक वन में एक बकरा रहता था। वह अति कामी थी। उसने एक कुए में पड़ी हुई एक बकरी देखी—उस कामी बकरे ने उसे बाहर निकाल लिया और उसके साथ विहार करने लगा। जब अन्य बकरियों ने देखा तब वे भी उससे प्रेम करने लगीं। वह कामी बकरा सब के साथ विषय भोग करने लगा। जब उस बकरी ने देखा कि उस का पति बकरा अन्य बकरियों के साथ भी विहार करता है। तब अपने पालने वाले के पास गई। उस बकरी का पालने वाला एक ब्राह्मण था उसने उस बकरे के अण्डकोष निकाल लिए किन्तु बकरे के विनय करने पर उस बकरे को पुनः वापस कर दिए बकरा आज तक विषय भोग करता रहा है किन्तु उसे तृप्ति नहीं हुई है। यही दशा मेरी है। इन विषय भोगों से मेरी तृप्ति नहीं हुई है। हे प्रिये! संसार की समस्त वस्तुयें तथा स्त्री आदि ऐसी हैं कि उनसे कभी मनुष्य को तृप्ति नहीं होती है।

ऐसा कह कर राजा ययाति ने पूर्व दिशा का राज्य द्रुह्यु को दिया दक्षिण का यदु को, पश्चिम का तुर्वसु को, तथा उत्तर का अनु को राज्य दिया। अपने प्रिय पुत्र पुरु को अपना राज्य देकर ययाति ने वन की यात्रा की।

वन में जाकर तो ययाति ने अपने स्थूल शरीर को लिङ्ग शरीर में लीन कर दिया तथा लिङ्ग शरीर को आत्मा के साक्षात्कार में लीन कर के परब्रह्म पद की प्राप्ति की।

देवयानी पहिले राजा के वैराग्य को परिहास ही समझती रही किन्तु जब राजा को वास्तव में वैराग्य हुआ देख कर उसने भी भगवान् की माया को समझ कर संसार से आसक्ति त्याग दी। और श्रीहरि में अपने चित्त को लगा उन्हें नमस्कार किया।

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

पुरु के वंश तथा राजा दुष्यन्त और भरत के चरित्र का वर्णन।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! तुम्हारा जन्म उसी राजा पुरु के

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वंश में हुआ है। इसी वंश में अनेकों राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि हुए हैं। राजा पुरु के पुत्र जन्मेजय हुए। जन्मेजय का पुत्र प्रचिन्वान उनके प्रवीर और प्रवीर का पुत्र नमस्यु और नमस्यु का पुत्र चारुपद, चारुपद का पुत्र सद्यु सद्यु का बहुगव, बहुगव का पुत्र संयाति उसका पुत्र अहंयाति तथा उसका पुत्र रौद्राश्व था। रौद्राश्व के घृताची अप्सरा के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न हुए। ऋतेयु कुचेयु, स्थन्डिलेयु, कृतेयु,जलेयु संततेयु,धर्मेयु,सत्येयु प्रतेयु तथा वनेयु सबसे बड़े ऋतेयु का पुत्र रन्तिभार था तथा रन्तिभार के सुमति,ध्रुव, अप्रतिरथ तीन पुत्र थे। अप्रतिरथ के पुत्र कन्व था। कन्व का पुत्र मेधातिथि था इसी मेधातिथि के पुत्र प्रस्कन्व आदि ब्राह्मण प्रकट हुए । सुमति का पुत्र रैम्य था तथा इसी रैम्य के पुत्रमहाराज दुष्यन्त थे।

एक समय महाराज दुष्यन्त आखेट करते हुए कन्व ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने लक्ष्मी के समान अति सुन्दर कन्या देखी। उससे मोहित होकर उन्होंने उस कन्या से जिस का नाम शकुंतला था। गन्धर्व विवाह कर लिया। उसके गर्भ से राजा भरत उत्पन्न हुए उन्हीं भरत के नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाया । हे परीक्षित ! दुष्यंत की मृत्यु के पश्चात वह भरत चक्रवर्ती सम्राट हुए उन्होंने गंगासागर से लेकर गंगोतरी तक ५५ अश्वमेध यज्ञ किए। इसी प्रकार प्रयाग से लेकर यमुनोत्तरी तक यमुना तट पर ७८ अश्वमेध यज्ञ किए। उन्होंने इतनी गौएँ दान दी कि एक हजार ब्राह्मणों में से प्रत्येक को तेरह हजार चौरासी गाय मिलीं। उन राजा भरत ने एक सौ तेतीस अश्वमेध यज्ञ कर के सभी राजाओं में श्रेष्ठता प्राप्त की और उन्होंने चौदह लाख हाथी दान किए। राजा भरत ने अपनी विजय में किरात, हूरव, यवन, अंध, कंक, शक म्लेच्छ आदि सभी को पराजित किया था। राजा भरत ने रसातल में जाई गई देवांगनाओं को असुरों से छुड़ाया था। उन्होंने सत्ताईस हजार वर्ष तक पृथ्वी का एक छत्र राज्य किया। राजा भरत के तीन पत्नियाँ थीं। राजा भरत ने उनसे पुत्र उत्पन्न किए। किंतु उन्होंने यह कह दिया कि ये पुत्र मेरे अनुरूप नहीं हैं तब उन्होंने सम्राट भरत के त्याग देने के भय से उन बच्चों को मार डाला। तब राजा भरत ने संतान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हेतु मरुत्सोम नाम का यज्ञ किया जिससे मरुद्गण प्रसन्न हुये और उन्होंने भरद्वाज नाम का पुत्र राजा भरत को दिया।

भरद्वाज की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है कि एक समय बृहस्पतिजी ने उतथ्य की पत्नी जो गर्भवती थी उससे मैथुन करना चाहा। उस के गर्भ में जो बालक था उसने मना किया किन्तु बृहस्पति जी ने उसे अन्धा होने का श्राप दे दिया और बल पूर्वक गर्भाधान किया। किन्तु उतथ्य की पत्नी इस दूसरे बालक के गर्भ में आने से डर गई कि कहीं मेरा पति मुझे त्याग न दे। तब उसने बृहस्पति जी के उस लड़के को त्यागना चाहा। तब बृहस्पति जी ने कहा—कि वह पुत्र मेरा औरस तथा उतथ्य का क्षेत्रज्ञ होने से द्वाज है इसका भरण पोषण कर। इस लिए उस का नाम भरद्वाज पड़ा। इस लड़के को माता पिता दोनों ने ही परस्पर के विवाद के कारण त्याग दिया। तब मरुद्गणों ने उसका पालन किया। जब राजा भरत का वंश नष्ट होने लगा तब उन मरुद्गणों ने भरद्वाज को राजा भरत को दे दिया। वही राजा भरत का दत्तक पुत्र कहलाया।

—❀—

॥ इक्कीसवाँ अध्याय ॥

भरत वंश का वर्णन तथा रन्ति देव की कथा।

चौपाई—राजा भरत धीर मति मानी। शूरवीर पंडित अति ज्ञानी।
आर्यावर्त रत्न वह पाया। भारत वर्ष नाम तब पाया॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित् उस भरद्वाज का पुत्र मन्यु था। मन्यु के पाँच पुत्र थे। वृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर तथा गर्ग। नर के पुत्र का नाम संकृति था। संकृति के गुरु और रन्तिदेव दो पुत्र थे। रन्ति देव प्रारब्ध के अनुसार जो मिलता उसी को स्वीकार करते थे। और धनोपार्जन का कोई उपाय नहीं करते थे। जो कुछ उनके पास होता उसी को दूसरों को दान दे देते थे।

एक समय अढ़तालीस दिन तक उन्हें अन्न तथा जल नहीं मिला था। परिवार सहित भूखे तथा प्यासे रहे। ४९ वें दिन प्रातः काल कुछ घृत, खीर, लपसी तथा जल प्राप्त हुआ। उनके परिवार के लोग भूख तथा

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्यास के कारण तड़प रहे थे। जैसे ही वे लोग भोजन को बैठे उसी समय एक अतिथि ब्राह्मण वहाँ आगया। रन्तिदेव ने उस अतिथि ब्राह्मण को श्रद्धा तथा आदर पूर्वक अपना भोजन दे दिया। ब्राह्मण भोजन करके चला गया। तब रन्तिदेव फिर भोजन करने बैठे तब एक शूद्र अतिथि आगया तब रन्तिदेव ने अपना भोजन फिर उसे दे दिया। रन्तिदेव उस बचे अन्न में से अपना भाग लेकर भोजन को बैठे तब एक अतिथि कुछ कुत्तों को लेकर आगया और बोला कि मैं तथा मेरे कुत्ते बहुत भूखे हैं। रन्तिदेव ने अपना सब भोजन उन्हें दे दिया और भगवान् को नमस्कार किया जब वे बचे हुए जल को पीने को उद्यत हुए तब वहाँ एक चांडाल आ गया और बोला कि मैं अति प्यासा हूँ मुझे जल पिला दीजिए तब रन्तिदेव ने उस बचे हुए जल को उस चाण्डाल को पिला दिया। अन्न तथा जल के द्वारा उन अतिथियों की आत्म रक्षा हो जाने से रन्तिदेव को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने वही सुख माना जैसा कि स्वयं भोजन कर लेने से होता है। हे परीक्षित्! वे अतिथि नहीं थे अपितु भगवान् स्वयं रन्तिदेव की परीक्षा कर रहे थे। रन्तिदेव को परीक्षा में उत्तीर्ण देख कर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों अपने रूप में प्रगट हुये। रन्तिदेव ने उन के चरणों में नमस्कार किया तथा अपने मन को उनके चरणों में लगा दिया।

मन्यु के बेटा गर्ग से थिनि तथा थिनि के बेटा गार्ग्य हुये। ये गार्ग्य क्षत्री होते हुए भी उन्होंने ब्राह्मण वंश चलाया। महावीर का बेटा दुरितक्षय था। उसके त्र्यासाणी, कवि तथा पुष्करासाणी तीन बेटे हुये। सभी बेटा ब्राह्मण हुये। वृहत्क्षत्र का बेटा हस्ती था जिसने हस्तिनापुर को बसाया हस्ती के अत्रमीढ़ द्विमीढ़ तथा पुरुमीढ़ तीन बेटा थे। अत्रमीढ़ के बेटे का नाम वृहदिषु था। उसका बेटा वृहद्धनु उसका बेटा वृहत्काय और उसका बेटा जयद्रथ था जयद्रथ के बेटा का नाम बिशद और उसके बेटा का नाम सेनाजित था। उसके चार बेटा थे। रुचिराश्व, दृढ़हनु, काश्व तथा वत्स थे। रुचिराश्व के बेटा का नाम पार था और उसके पुत्र का नाम पृथुसेन था। पृथुसेन के बेटे का नाम नीप था। उसके सौ पुत्र उत्पन्न हुये। उन पुत्रों में ब्रह्मदत्त ज्ञानी था। उसके विश्वकसेन नाम का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बेटा हुआ। इसी ने योगशास्त्र बनाया। द्विमीढ़ का बेटा यवीनर था। यवीनर का बेटा कतिमान उसका बेटा सत्यधृति तथा उसका बेटा दृढनेमि-तथा उसका बेटा सुपार्श्व तथा उसका बेटा सुमति तथा उसका बेटा सन्नति-मान तथा उसका बेटा कृति था। कृति का बेटा दूसरा नीप था। नीप के आयुर्ध उसका क्षेम्य, उसका बेटा सुवीर उसके रिपुञ्जय तथा उसके बहुरथ उत्पन्न हुआ। अजमीढ़ की नलिनी नाम की पत्नी से नीलका जन्म हुआ नील का बेटा शान्ति उसका सुशान्ति, उस का पुरज उसका अर्क तथा उसका बेटा भरय्याश्व हुआ। उसके मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु काम्पिल्य तथा संजय बेटा थे इन पाँचों बेटों के नाम से ही पाँचाल देश प्रसिद्ध हुआ। मुद्गल के जुड़वाँ एक बेटा तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। बेटे का नाम दिवोदास तथा कन्या का नाम अहिल्या था। जिसका विवाह गौतम ऋषि के साथ किया गया। गौतम के पुत्र का नाम शतानन्द था। शतानन्द का बेटा सत्यधृति धनुर्विद्या में बड़ा निपुण था। सत्यधृति के बेटा शरद्वाज थे। इन शरद्वाज का वीर्य उर्वशी अप्सरा के देखने से मूंज के झाड़ पर गिरने के कारण एक बेटा तथा एक कन्या का जन्म हुआ उन में पुत्र का नाम कृपाचार्य तथा कन्या का नाम कृपी रक्खा गया। इनको दयावश महाराज शान्तनु ले आये।

—※—

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

पांचाल कौरव तथा मगध देश के राजाओं का वर्णन

दो०—पांचाल, कौरव नृप, कीन्ह जगत विस्तार।
शूरवीर अति धीर सब, जग में सुयश अपार॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! राजा दिवोदास के बेटे का नाम मित्रैयु था। मित्रैयु के च्यवन, सुदास सहदेव तथा सौमक नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए सौमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुये उन में जन्तु सब से बड़ा तथा प्रषत सब से छोटा था। उन्हीं प्रषत के पुत्र राजा द्रुपद थे। द्रुपद के द्रोपदी कन्या धृष्टद्युम्न और शिखण्डी थे। धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु था भर्यांश्य के वंशज सभी पांचाल कहलाये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अजमीढ़ के दूसरे पुत्र ऋक्ष थे। ऋक्ष के पुत्र संवरण थे। संवरण ने सूर्य की कन्या तपती से विवाह किया। उस के गर्भ से कुरु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जिन के नाम से कौरव वंश कहलाया। कुरु के परीक्षित् सुधन्वा जह्नु तथा निषधाश्व पुत्र थे। सुधन्वा के सुहोत्र सुहोत्र के कृती उसके उपरिचरवसु तथा उसके वृहद्रथ पुत्र उत्पन्न हुए। ये सब चैदि देश के राजा कहलाये वृहद्रथकी एक पत्नीके गर्भ से एक शरीरके आधे आधे दो टुकड़े उत्पन्न हुए। जिन्हें बाहर फिकवा दिया था किन्तु जरा नाम की राक्षसी ने उन दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया। इस लिए उस का नाम जरासिन्धु पड़ा, जरासिन्धु के पुत्र का नाम सहदेव था। सहदेव का पुत्र सौमापि था उस का पुत्र श्रुतश्रुवा हुआ। कुरु का बड़ा पुत्र परीक्षित निःसन्तान था। जिह्नु के सुरथ नाम का पुत्र था सुरथ का पुत्र विदूरथ तथा विदूरथ का सारभौम था। सारभौम का पुत्र जयसेन तथा जयसेन का पुत्र राधिका था। राधिका का अयुत तथा अयुत का पुत्र क्रोधन और क्रोधन का देवातिथि। देवातिथि का ऋष्य तथा ऋष्य का पुत्र दिलीप तथा दिलीप का राजा प्रतीप था। प्रतीप के देवापि, शान्तनु तथा वान्हिक ये तीन पुत्र थे। पिता के राज्य को छोड़ कर देवापि, बन को चला गया। उस के बाद राजा शांतनु गद्दी पर बैठे। राजा शांतनु जिस को अपने हाथ से छू देते थे वही बुड्ढे से युवा हो जाता था। और उस को शांति मिलती थी इसी कारण उन का नाम शांतनु था। एक समय इन्द्र ने उन के राज्य में बारह वर्ष जल नहीं बरसाया। तब ब्राह्मणों ने कहा कि तुमने देवापि के बिना पूछे ही अपने भाई से पहिले विवाह, अग्निहोत्रादि तथा राज्य ग्रहण किया है इसी कारण तुम्हारे राज्य में वर्षा नहीं होती है। इस लिए तुम अपने बड़े भाई देवापि को राज्य वापिस कर दो। तब शांतनु ने बन में जा कर अपने भाई देवापि को राज्य लेने के लिये प्रार्थना की किन्तु राजा शांतनु के मन्त्री अस्मरात ने देवापि को बहकाने के लिये पहले से ही कुछ ब्राह्मण भेज दिये थे जिन के उपदेश से देवापि ने गृहस्थ आश्रम को अस्वीकार कर दिया। इस भाँति देवापि राज्य के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

च्युत हो गये और शान्तनु ही राजा रहे। तब शान्तनु के राज्य में वर्षा होने लगी। वे देवापि कलियुग में चन्द्रवंश के नाश होने पर फिर सतयुग में वंश की अभिवृद्धि करेंगे। राजा शान्तनु के अनुज वान्हीक का पुत्र सोमदत्त हुआ। जिसके भूरि, भूरिश्रवा और शल ये तीन पुत्र हुए शान्तनु के द्वारा "जान्ही" गङ्गा जी के गर्भ से देवव्रत नाम का पुत्र हुआ। वे ही तुम्हारे पूर्वज भीष्म जी के नाम से प्रसिद्ध हुए ये परम ज्ञानी धर्मज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् के परम भक्त तथा वीरों में सर्वमान्य थे। उन्होंने युद्ध में परशुराम जी को भी सन्तुष्ट किया था। राजा शान्तनु की दूसरी पत्नी सत्यवती के गर्भ से चित्राङ्गद तथा विचित्र वीर्य दो पुत्र उत्पन्न हुए। चित्राङ्गद अविवाहित ही गन्धर्वों द्वारा मारे गये। विचित्र वीर्य का विवाह काशीराज की कन्या अम्बिका तथा अम्बालिका के साथ भीष्मजी ने कर दिया। किन्तु विचित्र वीर्य विषय भोगों में आसक्त होने के कारण विवाह के पश्चात् ही देवलोक सिधार गए। तब माता सत्यवती की आज्ञा से मेरे पिता व्यास जी ने अपने सन्तान हीन भाई की दोनों स्त्रियों से धृतराष्ट्र तथा पाण्डु पुत्र उत्पन्न किये और दासी के गर्भ से उन्हीं के द्वारा विदुर जी का जन्म हुआ। मेरे पिता व्यास जी सत्यवती के ही पाराशर जी के द्वारा उत्पन्न किए हुये पुत्र हैं।

हे राजा परीक्षित्! धृतराष्ट्र के गान्धारी नाम की पत्नी से सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन में दुर्योधन सब से बड़ा था और सब से छोटी दुःशला नाम की कन्या थी। राजा पाण्डु के कुन्ती के गर्भ से धर्म के द्वारा युधिष्ठिर, वायु के द्वारा भीमसेन तथा इन्द्र के द्वारा अर्जुन का जन्म हुआ। उनकी दूसरी पत्नी माद्री के गर्भ से अश्विनी कुमारों द्वारा नकुल सहदेव का जन्म हुआ। शाप के कारण राजा पाण्डु स्त्री सहवास नहीं कर सकते थे। इसी कारण उन की सन्तान देवताओं द्वारा उत्पन्न हुई। पाँचों पाँडवों की पत्नी द्रोपदी के गर्भ से युधिष्ठिर के प्रतिविन्ध्य, भीमसेन के श्रुतिसेन, अर्जुन के श्रुतिकीर्ति, नकुल के शतानीक तथा सहदेव के श्रुतिकर्मा उत्पन्न हुये। इनके अतिरिक्त पौरवी नाम की पत्नी

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से युधिष्ठिर के देवक, हिडम्बा नाम की पत्नी से भीमसेन के घटोत्कच तथा कालीं नाम की पत्नीसे सर्वगत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सहदेव के द्वारा विजया के गर्भ से सुहोज नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। तथा करेणुमती के गर्भ से नकुल के नरमित्र नाम का पुत्र हुआ। नाग कन्या उलूपी के गर्भ से अर्जुन के इरावान् तथा मणिपुर के राजाकी पुत्री के गर्भ से बभ्रु-वाहन का जन्म हुआ। सुभद्रा नाम की पत्नी से अर्जुन के अभिमन्यु का जन्म हुआ। तथा विराट् की पुत्री उत्तरा के गर्भ से अभिमन्यु के द्वारा तुम्हारा जन्म हुआ। हे परीक्षित! उस समय कुरु वंश का महाभारत युद्धमें नाश हो चुका था। अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र से तुम्हें भी नष्ट करने का प्रयत्न किया किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने तुम्हें बचा लिया था। हे राजन्! तुम्हारे पुत्रजन्मेजय, श्रुतसेन, भीमसेन, तथा उग्रसेन ये सभी तुम्हारे सामने बैठे हैं। तक्षक के काटने से तुम्हारी मृत्यु अवश्य होगी तब तुम्हारा पुत्र जन्मेजय सर्पों पर क्रोधित होकर सर्प यज्ञ करेगा और ब्राह्मण तुर को अपना पुरोहित बना कर अनेकों अश्वमेध यज्ञ करेगा। तुम्हारे पुत्र जन्मे-जय के शतानीक नाम का पुत्र होगा। जो कृपाचार्य से अस्त्र विद्या गृहण करेगा और याज्ञवल्क्य से तीनों वेदों का अध्ययन करेगा और शौनक जी से आत्मज्ञान प्राप्त करेगा। इस शतानीक का पुत्र सहस्रानीक तथा उसका पुत्र अश्वमेधत्र तथा अश्वमेधत्र का असीम कृष्ण पुत्र होगा। उसका पुत्र नेमिचक्र होगा। हस्तिनापुर के गङ्गाजी में बहने पर वह कौशाम्बीपुरी में आनन्द से रहेगा। नेमिचक्र से चित्ररथ चित्ररथ से कविरथ,कविरथ से वृष्टि-मान वृष्टिमान का राजपुत्र सुखेण, सुखेणसे सुनीति, सुनीति से नृचक्षु,नृचक्षु से सुखीनल,सुखीनल से परिप्लव,परिप्लव से सुनय, सुनय से मेधावी मेधावी से नृपञ्जय, नृपञ्जय से दूर्व तथा दूर्व से तिमि नामका पुत्र होगा। तिमि का पुत्र बृहद्रथ उसका पुत्र सुदास, उसका पुत्र शतानीक उसका पुत्र दुर्दमन उसका पुत्र बहीनर उसका दण्डपाणी, उसका पुत्र निमि, उसका पुत्र क्षेमक होगा। हे राजन्! यह सोम वंश का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया अब मैं तुम्हें मगध देश के राजा जरासंध के वंश को सूक्ष्म में सुनाता हूँ। जरासन्ध से सहदेव, सहदेव का मार्त्ररि मार्त्ररि का श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा का पुत्र

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

धुताायु, धुतायु का पुत्र नरमित्र होगा। नरमित्र का सुनक्षय, उसका पुत्र बृहत्सेन उसका पुत्र कर्मजित उसका पुत्र सृतञ्जय उसका पुत्र विपु, उसका पुत्र शुचि होगा। शुचिका पुत्र क्षेम, क्षेम का पुत्र सुव्रत उसका पुत्र धर्मसूत्र उसका पुत्र शम, उसका पुत्र द्युमत्सेन, उसका पुत्र सुमति तथा सुमति का पुत्र सुवल होगा। सुवल का पुत्र सुनीति सुनीति का सत्यजित सत्यजित का विश्वजित तथा विश्वजित का रिपुञ्जय होगा। ये वृहद्रथ वंशी राजा एक सहस्र वंश तक शासन करेंगे।

—❀—

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

राजा ययाति के शेष पुत्रों के वंश का वर्णन

चौ०—नृपति ययाति वंश विस्तारा, फैल्यो जग में अमित अपारा।
कीन्हों बर्णन शुक मुनिराया, जाको अन्त न शेषहु पाया॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! ययाति के पुत्र अनु के सभारन, चक्षु, तथा परोक्ष नाम के तीन पुत्र हुए। सभानर का पुत्र कालनर, कालनर, का पुत्र सृंजय, सृंजय का पुत्र जन्मेजय तथा जन्मेजय का पुत्र महाशील और महाशील का पुत्र महामना हुआ। महामना के उशीनर तथा तितिक्षु दो पुत्र हुए। उशीनर के शिवि, बन, शमी तथा दक्ष चार पुत्र थे शिव के वृषाद्रर्भ, सुवीर, मद्र तथा कैकेय चार पुत्र थे। तितिक्षु के रुषरुद्रथ तथा रुषरुद्रथ के हेम पुत्र हुआ। हेमि के सुतमा तथा सुतमा के बलि, पुत्र हुआ। बलिकी पत्नी से दीर्घतपा मुनि के द्वारा अङ्ग बंग, कलिंग, सुह्म, पुण्ड्र तथा अन्ध्र छः बेटा उत्पन्न हुये। उन बेटों ने पूर्व देशों में अपने अपने नाम से छः देश बसाये अङ्ग का बेटा खनपान खनपान का दिविरथ, दिविरथ का धर्मरथ तथा धर्मरथ का बेटा चित्र-रथ तथा चित्ररथ का बेटा राजा रोमपाद थे। जिसके मित्र अयोध्या के राजा दशरथ थे। राजा दशरथ ने रोमपाद को अपनी शांता नाम की कन्या गोद देदी थी। उस कन्या का विवाह विभाण्डक ऋषि के बेटा ऋष्य-शृङ्ग के साथ हुआ था। ऋष्यशृङ्ग का जन्म हिरणी के गर्भ से हुआ था।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

एक समय राजा रोमपाद के राज्य में वर्षा नहीं हुई तब ऋष्यश्रृङ्ग को राजा रोमपाद ने गणिकाओं की सहायता से अपने राज्य में बुलाया।

उनकी कृपा से राजा रोमपाद के राज्य में वर्षा हुई उन्होंने राजा से इन्द्र देवता का यज्ञ कराया और उस के सन्तान उत्पन्न हुई। उन्हीं की कृपा से राजा दशरथ के चार पुत्र उत्पन्न हुए। रोमपाद के पुत्र का नाम चतुरङ्ग तथा उसका पुत्र पृथुलाक्ष था। पृथुलाक्ष के तीन पुत्र हुए—वृहद्रथ, वृहत्कर्मा तथा वृहद्भानु। वृहद्रथ के वृहन्मना तथा बृहन्मना के जयद्रथ था। जयद्रथ के विजय, विजय के धृति, धृति से धृतिव्रत, धृतिव्रत के सतकर्मा तथा सतकर्मा के अधिरथ पुत्र हुआ। उसी अधिरथ ने बालक कर्ण का पालन किया। राजा कर्ण का पुत्र बृषसेन था।

राजा ययाति के पुत्र द्रुह्यु के बभ्रु पुत्र हुआ बभ्रु से सेतु उसके आरब्ध आरब्ध से गांधार गांधार से धर्म, धर्म से धृत, धृत से दुर्मना तथा दुर्मना से प्रचेता और प्रचेता से सौ पुत्र उत्पन्न हुए जो उत्तर दिशा में म्लेच्छों के राजा हुए। राजा ययातिके पुत्र तुर्वसु से वन्हि, उसके भर्ग भर्ग से भानुमान उसके त्रिभानु, त्रिभानु से करन्धम तथा करन्धम से मरुत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उस मरुत के कोई पुत्र न था। इस लिये उसने तुम्हारे पूर्वज पुरुवन्शी राजा दुष्यन्त को अपना पुत्र बनाया था किन्तु दुष्यन्त राज्य की इच्छा से अपने वंश में चले आये।

हे परीक्षित्! अब मैं तुम्हें अपने यदुवन्श का वर्णन सुनाता हूँ। जिसको परःब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अवतार ले कर उसे पवित्र किया था। राजा यदु के सहस्रजित, क्रोष्टा, नल तथा रिपु ये चार पुत्र थे सहस्रजित के शतजित् पुत्र हुआ। शतजित् के महादय, त्रोपूदय तथा हैदय पुत्र उत्पन्न हुए। हैदय के धर्म, धर्म के नेत्र नेत्र के कुन्ति, कुन्ति के सौहन्ज्य, सौहन्ज्य के महिष्मान तथा महिष्मान के भद्रसेन पुत्र उत्पन्न हुआ। भद्रसेन के दुर्मद तथा धनक दो पुत्र थे। धनक के कृतवीर्य कृताग्नि कृतवर्मा तथा कृतौत्र चार पुत्र थे। कृतवीर्य का अर्जुन पुत्र था उसी को सहस्रावाहु अर्जुन भी कहते हैं उसने पिचासी हजार वर्ष तक राज्य किया था उसके एक हजार बेटों में से केवल पाँच बेटे जीवित रहे। शेष परशुराम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जी द्वारा मारे गये। पाँचों के नाम जलध्वज, शूरसेन, वृषभ मधु तथा अजित थे। जयध्वज के तालजंघ तथा तालजंघ के सौ बेटे थे वे तालजंघ क्षत्रिय के नाम से प्रसिद्धि हुये जिनको राजा सगर ने महर्षि और्वकी कृपा से मार डाला था उनमें सबसे बड़ा वीतिहोत्र था। वीतिहोत्र के मधु, मधु के सौ बेटा थे। उनमें सबसे बड़ा वृष्णि था। उन्हीं मधु, वृष्णि तथा यदु के कारण इस वंश का नाम माधव, वार्ष्णेय, तथा यादव नाम से कहलाया।

यदु के दूसरे पुत्र क्रोष्टु के वृजिनवान तथा वृजिनवान के श्वाहि, श्वाहि के रुपेकु, रुपेकु, के चित्ररथ, चित्ररथ के शशविन्दु पुत्र था वह शशबिंदु बड़ा चक्रवर्ती तथा अजेय राजा था उसके दस हजार पत्नियाँ थीं। प्रत्येक के एक एक लक्ष्य संतान उत्पन्न हुई। इस तरह उसके सौ करोड़ यानी एक अरब संतान हुईं। उनमें पृश्रुश्रवा आदि प्रधान थे। पृधुश्रवा से धर्म धर्म उषना उत्पन्न हुआ। उषना ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये उनका पुत्र रुचक था। रुचक के पुरुजित, सक्य रुक्मेषु, पृथु तथा ज्यामघ आदि पाँच पुत्र थे ज्यामघ के कोई संतान नहीं थी इसलिए वह भोज्या नामकी कन्या हर कर ले आया। तब ज्यामघ की पत्नी शैब्या ने कहा, तुम मेरे स्थान पर यह कौन ले आये हो तब ज्यामघ ने अपनी पत्नी से डर कर कहा यह तुम्हारी बेटे की बहू है तब शैब्या ने कहा मैं तो बाँझ हूँ और न मेरी सौतों के ही पुत्र हैं। फिर यह पुत्र बधू कैसे हो सकती है। तब ज्यामघ ने कहा कि भविष्य में तुम्हारे पुत्र होगा उसकी यह पत्नी होगी। ज्यामघ की प्रार्थना पर पितरों ने शैब्या के गर्भ से एक बालक दिया उसका नाम विदर्व था उसी विर्दव ने भोज्या से विवाह किया।

॥ चौबीसवाँ अध्याय ॥

विदर्भ के वंश का वर्णन।

दोहा—यादव कुल वर्णन कियौ, चौबिस में मुनिराय।
श्रीकृष्ण प्रगटे तहाँ, नृपति सुनी हरषाय॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भोज्या नाम की पत्नी से राजा विदर्भके कुश, तथा रोमपाद नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुये। रोमपाद

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के बभ्रु, बभ्रु के कृति, कृति के उशिक तथा उशिक चेंदि के राजा हुए। उसी चेंदि वन्श में शिशुपाल का जन्म हुआ। क्रथि के कुन्ति, कुन्ति का धृष्टि धृष्टिका निवृत्ति, निवृत्तिका दशार्ह, दशार्ह का व्योम, व्योमका जीमूत, जीमूत का विकृति, विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ और नवरथ का दशरथ। दशरथ के शकुनि, शकुनि से करम्भि, करम्भि से देवराति देवराति से देवक्षत्र, देवक्षत्र से मधु, मधु से कुरुवश, कुरुवश से अनु, अनु से पुत्रहोत्र, पुत्रहोत्र से आयु और आयु से सात्वत का जन्म हुआ। हे राजन्! सात्वत के भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देववृध, अन्धक और महाभोज थे। भजमान ने दो विवाह किये। बड़ी पत्नी से निम्नोचि, किंकिण और धृष्टि दूसरी पत्नी से शताजित, सहस्राजित, और अयुताजित। देवावृध के बभ्रु, नाम का पुत्र हुआ। बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ थे। और देवावृध देवताओं के समान थे। देवावृध से ज्ञानोपार्जन कर के चौदह हजार पैंसठ मनुष्य परमपद को प्राप्त हुए। सात्वत का पुत्र महाभोज भी धर्मात्मा था, उसके नाम से भोजवंशी यादव कहलाये।

वृष्णि के सुमित्र तथा युधाजित दो पुत्र थे युधाजित के शिनि तथा अनमित्र दो पुत्र हुए। अनमित का पुत्र निम्न था। निम्न के सत्राजित तथा प्रसेनजित दो पुत्र थे। अनमित्र के भी पुत्र का नाम शिनि था उसके सात्यकि नाम का पुत्र हुआ। इसी सत्यकि के पुत्र का नाम सात्यकि था। सत्यकि से जय, जय से कुणि तथा कुणि से युगन्धर पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्र के तीसरा पुत्र वृष्णि था उसके स्वफल्क तथा चित्ररथ दो पुत्र थे। स्वफल्क की पत्नी गान्दिनी के तेरह पुत्र उत्पन्न हुए। उन के नाम अक्रूर आसङ्ग, सार्मेय, मृदुर, मृदुविद, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा क्षेत्रोपेक्ष अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन तथा प्रतिवाहु थे। इनकी बहिन का नाम सुचीरा था। अक्रूर के देववान तथा उपदेव दो पुत्र थे। चित्ररथ के पृथु विहरथ आदि अनेक पुत्र थे। जो वृष्णि बंशियों में उत्तम गिने जाते हैं सात्वतिके पुत्र अन्धक और अन्धक के कुकुर भजमान शुचि तथा कम्बलवर्हि चार पुत्र थे कुकुर से वह्नि और वह्नि से विलोमा, विलोमा से कपोतरोमा,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तथा कपोत रोमा से अनु उत्पन्न हुआ। अनु से अन्धक, अन्धक से दुन्दुभि, दुन्दुभि से अरिद्योत, अरिद्योत से पुनर्वसु, पुनर्वसुसे आहुक बेटा उत्पन्न हुआ और आहुकी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। आहुक के देवक तथा उग्रसेन दो पुत्र थे। देवक के देववान्, उपदेव सुदेव तथा देववर्द्धन चार पुत्र और सात कन्यायें धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपादेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता सहदेवा तथा देवकी हुई। यह सब की सब वसुदेवजी को ब्याही थीं। उग्रसेन के कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू राष्ट्रपाल, सृष्टि तथा तुष्टिमान नौ लड़के थे। उग्रसेन के पाँच कन्याएँ कंसा, कंसावती कंका सूरभू तथा राष्ट्रपालिका थी इन पाँचों का विवाह वसुदेव जी के छोटे भाइयों से हुआ था।

चित्ररथ से विदूरथ, विदूरथ से शूर शूर से भजमान, भजमान से शिनि शिनि के स्वयम्भोज, स्वयम्भोज के हृदीक, तथा हृदीक के देववाहु-शतधन्वा तथा कृतवर्मा तीन पुत्र हुए। देवमीढ के पुत्र शूर की भार्या का नाम मारिषा था। उस के गर्भ से वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृंजय, श्यामक, कंक शमीक, वत्सक तथा वृक ये दस पुत्र उत्पन्न हुए। वसुदेवजी के पाँच बहिनें थीं पृथा, (कुन्ती) श्रुतदेवा श्रुतिकीर्ति श्रुति श्रवा तथा राजाधिदेवी। वसुदेव जी के पिता शूरसेन के मित्र कुन्ति-भोज थे। शूरसेन ने अपनी कन्या पृथा उन्हें गोद दे दी थी। पृथा ने दुर्वासाऋषि को प्रसन्न करके देवताओं को बुलाने की विद्या सीख ली थी। उस विद्या के प्रभाव की जाँच के लिए प्रथा ने एक दिन सूर्यदेव का आवाहन् किया। कुन्ती के स्मरण करते ही सूर्यदेव वहाँ आ गए। उन्हें देख कर कुन्ती विस्मित हुई। उसने उनसे क्षमा माँगी और बोली कि मैंने केवल परीक्षा के लिये ही विद्या का प्रयोग किया था। अब आप जा सकते हैं। सूर्य भगवान् बोले—हे सुंदरी! मेरा दर्शन निष्फल नहीं होता इसलिये मैं तुम से अब एक पुत्र उत्पन्न करूँगा। यह तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम्हारी योनि दूषित न होगी। ऐसा कह कर सूर्यदेव ने गर्भ स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् वे अपने लोक को चले गये। उसी समय उसके एक अति तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। लोक निंदा के भय से प्रथा ने उस पुत्र को गङ्गाजी में डाल दिया और वही कर्ण नाम से विख्यात हुआ।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उस पृथा का विवाह राजा पाण्डु से हुआ जो तुम्हारे दादा थे। हे राजन् पृथा की छोटी बहन श्रुतदेवा करुषदेश के राजा बृद्धशर्मा को व्याही थी। उसके गर्भ से दन्तवक्त्र उत्पन्न हुआ। जो कि पूर्व जन्म में हिरण्याक्ष था श्रुतिकीर्ति का विवाह कैकय नरेश दृष्टकेतु से हुआ। उसके पाँच पुत्र थे। राजाधिदेवि का विवाह जयसेन से हुआ। उसके बिन्द तथा अनुविंद दोपुत्र थे। श्रुतश्रवा का विवाह चेंदिराज दमघोष से हुआ। उसके शिशुपाल नामका बेटा हुआ। बसुदेव जी के छोटे भाई देवभाग के कंसा के गर्भ से चित्रकेतु व वृहद्बल्ल दो पुत्र उत्पन्न हुए देवश्रवा की भार्या कंसावती के गर्भ से सुवीर और इषुमान दो बेटे उत्पन्न हुए। अनाक की पत्नी कंका के शत्रुजित् और पुरुजित दो पुत्र हुये। सृञ्जय की राष्ट्रपालिका पत्नी से वृष तथा दुर्मषण आदि अनेक पुत्र हुये। श्यामक के शूर भू नामक पत्नी से हरिकेष तथा हिरण्याक्ष दो पुत्र उत्पन्न हुये। अत्सक के मिश्रकेशी अप्सरा के गर्भ से वृक आदि कई पुत्र उत्पन्न हुये। बृक के तक्ष, पुष्कर तथा शाल आदि कई पुत्र हुए। शमीक के सुदामिनी के गर्भ से सुमित्र तथा अर्जुनपाल आदि कई पुत्र उत्पन्न हुये। कंक के ऋतुधाम और जय नाम के दो पुत्र हुये।

वसुदेवजी के और भी कई पत्नियाँ थीं। पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा रोचना, इला तथा देवकी आदि। रोहिणी के गर्भ से बलराम, गद, सारण, दुर्मद तथा पौरवी के गर्भ से भद्र आदि बारह पुत्र उत्पन्न हुये। मदिरा के गर्भ से नन्द उपनन्द आदि पुत्र उत्पन्न हुये कौशिल्या के गर्भ से एक ही केशी बेटा उत्पन्न हुआ। रोचना के हेमाङ्गद आदि बेटा उत्पन्न हुए। इलाके गर्भ से उर्वल्क नाम के यदुवंशी उत्पन्न हुये। घृतदेवा के गर्भ से विपृष्ठ नामक एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ। शांतीदेवी के गर्भ से श्रम तथा प्रतिश्रुत कई बेटे उत्पन्न हुए। उपदेवा के कल्पवर्ष आदि दस बेटा उत्पन्न हुये। श्री देवा के बसु आदि छः बेटा उत्पन्न हुये सहदेवा के गर्भ से पुरुविश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न हुए। तथा माता देवकी के गर्भ से आठ बेटा उत्पन्न हुये। उनमें कीर्तिमान, सुषेण भद्रसेन ऋजु, संमर्दन, भद्र ऐ छः बेटा तथा सातवें शेषावतार बलराम जी और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

आठवें बेटा श्री भगवान् थे। उनके सुभद्रा नाम की कन्या थी। हे राजा परीक्षित्! संसार में जब जब धर्म की हानि तथा पाप की वृद्धि होती है तभी भगवान् अवतार लेते हैं। मैंने तुम्हें पवित्र कीर्ति वाले यदुवंश का वर्णन सुनाया जिसमें भगवान् विष्णु ने अपनी सोलह कलाओं से सङ्कर्षण भगवान् बलराम सहित अवतार लिया और पृथ्वी का भार उतारा। यह यदुवंश उन्हीं के कारण अति पवित्र और उत्तम कीर्ति वाला माना जाता है।

❀ नवम् स्कन्ध समाप्त ❀

—:o:—

॥ प्रार्थना ॥

अजब हैरान हूँ भगवन्, तुम्हें क्यों कर रिझाऊँ मैं।
कोई वस्तू नहीं ऐसी, जिसे सेवा में लाऊँ मैं॥
करूँ किस तरह आवाहन कि तुम मौजूद हो हर जाँ।
निरादर है बुलाने में, अगर घण्टी बजाऊँ मैं॥
तुम्हीं हो मूर्ति में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान् पर भगवान् को कैसे चढ़ाऊँ मैं॥
लगाना भोग कुछ तुमको यह एक अपमान करना है।
खिलाता है जो सब जग को उसे कैसे खिलाऊँ मैं॥
तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं सूरज चाँद और तारे।
महा अन्धेर है तुमको अगर दीपक दिखाऊँ मैं॥
भुजायें हैं न सीना है न गर्दन है न पेशानी।
तू है निर्लेप नारायण कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं॥

—o—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

वृहद् सुखसागर

॥ दशम स्कंध ॥

(पूर्वार्ध)

श्लोक—यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्नन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

अर्थ—जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का कीर्तन, स्मरण, दर्शन बन्दना तथा श्रवण और पूजन प्राणियों के सारे पापों को तत्काल नष्ट कर देता है। उन पुण्य कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी को बारम्बार नमस्कार है।

❀ वन्दना ❀

एक रदन, सिन्दुर बदन, गणनायक, गणनाथ ।
करहु अनुग्रह दास पर, नाउँ चरण निज माथ ॥
"मायावी" शिव-दास को, शक्ति देउ गणराय ।
दशम स्कंध भाषा करूँ, रचि पचि सुघड़ बनाय ॥
रचिपचि सुघड़ बनाय, चरित यदुपति कौ गाऊँ ।
बीच बीच में छन्द, सोरठा, कवित्त सजाऊँ ॥
सोरठा—पूरन कीजो काम, नाथ शरण यह दास तुम ।
पायक मैं सुखधाम, बसहु हृदय प्रभु आय मम ॥

॥ पहला अध्याय ॥

दो०—कीन्ह ब्याह बसुदेव जी, देवक—पुत्री साथ ।
छः पुत्र मारे गये, दुष्ट कंस के हाथ ॥

राजा परीक्षित पूछने लगे—हे ब्रह्मन् ! आपने सूर्य वंश और चन्द्र वंश के राजाओं के वंश विस्तार को भली भाँति मुझे सुनाया है किन्तु

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अब मेरी इच्छा यदुवंश के विस्तार के सुनने की है। उसी वंश में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अवतार लिया था। वे हमारे दादा परदादाओं के परम हितैषी तथा रक्षक थे। उनके गुण तथा लीलायें इतनी मधुर और सुन्दर हैं कि उसको सुनने की इच्छा सब को ही होती है। अब आप मुझे उन्हीं पवित्र कीर्ति भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का चरित्र सुनाइये। जिनके सुनने से मेरे सारे पाप नष्ट होजावेंगे। वे समस्त प्राणियों के जीवनदाता तथा सर्वात्मा हैं अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से उन्हीं ने माता के गर्भ में मेरी रक्षा की थी। तब भला मुझसे अधिक अभागा कौन होगा जो उनके चरित्र को न सुनेगा। हे भगवन्! वे ही मेरे प्रभु हैं वे ही कुल देवता हैं और वे ही मेरी आत्मा हैं। आप उन सर्वात्मन् प्रभु का चरित्र मुझे अवश्य सुनाइये।

हे ब्रह्मन्! आपने पिछले स्कंध में बताया था कि बलरामजी रोहिणी के पुत्र थे और उनको आपने देवकी के पुत्रों में भी गिना है। इस प्रकार दो माताओं के पुत्र श्री बलरामजी किस प्रकार हुए, यह मुझे समझा कर कहिये। आप मुझे विस्तार पूर्वक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा उनके गुह्यतम से गुह्यतम रहस्य को भी मेरे सन्मुख प्रगट कीजिये। सूत जी बोले—हे शौनक जी! परमभक्त राजा परीक्षित् के ऐसे स्वाभाविक भक्तिपूर्ण बचनों को सुन कर श्रीशुकदेवजी को अति प्रसन्नता हुई और उनके इस प्रश्न का हृदय से अति स्वागत किया। क्यों कि श्रीशुकदेवजी तो स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्ण के लीला चरित्रों में ओत प्रोत थे। राजा परीक्षित् ने यह प्रश्न उन्हीं की प्रेरणा से किया था। भला ऐसे उत्तम प्रश्न को सुन कर श्रीशुकदेवजी जैसे परम भागवत योगी अपने स्वामी योग योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरित्र का क्यों न वर्णन करें। वे तत्काल श्रीकृष्णमय होकर उनके प्रश्न का उत्तर देने लगे और परम पवित्र श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन करने लगे। श्री शुकदेव जी बोले हे—राजन्!

द्वापर अन्त असुर अति बाढ़े, करें पाप हिंसा अति गाढ़े।
तब पृथ्वी ब्रह्मा ढिंग रोई, कृश तनु भई बुद्धि सब खोई॥
"तप" ने देव संग सब लीन्हें, शङ्कर पृथ्वी, आगे कीन्हें।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गये क्षीर सागर तट पासा, जहँ नारायण करत निवासा।
दण्ड प्रणाम कीन्ह चितलाई, पृथ्वी की सब व्यथा सुनाई॥
दो०—नारायण हर्षित भये, कीन्ह गिरा सुखपाय।
प्रगट होउँ मैं भूमि पर, कुछहि काल में आय॥
ब्रज में जाकर के बसो, सभी देव गणराय।
गोपी ग्वाल रूप धरि, रहो तहाँ तुम जाय॥

इस भाँति भगवान् नारायण की मधुर तथा आनन्दमयी वाणी को सुन कर सभी देवता गण अति प्रसन्न हुए और पृथ्वी का सब शोक दूर हो गया। तब ब्रह्माजी की आज्ञानुसार सब देवताओं ने भगवान् की सेवा के हित बृज में जाकर अवतार ले लिया, और वे सभी गोपी ग्वाल बाल तथा गौओं के शरीर में वहाँ निवास करने लगे। अणिमा लघिमा आदि सभी सिद्धियाँ वहाँ निवास करने लगीं। सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति तथा श्री देवी भी वहाँ आ विराजीं। उस व्रजधाम की महिमाका क्या वर्णन करूँ वह भगवान् बैकुण्ठनाथ का नित्य निवास स्थान गोलोक धाम के रूप में ही परिणित हो गया।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! जब बृज में सभी देवाङ्गनायें तथा देवताओं ने अवतार ले लिया, तब उन्हीं में यदुवंश के राजा शूरसेन मथुरा मण्डल का राज्य करने लगे। उनके पुत्र बसुदेव जी हुए। राजा शूरसेन मथुरा मण्डल तथा शूरसेन मण्डल दोनों प्रान्तों का राज्य करते थे। मथुरापुरी ही यदुवंशी राजाओं की राजधानी थी। उन्हीं यादवों में भोजवंशी राजा उग्रसेन तथा देवक दो भाई थे। देवक ने अपनी सभी कन्याओं का विवाह राजा बसुदेव के साथ कर दिया था सब से छोटी कन्या देवकी को भी राजा बसुदेव को ही ब्याह दी। जब उस नव विवाहिता देवकी को विदा करा वसुदेव जी, मथुरा नगर से जा रहे थे, उस समय अपनी चचेरी बहिन को बिदा करने के लिए उग्रसेन का बड़ा पुत्र कंस रथ पर बैठ कर रथ के घोड़े हाँकने लगा। राजा देवक ने बड़ी धूमधाम के साथ देवकी को विदा किया। उसके दहेज में स्वर्ण के आभूषणों से सजे हुए चार सौ हाथी, पन्द्रह सहस्र घोड़े अठारह सौ रथ तथा दो सौ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सुकुमारी दासियां दीं। विदाई के समय अनेक प्रकार के माङ्गल्य बाजे बजने लगे। मार्ग में जब कंस अपनी प्यारी बहिन देवकी को बिदा करने जा रहा था, उस समय एक आकाश वाणी हुई।

दोहा—जाको पहुँचावन चल्यौ, रे मूरख अज्ञान।
बालक ताको आठवों, हने तोकूँ आन॥

रे मूर्ख कंस तू जिस अपनी बहिन देवकी को बड़े प्रेम से रथ पर बैठा कर पहुँचाने जा रहा है, उसी के आठवें गर्भ में जो बालक होगा वह तुझे मारने वाला तेरा काल उत्पन्न होगा। तुझे अवश्य मारेगा कंस अति दुष्ट तथा राक्षस था। उसने आकाश वाणी सुन कर तत्काल अपने म्यान से तलवार खींचली और देवकी को मारने के लिए उद्यत होगया। वह भोजवंश का कलङ्क ही था उसके पापों की सीमा नहीं थी। वह अपनी बहिन के केश पकड़ कर रथ से नीचे गिराने लगा।

जब वसुदेवजी ने यह वीभत्स दृश्य देखा तब वे बोले—हे राजकुमार! आप भोज वंश के वीर शिरोमणि हैं। आपकी वीरता तथा गुणों की सराहना सभी शूरवीर करते हैं। वीर पुरुषको स्त्री पर हाथ नहीं उठाना चाहिये। फिर भी यह तुम्हारी बहिन है, और अभी इसके हल्दी के वस्त्र भी नहीं उतरे हैं। ऐसे माङ्गल्य पूर्ण अवसर पर इसे मारना आप को उचित नहीं है। जो प्राणी जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। शरीरान्त होने परजीव अपने कर्मानुसार पहिले शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर को गृहण करता है। किंतु जिस प्रकार मनुष्य चलते समय अपने पहले पैर को जमाकर तब दूसरे पैर को उठाता है, उसी भाँति जीव भी अपने कर्मानुसार प्रथम किसी शरीर को प्राप्त कर लेता है तभी इस पहले शरीर को त्यागता है। जिस भाँति कोई मनुष्य जागृत अवस्था में राजा के वैभव तथा ऐश्वर्य को देखकर उसकी अभिलाषा के चिंतन में ऐसा घुल मिल कर एक हो जाता है, तथा स्वप्न में उस ऐश्वर्य का अनुभव करके अपने को भूलजाता है। और कभी२ जागृत अवस्था में भी उन सुखों की कामना कर के अपने इस शरीर को भूल जाता है इसी भाँति यह जीव जब अपने शरीर को भूल जाता है।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और किसी दूसरे शरीर में तल्लीन होकर एक रस हो जाता है, तब पहले शरीर की मृत्यु और उस दूसरे शरीर का जन्म मानते हैं। मृत्यु के समय अपने कर्मानुसार जीव का मन जिस शरीर के चिन्तन से तल्लीन होजाता है उसी शरीर में वह जन्म लेता है। इसी कारण जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, उसको किसी से वैर भाव तथा द्रोह नहीं करना चाहिए। क्यों कि वह यदि द्रोह करेगा तो वह मरने के समय भी अपने शत्रु से भयभीत रहेगा और मरने के बाद परलोक में भयभीत रहना पड़ेगा। इसलिए हे राजकुमार! यह तुम्हारी छोटी बहिन पुत्री के समान है, इसके माङ्गलिक चिन्ह भी विवाह के नहीं उतरे हैं। ऐसी दशा में इसका वध करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

श्री शुकदेव जी बोले--हे राजा परीक्षित्! परम ज्ञानी वसुदेव जी ने अपनी अनेक युक्तियोंसे कंस को भली भाँति समझाया किन्तु वह तो क्रूर राक्षसों का अनुयायी और दुष्ट बुद्धि था। उसने बसुदेव जी की इन प्रिय तथा मधुर बातों पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। और वह देवकी के केशों को पकड़े हुये दाँत पीसता हुआ रथ से नीचे गिराने लगा। तब वसुदेव जी ने बड़े धैर्य और सहन शीलता से काम लिया। उन्होंने सोचा कि बुद्धिमान् को चाहिये जिस भाँति भी हो सके उस समय मृत्यु के अवसर को टाल दे। अपनी अनेक युक्तियों का प्रयोग करे। यदि फिर भी मृत्यु न टले तो प्रयत्न करने का दोष नहीं रहता है। बसुदेव जी मन में अति दुःखी थे किन्तु ऊपर से हँसते हुये बोले—हे राजन्! यदि तुम्हारी हट उसे मारने की है, तो मैं तुमसे एक बात और कहता हूँ। कि आकाश वाणीने इसके आठवें गर्भ से उत्पन्न बालक द्वारा ही तुम्हारी मृत्यु बताई है। मैं इसके जितने बालक उत्पन्न होंगे वे सब तुम्हें ला कर दे दिया करूँगा। तुम उन्हें मार सकते हो। इसके मारने से पाप के अतिरिक्त तुम्हें कोई लाभ न मिलेगा। वसुदेव जी के ऐसे उत्तम बचनों को सुन कर कंस प्रसन्न हो गया, और अपनी बहिन देवकी के केशों को छोड़ कर बोला—हे राजन्! आपने मुझे घोर पाप से बचा लिया। उसने

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वसुदेव जी की बात को स्वीकार कर के देवकी को मारने का विचार छोड़ दिया। वसुदेव जी अति प्रसन्न हुए। वे जानते थे कि समय को टालना ही बुद्धिमानी है। आगे भविष्य में शायद वह कंस ही न रहे, अथवा देवकी के ही बालक उत्पन्न न हों भविष्य की बात को कौन कह सकता है। ऐसा विचार करके वसुदेव जी देवकी को अपने घर लिवा लाये।

कुछ काल पश्चात् देवकी के गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ। उसको ला कर अपनी प्रतिज्ञा अनुसार कंस को दे दिया। कंस ने वसुदेवजी की सत्यता को देखकर उस बालक को प्रसन्नता पूर्वक उन्हें वापिस कर दिया और बोला—आकाश वाणी ने तो ऐसा कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक ही मेरा काल होगा। तब वसुदेव जी उस बालक को लौटा कर अपने घर ले आये। उसी बीच में नारद जी वहाँ पर पधारे और कंस को समझाते हुए बोले—हे कंस! तुमने देवकी के उस बालक को लौटा कर अच्छा नहीं किया है। न जाने कौनसा बालक आठवाँ गिनती में आवे। तब उन्होंने पृथ्वी पर रेखा खींच कर सब ओर से आठवीं गिनती कंस को समझाई। नारद जी की यह बात उस दुष्ट बुद्धि की समझ में आगई और उसने तुरन्त उस बालक को मँगवा कर मार डाला। नारद जी उससे यह भी कह गये कि ब्रज में रहने वाले नन्द, उपनन्द, गोप ग्वाले, उनकी गोपियाँ वसुदेव आदि वृष्णि वंशी यादव तथा देवकी आदि सभी उनकी पत्नियाँ सब देवताओं के अंश हैं। यह सभी तुम्हारे शत्रु हैं और तुम्हें मारने के प्रयत्न में रहते हैं। कंस ने नारद जी के मुख से ऐसी बातें सुन कर उसने तुरन्त ही वसुदेव तथा देवकी को हथकड़ी बेड़ी पहना कर अपने कारागार में डलवा दिया। और सभी यदुवंशियों को महान् कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। वह यदुवंशियों के नन्हे २ बालकों को इस भय से मरवा डालता कि कहीं इन में ही मेरे काल विष्णु ने अवतार ले लिया हो। कंस के इन अत्याचारों से सभी यदुवंशी मथुरा मण्डल छोड़ छोड़ कर इधर उधर चले गये। और जो बचे खुचे थे वे उसकी आज्ञा मान कर अनेक प्रकार की कष्ट यातनायें सहने लगे। वह कंस बड़ा बलवान था उसने यदु, भोज तथा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अन्धक वंश के राजा अपने पिता उग्रसेन को कैद कर के स्वयं राजा बन गया। परीक्षित् बोले हे भगवन्! नारद जी ने उस दुष्टको ऐसा उपदेश क्यों किया। तब श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! उस कन्स से और भी अधिक अत्याचार कराने के लिये ताकि भगवान नारायण शीघ्र ही अपने भक्तों की रक्षार्थ इस पृथ्वी पर जन्म लें। इस कारण नारद जी ने ऐसा किया था।

—०—

दूसरा अध्याय ॥

दोहा—उदर देवकी के बसे, आय विष्णु भगवान।
ले ले प्रभु का नाम सुर, स्तुति करत महान ॥

भगवान् का देवकी के गर्भ में प्रवेश करना तथा देवताओं द्वारा स्तुतिकरना-

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! मथुरा का राजा कन्स स्वयं महाबली था और दूसरे मगध के राजा जरासंध की उसे सहायता मिलती रहती थी तीसरे प्रलम्बा, बकासुर, चारुण, तृणावर्त्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, वाणासुर, भौमासुर आदि सभी दैत्य तथा राक्षस उसकी सहायता के लिये हर समय तत्पर रहते थे। इनकी सहायता से वह यदुवंशियों को मारने लगा। यदुवंशी कंस के डर से भाग कर कुरु, पाँचाल, केकय, शाल्व, बिधर्व निषध, विदेह तथा कौशल आदि देशों में जाकर छिप गये। जो लोग उसके राज्य में रह गये वे सभी इच्छानुसार उसकी सेवा करने लगे।

जब कंस ने देवकी के छः बालकों को मार डाला तब सातवें गर्भ में भगवान् शेष जी जिन्हें अनन्त,संकर्षण आदि नामों से भी कहते हैं, देवकी के गर्भ में पधारे। देवकी को उस समय स्वाभाविक हर्ष होने लगा। किन्तु कन्सके भयसे उसे दुःख ही हुआ। जब भगवान् ने देखा कि यदुवंशी कन्सके द्वारा अधिक सताये जा रहे हैं तब इन्होंने अपनी योगमाया को स्मरण किया। योग माया उसी काल हाथ जोड़ कर उनके सन्मुख आई। तब भगवान् नारायण बोले-हे कल्याणी! तुम ब्रजमें जाओ और वहाँ पर देवकी के गर्भ में मेरे अंशावतार शेष जी पहुँच चुके हैं। इन्हें निकाल कर तुम रोहिणी के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गर्भ में रख दो और स्वयं नन्द बाबा की पत्नी यशोदा के गर्भ में स्थित हो जाओ। मैं भी अपने समस्त ज्ञान, बल तथा पूर्ण कलाओं से देवकी के गर्भ में आ रहा हूँ। तुम वहाँ जाकर अनेक नामों से पूजी जाओगी। कोई तुम्हें दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमदा, चण्डिका, कृष्णा माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशायिनी, सारदा तथा अम्बिका आदि नामों से पुकारेंगे। रोहिणी के गर्भ में स्थित बालक (शेषजी) का नाम इस संसार में संकर्षण, कहेंगे। क्योंकि वे देवकी के गर्भ से खींचे गये हैं। लोक रंजन करने वाले होने के कारण राम कहे जावेंगे और बान धारियों में श्रेष्ठ होने के कारण बलभद्र पुकारे जावेंगे।

भगवान् की आज्ञा पाते ही उनकी योग माया उसी काल ही उनकी परिक्रमा करके पृथ्वी पर आई, और देवकी के गर्भ से उस बालक को निकाल कर रोहिणी के गर्भ में रख दिया। यह जान कर कि देवकी का गर्भ खण्डित हो गया सब नगर निवासियों को अति दुःख हुआ। भगवान् नारायण ने बसुदेव जी के शरीर में व्याप्त होकर अव्यक्त से व्यक्त होने की धारणा की बसुदेव जी सूर्य के समान तेजोमय हो गये। भगवान् के उस ज्योतिर्मय अन्श को धारण करके देवकी ने गर्भ धारण किया। उस समय देवकी का श्री विग्रह चन्द्रमा के समान सात्विक, शुद्ध तथा आत्म स्वरूप हो गया। जो भगवान् सम्पूर्ण विश्व को धारण करते हैं, उनको आज माता देवकी ने धारण किया। किन्तु जिस प्रकार घड़े में रक्खा हुआ दीपक प्रकाशित नहीं होता है, उसी प्रकार कन्स के कारागार में वन्द माता देवकी की उतनी शोभा नहीं फैली। जब देवताओं ने यह जाना कि भगवान् नारायण देवकी के गर्भ में आगए हैं तब भगवान् शङ्कर, ब्रह्माजी, नारद आदि देवगण, सब कंस के बन्दीगृह में आये, और भगवान् की स्तुति करने लगे। हे प्रभो! आप सत्य संकल्प सृष्टि के नियता हैं। ये सम्पूर्ण पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश सब आप ही से उत्पन्न हुए हैं। हम सब आप ही की शरण में आये हैं। इस संसार रूपी वृक्ष के आप ही आश्रय हैं। इसको उत्पन्न करने वाली एक प्रकृति है। सुख दुःख इसके दो फल हैं। सत, रज, तम तीन जड़ हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अर्थ धर्म, काम, मोक्ष इसके चार रस हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से यह जहाँ जाता है पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना घटना, तथा नष्ट होना ये इस संसार के छः स्वभाव हैं। रस, रुधिर माँस मेद, अस्ति, मज्जा तथा शुक्र आदि सात धातुयें इस वृक्ष की छाल है। मन बुद्धि अहंकार तथा पंच महा भूत आठ इसकी ही साखा हैं। इसके नव द्वार खोडर हैं। दस प्राण-वायु प्राण, अपान व्यान, उदान, समान, नाग कूर्म, कुकल, देवदत्त, धनन्जय ये दस पत्ते हैं। इस संसार रूपी वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षी विराजते हैं। इस महावृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले आप ही सर्वात्मा हैं। आप के चरणों का आश्रय लेकर प्राणी इस संसार सागर को अनायास ही पार कर जाता है। आपके चरणों में सच्ची प्रीति होने पर अनेक प्रकार के विघ्न नष्ट हो जाते हैं। इस समय इस पृथ्वी पर अनेक असुर बढ़े हुए हैं, जो आप के भक्तजनों को बहुत कष्ट दे रहे हैं। आप उन्हीं भक्तों की रक्षा के लिये माता देवकी के गर्भ में पधारे हैं। आप देह धारियों के कल्याण तथा भक्तों की रक्षा के लिये शुद्ध सत्त्व मय, सच्चिदानन्दमय, परमदिव्य, श्री विग्रह प्रकट करते हैं। आपके प्रकट होने पर आपके भक्त जन अभय होकर वेद, कर्म काण्ड, अष्टाङ्ग योग, तपस्या तथा समाधि के द्वारा आपकी पूजा करते हैं। जो पुरुष आपके मङ्गल मय नामों तथा रूपों का श्रवण कीर्तन तथा ध्यान आपके चरणों में चित्त लगा कर करता है फिर उसे इस जीवन मरण के चक्कर में नहीं आना पड़ता है। हे प्रभो! आपने पीछे अनेकों अवतार लिये हैं। उसी भाँति आप अब भी पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार धारण कीजिये। देवकी जी को सम्बोधित करते हुए देवता लोग बोले—हे माता! तुम्हारा कल्याण हो। तुम परम सौभाग्यवती हो, तुम्हारी कोख में जगत का कल्याण करने के लिये भगवान् स्वयं पधारे हैं। अब तुम कंस से तनिक भी मत डरो। उसका शीघ्र ही नाश होने वाला है। इतना कह कर देवता लोग चले गए।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजन्! कंस भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के भय से इतना भयभीत हो उठा कि उठते, बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसे सर्वत्र भगवान् ही दृष्टि आने लगे। उसकी जहाँ दृष्टि पड़ती तहाँ श्री कृष्ण जी ही दिखाई पड़ते थे। उसी प्रकार उसके लिये श्री कृष्णमय सारा जगत हो गया।

—❀—

॥ तीसरा अध्याय ॥

छन्द–भये प्रगट कृपाला देवकी लाला सुर मुनि जन हित कारी।
लखि रूप अनूपा वसुदेव भूपा हरषित मन अति भारी॥
देवकी रानी मन यह जानी प्रगट भये यदुपाला।
हरषित महतारी पुलकित भारी विग्रह लखि निज लाला॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित्!

दो०–भादों कृष्णा अष्टमी, अर्द्ध रात्रि परमान।
नक्षत्र रोहिणी में भये, श्रीकृष्ण भगवान्॥

तिस काल आकाश में समस्त नक्षत्र, ग्रह व तारे शान्त तथा सौम्य, दृष्टि आ रहे थे। सम्पूर्ण दिशायें स्वच्छ तथा प्रसन्न दीखती थीं। तारागण आकाश में जगमगा रहे थे। रात्रि में ही कमल सरोवर में खिल उठे। पक्षी तथा भौंरे भगवान् के गुण गाने लगे। वायु पवित्र गन्ध लेकर बहने लगी। कंस के अत्याचारों से ब्राह्मणों के अग्निहोत्र की बुझी हुई अग्नियाँ पुनः जल उठीं। स्वर्ग में देवता, गन्धर्व, किन्नर मधुर स्वरों से भगवान् के मंगल मय गुणों का गान करने लगे। अप्सरायें नाचने लगीं, तथा ऋषि मुनि और देवता लोग पुष्पों की वर्षा करने लगे। अर्द्ध रात्रि का समय था चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। बादल गर्ज रहे थे उसी समय भगवान् पूर्व दिशा से उदित चन्द्रमा की भाँति देवकी के गर्भ से प्रकट हुये।

उनके चार भुजायें थीं। जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुये थे। वक्षस्थल पर श्री वत्स का चिन्ह था। कण्ठ में कौस्तुभ मणि जगमगा रही थी। उनका सुन्दर श्याम शरीर था। जिस पर पीताम्बर धारण किये हुये थे। वैदूर्य मणि का रत्न जटित किरीट और कान्तिमान कुण्डल झिलमिला रहे थे। कमर में कर्धनी, भुजाओं में बाजू

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बन्द, तथा कलाइयों में कंकण शोभायमान थे। उस बालक के अङ्ग प्रत्यङ्ग से अपूर्व दिव्य छटा छिटक रही थी। जिनके प्रकाश से वह बन्दीग्रह जगमगा उठा। वसुदेव जी उस दिव्य बालक को देख कर बड़े विस्मय और हर्ष में ओत प्रोत होने लगे। वे यह जान कर कि हमारी रक्षा के लिए स्वयं भगवान् मेरे पुत्र रूप में पधारे हैं, तब उनके आनन्द की सीमा न रही, रोम रोम परमानन्द के कारण खिल उठा, उन्होंने उसी समय ब्राह्मणों को दस हजार गौ पुण्य करने का संकल्प किया। उनकी बुद्धि स्थिर थी। उन्होंने भगवान् के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति करने लगे।

चौ०—भक्तन हित अवतरेउ गुसाईं, करहु कृपा गुरु पितु की नाईं।
भू पर दुष्ट असुर अति बाढ़े, साधु सन्त हिय उनने काढ़े॥

हे प्रभो ! उन्हीं सन्तों की रक्षा के लिए आपने यह दिव्य स्वरूप धारण किया है आप परमात्मा तथा आदि पुरुष हैं इस त्रिगुण मयी सृष्टि के रचने वाले हैं। इस प्रकृति से अलग रहते हुए भी इसमें प्रविष्ट रहते हैं। जब ये महतत्व आदि अलग अलग रहते हैं, तब तक इनकी शक्ति भी अलग अलग होती है, और ये सृष्टि रचने में असमर्थ होते हैं। जब आप इन्द्रिय आदि सोलह विकारों से उनको मिला देते हैं, तब ब्रह्माण्ड की रचना होती है यह सम्पूर्ण जगत आप ही में ओत प्रोत हैं, फिर यह आप से अलग कैसे माना जा सकता है। इसी कारण आप सर्वस्व, अन्तर्यामी तथा आत्म स्वरूप हैं। यह गुणों का आवरण आपके ढकने में असमर्थ है। इसी कारण आप इनसे अलग रहते हैं। आपके अतिरिक्त यह सम्पूर्ण जगत असत्य है। हे सर्वात्मन् ! आप स्वयं समस्त कर्मों गुणों तथा विकारों से रहित होते हुए भी इस जगत की सृष्टि, स्थिति, तथा प्रलय करते हैं। आप ही विष्णु हैं, आप ही ब्रह्मा हैं तथा आप ही शङ्कर हैं। इस संसार की रक्षा के लिए आपने मेरे घर पर कृपा की है। पृथ्वी पर करोड़ों असुर बढ़ गए हैं। आपके भक्तजन महान् कष्ट पा रहे हैं आपका अवतार उनके संहार के लिए ही हुआ है। हे प्रभो ! इस दुष्ट

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मान लीला

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कंस ने आपके समस्त बड़े भाइयों को मार डाला है। उसके दूत अभी उसको आपके अवतार का समाचार कहेंगे तो वह शीघ्र ही हाथों में अस्त्र शस्त्र लेकर यहाँ दौड़ा आवेगा।

भगवान् के श्री विग्रह को देखकर देवकी अति प्रसन्न हुईं और मुस्करा कर इस प्रकार स्तुति करने लगी—

हे प्रभो ! वेदों ने आपके जिस अव्यक्त रूप का वर्णन किया है। जो विकार हीन, समस्त गुणों से रहित और ज्योतिस्वरूप है, वही आप स्वयं विष्णु हैं। ब्रह्मा अपनी आयु समाप्त होने पर नष्ट हो जाता है काल की प्रेरणा से यह सारा जगत भी नष्ट हो जाता है। तत्व अपने कारण रूप तत्व में मिल जाते हैं, तब केवल आप ही शेष रहते हैं। इसी लिए आपका नाम शेष है। मैं आपकी शरण हूँ। आपके ये चरण कमल बड़े भाग्य से मिलते हैं। हे प्रभो ! आप भक्त भय हारी हैं। हम लोग इस दुष्ट कंस से अति भयभीत हैं। आप हमारी रक्षा करें। दूसरी बात यह है कि आपका यह चतुर्भुज स्वरूप ध्यान की वस्तु है। इसका योगीजन ही दर्शन करके, मुक्ति प्राप्त करते हैं। अतः साधारण प्राणियों के सम्मुख आप इसे प्रकट न करें। हे सर्वात्मन् ! यह कंस महा पापी है। इसे आपके जन्म का पता न चले। हे विश्वात्मन् ! मैं आपके इस अलौकिक रूप को देख कर उस कंस के भय से अति डर रहा हूँ। क्योंकि उसे आपके अवतार का पता चलते ही वह आपको मुझ से छीन लेगा। आप अपने अलौकिक रूप को त्याग कर सामान्य बालक का रूप धारण कर लीजिये।

भगवान् बोले—हे देवि ! स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुम अपने पहले जन्म में प्रश्नि थीं, और यह वसुदेवजी सुतपा नाम के प्रजापति थे। तुम दोनों ने बड़ा घोर तप किया था। तब तुमने ब्रह्मा जी से यह वर माँगा था कि हमारे गर्भ से भगवान् ही जन्म लें, तुमने वह घोर तप देवताओं के बारह हजार वर्ष तक किया था। उस समय तुमने मोक्ष न माँगकर मुझे ही पुत्र रूप में माँगा था। इसीलिए मैं ही तुम दोनों का पुत्र हुआ, और उस समय मेरा नाम प्रस्निगर्भ प्रसिद्ध हुआ। फिर दूसरे जन्म में वसुदेव जी कश्यप

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और तुम अदिति हुई । उस समय मैंने उपेन्द्र का अवतार लिया । अब इस तीसरे जन्म में मैं फिर तुम्हारा ही पुत्र हुआ हूँ । मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती है । मैंने तुम्हें अपना यह चतुर्भुज स्वरूप इसी लिए दिखलाया है कि तुम्हें मेरे अवतारों का स्मरण हो जावे । यदि मैं अपना यह स्वरूप न दिखलाता तो तुम मेरे अवतार की पहचान किस प्रकार कर पातीं तुम दोनों मेरे प्रति पुत्र भाव के साथ २ ब्रह्म भाव सदा रक्खो इस भाँति तुम्हें परम मोक्ष प्राप्त हो जावेगी । तब भगवान् फिर बोले -वसुदेव जी इस समय तुम मुझे गोकुल में नन्द बाबा के यहाँ पहुँचा दो ।

नन्द यशोदा कीन्ह तप, मोहि मिलन के काज ।

देखन चाहें बाल सुख, लहे दरश मम आज ॥

वहाँ पर इसी काल मेरी योग माया ने कन्या के रूप में यशोदा के गर्भ से जन्म लिया है तुम उसे यहाँ पर ले आना । इतना कह कर उन्होंने बाल रूप धारण कर लिया तब वसुदेव जी बोले—हे भगवन् ! हमारे हाथ पैरों में हथकड़ी बेड़ियाँ जकड़ रही हैं । बन्दीगृह के विकट कपाट बन्द हैं बाहर कंस के पहरेदार सजग हो कर पहरा दे रहे हैं, फिर मैं किस प्रकार बाहर निकल सकता हूँ । वसुदेव जी के इतना कहते ही उनकी समस्त हथकड़ी बेड़ी खुल गई और बन्दीगृह के कपाट भी खुल गये, तथा पहरेदार अचेत हो कर सो गए । भगवान् ने अपनी योगमाया से द्वारपालों और नगर निवासियों को अचेत कर दिया । सब के सब सो गये । तब वसुदेव जी ने अति प्रसन्न हो कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को एक सूप में रख लिया और गोकुल के लिये चल दिये ।

उस समय बादल धीरे २ गरज रहे थे । जल की फुहारें पड़ रहीं थीं । शेष जी अपने फनों से उनके ऊपर फन फैला कर जल रोक रहे थे । वर्षा के कारण यमुना नदी का प्रवाह अति तीव्र और गहरा था । उस में भँवर पड़ रहे थे । भयानक गर्जना के साथ जल की विकट लहरें उठ रहीं थीं । वसुदेव जी निर्भय हो कर जल में घुस पड़े यमुना जल धीरे धीरे बढ़ने लगा ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दोहा—लेने को प्रभु के चरण, कालिन्द्री उमगाइ।
जानि कष्ट वसुदेव प्रभु, दीन्हों चरण बढ़ाइ॥
छूकर यदुपति के चरण, यमुना गई बिलाय।
नन्द बाबा के धाम में,वसुदेव धँसे मिहाय॥

तिस काल यशोदा जी अचेत होकर अपनी शैया पर सो रही थीं। उन्हे नवजात कन्या के जन्म का कुछ भी पता नहीं था। तब वसुदेव जी अपने पुत्र को यशोदा जी की शैया पर सुला कर उस कन्या को अपने साथ बन्दीगृह में ले आये और उसे देवकी की शैया पर सुलाकर अपने हाथ पैरों में हथकड़ी बेड़ी पहिन ली। बन्दी गृह के कपाट ज्यों की त्यों बन्द हो गए।

—❀—

॥ चौथा अध्याय ॥

दोहा—सुन करके बालक जनम, कंस गयौ अकुलाय।
बन्दी गृह में जाय कर, कन्या लई छिनाय॥
लाय शिला पर दुष्ट ने,पटकी गगन घुमाय।
गई अम्बिका हाथ से, कंसहि गिरा सुनाय॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब वसुदेव जी उस कन्या को ले कर बन्दी गृह में लौट आये तब बन्दी गृह के सभी द्वार अपने आप बन्द हो गए। जब कन्या बन्दीगृह में रोने लगी। उसके रोने की धुन को सुन कर बन्दी गृह के सभी पहरेदार सचेत हो गये। और तुरन्त ही कंस राजा के पास जाकर देवकी के बालक के जन्म होने की बात कही। कंस उसी क्षण अति व्याकुल हो कर उठ खड़ा हुआ और हाथ में नङ्गी तलवार लेकर बन्दी गृह की ओर दौड़ा। इस बार तो उसे अपने काल से ही लड़ना था। इस कारण वह अति व्याकुल था। उसे इस बात का भी ध्यान न रहा कि उसके बाल बिखरे हैं अथवा अङ्गों पर वस्त्र धारण किये हुए हैं या नहीं। मार्ग में कई स्थान पर लड़खड़ा कर गिरते गिरते बचा। बन्दी गृह में पहुँचते ही उसने तत्काल उस कन्या को देवकी के हाथ से छीन लिया। देवकी ने अति गिड़गिड़ाय, दुख पाय कंस से कहा—हे भाई! तुमने मेरे छः बालक मार डाले हैं अब यह कन्या

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हुई है, तुम मेरी इस पिट पिछौनी कन्या को मत मारो। देवताओं ने तो आठवें गर्भ से पुत्र जन्म की कही थी सो कन्या भई। उनकी बात मिथ्या गई। अब तुम्हें किसी बात का भय नहीं करना चाहिए।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! कन्या के लिए देवकी रोने लगी और अति दीन की भाँति याचना करने लगी। कंस बोला--

चौ०—देव वचन मिथ्या नहिं जावैं, मारे मुझे जो ब्याहन आवे।

इतना कहकर कंस ने उस कन्या को बाहर लाकर बल पूर्वक चट्टान पर दे मारी। ज्यों ही उसने उस कन्या को ऊपर उछाला त्योंही वह कन्या उसके हाथ से छूट कर आकाश को उड़ गई। वह कन्या तो योग माया थी, वह आकाश में स्थिति होकर अष्ट भुजा धारण करके आयुधों से युक्त हो गई। दिव्य माला, वस्त्र माणिक्य मुकुट आदि से शोभायमान थी। देवता, गन्धर्व अप्सरायें उनकी स्तुति तथा भेंट से पूजा कर रहे थे। तब वह देवी बोली—

रे दुष्ट—कंस! मुझे मारने से तुझे कुछ भी नहीं मिलेगा, तुझे मारने वाला तेरा शत्रु कहीं उत्पन्न हो चुका है। तू व्यर्थ ही निर्दोष बालकों की हत्या न कर। इतना कह कर योगमाया अन्तर्ध्यान हो गई उसकी पृथ्वी पर अनेक नामों से पूजा होने लगी।

उस देवी की बात सुनकर कंस अति आश्चर्य में हुआ, और देवकी के निरपराध बालकों की हत्या करने के कारण अति भयभीत होकर उन को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा। बड़ी नम्रता से बोला—प्यारी बहिन और बहनोई जी! मैं आपका अपराधी हूँ। हत्यारा हूँ। मैंने अकारण ही आपके बालकों की हत्या की है। इसमें देवताओं का ही विशेष दोष है। अब मुझे न जाने कौनसा नरक भोगना पड़ेगा। मैंने धोके में आकर आप के बच्चों की हत्या की है। मनुष्यों की तो क्या चली देवता भी झूँठ बोलने लगे हैं। तुम दोनों मेरे अपराध को क्षमा करो, पुत्रों का शोक त्याग दो। सभी प्राणी प्रारब्ध का भोग भोगते हैं। उनकी मृत्यु का यही विधान था। यह आत्मा अमर है, केवल शरीर ही का नाश होता है अज्ञानी पुरुष ही इस नाशवान् शरीर को आत्मा मान लेते हैं। यही

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अज्ञान है। हे बहिन! तुम मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारे पुत्रों को मारा है तुम उनका शोक न करो। जो साधु पुरुष होते हैं वे दूसरों के द्वारा सताए जाने पर भी उनको कष्ट नहीं देते हैं और न उन पर क्रोध ही करते हैं। इतना कहकर कंस ने बसुदेव तथा देवकी के चरण पकड़ लिए। और आँसू बहाने लगा। तब उसने बसुदेव तथा देवकी को बंदीगृह से मुक्त कर उन को उबटन लगाय नहलवाया, सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनाये उत्तम उत्तम भोजन देकर उन्हें रहने के लिए उत्तम महल दिए। और तब बसुदेव जी ने कंस को क्षमा कर दिया, और प्रसन्न होकर वहीं रहने लगे।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! उस दुष्ट कंस ने प्रातः काल ही अपने मंत्रियों को बुलाकर योगमाया की बात सुनाई। कंस के मूर्ख मंत्रियों ने कंस से कहा—हे राजन्! देवताओं ने ही यह धोखा दिया है अतः इन देवताओं का ही नाश करना चाहिये। उसके लिए यही उपाय है, कि दसदिन तक के सभी बच्चों को नगर में ग्रामों में वस्तियों में ढूँढ़२ कर मार डालना चाहिये। और ब्राह्मणों के यज्ञ हवन बन्द करा देने चाहिये। वे देवता तो महान डरपोक हैं। वे तो आपकी शरण में ही रहकर आपकी सेवा करते रहते हैं। रही विष्णु की बात वे भी आपके भय से छिपे ही रहते हैं। शङ्कर जी किसी पर्वत पर पडे रहते हैं। इन्द्र को तो आप कई बार परास्त कर चुके हैं। अतः आप इन शत्रुओं के नाश के लिए अपने सेवक राक्षस नियुक्त कर दीजिये। सभी छिप छिप कर वेष बदल बदल कर नगरों गावों में जाकर बच्चों को मार डालें। देवताओं की जड़ विष्णु हैं और विष्णु का निवास वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या अज्ञ आदि में हैं। इसलिए हम इन सबको तत्काल नष्ट किए देते हैं। जब ये नष्ट हो जावेंगे, तब विष्णु स्वयं नष्ट हो जावेगा। वैसे वह कहीं किसी गुफा में छिपा बैठा होगा। वही सब देवताओं की जड़ है। ऋषियों को मार डालना भी अति आवश्यक है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उस दुष्ट बुद्धि कंस ने उनकी यह बात मानकर गौ, ब्राह्मण, साधु, बालक आदि के संहार की आज्ञा दे दी। तप, यज्ञ, दान, तपस्या आदि नष्ट भ्रष्ट कराने के लिए सेवक नियुक्त

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर दिये। राक्षस इच्छानुसार वेष बदल बदल सब की हिंसा करने लगे। तमोगुण के कारण उनकी बुद्धि मारी गई। वे सन्तों से बैर करने लगे। मृत्यु के वशीभूत होकर स्वयं अपने को ही नष्ट करने लगे।

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

गोकुल में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का जन्मोत्सव—

चौ०—जन्मे पुत्र यशोदा माई। नन्द बाबा घर गवें बधाई।
दो लख गाय पुण्य नन्द कीनी। अन्न वस्त्र बहु दक्षिणा दीनी॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! बाबा नन्दराय बड़े उदार हृदय और मनस्वी थे। पुत्र जन्म सुन उन्हें अति आनन्द हुआ। तत्काल दो लाख गाय स्वर्ण के सींग और रूपे से खुर मढ़ाय रेशमी पाटम्बर उढ़ाय नन्द बाबा ने ब्राह्मणों को दान कीं। उन्होंने स्नान आदि करके उत्तम वस्त्राभूषण धारण किये। तत्पश्चात् कर्मकाण्डी वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाय, बालक का जाति कर्म संस्कार कराया। पितरों तथा देवताओं की अनेक भाँति से पूजा की। सात पहाड़ तिल के दान किये। अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण अनाथों को दिए। हे परीक्षित! वेदज्ञ ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों द्वारा हवन इत्यादि करके गृह शुद्धि आदि कर्म कराये। ब्राह्मण, बन्दीजन, मागध, सूत आदि स्तुति करने लगे, तथा नन्द बाबा से मुँह माँगी आश पूरी करने लगे। अनेक प्रकार के माङ्गलिक बाजे, भेरी, तुरही आदि बजने लगे। सारे व्रज मण्डल के गृह, आंगन, चबूतरे, चौक, हाट, चौहाट, झार बुहार कर गौ के गोबर से लीपे जाने लगे। चन्दन का छिड़काव, तथा केले व आम के खम्भे लगने लगे। द्वार द्वार पर तोरण बन्दनवार लगने लगे तथा सोने के कलश धरे गये। अनेक प्रकार की ध्वजा, पताका विचित्र रङ्गों के झाड़ फनूस लगाये गये। माला धूप आदि से युक्त सुगन्धित वायु सर्वत्र चलने लगी। गाय, बैल, बछड़े, हल्दी, मँहदी, गेरू आदि से सजाये जाने लगे। मोर पंख के हार, माला, कंठाओं से उन्हें सजाया गया। गोप, ग्वाले, रङ्ग बिरंगे वस्त्रा भूषण पहिन पहिन कर प्रसन्नता से उछलने कूदने लगे। और अनेक प्रकार की भेंट की सामिग्री थालों में ले ले कर नन्द बाबा के घर की ओर जाने लगे।

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सवैया—मोहन जन्म सुनो ब्रज वनितनु नन्द बाबा घर हुलसि के धाईं ।
ऊँचे नितम्ब हिलैं मग में अरु हार हमेलु हिलें हिय पाईं ॥
कानन कुण्डल माथे पै झूमरि झिलमिलि मणिअनि की छवि छाई ।
नन्द बाबा घर धाइ चलीं सब चन्द्रमुखी युवती हरषाईं ॥
गोकुल ग्राम की गोरी सी ग्वालिन कुंकुम लेप दिये मुसकाई ।
रंगविरंगि की लूमरि सोहत चोटी में फूल लसें सितराई ॥
कुण्डलि, हार पयोध चले मग ओरु चलें दृग चंचलताई ।
देत अशीष बखेरत अच्छत जुग जुग जीवौ ये कृष्ण कन्हाई ॥

हे राजन् ! उन ब्रज युवतियों की छटा बड़ी ही अनोखी थी । वे यशोदा के निकट जाने के लिये अति आतुर हो उठीं । वे झटपट अपने २ घरों से चल पड़ीं । उनके मुख कमल प्रसन्नता से खिल रहे थे । उन पर लगी हुई कुंकुम कमल केसर की भाँति प्रतीत होती थी । जब वे जल्दी २ चलती थीं तब उनके भारी नितम्ब हिलने लगते । उनके कानों में मणियों के कुण्डल, कण्ठ में सोने के हार झिलमिला रहे थे । वे रङ्ग विरंग के लूमरि पहने थी उनकी चोटियों में गुथे हुए फूल मार्ग में झरते जाते थे वे नवयुवतियाँ नन्द बाबा के घर अति हर्षित हो कर चल पड़ीं और वहाँ जा कर उन्होंने अच्छत दधि और तेल से मिला हुआ पानी छिड़क कर नव जात शिशु को चिरंजीव होने का आशीर्वाद दिया और नाचने गाने लगीं ।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समस्त संसार (चराचर जगत) के स्वामी हैं उन की शोभा माधुर्य और वात्सल्य सभी अद्वितीय तथा अनन्त हैं । उनके जन्मोत्सव में अनेक प्रकारके मांगलिक बाजे बजने लगे तथा नन्दबाबाने दान पुण्य अपनी सामर्थ से बाहर किया । गोप ग्वाले तथा गोपियाँमतवाली हो होकर—

मलि मलि माखन मुखन से ब्रज ग्वाला हरषाहिं ।
दधि गोरस के फाग सों, भई कीच ब्रज माहिं ॥

परस्पर सब गोपियाँ माखन गोरस फेंक २ कर आनन्दोत्सव मनाने लगीं । ब्रज में दही दूध, घी, की सरिता बहने लगी । नन्द बाबा ने गोप ग्वालों को मुँह माँगी वस्तुएँ भेंट में देकर उन्हें प्रसन्न किया । सूत, मागध तथा वन्दीजन आदि को भी यथा योग्य पुरुष्कार दिये । यह सब कुछ नन्द बाबा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान की प्रसन्नता और उस नवजात शिशु के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए ही कर रहे थे। नन्द बाबा ने परम सौभाग्यवती रोहिणी जी का बड़ा आदर सत्कार कर के दिव्य वस्त्र माला तथा आभूषणों आदि से सत्कार किया। वे गृह स्वामिनी की भाँति समस्त आने जाने वाली गोपियों का सत्कार भली भाँति कर रही थीं। हे परीक्षित! मैं कहाँ तक कहूँ उसी समय से बृज में ऋद्धि, सिद्धियाँ आ कर क्रीड़ा करने लगीं। लक्ष्मी जी अपने स्वाभाविक गुणों से वहाँ पर अपने पति श्रीकृष्णचन्द्र जी के निकट रहने लगीं।

हे परीक्षित! कुछ काल पश्चात् नन्द बाबा ब्रज की रक्षा का भार दूसरे गोप ग्वालों पर सौंप कर राजा कंस का सालाना कर चुकाने के लिए अपने छकड़ों में दधि, गोरस, दूध, घृत भर कर मथुरा को गये। जब वे अपना कर कंस को चुका चुके तब उन्होंने एकान्त स्थान में बसुदेव जी से भेंट की। बसुदेवजी को देखकर नन्दजी अति हर्षित हुए और उन्हें कण्ठ से लगा लिया। नन्द बाबा प्रेम से विह्वल हो गये। नन्द बाबा ने बसुदेव जी का अति सत्कार तथा स्वागत किया और—

चौ०—पूछी नन्द क्षेम कुशलाता। बड़ी भई एक आनन्द बाता॥

श्री वसुदेव जी बोले—हे भाई नन्द जी! हमें बड़ी प्रसन्नता है कि भगवान ने तुम्हारे एक पुत्र दे कर तुम्हारी आशा पूरी कर दी। तुम्हारी अवस्था ढलचुकी थी और अब कोई सन्तान होने की आशा नहीं थी। यह भी बड़े सौभाग्य की बातहैकि बहुत दिनके बिछुड़े हुए प्रेमी हम लोग आज मिले। यह बड़े रंजकी बातहै कि हम तुम दोनों कभी साथ २ न रह सके इस को हम प्रारब्ध का ही भोग कहेंगे। हेप्यारे नंदजी!आप इस समय जिस बनमें रहरहेहो उसमेंघास,फूंस,तृण आदितो पर्याप्त मात्रामें होतेहैंन?वहाँपर पशुओं को किसी प्रकार का रोग तो नहीं है। मेरा पुत्र अपनी माता रोहिणीके साथ आनन्द से तो है। वह बालक तो तुम्हीं को माता पिता मानता होगा। मेरी अन्य पत्नियाँतो प्रसन्नहैं न?उन बेचारियोंने तो मेरेलिए महान् कष्ट भोगेहैं।

in Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

रे अन्य पुत्र तो कंस ने मारे डाले। अन्त में एक कन्या हुई किन्तु वह भी स्वर्गको चली गई। तुम्हारे इस दुख से हमें महान दुःख है। किंतु यह भाग्य का ही है। दोषवसुदेवजी बोले—हे नन्द जी ! ब्रजमें यह दुष्ट कंस अनेक प्रकार के उपद्रव कराता रहता है।

चौ०—वसुदेव कही जाउ ग्रह ताता, ब्रज में होंहि नित्य उत्पाता।
बालक ढूँढ़ि कंस मँगबावे, दुष्ट उन्हें तत्काल नसावे॥

इसलिये हे नन्द जी ! अब तुम शीघ्र ही यहाँ से ब्रज को जाओ। अब यहाँ अधिक न ठहरो। क्योंकि वह दुष्ट कंस ब्रज वासियों के पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है, और उसके राक्षस अनेक प्रकार के रूप बना कर ब्रज के बालकों की हत्या करते रहते हैं।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! वसुदेवजी के इस प्रकार कहने पर नन्दजी तुरन्त अपने छकड़ों को जोड़ कर गोकुल को चल दिए।

—:०:—

॥ छटवाँ अध्याय॥

॥ पूतना वध ॥

दोहा—कुच कौ विष पीवन लगे, निजमुख सुघड़ लगाइ।
दुष्ट पूतना बध कियो, समुझि बाल ग्रह ताहि॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! जब नन्द बाबा मथुरा से लौट रहे थे। तब मन में विचार करने लगे कि वसुदेव जी का बचन कभी असत्य नहीं होता। इस कारण नन्द जी के मन में अति चिन्ता हुई। इसलिए वे हड़बड़ाय, अति अकुलाय, अपने ब्रज में पहुँचने की शीघ्रता करने लगे।

उसी बीच पूतना नामकी एक कंस की भेजी क्रूर राक्षसी बच्चों को मारने के लिए ब्रज में गई। जिस स्थान पर भगवान् के गुण यश तथा कीर्तन का स्मरण नहीं होता है। वहाँ पर ऐसी राक्षसियों का बल अधिक हो जाता है। वह पूतना आकाश मार्ग से चलने में समर्थ थी और इच्छानुसार रूप धारण कर लेती थी। उसने एक सुन्दर युवती का रूप

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by ... Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

धारण कर के नन्द बाबा के गोकुल ग्राम में गई। उसका रूप अति मनोहर था चोटी में बेला के फूल गुथे हुये थे। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थी उसके कर्ण फूल जगमगा रहे थे। उसके नितम्ब तथा कुच कलश की भाँति ऊँचे उठे हुए थे तथा कटि भाग पतला था। वह रूपवती रमणी अपनी मधुर मुस्कान तथा चितवन से ब्रजवासियों के मन को हर रही थी। उसके हाथ में कमल का एक फूल था। वह गोपियों के रूप लावण्यको मात करने लगी मानो लक्ष्मी अपने पति से मिलने आ रही हो।

दोहा—गई पूतना नन्द घर, मन में अति हरषाय।
बालक लीनों गोद में, प्यावे कुचा सिहाय ॥

हे परीक्षित! बालक श्रीकृष्णचन्द्र जी जगत का संहार करने के लिये उत्पन्न हुए थे अपने तेज को छिपा कर आनन्द से सो रहे थे। उन्होंने तत्काल जान लिया कि यह दुष्ट राक्षसी बालकों की हत्या के लिए ब्रज में आई है। उस राक्षसी ने अपने बाल रूपी सांप को उठा कर बड़ी प्रसन्नता से अपने कुचों से लगा लिया उसे यह पता नहीं था कि म्यान में ढकी हुई यह तीक्ष्ण तलवार है। वह पूतना अति रूपवती और सुन्दरी होने के कारण यशोदा तथा रोहिणी भी उसको देख कर मोहित सी हो गई। उन्होंने उसको बालक के उठाने और दूध पिलाने से नहीं रोका। वे चुपचाप खड़ी देखती रहीं। उस पूतना के स्तनों में हलाहल विष लगा हुआ था। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने क्रोध कर के अपने दोनों हाथों से उसका कुच थाम कर उसके प्राण सहित दुग्ध का पान करने लगे। वे दूध पीने लगे और उनका साथी क्रोध उसके प्राण पीने लगा पूतना के मर्म स्थलों में अति पीड़ा होने लगी। वह चिल्ला कर बोली—अरे छोड़ दे छोड़ दे! बस कर बस कर वह बार बार अपने हाथ पैर पटकने लगी और उस की आँखें फट गईं। उसका सारा शरीर पसीने में लथ पथ हो कर व्याकुल हो गया वह बड़े भयङ्कर स्वर में चिल्लाने लगी उसकी भयङ्कर गर्जना से पृथ्वी आकाश तथा अन्तरिक्ष गूँज उठा। बहुत से लोग वज्र पात समझ कर पृथ्वी पर गिर पड़े। पूतना अपने राक्षसी स्वरूप को प्रकट कर के धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसका मुँह फट गया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वह हाथ मुँह पैर फैलाये बालबिखराये पृथ्वी पर वज्रके समान बाहर आकर गिर पड़ी। जब यशोदा व गोपियों ने उसके गिरने की भयङ्कर आवाजको सुना तब वह दौड़ी दौड़ी वहाँ गईं। उन्होंने देखा कि बालक कृष्ण पूतना की छाती पर लेटा हुआ स्तन पान कर रहा है। तथा एक भयङ्कर रूपणी राक्षसी मरी हुई पड़ी है। उन्होंने बालक को तत्काल उठा लिया और पुचकार कर छाती से लगा लिया। और कहने लगीं भगवान् चक्रधर आगे से रक्षा करें। भगवान् गदाधारी तेरी पीछे से रक्षा करें। हरि बगल बगल रक्षा करें। भगवान् मधुसूदन तथा विष्णु भगवान् तेरी रक्षा करें गरुण बाहन तेरी चारों ओर से रक्षा करें उपेन्द्र ऊपर से रक्षा करें। भगवान हलधर पृथ्वी पर तथा परम पुरुष सब ओर से तेरी रक्षा करें। हृषीकेश इन्द्रियों की नारायण प्राणों की श्वेत द्वीप के स्वामी चित्त की योगेश्वर मन की, शङ्कर भगवान् बुद्धि की तथा परमात्मा तेरे अहङ्कार की रक्षा करें। खेलते समय गोविंद सोते समय माधव चलते समय बैकुण्ठनाथ बैठते समय श्रीपति भगवान् तेरी रक्षा करें। भोजनके समय यज्ञ भोक्ता भगवान रक्षा करें। भगवान् के नामोच्चारण से सभी प्रकार के भूत प्रेत पिशाच आदि मृगी, पागल आदि उत्पात नष्ट हो जाते हैं।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! गोपियों ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अङ्गों की इस प्रकार मन्त्रों द्वारा रक्षा की, और यशोदा ने अपने स्तन पिलाकर पालने में सुला दिया। उसी समय नन्द बाबा मथुरा से लौटे तब उन्होंने उस भयङ्कर पूतनाको देखा। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बोले कि वसुदेव अवश्य ही कोई महान् ऋषि हैं उन्होंने जो कुछ कहा था वही हुआ। तब गोप ग्वालों ने उस पूतना के अङ्गों को काट काट कर गोकुल से बाहर लाकर लकड़ियों में रख कर उसे जला दिया। उसके शरीर से निकला धूआँ अगर की सी सुगंधि वाला था।

हे परीक्षित! ऐसा क्यों न हो भगवान् त्रिलोकीनाथ ने उसके स्तन का दूध पिया था। उसके पाप उसी क्षण नष्ट होगये थे। भगवान् ने उस राक्षसी का उद्धार कर दिया। और उसे वही सद्गति प्रदान की जो पुरुषों को मिलती है। भगवान् के चरणों की वन्दना ब्रह्मा शङ्करआदि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करते हैं। वे भक्तों के हृदय में बिराजमान रहते हैं। वे ही चरण पूतना के शरीर पर पड़े थे और उसका स्तन पिया था इसलिए भगवान् ने उसे वही परम गति दी जो माता को मिलनी चाहिए। वे गोपी तथा गौएँ भगवान् को नित्य वात्सल्य प्रेम से देखती थीं। उनके स्तनों से स्वयं दूध झरता रहता था। वे संसार के जरा मृत्यु चक्कर से पार हो चुकी थीं।

हे परीक्षित्! जब गोप ग्वालों तथा नंदबाबा के नाकों में वह सुगन्धित धूआँ पहुँचा तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआकि यह सुगंधि कहाँसे आरही है। तब उन गोपग्वालों ने पूतना के आने से मरणपर्यन्त सारा हाल नन्दजीसे कहा। नन्दजीने बालक को मृत्यु से बच जाने के कारण भगवान् को लाख लाख धन्यवाद दिया और बालक का सिर सूँघकर उसे गोद में उठा लिया। जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस पूतना मोक्ष को पढ़ता है तथा श्रवण करता है वह भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की अविचल भक्ति को प्राप्त करता है।

—❀—

॥ सातवाँ अध्याय ॥

कंस का तृणावर्त आदि राक्षसों को श्यामसुन्दर के मारने के वास्ते भेजना।

राजा परीक्षित् बोले-हे ब्रह्मन्! आदि पुरुष भगवान् की सभी लीलायें बहुत अद्भुत होती हैं वे मुझे अति प्रिय लगती हैं। उनके श्रवण से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। कृपा कर उनकी लीलाओं को मुझे अवश्य सुनाइये। श्री शुकदेवजी बोले हे राजन्! एक समय—

दोहा—जिन्ह नक्षत्र ब्रजपति भये, परचौ वही शुभ आय।
दान करें ब्रजराज अति, यसुदा रही जिमाय॥

जिस काल घर में स्त्री व पुरुषों की बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी ब्राह्मण वेद पाठ कर रहे थे। स्त्रियाँ सुन्दर मुखों से मङ्गलगीत गारही थीं बाजे आदि बज रहे थे। नन्द बाबा प्रसन्न चित्त से अन्न वस्त्र रत्न आदि का दान कर रहे थे। रोहिणी तथा यशोदा ब्रजयुवतियों को भोजन करा रही थीं। उस दिन भगवान्का जन्म नक्षत्र होने के कारण उनके अभिषेककी बड़ी तैयारी हो रही थीं। स्वस्ति वचन आदि से अभिषेक संस्कार हो रहा था। बालक श्री कृष्णचन्द्र को नींद आजाने के कारण यशोदा माता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उन्हें शय्या पर सुला दिया। थोड़ी देर बाद स्तनपान के लिए जब उनकी आँखें खुलीं तब रोने लगे। उस भीड़ में यशोदा माता ने उनका रोना नहीं सुना वे तो उत्सव में आये हुओं के आदर सत्कार में तल्लीन थीं। बालक श्री कृष्णचन्द्र अपने पैर उछाल उछाल कर रोने लगे। वे एक विशाल छकड़े के नीचे सो रहे थे। उसमें दही दूध से भरे हुए वर्तन रक्खे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के वे नन्हे २ पग फूल से भी अति कोमल थे, किन्तु हे परीक्षित् ! वास्तव में वे कोमल नहीं थे वज्र से भी अधिक शक्तिशाली थे। उन्होंने उस छकड़े में एक लात मारी उससे वह छकड़ा चूर चूर हो गया। उसमें रक्खे हुए दही दूध से भरे हुए भाँड़े फूट गये। छकड़े के पहिए धुरी जूआ आदि सब चूर चूर हो गये। उस छकड़े की चरचराहट सुन कर नन्द बाबा यशोदा रानी तथा अन्य ग्वाल बाल दौड़ कर वहाँ आये और इस अनोखी घटना को देख कर सभी व्याकुल हो उठे वे बोले अरे यह क्या हो गया ? यह गाड़ा अपने आप कैसे उलट गया इसमें रक्खे भाँडे कैसे फूट गये। गोपियाँ तथा यशोदा दौड़ीं अरे यहाँ तो हमारा श्रीकृष्ण सो रहा था। मालूम होता है कि यह कार्य किसी राक्षस का है तब वहाँ पर खेलने वाले बालकों ने कहा कि यह छकड़ा श्रीकृष्ण ने ही रोते रोते अपने पाँव से पलट दिया है। गोपों ने उन बालकों की बात पर विश्वास न किया क्योंकि वे कृष्ण के ऊपरी बल को नहीं जानते थे।

यशोदाजी ने घबरा कर रोते हुए अपने लाड़ले लाल को गोद में उठा लिया और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया। फिर उन्हें अपना स्तन पिलाया बहुत से गोपों ने मिलकर उस छकड़ेको फिर सीधा कर दिया और उस पर सारी सामिग्री ज्यों की त्यों रखदी। ब्राह्मणों ने दधि अक्षत दुर्वा आदि से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की पूजा की ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त करके नन्द बाबा ने बालक कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया और ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों द्वारा पवित्र औषधियों के जल से उनका अभिषेक किया स्वस्ति वाचन, हवन इत्यादि करा नन्द बाबा ने ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराया तत्पश्चात् अपने पुत्र की शुभ कामना के लिए सोने के सींगों से मढ़ी हुई बहुत सी गौएँ ब्राह्मणों को दान में दीं। हे परीक्षित ! वेद वेत्ता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवद् भक्त ब्राह्मणों के आशीर्वाद कभी मिथ्या नहीं होते।

हे परीक्षित्! एक दिन की बात है कि यशोदारानी अपने लाड़ले लाल को दूध पिला रही थीं। सहसा भगवान् श्रीकृष्ण इतने भारी हो गये कि यशोदा उनके भार को न सहन कर सकीं उन्होंने श्रीकृष्ण को गोद से उतार दिया और पृथ्वी पर बैठाल दिया। यशोदा बड़े आश्चर्य में पड़ गईं और अपने काम में लग गईं।

उसी काल तृणावर्त्त नाम का एक दैत्य कंस का भेजा हुआ वहाँ आया और वह बालक श्रीकृष्ण को बैठा हुआ देखकर उन्हें आकाश में उड़ाले जाने का विचार करने लगा। झट तत्काल एक बड़े भारी बवण्डर का रूप धारण करके उसने सारे ब्रज को धूल से ढक दिया। सब के नेत्र बन्द हो गए और दशों दिशाएं बड़ी आँधीके कारण ढक गईं। दो घड़ी तक चारों ओर सारे ब्रज में धूल ही धूल और अन्धकार ही अन्धकार छा गया, यशोदा माई ने घबड़ा कर अपने लाल को जहाँ वे बैठा आईं थीं जाकर देखा तो उन का लाल वहाँ नहीं था। तब तो वे अति ब्याकुल हुईं और रो रो कर अपने लाल को पुकारने लगीं। उस बवण्डर के कारण सभी बे हाल और बे सुध हो गए। किसी को भी अपने पराये की सुध नहीं थी। यशोदा माई अपने लाल को न पाकर गाय की भाँति डकराने लगीं। और वे पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उनके रोने धोने को सुन कर गोपियाँ वहाँ दौड़ कर आईं और श्यामसुन्दर कृष्ण प्यारे को न देख कर वे सभी अति ब्याकुल हुईं और नेत्रों से अश्रु बहाने लगीं।

दोहा–ढूँढ़ें गोपी ग्वाल सब, ले ले हरि का नाम।
नन्द यशोदा शिर धुनें, रोवें ब्रज की बाम॥

उधर हे परीक्षित्! वह तृणावर्त्त राक्षस भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को आकाश में उड़ा कर ले गया। किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इतने भारी हो गए कि वह उनके बोझ को सम्हाल न सका, और उनको लेकर अधिक दूर तक न जा सका। उनका बोझ एक पर्वत के समान उसे प्रतीत होने लगा। तब उसने उन्हें पृथ्वी पर पटकना चाहा किन्तु वह ऐसा भी न कर सका, क्यों कि बालक श्रीकृष्णचन्द्र ने उस दैत्य के गले को कस कर पकड़

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लिया था। उन्होंने उस के कण्ठ को इस भाँति दबाया कि वह असुर निश्चेष्ट हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस की आँखें बाहर निकल आईं और बोल बन्द हो गया तथा उस के प्राण पखेरू उड़ गये। वह दैत्य बालक श्रीकृष्ण को ले कर वहीं ब्रज में गिर पड़ा। वह दैत्य जिस चट्टान पर गिरा था वह चकनाचूर हो गई। भगवान् श्रीकृष्ण उसकी छाती पर खेल रहे थे। गोपियाँ दौड़ कर रोती हुई वहाँ पर आईं और अपने लाड़ले लाल को वहाँ देख कर अति आश्चर्य में हुईं। उन्होंने तत्काल अपने प्यारे कृष्ण को गोद में उठा लिया। और परस्पर भगवान् से यह प्रार्थना करने लगीं, कि हे भगवन् ! आपने इस बालक की पूर्ण रक्षा की है। यशोदा रानी गोपियाँ नन्द तथा सब गोप ग्वाल अति हर्षित हुए। वे इस आश्चर्यजनक घटना को देख कर परस्पर कहने लगे कि यह राक्षस ही इस बालकको मारने के लिए यहाँ आया था किन्तु भगवान् ने उस को ही मार कर हमारे प्यारे लाल की रक्षा की है। न जाने हमने कौन सा तप, प्याऊ, कुआँ, बावली, यज्ञ, दान, आदि किया है जिसके कारण हमारे बालक की रक्षा हुई है। जब नन्द बाबा ने उस वृहद वन में अनेक उत्पात होते देखे तब उन्हें वसुदेव जी की बात का ध्यान हो आया, और वे कहने लगे कि अब हम को यह बन छोड़ देना चाहिये।

एक समय की बात है कि यशोदा रानी अपने लाड़ले लाल को प्रेम में ओत प्रोत होकर स्तन पान करा रही थीं वात्सल्य प्रेमके कारण उनके स्तनों से दूध की धार बह रही थी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूध पीचुके थे। यशोदा माता मन्द २ मुस्कान से उसके मुख को चूम रही थी कि उसी समय मोहन को जंभाई आई। तो यशोदा रानी ने क्या देखा कि उन के मुख में आकाश, पृथ्वी, सूर्य, ज्योतिमण्डल, समुद्र, द्वीप, नदियाँ आदि समस्त चर अचर विराजमान हैं। अपने लाल के मुख में यह विचित्र दृश्य देख कर यशोदा रानी अति व्याकुल हुईं और उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए। वे अति आश्चर्य में पड़ गईं।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ आठवाँ अध्याय ❀

दो०—ब्रज में आए गर्ग मुनि, देखे बल और श्याम।
कहे नाम गुण रूप सब, जन्मे प्रेम सुख धाम॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! एक समय वसुदेव जी के भेजे हुये यदुवंशियों के पुरोहित श्री गर्गाचार्य जी नन्दबाबा के यहाँ गोकुल में आए। उनको देख कर नन्द जी अति हर्षित हुए, और हाथ जोड़ सिर नवाय उन्हें प्रणाम किया। श्री गर्गाचार्यजी को भगवान् का स्वरूप समझ कर उनकी विधिवत् पूजा की और आतिथ्य सत्कार किया। जब गर्गाचार्य जी आनन्द से बैठ गए तब नन्दजी ने इस प्रकार प्रार्थना की। हे भगवन्! आप पूर्ण काम और महात्मा पुरुष हैं। आप सदा दूसरों का कल्याण चाहते रहते हैं। आपका शुभ आगमन ही हमारे कल्याण का हेतु है। आप ज्योतिष शास्त्र के आचार्य और तीनों कालों के जानने वाले हैं। आप ब्रह्म वेत्ता और सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः आप मेरे इन दोनों बालकों के नाम करण संस्कार करने की कृपा करें।

गर्गाचार्य जी नन्दजी के ऐसे मधुर और युक्ति पूर्ण वचन सुन कर बड़े प्रसन्न हुए तथा बोले—हे नन्द जी! यह तो तुम जानते ही हो कि मैं यदुवंशियों का पुरोहित हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रों का नाम करण संस्कार करूँगा तो सभी यही समझेंगे कि ये दोनों पुत्र वसुदेव जी के ही हैं, जो देवकी से उत्पन्न हुए हैं जब वह पापी कंस यह सुन पायेगा तो वह अवश्य ही इन दोनों बालकों को तुम से छीन कर मँगवा लेगा। वह महान् पापी दुष्ट और क्रूर स्वभाव का है। सदा वह यही सोचता रहता है कि देवकी के आठवे गर्भ से कन्या का जन्म नहीं होना चाहिये था। यह अवश्य ही कोई षड़यन्त्र है, जब मैं तुम्हारे पुत्रों का संस्कार करूँगा तो उसको अवश्य यह विश्वास हो जावेगा कि मेरे मारने वाला शत्रु ब्रज में जन्म ले चुका है। जैसा कि वह कन्या कह गई है। इस भाँति इन बालकों को वसुदेवजी के बालक समझ कर वह कंस इन्हें मार डालेगा तो इस में बड़ा अनर्थ हो जावेगा। नन्द बाबा बोले—हे आचार्य जी! आप चुपचाप छिप कर एकान्त में मेरी गौशाला में चल कर इन बालकों के नाम करण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संस्कार कर दीजिये। औरों की तो बात ही क्या? मेरे सगे सम्बन्धी भी इस बात को नहीं जान सकेंगे।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! श्रीगर्गाचार्य जी तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी के नाम करण संस्कार के लिए आये ही थे। उन्होंने छिपकर एकान्त में दोनों के नाम करण संस्कार कर दिये।

श्री गर्गाचार्य जी बोले—हे नन्दजी! यह जो रोहिणी का पुत्र है, यह बल में सब से अधिक होने के कारण बलदाऊ कहलावेंगे, तथा अपनी आत्मा में स्मरण करने के कारण राम कहलावेंगे। रोहिणी के पुत्र होने के कारण "रौहिणेय" कहलावेंगे। तथा यादवों और तुम लोगोंमें कोई भेद भाव न समझने के कारण ये संकर्षण कहलावेंगे। यह जो तुम्हारा पुत्र जो साँवला साँवला सा है, इनका तो कहना ही क्या है। इनके तो गुण और नामों का वर्णन करने में मैं भी असमर्थ हूँ। ये युग युग में शरीर धारण करते हैं। पिछले युगों में इन्होंने क्रमशः! श्वेत, रक्त तथा पीत ये तीन रङ्ग धारण किये थे। अब इस द्वापर में इनका कृष्ण वर्ण है। इस लिए इनका नाम कृष्ण होगा। हे नन्दजी! इनका जन्म कभी वसुदेवजी के यहाँ हुआ था इसलिये इन्हें वासुदेव भी कहेंगे। इनके नाम तथा गुणों के लेने मात्र से जन्म जन्म के पाप धुल जाते हैं। ये तुम लोगोंका कल्याण करेंगे, गोप, ग्वाल, तथा गौएं इन्हें विशेष प्रिय हैं। तुम लोग इनकी सहायता से सम्पूर्ण विघ्नों से मुक्त हो जाओगे। हे नन्द बाबा! मैं कहाँ तक कहूँ, जो कोई इस साँवले बालक से प्रेम करते हैं,वे महान् भाग्यशाली हैं। जिस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओं की रक्षा करते हैं, उसी भाँति ये सम्पूर्ण जगत की रक्षा करते हैं। तुम इस बालक को साक्षात् भगवान् नारायण ही समझो, और इस बालक की बड़ी सावधानी से रक्षा करो। नन्दजी गर्गाचार्यजी के ऐसे वचन सुनकर अति आनन्दित हुए, और अपने को कृतकृत्य समझ कर प्रेमानन्द में मग्न होगए। गर्गाचार्य जी अपना कार्य सम्पन्न करके चुपचाप चले गए।

हे राजा परीक्षित! कुछ ही कालमें राम तथा श्याम गोकुल जी की रज में घुटनों तथा हाथों के बल चलने लगे। उनके नन्हे नन्हे पग गोकुल

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की कीच और धूल में सन जाते थे, उनकी कमर की कर्द्धनी में जड़े हुए घुँघुरू बड़ी मधुर ध्वनि करते थे। वे कभी रास्ते में चलते कभी गिर पड़ते फिर किलकारियाँ मार कर उठ कर चलने लगते। कभी अनजान व्यक्ति के पीछे ही चले जाते, और फिर डर कर अपनी माता रोहिणी और यशोदा के निकट आ जाते। माताएं दोनों बालकों की ये बाल सुलभ क्रीड़ायें देख देख कर अति प्रसन्न होतीं, और उनके स्तनों से दूध की धार बहने लगती उनके श्याम और गोरे शरीर पर लगा हुआ धूल और कीचड़ का अङ्ग राग अति शोभायमान लगता था। मातायें तत्काल अपने बच्चों को गोद में उठा लेतीं। उस धूल और कीचड़ का कोई ध्यान न करके उन्हें स्तन पान कराने लगतीं। वे अपने लाड़ले लालों की मन्द मन्द मुस्कान छोटी छोटी २ दतुलियाँ, और विश्वमोहनी मूर्ति को देखकर आनन्द मग्न हो जाती थीं। गोपियाँ उनकी छवि की ओर एक टक निहारती रह जाती थीं। जब कभी वे किसी बछड़े की पूँछ पकड़ लेते तब बछड़े उन के भय से दौड़ने लगते, और घिसटते हुए उनके पीछे पीछे चले जाते। कभी दौड़ने लगते कभी गिर जाते। ब्रज की गोपियाँ अपने गृह के काम काज को त्याग कर उन्हीं के निकट घिरी रहतीं, और उनकी इस आनन्द मयी लीलाओं को देख देखकर हँसते हँसते लोट पोट हो जाती थीं। कभी बलराम और कन्हैया को गोद में उठा उठा कर आनन्द विभोर होने लगती थीं। कभी दोनों बालक गायों के निकट, हिरनों तथा कुत्तों के निकट खेलने पहुँच जाते थे। तो कभी आँख बचाकर तलवार उठा लेते, कभी पानी के घड़ों को लुढ़का देते। कभी पत्तियों को लपक कर पकड़ने का प्रयत्न करते। कभी घुटनों के बल दौड़ते। उनकी मातायें उन्हें जब बर्जतीं तो उनका कुछ भी ध्यान नहीं करते। वे अच्छा सा खिलौना लेकर ही अपनी हठ को छोड़ते थे। उनकी मातायें घर के सभीकाम, काज त्याग कर उन्हीं दोनों बालकों के खिलाने पिलाने उनको भय की वस्तुओं से बचाने आदि में लगी रहती थीं और घर का कुछ काम भी न कर पाती थीं।

हे परीक्षित! गोकुल में समय का कुछ पता नहीं चल पाता था,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

क्योंकि दिन में सूर्य भी उनकी लीलाओं को देखने के लिए मुग्ध सा होकर अपने भ्रमण को भूल सा जाता था, और रात्रि में चन्द्रमा की भी यही दशा होती थी। अब यशोदा और रोहिणी के लाल खड़े होकर चलने लगें। वे साँवली सूरत वाले श्याम स्वयं भगवान् हैं। उनका सौन्दर्य और माधुर्य दिव्य है। वे अपने भाई बलराम और अपनी उम्र के ग्वाल बालों को साथ लेकर खेलने ब्रज में निकल पड़ते। उनकी छटा को देख देख कर ब्रज की सौभाग्यवती गोपियाँ उन्हें अपने अपने घर लिवा जातीं और उनके रूप माधुर्य का पान करतीं। गोपियाँ उनकी बाल लीलाओं को देख देख कर मुग्ध सी एकटक निहारने लगतीं, वे कभी कभी नन्दरानी के निकट आकर उनकी करतूत सुनाया करतीं। वे कहतीं अरी यह तेरा कन्हैया बड़ा ही नटखट है। कभी हमारे बछड़ों को खोल देता है। जब हम बछड़ों को पकड़ने जाती हैं। तब हमारे सूने घरों में घुस जाता है और मीठे मीठे दही दूध को चुरा चुरा कर खा जाता है। जब हम कुछ कहती हैं ठट्ठा मार कर हंस जाता है। यह चोरी के काम में बड़ा प्रवीण है। आप खाता है ग्वाल बालों को भर पेट खिलाता है और बचा खुचा बानरों को बाँट देता है। जब बानरों के पेट भर जाते हैं, तब हमारे दधि गोरस के माँटों को फोड़ देता है, जब घर में कुछ नहीं मिलता है तो खींझ कर कहता है कि घर का स्वामी तो मैं हूँ मेरी सब वस्तुये कहाँ छिपादी हैं। जब तुम्हारे लाल का कुछ बल नहीं चलता है तब हमारे बालकों को ही रुला कर भाग जाता है। ऊपर छींकों पर रक्खे हुए दही दूध को बालकों के कन्धों पर चढ़ कर उतार लेता है, और जब वे नहीं उतरते हैं तो ऊखल पर चढ़ कर उतारता है। अगर छींके अधिक ऊँचें होते हैं, तो नीचे से लाठी के द्वारा उनमें छेद कर देता है। तुम्हारे प्यारे लाल को इस बात की पूरी जाँच रहती है कि किस बर्तन में दूध है, और इसमें दही है। यह अंधेरे में छिपे हुए दही दूध को भी बाहर निकाल लाता है क्योंकि तुमने इन्हें हीरा पन्ना जवाहरात भी पहना रक्खे हैं। उनके प्रकाश से यह सब कुछ देख लेता

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है। वे ब्रज युवतियाँ ठट्ठा मार मार हंसती हुईं बोलीं—हे महरि! हम तुम से यह सब बात इसलिए नहीं कह रही हैं कि तुम अपने लाड़ले लाल को डाँटो, या डपटो, अथवा इनके आभूषणों को उतार लो। हम तो उनकी चाल बाजियों को बता रही हैं वह देखो कैसा भोला भाला साधू मालूम पड़ रहा है। ऐसा कह कर वह गोपियाँ भगवान् श्री कृष्ण की ओर प्रेम भरी दृष्टि से मुस्कराती हुईं नन्द महरि के घर से चली जातीं। यशोदा माई गोपियों के स्नेह तथा मन के भाव को ताड़ कर अति आनन्द मग्न होकर अपने लाड़ले को हृदय से लगा लेतीं, तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र कहते।

झूँठी गोपी झूँठे ग्वाल, झूँठ बजावें तुमसे गाल।
वरबस मुख गोरस लिपटाय, झूँठी लगावें तुमसे आय॥
मोरी मैया करो पत्याय, झूँठौ मुझको त्रास दिखाय।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! एक समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने ब्रजरज खाई। उस दिन बलराम आदि ग्वालवालों ने आकर यशोदा रानी से कहा मैया! कन्हैया ने मिट्टी खाई है। यशोदा रानी कन्हैया को रोग होने के भय से उनको डराने के लिए बोलीं—हे कन्हाई! तूने माँटी खाई? तेरे साथी ग्वाल बालों ने मुझसे आय तेरी बात कही है। तेरे बड़े भय्या भी यही कह रहे हैं। तब भगवान श्री कृष्णचन्द्र बोले मय्या! मैंने माँटी नहीं खाई है, यह सब ग्वाल बाल झूँठे हैं। यदि तुम इनकी बात सच्ची मानती हो तो मेरा मुख देखलो।

दो०—खोल दिखायौ मातु को, मोहन मुख तत्काल।
मुख में लखि तिहुँ लोक को, यशुमति भई विहाल॥

यशोदा माता यह देखकर अति आश्चर्य में डूब गईं उसने चराचर जगत को अपने लाड़ले लाल श्रीकृष्ण के मुख में देखा। दिशायें, पर्वत, द्वीप, समुद्र, पृथ्वी, आकाश आदि सभी उनके मुख में देखे। ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देवता आदि सभी को उनके मुख में देखा। यह देख कर यशोदा भी बड़े चक्कर में पड़ गईं। यह कोई स्वप्न है, अथवा भगवान् की माया है। कहीं मेरी बुद्धि तो चक्कर में नहीं आगई या यह मेरा बालक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ही कोई सिद्ध योगी है। यह सोचते सोचते यशोदा जी को गर्गाचार्य की बात स्मरण हो आई। वे बोलीं ठीक है, यह चित्त, मन, वाणी और कर्म से परे सम्पूर्ण विश्व का आश्रय विश्वात्मा ही है जिसे मैं अपना पुत्र मानती हूँ इनकी सत्ता से ही यह सम्पूर्ण जगत स्थित है। मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। मैं इस माया जाल में फँस कर इनको भूल से अपना पुत्र मानती हूँ। मैं इनके शरण में हूँ। जब भगवान् ने देखा मेरी माता मेरे स्वरूप को जान गई है, तब उन्होंने अपनी योग माया से फिर उसे भुला दिया और यशोदा रानी पुत्र स्नेह से विह्वल होकर अपने लाल को छाती से लगा कर दुलारने लगीं। जिस विश्वात्मा को सारे वेद उपनिषद साँख्य योग, तथा भक्तजन अपना ईश्वर मानते हैं, और जिनके गुण गाते गाते अघाते नहीं हैं उन्हीं को यशोदा अपना पुत्र मानती है।

राजा परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन्! नन्द यशोदा ने ऐसा कौनसा कर्म तथा तपस्या की थी जिसके कारण उन्हें जगत पिता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के माता पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, और उनके जन्मदाता वसुदेव देवकी को यह सुख देखने को न मिला। वे उनकी बाल लीलाओंसे बंचित रहे। हे परीक्षित! नन्द बाबा पहले जन्म में एक उत्तम वसु थे, उनका नाम द्रोण था, और उनकी पत्नी का नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्माजी की आराधना करके उनसे यह वर प्राप्त किया कि जब हम पृथ्वी पर जन्म लें तब हमें भगवान की लीलायें देखने को प्राप्त हों। साथ ही साथ हमें भक्ति प्राप्त हो, जिससे सम्पूर्ण जगत का उद्धार होता है तब ब्रह्माजी ने कहा ऐसा ही होगा। वे ही परम भागवत नन्द यशोदा हुए। ब्रह्माजी की बात को सत्य करने के लिए ही श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने भाई बलराम के साथ ब्रज में आकर अपनी बाल लीलाओं का सुख उन्हें दिया।

—❀❀—

॥ नवाँ अध्याय ॥

ऊखल बन्धन

दोहा—जो प्रभु बाँधत जगत को, सोइ बाँधे ऊखल मात।
भक्तन वश प्रभु रहत नित, नहिं अचरज की बात॥

In Public Domain. Chambal Archives...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्री शुकदेवजी बाले—हे परीक्षित ! एक दिन नन्दरानी ने अपनी सेविकाओं को अन्य कार्यों में लगा दिया और स्वयं अपने लाड़ले कन्हैया के लिये माखन निकालने के लिये दही विलोने लगीं । दही बिलोते समय अपने श्याम की बाल लीलाओं को गाती जाती थीं । पुत्र स्नेह के कारण उनके स्तनों से दूध की धार बह रही थी । नेती खींचते रहने के कारण उनकी भुजायें भी थक गईं थीं । कानों के कर्णफूल हिल रहे थे। पसीने की बूँद उन के माथे पर झलक रही थीं । उनकी चोटी के फूल गिर गिर कर उनके परिश्रम को प्रदर्शित कर रहे थे । उसी समय भगवान् श्री कृष्णचन्द्र सो कर उठे, और दूध पीने के लिये माता के निकट गये। दूध तो स्तनों से चू रहा ही था, वे पीने लगे । किन्तु उसी क्षण दूसरे स्थान पर दूध उफनने लगा । दूध को उफना हुआ जानकर यशोदा माता अपने श्यामसुन्दर को अध पिलाते ही छोड़कर दूध बचाने के लिये वहाँ दौड़ी गईं । श्यामसुन्दर यह जान कर खीझ उठे, और पास ही में रक्खे हुये लोहे के बांट को उस दधि के माँट में दे मारा । सारा दही मही हो गया । तब आप माता के भय से भयभीत हो एक अन्य कमरे में जा छिपे वहाँ भी माखन की मटुकी एक ऊखल पर चढ़कर उतारली और सारा दही माखन बन्दरों को फेंक २ कर खिलाने लगे । माता के भय के कारण कभी कभी अपनी श्याम सलौनी आँखों से इधर उधर देखते जाते थे । जब यशोदा रानी अपने दधि मथने के स्थान पर लौट आईं तो समझ गईं कि यह करतूत मेरे लाड़ले लाल की है । वे मुस्करा कर कन्हैया की तलाश करने लगीं कन्हैया को बिना देखे उन्हें एक क्षण चैन नहीं आता था । वे कभी भी अपने श्याम को आँखों से ओझल नहीं रखती थीं । वे ढूँढ़ती हुई वहीं जा पहुँची जहाँ श्याम सुन्दर जी बन्दरों को मक्खन खिला रहे थे । पीछे छिप कर उन की मनोहर झांकी देखने लगीं । तथा प्रेम आनन्द में मग्न होने लगीं । श्याम ऊखल पर खड़े होकर बन्दरों को माखन लुटा रहे थे उन्हें माता के आने का कुछ भी पता नहीं था। जब उन्होंने माता को छड़ी लिए हुये देखा, तब झट ऊखल से कूद कर भाग निकले । हे परीक्षित ! जिन योगिराज भगवान् को बड़े २ योगीजन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भी अपने मन द्वारा नहीं पकड़ पाते हैं, उन्हें भला यशोदा माता दौड़ कर पकड़ना चाहती हैं। जिन सर्वात्मन् प्रभु को भक्तजनों के हृदय भी नहीं थाम सकते हैं, उन्हें यशोदा माता हठ पूर्वक थामना चाहती हैं। यशोदा माता उनके पीछे २ दौड़ने लगीं। स्थूल नितम्बों के कारण वे भागते २ थक गईं। उनकी चोटी खुल गई। चोटी के पुष्प बिखर गये। ज्यों त्यों करके माता-यशोदा उन्हें पकड़ सकीं। तब उनका हाथ पकड़ कर उन्हें धमकाने लगीं। उस समय बाँके बिहारी जी की झांकी अति मनोहर थी अपराध के कारण मधुर ओठों पर कुछ रुलाई थी, कुछ भय युक्त मुस्कान थी, काजल से युक्त आँखें हाथ से मलने के कारण स्याही कपोलों पर फैल रही थी। माता के भय से आँखें कभी ऊपर उठतीं कभी नीचे गिर जातीं जो विश्वात्मन प्रभु सब को अभयदान देने वाले हैं आज वे ही माता के वात्सल्य स्नेह से भयभीत हो रहे हैं। जब माता ने अपने लाल को अति भयभीत देखा तब उन्होंने अपने हाथ की छड़ी को डाल दिया और हृदय प्रेम से उमड़ आया। तब उन्हें बाँधने के लिए सोचने लगी। हे परीक्षित! जिन परमात्मा का न आदि है न अन्त है, जो सृष्टि के आदि थे, और अन्त में भी रहते हैं, जो विश्व के बाहर भी हैं, और भीतर भी हैं। जो व्यक्त और अव्यक्त हैं सम्पूर्ण इन्द्रियों के स्वामी हैं, उन घट घट वासी अन्तर्यामी प्रभु को यशोदा माई बाँधना चाहती हैं। हे परीक्षित्! वास्तव में यशोदा अपने लाल के बल तथा प्रभाव को नहीं जानती थीं। उन्होंने घर से रस्सी लाकर ऊखल से कन्हैया को बाँधना चाहा, किन्तु वह रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ी। तब उन्होंने दूसरी रस्सी मँगाई किन्तु वह भी दो अंगुल छोटी पड़ गई। इस प्रकार माता यशोदा ने घर की सारी रस्सियाँ मँगालीं किन्तु सभी दो अंगुल छोटी पड़ जातीं। निकट खड़ी हुई गोपियां कृष्ण का यह चरित्र देख देख कर अति आनन्द मग्न हो रही थीं यशोदा माता कृष्ण को बाँधते २ थक गईं किन्तु वह बँध ही न पाये। हे परीक्षित! वे बँधाई में आ भी कैसे सकते हैं, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक सूत्र में बाँधते हैं उन्हें किस में

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बाँधने की शक्ति है। यशोदा रानी उन्हें साधारण बालक समझ कर बाँधना चाहती थीं। जब माता अति थक गईं तब प्रेम के वश में होने वाले प्रभु स्वयं माता के स्नेह बन्धन में बँध गये। हे परीक्षित! वे परम स्वतन्त्र प्रभु! ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्रादि सबको वश में करने वाले हैं। उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए कि मैं अपने प्रेमी भक्तों के द्वारा प्रेमपाश में बाँधा जा सकता हूँ, स्वयं अपने को यशोदा के प्रेम पाश में बाँध लिया।

हे परीक्षित! नन्द महरि उन सर्वात्मन प्रभु को ऊखल से बाँध कर अपने घर को चली गईं। तब श्यामसुन्दर ने सोचा कि प्राचीन काल से खड़े हुए वृक्ष रूप में यक्ष कुवेर के दोनों पुत्र नलकूवर व मणिग्रीव मेरे दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे ऐश्वर्य मदमें अन्धे थे इसी कारण नारद जी ने उन्हें वृक्ष होने का शाप दिया था। इसलिए ब्रज में आकर वृक्ष होगये थे। अब उनका उद्धार करना चाहिये।

॥ दसवाँ अध्याय ॥

यमलार्जुन का उद्धार

दोहा—यमलार्जुन उद्धार हित, गये कृष्ण उन पास।
यक्षराज के सुतन की, कीन्हीं पूरन आस॥

राजा परीक्षित बोले—हे भगवन्! नलकूवर तथा मणिग्रीव को परम शान्त नारद जी ने क्यों शाप दिया था उन्होंने नारदजी का कौनसा अपराध किया था। कृपा करके मुझे समझा कर कहिए। श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! नलकूवर तथा मणिग्रीव ये दोनों यक्षराज कुवेर के पुत्र थे। ये रुद्रभगवान् के अनुचर भी थे। उनका अहंकार एक सीमा तक पहुँच चुका था। वे धर्म का उलंघन करते हुए सदा मंदाकिनी नदी के तट पर कैलाश गिरि की रमणीय घाटी के उद्यानों उपवनों में स्वछन्द विचरते रहते थे। उन के साथ सैकड़ों रमणियाँ रमण करती थीं। एक दिन वे वारुणी पीकर उन्मत्त साड़ों की भाँति उन रमणियों के साथ गङ्गा जी में जल विहार कर रहे थे। उसी समय उधर से नारदजी आ निकले। नारद जी को देख कर वस्त्रहीना उन रमणी अप्सराओं ने लज्जा से अपने अपने वस्त्र पहिन लिये, किंतु वे दोनों नलकूवर तथा मणि ग्रीव नंगे ही जल में

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जड़की भाँति खड़े रहे। उनके ऐश्वर्य मद को देख कर नारदजी ने उन पर कृपा करके उन्हें शाप दिया कि तुम दोनों मद के कारण जड़वत् हो गए हो अतः तुम जड़ वृक्ष हो जाओ। नारदजी के शाप को सुनकर उन यक्षों की आँखें खुलीं। वे अति विनीति भावसे नारद जी की शरणमें गये, और उन की अनुनय विनय करके उन्हें प्रसन्न करने लगे। तब नारदजी ने कहा अच्छा जाओ ब्रज में जब द्वापर के अन्तमें भगवान् अवतार लेंगे तब तुम्हारा उद्धार करेंगे। श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! उन नल कूवर तथा मणिग्रीव के मद को नष्ट करके नारद अपने आश्रम को चले गये। वे दोनों यक्ष एक साथ ही ब्रज में विशाल अर्जुन के वृक्ष होगये। वे यमलार्जुन के नाम से प्रसिद्ध थे। जब यशोदा माता श्रीकृष्णचन्द्र जी को ऊखल से बाँध कर चली गईं, तब वे उस ऊखल को घसीट कर उन वृक्षों के निकट ले गये, और उस ऊखल को उन दोनों वृक्षों के बीच में अड़ा कर एक झटका मार दिया। उस साधारण झटके के लगते ही वे दोनों विशाल वृक्ष तड़ तड़ा कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन दोनों वृक्षों से दो दिव्य पुरुष निकले। वे दोनों ही नलकूवर और मणिग्रीव नाम के यक्ष थे। उन्होंने हाथ जोड़ कर उनकी प्रार्थना की नलकूवर और मणिग्रीव बोले-हे सच्चिदानन्द घन परमात्मा ! आप ही जगत के स्वामी रक्षक तथा नियन्ता हो आप अतीत अजन्मा तथा अव्यक्त हो। हम आप को प्रणाम करते हैं। आप ही काल हैं आप ही महत्तत्वादि प्रकृति हैं। आप ही तीनों गुण धारण करके सृष्टि रचते हैं। आप ही सब के साक्षी परमात्मा, घट घट वासी अन्तर्यामी हैं। हे परब्रह्म ! हम आपको नमस्कार करते हैं। हे मङ्गल मय स्वरूप ! हम आपको नमस्कार करते हैं। यदुवंश शिरोमणि घनश्याम को हम प्रणाम करते हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् की महिमा अति विचित्र है—

यमलार्जुन उद्धार प्रभु, कीन्हों निज जन जानि।
गये युगल निज लोक को, आयसु प्रभु की मानि॥

गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उन दोनों यक्षों का उद्धार करके उन्हें अपनी परम भक्ति प्रदान की।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—हे यक्षो ! यह सब कुछ मेरी प्रेरणा ही से नारद जी ने तुम्हारे मद को दूर करने के लिए तुम्हें शाप दिया था। जिन पर मेरी कृपा होती है। मैं पहले उनका मद हर लेता हूँ। उनका ऐश्वर्य नष्ट कर देता हूँ। तभी वे मेरे स्वरूप को भली भाँति पहिचान पाते हैं। उनका चित्त मुझ में लगा रहता है। अब तुम लोग अपने धाम को चले जाओ। तुमको मेरा परम धाम प्राप्त होगा।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! भगवान् के इस प्रकार कहने पर उन दोनों ने उनकी परिक्रमा की और फिर उत्तम विमानों में बैठ कर अपने धाम को चले गये।

—❋—

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

गोकुल से बृन्दावन जाना तथा बत्सासुर और बकासुर का बध—

दोहा—वृन्दावन पहुँचे सभी, ले गौ धन अरु बाल।
राम श्याम खेलन चले, लेकर के संग ग्वाल॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! उन यमलार्जुन वृक्षों के गिरने के शब्द को सुनकर सब ब्रजवासी नन्द, उपनन्द, यशोदा, गोपी, ग्वाल उठ धाये। वे आश्चर्य में होकर कहने लगे कि यह क्या हुआ ? कहीं बज्र पात तो नहीं हो गया। सब दौड़ कर उधर ही पहुँचे जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र ऊखल से बँधे हुए उन यमलार्जुन के वृक्षों के बीच में उस ऊखल को घसीट रहे थे। उन्हें इस भयङ्कर विपत्ति में देख कर नन्दजी तत्काल हाय हाय करके दौड़े और उन्होंनें अपने लाल को तत्काल गोद में उठा कर रस्सी के बन्धन खोल दिये। तब सभी गोप गोपियों को यह अपूर्व काण्ड देख कर अति आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे कि ये युगयुगान्तर के विशाल वृक्ष जो कभी किसी आँधी बवण्डर में नहीं गिरे थे, आज अचानक ही कैसे उखड़ कर गिर पड़े। भगवान् ने बालक की भली रक्षा की, अपितु आज बालक की कुशल नहीं थी। न जाने क्या बात है कि लाड़ले लाल कृष्ण पर ही हर समय मृत्यु खेलती रहती है। कुछ काल पहिले पूतना नाम की राक्षसी से प्राण बचे। फिर छकड़े से प्राण बचे,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

...सके बाद वह बवण्डर रूप धारी दैत्य ही उड़ा कर आकाश में ले गया ...ब इन विशाल वृक्षों से भगवान ने बालक की रक्षा की है। कुछ पुण्य ...प्रताप ऐसा है कि इसको मारने वाले स्वयं ही मर जाते हैं। जिस प्रकार ...ग्नि में पतंगे स्वयं जलकर नष्ट हो जाते हैं। तब नन्द, उपनन्द सभी ...र्गाचार्य जी के बचनों का स्मरण करके कहने लगे भाई! यह बालक हो ...आदि पुरुष भगवान हैं। तुम इन्हें बालक मत समझो। अभी कुछ बालक ...रहे थे कि इन वृक्षों को लाड़ले लाल श्रीकृष्ण ने ही झटका देकर ...खाड़ डाला है। इसमें से दो दिव्य पुरुष निकले थे। जो इनके चरण ...कर बिमानों पर चढ़कर आकाश को चले गये। यह सब लीला इसी ...श्रीकृष्ण की है। ऐसा कहकर नन्दजी ने श्रीकृष्णचन्द्र को छाती से ...लगा लिया।

हे परीक्षित! इस भाँति लीला बिहारी प्रभु उन गोप, ग्वालों, गोपियों ...था गांवों में लीला करने लगे। सब को अति आनन्द देने लगे। कभी ...चते, कभी गाते कभी किसी के कहने से उनकी वस्तुयें उठाकर ला देते। ...स भाँति अपने भक्तों के बस में होकर वे नट नागर की भाँति खेल ...रने लगे। किसी दिन कोई फल बेचने वाली आ जाती तो घर से ...ज लेकर फल लेने दौड़ पड़ते, अनाज तो छोटे छोटे हाथों में ...मार्ग में ही गिर जाता, किन्तु वह फल बेचने वाली उनके दोनों हाथों ...फलों से भर देती। समस्त उपासना तथा कर्मों के फल दाता प्रभु ...फल बेचने वाली से स्वयं फल लेते, उसकी टोकरी स्वयं रत्नों से ...जाती।

हे परीक्षित! जब राम, कृष्ण दोनों खेलते खेलते यमुना तट पर ...दूर निकल जाते, तब उनकी माता रोहिणी तथा यशोदा उन्हें पुकार ...कर बुलातीं। अरे कृष्ण! अरे कृष्ण! ओ मेरे दुलारे लाल ...कहाँ हो, शीघ्र आओ, ओ बलराम! तुम भी बेटा नहीं आते, ...भोजन करने बैठे हुये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम भूखे ...शीघ्र आओ। इस भाँति मातायें अनेक प्रकार से उन्हें पुकारतीं ...वे खेल त्याग कर नहीं आते। तब यशोदा माता उनके निकट ...दोनों की उँगली पकड़ कर लातीं। उन्हें प्रेम से न्हिलाती भोजन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करातीं, स्वच्छ वस्त्र, भूषणों से श्रृङ्गार करातीं, और माथे पर डिठौना की काली बिन्दी लगा देतीं। इस भाँति नित्य ब्रजबिहारी आनन्द बिहार करते।

एक दिन सब बृद्ध, गोप, नन्द उपनन्द आदि ने विचार किया कि इस वृहद् बन (महावन) गोकुल में अनेकों उपद्रव नित्य होते रहते हैं। अतः इसका क्या उपाय होना चाहिये। तब वयोवृद्ध उपनन्द ने जो बुद्धि में भी सब से अधिक थे, कहा देखो इस वृहद्वन में नित्य अनेकों उपद्रव होते रहते हैं कंस के द्वारा भेजे हुए राक्षस नित्य यहाँ आ आ कर हमारे प्यारे कृष्ण को मारने की घात लगाते रहते हैं। अतः हम को अब इस बन को शीघ्र ही त्याग देना चाहिये। यहाँ से वृन्दावन को चले जाना चाहिये। वह बन अति उत्तम और सदा घास से हरा भरा रहता है। जिस भाँति हमारे राम श्याम सुखी रहें, हमें वही काम करना चाहिये। शीघ्र ही यहाँ से कूँच कर देना चाहिये। सब ब्रज वासियों ने उन की बात का समर्थन किया, और सब अपने अपने छकड़ों रथों पर घर का सामान लाद कर गाय बछड़ों को आगे कर के चल पड़े। नन्द रानी तथा रोहिणी जी भी एक उत्तम रथ में बैठ कर अपने लाल राम व श्याम के साथ समस्त गृह सामिग्री गाय बछड़ों आदि के साथ वृन्दावन को चल दीं। सभी गोप ग्वाले शंख, सींग, तुरही, बजाते हुये उनके पीछे पीछे चलने लगे। कुछ ही समय बाद वे सब वृन्दावन में पहुँच गये। वृन्दावन अति ही सुन्दर बन है। वहाँ पर सदा छःहों ऋतु निवास करती हैं। ग्वाल वालों ने अपने छकड़े अर्द्ध चंद्राकार खड़े करके गाय तथा बछड़ों के लिये उत्तम स्थान बनाया और वहीं गोवर्द्धन पर्वत के निकट यमुना नदी के पुलिन पर रहने लगे। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों यमुना नदी की अति सुन्दर पुलिन को देखकर अति प्रसन्न हुये। गोकुल की भाँति वृन्दावन में भी सब ब्रज वासियों को आनन्द देने लगे। कभी वे बाँसुरी बजाते कभी गुलेल से ढेला फेंकते। कभी नाचते, कभी घूंघरों की तान छेड़ते थे। कभी बनवारी गाय बैल बन कर खेलते थे। मोर, कोयल और बन्दरों की बोली बोलते थे। इस प्रकार सर्व शक्तिमान भगवान् सामान्य बालकों की भाँति खेल करते थे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

एक दिन एक राक्षस जिसका नाम वत्सासुर था राम कृष्ण को मारने की इच्छा से उनके बछड़ों में आकर मिल गया। बलराम तथा कृष्ण यमुना के तट पर अपने बछड़े चरा रहे थे। श्रीकृष्णजी ने उस राक्षस को पहिचान लिया और संकेत से बलराम जी को बताते हुये उसके निकट पहुँच गए। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि वे उसको दैत्य न समझ कर उस सुन्दर बछड़े पर ही मुग्ध होगये हों। उस बछड़े रूपी दैत्यके पास पहुँचकर उन्होंने झट उसको लपक कर पकड़ लिया और उसकी पिछली दोनों टाँगें पकड़कर उसे आकाश में घुमा कर कैत के पेड़ से दे मारा। जब वह बछड़ा मारा तो उसने दैत्य का रूप धारण कर लिया और उसके आघात से कई कैत के पेड़ गिर गये। यह देख ग्वालवालों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे वाह वाह कर के श्यामसुन्दर की प्रशंसा करने लगे। देवताओं ने उन की प्रसन्नता के लिये आकाश से पुष्प बरसाये।

हे परीक्षित्! एक समय लोक रंजन बलराम जी तथा जगत के रक्षक कन्हैया जी वत्सपाल बन कर (बछड़ा चराने वाले) यमुना के तट पर बड़े तड़के ही बछड़ा चरा रहे थे। उन्होंने यमुना में बछड़ों को जल पिलाया और स्वयं भी जल पिया उनके साथी ग्वालवालों ने यमुना के तट पर बैठे हुए एक विचित्र बगुले को देखा वह बक नाम का दैत्य था जो बगुले का रूप बना कर श्रीकृष्ण सहित सब ग्वालवालों को निगलने की नीयत में था।

वह बलवान था और उसकी चोंच बड़ी तीक्षण थी उसने झट श्रीकृष्णचन्द्र को झपट कर निगल लिया। जब बगुला श्रीकृष्णचन्द्र को निगल गया तब ग्वाल और बलराम जी की वही दशा हुई जो बिना प्राण के शरीर की होती है। वे अचेत होकर गिर गये। हे परीक्षित्! जो जगत के पिता हैं वे गोपाल बालक बन कर लीला कर रहे थे। जब वे बगुले के तालू के नीचे पहुँचे तब वे इतने तीक्ष्ण गर्म हो गये कि उस बगुले ने उन्हें पुनः उगल दिया फिर वह क्रोध पूर्वक चोट करने के लिए झपटा किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने झपट कर उसकी चोंच के दोनों भाग दोनों हाथों से पकड़ लिए और ग्वालवालों के देखते ही देखते ही खेल

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

खेल में उस बकासुर दैत्य को चीर डाला। भगवान् श्रीकृष्ण के इस कौतुक को देखकर देवताओं को अति प्रसन्नता हुई और पुष्पों की वर्षा करने लगे। ग्वाल बाल तथा बलराम जी दौड़ कर श्रीकृष्ण के निकट गये और उनको कण्ठ से लगा लिया। इसके पश्चात् वे अपनी गायों को हाँक कर अपने घरों को गये। वहाँ जाकर उन्होंने बकासुर बध का सारी घटना अपने घर वालों को सुनाई।

हे परीक्षित्! बकासुर बध की घटना से सब गोप ग्वाल अति आश्चर्य में हुए और वे श्रीकृष्णचन्द्र को काल के गाल से बचा हुआ जान कर उनकी ओर अति प्रेम भरी दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने कहा कि यह बालक अवश्य कोई ब्रह्मवेत्ता तथा भगवान् का अवतार है। गर्गाचार्य ने भी ऐसा ही कहा था क्योंकि जो भी असुर इसको मारने के लिए आता है वह स्वयं ही अपने आप मारा जाता है। नन्द बाबा आदि सभी गोप इसी भाँति राम तथा श्याम के विषय में बातें करते २ तन्मय हो गये। इसी भाँति श्रीकृष्ण तथा बलराम ब्रज में अपनी बाल्यावस्था व्यतीत करने लगे।

—❀—

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

अघासुर उद्धार

दो०—दैत्य अघासुर मार कर, भेज्यौ निजपुर नाथ।
कूदि कूदि खेलन लगे, ले ग्वालन प्रभु साथ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! श्याम बलराम एक दिन बड़े तड़के उठे और अपनी मुरली, सिंगा, लकुटी तथा कलेवा आदि लेकर गाय चराने के लिए बड़े तड़के ही बन की ओर चल दिए। साथ में ग्वाल बाल भी सहस्रों गौएं बच्छड़े लेकर प्रसन्नता से उन के पीछे २ हो लिये। उन सभी के साथ छींके, बैंत, सींग, बाँसुरी आदि क्रीड़ा के सामान थे। वे सब मिल कर बालोचित क्रीड़ा करते हुए बन में विचरने लगे। किन्तु ग्वाल बाल सभी घुघुची, मणि, सुवर्ण आदिकेगहने पहने हुए थे। फिर भी उन्होंने बन के पुष्प तथा माला और मोर पंखों से अपने को भाँति प्रकार सजाया। कोई किसी का कलेवा चुरा लेता। कोई किसी का छींका

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चुरा लेता। जब उसके स्वामी को पता चलता तब वे दूसरों को दे देते। और दूसरा तीसरे को। तीसरा चौथे को इस प्रकार जब तक वह रुहासू नहीं आ जाता तब तक उसे उसकी वस्तु नहीं देते। ब्रज बिहारी भगवान् श्री-कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द इस प्रकार बाल क्रीड़ा करते हुए बन में आगे बढ़ गये। जब वे आगे चले जाते तब ग्वाल बाल उन्हें पकड़ने की होड़ लगाते। कोई बाँसुरी बजाता कोई सींग बजाता, कोई कोयल के स्वर में स्वर मिलाता। कोई बन के पक्षियों को पकड़ने के लिए दौड़ता। इस भाँति बन में क्रीड़ा करते हुए निर्भयता से बिचरने लगे। हे परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी साक्षात् ब्रह्मानन्द तथा भक्तों के आराध्य देव हैं वे परम ऐश्वर्य शाली भगवान् उन ग्वाल बालों के लिए उनके प्रिय सखा थे। वे ग्वाल बाल बड़े भाग्यशाली थे। जिनके साथ वे ब्रज बिहारी घनश्याम नित्य बिहार करते थे। जो भगवान् योगियों के लिए भी असाध्य अप्राप्य हैं वे उन ग्वाल बालों को नित्य प्रति अपने कण्ठ से लगाते तथा उनके साथ बाल क्रीड़ा करते थे। उन से अधिक सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है।

हे परीक्षित ! उसी समय कंस का भेजा अघासुर नाम का दैत्य जो पूतना और बकासुर का छोटा भाई था वहाँ पर आया। वह इतना महाबली था कि उसके भय से देवता भी काँपते थे। जब अघासुर ने भगवान् श्री-कृष्णचन्द्र और बलराम को ग्वाल बालों के साथ बिचरते देखा, तब अपनी बहिन पूतना और बकासुर का बदला लेने की ठानीं। उसने तत्काल अजगर का रूप बनाया और मार्ग में मुँह फाड़ कर पड़ गया। उस मुख को ग्वाल बालों ने वृन्दावन के पहाड़ों की एक गुफा समझी। वे सोचने लगे कि यह भी इस बन की एक अद्भुत गुफा है। उसके मुख के अन्दर की दाढ़ें पर्वत सिखर के समान प्रतीत होती थीं और उसकी लाल लाल जीभ अन्दर जाने का मार्ग प्रतीत होती थी। उसकी श्वास दावानल के समान प्रतीत होती थी। अघासुर के ऐसे रूप को देख कर उन ग्वाल बालों ने सोचा कि यह वृन्दावन धाम की एक शोभा है। वे बाल सुलभ क्रीड़ा करते हुए उसके निकट पहुँच गये। कोई कहता

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अरे यह तो कोई जीव सा प्रतीत होता है। कोई कहता अरे भाई यह तो अजगर ही मुँह फैलाये बैठा है। कोई कहता अरे भाई यह गर्म २ श्वास अजगर की ही प्रतीत होती है यह हम सब को निगल लेगा। इस भाँति बातें करते हुये उसके मुख के निकट पहुँच गये। तब उस अघासुर ने एक तीव्र श्वास खींची जिससे सभी ग्वाल बाल उसके मुख में चले गये जब अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने यह जाना कि बेचारे मेरे शरणागत ग्वाल बाल इसके मुख में चले गये हैं तब उन्होंने यह निश्चय किया कि किस उपाय से ये ग्वाल बाल बच सकते हैं और कैसे यह अजगर रूपी राक्षस मारा जा सकता है। अभी अघासुर ने मुँह बंद नहीं किया था वह श्रीकृष्णचंद्र को निगलने की प्रतीक्षा में था। उन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने ग्वाल वालों की रक्षा के लिये शीघ्र ही अपने को अघासुर के मुख में डाल दिया। यह देख कर आकाश में स्थित देवतागण अति व्याकुल हुए और वे हाय हाय करने लगे। उस राक्षस ने प्रसन्न हो कर अपना मुँह बन्द कर लिया। वह अघासुर बछड़ों ग्वाल बालों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को चबाने ही वाला था कि उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस अजगर के कण्ठ में जाकर अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि उसकी श्वास ही बन्द होगई। उसकी आँखें उलट गईं और वह पटा २ कर निश्चेष्ट हो गया उसके भीतर से एक बड़ी ज्योति बाहर निकली वह ज्योति दिशाओं में प्रज्वलित हो उठी। थोड़ी देर तक बाहर स्थित रही, और भगवान के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगी जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ग्वाल बालों सहित उस अजगर के मुख में से निकल आये तब वह ज्योति उनमें समा गई।

हे परीक्षित्! अघासुर दैत्य को मरा जान देवतागण आकाश से पुष्पों की वर्षा करने लगे। गंधर्व अप्सरा नाचने गाने लगे। उनके जयकार की ध्वनि ब्रह्मलोक में पहुँची। यह देख ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। हे परीक्षित्! उस अजगरका वह अस्थिर पंजर सूखकर बहुत काल तक उन ब्रजवासियों के लिये गुफा के समान क्रीड़ा स्थल बन गया। जब श्रीकृष्ण ने अघासुर दैत्य को मारा था तब उनकी अवस्था पाँच

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की थी। और ग्वाल वालों ने उनकी अघासुर बध की बात जब अपने अपने घर कही तब उनकी अवस्था छः वर्ष की थी। अर्थात् एक वर्ष पश्चात उन्होंने यह कथा कही।

श्री सूतजी बोले—हे शौनक जी! यदुवंश शिरोमणि भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने ही राजा परीक्षित की रक्षा की थी। उन्होंने ही अपने शरणागत उन ग्वाल बालों की रक्षा की थी। उन्होंने अपनी अमृतमयी दृष्टि से उन ग्वाल बाल और बछड़ों को जीवित किया।

राजा परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन्! यह तो उन भगवान् के लिये कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने अपने शरणागत ग्वालबालों की रक्षा की क्योंकि उन्होंने स्वयं मेरी रक्षा की है किन्तु सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि यह लीला उनके पाचवें वर्ष में हुई और ग्वालबालों ने यह घटना अपने अपने घर छटवें वर्ष में जाकर कही। यह आश्चर्य की बात मुझे समझा कर कहिये।

श्री सूतजी बोले—हे ऋषियो! भक्तवर परीक्षित की यह बात सुन कर श्रीशुकदेवजी कृष्णानन्द में मग्न हो गये और कुछ काल तक अपने नेत्र बन्द करके मौन रहे फिर बोले हे परीक्षित! यह रहस्यमयी लीला है किन्तु अपने प्रेमी भक्त के लिए अद्यतम रहस्य भी प्रकट करना अति आवश्यक है।

—❀—

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

ब्रह्माजी का मोहनाश

दोहा—ब्रह्माजी मोहित भये, लखि माया ब्रजराय।
कीन्ह बन्द निज हाथ से, ग्वाले बछड़ा गाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! तुम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त हो। भगवान की लीला कथा भक्तों के लिए स्वभावतः ही सरस और मधुर होती है किंतु तुम बीच २ में प्रश्न पूछकर उन्हें और भी सरस और मधुर बना देते हो। हे परीक्षित! ध्यान पूर्वक सुनो मैं तुम्हें यह रहस्य युक्त कथा सुनाता हूँ इस कथा के सुनने का अधिकारी प्रत्येक नहीं होता है तुम मेरे प्रेमी शिष्य हो अतः तुम इसके सुनने के अधिकारी हो।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने ग्वाल बालों को अघासुर दैत्य के मुख से बचा लिया यह तो मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ। यमुना जी का पुलिन अति रमणीय और सुन्दर है। वहाँ की बालू स्वच्छ तथा कोमल है। वहाँ हरे भरे वृक्षों पर सुन्दर पक्षी कलरव करते हैं। उस रम्य स्थान को देख कर ग्वाल बाल तथा राम श्याम ने सोचा कि यहाँ कलेवा कर लेना चाहिये। भूख भी खूब लग रही है दिन भी बहुत चढ़ आया है। ऐसा विचार करके वे सब वहीं बैठ अपने अपने छींके खोल खोल कर भोजन करने लग गये। बछड़े वहीं पानी पीकर हरी हरी घास चरने लगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बीच में बैठ गये और आस पास चन्द्राकार सभी ग्वाल बैठ गये। सब का मुँह श्रीकृष्णचन्द्र की ओर था। सभी ग्वाल बालों से घिरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे प्रतीत होते थे मानों एक विशाल कमल शोभायमान हो रहा हो। किसी ने पुष्पों की पत्तल बनाई, किसी ने ढाक के पत्तों की पत्तल बनाई, किसी ने पंखड़ियों की पत्तल बनाई किसी ने केले के पत्तों तथा कमल पत्रों की पत्तल बनाई। किसी ने अंकुरों की पत्तल बना कर ही अपना भोजन रख लिया। बहुतों ने छींकों में ही खाना आरम्भ कर दिया। सभी ग्वाल बाल अपने २ भोजन की बड़ाई करने लगे। भाई! मेरा भोजन अति उत्तम है तब तक दूसरा कहता भाई मेरा भोजन तुम्हारे से भी उत्तम है। इसी प्रकार सभी परस्पर बड़ाई करने लगे। और हँस हँस कर भोजन करने लगे। हँसते हँसते लोट पोट हो जाते। उस काल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की शोभा अति ही निराली थी। उन्होंने बंशी को कमर की फेंट में लगा रक्खा था, सींग तथा बैन बगल में दबा लिया था। बाँयें हाथ में दधि घृत मिश्रित भात का कौर था उङ्गलियों में अचार अदरक आदि लगे हुए थे। वे सब के मध्य में बैठे हुए सब ग्वाल बालों को हँसाते जा रहे थे। इस अद्भुत छवि को देख कर स्वर्ग के देवता भी इस बात की अभिलाषा करने लगे कि हम ग्वाल बाल न हुये जो जगत पिता के साथ ऐसा आनन्द भोगते। वे आश्चर्य चकित होकर यह लीला देखने लगे।

हे परीक्षित! जब ग्वाल बाल इस प्रकार भगवान् की लीला में मोहित

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हो रहे थे तब उनके बछड़े चरते २ बड़ी दूर निकल गए। जब ग्वाल बालों का ध्यान बछड़ों की ओर गया तब वे सबके सब उठ खड़े हुए। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—तुम किसी बात की चिंता न करो सब अपने अपने स्थान पर बैठे हुए भोजन करते रहो मैं स्वयं जाता हूँ और बछड़ों को खोजकर लाता हूँ। जगत के द्रष्टा भगवान् अपने बनाये हुये जगत को खोजने चले। कैसी उनकी अद्भुत लीला है। हाथ में दही भात का कौर लिए ही वे नदी पर्वत गुफा आदि में बछड़ों को खोजने लगे। हे परीक्षित! अघासुर के कारण देवताओं का जय जयकार सुन कर ब्रह्मा जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि कहीं पृथ्वीपर भगवान ने ही अवतार तो नहीं ले लिया है। वे यह जानने के लिये आकाश में स्थिति होकर यह सब लीला देखने लगे। उन्हों ने पहिले तो सब बछड़ों को एक गुफा में लेजाकर छिपा दिया। फिर जब श्रीकृष्णचन्द्र बछड़ों को खोजने निकले तब उन ग्वाल बालों को अचेत करके उसी गुफा में बन्द कर आये और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये।

जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को बछड़े नहीं मिले तब वे यमुना जी के पुलिन पर लौटकर आये। तो वहाँ भी उन्हें ग्वाल बाल नहीं मिले। यह सब देखकर उन्हों ने जान लियाकि यह ब्रह्मा की करतूत है। वे तो जगत के द्रष्टा तथा दृश्य दोनों ही हैं उनसे क्या छिपा था। तत्काल ब्रह्मा की करतूत जानकर उन्हों ने अपने ही स्वरूप को बछड़ा तथा ग्वाल वालों के रूप में धारण करके नये ग्वाल वालों तथा बछड़ों की सृष्टि रच दी उनके लिए यह कोई नई बात नहीं थी वे ही तो अनेक रूप वाली सृष्टि को रचते हैं। वे बालक जितने छोटे जैसे रूप के थे वैसे ही स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचंद्र बन गये और वैसे ही बछड़ा बना लिये गये। उन सबके रूप में श्रीकृष्ण भगवान प्रगट हो गए। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ही आत्म स्वरूप बछड़ों तथा अपने ही आत्म स्वरूप ग्वालों से स्वयं घिर कर अपने ही साथ भाँति भाँति की लीला करते हुए व्रज में पहुँचे। वहाँ जिस जिस ग्वाल बाल का घर था वह उसी में चला गया। जिस गाय का बछड़ा था उसी गाय का बछड़ा बनकर उसका स्तन पान करने लगा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वे गाय तथा गोपियाँ अपने अपने बच्चों को आया हुआ देख कर सबकी सब दौड़ पड़ीं और बड़े प्रेम से अपने अपने बच्चों को स्तन पान कराने लगीं। तथा गोपियाँ बड़े लाड़ प्यार से स्नान भोजन आदि कराने लगीं उन ग्वाल वालों तथा बछड़ों के रूप में परब्रह्म श्रीकृष्ण ही थे। उन्हींको अपना अपना बच्चा समझ कर प्यार करने लगीं। इसी प्रकार नित्य प्रति भगवान् श्री कृष्णचंद्र उन बछड़ों तथा ग्वाल बालों को बन में चराने ले जाते और संध्या को अपने अपने घरों में अपनी अपनी माताओं के निकट चले आते। उन ग्वालियों तथा गायों का प्रेम दिन प्रति दिन अपने बच्चों से अधिक ही अधिक बढ़ता गया। जैसा प्रेम वे श्रीकृष्णचंद्र से करती थीं वैसा ही प्रेम अब वे अपने बच्चों से करने लगीं। वे ऐसा क्यों न करें? क्योंकि स्वयं श्रीकृष्णचंद्र ही तो उनके बच्चों के रूप में थे।

हे परीक्षित! इस भाँति एक वर्ष तक भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने ग्वाल बालों का रूप धारण करके अपने ही स्वरूप के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ायें कीं और अपने ही स्वरूप बछड़ों का पालन किया।

हे परीक्षित! बछड़ों तथा ग्वाल बालों के ब्रजबासियों का विशेष बढ़ता हुआ प्रेम देखकर बलराम जी बड़े आश्चर्य में हुए। वे भी इसका रहस्य न समझ सके कि यह क्या कारण है कि ये ब्रजवासी जैसा प्रेम मुझसे तथा श्रीकृष्णचन्द्र से करते हैं वैसा ही इन बछड़ों और अपने बालकों से करने लगे हैं। अति चिन्ता में पड़ कर विचार करने लगे कि यह किसकी माया है। किसी देवता की है अथवा किसी असुर की है या किसी मनुष्य की। जब बलराम जी ने अपनी ज्ञान दृष्टि से देखा तो उन्हें सारा ब्रज श्रीकृष्ण मय ही श्रीकृष्ण मय प्रतीत होने लगा। सभी बछड़ों तथा ग्वालवालों के रूप में केवल श्रीकृष्ण दृष्टि आने लगे तब उन्होंने इसका रहस्य श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा कि ये बछड़े तथा ग्वालबाल न देवता हैं न ऋषि हैं। इन अनेक प्रकार के रूपों में आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। क्या कारण है इसका रहस्य सूक्ष्म में बतलाइये। इसका क्या कारण है कि आप ही इस सींग, वंशी बेंत रस्सी बछड़ा ग्वाल बाल आदि में प्रकाशित हो रहे हैं। तब भगवान् श्रीकृष्णचद्र ने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बलराम जी को ब्रह्मा की सभी करतूत सुनाई।

हे परीक्षित ! एक वर्ष बीतने से पाँच छः दिन पूर्व ब्रह्मा जी पुनः प्रगट हुये। ब्रह्माजी के लिये तो यह काल उनकी आयु परिमाण से एक "त्रुटि" अर्थात् एक क्षण के बराबर था। जब ब्रह्माजी ने ब्रज में आकर देखा कि जैसे बछड़े ग्वाले मैंने छिपाये थे वैसे तो वे चर रहे हैं, और ग्वाले सब चरा रहे हैं। तब वे फिर उस गुफा में गये तो उन्होंने देखा कि सभी ग्वाल बाल बछड़े अचेत होकर गुफा में सो रहे हैं। तब तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपनी ज्ञान दृष्टि से विचारने लगे। अब उन की समझ में यह नहीं आया कि असली ग्वाल बाल तथा बछड़े कौन से हैं और बनावटी कौन से हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की माया से मुग्ध हो गये। ब्रह्माजी भगवान् को ठगने चले थे, स्वयं ठग गये।

हे परीक्षित् ! जब ब्रह्माजी इस प्रकार का विचार कर ही रहे थे तभी उन्होंने देखा कि सभी ग्वाल बाल तथा बछड़े कृष्ण मय हैं उनकी चार भुजायें श्याम वर्ण पीताम्बर धारण किये हुये शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए शीश पर मुकुट कण्ठ में कौस्तुभ मणी बाजूबन्द कुण्डल बनमाला आदि सभी दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत हैं। उनके अङ्ग प्रति अङ्गों की शोभा अनौखी है। ब्रह्माजी ने देखा कि दूसरे ब्रह्मा शङ्कर इन्द्रादि देवता से लेकर चराचर जगत उनकी पूजा तथा आराधना कर रहे हैं। अणिमा लघिमा आदि सिद्धियाँ मूर्तिमान होकर उनके निकट विराजमान हैं। उनकी सम्पूर्ण विभूतियाँ तथा सम्पूर्ण तत्व उनकी सेवा कर रहे हैं। ब्रह्मा जी ने देखा कि सभी चराचर जगत कृष्ण मय ही कृष्ण मय है।

यह आश्चर्य मय घटना देखकर ब्रह्माजी स्तब्ध से रह गये। उन का तेज निस्तेज हो गया। वे एक कठपुतली की भाँति निश्चेष्ट हो गये यद्यपि ब्रह्माजी ज्ञानमय तथा जगत के उत्पत्ति करता और सबके पूर्वज हैं किन्तु वे भी उनकी माया में मोहित हो गये। उनके नेत्र बन्द हो गये जब उन्होंने अपने नेत्र खोले तो उन्हें यह जगत तथा अपना शरीर दृष्टि आया। उन्होंने वृन्दावन धाम की निराली दिव्य छटा का दर्शन किया।

Dr. Ramdev Tripathi, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् की उस लीला भूमि में क्रोध तृष्णा आदि किसी प्रकार का दोष नहीं है। वैर भाव का वहाँ प्रवेश नहीं है ऐसे उत्तम दिव्य धाम में परब्रह्म अपनी नाट्य लीला कर रहे हैं। ब्रह्माजी ने देखा कि वे ही कृष्ण हाथ में दधि भात का कौर लिये बछड़ों को ढूँढ़ रहे हैं। ब्रह्माजी तत्काल अपने बाहन हंस से कूद पड़े और पृथ्वी पर लेटकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपने जगमगाते हुये मुकुट के अग्रभाग से उनके चरण स्पर्श किए। आँसुओं की धारा से उनके चरण भिगो दिये। उनके चरणों में बार बार उठ २ कर साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे। तब अपने नेत्र पोंछकर विनय भाव से सिर झुकाकर उनके सम्मुख खड़े हो गये। जगत के नियन्ता भगवान् के दर्शन करके वे काँपने लगे।

दोहा—ठाढ़े स्तुति तप करें, परब्रह्म चित लाय।
कृष्णरूप मय सब लखे, ग्वाले बछड़ा गाय॥

—०—

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

ब्रह्माजी द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति—

दोहा—कीन्ह विनय बहु भाँति तब, परयौ चरन अकुलाय।
छमहु नाथ में दास तुम, माया परि न लखाय॥

श्री ब्रह्माजी स्तुति करने लगे—हे प्रभो! आप ही एक मात्र जगत के कर्त्ता, धर्त्ता तथा हर्त्ता हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपका यह श्याम शरीर, मोर पंख का मुकुट तथा झिलमिलाते हुए कुण्डल, किंकिण, कंगन, बाजूबन्द तथा बनमाला अति सुन्दर हैं। नन्हें नन्हें हाथों से दही भात का कौर और भी अति शोभायमान है। साथ ही कमर में खुरसी हुई बंशी बगल में लकुटी तथा सींग अति शोभायमान हैं। मैं आपके इस गोपाल स्वरूप को बारम्बार नमस्कार करता हूँ। आपका यह विग्रह दिव्य अप्राकृतिक शुद्ध एक सत्वमय है। मैं तथा शङ्कर और अन्य योगीजन भी समाधि द्वारा आपके इस श्री विग्रह की महिमा नहीं जान सके हैं। फिर अन्य

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तो आपके इस श्री विग्रह की महिमा जान ही कैसे सकते हैं। हे प्रभो ! जो सत्पुरुष ज्ञान के पचड़े में न पड़कर आपकी शुद्ध भक्ति करते हैं, वे उस भक्ति के द्वारा तथा आपकी लीला कथाओं के श्रवण तथा कीर्त्तन करने से आपके स्वरूप को जान लेते हैं। आपकी भक्ति ही सब ज्ञानों का ज्ञान तथा कल्याण का श्रोत है। जो लोग भक्ति को त्याग कर ज्ञान के लिये कष्ट सहते हैं, उन्हें केवल कष्ट ही कष्ट हाथ लगता है।

हे परमात्मन् ! जब योगादि द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई तब बड़े २ योगियों ने भी भक्ति के द्वारा ही आपको प्राप्त किया है। आपके सगुण निर्गुण स्वरूप की महिमा अगम्य है। उसे कोई नहीं जान सकता। किन्तु शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्तजन आपके स्वयं प्रकाश, आत्मस्वरूप, निर्गुण स्वरूप को भली प्रकार जान लेते हैं। हे प्रभो ! आकाश के तारे, पृथ्वी के कण गिने जा सकते हैं, किन्तु आपके सगुण स्वरूप के असंख्य गुण नहीं गिने जा सकते हैं, आपका अवतार संसार के कल्याण के लिये ही हुआ है। जो पुरुष प्रारब्ध के भोगों को भोगता हुआ आपके चरणों में लगा रहता है, उसे आपकी भक्ति इसी भाँति प्राप्त हो जाती है, जैसे पुत्र को पिता की सम्पत्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है।

हे प्रभो ! मैं बड़ा कुटिल हूँ मैं आपको भी न पहिचान सका। आप मायावियों के भी बड़े मायावी हैं। मैं आपके माया चक्र को न समझ सका मैंने अपनी माया का प्रयोग आप पर किया। मैं तो आपके सामने आग की एक चिनगारी के समान हूँ। मेरी उत्पत्ति रजोगुण से है, आपकी उत्पत्ति सत्व गुण से है। मैं अपने को जगत का कर्त्ता मान बैठा हूँ। यह मेरा अज्ञान नहीं है तो और क्या है ? मैं अभागा इस माया के जाल में अन्धा हो रहा हूँ मैं तो आपका दास हूँ। महत्त आदि में उत्पन्न यह शरीर मेरा ब्रह्माण्ड है और आपके रोम रोम में ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं अतः मैं भी आपके शरीर में समाया हुआ हूँ। आपकी कोख में मेरा बास होने से मैं आपका पुत्र हूँ अतः मुझे पुत्र समझ कर मेरा अपराध क्षमा कीजिये। जिस प्रकार माता अपने बालक के अपराधों को क्षमा कर देती है। हे प्रभो ! प्रलय के पश्चात् आपकी नाभि से कमल

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उत्पन्न होता है, और उस कमल से मैं उत्पन्न होता हूँ, फिर बताइये मैं आपका पुत्र नहीं हूँ ? हे प्रभो ! आप (नार-जीव+अपण-स्थान) समस्त जीवों के आश्रय स्थान हैं। आपही जीवों के प्रवर्त्तक हैं, आप ही जीवों के जानने वाले हैं। आप सदापूर्ण रूप से रहते हैं। मैं आपको सौ वर्ष तक जल में खोजता रहा, किन्तु आपको न पा सका। अभी २ माता यशोदा ने आपके मुख में तीनों लोकों को देखा था। यह आपकी माया नहीं है तो क्या है ? आपकी माया से यह जगत जैसा बाहर प्रतीत होता है वैसा ही आपके उदर में प्रतीत होता है। आपने मुझे ही अपनी माया में फँसा लिया है। पहले आप एक थे फिर अनेक हो गये समस्त ब्रज की गाय, ग्वालों, वंशी रस्सी, बछड़ों आदि में आप ही प्रतीत होने लगे। आपके चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन होने लगा। हे प्रभो ! अब केवल आप ही आप शेष हैं। इस जगत में दृष्टि आने वाले समस्त पदार्थ प्राणी सब आप की माया है, जो नाशवान हैं, केवल सत्य तो आपही हैं। जो अज्ञान के कारण आपको नहीं पहिचानते हैं, उन्हें ही आप जीवरूप प्रतीत होते हैं। आपही ब्रह्मा, आपही विष्णु, आपही रुद्र हैं और आप ही इन तीनों के अधिष्ठाता हैं। आपही स्वयं सब कुछ हैं। आप अव्यक्त अजन्मा होने पर भी संसार के कल्याण के लिए व्यक्त होकर अनेक रूप धारण कर अवतार लेते हैं। कभी देवता, कभी मनुष्य, कभी पत्ती, आदि का रूप ग्रहण करते हैं। आप की लीला जानी नहीं जाती है। जब आप योगमाया का आश्रय लेकर अपनी लीला विस्तार करते हैं, तब कोई उसे नहीं जान सकता कि आपकी लीला कब, किस हेतु, कितनी होती है।

हे प्रभो ! आप ही सच्चिदानन्दघन स्वरूप हैं। आप ही एक मात्र सत्य हैं। आपही स्वयं प्रकाश हैं। आप अविनाशी तथा नित्य हैं। आप पूर्ण अमृत स्वरूप, एक हैं। हे जगत पिता ! बंधन तथा मोक्ष दोनों ही आपकी माया है। हे प्रभो ! आप अपनी ही आत्मा हैं, किन्तु आपको अज्ञानी जन पराया और अपने से अलग मानते हैं। जो शरीरादि पराये हैं उन की आत्मा मानते हैं। ऐसा मान कर अज्ञानी आपको अलग कहीं ढूँढ़ने लगते हैं। हे प्रभो ! आप तो सब के हृदय में ही विराजते हैं। इस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कारण संतजन आपके अतिरिक्त जो कुछ भी दृष्टि आता है, उसको नाशवान समझ कर उसका परित्याग कर देते हैं, और अपने भीतर आपको ही केवल ढूँढ़ते हैं। जब वे भक्तजन आपके चरणों का तनिक भी कृपा प्रसाद प्राप्त कर लेते हैं, फिर उन्हें नहीं छोड़ते हैं। वे अपनी सच्चिदानन्द-मयी कृपा के तत्व को प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञान वैराग्य द्वारा आपकी प्राप्ति अति कठिन है, केवल भक्ति ही आपकी प्राप्ति का सुगम साधन है। मेरी तो यही इच्छा है कि प्रभो! मेरा जन्म किसी भी योनि में हो किन्तु मैं आपका दासानुदास ही रहूँ। आपके चरण कमलों की सेवा ही करता हूँ। जिन परमात्मा को बड़े २ यज्ञ तृप्त नहीं कर सके हैं, उन्हें ब्रज की गाय तथा ग्वालिनें अपने बच्चों और बालकों के रूप में स्तनपान करा कर नित्य तृप्त करती हैं। वे धन्य हैं। उनका जीवन धन्य है, वे ब्रजवासी, गोप ग्वाल, नन्द, यशोदा धन्य हैं, जो नित्य भगवान् की सेवा करते हैं। उनके अङ्ग प्रत्यङ्गों का स्पर्श करती हैं, लाड़ लड़ाती हैं, दुलारती हैं। खिलाती हैं। प्रेम से भोजन कराती हैं। उन्हें सब प्रकार से संतुष्ट करती हैं इन ब्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा का कहाँ तक वर्णन करूँ। इन्हीं की कृपा से हमें भी दर्शन प्राप्त होगए। जब हम केवल आपके चरणों का ही स्पर्श करके धन्य धन्य हो जाते हैं, तब उन ब्रजवासियों का तो कहना ही क्या है, जो आपके सम्पूर्ण अङ्गों का स्पर्श करते हैं। हे प्रभो! आपके चरणों की धूलि को श्रुतियाँ भी अनादि काल से ढूँढ़ रही हैं। वह धूल आज मुझे प्राप्त होगई है। ये ब्रजवासी भी आप ही हैं। अतः इनके चरणों की धूलि भी आपके ही चरणों की धूलि है।

हे प्रभो! मैं बड़े आश्चर्य में मोहित हो रहा हूँ कि आप इन ब्रजवासियों की सेवा के बदले में इन्हें क्या फल प्रदान करोगे। केवल इनकी सेवाओं के फल स्वरूप आपही इन्हें प्राप्त हुए हैं। किंतु आपको तो उन पापी अघासुर, बकासुर तथा पूतना आदि ने भी प्राप्त कर लिया है जो केवल रूप से ही राक्षस प्रतीत होते थे, और हृदय से अति पापी थे, किन्तु इन ब्रजवासियों ने तो आपके चरणों में सर्वस्व अर्पण कर दिया है इनकी सेवा से आप किस प्रकार उऋण हो सकेंगे। हे प्रभो! मैं आपकी शरण में

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हूँ। मेरा मोह नाश हो गया। अब मुझे अपने लोक में जाने की आज्ञा दीजिये। इतना कह कर ब्रह्मा ने उनकी तीन परिक्रमा की, और साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने लोक को चले गये।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् की माया से सारा जगत मोहित रहता है। उन ग्वाल बालों तथा बछड़ों को तो ब्रह्माजी ने पहले ही छोड़ दिया था। जब भगवान् श्रीकृष्ण लौटकर पुलिन पर आये, तब उन्हें वे ग्वाल बाल सब उसी भाँति भोजन करते हुये पाये। वे बोले आओ भाई! अभी हमने तुम्हारे बिना एक कौर भी भोजन नहीं खाया है। आओ यहाँ बैठो, भोजन करो। तब भगवान् ने इन ग्वाल बालों के साथ बैठकर भोजन किया। फिर अपनी अपनी गायों तथा बछड़ों को लेकर श्याम सुन्दर को तथा बलराम जी को आगे करके सब ब्रज की ओर चल दिये। कभी नाचते, कभी गाते, कभी परस्पर खेल कूद करते चलते।

जब श्याम, राम, ग्वाल बालों तथा गौओं के साथ ब्रज के निकट पहुँचे, तब बंसुरी की टेर सुनकर सभी, ब्रजबालायें जो दिन भर के बिरह के कारण दुःखी हो रहीं थीं, उठ धाईं। मार्ग में दोनों ओर श्यामसुन्दर के दर्शनों के लिये खड़ी हो गईं। जब श्यामसुन्दर की कृपा दृष्टि उनपर पड़ी, दृष्टि से दृष्टि मिली, तब अपनी दृष्टि से उनके हृदय शीतल करके उनकी बिरह व्यथा हरि ने हरली। और बृन्दावन में प्रवेश किया। हे परीक्षित! जब सभी ग्वाल बाल अपने अपने घर पहुँचे, तभी उन्होंने अघासुर बधकी लीला अपने अपने घर कही। जो तुमने पूछा था कि श्रीकृष्णचन्द्र की पाँचवें वर्ष की लीला छटवें वर्ष में कैसे कही, उसका रहस्य मैंने तुम्हें बता दिया। तब राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूसरे के पुत्र होते हुए भी ब्रज के गोपी गोप अपने पुत्रों की अपेक्षा उनसे अधिक प्रेम क्यों करते थे जितना वे अपने पुत्रों से भी नहीं करते थे इसका क्या कारण है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! संसार में समस्त प्राणी जितना प्रेम अपनी आत्मा से करते हैं उतना अन्य किसी से नहीं करते हैं। पुत्र, धन, स्त्री, आदि से तो वे इस कारण प्रेम करते हैं कि वे सब अपनी आत्मा

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को प्यारे लगते हैं। इसीलिए हे परीक्षित ! सभी जीव धारियों को जितना अपनी आत्मा अपने शरीर से प्रेम है, उतना पुत्र, स्त्री, धन आदि सगे सम्बन्धियों से नहीं होता। जब ज्ञानी मनुष्य यह जान लेते हैं कि मैं आत्मा हूँ शरीर नहीं हूँ तब वे इस शरीर से भी प्रेम नहीं करते। इसलिए यह प्रमाण सिद्ध है कि समस्त प्राणी अपनी आत्मा अर्थात् 'आप' से जितना प्रेम करते हैं उतना अन्य किसी से नहीं करते हैं। उस आत्मा के लिए सारे जगत से प्रेम करते हैं। हे परीक्षित ! यह तो तुम्हें पता ही है कि श्रीकृष्णचन्द्र सब की आत्मा हैं, इसी कारण सभी अपने पुत्र, स्त्री, धन गृह, सम्बन्धियों आदि से बढ़कर उनसे प्रेम करते थे। वे तो अपनी योगमाया के द्वारा ही हमारा शरीर धारण किए हुए थे। किन्तु वास्तव में वे सर्वात्मा ही थे।

हे परीक्षित ! जो इस कथा को तथा ब्रह्माजी द्वारा की गई स्तुति को नित्य सुनता है तथा पाठ करता है, उस मनुष्य की सम्पूर्ण अभिलाषायें पूर्ण हो जाती हैं।

—:०:—

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

दो०—बलदाऊ ने वध कियौ, धेनुकासुर कौ जाय।
ग्वाल बाल प्रमुदित भये, मधुर मधुर फल खाय ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! जब बलराम व श्रीकृष्णचन्द्र ने छठवें वर्ष में प्रवेश किया तब उन्हें गौ चराने की अनुमति दे दी गई। वे प्रसन्न होकर ग्वाल बालों के साथ गौऐं चराने लगे। उनके चरणों से वृन्दावन की भूमि पवित्र होने लगी।

एक दिन की बात है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम ने उस वृन्दावन में प्रवेश किया जिसमें बड़े बड़े सुन्दर व मीठे फलों से लदे हुए वृक्ष थे। गौओं के चरने के लिये हरी हरी घास थी। बन की लताएँ तथा बेलें, पुष्पों से लद रहीं थीं। भौंरा मधुर ध्वनि से उनके गुण गान कर रहे थे। आगे आगे राम और कृष्ण तथा पीछे पीछे उनके ग्वालबाल गायों को लेकर अनेक प्रकार की बाल सुलभ क्रीड़ा करते हुए बन में घूमने लगे। वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध समीर बह रहा था। स्वच्छ व निर्मल जल

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के सरोवर भर रहे थे, उनमें कमल दल खिल रहे थे। उस मनोहर बन को देख कर पूर्ण काम, कामना रहित भगवान् के मन में भी क्रीड़ा करने की कामना उत्पन्न होगई है, उन्होंने मन में ऐसा संकल्प करके बन बिहार की सोची।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले–हे भ्राताजी! आपके चरणों में यों तो इन्द्रादि बड़े बड़े सभी देवता सिर झुकाते हैं, किन्तु ये बन के वृक्ष भी फलों से लद कर आपके चरणों में अपना सिर झुकाकर फल, पुष्प अर्पण कर रहे हैं। ये भी बड़े बड़े तपस्वी तथा योगीजन हैं। इन्होंने अनेक जन्म जन्मान्तरों की तपस्या के फलस्वरूप बृन्दावन धाम में वृक्ष योनि प्राप्त की है, जिससे ये आपको फल स्वरूप अपनी भेंट देकर आपकी सेवा कर सके। हे भ्राताजी! आप अपने दिव्य रूप को छिपा कर ग्वाल बालों के साथ गोपाल लीला करते हैं, किन्तु फिर भी ये योगीजन तथा तपस्वी मुनिजन अपने आराध्य देव को पहिचान कर भौंरों के रूप में आप के गुण गान कर रहे हैं। और तो देखियेकि ये मोर भी आपको अपने घर (बन) में आया हुआ जान कर आपके स्वागत के लिए नृत्य कर रहे हैं, मीठे स्वरों से बोल रहे हैं। आपके दर्शनों को आ रहे हैं। वे हिरन हिरनियाँ गोपियों की भाँति आपके स्वागत के लिए बन में नित्य लालायित रहती हैं। ये अपनी प्रेम भरी चितवन से आपकी ओर निहार रही हैं। वे बनवासी पशु, पक्षी, मृग, मोर, कोयल आदि कितने धन्य हैं, तथा पुण्यवान् हैं, जो अतिथि सत्कार से ओत प्रोत होकर आपका स्वागत कर रहे हैं। भेंट की सामिग्रियों से आपकी पूजा कर रहे हैं। यह ब्रजराज तथा उस पर उगी हुई घास आपके चरणों का स्पर्श करके पवित्र हो रही हैं। ये लता बेलें तथा झाड़ियाँ आपके कोमल करों का स्पर्श प्राप्त करके अपने को सौभाग्यशाली मान रही हैं। ब्रज की नदी, पर्वत, पशु, पक्षी, ब्रज की गोपियाँ, गोपग्वाल सभी बड़े तपस्वी तथा आपके वे भक्तजन हैं, जिन्होंने आपकी प्राप्ति के लिये पूर्व जन्मों में बड़ी घोर तपस्यायें की हैं। आपने अपने स्पर्श से उन्हें कृत कृत्य कर दिया। जिस अङ्ग स्पर्श के लिये स्वयं लक्ष्मी जी तरसती रहती हैं, उस अङ्ग स्पर्श को ब्रज की गोपियाँ

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आपको गोद में उठा उठा कर अपनी छाती से लगा कर लाड़ लड़ाकर प्रसन्न करती हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! वृन्दावन धाम की शोभा देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अति प्रसन्न हुए। वे अपने सखाओं के साथ गोवर्धन की तलेटी, यमुनातट आदि पर गौयें चराते हुये आनन्द मग्न होकर बन विहार करने लगे। ग्वाल बाल अलग ही श्रीकृष्ण के प्रेमानन्द में मग्न थे। ग्वाल बाल बन पुष्पों की माला बना बना कर बलराम और श्रीकृष्ण-चन्द्र को पहिनाते तथा स्वयं पहिनते। उन्हें मीठे मीठे फल ला लाकर, खिलाते, तब स्वयं खाते, श्रीकृष्णचन्द्र कभी २ कोयल की बोली बोलते, कभी राजहंसों की बोली बोलते, कभी मोरों की गुंजार में अपनी गुंजार मिलाते, कभी बन्दर भालू आदि की बोली बोलते, कभी ठुमुक ठुमुक नाच कर ग्वाल बालों को प्रसन्न करते। जब बलरामजी खेलते २ थक जाते तब ग्वाल बालों की गोद में शिर रख कर सो जाते। श्रीकृष्णचन्द्र उनके पैर दाबते। ग्वाल बाल पङ्खा झलते। इस भाँति बड़े भ्राता की थकान दूर करते। जब ग्वाल बाल परस्पर मल्लयुद्ध करते तब राम श्याम दोनों भाई एक दूसरे के कन्धों पर हाथ रखकर उनकी कुश्ती देखते और "वाह" "वाह" की ध्वनि करते। कभी जगत के नियंता अजेय भगवान् ग्वाल बालों से कुश्ती लड़ते, कभी ग्वाल बालों की गोद में अपना सिर रखकर किसी वृक्ष की छाया में लोट जाते, ग्वाल बाल उनके चरण दाब के उनकी सेवा करते। कोई कोई उनकी पिछली लीलाओं का ही गुणगान करने लगता। इस भाँति विश्वपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने बनाये हुए विश्व के साथ स्वयं क्रीड़ा, बन बिहार, तथा बाल लीला नित नई करते रहते, यद्यपि वे अपने एश्वर्य को छिपाते रहते, किन्तु फिर भी कभी २ प्रगट हो ही जाता था।

हे परीक्षित ! बलराम तथा श्रीकृष्णचन्द्र के सखाओं में मुख्य सखा थे श्रीदामा। एक दिन श्रीदामा व अन्य सखाओं ने राम तथा श्याम दोनों से कहा—हे श्यामसुन्दर और बलराम भैया ! यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक तालबन है, जिसकी शोभा अति निराली है, वहाँ ताल के

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

वृक्ष सदा मीठे मीठे फलों से लदे रहते हैं। वे पके पके फल गिर गिर कर पृथ्वी को ढके रहते हैं। वहाँ एक धेनुकासुर नाम का राक्षस रहता है, वह उस बनकी रखवाली करता है। उसके साथी अनेक राक्षस भी उसके साथ रहते हैं। उन राक्षसों के भय से कोई भी मनुष्य उस बन में नहीं आता है और न उन फलों का कोई भोग ही करता है। उस बन के फल इतने मीठे तथा सुगन्धित हैं, कि ऐसे फल हमने कभी नहीं खाये? हे श्याम भैया! हमारा मन उन फलों को खानेको बहुत ललचा रहा है। हे बलभैया! हमें तुम उन फलों को अवश्य खिलाओ, हमारी बड़ी अभिलाषा है। आप दोनों उस बन को अवश्य देखें।

अपने सखाओं की ऐसी उत्कण्ठा जानकर सब की अभिलाषा पूर्ण करने वाले श्यामसुन्दर ने उनकी बात स्वीकार कर ली, और बलराम के साथ उस बन की ओर चल दिये। उस बन में पहुँच कर बलराम जी ने ताल के वृक्षों को अपनी बलवान् भुजाओं से इस भाँति हिलाया कि जिस भाँति कोई हाथी का बच्चा वृक्षों को हिलाता है। उस वृक्ष से फल फर फर कर नीचे गिरने लगे, और ग्वाल बाल मीठे मीठे फल खाने लगे। जब फलों की लदलदाहट उस गधे के रूप वाले दैत्य ने सुनी तब वह शीघ्र दौड़ कर वहाँ आया और आते ही अपनी दुलत्ती बलरामजी की छाती में जमाई। फिर वह दैत्य रेंकता हुआ पीछे हट गया, और दौड़ कर फिर दुबारा दुलत्ती मारने को उद्यत हुआ। जैसे ही उसने अपने पिछले पैर दुलत्ती मारने को उठाये, वैसे ही बलराम जी ने अपने एक ही हाथ से उसके दोनों पैर पकड़ कर उसे आकाश में घुमाया, और घुमा कर ताल के एक विशाल वृक्ष से दे मारा। वृक्ष से मारते ही उस दैत्य के प्राणपखेरू उड़ गये। उसकी चोट से वह ताल वृक्ष तड़ा तड़ कर टूट गया। उसके गिरने से उसके निकट के अनेक वृक्ष गिर गये। जब उस दैत्य के साथियों ने वृक्षों की तड़तड़ाहट सुनी तब वे दौड़कर श्याम तथा बलराम पर टूट पड़े, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम ने उन सब को उसी भाँति पछाड़ पछाड़ कर मार डाला, जिस भाँति धेनुकासुर को मारा था। वह पृथ्वी उन दैत्यों के शव से तथा गिरे हुये वृक्षों तथा उनके फलों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

फट गई। धेनुकासुर तथा उसके साथी दैत्यों के मर जाने से वह बन निर्भय हो गया। मनुष्य, पशु, पक्षी सभी निर्भयता से उसका उपयोग करने लगे।

उस धेनुकासुर दैत्य को मार कर राम, श्याम दोनों ग्वाल बालों को साथ लेकर ब्रज में आये। ग्वालबाल झोरी भर भर कर मीठे मीठे फल पुष्प आदि अपने साथ लाये, और ब्रज में बाँटे। सब ने अपने अपने झुण्डों की गायों को एकत्र करके अपने अपने सींग बाँसुरी आदि बजाये। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सिर पर मोर पंख का मुकुट शोभायमान था उनके मुख पर पसीने की बूदें शोभा पा रही थीं, उन पर भी गौओं के खुरों से उड़ उड़ कर ब्रज रज उनके मुकुट तथा मुख पर और भी अधिक शोभा पा रही थी। उनके केशों में बन पुष्प गुथे हुए थे। मनोहर मुस्कान तथा मधुर मुरली की तान सुन सुन कर ब्रज बालाओं के हृदय उनके हाथों से निकले पड़ रहे थे। वे दिन भर की विरह ज्वाला को शान्त करने के लिए अपने प्यारे श्यामसुन्दर के दर्शनों के लिये अपने अपने घरों से निकल निकल कर मार्ग में खड़ी हो गईं। उनके नेत्र भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए तड़प रहे थे। उनके दर्शन करके भी नेत्रों की तड़फन शान्त न हुई तब नेत्र अपलक होकर एक टक उनके मुखारविंद को अतृप्त होकर निहारते ही रहे। जब भगवान् ने अपनी मधुर मुस्कान से सब का स्वागत किया तब प्रेम भरी चितवन का सत्कार स्वीकार करके ब्रजबालाओं के नेत्र प्रसन्न हुए।

घनश्याम तथा बलराम जब घर पहुँचे, तब माता यशोदा ने प्रेम से दोनों को गोद में उठा लिया उनका शरीर पोंछकर गर्म जल और शीतल जल से स्नान कराया, तत्पश्चात् स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर उनकी इच्छानुसार उन्हें भोजन कराया। फिर श्याम तथा राम बड़े आराम से सुन्दर शैया पर सो गये। इसी भाँति राम, श्याम दोनों ब्रज में नित्य अनेकों लीलायें करते रहते थे।

एक दिन की बात है कि श्यामसुन्दर अपने ग्वालवालों को साथ लेकर गोऐं चराते हुए यमुना तट पर पहुँचे। उस दिन बलदाऊ उन के

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

साथ नहीं गये। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी गायें तथा ग्वाल बाल जल की प्यास से अति व्याकुल हो उठे। उन्होंने जाकर शीघ्रता से यमुना का विषैला जल पी लिया। उस जल के पीते ही सब गोप ग्वाल तथा गौयें प्राणहीन होकर वहीं यमुना के पुलिन पर गिर गये। उनकी यह दशा देख कर सब के जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से सब को जीवित कर दिया। जिनके रक्षक स्वयं भगवान् हैं उन्हें मृत्यु से भी क्या भय? वे सबके सब उठकर खड़े हो गये। उन्होंने जान लिया कि हमने विषैला जल पी लिया था इसके कारण हमारी मृत्यु हो गई थी किन्तु हमारे रक्षक श्री श्यामसुन्दर ने ही हमें जीवन दान दिया है।

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

❀ कालिय नाग का नाथना ❀

दो०—काली विषधर अति महा, उगले मुख से आग।
दुष्ट दलन घनश्याम ने, पल में नाथ्यौ नाग॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि यमुना जी का पवित्र जल कालिय नाग के द्वारा विषैला हो गया है तब उन्होंने उस नाग को यमुना से निकाल देने का विचार किया। यमुना जी में कालिय नाग ने कुण्ड बना लिया था। उस कुण्ड का जल उस नाग के विष की गर्मी से खौलता रहता और उसी विषैले जल से यमुना जी का सारा जल विषैला हो गया था। उस जल को स्पर्श करके वायु भी विषैली हो गई थी। इसके कारण वहाँ के घास पात वृक्ष, पशु पक्षी आदि सभी मर जाते थे। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि इस विषधर नाग के विष से मेरे बिहार का स्थान यमुना जी का जल विषैला हो गया है तब वे अपनी कमर का फेंटा कस कर कदम्ब के ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये और वहाँ से उस विषैले जल में कूद पड़े। वह जल विष के कारण लाल हो रहा था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस जल में तैरने लगे। उस कालीयदह का जल इधर उधर चारसौ हाथ तक फैला हुआ था। जब उस कालिय ने उस जल की खड़खड़ाहट सुनी तो वह चिढ़ कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के सामने आया। उसने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उस साँवले सलोने बालक को देख कर अपनी आँखें उनके सुकुमार शरीर पर लगा दीं उसने देखा कि उस बालक के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है। पीताम्बर पहने है, मन्द २ मुस्कान और शरीर अति कोमल है किंतु वह बालक निडर होकर विषैले जल में आनन्द से जल क्रीड़ा कर रहा है। यह देखकर उस क्रोधी नाग ने उनके शरीर को नागपाश में जकड़ लिया। यह दृश्य देख कर तट पर खड़े हुये ग्वालबाल बेहाल हो उठे और दुःख के कारण मूर्छित होकर वहीं पर गिर गए। उधर ब्रज में अनेक प्रकार के भयङ्कर उत्पात होने लगे। इन उत्पातों को देखकर नन्द बाबा, यशोदा, गोपी, गोप ग्वालों को बड़ी चिंता हुई। और किसी दुर्घटना की सम्भावना करने लगे। जब उन्हें यह पता चला कि आज बलरामजी के बिना अकेले श्रीकृष्ण गाय चराने गये हैं। तब तो वे और भी व्याकुल हुए वे सोचने लगे कि आज अवश्य ही श्रीकृष्ण की मृत्यु हो गई है। वे श्रीकृष्ण तो उनके प्राण, इन्द्रिय, धन सर्वस्व थे इसलिये सभी ब्रजवासी अपने अपने घरों को छोड़ बलराम जी को साथ ले बाहर निकल पड़े। बलरामजी ने जब ब्रजवासियों की इतनी आतुरता और कातरता देखी तब वे हँस पड़े किन्तु बोले कुछ नहीं क्योंकि वे जानते थे कि श्रीकृष्णचन्द्र को मारने वाला इस जगत में कोई भी नहीं है। सभी ब्रजवासी अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र को उनके चरण चिन्हों का आश्रय लेकर जिसमें गौ, कमल, अंकुश, ध्वजा आदि के चिन्ह हैं यमुना के तट पर पहुँचे जब उन्होंने देखा कि कालीयदह में कालिय नाग ने उनके शरीर को जकड़ लिया है और श्रीकृष्ण निश्चेष्ट हो रहे हैं। तथा ग्वाल बाल सभी मूर्छित पड़े हैं। गौयें तथा बछड़े डकरा रहे हैं। तब वे गोप भी अति व्याकुल होकर मूर्छित हो गए। हे परीक्षित! यह कहने की बात नहीं कि उन गोपियों का भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में कितना प्रेम था। वे नित्य प्रति उन्हीं के दर्शनों की प्यासी रहती थीं। जब उन प्रेम की मूर्ति गोपियों ने देखा कि घनश्याम को विषधर नागने जकड़ लिया है तब उनके हृदय के दुख का अनुमान कोई किस प्रकार कर सकता है। उन्हें अपने प्रियतम के सिवाय सारा विश्व सूना दृष्टि आने लगा। यशोदा माता

CC-0. Rare Collection. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की क्या दशा हुई। इसका वर्णन मैं नहीं कर सकता हूँ। वे कालिदह में कूदने को प्रस्तुत थीं। नन्द भी कालीदह में कूदे पड़ रहे थे। किन्तु उन के प्रेमी गोप तथा गोपियों ने उन्हें बल पूर्वक रोक रक्खा था। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले भगवान् बलराम जी भी उन सब को समझा बुझा कर बलपूर्वक रोक रहे थे। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने व्रज-वासियों को अपने दुःख में इस प्रकार व्याकुल देखा तब उन्होंने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उस नाग का फन्दा तत्काल छूट गया और उसका शरीर टूटने लगा। तब वह नाग अपने सम्पूर्ण फनों से फुसकारें मार मारकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर विष की चोट करने लगा। उसकी आँखें लाल थीं, और उसके मुख से विष की अग्नि निकल रही थी। वह अपनी जीभें निकाल निकाल कर उन पर चोट कर रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण पैंतरा बदल बदल कर उसकी चोट बचा रहे थे। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके फनों को दबा कर एक ऐसी उछाल मारी कि उन फनों पर सवार हो गये।

दो०—तीन लोक कौ बोझ ले, भारी भये मुरारि।
फन २ पर नाचत फिरें, दुष्ट दलन असुरारि॥

कालिय नाग के मस्तकों पर मणियाँ थीं। उन लाल मणियों के स्पर्श से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के तलुवों की लालिमाँ और भी अत्यधिक हो गईं। नृत्य, वाद्य तथा गान कलाओं के आदि प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र उस कालिय नाग के फनों पर कला पूर्ण नृत्य करने लगे। जिसको देख देख कर गन्धर्व, सिद्ध, अप्सरा आदि ने अपने मृदंग, ढोल, नगारे आदि से सुन्दर सुन्दर गीत गा कर उनके नृत्य की ताल को मिलाया, कालिय नाग के एक सौ एक सिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के बोझ से दबने लगे। उसके नथुनों से रक्त बहने लगा। उसकी शक्ति क्षीण हो गई। और वह बे होश हो गया। जब उसे चेत होता तब वह फिर विष उगलने लगता। किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने चरणों की ठोकरों से उसके सभी फणों को कुचल डाला। उसका जो सिर ऊपर को उठता उसी पर चढ़ जाते और उसी को कुचल कर नीचे झुका देते। इस प्रकार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् के दिव्य ताण्डव नृत्य से कालिय नाग के सब फन छिन्न भिन्न हो गये और वह उन से खून उगलने लगा। उस कालिय नाग की यह दशा देख उसकी पत्नियों को बड़ी चिन्ता हुई और उसको बचाने की इच्छा से भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में गईं।

नाग पत्नियाँ बोलीं—हे भगवान्! यह दुष्ट, क्रोधी और स्वभाव से ही मूढ़ नाग आपके प्रभाव को नहीं जानता है। आपने ऐसे दुष्टों को दण्ड देने के लिये ही अवतार लिया है। आपका शत्रु मित्र कोई भी नहीं है। आप जिस को दण्ड देते हैं वह उसके कल्याण के लिये ही देते हैं। आप दण्ड देकर उसके सारे पापों को नष्ट कर देते हैं। यदि यह नाग आपका ऐसा अपराधी न होता तो यह सर्प योनि ही क्यों प्राप्त करता। इसने पूर्व जन्म में अवश्य ही कोई घोर तपस्या की है जिस के प्रभाव से इसके मस्तक पर आपने चरण रक्खा है। आप के चरणों की धूल स्पर्श कर के इसके सारे पाप नष्ट हो गये हैं। इस चरण रज के लिये स्वयं लक्ष्मी जी तरसती रहती हैं और भक्त जन इस चरण रज के लिये तीनों लोकों का राज्य त्याग देते हैं। अणिमा आदि सिद्धियाँ भी वे नहीं चाहते और न ब्रह्म का पद ही चाहते हैं। उसी परम पवित्र चरण रज से आपने इस तमोगुणी नागराज को पवित्र किया है। हे भगवान्! हम आप को प्रणाम करती हैं। आप सब के हृदय में निराभिमान हैं आप की शक्ति तथा महिमा अनन्त है जिसको ब्रह्मा, शङ्कर इन्द्रादि देवता भी नहीं जान पाते हैं। फिर ये क्रोधी नाग कैसे आपको पहिचान सकता है। आप ही स्वयं वेद हैं आप शुद्ध, सत्यमय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध हैं। हम आपके इस चतुर्व्यूह स्वरूप को नमस्कार करती हैं।

हे प्रभो! आप निष्क्रय, अनादि, अनन्त तथा इस विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले हैं। आप अपने भक्तों को आनन्द देने तथा उनके साथ लीला करने के लिये ही इस ब्रज में आये हैं। हे भगवन्! अब यह सर्प मृत्यु को प्राप्त होने वाला है। कृपा कर हम अबलाओं को इस का प्राण दान कीजिये हम आप की दासी हैं। हमें सेवा के लिए आज्ञा दीजिये। श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! जब नाग पत्नियों ने

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की इस प्रकार स्तुति की तब उन्होंने उस नाग पर दया कर के उसे छोड़ दिया।

जब कालिया नाग को चेतना हुई तब उसने दीन भाव से भगवान् की इस प्रकार स्तुति की हे भगवन्! हम सर्प तो स्वभाव से ही दुष्ट, तमोगुणी, बड़े क्रोधी तथा बहुत काल तक बदला लेने वाले प्राणी हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि हमारा ऐसा स्वभाव है और वह त्यागना अति कठिन है। इसी स्वभाव के कारण मनुष्य अनेक प्रकार की बुरी योनियाँ भोगता है। किन्तु यह सब कुछ आपने ही बनाया है। आपने ही हम सर्पों को बनाया है। आप सर्वज्ञ और जगत् के स्वामी हैं। आप हमारे स्वभाव को बनाने वाले हैं फिर आप जैसा समझें वैसा हमें दण्ड दें।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! कालिय नाग की ऐसी दीन भरी बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे कालिय! तू अब अपने स्त्री पुत्र तथा जाति के सभी भाई बन्धुओं को लेकर शीघ्र ही यहाँ से किसी समुद्र में चला जा, जिससे मेरे बिहार स्थल इस यमुना का जल स्वच्छ और पवित्र होकर गौओं गोपों ग्वालों के पीने योग्य बन जावे। जो मनुष्य मेरी इस कथा का प्रातः और सायंकाल स्मरण करेंगे उन्हें कभी सर्प का भय नहीं होगा। इस कालियदह के जल में जो स्नान करके देवता तथा पितरों का तर्पण करेंगे तथा मेरी पूजा करेंगे वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जावेंगे। तू गरुड़ के भय से रमणक द्वीप त्याग कर यहाँ आया था किंतु अब तुझे गरुड़ का भय नहीं रहा है क्योंकि तेरे सिर पर मेरे चरण चिन्ह हैं अब तुझे गरुड़ नहीं खा सकता।

श्रीशुकदेवजी बोले-भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा पाकर वह कालिय नाग अति प्रसन्न हुआ और उसने अपनी पत्नियों सहित दिव्य वस्त्र, पुष्प, माला, बहुमूल्य रत्न, गन्ध, चन्दन आदि से उन गरुड़ध्वज भगवान् की पूजा की और उनकी परिक्रमा कर के वह अपनी पत्नियों सहित रमणीक द्वीप को चला गया। उस के जाने से जमुना का जल अमृत के समान मधुर व विष रहित हो गया।

Digitized by Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

ब्रजवासियों की दावानल से रक्षा—

दो०—ब्रजवासी व्याकुल भये, लखि वन अनल महान।
श्री कृष्ण ने तुरत ही, पीयौ अम्बु समान ॥

राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन्! कालिय नाग रमणीक द्वीप छोड़ कर क्यों इस यमुना दह में आ बसा था? इसका कारण समझाकर कहिये।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! विनता के पुत्र गरुड़ जी की तथा कद्रु के पुत्र सर्पों की सदा से शत्रुता चली आ रही है। गरुड़ जी इन सर्पों को भक्षण कर जाया करते थे। एक बार सब सर्पों ने मिल कर यह तय किया कि गरुड़ जी को एक सर्प अमावस्या के दिन अमुक वृक्ष के नीचे भक्षण के लिए पहुँच जाया करेगा। इस बात को गरुड़ जी ने भी स्वीकार कर लिया। किन्तु कद्रु के पुत्र इस कालिया ने इस बात को अस्वीकार करके उनके भक्षण सर्पों को भी खाने लगा। जब गरुड़ जी को इस बात का पता चला तब उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने सुनहले पञ्जों से उस पर आक्रमण किया। वह कालिय भी अपने एक सौ एक फन फैलाकर उन से युद्ध करने लगा। किन्तु अनन्त बल शाली भगवान् पार्षद गरुड़ का वह विचारा क्या बिगाड़ सकता था। उसने उन्हें अपने दाँतों से डस लिया यही उसका एक मात्र अस्त्र था। गरुड़ जी को बड़ा क्रोध आया उन्होंने अपने पंजों से उसे घायलकर दिया। वह भाग कर गरुड़ के भय से इस कुण्ड में आ बसा। इस कुण्ड में गरुड़जी नहीं आ सकते थे। उन्हें सौभरि ऋषि ने शाप दे दिया था। क्योंकि एक दिन गरुड़जी ने उस कुण्ड से एक मत्स्यराज को खा लिया था। यह देख कर जल जन्तु सब व्याकुल हो उठे। तब सौभरि ऋषि ने गरुड़ को शाप दे दिया कि यदि तुम फिर यहाँ के किसी भी जल जीव को खाओगे तो तुम शीघ्र मर जाओगे। इसी शाप के कारण वह गरुड़ वहाँ नहीं जा सकते थे। इस शाप का पता उस कालिया नाग को था इसी कारण वह वहाँ उस यमुना के कुण्ड में जाकर छिप गया था। कुण्ड अति गहरा होने के कारण उस में किसी मनुष्य का प्रवेश नहीं होता था। केवल यह कालिया नाग ही उस में रहता था।

CC-0. Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस कालिय नाग को वहाँ से भगा कर जब जल से बाहर निकले तब उनकी शोभा अति अवर्णीय थी उनकी दिव्य माला, वस्त्राभूषण अति सुन्दर थे। उनको जल में बाहर निकलते देख सभी गोप ग्वाले उन्हें कण्ठ से लगाने को झपटे। नन्दबाबा ने अपने प्यारे पुत्र को कण्ठ से लगाया। उधर यशोदा रानी ने अपने पुत्र को छाती से लगा कर प्रेमाश्रु बहाये। बलराम जी उनके प्रभाव को भली प्रकार जानते थे। वे प्रसन्न होकर उनसे मिले। तब सभी गोप ग्वाले, नन्द, उपनन्द, यशोदा, रोहिणी आदि सभी ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मानो शरीर में प्राण लौट कर आ गये हों। काल के गाल से बच कर उनका लाड़िला लाल आ गया। इसी कारण सभी गोप तथा ब्राह्मण नन्द जी से बोले कि हे नन्द जी! आपका पुत्र उस महा विषधर कालिय नाग से बच कर आ गया है। अब ब्राह्मणों को दान देकर उन्हें संतुष्ट करो। नन्द जी यह सुनकर अति प्रसन्न हुए और उसी क्षण उन्होंने बहुत सा स्वर्ण तथा गाय पुण्य कीं।

हे परीक्षित! सभी ब्रजवासी उस दिन अति दुखी तन छीन मन मलीन रहे और जगत् के प्राण श्रीकृष्ण के बिना उनके प्राण निकल गये थे। अतः वे अति थक गये और उस दिन वहीं यमुना के पुलिन पर रात्रि समाप्त करने का विचार किया। जब सब रात्रि में सो रहे थे। उस समय गर्मी का समय था। वन के वृक्ष पत्ते आदि सूख गये थे। अतः उनमें दावानल ने प्रवेश कर दिया। अब वह अग्नि सारे ब्रज बन को जलाती हुई उन ब्रज वासियों को जलाने के लिये घेर लिया। तब सब ब्रजवासी अति व्याकुल होकर श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी की शरण में गये और बोले हे श्यामसुन्दर! तुम्हारा बल अनन्त है तुम हमारी रक्षा करो। हे बलदाऊ जी! तुम दोनों ही हमें इस प्राणघातिनी अग्नि से बचाने में समर्थ हो ऐसा कह कर सभी गोप गोपियाँ हा हा कार करने लगीं। जब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने यह देखा कि सभी ब्रजवासी अति व्याकुल हैं, तब उन्होंने शीघ्र ही उस अग्नि को पी लिया। इस आश्चर्यमयी घटना को देखकर सभी ब्रजवासी अति चकित हुए। किन्तु वे तो उस अग्नि के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भी अग्नि थे उनके लिये ऐसा करना कौनसी आश्चर्य की बात थी। भगवान् अनन्त हैं। वे ही सबको बनाने वाले हैं। अग्नि भी उन्हीं से उत्पन्न हुई है। अपनी उत्पन्न अग्नि को उन्होंने पी लिया।

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

प्रलम्बासुर का बध

दो०—ग्वालबाल सङ्ग असुर इक, खेलन लाग्यौ आय।
दैत्य प्रलंबसुर जानि के, हन्यो राम ने ताय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! दूसरे दिन प्रातः काल भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने सब गोप, नन्द, उपनन्द आदि के साथ ब्रज में प्रवेश किया। उनके साथी सभी गोप ग्वाल उनके यश का गान करते जाते थे। उस काल ग्रीष्म ऋतु थी। उसके ताप से सारा संसार जलने लगता है किंतु ब्रज में यह बात नहीं थी। वहाँ सदा सर्वदा बसन्त ऋतु रहती थी। क्योंकि वहाँ भगवान् का निवास स्थान होने से वह उनका नित्यधाम (गोलोक धाम) था। वृन्दावन धाम में सदा शीतलमन्द सुगन्ध समीर बहता रहता था। सूर्यदेव अपनी प्रचण्ड गर्मी वहाँ नहीं फैलाते थे। मधुर तथा शीतल जल के झरने झरते रहते थे। यमुना का जल तटवर्ती मार्ग को सदा हरा भरा रखता था। उसके पुलिन की बालू भीगी रहती थी जिसके कारण उससे स्पर्श करके वायु सदा ठण्डी चलती थी। चारों ओर हरी हरी घास का मखमली बिछौना बिछा रहता था। उन पर गौएँ गोप ग्वाल भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र तथा बलरामजी के साथ विहार करते थे। पशु, पक्षी, मृग आदि सभी आनन्द से क्रीड़ा करते थे। वृक्ष सदा फल देते रहते थे। बेलों लताओं पर पुष्प लदे रहते थे। जिधर देखिये उधर सुन्दरता ही सुन्दरता फूटी पड़ती थी। कोयलों की कुहू-कुहू, मोरों का नाच, चातक पपीहा की पीहू पीहू, झींगुरों की झन झन की ध्वनि सदा होती रहती थी। ऐसे सुन्दर बन में राम व श्याम दोनों अपने सखाओं तथा गौओं को साथ लेकर बिचरते रहते थे। बादल सदा उन पर छाया करते रहते थे। श्रीकृष्णचन्द्र जी का श्याम रङ्ग तथा बलरामजी का गोरा रङ्ग उन ग्वाल बालों के मध्य में अति शोभायमान

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लगता था। उन पर बनमाला, घुँघुची की माला सोने के कँगन, बाजूबन्द व कण्ठा अति रुचते थे। माथे पर मोरपंख का मुकुट घुँघराली अलकें और भी अधिक शोभा बढ़ा रही थीं। हाथ में मुरली कमर में पीत रंग का फेंटा व पीताम्बर शोभायमान था। हे परीक्षित् ! ऐसे त्रिलोक्यवन्द्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी तथा बलराम जी सदा ब्रजधाम में निवास करके अपने उन गोप ग्वालों, गौओं तथा गोपियों को अपनी बाल लीलाओं से अति आनन्दित करते थे जिन्होंने पूर्वजन्मों में अति घोर तप करके उन्हें इस जन्म में प्राप्त किया है। देवतागण सदा पक्षियों तथा भ्रमरों के रूप में उन का यशोगान करते रहते थे। वे कभी घुमरी परेता खेल खेलते कभी होड़ लगा कर ढेले फेंकते कूँड़ी (कबड्डी) खेलते। कभी ठेका मारते कभी कुश्ती लड़ते, कभी रस्साकशी का खेल खेलते, कभी आँख मिचौनी का खेल होड़ लगा कर खेलते। इसी भाँति बालसुलभ नित्य नए खेल बाजी लगा कर खेलते।

एक दिन की बात है कि बलराम तथा श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ गौएँ चरा रहे थे। और खेल-खेल रहे थे। उनमें एक राक्षस राम व श्याम को मारने की नीयत से भेष बदल कर आ मिला। उसे देख कर श्रीकृष्ण-चन्द्रजी ने पहिचान लिया। किन्तु फिर भी उससे मित्रभाव प्रदर्शित करते हुए अपने साथ खेलने दिया। वह चाहता था कि बलराम तथा श्रीकृष्णचन्द्र को हर कर ले जाऊँ और कहीं मार डालूँ। उधर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सोचने लगे कि किस उपाय से इसका वध करना चाहिये। तब ग्वालबालों में सब से अधिक बड़े खिलाड़ी खेलों में प्रवीण तथा आचार्य श्रीकृष्णचन्द्र ने खेल का उपाय सोच ही लिया उन्होंने अपने दल को दो भागों में बाँट दिया। एक भाग के मुखिया बलरामजी बने तथा दूसरे दल के मुखिया स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र बने। वह प्रलम्बासुर दैत्य श्रीकृष्णचन्द्र जी के बल को भली प्रकार जानता था कि ये महान बलशाली हैं इसलिए वह उन्हीं के दल में मिल गया। इस खेल का नियम यह बनाया कि जीतने वाला दल हारने वाले दल की पीठ पर चढ़े। खेलते खेलते सब लोग भांडीर बन के एक वट वृक्ष के निकट पहुँच गये।

In Public Domain.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वहाँ पर बलरामजी के दल के श्रीदामा वृषभ आदि ग्वाल वालों ने श्रीकृष्ण के दल को हरा दिया तब श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीदामा को अपनी पीठ पर चढ़ाया भद्रसेन ने वृषभ को और उस प्रलम्ब दैत्य ने बलराम जी को अपनी पीठ पर चढ़ाया।

बलराम जी को प्रलम्बासुर अपनी पीठ पर चढ़ा कर अति प्रसन्न हुआ और अपना काम बना हुआ जान कर वह बड़ी फुर्ती से उन्हें लेकर चल दिया। जब वह निर्दिष्ट स्थान से आगे बढ़ गया तब उसने अपना असली रूप धारण कर लिया। उसका काला पर्वताकार शरीर उस पर गोरे बलराम जी अति शोभा पा रहे थे। उस दैत्य की लाल लाल आँखें बिखरे हुए बाल अति भयंकर प्रतीत होते थे। पहिले तो बलराम जी कुछ घबड़ाये। किन्तु फिर अपने स्वरूप को पहचान कर उन्होंने अपना बोझ बढ़ा दिया जिसके कारण उस दैत्य की गतिमन्दी हो गई। तब उन्होंने वज्र के समान अपनी एक मुष्टिका उसके शिर में मारी जिस मुष्टिका के प्रहार से वह दैत्य उसी क्षण पृथ्वी पर लोट पोट हो गया तब बलराम जी ने उस में और भी लात घूँसों का प्रहार किया। जिससे उस दैत्य के प्राण पखेरू उड़ गये। उस दैत्य के मारे जाने से सभी ग्वाल बाल अति प्रसन्न हुए। देवताओं ने आकाश से पुष्पों की वर्षा की। अवस्था में बड़े गोप बलराम जी की प्रसंशा करने लगे। छोटे वाह-वाह करने लगे, सभी ने बलराम जी को छाती से लगाया। और उनका यश गान करने लगे।

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

दो०—मुंजवन बीहड़ सघन अति, फँसी धेनु सब जाय।
आग लगी झंझा चली, ग्वाल सभी घबराय॥
लखि ज्वाला प्रचण्ड हरि, अभय किये सब ग्वाल।
अनल तभी नन्द लाल ने, पान कियौ तत्काल॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी ग्वाल बालों के साथ इस प्रकार के खेल कर रहे थे। उस समय वे खेल में इतने तन्मय हो गये कि उन्हें गौओं का कुछ भी ध्यान न रहा। उन की गौएँ बड़ी दूर अन्य किसी बन में निकल गईं। जब

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ग्वाल बालों ने अपनी गौओं को वहाँ चरते हुए नहीं पाया, तब वे अति ब्याकुल हुए, और उन्हें खोजने निकल पड़े। गौऐं ही उन का परम धन हैं। वे ही न जाने किधर बढ़ गईं। बहुत खोजने पर भी जब उन्हें गौएँ न मिलीं तब तो वे अति चिन्ताकुल हुए। उधर गौएँ मुंज बन में जाकर फँस गईं। वे गोप ग्वाले अपने खेल पर पछिताने लगे। गोप ग्वालों की घबराहट देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने गौओं का नाम ले ले कर पुकारना आरम्भ किया; भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पुकार को पहिचान कर सभी गौएँ रँभाती हुईं इधर उधर को दौड़ने लगीं किन्तु मुंज बनमें फँस जाने के कारण वे उधर ही डकराने लगीं। वे अपना मार्ग भूल गईं थीं। भगवान् की पुकार सुन कर के सीधी तीर की भाँति चलीं।

हे परीक्षित्! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गौओं को पुकार रहे थे। उसी क्षण बन में आग लग गई। और वह अग्नि चारों ओर बड़ी तेजी से सारे मुंज बन में छा गई। उस अग्नि में गोप ग्वाल तथा गौएँ सभी घिर कर अति ब्याकुल हुए, और हा हा कार करने लगे वे पुकार कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की शरण में गये। और बोले—हे कृष्ण हमारी रक्षा करो। हे अनन्त बलशाली श्याम सुन्दर तुम्हारे अतिरिक्त हमारी कौन रक्षा कर सकता है। हे बलराम! तुम शीघ्र हमें इस अग्नि से बचाओ। ग्वाल बाल सभी इस भाँति राम श्याम को पुकारने लगे। तब जगत के रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रजी ने ग्वाल बालों की घबराहट जानकर उन से पुकार कर कहा डरो मत! सब अपनी अपनी आँखें बन्द कर लो उन ग्वाल बालों ने ऐसा ही किया। तब योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने शीघ्र ही सब की रक्षा की। और उस अग्नि को पी गये। जब ग्वाल बालों ने अपने अपने नेत्र खोले तब देखा कि सब के सब गोप ग्वाल तथा उनकी गायें भाण्डीर बन के निकट बैठे हैं। यह देख कर सभी बड़े आश्चर्य में हुए और श्रीकृष्णचंद्र की योगमायाके प्रभाव को देखकर उन्हें कोईदेवतासमझने लगे।

हे परीक्षित्! इस भाँति दावानल से गोप ग्वालों तथा गायों की रक्षा कर के भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सब को साथ लेकर सायंकाल होने पर ब्रज की ओर लौट आये। बंशी बजाते हुए गौओंके पीछे पीछे चलने लगे। गो

Digitized by Sarayu Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ग्वाल उनकी स्तुति के बीच यशोगान करते हुए चल रहे थे। उधर ब्रज में गोपियाँ उनके बिरहमें ब्याकुल थीं। जब उन्होंने बंशीकी टेर सुनी तब श्रीकृष्णचंद्र का आगमन जान अति हर्षित हुईं और उनके दर्शनों को अपने २ घरों से उठ धाईं। श्रीकृष्ण विरह में उनका एक क्षण सौ सौ घण्टों की भाँति कट रहा था। वे अपने प्रीतम प्यारेके दर्शन प्राप्तकरके प्रेमानंदमें मग्न होगईं।

चौ०—गई ग्रीष्म ऋतु वर्षा आई, हरियाली चहुँ भू पर छाई।
चातक मोर मुदित मन माहीं, गरजि २घन नभ में छाई॥
डूबहिं वृषभधेनु, एकठामाँ, वृज युवतिनहिय उमड़हिकामा।
वर्षा विगत शरद ऋतु आई, फूलि फूलि बेली तरुछाई॥
पङ्क बिहीन भूमि चहुँ देखी, छायौ ब्रज आनंद बिशेषी।
ब्रजयुवतिन मन प्रेमसमायौ, मिलन श्यामसौं चितमेंचायौ॥

—०—

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

वर्षा तथा शरद ऋतु का वर्णन—

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! सब ग्वालवालों ने ब्रज में भगवान् श्रीकृष्ण जी और बलराम जी की लीला, दावानलसे रक्षा करना तथा प्रलम्बासुर वध आदि अपने माता पिता, भाई व बहिनों से आकर कहीं। उनकी ऐसी आश्चर्य जनक बातोंको सुनकर वृद्ध गोप तथा गोपियाँ उन्हें बड़ा १❀देवता मानने लगे तथा युवा गोपियाँ उन्हें अपना २❀ प्रियतम समझने लगीं।

टिप्पणी—१❀ देवता-पुरुष तथा स्त्री वृद्ध होजाने पर उनकी काम शक्ति क्षीण होजाती है इस कारण उनमें पारस्परिक प्रेम कुछ कम हो जाताहै। उनकी वृत्तियाँ सांसारिक वस्तुओं के प्रेम से हटकर ईश्वर आराधना तथा देव पूजन आदिमें विशेषलगजाती हैं। उनका अत्यधिक प्रेम देवतामें ही लग जाता है इस कारण ब्रज के वृद्ध गोप तथा गोपियाँ उन्हें देवतारूपमें प्रेम करतेथे। २❀ प्रियतम—युवतियों को अपना पति विशेष प्रिय होता है। उनके मन की वृत्तियाँ पतिप्रेममें ही अत्यधिक तल्लीन रहती है। इसलिये ब्रजकी युवा-गोपियाँ श्रीकृष्णचंद्र को अपना पति मानती थीं। उन्हें अपने सांसारिक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित ! अब ब्रज में वर्षा ऋतु आई। इस ऋतु में पृथ्वी प्रसव को धारण करके अनेक प्रकार के कीट पतङ्ग, गिजाई लाल गुड़ियां सर्प, मेंढक आदि प्राणधारियों को उत्पन्न करती हैं। जिधर देखो उधर पृथ्वी पर जीव ही जीव रेंगते मिलते हैं। चन्द्रमा पर मण्डल पर मण्डल बैठते हैं। काले बादल घिर घिरकर पशु पक्षी मोर आदि को अति आनन्दित करते हैं उनकी गरज सुनकर मोर सारस हंस आदि प्रसन्नता से कोहकने लगते हैं तथा आनन्दोन्मत्त होकर नांचने लगते हैं बिजली चमक चमक कर चौंधने लगती है, और तड़तड़ाने लगती हैं सूर्य चंद्रमा तारागण आदि दृष्टि भी नहीं आते हैं। उस काल आकाश ऐसा प्रतीत होता है जैसे ब्रह्मज्ञान से निर्मल जी

पतियोंसे प्रेम कमथा किंतु श्रीकृष्णचंद्रसे अधिक प्रेम था। इसका कारण यह था कि सांसारिक पति तो शरीरके ही पतिथे और श्रीकृष्ण आत्मा के पति। प्रत्येक प्राणीको अन्यकी अपेक्षा अपने सगे सम्बन्धी माता,पिता पति पुत्र आदि प्रिय होते हैं और उन सम्बन्धियों की अपेक्षा अपना शरीर प्रियहोता है और अपने शरीर की अपेक्षा अपनी आत्मा विशेष प्रिय होती है वे सांसारिक पति तो शरीर(नाते)के पति थे। किंतु श्रीकृष्णचन्द्र तो उनकी आत्मा के पति थे, जो शरीर की अपेक्षा अधिक प्रिय होती हैं। इसी कारण पति की अपेक्षा श्रीकृष्णचंद्र उन्हें अधिक प्रिय थे।

यद्यपि उनका प्रेम जार भाव था(देखो अगले अध्यायमें)किंतु वे प्रेम किसे करती थीं श्रीकृष्णचन्द्र से, जो परमब्रह्म परमात्मा थे। उनसे कोई किसी भाव से प्रेम करे, अथवा शत्रुता करे,किंतु करे निरन्तर तल्लीन होकर। उन्हीं में लीन हो जाता है। जो दर्जा एक प्रेमी का है वही दर्जा एक का है। क्योंकि प्रेमी उनमें प्रेम भावसे निरन्तर तल्लीन रहता है। और उनमें शत्रु भाव से निरन्तर तल्लीन रहता है। अन्ततोगत्वा फल क्या है दोनों का एक उनके प्रति तल्लीनता। इसी प्रकार वे गोपियाँ उनमें तल्लीन रहती थीं चाहे जार भावसे चाहे वात्सल्य भावसे रहतीथीं उनमें तल्लीन वे थे परमात्मा इस कारण उनका सभी प्रकारका प्रेम भगवत प्रेम ही हुआ कुछ गोपियाँ पति भावसे प्रेम करतीथीं कुछ दास्य भावसे,कुछ वात्सल्य से,किंतु उनकी सभी प्रकारसे भावनाएं थीं उन्हीं सच्चिदानन्दघन परमात्मा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

को सांसारिक गुण ढक कर मलीन कर देते हैं। सूर्य दयावान राजा की भांति आठ मास तक पृथ्वी से जलरूप को खींच कर इन महिनों में उसे जल प्रदान करके सन्तुष्ट करता है। बादल दानी पुरुष की भाँति अपने को मिटा कर पृथ्वीको अपना समस्त जलदान करने लगे। जिस प्रकार दयावान दानी अपना सर्वदान कर देता है पीछे को कुछ नहीं देखता यही दशा उस समय बादलों की होने लगी।

पृथ्वी जल के बरसने से हरी तथा प्रसन्न होती है। जिस प्रकार सकाम भाव से तप करने वाले को तप का फल मिलने पर प्रसन्नता होती है। वही दशा पृथ्वी की होने लगी। सन्ध्याकाल में चन्द्रमा तथा तारागणों के छिपने पर जुगनू चमकने लगे। जिस प्रकार कलियुग में धर्म के लोप होने पर पाखण्डों का प्रचार होने लगता है। वर्षा ऋतु में मेंढक इस प्रकार टर्र टर्र करने लगे जैसे मानों ब्रह्मचारी वेद पाठ कर रहे हों। नदियाँ इस प्रकार उमड़ कर बहने लगीं जिस प्रकार छुद्रजनों को सम्पत्ति मिलने पर वे इतरा कर चलने लगते हैं। और कुमार्ग तथा अधर्म का अनुसरण करते हैं। किसान पशु, पक्षी, सभी खेतों की हरियाली देख कर आनन्द से राग अलापने लगे। जल के बरसने से प्राण हीन पृथ्वी में प्राणों का संचार हो गया सर्वत्र आनन्द ही आनन्द रम्यता ही रम्यता छा गई। वर्षा ऋतु में नदियों में जल से समुद्र अपनी ऊँची ऊँची तरंगें मारने लगता है जैसे किसी की काम बासना जाग्रत होने पर वह सांसारिक विषय भोगों की तरंगें मारने लगता है। पर्वत मूसलाधार जल के प्रहार को इसी प्रकार सहने लगे जैसे सन्त पुरुष दुष्टों के बचन रूपी प्रहार को सह लेते हैं। आने जाने के मार्ग इसी भाँति घास फूस आदि से रुक गये जिस प्रकार कलियुग में वेद का ज्ञान न होने से धर्म के मार्ग रुक जाते हैं। बिजली कौंध कौंध कर जगत की अस्थिरता प्रगट कर रही है, कि कुलटा स्त्री तथा दुष्टजनों की प्रगति भी ऐसी अस्थिर होती है। आकाश में इन्द्र के धनुष पड़ने लगे। चन्द्रमा बादलों से इसी प्रकार ढक गया जिस प्रकार कर्मों के प्रभाव से निर्मल जीव ढक जाता है। वृक्ष जल पीकर फलों से लदकर झुक गये जिस प्रकार सत्पुरुष तनिक से उपकार को भी अधिक मान कर झुक जाता है।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित ! वर्षा ऋतु में वृन्दावन की और ही अपूर्व शोभा थी। जामन खजूर के वृक्ष फलों से लद रहे थे। गौयें हरी हरी घास खा खाकर के दूध भरे थनों के भार से धीरे धीरे चलने लगीं थीं। जब श्रीकृष्ण उनके नाम को लेकर पुकारते थे तब वे प्रेम विवश दौड़ कर उनके निकट आती थीं। उस समय उनके थनोंसे दूध झरता जाता था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख देख कर बन के भील तथा भीलनी भी अति प्रसन्न होतीं। कल कल की ध्वनि करते हुये झरनों की अपूर्व शोभा थी। श्री कृष्णचन्द्र जी अपने ग्वालवालों के साथ कभी किसी वृक्ष की खोंहड़ में बैठ जाते कभी किसी गुफा में छिप कर बैठ जाते थे। कभी बन के मीठे मीठे फल खा कर अनेक प्रकार के खेल खेलते। अपना दुपट्टा हिला हिला कर धौरी, पीरी, श्याम नाम लेकर गौओं को पुकारते।

हे परीक्षित ! इस वर्षा ऋतु में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होता है किन्तु ब्रज में विशेष आनन्द रहता है क्योंकि वहाँ सभी ऋतुएँ निवास करती हैं वहाँ सदा बहार वाले बन, वृक्ष, झाड़ियाँ, लता पत्रादि उत्पन्न होते हैं। और वे सब कृष्णमय रहते हैं।

अब ब्रज में वर्षा ऋतु समाप्त हुई, और शरद ऋतु आई, वायु मन्द गति से चलने लगी आकाश बादलों से रहित होकर स्वच्छ होगया। कीचड़ आदि सूख गई। मार्ग जाने आने योग्य हो गये। जलाशयों में तथा नदियों में भी मैला पानी था वह स्वच्छ हो गया उनमें सुन्दर कमल खिलने लगे। चारों ओर काँस फूल फूल कर सारी पृथ्वी को सफेद करने लगे जैसे मानो वर्षा ऋतु को बुढ़ापा आ गया हो। कृषि पकने लगी किसान, सन्यासी, राजा, ब्रह्मचारी, व्यापारी सभी अपने २ निर्दिष्ट स्थानों को जाने लगे। दिन के समय बड़ी धूप पड़ने लगी। उस की गर्मी को रात्रि का शीतल और निर्मल चन्द्रमा हरने लगा, तथा इसी भाँति शोभित होने लगा जिस भाँति ब्रजवासियों के मध्य में श्रीकृष्णचन्द्र शोभायमान होकर उनके ताप हरते थे। सुन्दर, शीतल, मन्द वायु बहनेलगी। जिससे तनकी जलन मिटने लगी किन्तु उन गोपियों की जलन इस वायु के स्पर्श से और भी अधिक बढ़जाती थी। शरद ऋतु में गाएँ, हिरनियाँ चिड़ियाँ तथा नारियाँ सभी ऋतु मती होने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अपने २ प्रियतमों से मिलने की इच्छा करती हैं। साँड़, हिरन, पक्षी तथा पुरुष उनका अनुकरण करके उन्हें ऋतुदान करने लगे। कुमुदुनी को छोड़कर सभी कमल खिलने लगे। ग्रामोंमें नवीन अन्न प्राशन होने लगा। जो मनुष्य वर्षा के कारण घरों में बैठे रहते थे, वे सभी अब काम काजों में लग गये।

॥ इक्कीसवाँ अध्याय ॥

वेणु गीत—

श्री शुकदेव जी बोले–हे परीक्षित! उस सुहावनी मनभावनी शरद ऋतु में जब भगवान् श्री कृष्ण नटनागर जगत उजागर अपनी वेणु बजाने लगते और मधुर स्वर में उस पर गीत गाने लगते। तब प्राणियों की तो बात ही क्या जड़ भी मुग्ध हो जाते थे। वह त्रिलोक्य मोहिनी वंशी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, जड़, चेतन आदि सभी को अपने वश में किये रहती थी। सब के मन उसी के साथ चलते थे। बन्शी की ध्वनि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति प्रेम तथा उनसे मिलने की आकांक्षा को जाग्रत करती थी। सभी गोपियाँ एकान्त में बैठ जातीं और उनकी लीलाओं तथा उनकी बांसुरी के गुणों का परस्पर वर्णन करने लगतीं। जब वे वंशी का स्मरण करतीं तब उसी के साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उन्हें स्मरण हो आता। उनकी मधुर मुस्कान, उनके संकेत, सुन्दर चितवन आदि का स्मरण करने लगतीं। उनका मन चितचोर मनमोहन में ही लगा रहता। वे अपने स्थूल शरीर की सुधबुध भूल कर मन द्वारा उनका आलिङ्गन करने लगतीं उनका मन श्रीकृष्ण मय हो जाता। वे मन ही मन उनका चिन्तन करने लगतीं कि श्रीकृष्ण नटवर नागर बृन्दावन में प्रवेशकर रहे हैं। उनके शिर पर मोर पङ्खों का मुकुट है, कानों में कुण्डल तथा उनमें कन्नेर के पीले पीले पुष्प लग रहे हैं। रेशमी पीताम्बर शरीर पर शोभायमान है। कण्ठ में बनमाला शोभा पा रही है उनके अमृतमय अधर वंशी के छिद्र पर रक्खे हैं। उनके पीछे पीछे ग्वालवाल उनका कीर्त्तन करते हुए चल रहे हैं। भगवान् श्री कृष्ण के चरणों से इस ब्रज की भूमि पवित्र हो रही है। हे परीक्षित वे मनस्वी गोपियाँ इसी भाँति उनमें तन्मय हो कर निशि वासर उनका चिन्तन करतीं। यह वंशी की ध्वनि समस्त जड़ चेतन का मन चुरा लेती

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है गोपियाँ उससे सवतिया डाह करके इस प्रकार कहने लगीं—

देश राग— मुरली कौन तप तैं कियौ,

रहत गिरधर मुखे लागी, अधर कौ रस पियौ ॥ मुरली० ॥
नन्दनन्दन पाणि परसत तोहि में तन मन दियौ।
सूर श्री गोपाल बस भये जगत में तैं जस लियौ ॥ मुरली० ॥

हे परीक्षित् ! इस प्रकार बात चीत करते करते कृष्णमय हो जातीं और अपने आत्माराम श्रीकृष्ण को पाकर उनका आलिंगन करने लगतीं।

गोपियाँ परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगीं—अरी भट्ट ! उस सवति वंशी की मैं क्या बड़ाई करूँ ?

जब हरि मुरली अधर धरत,
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहे, जमुना जल न बहत।
खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छवि छरत ॥
पशु मोहैं सुरभी विथकित, तृन दन्तनि टेकि रहत।
शुक सनकादिक सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत ॥
सूरदास भाग हैं तिनके, जो या सुखहिं लहत।
जब हरि मुरली अधर धरत ॥ टेक ॥ (सूर)

दूसरी गोपी बोली—हे बहिन ! हमें आँखों से केवल यही सुख है कि हम अपने प्यारे मनमोहन के दर्शन उन आँखों से करती हैं। और अधिक तो हमें पता नहीं कि इन आँखों से और क्या लाभ है केवल हम तो यही लाभ समझती हैं कि हमारे श्यामसुन्दर और बलराम अपने गोप ग्वालों के साथ बन से गौयें चरा कर आ रहे हों या उन्हें चराने जा रहे हों उनके मधुर अधरों पर वंसुरी धरी हो, प्रेम भरी मधुर तिरछी चितवन से वे हमारी ओर देख रहे हों उस समय हमारी वे आँखें उनकी उस रूप माधुरी का पान करती रहें, केवल यही नेत्रों का लाभ है। अब हमें हमारे प्रियतम कृष्ण कन्हाई और बलराम पीताम्बर तथा नीलाम्बर पहिन कर आम, कन्नेर, मोंगरा, बेला आदि के पुष्प अपने केशों में गुंथे हुए हों मोर पंख का माथे पर मुकुट लगा हो, ग्वाल बालों के मध्य में बैठे हों, और मुरली पर मधुर सङ्गीत छेड़ रक्खा हो, तब की छवि निहारने का लाभ हमें इन अँखियों से प्राप्त होता है। तीसरी बोली—अरी सखी !

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

और तो और, उस मुरली ने श्याम को ऐसा वश में कर रक्खा है जैसे कोई स्त्री अपने पति को वश में कर लेती है। वह जिस प्रकार चाहती है उसी प्रकार हमारे मनमोहन प्यारे को नचाती है।

चौथी बोली—अरी बीर !

मुरली तऊ गुपालहि भावति ।
सुनरी सखी जदपि नन्दलालहिं, नाना भाँति नचावति ।
राखति एक पाइ ठाड़ों करि, अति अधिकार जनावति ॥
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ीं ह्वै आवति ।
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरधर नार नवावति ॥
आपुन पौढ़ि अधर सैया पर, कर पल्लव पलुटावति ।
भृकुटी कुटिल, नैन नासापुट, हम पर कोप करावति ॥
'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं शीश डुलावति ॥ (सूर)

अरी भटू ! यह बाँसुरी अति ढीठ हो गई है। न जाने इसने पूर्व जन्म में कौनसा तप किया है। जो नित्य नन्द नन्दन श्याम सुन्दर के अधरामृत का पान करती रहती है। हमें तो कभी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है। इस सवति ने हमारी वस्तु पर इतना अधिकार जमा लिया है। हम उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हैं। वह बन के तुच्छ बाँस कुल में उत्पन्न हुई है। हम अति सुन्दर शरीर वाली हैं उसके शरीर में आठ गाँठ भरी हैं। तिस पर भी उसमें अनेकों छिद्र हैं फिर भी न जाने क्यों श्यामसुन्दर को भातीहै।

अरी भटू ! उस वंशी को तो जाने दो यह वृन्दावन धाम भी अति सौभाग्यशाली है बैकुण्ठ धाम से भी अति उत्तम है। यहाँ नन्दनन्दन विराजते हैं। उनके चरण पड़ने से सारी ब्रजरज पवित्र होगई है। अरी सखी ! जब श्याम सुन्दर अपने अधरों पर वंशो रख कर मीठे स्वर से तान छेड़ते हैं तब मोर भी घनश्याम की गर्जन समझ कर आनन्द से नाच उठते हैं पशु पक्षी चुपचाप खड़े होकर सुनने लगते हैं। ये हिरनियाँ चरना बन्द करके मनमोहन के निकट आकर अपने बड़े बड़े नेत्रों से उनकी मन मोहिनी मूर्ति को निहार कर बड़े बड़े नेत्रों का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लाभ उठाती हैं। हम वृन्दावन की गोपी होते हुए भी वृन्दावन बिहारी पर निछावर नहीं होती। हमारे घर के पितापति आदि कुढ़ने जो लगते हैं वे कितने मूर्ख हैं। उन्हें श्याम सुन्दर के स्वरूप का ज्ञान ही नहीं है। अरी सखी! उन घनश्याम के रूप सौन्दर्य पर तो स्वर्ग की देवियाँ निछावर होती हैं वे उनकी बाँसुरी की ध्वनि सुन कर नित्य विमानों में चढ़ चढ़ कर आकाश में आती हैं। उनकी वेणियों में गुथे हुए पुष्प नित्य भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में गिरते हैं। वे अपने अपने विमानों पर उनकी वंशी की मधुर तान सुन कर सुध बुध खो बैठती हैं। उनके हृदयों में भी प्यारे श्याम सुन्दर से मिलने की आकांक्षा सदा रहती है। उनकी साड़ियाँ खिसक खिसक कर पृथ्वी पर गिर जाती हैं।

अरी भटू! तुम उन देवियों की बात जाने दो कृष्ण प्यारे की बाँसुरी की मधुर तान सुन कर के गौएं भी चरना छोड़ देती हैं। बछड़े दूध पीना छोड़ देते हैं। उनके गले का घूँट वहीं रुक जाता है। वे तन्मय होकर अपनी सब सुध बुध भूल जाते हैं। इन बछड़ों की बात जाने दो ब्रज के पक्षी भी उड़ना भूलकर शान्त भाव से वृक्षों की डालों पर बैठ जाते हैं। और बांसुरी की मधुर तान सुनते रहते हैं। प्यारे श्यामसुन्दर की रूप माधुरी को एक टक निहारते रहते हैं। अरी भटू! इन देवता, पशु पक्षियों को जाने दो वे तो प्राणधारी हैं उस यमुना नदी के जल को ही देख लो वह तो जड़ है। वह भी बाँसुरी की तान सुन कर अपना प्रवाह बन्द करके रुक जाता है। इन बादलों को देख लो वे श्याम घन अपने घनश्याम की मधुर तान सुन कर उस पर ऐसे मुग्ध हैं कि वे सदा उन पर अपनी परछाईं करते रहते हैं। और प्रसन्नता से उन पर नन्हीं नन्हीं फुहारें छोड़ते हैं।

अरी भटू! हम से तो वे वन की भीलनीयाँ ही श्रेष्ठ हैं जो नित्य वन में उनके दर्शन करती रहती हैं। उनके हृदय में भी प्रेम की व्यथा उत्पन्न हो गई है। वे क्या उपाय करती हैं। उसे मैं सुनाती हूँ जिस कुंकुम को हमारे प्यारे मोहन की प्रेयसी अपने वक्षःस्थल पर लगाती हैं वह केसर ब्रजमोहन के चरणों में लग जाती है वही केसर ब्रजमोहन के चरणों से छूट कर वन की घास पर लग जाती है उस केसर को वे भीलनियाँ घास

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

से छुड़ा छुड़ा कर अपने स्तनों तथा मुखों पर लगाती हैं। वे सौभाग्यवती भीलनियाँ इस प्रकार अपने तन की ज्वाला को शान्त कर लेती हैं। अरी सखियो! यह गोवर्धन गिरिराज की उपाधि प्राप्त कर चुका है क्योंकि इस पर श्याम सुन्दर तथा बलराम के चरण पड़ते हैं। यह अपने हरे भरे वृक्षों से उन्हें फल, पुष्प, गुलाब आदि प्रदान कर के उनकी पूजा करता है। जब श्यामसुन्दर की जादू भरी बाँसुरी सुनते हैं तब जलचर थलचर, नभचर सभी मोहित हो जाते हैं।

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

❀ चीर हरण लीला ❀

दोहा—ब्रज बनितन उपदेश हित, हर्‌यौ चीर यदुराय।
बरुण देव जल में बसै, नग्न होय नहिं न्हाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित्! शरद ऋतुके समाप्त होने पर हेमन्त ऋतु आई। ब्रज की समस्त गोपियाँ ब्रज बिहारी श्रीकृष्णचन्द्र की मधुर तान सुन कर तथा उनकी रूप माधुरी को देखकर उन पर पहिले ही से मुग्ध हो चुकी थीं। ब्रज की कुमारियों ने हेमन्त के प्रथम मास मार्गशीर्ष में कात्यायनी देवी की पूजा करने की ठानी। नित्य सूर्यदेव से पहिले यमुना जी में स्नान को जातीं और हविष्यान्न खाकर नित्य ब्रत करतीं। उनकी यह साधना भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को अपना पति रूप में प्राप्त करने के लिये थी। वे नित्य चन्दन धूप नैवेद्य आदि से भद्रकाली की पूजा करतीं और उस से यही प्रार्थना करतीं कि श्यामसुन्दर हमारे पति हों।

हे परीक्षित्! वे ब्रज की गोपियाँ वेदों की श्रुतियाँ, मिथिला, कोसल, अयोध्या, प्रलिन्द की गोपियाँ, रमा बैकुण्ठ, श्वेतद्वीप की गोपियाँ जालंधरी गोपियाँ आदि ने ब्रज में आकर अवतार लिया था। उनके अतिरिक्त वे तपस्वी ऋषिगण थे जिन्होंने भगवान् की दिव्यअन्तरङ्ग लीला में सम्मिलित होने के लिये कल्पों तक तपस्या कर के ब्रज में गोपियों के रूप में अवतार लिया था। वे सभी भगवान् की उस दिब्य अलौकिक लीला के देखने की अभिलाषित थीं जो उनके नित्य धाम (गोलोक) में नित्य अपने पार्षदों तथा भक्तजनों के साथ होती रहती हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जी ने उन्हें कृष्णावतार में ही उनकी कामना पूर्ण का वर दिया था। वे ही कुमारियाँ उन जगत के स्वामी को अपना स्वामी बनाना चाहती थीं।

वे प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर अपनी संग की सखियों को नाम ले ले कर बुला लेतीं और सब भगवान् श्रीकृष्ण के गुण गाती हुई यमुना स्नान को नित्य जातीं। और वहीं कालका की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करतीं। एक दिन सभी कुमारियों ने अपने २ वस्त्र उतार कर यमुना तट पर रख दिये और नङ्गी होकर यमुना जल में क्रीड़ा करने लगीं।

हे परीक्षित! सनकादिक तथा शंकर आदि योगेश्वर के भी ईश्वर जगत के पति अन्तर्यामी घट घट की जानने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से उन कुमारियों के हृदय की कामना छिपी नहीं थी। वे उनकी अभिलाषा जान कर अपने ग्वाल बालों के साथ यमुना तट पर गये और अकेले चुप चाप जाकर उन कुमारियों के चीर वस्त्र उठा कर एक वृक्ष पर जा बैठे।

राग बिलावल—

बसन हरे सब कदम चढ़ाये।
सोरह सहस गोप कन्यानि के अङ्ग अभूषन सहित चुराये।
नीलाम्बर, पाटम्बर सारी, श्वेत पीत चुनरी, अरुनाये॥
अति विस्तार नीप बस तामें, लै लै जहाँ तहाँ लटकाये।
मनि-आभरन डार डारनिप्रति, देखत छविमनही अटकाये॥
'सूर'श्याम जुवतिन व्रत पूरन कौ फल डारनि कदम फराये॥ (सूर)

तब हे परीक्षित्! साथी ग्वाल बाल ठट्टा मार कर हँसने लगे उन के साथ ही श्रीकृष्णचन्द्रजी भी हँसने लगे। जब उन गोप कन्याओं ने देखा कि हमारे सभी वस्त्राभूषण लेकर हमारे प्यारे मनमोहन कदम पर बैठे हैं तब वे अति अकुलाईं। और वे बोलीं।

आसावरी—

हा—हा करति गोप कुमारि।
सीत तैं तन कंपय थर—थर बस न देह मुरारि।
जो पुरुष तिय अङ्ग देखै, कहत दूषन भारि॥
नैंकु नहिं तुम तरस खावत, गई हिम सब मारि।
मनहिं मन अति भयौ सुख, देखि के गिरधारि॥
सूर प्रभु अति ही निठुर भये, नन्दसुत बनवारि। (सूर)

In Public Domain...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तब नटनागर जगत उजागर श्रीकृष्णचन्द्र बोले—अरी गोप कन्याओ ! तुम यहाँ आ-आ कर अपने २ वस्त्र ले जाओ मैं तुम से हँसी ठठोली नहीं करता हूँ तुम एक तो वैसे ही व्रत करते २ क्षीण तन होगई हो फिर तुम से मैं ठठोली क्यों करूँ गा। मैं कभी असत्य भाषण भी नहीं करता इस बात को मेरे सभी साथी ग्वाल बाल जानते हैं। इसलिए मैं तुम से जो कहता हूँ वह सत्य ही है। हे ब्रज युवतियो ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो एक एक आकर अपने अपने वस्त्राभूषण ले जाओ। और यदि सब आना चाहो तो सभी चली आओ। मुझे इसमें कोई आन नहीं है।

हे परीक्षित ! अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ऐसी ठठोली सुन कर वे कुमारियाँ अति प्रसन्न हुईं। प्रेमानन्द में मग्न हो गईं किन्तु सकुच के कारण नग्नावस्था में उन्होंने जाना उचित नहीं समझा। वे श्याम सुन्दर की बात सुन कर एक दूसरी के मुँह की ओर ताकने लगीं। किन्तु लज्जावश जल से बाहर नहीं निकलीं। वे कण्ठ २ जल में खड़ी थीं उन का शरीर ठण्ड के कारण काँप रहा था। तब वे सभी कुमारियाँ श्रीकृष्ण-चन्द्र से बोलीं—हे प्यारे मनमोहन ! हम पर तरस खाओ हमारे साथ ऐसी अनीति न करो। तुम हमारे प्यारे हो नन्दबाबा के दुलारे हो, हमारे शरीर जाड़े से निठुर कर थर थर काँप रहे हैं। हे श्याम सुन्दर ! हमारे वस्त्र हमें दे दो। प्यारे ! हमें अधिक कष्ट न दो। हम तुम्हारी सेविका हैं, दासी हैं जो कुछ तुम कहोगे वही हम करेंगीं। तुम धर्मज्ञ हो धर्म के जानने वाले हो हम ब्रज बाला नग्न हैं आपके सम्मुख कैसे आ सकती हैं। यदि हमारे वस्त्र न दोगे तो हम नन्दबाबा से जाकर तुम्हारी करतूत कहेंगी। तब श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले—हे गोपियो !

(राग बिलावल)

लाज ओट यह दूर करौ,
जोइ मैं कहौं करौ तुम सोई, सकुच बापुरिहिं कहा करौ।
जल तैं तीर आइ कर जोरहु, मैं देखौं तुम विनय करौ॥
पूरन व्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन शंका दूरि करौ।
अब अन्तर मोसों जनि राखहु, बार बार हठ वृथा करौ॥
सूर श्याम कहैं चीर देत हौं, मो आगे शृङ्गार करौ॥ (सूर)

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तुम ब्रज के गोपों की कुमारी कन्या हो, तुमने मेरी प्राप्ति के लिए ही एक मास से कठिन व्रत किया है अब तुम मेरी दासी बन चुकी हो तब तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की यह मधुर और प्रेम युक्त बात सुन कर उन कुमारियों ने उनकी आज्ञा का पालन किया। वे अपने गुप्त अङ्गों को दोनों हाथों से ढक कर यमुना के ठंडे जल में से बाहर निकलीं। उस समय उनके अङ्ग जाड़े के मारे थर थर काँप रहे थे। उनकें आज्ञा पालन से तथा अपने प्रति अगाध भक्ति प्रेम से प्रेम के वश में होने वाले भक्त वत्सल भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अति प्रसन्न हुए। उनके विशुद्ध प्रेम तथा पवित्रता को देख कर जगत के स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रने उन के चीर अपने कन्धे पर रख लिए और मुस्करातेहुए बोलेकि अरी कुमारियो! तुम्हारा व्रत आज पूर्ण हो गया। तुमने उसमें कोई त्रुटि नहीं आने दी किन्तु एक त्रुटि तुमने अवश्य की है और वह है वरुण देव का अपराध। तुमने व्रत करके यमुना के जल में नग्न होकर स्नान किया है। जल के स्वामी वरुण तथा यमुनाजी का अपराध तुमने किया है। अतः अब तुम इस दोषके निवारण के लिए अपने दोनों हाथों को शिर से लगाकर प्रणाम करो। तत्पश्चात अपने अपने वस्त्र लेजा कर पहिनो। उन भोली भाली ब्रज बालाओं ने यह समझ कर कि हम से यह बड़ी त्रुटि हुई है। उस त्रुटि के कारण आराध्य देव श्रीकृष्णचन्द्र हमें प्राप्त नहीं होंगे। तुरन्त उन्होंने ऐसा ही किया अपनी प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए कोई क्या नहीं करता। उन कुमारियों ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर सिर झुका कर श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम किया। क्योंकि हे परीक्षित! जगत के अधिष्ठाता इन श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम करने से समस्त पापों तथा दोषों का मार्जन हो जाता है। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि गोपियों ने मेरी आज्ञानुसार मुझे प्रणाम किया है और मुझे अपना मन सहित सर्वस्व अर्पण कर दिया है तब प्रसन्न होकर उन्होंने उनके वस्त्र दे दिए। उनकी भक्त वत्सलता और छल कपट रहित विशुद्ध प्रेम को देख कर उनका हृदय द्रवित हो गया उनकी लज्जा को छुड़ा दिया, संकोच के पर्दे को हटा दिया। हे परीक्षित!

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

वे गोपियाँ उनके इस ब्यवहार से तनिक भी रुष्ट न हुईं किन्तु उनका प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति और भी अधिक बढ़ गया।

तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे कुमारियो ! तुमने मेरे चरण स्पर्श की कामना के लिए ही यह व्रत किया है। तुम मेरी परम प्रेयसी हो। मैं तुम्हारे संकल्प को भली प्रकार जानता हूँ। तुमने मेरी प्राप्ति के लिए ही तप किया है। हे गोपियो ! मैं जगत का नियन्ता होने से जगत् को बनाने वाला जगत का पिता, माता, पति, भाई, बन्धु तथा स्वामी आदि सभी हूँ। अतः तुम भी मेरे द्वारा ही बनाई गई हो, उत्पन्न की गई हो, इस कारण मैं तुम्हारा पिता स्वामी सर्वस्व हूँ। जब मैंने तुम्हें बनाया है तो तुमको मेरे से संकोच तथा लज्जा कैसी ? जिस प्रकार पुत्री को पिता जन्म देता है, उसका पालन करता है उसे नग्न अवस्था में देखता है उसी प्रकार मैं तुम्हारा उत्पन्न करने वाला पिता हूँ। तुम्हारा ही नहीं सारे विश्व का पिता हूँ फिर तुमको मुझसे कैसी लज्जा ? कैसा संकोच ? मैं जगत का स्वामी हूँ, तुम्हारा भी स्वामी हूँ, तुम मेरी प्रेयसी हो तुम मुझसे प्रेम करती हो अतः मेरे और तुम्हारे अर्थात् मुझ ब्रह्म और तुम आत्मा के मध्य में संकोच का अज्ञान नहीं रहना चाहिये। क्योंकि यह अज्ञान ही इस आत्मा को मुझ ब्रह्म में मिलने का बाधक पर्दा है। जब इस अज्ञान का पर्दा हट जाता है तब आत्मा मुझ परमात्मा में मिल जाता है। जिन्होंने मुझे अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है—अपने को मुझ में लगा दिया है—उनकी समस्त सांसारिक विषय भोगों की कामनायें इसी प्रकार भस्म हो जाती हैं जिस प्रकार अग्नि के प्रवेश कर जाने से बन भस्म हो जाता है। उनकी ये कामनायें उन्हें सांसारिक विषय भोगों की ओर नहीं ले जाती है। क्योंकि उनकी कामनायें मेरी प्राप्ति के लिए ही होती हैं। और मेरी प्राप्ति होते ही सारी कामनायें जल भुन कर नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार भुना हुआ अथवा जला हुआ बीज फिर उगने योग्य नहीं रहता है उसी प्रकार मेरे लिए का हुई कामनायें सांसारिक विषय भोगों को उत्पन्न करने योग्य नहीं रहतीं। इसीलिए हे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कुमारियो ! तुमने मुझ ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। तुम्हारी समस्त कामनायें मेरे लिये ही हैं तुम्हारी साधना पूर्ण हो चुकी हैं। तुम अगली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे दिव्य अलौकिक बिहार में सम्मिलित होना। मेरा वह बिहार इस जगत के प्राणियों को अदृश्य है केवल मेरे भक्तजन तथा पार्षद गण ही उसमें सम्मिलित होकर मेरे दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं। तुम भी मेरे उन्हीं साधकों में हो तुम अपनी साधना से मेरे दिव्य अलौकिक लीला को देखने योग्य हो।

हे परीक्षित् ! यह चीर हरण लीला अलौकिक तथा दिव्य है वैसे तो भगवान् की सभी लीलायें अलौकिक हैं किन्तु यह लीला सर्वोत्तम तथा अत्यधिक अलौकिक है। जब भगवान् का साधक अपनी पूर्ण साधना से अपने सर्वस्व को उनके अर्पण कर देता है तभी वह उन भगवान् की प्राप्ति का अधिकारी होता है। उन गोपियों ने अपना कुल परिवार धर्म, कर्म, खान पान सब श्रीकृष्ण के अर्पण कर दिया था। उन्होंने तन, मन, धन सभी श्रीकृष्ण को दे दिया था। वे संसार में जीती थीं श्रीकृष्ण के लिए, घर के काम काज करती थीं तो श्रीकृष्ण के लिये। उनके पवित्र मन में अपने प्यारे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। अपने प्रियतम के सुख के लिए ही वे सब कुछ करती थीं। उनके सुख में ही स्वयं सुखी रहती थीं। सोते जागते उठते बैठते उन्हीं प्रियतम का ध्यान रखती थीं। गोपियाँ प्रातः दही बिलोती, माखन निकालती किस लिये उन्हीं अपने प्रियतम के लिये। गोपियाँ रातों में जागती थीं कि कब प्रातः हो और कब श्यामसुन्दर के दर्शन करें। वे माखन निकाल कर छींकों पर रखतीं और कहतीं कि श्यामसुन्दर आवेंगे और इस उत्तम माखन का भोग लगावेंगे। यदि किसी दिन श्यामसुन्दर को देर हो जाती तो वे व्याकुल हो उठती। इसका तात्पर्य यह है कि–हे परीक्षित् ! उनके सोते जागते दिन में तथा रात्रि में सभी कर्म अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के लिये होते थे। उनकी रही सही साधना मार्गशीर्ष के व्रत से पूर्ण हो चुकी थी। किन्तु उन में अभी अपने प्रियतम जगत के स्वामी श्रीकृष्ण के प्रति लज्जा तथा संकोच का आवरण

In Public Domain. ... Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

शेष था। लौकिक दृष्टि से उनमें केवल इतनी ही आत्म समर्पण में कमी थी। उन गोपियों को लोक, परलोक, स्वार्थ परमार्थ, जाति, कुल कुटुम्बी गुरुजनों आदि की कोई परवाह न थीं। सब कुछ त्याग कर श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों तक पहुँच चुकी थी, किन्तु केवल लज्जा का आवरण ही उन से मिलने में बाधक था। उस आवरण को हटा देना अति आवश्यक था। वह संकोच ही साधक को साध्य तक पहुँचने का बाधक पर्दा था। निरावरण रूप से अपने बनाने वाले ब्रह्म के पास पहुँचने में झिझकती थीं। गोपियों ने भक्ति द्वारा प्रेम उत्पन्न कर लिया था प्रेम की भक्ति से वे अपने को समर्पण कर चुकी थीं। किन्तु अपने को पूर्ण समर्पण नहीं कर सकीं, क्यों कि संकोच लाज का पर्दा उनके बीच में जो था। उसी पर्दे को चीर हरण द्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने दूर कर दिया।

श्रीकृष्णचन्द्र चराचर जगत के स्वामी सब के साक्षी भोक्ता हैं कोई स्थान ऐसा शेष नहीं है जो उनकी दृष्टि से बाहर हो। वे कुमारियाँ यह जानती थीं कि इस यमुना जा के जल में श्रीकृष्णचन्द्र का निवास नहीं है न वे इस जल में देखते हैं। हे परीक्षित ! वे तो सर्व द्रष्टा हैं क्या जल क्या थल सभी जगह वे तो देखते हैं। कोई भी वस्तु उनसे परदे में नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन अपनी साधक गोपियों के वस्त्रों के रूप में उनके सम्पूर्ण संस्कारों को लेकर कदम्ब पर चढ़ गये। गोपियाँ संसार रूपी जल में कण्ठ तक डूबी हुई थीं। शीतादि सुख दुख उन्हें सता रहे थे। उनके पूर्व जन्मों के संस्कार श्रीकृष्ण के सम्मुख जाने में बाधा कर रहे थे। वे श्रीकृष्णचन्द्र के लिये सर्वस्व त्याग चुकी थीं किंतु उन्होंने अभी आपे को नहीं त्यागा था। वे अपने को नहीं भूली थीं। वे श्रीकृष्ण से मिलना चाहतीं किंतु संस्कारों का पर्दा बीच में रोड़ा डाल रहा था। उसी पर्दे को अपनी युक्ति से भगवान श्रीकृष्णचंद्र जा ने हटा दिया। शुद्ध प्रेम का अर्थ यही है कि मेरे और गोपियों के बीच में किसी प्रकार का संकोच भाव न हो। यदि बीच में संकोच है तो पूर्ण प्रेम नहीं है। उसी संकोच भाव को चीर हरण द्वारा भगवान् श्री कृष्णचंद्र जी ने अपनी स्वकीया गोपियों से हटा दिया। भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने कहा—मुझ से

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अनन्य प्रेम करने वाली कुमारियो ! आओ अपने को तथा अपने सर्वस्व को भूल कर एक बार मेरे निकट आओ। अपने हृदय में छिपे हुए त्याग को प्रकट करके मेरे निकट आने का साहस करो।

गोपी कहती हैं—हे कृष्ण ! हम संसार सागर में कण्ठ तक डूबी हैं। हम आना चाहती हैं, किन्तु फिर भी नहीं आ रही हैं हम बिना वस्त्रों के कैसे आ सकती हैं।

हे परीक्षित् ! साधक बड़ी दुविधा में पड़ा है—भगवान् को भी चाहता है और संसार के आवरण में भी रहना चाहता है। माया के पर्दे को भी नहीं हटाना चाहता। भगवान यही उन्हें उपदेश करते हैं—कि तुम इस माया के परदे को हटा कर मेरे निकट आओ। यह माया का पर्दा ही मुझ ब्रह्म और तुम आत्मा के बीच में बाधक है। इसे हटा कर मेरे निकट आओ। तभी तुम्हारी आकाँक्षा पूर्ण होगी अर्थात् मुझ ब्रह्म को प्राप्त कर सकोगी। चीर हरण का मुख्य उद्देश्य यही योगी जनों ने कहा है। जो इसी ध्यानकी धारणा करता है वह इस संसार के माया रूपी परदे को नष्ट करके श्रीकृष्ण-चन्द्र को शीघ्र प्राप्त कर लेता है। हे परीक्षित् ! उस समय श्रीकृष्ण की सात वर्ष की अवस्था थी। अज्ञानी पुरुष ही पाप की बुद्धि का आश्रय लेते हैं। इस दिव्य अलौकिक ब्रह्म और आत्मा के मध्य की लीला में भेद बुद्धि नहीं रखना चाहिए।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! वे गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की आज्ञा पाकर प्रसन्न मन अपने अपने घर गईं।

हे परीक्षित् ! एक दिन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र बलराम तथा गोपग्वालों के साथ गौएँ चरा रहे थे उस समय गोपग्वालों को अति भूख लगी। वे भूख से व्याकुल हो कर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तथा बलरामजी से इस प्रकार बोले।

—०—

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

यज्ञपत्नियों पर भगवान् की कृपा।

दो०—पति यदुपति जाने नहीं, जाने जगपति तीय।
ले भोजन की भेंट बहु, पहुँची सब तिहि ठीय॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ग्वालबाल बोले--हे बलराम जी! तुम महाबली हो। हे श्यामसुन्दर! तुमने दैत्यों का संहार किया है, हमारी इस भूख का भी संहार कीजिये। इसे बुझाने का उपाय बताओ। तब श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित्! ग्वाल बालों के ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण बोले–हे सखाओ! यहाँ से थोड़ी ही दूर पर मथुरिया ब्राह्मण आँगिरस नाम का यज्ञ स्वर्ग की प्राप्ति के लिये कर रहे हैं। उनकी यज्ञशाला में जाओ बिना सङ्कोच किये उनसे कहना कि हम को भगवान् बलरामजी तथा श्रीकृष्णजी ने भेजा है। हमको थोड़ा सा भात दे दो। भगवान्, श्रीकृष्णजी की आज्ञा मान कर ग्वालबाल ब्राह्मणों की यज्ञ शाला में गये। उन्होंने पहले उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। और फिर उन से प्रार्थना की कि हम लोग भगवान श्रीकृष्ण और बलराम की आज्ञा से तुम्हारे पास आये हैं वे गौयें चराते हुए यहाँ से थोड़ी दूर पर ही आये हुये हैं। उन्हें अति भूख लगी है वे आप लोगों से थोड़ा सा भात चाहते हैं। यदि आप श्रद्धापूर्वक दे सकें तो हमको उनके लिये कुछ भात दे दीजिये। यहाँ के अन्न को खाना निषेध है किन्तु उन्हीं यज्ञोंका अन्न निषेध माना गया है जिन में पशु बलि होने वाली हो। उसमें पशुबलि से पूर्व यज्ञ का अन्न नहीं खाते हैं दूसरे सौत्रामणि यज्ञ में अन्न नहीं खाते हैं और किसी यज्ञ में दीक्षित पुरुषों का अन्न खाना कोई पाप नहीं है। इन गोप ग्वालों ने अनेक प्रकार से गिड़गिड़ाय अकुलाय अनेक भाँति से प्रार्थना की, किन्तु उन मथुरिया ब्राह्मणों ने उनकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया। उन्हें तो केवल स्वर्ग पाने की तुच्छ कामना थी। वे अहङ्कारी ब्राह्मण अपने को ज्ञानवृद्ध मानते थे चारों वेदों के ज्ञाता बनते थे। किन्तु ज्ञान की दृष्टि से वे मूर्ख ही थे क्यों कि उनके यज्ञ के भोक्ता तो एक मात्र इन्द्रिय-जीत परम ब्रह्म भगवान श्री कृष्ण ही थे जो स्वयं ग्वाल वालों के साथ उनसे अपना यज्ञ का भाग माँग रहे थे किन्तु उन्होंने उन्हें साधारण मनुष्य समझ कर उनको यज्ञ का भाग न दिया। ग्वालबाल निराश होकर वहाँ से लौट आये। और उनकी सारी बातें भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जी को सुनाईं। उनकी इस अहङ्कारता पर भगवान् श्रीकृष्ण

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हँसने लगे और ग्वालबालों से बोले—हे ग्वालबालो ! संसार में असफलता मिलने पर निराश नहीं होते। बार बार प्रयत्न करने पर सफलता अवश्य मिलती है। हे प्यारे सखाओ ! तुम लोग इस बार उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ और उन से यह कहो कि राम श्याम गौएँ चराते हुए यहाँ आये हैं। उन्हें अधिक भूख लगी है। वे तुम्हें जितना तुम चाहोगे उतना भोजन देंगीं। उनका मन सदा मेरे में ही लगा रहता है वे मुझ से बहुत प्रेम करती हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की बात मानकर, ग्वालबाल अब की बार ब्राह्मण पत्नियों के निकट गये। ब्राह्मण पत्नियाँ सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण से सजधज कर भगवान् श्रीकृष्णजी के गुणानुवादों को गा रही थीं। उन ग्वाल बालों ने उन्हें बड़ी नम्रता से प्रणाम किया और कहा—हे देवियो ! यहाँ से थोड़ी दूर पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने भाई बलराम और ग्वालबालों के साथ गौएँ चराते हुए पधारे हैं। इस समय उन को तथा उनके साथियों को भूख ने अधिक सताया है। इस लिए तुम उनके लिए भोजन दो उन ग्वालबालों की बात सुनकर ब्राह्मण पत्नियाँ अति प्रसन्न हुईं। वे तो उनकी मनोहर लीलाएँ पहले से ही सुन सुन कर उन पर मुग्ध हो रही थीं। उनका मन सदा उन्हीं में लगा रहता था, केवल वे तो उनके दर्शनों की अभिलाषिनी थीं। भगवान् श्रीकृष्ण का आगमन सुन कर बड़ी उतावली से उन्होंने अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से थालों को सजाया और अपने भाई बन्धु, पति पुत्रों के रोकने पर भी वे न रुक कर अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने के लिये चल पड़ीं। क्यों न हो भगवान् श्रीकृष्ण उनके भाई, बन्धु पुत्र तथा पत्नियों के पति जो थे। उनकी पवित्र कीर्ति, गुण, लीला, सौन्दर्य, माधुर्य आदि का वर्णन वे पहले ही सुन चुकी थीं और उनके चरणों पर अपने को निछावर कर चुकी थीं। जब ब्राह्मण पत्नियाँ यमुना के तट पर पहुँची तब उन्होंने देखा कि अशोक बन में ग्वाल बालों से घिर कर बलराम जी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण इधर उधर घूम रहे हैं। उन के सलोने श्याम शरीर पर रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा है, कण्ठ में बन माला, अनेक प्रकार के रत्नाभूषण पहने हुए होने पर भी बन

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पुष्प तथा कोयलों के गुच्छे शरीर में सजा रक्खे हैं। उनकी एक भुजा एक सखा के कन्धे पर है और दूसरे हाथ में कमल का फूल शोभायमान है। कपोलों पर घुँघुराली अलकें कानों में कमल के कुण्डल और मुख पर मन्द मन्द मुस्कान शोभायमान है।

हे परीक्षित ! अब तक तो उन युवतियों ने उनके रूप माधुर्य को सुना ही था किन्तु अब उन्होंने प्रत्यक्ष देख लिया। उन्होंने अपने इष्टदेव को नेत्रों द्वारा अपने हृदय में बैठाल कर मन ही मन उनका आलिङ्गन करने लगीं और संसार जनित हृदयकी तपन को शान्त करने लगीं। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि ये मेरी भक्ता ब्राह्मण पत्नियाँ अपने भाई बन्धु पति पुत्रआदि सब को त्याग कर मेरे दर्शनों की लालसा से यहाँ आई हैं तब वे अपनी विश्व मोहिनी मधुर मुस्कान से बोले—हे महा भाग्यवतियो ! मैं तुम्हारा क्या स्वागत करूँ। तुम हमारे दर्शनों के लिए यहाँ आई हो यह तुम्हारे योग्य ही है। हे देवियो ! जो बुद्धिमान इस संसार में अपनी भलाई समझता है वह मुझे अपनी प्रियतम ही मानता है और ऐसे प्राणी मुझ से कामना रहित प्रेम करते हैं। जिस प्रेम में किसी प्रकार का संकोच, छल, कपट, छिपाव, द्विविधा तथा द्वेष भाव नहीं होता है। वे ऐसे प्राणी प्राण बुद्धि मन शरीर कुटुम्बी स्त्री, पुत्र, धन आदि समस्त सांसारिक वस्तुओं को त्याग कर अपनी आत्मा को मुझ परमात्मा में लगा देते हैं। उन्हें मुझ से बढ़ कर और कोई नहीं होता है। तुमने अपने मन को मुझ में लगा दिया है। मैं तुम्हारे प्रेम का सम्मान करता हूँ। तुमने मेरे दर्शन कर लिए अब तुम अपने २ घर लौट जाओ। तुम्हारे ब्राह्मण पति गृहस्थी होनेके कारण तुम्हारे बिना अपना यज्ञ पूर्ण न कर सकेंगे।

ब्राह्मण पत्नियों ने कहा—हे अन्तर्यामी भगवन् ! वे पति तो हमारे सांसारिक पति हैं और वास्तव में पति तो आप ही हैं। आप हमको अपने से अलग करने की ऐसी निष्ठुरता पूर्ण बात न कहें। ऋषियों ने भी कहा है कि जो एक बार भगवान् की प्राप्ति कर लेता है वह फिर संसार में नहीं लौटता आप अपने ही वेद वाक्य को सत्य कीजिये। हमने

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अपने समस्त सांसारिक पति प्रेम सम्बन्धी आदि के बन्धनों को काट कर आपके चरणों में इसी लिए आई हैं कि आपके चरणों से गिरी हुई रज और तुलसी की माला को अपने मस्तक में धारण करती रहें। हमारे पति पुत्र माता पिता भाई बन्धु तो आप ही हैं। अब हम किसके पास जावें। हम आपकी शरण में आकर अब किसका सहारा लें। हमारे पति पुत्रादि स्वजन सम्बन्धी हमें अब स्वीकार भी नहीं करेंगे। इसलिए आप ही हमें अपनी शरण में रखने की कृपा करें। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले-हे देवियो! तुम निश्चित भाव से अपने घर जाओ। तुम्हारे पति, पुत्र, माता पिता भाई बन्धु तुम्हारा कोई तिरस्कार नहीं करेगा। बल्कि वे तुम्हारा सम्मान ही करेंगे। क्यों कि अब तुम मेरी होगई हो। जिन पर मेरी कृपा होती है उन पर सारा संसार कृपा करता है। इसलिये अब तुम जाओ और अपना मन मुझ में लगादो तुम्हें शीघ्र ही मेरी प्राप्ति होगी।

श्री शुकदेवजी बोले-हे परीक्षित्! एक ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को आने से रोक दिया था। किन्तु उसने भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके अपना सांसारिक शरीर त्याग दिया और वह सब से पहले ही उनसे जा मिली।

जब उन ब्राह्मणों को यह मालूम हुआ कि श्री कृष्ण भगवान् हैं और हमने उस जगदीश्वर श्रीकृष्ण और बलराम की आज्ञा का उल्लंघन करके उन को भोजन नहीं दिया किन्तु हमारी पत्नियों ने बड़े प्रेम से भोजन अर्पण किया है तब वे अति प्रसन्न हुए और अपनी मूर्खता पर बार बार पछताने लगे। वे बोले-हाय हाय! हम लोग बड़े मूर्ख हैं। हमें धिक्कार है कि हमने बड़े बड़े यज्ञ किये किन्तु उन यज्ञों के भोक्ता भगवान् श्री कृष्ण को हम ने उन का भोग न दिया। हमने ऊँचे वंश में जन्म लिया है कर्म काण्ड में निपुण हैं। किन्तु यह कुछ भी हमारे काम नहीं आया। हमने घर पर आये हुये भगवान् का स्वागत नहीं किया जिनको बड़े बड़े योगीजन तथा यज्ञ के करने वाले बड़े कठिन परिश्रम से प्राप्त करते हैं उन्हीं घर पर आये भगवान् का हमने स्वागत नहीं किया। यह हमारे अशुभ कर्मों का फल है। इन स्त्रियों ने जो मूर्ख हैं। गृहस्थ में फँसी रहती हैं न इनका यज्ञोपवीत संस्कार ही हुआ है।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

इन्होंने तपस्या ही की है फिर भी इन्होंने योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को प्राप्त कर लिया है। उन्होंने अपने ग्वालबालों को हमारे पास भेज कर हमें चेतावनी दी। अपनी याद दिलाई किन्तु हम तो भी सचेत न हुए।

हे परीक्षित ! उन ब्राह्मणों ने भगवान् श्रीकृष्ण का तिरस्कार किया था इसलिये वे अपने अपराध पर अति पछिताने लगे। उनके हृदय में श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शनों की अति अभिलाषा हुई किंतु कंत के डर से वे उन के दर्शन करने न जा सके।

॥ चौबीसवाँ अध्याय ॥

ब्रज में इन्द्र यज्ञ की समाप्ति–

दो०–मघवा की पूजा तजी, पूज्यो श्री गिरिराज।
ब्रजवासिन दर्शन दिये, रचि माया ब्रजराज ॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी वृन्दावन में रह कर अपने ग्वालबालों के साथ अनेक प्रकार की लीला करने लगे। एक दिन ब्रज में बड़ी धूम के साथ वहाँ के सब गोप इन्द्र यज्ञ की तैयारी करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्यामी तथा सर्वज्ञ हैं। वे सब कुछ जानते हैं। फिर भी उन्होंने नन्दबाबा तथा बड़े बूढ़े गोपों से नम्रता पूर्वक पूछा हे पिताजी ! आज कौन से महादेव की पूजा होने लगी है जिसके लिए इतनी बड़ी तैयारी, पूड़ी पकवान, मिष्ठान आदि बन रहे हैं। मुझे यह जानने की अति लालसा है। नन्दबाबा बोले–हे बेटा ! हमारे ब्रज के स्वामी इन्द्र भगवान् हैं। वे मेघ बरसाते हैं। उससे घास तृण आदि उत्पन्न होते हैं। हमारी गोएँ चरती हैं और हम को दूध देती हैं। जल से ही समस्त यज्ञ की सामिग्री उत्पन्न होती हैं। उसी से अन्न उत्पन्न होता है जिस पर हमारा जीवन निर्भर होता है। इस लिये हमारे कुल परम्परा से इंद्र की पूजा चली आ रही है। उन्हीं का यज्ञ आज किया जावेगा।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! ब्रह्मा शङ्कर इत्यादि सभी का शासन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्र को शिक्षा देने के लिये विचार किया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उसको अति अहंकार हो गया था। उसके अहंकार का मर्दन करने के लिए उन्होंने नन्द बाबा से कहा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे पिताजी ! प्राणी अपने कर्मानुसार ही उत्पन्न होता है और कर्मानुसार ही मरता है। और उन्हीं के अनुसार सुख दुख आदि भोगता है। यदि कर्मों को न मान कर कर्म फल देने वाला ईश्वर को ही माना जावे तो वह ईश्वर भी कर्मों के अनुसार ही फल देता है। कर्म न करने पर वह भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता है जब सभी जीव धारी अपने२ कर्मों का फल भोगते हैं तब इन्द्रको मानने की क्या आवश्यकता है क्योंकि पूर्व जन्म के संस्कारों के अनुसार मिलने वाले भोगों को वह बदल नहीं सकता है और न उसमें कुछ अधिक लिख ही सकता है और न उसे टाल ही सकता है तब उस इन्द्र को हम ईश्वर क्यों मानें। प्राणी अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करताहै जीव अपने उत्तम और मध्यम कर्मों के अनुसार ही शरीर प्राप्त करता है तथा छोड़ता है। और कर्मों के अनुसार ही किसी को मित्र तथा किसी को शत्रु बनाता है। इसलिए हे पिताजी ! मनुष्य को अपने उत्तम कर्म ही करने चाहिये। हमारा कर्म गौ रक्षा करना है। उसके लिये हमें गिरिराज से घास मिलती है वही हमारा घर है उसकी गुफायें हमारा बैठने का स्थान है इसलिए हमें गौ ब्राह्मण और गिरिराज की पूजा करनी चाहिये। हे पिताजी जो हलुआ पूरी खीर दाल आदि सामिग्री बनी हैं उससे गिरिराज की पूजा की जाये। ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया जाये। गौओं को उत्तम चारा खिलाया जाये। वेद पाठी ब्राह्मणों से भली भाँति हवन कराया जाये। चाण्डाल से लेकर कुत्तों तक सब को सन्तुष्ट किया जावे। चन्दन तथा नवीन वस्त्रालंकारों से सजधज कर गौ ब्राह्मणों को आगे करके गिरिराज की परिक्रमा की जाये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—

हमारी बात सुनो ब्रजराज।
सुरपति को बलि भाग न दीजै पूजौ यह गिरिराज॥
बरषैं मेघ गाय सुख पैहैं, ह्वै है ब्रज सुख साज।
सूरदास प्रभु नन्द कुँवर कहैं वेही कीजै काज॥

CC-0. Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णा को यह बात सुनकर ब्रजराजनन्द तथा अन्य सभी बृद्ध गोपों ने उसे स्वीकार कर लिया पहिले उन्होंने वेदपाठी ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया फिर समस्त सामग्री हलुआ, पूड़ी, खीर आदि से गिरिराज की पूजा की ब्राह्मणों को दक्षिणायें दीं। गौओं को हरा २ चारा खिलाया। ब्राह्मणों ने सब ब्रजवासियों को आशीर्वाद दिये। तब सब गौओं तथा ब्राह्मणों को आगे कर के गिरिराज की परिक्रमा करने लगे। बहुत से छकड़ों गाडों में बैठ कर प्रदक्षिणा करने लगे। बहुत से पैदल ही चलने लगे। गोपियाँ अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के गुणगान करती हुई गिरिराज की परिक्रमा करने लगीं।

उस काल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपना दूसरा विशाल रूप धारण करके सब ब्रजवासियों को दर्शन दिए। उनकी पूजा की समस्त सामग्री स्वीकार की। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अन्य ब्रजवासियों के सहित उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। और बोले—हे ब्रजवासियो ! आपने प्रत्यक्ष गिरिराज भगवान् के दर्शन कर लिए हैं। वे तुम्हारी पूजा से अति प्रसन्न हैं। जो ब्रजवासी इनका अनादर करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। आओ हम सब मिलकर इन्हें नमस्कार करें।

हे परीक्षित ! नन्दबाबा तथा अन्य गोपग्वालों ने विधिवत् गिरिराज की पूजा की और सब ब्रजवासी उनके साथ ब्रज में लौट आये।

॥ पच्चीसवाँ अध्याय ॥

गोवर्धन—धारण

दो०—मार्‌यो मान इन्द्र कौ यदुपति, धार्‌यौ कर गिरिराज।
तिहिं छिन ब्रज रक्षा करी, कीन्हों निज जन काज॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब देवराज इन्द्र को यह पता चला कि ब्रजवासियों से मेरी पूजा छुड़ाय गोवर्धन की पूजा कराई है तब उसे अति क्रोध हुआ। उसे अपने इन्द्र पद का अहंकार था। उसने तुरन्त अपने सेनापति को बुलाय आज्ञा दी कि तुरन्त ब्रज पर सांवर्तक नाम के मेघ लेजा कर सारे ब्रज को पर्वत सहित वहा दो। उन

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रजवासियोंमें एक कृष्ण नाम का बालक उत्पन्न हुआहै उसी बालक की बुद्धि मानकर इन ब्रजवासियों ने मेरा अपमान किया है। उन्हें गौधन का घमण्ड हो गया है इसलिए उनके गौधन सहित सब धन का नाश कर दिया जावे। मैं भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर मरुद्गणों सहित ब्रज में आता हूँ।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! अपने स्वामी देवराज इन्द्र की आज्ञा पाय, सेनापति अति हर्षाय मेघों को सङ्ग लिवाय ब्रज पर आ टूटा बड़े घन घोर बादल छा गये। मूसलाधार पानी बरसने लगा। वायु तीव्र गति से बहने लगी। सारे ब्रज में जल ही जल छा गया। पानी बरस बरस कर ब्रजवासियों को पीड़ित करने लगा। सभी गोप ग्वाल तथा ग्वालिनें ठण्ड के मारे ठिठुरने लगे। गौएँ भूखी मरने लगीं। सर्वत्र जल ही जल हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा मानों अब शीघ्र ही प्रलय होने वाली है। उन प्रलय कालीन मेघों की वर्षा से जब सब ब्रजवासी व्याकुल हो उठे, तब वे हाहाकार करते हुए भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की शरण में गये। सभी गोपियाँ ग्वाले गोप पुकार पुकार कर कहने लगे—

राखि लेहु अब नन्द किशोर।
तुम जो इन्द्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर॥
ब्रजवासी तुम तन चितवत हैं, ज्यों करि चन्द्र चकोर।
जनि जिय डरौ नैन जनि मूँदौ, धरिहौं नख की ओर॥
करि अभिमान इन्द्र फिर आयौ, करत घटा घनघोर।
सूर श्याम कह्यौ तम कौं राखौ, बूँद न आवै छोर॥

हे प्यारे कृष्ण! हे श्याम! अब तुम हमारी रक्षा करो तुम्हीं हमारे रक्षक हो। इस गोकुल के एक मात्र स्वामी हो उस महा कोप से तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो। जब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने गोपियों गोपों ग्वालों तथा गौओं की इस प्रकार पुकार सुनी तब भक्त वत्सल भगवान ने विचार किया कि यह प्रचण्ड वायु तथा ओलों की वर्षा इन्द्र ही कर रहा है। यह मूर्ख अपने को लोकपाल मान कर ऐश्वर्य मद में चूर हो रहा है। इस का अज्ञान मुझे अवश्य मिटाना चाहिये। यह अपने सत्व गुण से च्युत हो गया है। इस का मान भङ्ग होने पर ही इस को शान्ति

In Public Domain.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

मिलेगी। यह सारा ब्रज मेरी शरण में है। इसका एक मात्र रक्षक मैं ही हूँ। भक्तों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा विचार कर—

राग गौरी—

श्याम लियौ गिरिराज उठाय।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोवर्द्धन करत सहाय॥
नन्द गोप ग्वालिन के आगे, देव कह्यौ यह प्रगट सुनाय।
काहे कौं व्याकुल भये डोलत, रक्षा करें देवता आय॥
सत्य बचन गिरिदेव कहत हैं, कान्ह लेहिं मोय कर उचकाय।
सूरदास नारी नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुंवर कन्हाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने खेल ही खेल में गिरिराज पर्वत को तुरन्त इस भाँति उठा लिया जिस प्रकार छोटे बालक बरसाती छत्ते को उखाड़ लेतेहैं। तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने सभी ब्रजवासियों से कहा हे माता पिता तथा ब्रजवासियो! तुम लोग सभी अपनी समस्त सामिग्रियों को लेकर गौओं के साथ इस पर्वत के गड्ढे में बैठ जाओ। तुम लोग इस बात की चिन्ता न करना कि यह पर्वत मेरे हाथ से गिर पड़ेगा। तुम लोगों की रक्षा के लिए ही मैंने इस पर्वत को अपनी कन्नी उँगलीपर धारण कियाहै। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे बचन सुनकर सभीब्रजवासी अपने गौधन बछड़ों छकड़ों आदि गृहकी सब सामिग्री तथा बाल बच्चों स्त्रियों आदि को लेकर उस गोवर्धन पर्वतके गड्ढेमें आगए। हे परीक्षित्! उस समय सात दिन तक लगातार मूसलाधार ओला पानी बरसता रहा। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की योग माया से गोवर्धन पर्वत पर एक पानी की बूँद भी न पड़ी और सभी गोप ग्वाल बड़े आराम से उस गोवर्धन पर्वत के गड्ढे में बैठे रहे। जब मेघों ने जाकर इन्द्र से कहा कि हमारा सारां जल चुक गया है लेकिन ब्रज पर एक बूँद भी नहीं पड़ी है तब इन्द्र यह सुनकर अति आश्चर्य में हुआ। मेघों के समाप्त होने पर सूर्य भगवान उदय हुए तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे ब्रजवासियो! अब तुम निडर होकर अपने २ स्थानों को जाओ अब इन्द्र तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। आँधी पानी बन्द हो गया।

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर सभी ब्रजवासी गोप ग्वाल गिरिराज पर्वत के गड्ढे से बाहर निकल आये तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने उस पर्वत को यथावत् ज्यों का त्यों रख दिया। ब्रजवासियों के हृदय में भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अगाध प्रेम तथा श्रद्धा तथा भक्ति जाग्रित हो उठी। और उन्होंने दौड़ कर उन्हें कण्ठ से लगाया। वृद्ध ब्रजवासियों ने उन्हें आशीर्वाद दिया और बलरामजी ने उन्हें छाती से लगाया। देवताओं ने आकाश से पुष्पों की वर्षा की। तुम्बर आदि गंधर्व तथा अप्सराओं ने उनकी लीलाओं का गायन किया। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बलराम जी को साथ ले ग्वाल बालों को आगे कर अपनी प्रेममयी गोपियों के हृदय को प्रफुल्लित करते हुए घर की यात्रा की। सभी ब्रजवासी आनंद विभोर हो घरों में लौट आये उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अवस्था सात वर्ष की थी।

॥ छब्बीसवाँ अध्याय ॥

नन्दबाबा तथा अन्य गोपों द्वारा श्रीकृष्णचन्द्र के प्रभाव के विषय में परस्पर बात चीत करना।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के इस अलौकिक कार्य को देख कर सभी ब्रजवासी परस्पर इस प्रकार कहने लगे। हे नन्द! तुम्हारे घर में जो बालक उत्पन्न हुआ है इसने अनन्त भार वाले गोवर्धन को इस प्रकार उखाड़ लिया जैसे कोई हाथी कमल को उखाड़ लेता है और इस सात वर्ष के बालक ने अपने नन्ने हाथ पर उसे सात दिन तक उठाये रक्खा यह साधारण मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं है। कुछ गोप बोले—अजी जब यह नन्हा सा बच्चा था तभी इसने पूतना नाम की राक्षसी को मार डाला था। जब यह केवल तीन महीने का था इस ने राते २ अपने पैर की ठोकर से उस बड़े भारी छकड़े को उलट दिया था। अरे भाई! जब उस बबण्डर के रूप में आये हुए तृणावर्त्त दैत्य को मारा था तब तो इसकी एक वर्ष की भी अवस्था नहीं थी। कुछ गोप बोले अरे तुम्हें पता नहीं है। जब यशोदा रानी ने इसे ऊखल से बाँध दिया था तब इसने इतने विशाल यमलार्जुन वृक्षों को उखाड़ डाला

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

था। ग्वाल बाल बोले—अरे आप लोगों को पता नहीं है। उन्होंने हमारे देखते देखते बकासुर दैत्य को मार डाला। एक दैत्य जो बछड़े के रूप में हमारी गायों में आ छिपा था उसको कैत के पेड़ से पछाड़ मारा। अरे भाई बलराम जी ने भी धेनुकासुर दैत्य को ताल बन में पछाड़ा था और उन्होंने प्रलम्बासुर दैत्य को भी खेल ही खेल में मार डाला। अरे भाई तुम्हें क्या पता नहीं कि श्रीकृष्णचन्द्र ने मुंजवन में दावानल से गौओं और गोपों की रक्षा की थी। यमुना जल में कालिया नाग को नाथ कर उसको बल पूर्वक दह से निकाल दिया। हे नन्द जी ! हम लोग यह भी देखते हैं कि इस बालक का प्रेम ब्रज वासियों में विशेष है और ब्रज वासियों का इसमें विशेष है यह अवश्य ही कोई महान् देवता है।

नन्द जी बोले—हे गोपो ! तुम लोग सावधानी से मेरी बात सुनो। मेरे बालक के प्रति किसी प्रकार की शङ्का मत करो। इसके विषय में महर्षि गर्गाचार्य मुझसे स्पष्ट कह गये हैं कि यह तुम्हारा बालक साधारण बालक नहीं है असाधारण बालक है यह युग युग में धर्म की स्थापना के लिए और पापियों के नाश तथा पृथ्वी का भार उतारने को अवतार लेता है। भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न भिन्न रूप धारण करता है सतयुग में श्वेत और त्रेता में रक्त और पीत तथा द्वापर में कृष्ण वर्ण से उत्पन्न हुआ है। इस लिए इसका नाम कृष्ण है। यह कभी वसुदेव जी का भी पुत्र रह चुका है इसलिए इसका नाम बासुदेव है। इसके नाम तथा गुण अनन्त हैं। उनको कोई कोई ही जानते हैं। यह साक्षात् नारायण का अवतार है। मुझसे गर्गाचार्य जी इतना कह कर चले गये। इसलिए हे गोपो ! तुम किसी बात की शंका न करो नन्दजी के मुख से ऐसी बात सुन कर सभी गोप ग्वाल गोपियाँ अति प्रसन्न हो उनकी स्तुति करने लगीं।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! अपने यज्ञ भङ्ग को देख कर इंद्र अति क्रोधित हुआ और ब्रज पर ओलों की बौछार, प्रचण्ड आँधी तथा मूसला धार वर्षा करने लगा। उस से सभी स्त्री, पशु तथा ग्वाले अति दुखी होने लगे तब अपनी शरण में रहने वाले ब्रजवासियों की यह दयनीय दशा और बुरा हाल देख कर भगवान् को अति दया

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आई। वे एक नई लीला करने के विचार से मुस्कराए और उन्होंने खेल ही खेल में गिरिराज को उखाड़ ब्रज की रक्षा की।

जिन भगवान् ने इन्द्र का मद चूर्ण किया वे ही श्रीकृष्ण हम पर प्रसन्न हों।

॥ सत्ताईसवाँ अध्याय ॥

❀ श्रीकृष्णचंद्र का अभिषेक ❀

दो०—ले गङ्गाजल इन्द्र ने, कियो तिलक ब्रजराज।
चरण शीश धरि विनयकरि, कीन्ह सुरन्ह के काज॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने जब ब्रज को देवराज इन्द्र के कोप से बचा लिया, तब गौ लोक धाम से कामधेनु और स्वर्ग से इन्द्र ब्रज में पधारे। देवराज इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के चरणों में गिर पड़ा और वह हाथ जोड़ उनकी स्तुति करने लगा।

इंद्र ने कहा—हे भगवन्! आप रजोगुण तथा तमोगुण से रहित शुद्ध सत्व मय हैं और यह सारा जगत आप की माया है। आपके स्वरूप की प्रतीति न होने पर ही देहादि के अभिमान से मनुष्य अहङ्कारी होजाता है। इसका कारण केवल अज्ञान ही है आप जगत के स्वामी, पिता, माता, तथा गुरू हैं। आपने भक्तों को आनन्द देने के लिये ही अपनी लीला से यह शरीर धारण किया। हे प्रभो! मेरे जैसे अज्ञानी अपने को जगत का स्वामी मानते हैं, किंतु वास्तव में जगत के स्वामी आप ही हैं। मैंने ऐश्वर्य मद में होकर आपका यह अपमान किया है। मेरा यह अपराध क्षमा करें, और मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे फिर मुझे यह मोह प्राप्त न हो। हे भगवन्! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ। आप भक्त वत्सल हैं। और विशुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं मैंने अज्ञानवश ब्रज पर मूसलाधार पानी और आँधी ओले डाले थे किंतु आपने अपने भक्तों की रक्षा की। आपने मेरा अहङ्कार नष्ट कर दिया मैं आपकी शरण में हूँ।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! जब इंद्र ने भगवान् श्री कृष्णचंद्र की इस प्रकार स्तुति की तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र जी मुस्कराते

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोले—हे देवराज ! तुमको अपने धन सम्पत्ति और ऐश्वर्य का मद हो गया था, उसी मद को नष्ट करने के लिए मैंने तुम पर कृपा कर के तुम्हारा यज्ञ नष्ट किया है। जिससे तुम नित्य निरंतर मेरा स्मरण करते रहो। मैं सदा कालरूप परमेश्वर काल दण्ड ले कर सब के सिर पर सवार रहता हूँ। जिस पर मेरी कृपा होती है पहले मैं उसका ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति नष्ट कर देता हूँ। हे देवराज ! मेरी तुम पर असीम कृपा है। अब तुम घमण्ड को त्याग कर अमरावती का शासन करो और नित्य निरन्तर मेरी मर्यादा का पालन करते हुए मेरा स्मरण करते रहो।

तब कामधेनु बोली—हे सच्चिदानंद घनस्वरूप महा योग योगेश्वर परमात्मन् ! आप स्वयं विश्व हैं और विश्व को उत्पन्न करने वाले हैं किंतु इतना होने पर भी आप विकारों से रहित हैं, आप अच्युत हैं। इस इन्द्र ने व्रज में मेरे स्वरूप में रहने वाली गायों को मारने की चेष्टा की किन्तु आपने हमारी रक्षा की। आप हमारे आराध्य देव हैं। हे प्रभो ! आप हमारे इन्द्र हैं और गौ, ब्राह्मण तथा साधुओं की रक्षा करने वाले हैं। हम गौएँ ब्रह्मा जी की आज्ञा से आप को इन्द्र मान कर इन्द्र पद पर अभिषेक करेंगी।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! ऐसा कह कर उस कामधेनु ने अपने दूध से और देव माताओं की आज्ञा से तथा, देवराज इन्द्र ने ऐरावत की सूँड में लाए हुए आकाश गङ्गा के जल से समस्त देवर्षियों के साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी का अभिषेक किया, और उनको गोविंद नाम से पुकारा। नारद, तुम्बुर, विद्याधर आदि गन्धर्व तथा अप्सरायें पहले से ही वहाँ आ गईं। वे सब उनके पवित्र गुणों का वर्णन करने लगीं। उन पर नन्दन बन के पुष्पों की वर्षा होने लगी सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। इस प्रकार इन्द्र ने गौ और गोकुल के स्वामी श्री गोविन्द का अपने हाथों से अभिषेक किया और उन से आज्ञा ले अपने लोक को चला गया।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय ॥

वरुण लोक से नन्द जी का लाना ।

दो०—वरुण लोक में नन्द जी ने, देखा कृष्ण स्वरूप ।
विनय करत सब चरण परि, गावें सुयश अनूप ॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! एक समय नन्द बाबा ने कार्तिक शुक्ला एकादशी का व्रत किया और द्वादशी लगने पर रात्रि में स्नान करने यमुना जी में घुसे । उस काल नन्द जी को पता नहीं था कि यह असुरों की बेला है । इस कारण वे रात्रि ही में स्नान के लिए यमुना जल में प्रवेश कर गए । उस समय जल पर वरुणदेव के एक सेवक असुर का पहरा था। उसने तुरन्त नन्दजी को पकड़ कर वरुण के सामने उपस्थित किया । नन्दजी के लापता होने पर सभी ब्रजवासी अति व्याकुल हुए और श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी से बोले—अब आप ही उन का पता लगा कर उन्हें ला सकते हो । हम को तुम्हारा ही भरोसा है । हे श्रीकृष्ण ! तुम सर्वशक्तिमान हो और तुमने ही सदा हम ब्रजवासियों की रक्षा की है । इतना कह कर सभी ब्रजवासी रोने पीटने लगे ।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अन्तर्यामी हैं उन से कोई बात छिपी नहीं है । उन्होंने तत्काल जान लिया कि मेरे पिता नन्द जी को वरुण का सेवक ले गया है, तब वे वरुण लोक में वरुण जी के निकट गये । जब वरुण ने देखा कि जगत् के स्वामी इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी स्वयं मेरे यहाँ पधारे हैं, तब उसने उठ कर उसका आदर सत्कार किया और विधिवत् पूजा की । उनके दर्शन कर वरुण के रोम—रोम खिल उठे तब वरुण बोला—हे परमात्मन् ! आज मेरा जन्म सफल हुआ । मेरा लोक पवित्र हो गया । आप की सेवा का सुअवसर आज मुझे प्राप्त हुआ । मैं आप को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता हूँ । आप अचिंत्य, अनन्त माधुर्य, सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि समस्त दिव्य गुणों से युक्त हैं । आप ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले हैं । मैं आप को नमस्कार करता हूँ । हे गोविंद ! यह मेरा सेवक अनजान से मूर्खतावश आप के पिता जी को पकड़ कर यहाँ ले आया है आप इस का अपराध क्षमा

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

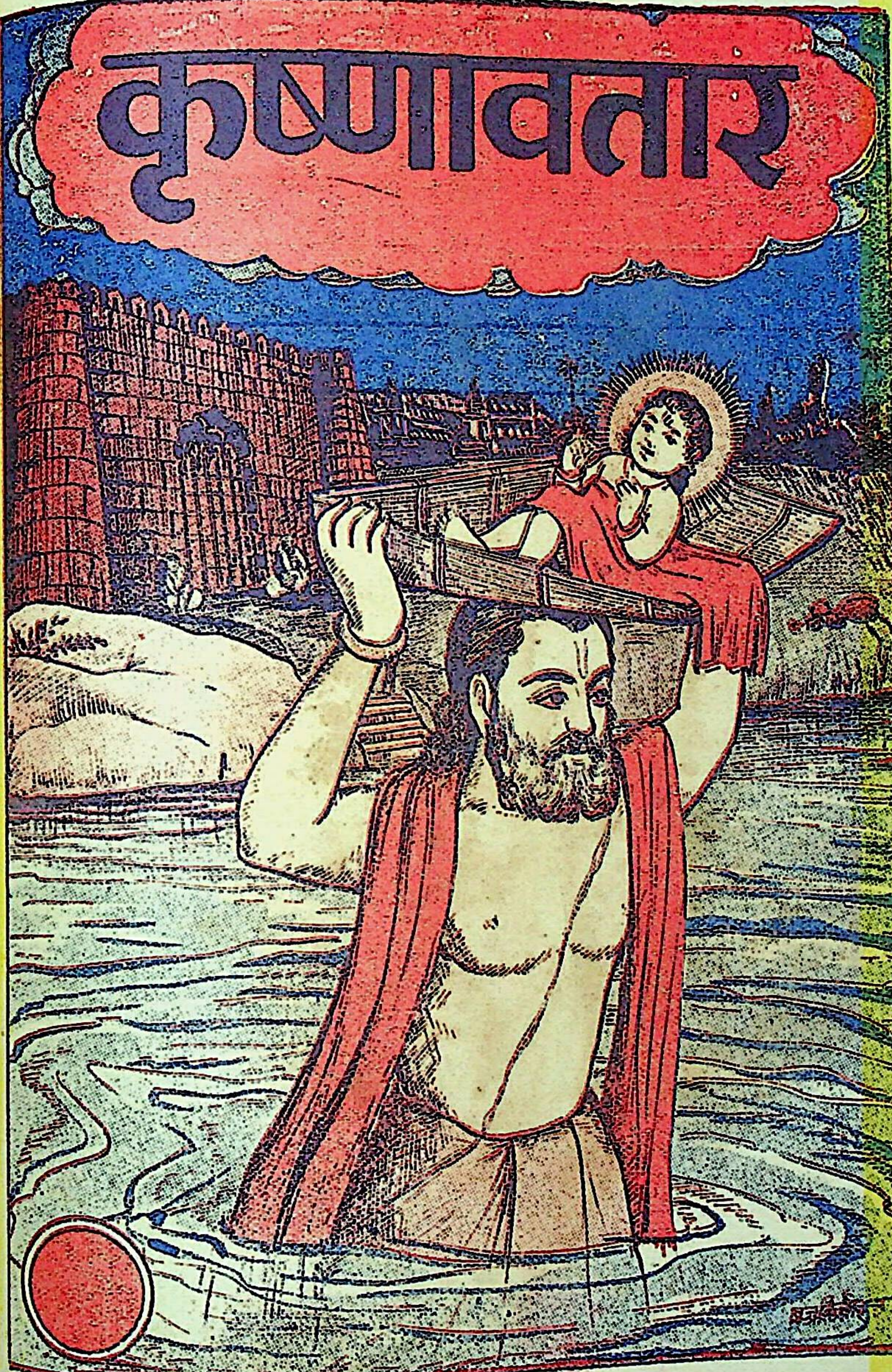

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

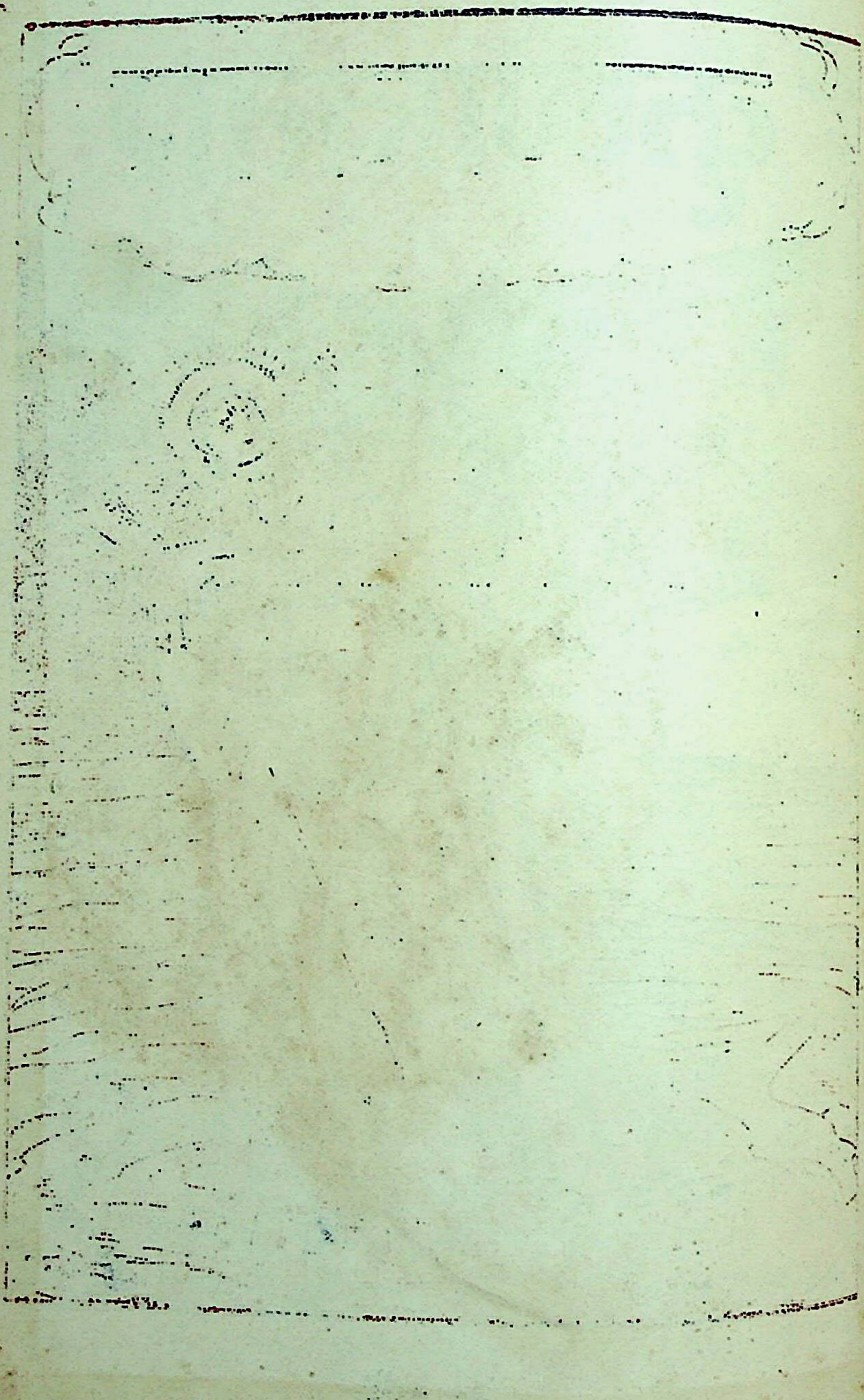

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करें। आपके पिता नन्दजी सकुशल यहाँ विराज रहे हैं। आप इन्हें ले जाइये। किन्तु हे प्रभो ! आप मुझ दास को भी न भूलिये और मुझे अपना बना लीजिये।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! जब लोकपाल वरुण ने लोकपालों के भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न हो कर उसके मस्तक पर अपना अभय हाथ रक्खा, और अपने पिता नन्दजी को ले ब्रज में आये। नन्दजी ने वरुण लोक में जाकर अपने पुत्र के प्रभाव को प्रत्यक्ष ही देख लिया था। उन के पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र के लिये सभी वरुण लोक निवासी झुक कर प्रणाम कर रहे थे। नन्दजी ने यह सब कथा ब्रज में आकर अपने साथियों को सुनाई, उनकी यह अद्भुत कथा सुन कर सभी ब्रजवासी अति आनन्दित हुए, और उन के प्रभाव को जानने लगे। सब ब्रजवासी बोले—अरे जिन्हें तुम अपना पुत्र समझते हो वह तो साक्षात् भगवान् हैं। जब वरुण लोक का ऐसा वैभव है, और स्वयं वरुण देव ने इनके चरणों में प्रणाम किया है, तब इन भगवान् के धाम का कैसा वैभव होगा। वे सभी भगवान् के स्वधाम को देखने की अभिलाषा करने लगे। हे परीक्षित् ! सर्वदर्शी भगवान् से भला यह बात कैसे छिपी रह सकती थी।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने सोचा—ये ब्रजवासी तो अब मेरे हो चुके हैं। मेरी सेवा में सदा तन्मय रह कर मुझे आत्म समर्पण कर चुके हैं। ऐसा विचार कर उन्होंने अपने प्रिय गोलोक धाम के दर्शन उन ब्रजवासियों को कराये। भगवान् के परम धाम के दर्शन ब्रह्म साक्षात्कार करने वाले योगी को ही होते हैं। इस लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने पहले उन ब्रजवासियों को ब्रह्म का साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त सनातन तथा ज्योतिस्वरूप है। जिसका दर्शन समाधि द्वारा गुणातीत योगी ही कर सकते हैं। हे परीक्षित् ! जो स्वरूप यमुना जल में अक्रूरजी को दिखाया था उसी ब्रह्मस्वरूप का दर्शन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन गोपों के ब्रह्म हृदय में प्रवेश करके उन्हें दर्शन कराये। उस ब्रह्म हृदय में डुबकी लगाते ही उन गोपों को भगवान् के दिव्य परम धाम का दर्शन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होने लगा। नन्द आदि गोप परमानन्द में मग्न हो कर वेद मूर्ति, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करने लगे। उस दिव्यधाम में उन नन्द आदि गोपों ने अपने ब्रजवासियों को भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति करते हुए देखा। यह देख कर वे अति आश्चर्य में हो गए।

॥ उन्तीसवाँ अध्याय ॥

रास लीला का प्रारम्भ—

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्!

भगवानपि तारात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः।
वीक्ष्य, रन्तु मनश्चक्रे योगमाया सुपाश्रितः॥

वह शरद्ऋतु थी जिस में बिना समय के ही बेला चमेली, मल्लिका आदि सुगन्धित पुष्प प्रफुल्लित हो कर महक रहे थे। उस समय अपनी योगमाया का आश्रय ले कर अपना (मनरहित) भगवान् ने अपने मन को स्वीकार किया और अपने अन्तरङ्ग दिव्य महारासको करने का विचार किया भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने चीर हरण के समय जिन रात्रियों का संकेत अपनी प्रेयसी गोपियों से किया था वे सब की सब रात्रियां पुंजीभूत अर्थात् एकत्रित हो कर एक ही महारात्रि के रूप में प्रमुदित हो रही थीं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस शरद पूर्णिमाकी रात्रिको देखा और उसे देखकर दिव्य बनाया। उन्होंने अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमाया का आश्रय ले कर रास क्रीड़ा करने का विचार किया। उन गोपियों को उसका निमित्त बनाया। हे परीक्षित्! यहाँ पर तुम को मेरी उस बात को नहीं भूलना चाहिये, जो मैंने चीरहरण लीला में तुम से कही है। वे गोपियाँ कौन थीं? इस बात का वर्णन मैं तुम्हें उस चीरहरण लीला में कर चुका हूँ उस का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। ये गोपियाँ वे ही वेद की ऋचायें योगीजन हैं जिन्होंने कल्प कल्प तक भगवान् के साथ क्रीड़ा करने के लिये तप किये थे, मिथिला, अयोध्या, कौशल, श्वेत द्वीप, रमाद्वीप आदि की गोपियाँ थीं जो भगवान् रामचन्द्र जी पर मोहित हो कर उनके साथ रमण करना चाहती थीं। उनके मन के सङ्कल्प को जानने वाले भगवान् राम ने उन्हें कृष्ण अवतार में उनकी मनः कामना पूर्ण करने का वरदान दिया था।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

वही समय अब आ चुका है। वे उनके अंतरङ्ग दिव्य महारास में सम्मलित होने योग्य होगई हैं। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कीर्तन,तथा उनके यशोगान में तन्मय हो कर अपने को श्रीकृष्णमय कर लिया। उनके पूर्व जन्मों के सभी पाप तथा प्रारब्ध के फल नष्ट हो चुके हैं। अब जो शेष रह गये हैं वे उनके स्पर्श करने से नष्ट होंगे। अभी तक उन गोपियों को उनके स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। इसी कारण वे भगवान् के अङ्ग स्पर्श के लिए अति आतुर, व्याकुल और बेचैन हैं उसी अङ्ग स्पर्श का सौभाग्य अपने भक्तों को प्राप्त कराने के लिये भगवान् सदा अपने गौलोकधाम में यह महारास करते रहते हैं और कभी कभी भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के लिये भूमण्डल पर भी करते हैं। अब उन गोपियों की इच्छा पूर्ण करने के लिये उसी अंतरङ्ग दिव्य महारास को करने का सङ्कल्प किया।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के महारास का सङ्कल्प करते ही चन्द्रमा ने प्राची दिशा में प्रकट हो कर अपनी शीतल किरणों से सारे विश्व को शीतल कर दिया और अपनी ज्योतिर्मयी किरणों से सर्वत्र रजत चाँदनी बिछा दी। वह पूर्णमासी की रात्रि थी। चन्द्रमा का मुखमण्डल लक्ष्मी जी के समान शोभा पा रहा था। उस की सुन्दर किरणों से सारा बन प्रेम के रङ्ग में रङ्ग रहा था। चन्द्रमा ने सर्वत्र अमृत का समुद्र उड़ेल रक्खा था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस महावन और उस चाँदनी युक्त रात्रि को और भी अधिक दिब्य बना दिया। तब उस रात्रि में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने ब्रज सुन्दरियों के मन को हरने के लिये अपनी त्रिलोकमोहनी मधुर बाँसुरी पर मधुर तान छेड़ी—

हरि मुरली मधुर बजाई,
मोहे सुर नर नाग निरन्तर, ब्रज बनिता अकुलाईं ॥
यमुना नीर प्रवाह थकित भयो, पवन रह्यो मुरझाई ।
खग मृग मीन अधीन भये सब, अपनी गति बिसराई ॥
द्रुमबेली अनुराग पुलक तनु शशि था क्यों निशिन घटाई।
सूरश्याम वृन्दावन विहरत, चलहु सखी सुधि पाई ॥ (सूर)

भगवान् का वह बंशीवादन सुनकर गोपियों के हृदय में भगवान् के

CC-0. In Public Domain. Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रति प्रेम, उनसे मिलन की आकांक्षापराकाष्ठा को उल्लंघन कर गई। वैसे तो श्यामसुन्दर ने गोपियों के मन को पहले से ही हर लिया था, किन्तु अब तो उनके मन से संसार का भय, संकोच धैर्य मर्यादा आदि सभी समाप्त हो गईं बंशी की ध्वनि सुनते ही गोपियों की दशा विचित्र हो गई। गोपियाँ बोलीं—

❀ राग केदारो ❀

आज बन वेनु बजावत श्याम,
यह कहि कहि चकित भईं गोपी, सुनत मधुर सुर ग्राम।
कोउ ज्योनार करति, कोउ बैठी, कोई ठाड़ी ही धाम॥
कोउ जेंवति, कोउ पतिहि जिमावति, कोऊ सिंगार में बाम।
मनौ चित्र कैसी लिखि काढ़ी, सुनत परस्पर नाम॥
सूर सुनत मुरली बौरी भई, मदन कियौ तन जाम॥ ("सूर")

वे गोपियाँ जिन्होंने भगवान श्रीकृष्णचंद्र को पति रूप में प्राप्त करने के लिए एक साथ ही साधना की थी वे भी एक दूसरी को सूचना न देकर अकेली ही छिप कर दौड़ पड़ीं। हे परीक्षित! वे इतनी द्रुतिगति से चलीं कि उनके कानों के कुण्डलों की हिलन अब भी मेरे हृदय में दीख रही है। बंशी की ध्वनि को सुन कर जो गोपी जिस प्रकार से थी, और जो कार्य कर रही थी, उन सबको ज्यों का त्यों त्याग कर चल पड़ीं।

जबहि बन मुरली श्रवन पड़ी,
चकित भईं गोप कन्या सब, काम धाम बिसरी॥
कुल मर्जाद वेद की आज्ञा, नेकहुं नहीं डरी।
श्याम सिन्धु सरिता-ललना-तृन, जल की ढरनिढरी॥
अङ्ग मरदन करवे को लागीं, उवटन तेल धरी।
जो जिहि भाँति चली सो तैसेहि निसिवन को मुखरी॥
सुत पति, नेह, भवन जन शंका, लज्जा नाहिं करी।
सूरदास प्रभु मन हर लीनों नागर नवल हरी॥ (सूर)

हे परीक्षित! जिसका चूल्हे पर दूध औट रहा था वह उसे औटता हुआ ही छोड़ कर चल पड़ीं। जिसका दूध उफन रहा था, उसे उफनता हुआ ही छोड़ कर चल पड़ी। जो लपसी पका रही थी वह उसे बिना उतारे ही छोड़ कर चल पड़ी। जो भोजन परस रही थी वह परसना छोड़

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर चल पड़ी। जो बच्चों को दूध पिला रही थी, वे उन्हें दूध पिलाना छोड़ कर चल पड़ीं जो अपने पतियों की सेवा, भोजन आदि करा रहीं थीं वे उन्हें ज्यों का त्यों छोड़कर चल पड़ीं। उस समय जो गोपियाँ शरीर में अङ्ग राग तेल का उबटन कर रहीं थीं या काजल लगा रहीं थीं या अपना श्रृङ्गार कर रहीं थीं उसको त्याग कर चल पड़ीं। उन्हें अपने वस्त्राभूषणों के पहनने का भी ध्यान नहीं था। किसी ने गहने पहन लिए, किसी ने नहीं पहने, किसी ने उल्टे सीधे आधे चौथाई ही पहन लिए। वे सबकी सब अति उतावली हो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द से मिलने के लिए चल पड़ीं। इस भाँति अब गोपियाँ अपने माता-पिता, पति, भाई, बन्धु पुत्र आदि सब को त्याग कर और अर्थ, धर्म, काम मोक्ष के सभी कर्मों का त्याग करके भगवान श्रीकृष्ण के निकट पहुँचीं। जब उन के पतियों पिता, माताओं तथा भाई बन्धुओं ने उन्हें रोका, तब वे उनके रोकने पर भी न रुकीं। जो गोपियाँ अपने गृहों में थीं और उनके पतियों ने उन्हें बन्द कर दिया था, वे वहीं पर अपने नेत्र बन्द करके भगवान् श्रीकृष्ण में तन्मय हो गईं और उनके रूप सौन्दर्य तथा लीलाओं का ध्यान करके भगवान् श्री कृष्णजी से जा मिलीं।

हे परीक्षित! उन गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति भगवत् भाव नहीं था, जार भाव था। किन्तु हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सत्य संकल्प स्वयं परमात्मा ही थे। उनका आलिङ्गन किसी भाव से उन्होंने किया। उन्होंने पाप तथा पुण्य से युक्त उस अपने त्रिगुण मय शरीर का त्यागन कर दिया और श्रीकृष्णमय होकर उनकी लीला में सम्मिलित होने योग्य अप्राकृत दिव्य शरीर उन गोपियों ने प्राप्त कर लिया। हे परीक्षित! इस भौतिक शरीर से भोगे जाने वाले कर्म तो उन गोपियों के भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ध्यान कीर्त्तन आदि से ही नष्ट होगये थे। पूर्व जन्म के कर्मों के अशुभ संस्कारों का लेश मात्र अभिशेष रहने के कारण ही उनमें यह जार भाव था। किन्तु उनका यह जार भाव भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अङ्ग सङ्ग से नष्ट हो कर पवित्र चिन्मय दिव्य तथा अप्राकृतिक हो गया था।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन् ! गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को केवल अपना प्यारा प्रीतम ही मानती थीं, उन में ब्रह्म भाव नहीं था। जार भाव था, किन्तु फिर भी वे इस संसार से निवृत किस प्रकार हो गईं ?

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! मैं तुम से इस विषय में पहले ही कह चुका हूँ कि किसी भी भाव से भगवान् का ध्यान करने वाला प्राणी उन्हीं को प्राप्त होता है वह शिशुपाल, कंस जो सदा भगवान् से द्वेष भाव रखते थे और उसी शत्रु भाव के कारण उन्हें सदा श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण सर्वत्र दृष्टि आते थे, इस कारण वे भी श्रीकृष्णमय होगये थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी परमगति देकर अपना पार्षद बना लिया। फिर ये गोपियाँ तो उन से प्रेम भाव रखती थीं। चाहे वह किसी भी प्रकार का था—उन्होंने अपना सर्वस्व उन्हें दे दिया था। वे उनकी अनन्य प्रेमिकायें थीं यदि वे भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त हो जावें, तो उस में कौन से आश्चर्य की बात है। उन्होंने अपनी जो यह प्रेम लीला प्रकट की है, उसका केवल यही तात्पर्य है कि उनके भक्तजन उन से चाहे जिस प्रकार का भी काम, क्रोध, भय शत्रुता, स्नेह, मित्रता आदि सम्बन्ध स्थापित करके अपने मन की वृत्तियों को उन में जोड़ दें। भगवान् में वृत्ति जुड़ने पर जीव उन्हें प्राप्त कर लेता है। हे परीक्षित् ! तुम जैसे परम भक्त को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति सन्देह की धारणा नहीं करनी चाहिये। वे सत्य संकल्प तथा अपनी भ्रकुटि मात्र के संकेत से जगत् का कल्याण करने वाले हैं। फिर उन गोपियों का क्या कहना है। जो उन की सर्वस्व थीं और भगवान् श्रीकृष्ण उनके लिये सर्वस्व थे।

हे परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि परम भक्त गोपियाँ उनके निकट इस महा रात्रि में आ गई हैं, तब समस्त अवतारों में सर्व श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यों बोले—

हे महा भाग्य गोपियो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए कौनसा कार्य करूँ ? कहो, ब्रज में तो कुशल है न ? हे सुन्दरियो ! इस समय तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है, हे सुन्दरियो ! रात्रि का समय बड़ा भयावना है। बड़े २ डरावने जीव

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जन्तु इधर उधर घूम रहे हैं। तुम अब शीघ्र ही अपने अपने घर ब्रज में लौट जाओ। रात्रि के समय स्त्रियों को अकेले भयावने बन में नहीं जाना चाहिये। तुम्हारे माता, पिता, भाई, बन्धु, पति तुम्हें घर न पाकर अति चिन्ताकुल होकर तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। उन्हें व्यर्थ तङ्ग करने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? यदि तुम लोग बन की शोभा देखने आई हो तो अब बन की शोभा भी देख चुकीं। देखो कैसे रङ्ग बिरङ्गे पुष्प इस शरद ऋतु की रात्रि में खिल रहे हैं। यमुना जल में कैसी मनोहर तरंगे उठ रही हैं। चन्द्रदेव की चाँदनी कैसी मनोहर खिल रही है। यह सब कुछ तुमने देख लिया। यदि तुम लोग मेरे दर्शनों को आई हो, तो वह भी तुम सब कर चुकीं। अब तुम्हें शीघ्र ही घर लौट जाना चाहिये। तुम कुलीन स्त्रियाँ हो, सती साध्वी हो, तुम्हें अपने पतियों की ही सेवा शुश्रुषा करनी चाहिये। तुम बड़ी दया हीन हो, तुमने अपने नन्हें दूध पीते बच्चों को भी त्याग दिया है। गायों के बछड़े दूध दुहने के लिये रँभा रहे होंगे, उन्हें दूध पिलाओ। तुमको रात्रि में एकान्त में पर पुरुष के पास नहीं रहना चाहिये। यह धर्म की मर्यादा को उल्लंघन करना है। यदि तुम मुझ से प्रेम करती हो और इस कारण यहाँ आई हो, तो यह कोई नई बात नहीं है मुझ से पशु पक्षी तक प्रेम करते हैं। तुम्हारा परम कल्याण तो केवल अपने पतियों की सेवा करने में है। पति चाहे अन्धा, लूला, लंगड़ा, कोढ़ी, निर्धन कैसा ही हो, उसका परित्याग नहीं करना चाहिये। पर पुरुष की सेवा करना महा पाप तथा निन्दनीय कार्य है। ऐसा करने से न इस लोक में शान्ति मिलती है न परलोक में स्वर्ग प्राप्त होता है। मोक्ष तो किसी प्रकार प्राप्त ही नहीं हो सकता है, केवल नरक ही नरक है। हे गोपियो ! यदि तुम मेरे अनन्य प्रेम के कारण यहाँ आई हो तो वह अनन्य प्रेम मेरे कीर्तन दर्शन, मेरी लीलाओं के श्रवण आदि से जैसा प्राप्त होता है वैसा प्रेम मेरे निकट रहने से प्राप्त नहीं होता है। इस लिये तुम अभी अपने अपने घर चली जाओ।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ऐसे मार्मिक बचन सुन कर गोपियों को महान कष्ट हुआ।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वे खिन्न मन और उदास होकर नेत्रों से अश्रु बहाती हुईं ऊँची ऊँची उसासें लेने लगीं। उनकी वर्षों की मनोकामनाओं पर तुषार पड़ गया निराश हो गईं। उनकी कृष्ण मिलन की आशा जाती रही—वे चिन्ता के अगाध समुद्र में गोते खाने लगीं। अपना अपना मुख नीचे लटका कर पगों के अँगूठे से पृथ्वी कुरेदने लगीं, और उनके नेत्रों का जल बह कर वक्षस्थल की चूनरी को काला करने लगा, और उनके कुचों पर लगी केशर धुल धुल कर बहने लगी। हेपरीक्षित्! उनका हृदय विषादसे इतना भर गया कि उसका अनुमान मैं स्वयं नहीं कर सकता—उन्होंने श्यामसुन्दर के लिये सारे भोग, सारी कामनायें त्याग दी थीं। श्रीकृष्ण में ही उनका अनन्य अनुराग तथा प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम की ऐसी निष्ठुर पूर्ण बातें सुनीं, तब तो उनकी आशाओं का जहाज टूट गया वे कुछ भी न बोलीं—चुपचाप टुसक टुसक कर रोने लगीं तथा उनके नेत्र रोते रोते लाल पड़ गये। तब उन्होंने धीरज रख कर गद्गद् कण्ठ से आँसू पोंछते हुए इस प्रकार कहा।

गोपियाँ बोलीं—हे प्राणप्यारे! तुम हमारे हृदय की व्यथा जानते हो। तुमको ऐसा निष्ठुर नहीं बनना चाहिये। हमने अपना सर्वस्व त्याग कर-सभी सांसारिक विषय भोगों का परित्याग करके केवल तुम्हारे चरणों से ही प्रीति जोड़ी है। हे प्यारे प्रीतम! तुम हठीले और स्वतन्त्र हो, तुम पर हमारा कोई वश नहीं है, किंतु फिर भी हे प्राणप्यारे! हमारा इस प्रकार परित्याग न करो, हमें अपना समझ कर स्वीकार करो। हे प्यारे मनमोहन! तुम समस्त धर्मों के मर्म को जानते हो। तुम्हारा यह कथन अक्षरशः सत्य है कि स्त्रियों का धर्म पति, पुत्र, भाई बन्धुओं की सेवा करना है किंतु तुम तो इनके भी पति सर्वात्मा ईश्वर हो। तुम साक्षात् भगवान् हो—जो प्रेम, पति, पुत्र आदि से हमारा हो, वह तो तुम्हीं से होना चाहिये। तुम संपूर्ण भूतों के आत्मा, मित्र तथा परम प्यारे हो। जिन प्राणियों को तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान है, जो तुम्हें पहिचानते हैं वे तो केवल तुम्हीं से प्रेम करते हैं सांसारिक पति, पुत्र, कुटुम्बी आदि से प्रेम नहीं करते हैं क्योंकि वे तो अनित्य नाशवान तथा दुःख देने वाले हैं। केवल सत्य सुख नित्य तो आप ही हैं। तुम्हीं हमारी आत्मा हो। इसलिए हमारा प्रेम जिस

In Public Domain,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अपनी आत्मा से हो सकता है उतना अन्य से नहीं। हे कृष्ण प्यारे !

दो०–पती पुत्र निज जन तजे, आईं तुम्हरे पास।
दीनबन्धु जगनाथ तुम, पुजवौ हमरी आस॥
कहा करें ग्रह जाय कर, अटक्यो मन तुम माहिं।
तुम सम दूजौ और नहिं, हम कूँ इस जग माहिं॥

हम तुम्हारी हैं तुम हमारे हो। बहुत दिन की लगी आस को न तोड़ो। इसे अपनी कृपा दृष्टि से पूरी करो। हे श्यामसुन्दर ! हमने अपनी समस्त इन्द्रियों को घरेलू काम धन्धों में लगा रक्खा था, किंतु तुमने हमारे चित्त को चुरा कर संसार से हटा लिया है। अब हमारे नेत्र, हमारे हाथ, हमारे पग, हमारा मन तुम्हें छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाना नहीं चाहते। हम अब किस प्रकार ब्रज में जाँय और यदि चलीं भी जांय तो वहाँ क्या करें ? मन तो तुम्हारे पास ही है। हे प्राण प्यारे ! तुम्हारी मन्द मन्द मुस्कान, प्रेम भरी चितवन, बाँसुरी पर मधुर तान ने हमारे चित्त में प्रेम तथा मिलन की आकांक्षा को उत्पन्न कर दिया है। उस अग्निको तुम अपने अधरामृत का पान कराके बुझा दो। यदि तुम ऐसा न करोगे तो हम तुम्हारी विरह की अग्नि से अपने को जला कर तुम्हारे ध्यान योग से तुम्हें प्राप्त कर लेंगी। (भक्त की यह प्राण त्याग की धमकी है) धन्य है गोपियो ! धन्य है !! तुम्हीं मद्भक्ता हो।

हे प्राण बल्लभे ! जिन चरण कमलों की सेवा का सौभाग्य लक्ष्मी जी को प्राप्त नहीं होता। उन्हीं चरणों की सेवा का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है ❀। इससे हमें बंचित न करो। हे स्वामी ! जिन लक्ष्मी

❀टिप्पणी–इन दोनों वाक्यों का तात्पर्य यह है कि गोपियाँ अपने प्रीतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को प्रसन्न करने के लिए उनकी चरण रज का महत्व विशेष प्रगट करती हुई अपनेको लक्ष्मीजीकी अपेक्षा विशेष सौभाग्यशालिनी मानती हैं इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लक्ष्मी जी को उनकी चरण रज प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता है। इसमें यह विशेषालङ्कार है। इसके अन्तर्गत भाव में लक्ष्मी जी की सर्व श्रेष्ठता प्रगट होती है। क्यों कि गोपियाँ लक्ष्मी जी से अपनी उपमा कर रही हैं और उपमा सर्व श्रेष्ठ की दी जाती है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जी की कृपा प्राप्ति के लिए बड़े बड़े देवता, योगीजन, कोटि कोटि युग तपस्या करते रहते हैं वे लक्ष्मी जी तुम्हारे वक्षःस्थल में विराजमान रह कर भी अपनी सौत तुलसी के साथ तुम्हारे चरणों की रज प्राप्ति के लिए तरसती रहती हैं। अब तक अनेकों भक्तों ने जिन चरण रज को अपने मस्तक पर चढ़ाया है उसी का सेवन करने लिए तुम्हारी शरण में आई हैं। आपने सदा अपने भक्तों के कष्ट मिटाये हैं अतः अब हमारे कष्ट भी मिटाइये। हमें भी अपना बनाइये। हम केवल तुम्हारी सेवा करने की इच्छा से अपना घर कुटुम्ब सर्वस्व त्याग कर तुम्हारी शरण में आई हैं। वहाँ अर्थात् इन सांसारिक द्वन्दों में रह कर तुम्हारी सेवा के लिए अवकाश नहीं मिल सकता है।

हे श्यामसुन्दर! तुम्हारे मिलन की अग्नि हृदय में जल रही है हमारा गात गात जला जा रहा है हमें अपने चरणों की दासी बना कर अपनी सेवा का अवसर प्रदान करो। हम तुम्हारी रूप माधुरी, मधुर चितवन, मन लुभावनी मुस्कान तथा लक्ष्मी जी के निवास स्थान, उस वक्षस्थल को देख कर और भक्तों की रक्षा करने वाली दोनों सुन्दर भुजाओं को देख कर हमारा मन तुम्हीं में लग गया है, हम तुम्हारी बिना मोल की दासी बन चुकी हैं। जब हम तुम्हारी त्रिलोक्य मोहनी बंशी की ध्वनि सुनती हैं और तुम्हारी उस बाँकी छवि को देखती हैं, तब हे बाँके बिहारी! हम अपने तन, मन की सुधि भूल कर तुम्हारे इन चरणों को चूमने की अभिलाषा करने लगती हैं। हमने उन्हीं चरणों को चूमने के लिए अपने कुल की लज्जा, कान, आर्य मर्यादा भक्ति सब त्याग दी हैं। यह बात हम से छिपी नहीं है कि तुम सब के जीवन दाता और सर्वात्मा भगवान् हो।

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित्! सनकादिक योगियों तथा शिवादि योगेश्वर के भी ईश्वर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने जब गोपियों की व्याकुलता से भरी हुई वाणी सुनी और उन्होंने यह जान लिया कि ये मेरे बिना अपने प्राण त्याग देंगी, तब भक्त वत्सल भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को अति दया आई। यद्यपि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र आत्माराम अर्थात् अपने में ही रमण करने वाले हैं। फिर भी अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

मधुर हँसी हँसी और उन के साथ क्रीड़ा प्रारम्भ कर दी। उन्होंने अपनी चेष्टाएँ, भाव भङ्गी सब गोपियों के मन के अनुसार करलीं, किन्तु वे अच्युत भगवान् अपने स्वरूप में ज्यों के त्यों स्थित रहे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रफुल्लित मुख कमल को देख कर गोपियाँ चारों ओर से उन्हें घेर कर खड़ी हो गईं।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की शोभा ऐसी प्रतीत होती थी जैसी तारागणों के मध्य में चन्द्रमा की शोभा होती है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र सोलह सहस्र गोपियों के यूथ में विचरण करते हुए वृन्दावन की शोभा देखने लगे। उस समय वृन्दावन धाम उन का निज गोलोक धाम हो गया था। कभी वे यमुना जी के पवित्र पुलिन पर विचरते, कभी घनी लताओं के बन में विचरते, गोपियाँ उनके साथ साथ उनका यशोगान करती जाती थीं। यमुना जी के स्वच्छ और रजित पुलिन पर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र गोपियों के साथ क्रीड़ा करने लगे। कभी हाथ फैला कर नृत्य करते कभी गोपियों का आलिंगन करते, वे कभी उनके हाथ दबाते तथा चोटी, जाँघ, ठोड़ी, तथा स्तन आदि का स्पर्श करते। कभी उन गोपियों की ओर त्रिलोक्य मोहिनी चितवन से देखते तथा मुस्कराते। इस भाँति उन गोपियों के दिव्य कामरस को तथा सर्वोत्कार प्रेमभाव को उत्तेजित करते हुए उदार शिरोमणि सर्व व्यापक भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अपनी ही आत्माओं (गोपियों) के साथ स्वयं लीला बिहार करने लगे। अर्थात् स्वयं परमात्मा अपने ही अंशभूत जीवात्माओं के साथ दिव्य लीला करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी ऐसी मनभावनी क्रीड़ा को देख कर उन मानवती गोपियों के मन में कुछ गर्व उत्पन्न हो गया। उन के मान को भंग करने के लिए भगवान् तुरन्त ही उनके मध्य में से अन्तर्द्धान हो गये।

॥ तीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—राधा प्यारी संग ले, दुरे श्री ब्रजराज।
सकल गोपिका विरहमें, तड़फति उनके काज॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अकस्मात अन्तर्द्धान होने पर वे सब ब्रज युवतियाँ व्याकुल हुईं जैसे यूथपति

CC-0. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गजराज के नष्ट होने पर उनकी हथिनियाँ व्याकुल होती हैं वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को न पा कर उनकी विरहाग्नि में जलने लगीं। वे व्याकुल होकर तथा उनके प्रेम में मतवाली होकर श्रीकृष्णमय हो गईं और उनकी अनेक प्रकार की चेष्टाओं का स्वयं अनुकरण करने लगीं। वे अपने को श्रीकृष्ण समझने लगीं उन्हीं की सी चाल, ढाल, चितवन, बोलचाल करने लगीं। कभी वे उनका यशोगान करतीं, कभी उनकी पिछली लीलाओं को करतीं, कभी ऊँचे स्वरों से पुकार पुकार कर उन्हें बन की झाड़ियों में ढूँढ़तीं। वे उन वृक्षों, बनस्पतियों बेलों आदि से कहतीं।

❀ राग रामकली ❀

कहि धौंरी बन बेलि कहूँ, तैं देखे हैं नद नन्दन।
बूझहूँ धौं मालती कहूँ, तैं, पाये हैं तन-चन्दन॥
कहि धौंकुन्द, कदम्ब, बकुल, बट, चम्पक, ताल तमाल।
कहि धौं कमला पति सुन्दर नैन विशाल॥
कहि धौं री कुमुदिनी कदली कछु कहि बदरी बीर।
कहितुलसी तुम सब जानति होंकहा घनश्यामशरीर॥
कहि धौं मृगी दया करि हमसौं कहिधौं मधुप मराल।
'सूरदास' प्रभु के तुम सङ्गी हैं कहँ परम कृपालु॥

हे परीक्षित! समस्त ब्रज की गोपियाँ भगवान् के विरह में इतनी बे सुध हो गईं कि बन के उन्न जड़, वृक्षों तथा बेलों से बिनती पूर्वक पूछने लगीं। जब बड़े-बड़े वृक्षों ने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया, तब वे बेलों और लताओं से पूछने लगीं। हे कुरुबक! हे अशोक! हे नाग केसरि चम्पा! तुमने कहीं हमारे श्यामसुन्दर देखे हैं? हे बहिन तुलसी! तुम तो अति कोमल हृदय की हो और तुम नित्य उन भगवान् के चरणों में प्रेम करती हो वे तुम्हारे भी प्यारे हैं, और हमारे भी इस लिए हमारी विरह व्यथा को तुम भली प्रकार जानती हो, तुमने कहीं श्यामसुन्दर को भी देखा है? हे प्यारी मालती! चम्पा! तथा जूही! तुमने हमारे मन मोहन को अवश्य देखा होगा। अरे रसाल!, प्रमाल! पीतशाल! करहाल,! जामुन! कदम्ब! तुमने अवश्य ही हमारे श्यामसुन्दर को देखा होगा। तुम्हारा जीवन दूसरों के परोपकार के लिए ही है। तुम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हमारे श्यामसुन्दर को बता कर परोपकार करो। उन वृक्षों से कुछ उत्तर न पा कर गोपियाँ बेसुध हो गईं। फिर उठ कर पृथ्वी से पूछने लगीं। हे पृथ्वी देवी! तुम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेयसी हो, तुम नित्य उनके चरण कमलों का स्पर्श करती हो। बामनावतार में उन्होंने तुम को नापा था और बाराह अवतार में तुमने उनका अङ्ग सङ्ग किया था। जब पृथ्वी ने कोई उत्तर न दिया तब वे बन की हिरनियों से पूछने लगीं। अरी हिरनियो! तुम्हारे नैनों को आनन्द देने वाले श्यामसुन्दर भी तुमने कहीं देखे हैं। कुछ गोपियाँ बोलीं—अरे यह देखो! उनकी कुन्दकली की माला के कुछ पुष्प यह गिरे हुये हैं। इन पुष्पों में कुछ कुंकुम की सुवास भी आ रही है। उस की गन्ध लेने के लिये भौंरे मँडरा रहे हैं। अवश्य ही वे श्याम सुन्दर इधर आए हैं।

हे परीक्षित! वे मतवाली गोपियाँ इस प्रकार प्रलाप करती हुई बन के पशु, पक्षी, वृक्ष बन लता आदि सब से कातर हो हो कर पूछने लगीं। कोई पूतना बन जाती, दूसरी कृष्ण बन जाती और उस का स्तन पान करने लगती। कोई वृषभ बन कर उस में ठोकर मारने लगी। कोई तृणावर्त्त दैत्य बन कर उन्हें चुरा कर ले जाने लगीं। कोई गोपी घुटनों के बल चल कर उनका अनुकरण करने लगी। कोई कृष्ण बलराम बनती और बत्सासुर, बकासुर आदि दैत्यों का रूप धर कर उनकी लीलाएँ करतीं। कोई बाँसुरी बजाती। कृष्ण बनीं गोपी किसी सखी के कन्धे पर हाथ रख कर उस की ओर मधुर चितवन से देखती और वह कहती—हे सखियो! मैं श्रीकृष्ण हूँ। अरे ब्रजवासियो तुम डरो मत, मैं आँधी पानी से तुम्हारा रक्षा करूँगा। कोई गोबर्द्धन धारण करने की लीला करती। अपनी ओढ़नी को ऊपर तान कर गोबर्द्धन बना लेती। एक गोपी कालिय नाग बन गई, और दूसरी कृष्ण बनी हुई गोपी उसके सिर पर चढ़ कर कहने लगी अरे दुष्ट सर्प तू यहाँ से चला जा। मैंने दुष्टों का संहार करने के लिए ही अवतार लिया है। इतने में एक ग्वाल बाल बनी हुई गोपी बोली—अरे देखो बन में आग लग गई है। तब कृष्ण बनी हुई गोपी कहने लगी अरे सब नेत्र बन्द कर लो मैं सब की रक्षा करता हूँ। इसी भाँति सब गोपियाँ उन की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित् ! कभी वे लीलाऐं करतीं । कभी वे फिर वृक्षों लताओं से रो रो कर पूछने लगतीं, और उन ब्रजबल्लभ के चरण चिन्हों के सहारे ढूँढ़ती हुईं गोपियाँ आगे बढ़ने लगीं । एक स्थान पर उन्हें किसी ब्रज युवती के चरण चिन्ह भी दृष्टि आये । उन चरण चिन्हों को देख कर वे डाह के कारण अति ब्याकुल हो गईं और परस्पर कहने लगीं कि यह कौन बड़ भागिनी गोपी है जिसे लेकर श्याम सुन्दर एकान्त में चले गये हैं ? अवश्य ही वह उन सर्व शक्तिमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की 'आराधिका' होगी । वह उनके चरण स्पर्श करके अपने को अहो भाग्य समझती हैं । जिनकी चरणों की रज के लिए ब्रह्मा शंकर तथा लक्ष्मी भी तरसती हैं उस रज को उसने अवश्य ही धारण किया होगा ।

दूसरी गोपी बोली—अरी सखी ! कुछ भी सही किन्तु इस गोपी ने तो हमारे सर्वस्व श्याम प्यारे को एकान्त में ले जा कर उन की अधरसुधा का रसपान अकेले में ही किया है । यह मान कर हमारे हृदय में अति क्षोभ उत्पन्न हो रहा है । अरी यह तो देखो यहाँ पर श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह बालू में अधिक गहरे धँसे हुए हैं । इस से प्रकट होता है कि उन्होंने अवश्य ही उस अपनी प्रियतमा को कन्धे पर चढ़ाया होगा । हे सखी ! वह कितनी बड़ भागिनी है कि उस के लिये भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ करने को तैयार हैं, और कहाँ हम दीन गोपियाँ हैं, जो उन के दर्शनों के लिए बन बन भटक रही हैं । कुछ दूर चल कर—अरे यह देखो ! यहाँ पर उस गोपी के चरण चिन्ह बिल्कुल भी नहीं दिखाई देते । इस से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अपनी प्रेयसी के कोमल चरणों में जब घास की नौंक गढ़ती होगी, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे अवश्य ही कन्धे पर चढ़ा लिया होगा । आगे बढ़ कर—अरे यह तो देखो यहाँ पर ये पुष्प बिखर रहेहैं, और पन्जे के चिन्ह धरती पर हैं । इस से प्रतीत होता है कि एढ़ी उचका कर पंजे के बल खड़े होकर उन्होंने अपनी प्रेयसी के लिये पुष्प तोड़े हैं और उन्होंने उस के केश गूँथे हैं ।

हे परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आत्माराम हैं, उन में काम की कल्पना फिर कैसे हो सकती है । फिर भी उन्होंने उन कामनियों को

In Public Domain, ...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रसन्न करने के लिए स्त्री परवस्ता, आदि प्रकट करते हुए उन्होंने उन गोपियों के साथ अपनी योग माया का वह खेल रचा था। वे गोपियाँ इसी भाँति मतवाली सी हो कर श्रीकृष्णचन्द्र के चरण चिन्हों को देखती हुई उन्हें खोजने लगीं। उस गोपी "आराधिका" को साथ लेकर वे चले गये थे। उस गोपी को अपने मन में बड़ा गर्व उत्पन्न हुआ कि मैं समस्त गोपियों में अति श्रेष्ठ हूँ। इसी कारण ब्रजविहारी श्रीकृष्णचन्द्र मुझे अधिक चाहते हैं। केवल मुझे ही आदरमान देते हैं। किन्तु हे परीक्षित! वे तो ब्रह्मा, शङ्कर आति के भी गर्व प्रहारी हैं। उन्हें यह बात कहाँ कब रुचने लगी। उस गोपी ने अपने प्यारे श्रीकृष्ण से कहा—कि अब मेरे पैर चलते चलते थक गये हैं। मुझ से अब आगे नहीं चला जाता। इस लिए तुम जहाँ जाना चाहो मुझे अपने कन्धे पर ले चलो। अपनी प्यारी गोपी की यह बात सुन कर उन्होंने कहा—अच्छा तुम मेरे कन्धे पर चलो। जैसे ही वह गोपी उनके कन्धे पर चढ़ी वैसे ही वे श्याम सुन्दर अन्तर्द्धान हो गये, और वह महा भाग गोपी रोती हुई रह गई। वह कहने लगी। हे मेरे स्वामी! हे कृष्ण! हे गोविन्द! मैं तुम्हारी दासी हूँ। मेरे प्रिय तुम मेरे जीवन धन मेरा अपराध क्षमा करो। मेरे रमण! मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रहूँगी। मुझे दर्शन दो। शीघ्र मेरे निकट आओ। मेरे प्यारे सखा मुझे मत भूलो मैं तुम्हारी दीन दासी हूँ। इसी भाँति वह गोपी अपने प्रियतम के वियोग में अचेत हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब वे अन्य गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्र को खोजते खोजते उधर आईं, तब उन्होंने उस अचेत पड़ी हुई गोपी को जगाया। उस गोपी ने अपनी समस्त लीला तथा कुटिलता और श्रीकृष्णचन्द्र का अन्तर्द्धान होना आदि सभी बातें उन गोपियों को सुनाईं। वे गोपियाँ सब मिल कर उन को अँधेरे बन, घोर जंगल आदि में खोजने लगीं। जब उन्हें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहीं भी न मिले, तब वे अति व्याकुल होकर यमुनाजी के पावन पुलिन पर लौट कर आगईं, और सब मिल कर उनके गुणों का कीर्तन करने लगीं।

—❀—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ इकत्तीसवाँ अध्याय ॥

गोपिका गीत—

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! गोपियाँ इस भाँति विरहाकुल होकर अपने ऊँचे ऊँचे स्वरों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के यशका गायन करने लगीं। वे बोलीं–हे कृष्णप्यारे! इस व्रजमें तुम्हारे अवतार लेनेसे यह व्रज बैकुण्ठधाम से भी अधिक पवित्र हो गया है। यहाँ पर बैकुण्ठ धाम को त्याग कर श्री लक्ष्मीजी निवास करती हैं। हे प्रियतम! तुमने सदा अपने भक्तों को सुख दिया है। उन की रक्षा की है किन्तु तुम अब हमारी रक्षा क्यों नहीं करते। हम तुम्हारी दासी हैं, तुम अन्तर्यामी हो, फिर भी हमारे हृदय की बात को क्यों नहीं जानते हो। तुमने हमारे काम को व प्रेम भाव को जगाया है। नेत्रों की कटाक्ष से हम पीड़ित हो गई हैं।

तुम्हारे नेत्रों की तुलना कमल भी नहीं कर सकते हैं। अपितु तुम्हारे नेत्रों ने उनके सौन्दर्य को भी हर लिया है, और उन्होंने हमारे चित्त को चुरा लिया है। हे वर देने वाले प्रभो! क्या आप के लिए स्त्री हत्या करना उचित है हम तुम्हारे बिना निर्जीव हैं। हमें जीवन दान दो, तुमने अनेकों बार दैत्यों से आँधी, वर्षा, बिजली, दावानल आदि से हमारी रक्षा की है, फिर तुम अब हमारी रक्षा क्यों नहीं करते हो? यदि हमको इस भाँति मारना ही था तो हमें उन विपत्तियों से क्यों बचाया था? तुम केवल यशोदाके ही नहीं हो बल्कि सारे संसार के प्यारे, समस्त प्राणियों के हृदय में रहने वाले, साक्षात् अन्तर्यामी परमात्मा हो। हमें यह सब कुछ पता है, कि ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर आपने यदुवन्श में अवतार लिया है, किन्तु फिर भी तुम हो तो हमारे सखा ही? तुम हमें इतना कष्ट क्यों दे रहे हो।

हे अच्युत! जो प्राणी इस जन्म मृत्यु रूपी चक्कर से डर कर तुम्हारी शरण में आ जाते हैं उन्हें तुम अपने कर कमल से अभय कर देते हो। उसी कर कमल को हमारे सिर पर क्यों नहीं रखते हो? हमारे सौभाग्य का गर्व देख कर तुम क्यों छिप गये हो? इस गर्व को चूर्ण करने के लिये

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

तो तुम्हारी मन्द मन्द मुस्कान ही पर्याप्त है। हम तुम्हारे चरणा पर निछावर हैं। हमें अपनी त्रिलोक विमोहन रूप माधुरी फिर दिखलाओ। तुम्हारे मिलने की इच्छा अब हमें अधिक सता रही है। काम को जलाने वाले अपने उन चरणों को हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हमारी काम ज्वाला को शान्त कर दो।

हे मोहन! तुम्हारी वाणी अति मधुर और मोहिनी है। उस के एक एक अक्षर, पद, तथा शब्द से बड़े बड़े विद्वान मोहित हो जाते हैं। उसी वाणी का आनन्द लेने वाली हम तुम्हारी दासी गोपियाँ हैं। हमें अपने अधर रस का दिव्य अमृत पिलाकर जीवन दान दो। तुम्हारी लीलाओं का गायन सदा सर्वदा बड़े २ योगीजन करते हैं। जब तुम्हारी कथा का ही ऐसा उत्तम आनन्द है तब तुम्हारे सङ्ग से उत्पन्न होने वाले आनन्द का तो कहना ही क्या है जिसको एक बार तुम्हारे सङ्ग का आनन्द प्राप्त हो गया है। तुम्हारी प्रेम भरी मधुर चितवन को जिसने देख लिया है उसे फिर इस जगत में और किसी अन्य के संग की इच्छा नहीं रहती है।

हे प्राणवल्लभ! तुमने पहिले पहिले हमारी ओर प्रेम भरी चितवन से देखा उसके बाद तुम मिले। तुमने हृदय स्पर्शी ठठोलियाँ हम से कीं प्रेम युक्त वार्तालाप हम से किये। अब वे तुम्हारी सब बातें कहाँ चली गईं। हे परीक्षित! यहाँ तक गोपियों में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति जार भाव था। किन्तु चीरहरण के पश्चात् उनका जार भाव नष्ट हो गया। अब उनके रहे सहे शेष कलुषित पाप भी उनके अङ्ग सङ्ग से धुलने जा रहे हैं। वे गोपियाँ उसी अङ्ग सङ्ग के लिये श्रीकृष्णमय होकर तड़प रही हैं। वे कहती हैं—हे परमात्मन्! तुम अपने कल्याणमय चरण कमलों को हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हृदय की व्यथा को शान्त करो। हे कृष्ण! जब तुम नित्य वन में चले जाते हो तब हमारा एक एक क्षण एक एक युग के समान व्यतीत होता है और तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में सब दिन काट देती हैं तब सन्ध्या के समय तुम्हारे लौटने की अभिलाषा से हम अति आतुर होकर तुम्हारे दर्शनों के लिये अपलक होकर मार्ग में खड़ी हो जाती हैं। हे प्यारे! श्यामसुन्दर! अब हम अपनी लोक मर्यादा, पति

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पुत्र, भाई बन्धु, कुल परिवार आदि सभी सांसारिक व्याधाओं को त्याग कर केवल तुम्हारी शरण में आई हैं। हे कपटी मोहन ! रात्रि में आई हुई युवतियों को इस दुखद अवस्था में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन त्याग सकता है। तुम्हारे जिस विशाल वक्षःस्थल पर लक्ष्मी जी नित्य निवास करती हैं, जब से हमने उसे देखा है, तब से हमारे हृदय में तुम्हारे मिलने की लालसा अधिक बढ़ गई है। हे प्राण प्यारे ! हमारा हृदय तुमसे मिलने के लिये तड़प रहा है। हे श्याम सुन्दर ! हमें अपने हृदय के दुःख की चिन्ता नहीं है। हमें दुःख इस बात का है कि तुम्हारे चरण कमल इतने सुकुमार हैं कि हम उन्हें अपने कठोर स्तनों पर बड़े डरते डरते अति धीरे से रखती हैं कि कहीं उन में चोट न आ जावे। वे ही तुम्हारे चरण कमल अब न जाने किन कंकण पत्थर तथा कठोर घास पर पड़ रहे होंगे हम इसी व्यथा से अधिक दुखी हैं। हे प्राणवल्लभ ! हम तुम्हारी हैं।

अब आन मिलो नन्दलाल।
दुर्बल मलिन फिरत हम बन बन, तुम बिन मदन गोपाल ॥
द्रुम बेली पूछति सब उझकति, देखति ताल तमाल।
खेलत चहत रास रँग तुम सँग, छोड़ीं सब ब्रज वाल ॥
गोपि वृन्द ढूँढ़त सब डोलें, अब प्रकट होहु नन्दलाल।
'सूरदास' गोपी सब रोवें, होहि होहि अधिक बिहाल ॥

॥ बत्तीसवाँ अध्याय ॥

गोपियों के मध्य में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का प्रकट होना—

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के विरह में गोपियाँ अनेक भाँति से प्रलाप करके फूट फूट कर रोने लगीं। हे परीक्षित

तिहिं छिन प्रगट भये नन्दलाल।
रहत प्रेम के वस्य कन्हाई, युवती करीं निहाल ॥
पाय कृष्ण प्यारे अपने को, मुदित भईं ब्रजबाल।
बिना कृष्ण प्यारे के गोपी, व्याकुल अति बेहाल ॥
उठि २ कैं धाईं ब्रजबनिता, गिरीं चरण तत्काल।
चरण परस मोहन अपने के, भईं गोप—गोपाल ॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्यामसुन्दर का मुख कमल मन्द मन्द मुस्कान से खिला हुआ था उन के श्याम शरीर पर पीताम्बर तथा बनमाला शोभायमान थी। उनका वह मनमोहन स्वरूप कोटि कोटि कामदेवों के मन को लज्जित करने वाला था। अपने मध्य में श्यामसुन्दर को प्रगट हुआ देखकर प्राणहीन गोपियाँ के प्राण सजग हो उठे। वे आनन्द में खिल उठीं उनमें नवीन स्फूर्ति चेतना आगई। किसी गोपी ने उनके चरण दबाये कोई उन के कर कमल अपने हाथों में लेकर दबाने लगी। कोई उन की विशाल भुजाओं को अपन कन्धे में डालने लगी। किसी ने उन के मुख का पान अपने मुख में ले लिया। किसी ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण कमल को लेकर अपने वक्षःस्थल पर रख लिया कोई विह्वल हो कर अपनी तिरछी चितवन से उनकी रूप माधुरी का पान करने लगी। कोई मन ही मन उन के दिव्य स्वरूप का ध्यान करके उनका आलिंगन करने लगी। हे परीक्षित! जिस रूप माधुरी का परमानन्द मुमुक्षु योगीजन लेते रहते हैं उसी रूप माधुरी का परमानन्द गोपियाँ लेने लगीं। उन गोपियों को जो विरह का दुःख हुआ था अब वह जाता रहा। वे परमानन्द में मग्न हो गईं। उन्हें अथाह शान्ति की प्राप्ति हो गई।

हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण अच्युत तथा एक रस हैं। उनका ऐश्वर्य रूप माधुर्य, दिव्य है। उन अपनी आत्मा गोपियों के मध्य में उन परमात्मा की शोभा इस प्रकार होने लगी जिस प्रकार वे अपने नित्य धाम में अपनी विभूतियों के मध्य में शोभित रहते हैं। हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण हँसे उनकी हँसी के साथ ही गोपियाँ हँसी और उनकी सारी विरह व्यथाके अशुभ लेकर हवा हो गये। उन को साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यमुना के पुलिन पर आये। उस समय शीतलमन्द सुगन्धि पवन चल रहा था। मतवाले भ्रमर उस सुगन्धि को लेकर इधर उधर गुञ्जार रहे थे। शरद ऋतु की चाँदनी अपनी दिव्य छटा दिखा रही थी। सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश था। अन्धकार का नामभी नहीं था। यमुनाजी का कोमल पुलिन उनकी क्रीड़ा का रंगमंच बना हुआ था। उस समय उन गोपियों ने अपनी अपनी ओढ़नी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के बैठने के लिये बिछा दी।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को बड़े बड़े योगीजन अपने हृदय कमल के आसन पर विराजमान करते हैं। वे ही सर्वशक्तिमान भगवान् यमुना जी के पुलिन पर गोपियों की ओढ़नी पर विराजमान हो गये। तीनों लोकों का सौंदर्य जिनके सौंदर्य के एक विन्दु मात्र के समान भी नहीं है वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन के मध्य में विराजमान होकर अपने दिव्य सौंदर्य से उन गोपियों के प्रेम को और भी उभाड़ने लगे। गोपियाँ अपनी मधुर चितवन, मन्द मन्द मुस्कान तथा मनोहर भाव भङ्गी से उनका सम्मान कर रही थीं। किसी गोपी ने उनके चरण अपनी गोद में रख लिये, किसी ने उनके हाथ अपने वक्षःस्थल पर रख लिये। कोई अपनी ओढ़नी से उनकी हवा करने लगी, कोई अपलक होकर उनकी ओर एक टक देखने लगी। कोई गोपी श्रीकृष्णचन्द्र के छिप जाने से रूठ कर कहने लगी–

गोपियाँ बोलीं हे प्राण प्यारे! १–कुछ प्रेमी तो ऐसे होते हैं जो प्रेम करने वाले से ही प्रेम करते हैं। २–कुछ प्रेमी ऐसे होते हैं जो प्रेम न करने वाले से भी प्रेम करते हैं। किन्तु इन दोनों से भी अलग एक तीसरे प्रकार के प्रेमी होते हैं। ३—जो प्रेम करने वाले से भी प्रेम नहीं करते हैं। न करने वाले का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। हे प्यारे! इन तीनों में तुम्हें कौनसा रुचता है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले–हे गोपियो! १–जो प्रेम के बदले में प्रेम करते हैं उनमें स्वार्थ भाव होता है। प्रेम के बदले में प्रेम देते लेते हैं। उनमें सच्चा सोहार्द तथा धर्म नहीं है। उनका स्वार्थ का प्रेम है। २–जो प्रेमी प्रेम न करने वाले से प्रेम करते हैं वे स्वभाव से ही दयावान करुणाशील होते हैं। उनका हृदय स्वभाव से ही दया, दूसरों का परोपकार, हितैषिता आदि से भरा होता है वे सज्जन पुरुष होते हैं जैसे माता पिता बिना स्वार्थ के ही प्रेम करते हैं। उनके प्रेम में वास्तविक सत्यता तथा धर्म होता है। ३–तीसरे प्रकार के तुमने जो मनुष्य कहे हैं कि अपने प्रेम करने वाले से भी नहीं करते ऐसे चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

१—एक तो वे योगीजन होते हैं जो अपनी आत्मा में ही रमण करते रहते हैं। उन्हें जगत से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। २—दूसरे वे मुमुक्षलोग होते हैं जो कृतकृत्य हो चुके हैं उन्हें द्वैत तो भासता है किन्तु किसी से कोई मतलब नहीं रखते हैं। ३—तीसरे वे लोग हैं जो कृतघ्नी (गुनमेटा) होते हैं जिन्हें यह पता नहीं है कि हम से कौन प्रेम करता है । ४—चौथे वे व्यक्ति होते हैं जो स्वभाव से ही द्रोही होते हैं और जान बूझ कर गुरु माता पिता तुल्य सज्जनों से शत्रुता रखते हैं।

हे गोपियो ! यदि तुम मेरे विषय में यह प्रश्न कर रही हो तो मेरी दशा तो यह है कि अपने प्रेम करने वालों से भी पूरी तरह प्रेम नहीं कर सकता हूँ जितना उनसे करना चाहिये। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं उन से प्रेम नहीं करता हूँ। मैं ऐसा इस लिये करता हूँ कि उनका चित्त निरन्तर मेरे में लगा रहे। जिस भाँति एक निर्धन को एक बार धन मिल जाय और फिर वह खो जाय तो वह उस धन की प्राप्ति की चिन्ता में ही लगा रहता है उसी भाँति मैं भी अपने भक्तों से मिल मिल कर छिप जाता हूँ। हे गोपियो ! तुम्हारा कथन सत्य है इस में लेशमात्र भी असत्य तथा सन्देह की बात नहीं है कि तुमने मेरे लिये अपना घर बार, पति, भाई बन्धु, कुटुम्बी, पुत्र, धन सब कुछ त्याग दिया है। जब तुम एक बार संसार से मुक्त हो चुकी हो, तब तुम्हारी चित्त वृत्ति केवल मुझ में ही लगी रहे, इसी लिए मैं छिप गया था । हे गोपियो ! मैं तुम्हारे ही साथ में था। कहीं दूर नहीं गया था। मैं तुम्हारी सब प्रेम भरी बातें सुन रहा था। तुम्हारे प्रेम में मग्न था । तुम मेरी परम प्रेयसी स्वकीया हो। मैं तुम्हारा प्याराहूँ। तुमने इस संसार के बन्धन को काटकर अपनी मनोवृत्ति मुझ में लगा दी है। इस कार्य को बड़े २ योगीजन भी करने में असमर्थ होते हैं। मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम तुम्हारा मिलन, सर्वथा पवित्र, निर्मल तथा दोष रहित है। तुम्हारे इस प्रेम का बदला अनन्त काल तक भी चुकाने में समर्थ नहीं हूँ। जन्म-जन्मान्तर के लिए तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने उदार स्वभाव वश मुझे अपने प्रेम से उऋण कर सकती हो, किन्तु मैं तो जीवन में तुम्हारा ही रहूँगा।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

॥ तेतीसवाँ अध्याय ॥

महारास—

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अन्तर्धान होने के कारण गोपियों के हृदय में जो पीड़ा शेष रह गई थी वह भी उनके प्रेम बचन सुन कर जाती रही ।

तब हे परीक्षित्—

रसबस श्याम कीनी ग्वारि ।
अधर रस अंचवत परसपर, सङ्ग सब व्रजनारि ॥
काम—आतुर भईं बाला, सबनि पुरई आस ।
इक इक व्रजनारि इक इक आपु कर्‌यो प्रकाश ॥
कबहुँ नृत्यत कबहुँ गावत, कबहुँ दिव्य विलास ।
सूर के प्रभु रास नायक, करत सब दुःख नास ॥

सब गोपियाँ बाँह में बाँह डाल कर खड़ी हो गईं ।

भगवान् ने अपनी दिव्य रास क्रीड़ा आरम्भ की । उन्होंने अपनी योग माया का आश्रय लेकर जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही अपने रूप प्रकट किये । दो दो गोपियों के मध्य में प्रगट हो गये और उन के कण्ठ में अपनी बाँह डालदी । एक गोपी और एक कृष्ण इस भाँति से खड़े हो गये । हर एक गोपी यही समझती थी कि मेरे प्यारे कृष्ण मेरे साथ ही हैं। इस भांति सोलह सहस्र गोपियों में अपने उतने ही रूप धारण कर के योगी योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रास क्रीड़ा करने लगे ।

हे परीक्षित् ! उस समय आकाश विमानों से भर गया । उन में देवाङ्गनायें तथा देवतागण झुण्ड के झुण्ड मिल कर उनकी यह अन्तरङ्ग दिव्य रास लीला देखने लगे । रासोत्सव को देख कर उन के मन उन के हाथ से निकल गये देवाङ्गनायें तरसने लगीं कि हाय हम गोपियाँ क्यों न हुईं। स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं । पुष्पों की वृष्टि होने लगी । गन्धर्व तथा अप्सरायें दिव्य वादन (नृत्य के बाजे) बजाने लगे । ताल स्वर देने लगे । सभी गोपियाँ अपने प्यारे श्याम सुन्दर के साथ नृत्य करने लगीं। उनके पायलों की रुन—झुन—रुनु—झुनु, ध्वनि कंगन करधनी के घुँघरों की झम झम की ध्वनि एक साथ ही गूँज उठी । असंख्य गोपियों की

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ध्वनि बड़े ही जोर से होने लगी। अगणित पीली पीली सुनहरे रङ्ग की गोरी गोपियों के मध्य में नील मणि के समान श्यामसुन्दर की शोभा हो रही थी, अथवा यह समझो कि श्याम बादलों के मध्य में दामिनी चमक रही हो। वे कभी भाँति भाँति के ठुमके मार कर आगे कभी पीछे बढ़तीं कभी घूमती कभी हाथ उठा कर कभी हाथ नचा कर अपने नृत्य भाव प्रदर्शित करतीं कभी कलापूर्ण विधि से मुस्करातीं, कभी भाहें मटकातीं, कभी कमर लचकातीं, कभी कमर हिलातीं, कभी घुटनों पर, पंजों पर बैठ कर नाचतीं। उस समय उन के भारी स्तन, कानों में कुण्डल तथा मुक्तामणियाँ बड़ी तीव्र गति से हिलने लगते। नाँचते नाँचते उनके मुख मण्डल पर पसीने की बूँदें झलकने लगी। उनके केशों की बेणियाँ खुल गईं, उन में गुथे हुये पुष्प झर झर कर गिर गये। यहाँ तक कि उन के लहँगों की (नीवी) नाड़ों की गाँठें भी खुली जा रही थीं। हे परीक्षित! उस समय की शोभा अवर्णनीय है। उनकी शोभा असीम तथा उन का सौभाग्य अपार था। वे कभी श्रीकृष्ण से सट जातीं कभी उनके कण्ठ में हाथ डाल कर झमकी लगातीं। कभी ऊँचे स्वर से गीत गातीं, उनके राग रागनियों से सारा आकाश गूँज उठा। कोई गोपी नृत्य गायन तथा वादन के आचार्य श्री कृष्णचन्द्र के स्वर में स्वर मिला कर गीतों तथा कोई ऊँचे स्वर से गातीं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन राग रागनियों को सुन कर अति प्रसन्न होते। कभी बाह बाह की ध्वनि करते, कभी गोपियों को आलिङ्गन करते, कभी उन्हें कण्ठ से लगाते, कभी गोपियाँ नाँचते नाँचते उनके ऊपर गिर पड़तीं कभी वे उनके ऊपर गिर पड़ते। कोई गोपी एक राग को ध्रुपद में गाती, तो दूसरी उसी को अन्य राग में अलापती।

हे परीक्षित! एक गोपी नाचते २ थक गई, उसने कस कर श्यामसुन्दर का कन्धा पकड़ लिया। श्यामसुन्दर का दूसरा हाथ एक अन्य गोपी के कंधे पर था उस गोपी ने झट श्यामसुन्दर का दूसरा हाथ चूम लिया। एक गोपी ने नाचते २ श्यामसुन्दर के कपोलों पर अपने कपोल रख दिये तब श्यामसुन्दर ने अपने मुख का चबाया पान उसके मुख में दे दिया। एक गोपी ने श्यामसुन्दर के कर-कमल को अपने वक्षःस्थल पर ही रख लिया।

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित् ! वे गोपियाँ लक्ष्मी जी से भी अधिक बढ़ कर सौभाग्य-शालिनी थीं। श्री लक्ष्मी जी के प्रीतम को अपने प्रीतम के रूप में पा कर वे गोपियाँ सनाथ हो गईं और उनके साथ बिहार करने लगीं। हे परीक्षित् ! रमारमण भगवान् श्री कृष्णचन्द्र कभी उन गोपियों को अपने हृदय से लगाते कभी उनके हाथ में हाथ डालते, कभी अपनी भुजा उन के कण्ठों में डालते, कभी उन्हें प्रेम भरी तिरछी चितवन से देखते, कभी हँसी हँसते। इसी भाँति लीला बिहारी भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अपनी रासलीला उन ब्रज सुन्दरियों के साथ करते। हे परीक्षित् ! भगवान् के अङ्ग सङ्ग से उन गोपियों के सभी अशुभ-संस्कार सर्वथा के लिये नष्ट हो गये। वे दिव्य आनन्द में मग्न हो गईं उन के केश बिखर गये, वे इतनी थक गईं कि उनके वस्त्र माला पुष्प सभी अस्त व्यस्त हो गये। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की दिव्य रास क्रीड़ा देख कर विमानों पर चढ़ी हुई देवाङ्गनायें भी मोहित हो कर उन के अङ्ग सेवा की कामना करने लगीं। चन्द्रमा स्थित हो गये। हे परीक्षित् ! उन आत्माराम भगवान् ने गोपियों की इच्छा पूर्ति के लिये उतने ही रूप धारण कर के उन की इच्छा पूर्ण की। उन के साथ रास नृत्य आदि खेल खेले।

अब गोपियाँ पूर्ण थक गईं। पसीने की बूँदे उनके मुख मण्डल पर छा गईं। तब थकान का श्रम दूर करने के लिये भगवान् श्री कृष्णचन्द्र उन गोपियों के साथ यमुना जी के जल में इस प्रकार घुस पड़े, जिस प्रकार गज-राज हथनियों के साथ घुस पड़ता है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की बन माला गोपियों के अङ्गों की रगड़ से कुचल गई थी। गोपियाँ अपने प्रीतम पर जल उलीच उलीच कर जल की बौछारें बखेरने लगीं। देवगण पुष्पों का वर्षा करने लगे। हे परीक्षित् ! उन आत्माराम भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने गोपियों के साथ जल-बिहार किया। तब फिर उन गोपियों को साथ ले कर आप रमणीय उपबन में गये। उन में सुन्दर सुन्दर पुष्प खिल रहे थे। उन की सुगन्ध से वायु सुगन्धित हो कर चल रही थी। वे मत्त गजराज की भाँति गोपियों के मध्य में बिचरने लगे।

हे राजा परीक्षित् ! शरद पूर्णिमा की वह रात्रि अनेक रात्रियों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

से पूंजीभूत हो कर अति ही सुन्दर हो गई थी वह समस्त रसों से पूर्ण थी। हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की इस रास लीला में सब से मुख्य बात यह है कि भगवान् सत्य सङ्कल्प हैं उन की यह लीला चिन्मयी लीला है। जिस लीला में काम भाव, उसकी चेष्टाओं तथा काम क्रियाओं का सर्वथा अभाव है। कामदेव तथा उसकी चेष्टाओं व क्रियाओं को उन्होंने अपने अधीन कर रक्खा था। अपने दिव्य अङ्ग सङ्ग से उन गोपियों के काम भाव को भी सर्वथा के लिये जला दिया था। काम भाव दिव्य विभूतियों में नहीं होता, वह तो केवल अपना प्रभाव तभी तक दिखाता है जब तक प्राणी सांसारिक जगत में रहता है। जब वह दिव्य जगत में प्रवेश कर जाता है, तब काम भाव वहाँ प्रवेश नहीं करता है। भगवान् श्री कृष्ण तो स्वयं आत्माराम थे ही, वे तो कामदेव के भी ईश्वर थे। वे गोपियाँ भी उनके अङ्ग स्पर्श करते ही दिव्य हो गईं। उन का कामदेव भी स्वयं जल कर नष्ट हो गया। उन का जारभाव मिट कर वे आत्माराम हो गईं।

राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जगत के स्वामी तथा आत्माराम थे, किन्तु फिर भी उन्होंने उन पर स्त्रियों का स्पर्श अङ्ग सङ्ग क्यों किया ? वे तो धर्म की स्थापना तथा अधर्म के नाश के लिये ही अवतीर्ण हुये थे फिर ऐसा अधर्म कार्य क्यों किया ? आप कृपा कर मेरी शंका को दूर कीजिये।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! "समरथ को नहिं दोष गुसाईं" सूर्य, अग्नि, तथा ईश्वर सामर्थवान् हैं। उनको कोई दोष नहीं लगता है। अग्नि सब प्रकार की भक्ष्य अभक्ष्य वस्तुओं को खा जाती है, किन्तु उसे कोई दोष प्राप्त नहीं होता। किन्तु जिन मनुष्यों में ऐसी सामर्थ नहीं है यदि वे ऐसा करते हैं तो वे नष्ट हो जाते हैं, जैसे शंकरजी ने गरल (विष) को रख लिया यदि इस विष को कोई और खालेता तो अवश्य मर जाता। इसलिए बुद्धिमान को चाहिए महान् पुरुष के ऐसे आचारण भी जो उनके द्वारा उपदेश के लिए किये गये हैं। उन्हीं का अनुकरण न करें। फिर भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं परमात्मा थे गोपियाँ उनकी वशीभूत आत्मा थीं। वे

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

स्वयं अपनी आत्माओं के साथ रमण कर रहे थे। वे जीवधारियों के अन्तःकरणों में विराजते हैं। वे उन गोपियों तथा उनके पतियों सम्बधिन्यों के अन्तःकरणों में भी विराजमान थे। उन गोपों ने यही समझा कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। बच्चों ने यह समझा कि हमारी मातायें हमारे निकट सो रही हैं। वे उनकी योगमाया में मोहित थे। उन्होंने कोई भी दोष बुद्धि नहीं की।

हे परीक्षित! वह रात्रि ब्रह्मा की रात्रि के समान बड़ी थी। जब वह रात्रि समाप्ति हो गई, ब्रह्म मुहुर्त्त हुआ, तब गोपियाँ प्रसन्न मन अपने अपने गृह चलीं गईं। वे नित्य संसार में रहकर असंसार में ही रहतीं, और उन्हीं आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के गुण गाती रहतीं। हे परीक्षित! जो भगवान् की चिन्मयी अन्तरङ्ग दिव्य रास विलास का भक्ति पूर्वक श्रवण तथा वर्णन करता है। उसे श्रीकृष्ण भगवान् की उत्तम भक्ति प्राप्त हो जाती है, और वह काम विकारों से मुक्त हो जाता है।

॥ चौंतीसवाँ अध्याय ॥

सुदर्शन तथा शंखचूर्ण का उद्धार।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक समय शिवरात्रि के सुअवसर पर नन्द बाबा तथा अन्य गोपों ने बड़े आनन्द के साथ अपनी गाड़ी छकड़ों आदि में अम्बिका वन की यात्रा की। अम्बिका वन पहुँच कर सब ने सरस्वती में स्नान किया और भगवान् शङ्कर की तथा माता अम्बिका की आनन्द पूर्वक पूजा की और व्रत किया। वहाँ पर गौ, धन वस्त्र, सोना आदि ब्राह्मणों को दान किया। उन्हें मधुर भोजन खिलाये। यह सब उन्होंने निष्काम भाव से भगवान् शङ्कर तथा माता अम्बिका की प्रसन्नता के लिये किया। उन्होंने केवल जल पीकर वह शिवरात्रि व्यतीत की। उस वन में एक बड़ा अजगर रहता था। दैववश भूल के कारण वह उधर आ निकला और उसने सोते हुये नन्दजी के पैर को पकड़ लिया। नन्द जी अति अकुलाये और चिल्ला कर कहा बेटा कृष्ण दौड़ो दौड़ो देखो यह अजगर मुझे निगले जा रहा है। मैं तुम्हारी शरण में हूँ मुझे शीघ्र सङ्कट से बचाओ। नन्द बाबा की चिल्लाहट सुनकर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सभी गोप गोपियाँ जग कर दौड़ पड़े। किसी के हाथ में लाठी किसी के हाथ में अधजली लकड़ी थी। वे सब उस अजगर को मारने लगे। किन्तु अजगर ने नन्द बाबा को नहीं छोड़ा इतने में ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ आ गये और उन्होंने उस अजगर के शरीर को अपने चरणों से छू लिया भगवान् के चरण स्पर्श पाते ही वह अजगर सर्वाङ्ग सुन्दर विद्याधर हो गया। और उसके शरीर से एक सुन्दर दिव्य ज्योति निकलने लगी। तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने पूछा—अरे! तुम कौन हो? तुम्हें यह अजगर योनि किस प्रकार प्राप्त हुई? यह सुन कर वह दिव्य पुरुष बोला—हे भगवन्! मैं सुदर्शन नाम का विद्याधर हूँ, अद्भुत सौन्दर्य से युक्त तथा अपार लक्ष्मी का अधिपति होने के कारण एक समय विमान में चढ़ कर घूम रहा था। मैंने अङ्गिरा गोत्र के ऋषियों को देख उनकी कुरूपता की हँसी उड़ाई। तब ऋषियों ने कुपित हो कर मुझे अजगर योनि में जाने का श्राप दिया। हे भगवन्! यह उनकी महान् कृपा थी। शाप नहीं था। उसी कृपा के कारण मैंने आज आपके दर्शन पाये हैं।

हे भक्तवत्सल! हे महा योगेश्वर! हे इन्द्रादि के भी परमेश्वर! स्वयंप्रकाश परमात्मन्! मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो गया है। मैं आपके दर्शनों से ही ब्राह्मण के शाप से मुक्त हो गया हूँ। अब मुझे अपने लोक में जाने की आज्ञा दीजिये। उस विद्याधर ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की स्तुति की और उनकी परिक्रमा करके प्रणाम किया और फिर उनकी आज्ञा प्राप्त करके अपने लोक को चला गया।

हे परीक्षित! उन ब्रजवासियों ने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का यह प्रभाव देखा तो वे अति आश्चर्य में हुए और वे उनकी लीला गायन करते हुए ब्रज को लौट आये।

एक समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी रात्री के समय गोपियों के साथ बन बिहार कर रहे थे। उस समय उस युगल जोड़ी की ऐसी शोभा थी जैसे मानों नीलमणि और मुक्ता मणि दोनों एक साथ हों। उनके कण्ठों में फूलों के सुन्दर सुन्दर हार शरीर में अङ्गराग

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लेपन, सुगन्धित चन्दन तथा सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण थे। गोपियाँ बड़े प्रेमानन्द में मग्न होकर ऊँचे स्वरों से उनके गुणों का गायन कर रही थीं। अभी सायंकाल का ही समय था कि आकाश में तारागण चमकने लगे थे। चाँदनी प्रफुल्लित हो रही थी। बेला, चमेली, मोंगरा आदि की डालो से भीनी २ सुगन्धि आ रही थी। उस समय श्याम और राम दोनों ने एक साथ ही मिलकर अलौकिक राग चढ़ाव और उतार के साथ गाया। उस विश्व विमोहन राग को सुनकर गोपियाँ अपने तन मन की सुधि भूल गईं। उनकी चोटियाँ बिखर गईं उनके वस्त्र खिसकने लगे। उसी समय एक शंखचूर्ण नाम का यक्ष वहाँ पर आया और वह उन गोपियों को बेखटके लेकर उत्तर की ओर चल दिया। वे गोपियाँ रोने तथा चिल्लाने लगीं और बलराम तथा श्यामसुन्दर को पुकारने लगीं। जब राम और श्याम ने उन गोपियों की यह दशा देखी तब दोनों भाइयों ने शाल का वृक्ष दोनों हाथों में लेकर उस यक्ष का पीछा किया, वह यक्ष भयभीत होकर उन गोपियों को वहीं छोड़कर भाग निकला। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को गोपियों के रक्षार्थ छोड़कर उस यक्ष का पीछा किया और आगे बढ़कर उस यक्ष को उन्होंने धर दबोचा। उसके शिर में एक ऐसा घूँसा लगाया कि उसकी चूरामणि निकल पड़ी और उसके साथ ही साथ उसका शिर भी धड़ से अलग हो गया। उस शंखचूर्ण को मार कर उन्होंने उसकी चूरामणि निकाली ली और उन्होंने गोपियों के सामने ही उस मणि को भाई बलराम जी को भेंट कर दी।

—:०:—

॥ पैंतीसवाँ अध्याय ॥

युगल गीत

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन गोपियों के चित्त को ऐसा हर लिया था कि जब वे बन में गौ चराने जाते, तो उसके साथ उन गोपियों का चित्त भी चला जाता।

गोपियाँ परस्पर कहतीं—अरा सखी ! जब नट नागर नन्दकिशोर

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपने बांये कपोल को अपनी बाँयी बाँह पर भौंहें नचाते हुए बाँसुरी को अपने अधरों पर रखते हैं और फिर अपनी सुकुमार उङ्गलियों को उसके छिद्रों पर बड़ी द्रुतगति से फेरते हैं, तब उसमें से बड़ी मधुर तान निकलती है। उसको सुनकर स्वर्गलोक की देवाङ्गनाएँ, सिद्ध पत्नियाँ अपने पतियों के साथ साथ विमानों पर चढ़ चढ़ कर उनकी तान को सुनती हैं। उनका चित्त काम बाणों से बिंध कर उन्हें बेवश तथा अचेत कर देता है। उन्हें अपनी नीबी खुलने तथा वस्त्रों के खिसकने का ध्यान भी नहीं रहता है।

अरी भट्ट! तुम यह जानती हो कि हमारे श्यामसुन्दर कितने सुन्दर हैं। उनके हँसने पर उनके दाँतों की पंक्ति की ज्योति उनके शुभ्र मोतियों के हारों पर जब पड़ती हैं, तब एक अद्भुत ज्योति उत्पन्न होती है। उन के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का सुनहरा चिन्ह ऐसा शोभायमान लगता है, जैसे मानों श्याम मेघों में बिजली शोभा पाती है। जब वे बाँसुरी बजाते हैं तब गाय, बैल, बछड़े, हिरन आदि सभी झुण्ड के झुण्ड अपना चरना, फिरना छोड़ कर उनके निकट आकर स्थिर भाव से खड़े हो जाते हैं।

अरी वीर! उनके मोरपंख का मुकुट, घुँघराली अलकें नवीन पल्लवों से सजा हुआ अङ्ग अति शोभायमान लगता है। उनकी बाँसुरी की धुनि से यमुना का पानी भी इसलिए रुक जाता है कि उनके चरणों की रज को पवन उड़ा कर स्पर्श करादे।

अरी वीर! श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम दोनों गोवर्द्धन पर्वत की तराई में गौओं को चराते रहते हैं। उस समय बन के वृक्ष, लता, बेलें, फूलों से लद कर उन्हें प्रणाम करते हैं और अपने फल पुष्प हमारे मन मोहन को भेंट देकर उनकी सेवा श्रुषूषा करते हैं।

अरी भट्ट! हमारे मनमोहन के साँवले ललाट पर केशर की खौर कैसी सुन्दर लगती है। घुटनों तक लटकी हुई बनमाला तुलसी की दिव्य गन्ध पर झुण्ड के झुण्ड मँडराते हुए भौंरे उनके, शुभ यश का गान निरन्तर करते रहते हैं। पशु पक्षी अपनी आँखें मूँदकर चुपचाप उनकी आराधना करते रहते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे नन्दरानी यशोदा जी ! तुम अति सौभाग्यवती हो। तुमने ऐसे कुँवर को जन्म दिया है। वे खेल क्रीड़ा में तो निपुण हैं ही, किन्तु वे वैसे भी बहुत चतुर हैं। उन्होंने बाँसुरी बजाना किसी से नहीं सीखा है। किन्तु फिर भी अनेक प्रकार की राग रागनियाँ निकालते रहते हैं। जब वे निषाद आदि स्वरों में बंशी बजाते हैं, तब उन की नई धुन सुन कर ऋषभ, ब्रह्मा शङ्कर तथा इन्द्रादि सभी देवतागण उन पर मोहित हो जाते हैं अरी बीर ! जब ये पृथ्वी गौओं के खुरों से खुद जाती है तब वे उस पर ध्वजा बज्र कमल, अंकुश आदि चिन्होंसे युक्त अपने सुन्दर सुन्दर सुकुमार चरणों को रखकर उस के दुःख को मिटा देते हैं। जब वे गौओं की गिनती करते करते किसी सखा के कन्धे पर अपना हाथ रख देते हैं और मधुर तान से बाँसुरी में स्वर भरते हैं, तब कृष्ण सार मृगों की हिरणियाँ उनके चरणों पर न्यौछावर होने लगती हैं और उन्हें इसी प्रकार घेर कर खड़ी हो जाती हैं जिस प्रकार हम गोपियाँ उन्हें घेर कर खड़ी हो जाती हैं। जब उन हिरणियों की यह दशा है तब अपनी क्या कहें।

अरी सखी ! अब श्यामसुन्दर लौटकर आते ही होंगे। उन की बंशी की ध्वनि कानों में पड़ने लगी है, देखो सामने से वे ही आ रहे हैं। गौओं के खुरों की धूल उड़कर उनकी बनमाला पर पड़ रही है। वे दिन भर गौएँ चराते चराते थक गये हैं किन्तु फिर भी अपनी सुन्दर चितवन से हम सबको आनन्द दे रहे हैं। अरी सखी ! उनकी मद भरी आँखें कितनी सुन्दर हैं। कुछ कुछ ललाई लिए हैं। सोने के कुण्डलों की ज्योति कोमल कपोलों पर कैसी झिलमिला रही है। जिसके कारण उनके मुख की ज्योति अधपके बेर के समान कुछ पीलापन लिए हुए हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! वे बड़भागिनी गोपियाँ इसी भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के गुणों का गायन करते करते उन में तन्मय हो जाती और इसी भाँति उनके दिन बीत जाते।

—❀—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ छत्तीसवाँ अध्याय ॥

अरिष्टासुर का उद्धार तथा कंस द्वारा अक्रूरजी को ब्रज में भेजना—

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! सन्ध्या के समय जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी अपनी गौओं को साथ लेकर ब्रज में लौट रहे थे उस समय एक अरिष्टासुर नाम का कंस का भेजा हुआ दैत्य ब्रज में आया। वह बैल का रूप धारण किये हुए था उसकी टाठ (ककुद) तथा डीलडौल अति विशाल था। वह कभी हुँकारता कभी मूतता कभी गोबर करता। इस भाँति गौओं तथा ब्रजवासियों को भयभीत करने लगता। उसकी हुँकड़न से स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे। उस तीखे सींग वाले बैलको देख कर सभी गोपी ग्वाल ब्रजवासी स्थान छोड़ छोड़ कर भागने लगे। और हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हमें बचाओ ऐसा कहकर चिल्लाने लगे। तब श्रीकृष्ण ने कहा—डरो मत, डरो मत। ऐसा कहकर उन्होंने सब को धीरज बँधाया और उस बैलरूप धारी दैत्यको डाँट कर बोले—रे दुष्ट ! तू इन गौओं तथा ब्रजवासियों को क्यों डराता फिराता है तेरे बल का चूर्ण करने वाला तो मैं यह खड़ा हूँ। इधर आ। इस प्रकार उस दैत्य को ललकार कर ताल ठोकी और दैत्य को चिढ़ाने के लिये एक सखा के कन्धे पर हाथ रखकर खड़े हो गये। श्रीकृष्णचन्द्र के इस प्रकार ललकारने पर उस दैत्य को अति क्रोध आया और वह अपने तीखे २ सींगों को नीचे करके उन पर झपटा। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके सींग पकड़ कर उसे अठारह पग पीछे धकेल दिया।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के इस प्रकार धकेलने पर वह दैत्य फिर अति क्रोधित होकर झपटा। उसका क्रोध और भी बढ़ गया। वह पसीना से लथ पथ जब श्रीकृष्णचन्द्र ने यह देखा कि यह दैत्य मुझ पर झपटने वाला है तब उन्होंने उसके सींग पकड़ कर और उसमें लात मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया तब झपट कर उसे अपने पैरों से दबा उस का कचूमर निकाल दिया फिर उसके सींग उखाड़ कर उन से उसे खूब पीटा। हे परीक्षित ! वह मल मूत्र त्याग करता हुआ मुँह से खून उगलता हुआ पैर पटकने लगा। उसकी आँखें उलट गईं और उसके प्राण पखेरू उड़ गए। आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अरिष्टासुर को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मार कर गोप ग्वाल तथा बलराम जी के साथ ब्रज में लौट आये।

हे परीक्षित् ! दैत्यों का संहार शीघ्रातिशीघ्र कराने के लिये नारद जी कंस के निकट पहुँचे। उन्होंने जाकर कंस से कहा कि अरे कंस ब्रज में जो श्रीकृष्ण और बलराम हैं जिन्होंने पूतना आदि तुम्हारे अनेकों राक्षस तथा राक्षसियों को मार डाला है वे बसुदेव जी के ही पुत्र हैं। श्रीकृष्ण देवकी के पुत्र हैं जो उसके आठवें गर्भ से उत्पन्न हुए हैं और बल्देव जी रोहिणी के पुत्र हैं बसुदेव ने जो तुम्हें कन्या लाकर दी थी वह यशोदा की पुत्री थी। बसुदेव ने तुम्हारे भय से अपने इन दोनों पुत्रों को अपने मित्र नन्दजी के यहाँ पहुँचा दिया है. नारदजी की यह बात सुनते ही कंस आग बबूला हो उठा और बसुदेवजी को मारने के लिए तुरन्त तलवार खींचली किन्तु नारद जी ने समझा बुझाकर उसे ऐसा करने से रोक दिया तब उस कंस ने बसुदेव देवकी को हथकड़ी बेड़ी पहना कर फिर जेल में डाल दिया। जब नारदजी चले गए तब कंस ने केशी दैत्य को बुला कर उस ब्रज में जाने की आज्ञा दी और शीघ्र ही कृष्ण तथा बलराम को मार डालने को कहा। तत्पश्चात् कंस ने मुष्टिक, चारुण, शूल, तोषल आदि पहलवान मंत्रियों तथा महावतों को बुलाकर कहा कि तुम लोग बलराम तथा श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए तैयार हो जाओ। चारुण और मुष्टिक कुश्ती में उन्हें मार डालो एक सुन्दर अखाड़े का आयोजन करो। उसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे मंच बनाओ। जिस पर नगर निवासी तथा दूसरे देशों की प्रजा आनन्द से दङ्गल को देख सके। हे महावत ! तुम को मेरी आज्ञा है कि तुम अपने कुवलिया पीड़ हाथी को दङ्गल के घेरे के फाटक पर रखना। जब वे दोनों शत्रु इधर से निकलें तब तुम अपने हाथी से उन्हें मरवा डालना। मंत्रियो ! तुम इसी चतुर्दशी को यज्ञ का आयोजन करो उसकी सफलता के लिए भैरवनाथ को बहुत से पशुओं की बलि चढ़ाओ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! वह कंस तो केवल अपना स्वार्थ सिद्ध ही जानता था इसलिए उसने तत्काल यदुवंशियों में श्रेष्ठ अक्रूरजी को बुलाया और बड़े प्रेम से उनका हाथ पकड़ कर बोला

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अक्रूर जी ! आप बड़े चतुर और उदारशील हैं। हमारे शुभचिन्तक हैं। इसलिए तुम ब्रज में जाओ और वहाँ पर बसुदेव जी के दो पुत्र कृष्ण और बलराम को बड़ी युक्ति से रथ पर चढ़ाकर ले आओ। उन ब्रजवासियों से कहना कि वे अपना सालाना कर भी लेकर शीघ्र ही आवें। उन से कहना कि मथुरा में बड़ा भारी दङ्गल होने वाला है। जब वे राम कृष्ण यहाँ पर आवेंगे तब मैं उन्हें कुवलियापीड़ हाथी से मरवा डालूँगा। यदि वे फिर भी बचे रहेंगे तो मुष्टिक, चारुण उन्हें मार डालेंगे और यदि वे उन से भी न मारे जावेंगे तो फिर मैं उन्हें अवश्य ही मार डालूँगा। उनके मारे जाने के पश्चात् बसुदेव आदि सभी यादवों को अपने हाथ से मार डालूँगा तत्पश्चात् अपने पिता उग्रसेन और उसके भाई देवक को तलवार के घाट उतार डालूँगा। हे अक्रूर जी ! तुम मेरे परम मित्र हो। इस लिए मैंने यह भेद की बातें तुम से कह दी हैं। तुम जानते हो मेरा श्वसुर जरासंध मेरा हितैषी है। बानर राज द्विविन्द मेरा मित्र है। शंबरासुर, नरकासुर तथा बाणासुर मेरे सहायक हैं। मैं उनकी सहायता से मनुष्य तथा देवताओं को मार कर पृथ्वी का अकण्टक राज्य करूँगा। अब तुम जल्दी कल ही ब्रज में जाकर श्रीकृष्ण तथा बलराम को धनुषयज्ञ देखने के बहाने यहाँ लिवा लाओ। अक्रूरजी बोले—हे महाराज ! आपकी आज्ञा शिराधार्य है। मनुष्य को अपनी सफलता के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये उसका फल देना तो दैव के अधिकार में है। मनुष्य अपने जीवन में बड़े बड़े मनोरथों के पुल बाँधता है किन्तु दैव की इच्छा का उसे कुछ पता नहीं है। दैव के अनुकूल होने पर उसका प्रयत्न सफल हो जाता है तो उसे प्रसन्नता होती है और दैव के प्रतिकूल होने पर वह अपने कार्य में असफल हो जाता है और उसे शोक होता है किन्तु फिर भी मैं आप की आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा। ऐसा कह कर अक्रूर जी अपने घर चले आये।

॥ सैंतीसवाँ अध्याय ॥

केशी तथा व्योमासुर का बध और नारदजी के द्वारा भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की स्तुति—

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! वह केशी नाम का दैत्य घोड़े का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रूप धारण करके पवन के समान दौड़ता हुआ व्रज में आया उसने अपनी टापों से सारी पृथ्वी को खोद डाला। उसके गर्दन के बालों के छितराने पर बादलों की भीड़ छिन्न भिन्न हो जाती थी। उसके बड़े बड़े कान और डरावना मुख था। उसकी गर्दन बड़ी मोटी तथा शरीर विशाल था। वह श्रीकृष्णचन्द्र को मारकर कंस का हित करना चाहता था। जब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उस केशी दैत्य की हिनहिनाहट सुनी और समस्त नन्द ग्राम को भयभीत देखा तब वे उससे लड़ने के लिये उसके सम्मुख आये और गरज कर उसे ललकारा वह दैत्य भगवान् को सामने देखकर अति प्रचण्ड वेग से उन पर झपटा और उसने कमल से भी अति कोमल तथा वज्र से भी अति कठोर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर दुलत्ती मारी। किंतु भगवान ने अपने को बचा लिया तब उन्होंने उसके दोनों पिछले पैर पकड़ कर आकाश में घुमाया और चारसौ हाथ दूर फेंक दिया। तब वह दैत्य क्रोध में तिलमिला कर तथा मुँह फैला कर उनकी ओर झपटा अपनी ओर आते हुए उस दैत्य को देखकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र मुस्कराये और अपना बाँया हाथ उसके मुख में ऐसे डाल दिया जैसे सर्प बिल में घुस जाता है।

हे परीक्षित् ! भक्तों को आनन्द देने वाला उनका शीतल कर कमल उस दैत्य के मुख में पहुँचते ही तपते हुये लोहे के समान होगया। तब उन्होंने अपने उस हाथ को उसके मुख में इतना मोटा किया कि उस भुजदण्ड के कारण उसकी श्वास प्रश्वास रुककर दम घुटने लगी। उसके दाँत तो उसी क्षण टूट गये थे। अब यह दैत्य छटपटा छटपटा कर पीटने लगा। और पसीने से लथपथ होगया। उसकी आँखें पलट गईं तथा मलमूत्र त्याग कर पृथ्वी पर निश्चेष्ट होकर गिर गया। और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उसका वह शरीर पकी ककड़ी की भाँति फूट गया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी भुजा उसमें से निकाल ली। यह देख कर देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्रीकृष्ण पर पुष्पों की वृष्टि करके उनकी स्तुति की।

हे परीक्षित ! देवर्षि नारद सब जगत के हितैषी तथा प्रेमी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उधर वे कंस को भगवान् श्रीष्कृष्णके चिन्तन में लगा कर श्रीकृष्णके निकट एकान्त में आये और बोले—हे सच्चिदानन्द घन स्वरूप परब्रह्म ! आप का यह स्वरूप मन और वाणी का विषय नहीं है। आप को योगीजन योगनिष्ठा के द्वारा खोजते हैं। आप सारे जगत के नियन्त्रण कर्त्ता तथा सब के हृदय में निवास करने वाले हैं। आप ही जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय करते हैं। आप सर्व शक्तिमान तथा सत्य सङ्कल्प हैं। हे भगवन् ! इन राक्षस तथा दैत्यों ने राजाओं के रूप में जन्म ले कर पृथ्वी पर घोर पाप किया है। आप उन्हीं के नष्ट करने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं।

हे भगवन् ! अब मैं परसों आप के हाथों से चारुण मुष्टिक, कुवलिया पीड़ हाथी तथा स्वयं कंसको मारा हुआ देखूँगा। तत्पश्चात् शंखासुर, काल यवन, मुर तथा नरकासुर को मारा हुआ देखूँगा। फिर आप इन्द्र के मान को मर्दन करके स्वर्ग से कल्प वृक्ष लावेंगे। तत्पश्चात् आप सोलह सहस्र वीर कन्याओं से विवाह करेंगे। हे प्रभो ! आप द्वारिका में निवास करेंगे। वहाँ पर राजा नृग को शाप से मुक्त करेंगे। सत्राजित की मणि लाकर जाम्वन्ती तथा सत्य भामा से विवाह करेंगे। मिथ्या बासुदेव काबध करेंगे। युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ में शिशुपाल का बध करेंगे। फिर दन्तवक्त्र को मारेंगे। फिर अर्जुन के सारथी बन महाभारत युद्ध रचावेंगे। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ तत्पश्चात् नारदजी भगवान् श्री कृष्णचन्द्र से आज्ञा ले कर चले गये।

इधर जब भगवान् श्रीकृष्ण ने केशी को मार दिया तब वे पहली भाँति पशु पालन में लग गये। जब वे गौएँ चरा रहे थे तब एक ग्वाल का वेश धर कर व्योमासुर नाम का दैत्य आया वह मयासुर का पुत्र था भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समय "भेड़ और चोर" का खेल खेल रहे थे। ग्वाल वाल भेड़ बन रहे थे। वह दैत्य चोर बन गया। वह उन भेड़ बने हुये ग्वाल बालों को चुरा चुरा कर एक गुफा में छिपा आता था और उसके द्वार को एक विशाल चटटान से ढक देता था। इस प्रकार पाँच ग्वाल बाल ही शेष रहे। तब अन्तर्यामी भगवान् ने उस दैत्य की यह करतूत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जानली। जिस समय वह उन बचे हुए ग्वाल बालों को लेकर चला उस समय उन्होंने सिंह की भाँति उसे धर दबोचा। वह व्योमासुर बड़ा बली था। उसने अपना असली रूप प्रकट करके अपने को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चंगुल से बचाने का बहुत ही उपाय किया किंतु वह शिकंजे में ऐसा फँस गया था कि वह अपने को छुड़ा न सका। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने दोनों हाथों से पटक कर उसे पृथ्वी पर गिरा लिया और उसका गला घोंट कर मार डाला। देवता आकाश से पुष्प बरसाने लगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस गुफा में से उन ग्वाल बालों को निकाल कर अपने व्रज में चले आये।

॥ अड़तीसवाँ अध्याय ॥

अक्रूरजी का व्रज में आना।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! नारद जी की प्रार्थना सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मथुरा जाने का निश्चय किया। उधर बुद्धिमान अक्रूरजी दूसरे दिन प्रातःकाल रथ पर सवार हो गोकुल की ओर चले। हे परीक्षित्! इसमें सन्देह नहीं कि अक्रूरजी बड़े भाग्यशाली थे। तभी उन्हें व्रजयात्रा करने तथा श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति तथा प्रेम में तल्लीन होकर इस प्रकार सोचने लगे—कि मैंने ऐसा कौन सा शुभ कार्य किया है अथवा घोर तप किया है अथवा किसी सत्पात्र को उत्तम दान दिया है जिसके फल स्वरूप मैं आज भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन करूँगा। जिन भगवान् के दर्शन बड़े बड़े योगी जो निरन्तर उनके गुणों का गायन करते रहते हैं, वे भी नहीं कर पाते फिर मैं तो बड़ा विषयी हूँ। लेकिन मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए मुझे उनके दर्शन अवश्य ही होंगे। क्योंकि जिस प्रकार नदी में बहने वाला तृण तक एक पारसे दूसरी पार लग जाता है वैसे ही काल की कृपा से कोई भी इस संसार सागर को पार कर सकता है। निश्चय ही आज मेरे अशुभ कार्य नष्ट हो गए हैं और मेरा जन्म सफल हो गया है। कंस चाहे दुष्ट क्यों न हो लेकिन उसने मेरे ऊपर तो अति कृपा की है। जिसकी आज्ञा से मैं यहाँ आकर उन भगवान् श्रीकृष्ण के जो इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए हैं। चरण कमलों के दर्शन पाऊँगा।

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्रह्मा, शङ्कर इन्द्रादि बड़े २ देवता तथा स्वयं लक्ष्मीजी जिन के चरणों का हृदय में ध्यान करते रहते हैं। तथा बड़े २ योगी और महर्षि जिनके ध्यान में सदा लीन रहते हैं। भगवान् के वो ही चरण गौओं को चराने के लिये ग्वाल बालों के साथ बन में बिचरते रहते हैं। और वे ही देवता तथा मुनियों से बन्दित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण गोपियों के वक्षःस्थल पर बनी हुई रोली और चन्दन से रंगे रहते हैं मैं उनके अवश्य ही आज दर्शन करूँगा। मैं भगवान् श्रीकृष्ण के कमल के समान सुन्दर मुख तथा मरकत-मणी के समान कान्तिवान तथा कोमल कपोल तथा तोते के समान सुन्दर नासिका प्रेम भरी चितवन से जिनके होठों पर मन्द मन्द मुस्कान रहती है, लाल कमल के समान जिनके रतनारे नेत्र हैं जिनकी अलकें घुँघुराली हैं। मैं उनके अवश्य ही आज दर्शन करूँगा। क्योंकि मुझे शुभ शकुन हो रहे हैं सामने से हिरन दाहिनी ओर से बाँईं ओर जा रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वी का भार उतारने के लिये मनुष्यों की सी लीला कर रहे हैं। वे अतुलित शोभा के धाम हैं तथा सौन्दर्य के निधि हैं। आज मुझे उन्हीं के दर्शन होंगे। उनके दर्शन करके मैं अपने नेत्रों को सफल करूँगा। भगवान् इस संसार के रचने वाले हैं और ऐसा होने पर भी उन्हें तनिक भी अहंकार छू तक नहीं गया है। वे अपनी योगमाया से क्षण में भ्रू विलास मात्र से प्राण इन्द्रिय तथा बुद्धि आदि के सहित अपने स्वरूप भूत जीवों की रचना कर लेते हैं। और उन्हीं के साथ वृन्दावन की कुञ्जों में तथा गोपियों के घरों में नाना प्रकार की लीलायें करते हैं। जब वाणी उनके मंगलमय गुणों को तथा उनकी लीलाओं का गायन करती हैं तब उस गायन से संसार में जीवन स्फूर्ति हो जाती है तथा सारी अपवित्रतायें नष्ट होकर पवित्रताओं का साम्राज्य छा जाता है। जिनके गुण गान का ही ऐसा महत्व है वे ही स्वयं भगवान् उस यादव वंश में अवतीर्ण हुए हैं। सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि महर्षि उन के यश का गान करते रहते हैं। वे बड़े बड़े सन्त तथा लोकपालों के भी स्वामी हैं। और उनके एक मात्र गुरु हैं। त्रिलोकी उनके चरणों पर निछावर हैं। जिनके नेत्र हैं उन के

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लिये वे आनन्द तथा रस की चरम सीमा हैं। इसलिये स्वयं लक्ष्मी जी भी जो सौन्दर्य की निधि हैं उन्हें प्राप्त करने के लिये लालायित रहती हैं। मैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के आज दर्शन करूँगा। आज प्रातःकाल से ही शुभ शकुन दृष्टि आ रहे हैं।

जब मैं उन्हें देखूँगा तब क्या करूँगा—प्रकृति तथा पुरुष रूप बलराम तथा श्रीकृष्ण के चरणों में नमस्कार करने के लिए तुरन्त रथ से कूद पड़ूँगा और उनके चरण पकड़ लूँगा। अहो! उनके चरण प्राप्त करना कितने दुर्लभ हैं कि उनकी प्राप्ति के लिए बड़े बड़े योगी और यती अपने हृदयों में उन के चरणों को धारणा करते रहते हैं। इस के बाद मैं उन के प्रत्येक सखा तथा ग्वालवालों के चरणों की वन्दना करूँगा। जब मैं उन के चरणों में गिर जाऊँगा तब वे अवश्य ही अपने कर-कमलों को मेरे शिर पर रक्खेंगे। उन के कर-कमल उन लोगों को अवश्य ही शान्ति देते हैं, जो उन की शरण में जाता है। इन्द्र ने भी भगवान के उन्हीं कर-कमलों में पूजा की भेंट अर्पित की थी। वे तो देवता हैं, दैत्यराज बलि ने भी ऐसा ही किया था। इस लिये भगवान् के कर-कमलों ने तीनों लोकों का स्वामी दोनों को बना दिया। रासलीला के समय ब्रजवासियों की सारी थकान इन्हीं कर-कमलों से दूर होगई थी। आज भगवान् उन्हीं कर-कमलों को मेरे शिर पर रक्खेंगे। लेकिन मैं कंस का भेजा हुआ दूत हूँ इस लिये भगवान् श्री कृष्णचन्द्र मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठें। नहीं—नहीं—वे ऐसा कभी नहीं समझेंगे। वे तो निर्विकार, शत्रु मित्र रहित अच्युत तथा सम हैं। उनके विषय में ऐसी धारणा करना व्यर्थ है। फिर मैं उन के चरण कमलों में हाथ जोड़ कर विनम्र भाव से खड़ा हो जाऊँगा और वे मुस्कराते हुए दया भरी दृष्टि से मेरी ओर देखेंगे उस समय मेरे जन्म जन्मांतर के समस्त पाप नष्ट हो जावेंगे। मैं उन के कुटुम्ब का हूँ। मेरे हृदय में उनके लिये प्रेम है उनके सिवाय मेरा आराध्यदेव भी कोई नहीं है। वे अवश्य ही मुझे अपनी विशाल बाहुओं से खींच कर अपनी छाती से लगावेंगे। और उन का आलिंगन कर के मेरे कर्मबन्धन जिनके कारण मैं अनन्त काल से भटक रहा हूँ कट

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जावेंगे। जब वे मेरा आलिंगन कर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़ के शिर नवाय उनके सामने खड़ा हो जाऊँगा। तब वे प्रेम भाव से "चाचा अक्रूर" ऐसा कह कर सम्बोधित करेंगे। बस तब मेरा जीवन सफल हो जावेगा। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने जिसको नहीं अपनाया तथा जिसे आदर नहीं दिया उसका जीवन धिक्कार है। उन्हें न कोई प्रिय है न कोई अप्रिय है। क्यों न हो वे तो स्वयं प्रेम हैं। मैं तो उन के सामने नम्र भाव से खड़ा हो जाऊँगा। तब बलरामजी मुस्कराते हुए मुझे अपने हृदय से लगा लेंगे। और फिर मेरे दोनों हाथ पकड़ कर मुझे घर के भीतर ले जावेंगे तथा मेरा सत्कार करेंगे। तत्पश्चात् पूछेंगे कि कंस हमारे घर वालों के साथ कैसा व्यवहार करता है।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित! अक्रूरजी यही विचार करते करते ऐसे तन्मय हो गये कि उन्हें और कुछ भी सुध बुध न रही और उन का रथ नन्दग्राम पहुँच गया। उस समय सूर्य अस्त होने वाले थे अक्रूर जी ने देखा कि पृथ्वी पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। उन में उभरे हुए कमल, ध्वजा, अंकुश आदि चिन्हों के कारण भगवान् के चरणों के पहिचानने में कोई कठिनाई नहीं है। उन्होंने सोचा कि पृथ्वी की शोभा बढ़ाने के लिये ही ये चरण चिन्ह हैं जिन्हें ब्रह्मा, शंकर आदि अपने शिरों पर धारण करते हैं। उन चरण चिन्हों के दर्शन करते ही अक्रूर जी विह्वल हो गये तथा प्रेम के आवेश में उन का रोम रोम खिल उठा, और नेत्रों से अश्रु बहने लगे। और बोले–आह! यही हमारे भगवान् के चरणों की रज है। धन्य है वह रज और धन्य हूँ मैं, ऐसा कह कर वे रथ से कूद कर उस रज में लौटने लगे।

हे परीक्षित्! कंस के सन्देश से लेकर यहाँ तक अक्रूर जी की जैसी अवस्था रही, यही शरीर धारण करने का परम लाभ है। इस लिये प्राणियों को चाहिये कि अहंकार, पाप, शोक को त्याग कर भगवान् की मूर्ति, चिन्ह, लीला स्थान आदि के गुणों का कीर्तन श्रवण गायन आदि से भाव उत्पन्न करें। ब्रज में पहुँच कर अक्रूर जी ने श्रीकृष्ण और बलराम को गौदोहन के स्थान पर बैठा देखा। उनकी अभी किशोर अवस्था

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

थी उनका "ग्यारहवाँ" वर्ष चल रहा था वे दोनों ही परम सुन्दर थे तत्कालीन कमल के समान खिले हुए नेत्र थे उन की घुटनों तक लम्बी लम्बी भुजायें थीं। वे परम सुन्दर और हाथी के बच्चे के समान सुन्दर चाल चलने वाले दोनों ही परम उदार थे। उनके चरणों में ध्वजा, बज्र अंकुश और कमल के चिन्ह थे। उनकी मन्द मन्द मुस्कान और चितवन से दया बरसती थी। वे गले में बनमाला और मणियों का हार पहिने थे। उन्होंने अभी अभी स्नान करके नवीन वस्त्र पहिने थे और अङ्गों में अङ्गराग तथा चन्दन का लेप किये हुए थे।

हे परीक्षित्! अक्रूर जी ने देखा कि जगत के स्वामी तथा आदि कारण से संसार की रक्षा के लिये अपने सम्पूर्ण अंशों से बलराम तथा श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए और अपने अङ्गों की कान्ति से समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं। अक्रूर जी उन्हें देखते ही रथ से कूद पड़े और श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के चरणों के पास साष्टाङ्ग लोट गये। उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। उनका शरीर प्रफुल्लित हो उठा। और कण्ठ भर आया। शरणागत वत्सल भगवान श्रीकृष्णचन्द्र उन के मन के भाव को समझ गये तथा उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से चक्रांकित हाथों के द्वारा उन्हें खींच कर हृदय से लगा लिया। इसके बाद वे परम मनस्वी बलराम जी के पास विनीति भाव से खड़े हो गये तब बलराम जी ने उन्हें कण्ठ से लगा लिया। उनका एक हाथ श्रीकृष्ण ने तथा दूसरा बलराम जी ने पकड़ा और उन्हें घर ले गये। घर ले जाकर भगवान् ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और कुशल मंगल पूछ कर उत्तम आसन प्रदान किया। उनके चरण पखार कर मधुर फल आदि पूजा की सामिग्री प्रदान की तत्पश्चात् भगवान ने अतिथि अक्रूर जी को एक गाय दी और पैर दाव कर उन की थकान दूर की। फिर उन्हें भोजन कराया। जब वे भोजन कर चुके तब धर्मज्ञ बलराम जी ने पान इलायची आदि तथा सुगन्धित माला देकर उन्हें अति आनन्दित किया।

जब आदर सत्कार हो चुका तब नन्दराय जी अक्रूर जी के निकट आये और बोले—हे अक्रूर जी! आप लोग दुष्ट कंस के राज्य में जिस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्रकार रहते हैं वह तो मनुष्यों के लिये साक्षात काल है। उस पापी ने अपनी बहिन के बच्चों तक को मार डाला। यह सब कुछ उसने अपने प्राणों की रक्षा के लिए ही किया है। वह बड़ा नीच है। उसकी प्रजा आप लोग किस प्रकार सुखी रह सकते हैं। जब नन्द जी ने इस प्रकार उनका आदर किया तब अक्रूरजी अति आनन्दित हुए, और मार्ग की सब थकान भूल गये।

॥ उन्तालीसवाँ अध्याय ॥

श्रीकृष्ण और बलराम का मथुरा गमन

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी तथा बलरामजी ने अक्रूरजी का अति आदर किया। अक्रूरजी की जो अभिलाषाएँ थीं वे सब पूर्ण हो गई। सायंकाल के भोजन के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरजी के निकट गये और उनसे अपने सगे सम्बन्धियों माता पिता की कुशल पूछने लगे। तत्पश्चात उन्होंने कंस का व्यवहार और आगे के कार्य क्रम के विषय में पूछा। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे चाचाजी! आप शुद्ध हृदय हैं। आपको व्रज यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हुआ। मथुरा में हमारे सब कुटुम्बी तो प्रसन्न हैं? हमारा मामा कंस जब तक जीवित है तब तक अपने कुटुम्ब की क्या कुशल पूछें। उसने हमारे माता पिता को बन्दीगृह में डाल रक्खा है। उनके बच्चे बिना कारण ही मार डाले हैं। मैं भी अब शीघ्रातिशीघ्र मथुरा आकर आप लोगों के दर्शन करना चाहता था। किन्तु आज आपने हमारी भी अभिलाषा पूर्ण करदी। अब आप बतलाइये कि आपका शुभागमन किस हेतु हुआ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इस प्रकार अक्रूरजी से पूछा तब अक्रूरजी बोले-हे यदुनन्दन! उस दुष्ट कंसने सभी यदुवंशियों से घोर शत्रुता ठान रक्खी है और उनको समूल नष्ट कर देना चाहता है। वासुदेवजी को भी मारने की नीयत है। उसने धनुष यज्ञ के बहाने आप लोगों को मथुरा बुलाया है। वहाँ वह अपने पहलवानों से पकड़वा कर आप दोनों भाइयों को मार डालना चाहता है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी अक्रूरजी की बात सुन कर हँसे और

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

निकट ही बैठे हुए नन्दजी को कंस की आज्ञा सुनादी। तब नन्दबाबा ने एक ग्राम कोतवाल के द्वारा सारे ब्रज में घोषणा करादी कि कल प्रातःकाल सब मथुरा चलेंगे और वहाँ चल कर कंस को कर रूप में गोरस देंगे। वहाँ एक बड़ा उत्सव भी है हम लोग भी उसे देखने चलेंगे।

हे परीक्षित! जब गोपियों ने यह सुना कि कल श्यामसुन्दर तथा बलराम मथुरा जावेंगे तो वे अति व्याकुल हो गईं। उन्हें तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम का एक क्षण का वियोग सौ सौ युग के समान व्यतीत होता था। जब उन्होंने उनके मथुरा जाने की बात सुनी तो उनका मुख कमल मुरझा गया और विरह जलन की गरम गरम श्वास चलने लगी। वे सब अचेत हो गईं। उन्होंने ज्यों त्यों करके वह रात काटी। गोपियाँ रात्रि में परस्पर कहने लगीं। हे विधाता! तुम्हारा विधान बड़ा उलटा है तुमने पहले कृष्ण से प्रेम कराया और अब तुम उन्हें हम से बिछुड़ाना चाहते हो। तुम्हारी यह करतूत अति अनुचित है। इसमें अक्रूर का कोई दोष नहीं है इस में बिधाता की ही क्रूरता है। हम श्यामसुन्दर के अङ्गों में तुम्हारी सृष्टि के सौन्दर्य को देखती रहती हैं। हे सखियो! श्याम सुन्दर अब नई नई प्रेमिकाओं से प्रेम करने की सोच रहे हैं। उन्हें भी ऐसी बान पड़ गई है। हमने उनके लिए अपने पुत्र घर द्वार सब छोड़ दिये। और उन्हीं की चितवन मुस्कान आदि से मोहित होकर उनकी बे माल की दासी हो गई हैं। मथुरा की स्त्रियाँ अवश्य ही अति सौभाग्यशालिनी हैं जिन्हें कल श्यामसुन्दर के दर्शन होंगे। उनकी चिरकाल की अभिलाषा पूर्ण हो गई है। जब हमारे मन मोहन मन्द मन्द मुस्कान से उनकी ओर तिरछी चितवन से देखेंगे तब वे उनके दर्शन करके निहाल हो जावेंगी। जब वे मथुराकी सुन्दर युवतियोंको देखेंगे तो फिर वे हम गँवार ग्वालिनियों के निकट लौट कर क्यों आवेंगे?

हे सखी! यह अक्रूर बड़ा दुष्ट है। निर्दयी है। यह हमारे दुःख को नहीं जानता है। यह हमारे श्यामसुन्दर को हम से छीनने आया है। ऐसे क्रूर का नाम अक्रूर किसने रक्खा है। हे सखी! अक्रूर की बात जाने दो। हमारे श्याम भी क्या कम निठुर हैं। देखो वे भी रथ पर बैठ गये

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कोई उन्हें रोकने वाला भी नहीं है। अरे देखो ये गोप ग्वाल मथुरा जाने की तैयारी में कैसे उतावले और उन्मत्त हो रहेहैं। ये अपने छकड़े कितनी जल्दी से जोत रहे हैं। ये बड़े मूर्ख हैं। हमारे बड़े बूढ़े भी इन्हें नहीं समझाते हैं। वे भी श्यामसुन्दर को मथुरा जाने से नहीं रोक रहे हैं अब हम ही सब लोक लज्जा त्याग कर उनके निकट जावें और उनको मथुरा जाने से रोकें। हमारे कुल के बड़े बूढ़े तथा सम्बन्धी हमारा क्या बिगाड़ लेंगे। हम तो अपने श्यामसुन्दर का एक क्षण के लिए भी विरह नहीं सह सकतीं। उनकी विलासपूर्ण चितवन मनोहर मुस्कान, मीठी मीठी बातें रासलीला की वे रात्रियाँ प्रेमालिंगन आदि हमें बेचैन किये दे रहे हैं। हम उनके बिना विरह व्यथा किस प्रकार सह सकेंगीं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! गोपियाँ इस प्रकार अनेक दुखों को याद करके व्याकुल होगईं और लाजको त्याग कर उन्मत्त की भाँति हे गोविंद! हे कृष्ण! हे माधव! ऊँचे स्वर में पुकारती हुईं उनकी ओर रोकर दौड़ पड़ीं और प्रातःकाल होते ही जब वे रथ पर सवार हुए तब रथ को चारों ओर से घेर कर खड़ी होगईं। उनकी मधुर चितवन और मुस्कान देख कर उनके हृदय की कुछ ज्वाला शान्त हुई। तब वे अपने प्राणप्यारे मनमोहन से कुछ सन्देश पाने की इच्छा से वहीं खड़ी रहीं। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी प्रेयसी गोपियों की यह दशा देखी तब उन्होंने उन्हें शान्त करने के लिये उन से कहा—'मैं शीघ्र आऊँगा।' अपने प्यारे श्याम सुन्दर का यह सन्देश पाकर वे गोपियाँ वहीं खड़ी खड़ी एक टक उनके रथ की ओर देखती रहीं और अक्रूर उनके रथ को हाँककर चल दिए। तब यशोदा माता रोते हुए बोलीं—

नहिं कोउ श्यामहिं राखे जाइ।
सुफलक सुत बैरी भयो मोकों, कहति यशोदा माइ॥
मदन गोपाल बिना घर आँगन, गोकुल काहि सुहाइ।
गोपी रहीं ठगी सी ठाढ़ीं, कहाँ ठगौरी लाइ॥
सुन्दर श्याम राम भरि लोचन, बिनु देखे दोउ भाइ।
सूर तिन्हें लै चले मधुपुरी, हिरदे सूर बढ़ाइ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलराम के रथ के पीछे पीछे उन गोप ग्वालों के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गोरस, मक्खन घी आदि से भरे हुए छकड़े चलने लगे। गोपियाँ उनके रथ को एक टक खड़ी २ चित्र सी देखती रहीं। अभी उन्हें आशा थी कि शायद श्यामसुन्दर हमारे प्रेम से मोहित होकर कुछ दूर चल कर लौट आवें। किन्तु जब उनके रथ की धूल भी उन्हें उड़ते दृष्टि नहीं आई तब वे निराश होकर अपने अपने घर चलीं आईं और अपने प्राणप्यारे मोहन के विरह में शोकाकुल होकर उनकी लीलाओं का गायन करने लगीं।

हे परीक्षित! इधर अक्रूरजी राम कृष्ण के रथ को लेकर यमुना के निकट आये और अपने रथ को वृक्षों की छाँहमें खड़ा करके ब्रह्महद तीर्थमें स्नान करने की दोनों भाइयों से आज्ञाली। जब वे उस ब्रह्महद तीर्थमें डुबकी लगाने लगे और गायत्री का जप करने लगे तब उन्हें उस जल के मध्य में बलराम और श्रीकृष्णचन्द्र को एक साथ ही बैठे हुए देखा तब उन्हें संदेह हुआ कि शायद रथ से उतर दोनों भाई जल में आ गये हैं। उन्होंने अपना सिर जल से बाहर निकाल कर देखा तो वे दोनों भाई रथ में बैठे हुए हैं। तब उन्होंने अपना भ्रम समझ कर फिर जल में डुबकी लगाई। तो फिर उन्होंने उसी युगल जोड़ी को जल में देखा। वहाँ उन्होंने भगवान् शेष जी के ऊपर भगवान् श्यामसुन्दर को विराजमान देखा। वे चतुर्भुज स्वरूप थे। और पीताम्बर धारण किये थे। कमल के समान उनके नेत्र थे, और उनकी मधुर मधुर मुस्कान तथा चितवन चित्तको चुराए लेती है। भगवान् के इस दिव्य रूप माधुर्य को देखकर अक्रूरजी के हृदय में परमानन्द हुआ और वे पुलकित होकर उनके चरणों में गिर गए और गद्गद् कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे।

॥ चालीसवाँ अध्याय ॥

अक्रूरजी द्वारा भगवान् श्री कृष्ण की स्तुति।

अक्रूरजी बोले—हे परमात्मन्! आप ही समस्त प्रकृति के आदि कारण हैं। आपकी नाभि कमल से ही ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। आप ही चराचरजगत के स्वामी हैं। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। यह सम्पूर्ण भूत पृथ्वी जल अग्नि आदि यथा महतत्व अहङ्कार सब आपही के अङ्ग स्वरूप हैं। ये सब नाशवान

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हैं। केवल आप का स्वरूप ही नित्य है। योगी यती आपके स्वरूप की उपासना तीन प्रकार से करते हैं। एक अन्तःकरण में स्थिति अन्तर्यामी के रूप में दूसरे सम्पूर्ण भूत पदार्थों में व्याप्त परमात्मा के रूप में तीसरे सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं के रूप में स्थित इष्ट देवता के रूपमें आपकी उपासना करते हैं। बहुत से कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्म यज्ञों द्वारा आप की उपासना करते हैं। बहुत से ज्ञानी जन समस्त कर्मों से सन्यास ले कर शान्त भाव से स्थित हो कर ज्ञान यज्ञ द्वारा आप की आराधना करते हैं। बहुत से वैष्णव पंचपत्र आदि विधियों से आप के चतुर्व्यूह स्वरूप का ध्यान करते हैं। बहुत से शिव स्वरूप में आप की पूजा करते हैं। हे प्रभो! कुछ लोग देवताओं की भक्ति करते हैं। किन्तु आप ही उन देवताओं के रूप में उनकी उपासना स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार अनेकों पर्वतों से निकल कर बहुत सी नदियाँ घूम घाम कर एक समुद्र में ही प्रविष्ट कर जाती हैं। उसी भाँति समस्त प्राणी अनेक देवी देवताओं के रूप में तथा अनेक विधियों से आराधना कर के आप के ही निकट पहुँच जाते हैं।

हे भगवन्! आपने सत्व, रज, तम, तीन प्रकार की प्रकृति उत्पन्न की है। ब्रह्मा से ले कर समस्त चराचर जीव प्राकृत हैं वे प्रकृति के ही गुणों में ओत प्रोत रहते हैं। केवल आप ही अप्राकृत होने से उन में लिप्त नहीं होते हैं। यह जितनी भी प्राकृत सृष्टि है सब नाशवान् है केवल आप ही नित्य हैं। मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आपका मुख अग्नि चरण पृथ्वी, सूर्य चन्द्रमा नेत्र, नाभि आकाश, कान दिशाएँ सिर स्वर्ग, भुजाएँ देवता तथा कोख समुद्र हैं। ये सम्पूर्ण वृत आदि आपके रोयाँ हैं। हे अविनाशी! मैं आपके उस विराट स्वरूप को नमस्कार करता हूँ। जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड गूलर के भिनुगे के समान उस में रहते हैं। आप ही दुष्टों का संहार करने के लिए पृथ्वी पर अनेक रूप धारण करते हैं। आपने मत्सावतार लिया। मधुकैटभ दैत्यों को मारने के लिए हयग्रीव का अवतार लिया। आपने मन्दराचल को धारण करने के लिये कच्छप रूप धारण किया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आपने पृथ्वी को जल से बाहर लाने के लिए बाराह रूप धारण किया। प्रहलाद की रक्षा के लिए नृसिंह रूप धारण किया। बलि से तीनों लोकों का राज्य लेने के लिए बावन अवतार लिया। घमण्डी क्षत्रियों के नाश के लिये परशुराम का अवतार लिया रावण का नाश करने को रामचन्द्र जी का अवतार लिया और अब भक्तजनों की रक्षा के लिये और दुष्टों का संहार करने के लिये आपने वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह से प्रकट हुये हैं। मैं आपके इन सभी अवतारों को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

हे भगवन्! मैं आपकी इस माया में मोहित हो रहा हूँ। इसी कारण मैं इस संसार जाल में भटक रहा हूँ। मैं स्त्री पुत्रादि को ही सत्य माने बैठा हूँ। किन्तु वास्तव में सब नाशवान हैं। आप ही हमारे सच्चे देवता हैं। मैं आपके अविनाशी अपार ज्ञान से हीन हूँ। इसी कारण मुझे ये कामनाएँ सता रही हैं और ये इन्द्रियाँ मुझे हठ पूर्वक कुकर्मों की ओर ले जा रही हैं। हे प्रभो! मेरे बड़े भाग्य हैं कि आपने मुझे अपनी चरण रज प्रदान की है। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ मेरी रक्षा कीजिये।

—❀—

॥ इकतालीसवाँ अध्याय ॥

श्रीकृष्णचन्द्र का मथुरा में प्रवेश।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अक्रूरजी को इस प्रकार अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन ब्रह्म ह्रद के जल में कराये जब उनका दिव्य स्वरूप अन्तर्द्धान हो गया तब अक्रूरजी जल से बाहर निकले और अपने नित्य कर्म समाप्त करके शीघ्रता से रथ पर आये उनके हृदय की दशा बड़ी विचित्र हो रही थी। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे चाचा! आपने जल में कोई अद्भुत वस्तु देखी है जिसके कारण आपकी आकृति ऐसी विचित्र सी प्रतीत हो रही है।

अक्रूरजी बोले—हे भगवन्! जल, पृथ्वी, आकाश तथा सारे चरा-

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS

चर जगत में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं वे सब आप ही हैं। मैं वहाँ पर आपही को देख रहा था। ऐसी कौनसी वस्तु है जिस में आप नहीं। मैं सर्वत्र आपही को देख रहा हूँ। इस प्रकार गान्दिनी नन्दन अक्रूर जी ने कह कर अपना रथ हाँक दिया और वे बलराम तथा श्रीकृष्णचन्द्र जी को दिन ढले तक लेकर मथुरा पहुँच गये।

हे परीक्षित! मार्ग में ग्रामों के स्त्री पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी के दर्शन करके प्रेमानन्द में मग्न हो जाते। नन्द बाबा तथा अन्य ब्रजवासी तो पहले से ही मथुरा पहुँच चुके थे। वे नगर से बाहर एक उपवन में अपने डेरे डाल कर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब अक्रूर जी का रथ उन ब्रजवासियों के निकट पहुँच गया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने विनम्र भाव से अक्रूरजी का हाथ पकड़ कर मुस्करा कर कहा। चाचाजी! अब आप अपना रथ मथुरा जी में ले जाइये। हम लोग थोड़ी देर यहाँ ठहर कर फिर नगर देखने आवेंगे।

अक्रूर जी बोले—हे भगवन्! मैं अब आप के बिना मथुरा में नहीं जाना चाहता हूँ। हे स्वामी! मैं आप का भक्त हूँ आप मुझे न त्यागें। आप सब ग्वाल बालों सहित चल कर मेरे घर को पवित्र करें। आपके चरण धोवन से ही गङ्गा उत्पन्न हुई हैं जिससे सभी देवता पवित्र होते हैं आप जगत के स्वामी, और मेरे परमात्मा हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे चाचा जी! मैं अपने भाई जी के साथ तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा। और मैं अपने इन सभी सज्जनों का प्रिय कार्य करूँगा। किन्तु पहले इस दुष्ट कंस को मार लूँ।

श्रीशुकदेवजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के इस प्रकार कहने पर उनके अनन्य प्रेमी भक्त अक्रूरजी कुछ अनमने से होकर मथुरापुरी में प्रवेश कर के कंस को श्रीकृष्ण और बलरामजी के आने का समाचार देकर अपने घर को गए।

दूसरे दिन तीसरे पहर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजी तथा अपने ग्वाल बालों को साथ ले कर मथुरापुरी को देखने के लिये उस में प्रवेश

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किया नगर में उन्होंने देखा कि बड़े सुन्दर २ भव्य भवन बने हुए हैं। उन के ऊँचे २ सिंह द्वार फाटक में सोने के किवाड़ लगे हुए हैं। स्थान स्थान पर कलश खम्भ बन्दनवार आदि से शोभायमान हैं। उस नगर के चारों ओर ताँबे और पीतल की चहार दीवारी बनी है। उस के बाहर खाई खुदी हुई है। जिसके कारण उस में प्रवेश करना अति कठिन है। स्थान स्थान पर रमणीक उद्यान, उपवन शोभायमान हैं। बड़े बड़े चौराहे, बाग, बगीचे, दुकानें आराम गृह आदि शोभायमान हैं। हीरे, बिल्लौर, नीलम, मूँगे मोती, पन्ने आदि छज्जे चबूतरों तथा झरोखों में जड़े हुए हैं। उस पर कबूतर, मोर आदि भाँति भाँति के पक्षी बने हुए हैं। सड़क बाजार गली चौराहे, बड़ी उत्तमता से सजाये गये हैं। जगह व जगह पर फूल खील आदि बखेरे गये हैं। हे परीक्षित्! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तथा बलराम जी ग्वाल बालों के साथ राज पथ से मथुरा नगर में घुसे। उस समय नगर की स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को निहारने के लिये अपनी अपनी अट्टालिकाओं पर आ कर इस प्रकार कहने लगीं।

भये सखि नैन सनाथ हमारे।
मदन गोपाल देखतहि सजनी सब दुख शोक बिसारे॥
पठये थे सुफलक सुत गोकुल, लैंन सो यहां सिधारे।
मल्ल युद्ध अति कंस कुटिल मति छल कर यहाँ हँकारे॥
मुष्टिक अरु चारुण शैल सम सुनियत है अति भारे।
कोमल कमल समान देखियत ये जसुमति के वारे॥
होवे जीत विधाता इन की करहुँ सहाय सवारे।
सूरदास चिरजीवहु दुष्ट दलिन दोऊ नन्द दुलारे॥

वे सब मथुरा की युवतियाँ अपने अपने गृह कार्यों को त्याग कर बड़ी उत्सुकतासे अपनी अपनी अटारियों पर उन्हें देखनेके लिए चढ़ गईं। किसीने अपने वस्त्र उल्टे ही पहन लिए। किसी ने कंगन एक ही हाथ में ही पहना किसी ने एक ही पाँव में पायजेव पहनी। कोई एक ही आँख में अंजन लगा पाई और शीघ्रता से दूसरी में न लगा पाई। जो भोजन कर रही थी वह अपने भोजन को त्याग कर जो स्नान कर रही थी वह अपने स्नान को त्याग कर दौड़ पड़ीं। जो सो रही थीं वे भी कोलाहल सुन कर आँख

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मलती दौड़ पड़ी। हे परीक्षित! उन कमल नयन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन करने के लिये मथुरा नगर की सारी प्रजा उन्मत्त हो उठी। श्यामसुन्दर तथा बलराम अपनी मन्द मन्द हँसी से तथा प्रेम भरी चितवन से सब के मन को चुराते हुए गजराज की भाँति बड़ी धीमी चाल से चल रहे थे। मथुरा की युवतियों ने चिरकाल से उनकी लीलाएँ सुन रक्खी थीं। वे उनके दर्शनों के लिये व्याकुल हो रहीं थीं। अब उन्हें अपने सामने देख कर उन्होंने अपने नेत्र सफल किये। वे नारियाँ अपने अपने महलों पर चढ़ कर बलराम तथा श्रीकृष्ण पर फूलों की वर्षा करने लगीं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों ने दधि, अक्षत, जल के भरे पात्र, चंदन, फूलों के हार आदि भेंट कर भगवान श्री कृष्णचन्द्र तथा बलरामजी की पूजा की। सभी नगर निवासी धन्य है धन्य हैं ऐसे शब्द कहने लगे और वे बोले कि इन गोपों तथा गोपियों ने कौनसा तप किया है जिसके कारण उन्हें मनोहर मूर्तियों के दर्शन प्राप्त होते रहते हैं।

हे परीक्षित! उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने एक धोबी को धुले हुए वस्त्र ले जाते हुए देखा। तब भगवान् ने कहा—अरे भाई रजक! तुम हमें ऐसे वस्त्र दे दो जो हमारे शरीरों में ठीक आ जावें। यदि तुम हमें वस्त्र दोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। किंतु उस मूर्ख, कंस के सेवक धोबी ने भगवान श्री कृष्णचन्द्र के इन बचनों की उपेक्षा करते हुए कहा—अरे तुम लोग रहते हो गँवार ग्वालों में। जङ्गलों और पहाड़ों में। क्या तुम ऐसे ही वस्त्र पहिनते हो। इस नगर में आकर तुम्हारा हौसला बढ़ गया है। तभी तुम ऐसी बातें कर रहे हो। अरे मूर्खों! ये राजा कंस के वस्त्र हैं। भाग जाओ। फिर ऐसा कभी मत कहना। यहाँ के राज कर्मचारी तुम जैसे उच्छृङ्खलों को मार डालते हैं। जब उस धोबी ने इस प्रकार कहा तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसमें एक तमाचा मारा जिससे उसका सिर धड़ से अलग हो गया। उस धोबी के अनुचर सब कपड़ों की गाठें छोड़ २ कर भाग निकले। तब भगवान् श्री कृष्णचंद्र ने बढ़िया २ वस्त्र निकाल कर अपने साथी ग्वाल बालों को पहिनाये,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और स्वयं बलराम जी के सहित पहने। बचे खुचे वस्त्र वहीं पड़े रहने दिये। हे परीक्षित्! जब वे आगे बढ़े तब उन्हें एक दरजी मिला उन दोनों सिंह शावकों के रूप सौन्दर्य को देखकर वह दर्जी अति प्रसन्न हुआ उसने उन दोनों के वस्त्रों को काट छाँट कर ठीक कर दिया। अनेक भाँति के वस्त्रों से सज कर दोनों भाइयों की शोभा और भी बढ़ गई। भगवान् ने उस दर्जी को भरपूर धन सम्पत्ति बल ऐश्वर्य दिया तथा अन्त में मोक्ष भी उसे देदी। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को सुदामा नाम का माली मिला। उसने उन दोनों को प्रणाम किया। और उत्तम आसन पर बैठाल कर उन के पैर पखारे। उनकी विधिवत् पूजा की और ग्वाल बालों सहित उनको सुन्दर २ फूलों के हार पहनाये और चन्दन आदि से उनकी पूजा की। उसने उनकी अनेक प्रकार से स्तुति और प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने शरणागत सुदामा को श्रेष्ठ वर दिया। सुदामा ने केवल यही वर माँगा कि प्रभो मेरी भक्ति सदा आप में अविचल रहे। भगवान् ने सुदामा को अपनी भक्ति के साथ २ लक्ष्मी भी दी। उसको बल आयु कीर्ति आदि का वर दिया। तब वहाँ से विदा हो गये।

—❀—

॥ ब्यालीसवाँ अध्याय ॥

कुब्जा पर कृपा, धनुष का तोड़ना, तथा कंस की ब्याकुलता।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! उस माली के यहाँ से विदा हो कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ग्वाल बालों के सहित आगे बढ़े। तब उन्होंने राज मार्ग पर जाती हुई एक कुबरी स्त्री को देखा। इसी से उसका नाम कुब्जा पड़ गया था। उसका रूप तो सुन्दर था किन्तु शरीर ही ठेढ़ा मेढ़ा था। उसके हाथों में चन्दन के भरे पात्र थे। वह चन्दन लिए आ रही थी। तब भगवान् ने उस पर कृपा करने की इच्छा से अपने स्वरूप तथा श्रृङ्गार रस का सुख देने की इच्छा की। इसलिये उस से हँस कर पूछा—हे सुन्दरी! तुम कौन हो। यह चन्दन तुम कहाँ लिये जाती हो।

यह चन्दन अङ्गराग हमें भी प्रदान करो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा। तब वह सैरन्ध्रा कुब्जा बोली—हे श्यामसुन्दर! मैं कंस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की प्यारी दासी हूँ। मेरा नाम त्रिवचना है। मुझे महाराज बहुत मानते हैं। मैं उन्हों के लिये चन्दन आदि लिये जा रही हूँ। उन्हें मेरे द्वारा तैयार किया हुआ चन्दन तथा अङ्गराग अधिक अच्छा लगता है। हे सौन्दर्य की मूर्ति! आप की सुकुमारिता, रसिकता, मन्द हास्य, प्रेमालाप तथा चित्त को चुराने वाली चितवन को देख कर मेरा मन अति आतुर हो उठा है। तुम से बढ़कर सुन्दर इस त्रिलोकी में कोई भी नहीं है। मैंने अपना हृदय तुम दोनों पर न्यौछावर कर दिया। इतना कह कर उसने भगवान् श्रीकृष्ण के साँवले शरीर पर पीले रङ्ग का तथा बलराम जी के गोरे शरीर पर लाल रङ्ग का अङ्गराग लगाया। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कुब्जा से प्रसन्न होकर उस त्रिबक्रा अर्थात् तीन स्थान से टेढ़ी कुब्जा के पैर पर अपना पैर रख कर उसकी ठोड़ी के नीचे हाथ लगा कर उसे सीधा कर दिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के स्पर्श करते ही वह विशाल नितम्बा तथा सुन्दर पयोधरों से युक्त एक सुन्दर युवती बन गई। हे परीक्षित्! उस समय कुब्जा के हृदय में मिलन की कामनाजागृत हो उठी। उसने उनके दुपट्टे का छोर पकड़ कर मधुर मुस्कान के साथ कहा—हे वीर शिरोमणि! मेरे घर पधारिये। अब मैं आपकी दासी हूँ। मुझ दासी पर कृपा कीजिए। जब उस कुब्जा ने बलरामजी के सामने ही उनसे इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने साथ चलने वाले ग्वालबालों की ओर देख कर हँसते हुए इस प्रकार कहा—हे परमसुन्दरी! तुम्हारे घर आऊँगा। किन्तु पहले मैं अपना कार्य करलूँ। हमारा यहाँ घर थोड़े ही है। हमारे जैसे पथिकों के लिए तुम्हारा ही तो आश्रय है। इस प्रकार मधुर मधुर बातें कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे विदा किया और वे व्यौपारियों के बाजार में आये उन व्यौपारियों ने पान, फूल, चन्दन आदि से उनकी पूजा की।

तत्पश्चात् पुरवासियों से धनुषयज्ञ का स्थान पूछते पूछते रङ्ग शाला पहुँचे। इसी स्थान को रङ्गेश्वर कहते हैं। वहाँ पर एक अद्भुत इन्द्र धनुष रक्खा था। वहाँ पर कंस के बहुत से सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन रक्षकों के मना करने पर भी उस

Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

धनुष को उठा लिया और उस पर डोरी चढ़ा कर एक क्षण में बीचों बीच से तोड़ डाला। जिस प्रकार एक मतवाला हाथी ईख को तोड़ डालता है। उस धनुष के टूटते ही बहुत से असुर उन्हें पकड़ने की इच्छा से दौड़ पड़े। उनका दुष्ट अभिप्राय समझ कर बलराम जी और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उस धनुष के टुकड़ों से उन सब का संहार किया। तब कंस ने एक सेना भेजी उसका भी उन्होंने संहार कर डाला। तत्पश्चात् वे यज्ञशाला से चले आये। जब नगर निवासियों ने दोनों भाइयों के ऐसे अद्भुत पराक्रम को देखा और सुना और उन के रूप माधुर्य को देखा तो उन्होंने समझा कि अवश्य ही कोई देवता प्रगट हुए हैं। सन्ध्या होते होते दोनों भाई ग्वाल बालों सहित अपने डेरे पर चले आये। फिर बलराम जी तथा श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने हाथ पैर धोकर दूध से बने हुए खीर आदि पदार्थों का भोजन किया और सो रहे।

हे परीक्षित्! जब कंस ने श्रीकृष्ण और बलराम के ऐसे पराक्रम को देखा तब वह अति व्याकुल हो उठा। उसे रात्रि में नींद न आई। उसने बड़े बुरे २ अपशकुन से युक्त स्वप्न देखे। उसे चन्द्रमा तारे, दीपक आदि की ज्योति दो दो दृष्टि आने लगीं छाया में छेद दिखाई देने लगे। कानों में घूँ २ शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। उसने इसी भाँति अनेक बुरे स्वप्न देखे उसने जाग्रतावस्था में भी अपशकुन देखे। वह मृत्यु से डर गया और उसे रात भर नींद न आई। रात्रि के व्यतीत होने पर उसने दङ्गल का महोत्सव आरम्भ कराया। उस रङ्गभूमि को भली भाँति सजवाया। उन मंचों पर नगर ग्राम आदि की सभी जनता बैठी थी। राजा कंस भी छोटे छोटे राजाओं के साथ एक सर्व श्रेष्ठ उच्च राज सिंहासन पर, विराजमान हो गया। उस समय भी अपशकुन हो रहे थे जिसके कारण वह घबड़ा रहा था। वहाँ पर मारू बाजा बजने लगा और बड़े २ पहलवान ताल ठोक कर अखाड़े में उतरने लगे। चारुण, मुष्टिक कूट, शल तथा तोषल आदि मुख्य-मुख्य पहलवान भी अखाड़े में आ डटे। उसी समय कंस ने नन्द उपनन्द आदि गोपों को बुलवाया और उन से भेंट की सामिग्रियाँ लीं। भेंट देकर सब वहीं एक मंच पर आ बैठे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तेतालीसवाँ अध्याय ॥

कुवलियापीड़ का उद्धार तथा अखाड़े में प्रवेश ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम शौच आदि के कर्मों से निवृत्त होने के लिये नन्द बाबा आदि के साथ भूमि में नहीं गए वहाँ रङ्ग भूमि में दङ्गल के बाजे बज रहे थे । जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्ररङ्गभूमि के द्वार पर पहुँचे तब वहाँ कुवलियापीड़ नाम का हाथी खड़ा हुआ देखा । तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस हाथी के महावत से कहा । अरे इस हाथी को हमारे रास्ते से हटादो । महावत ने अनसुनी की तब भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अरे महावत ! क्या तू नहीं सुनता तुझे तेरे हाथी सहित यमराज के घर अभी पहुँचाना होगा । उस महावत ने अंकुश के द्वारा उस हाथी को श्रीकृष्णचन्द्र की ओर बढ़ा दिया । कुवलियापीड़ ने बड़ी शीघ्रता से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को अपनी सूँड़में पकड़ लिया किन्तु वे पतले बन कर सूँड़ से बाहर निकल आये । उसमें एक घूँसा मारकर उसके पैरों के बीच में छिप गए । तब कुवलियापीड़ उन्हें न देखकर अति क्रोधित हुआ और इधर उधर सूंड़ घुमाकर उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करने लगा । तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने पूँछ पकड़ कर उसे सौ हाथ की दूरी पर फेंक दिया । इसी भाँति वे कभी उस हाथी की पूँछ, कभी सूँड़ पकड़ कर घुमाते और दाँये बाँये घूमकर अपने को बचाने लगे । कभी सामने आ जाते कभी आगे भाग जाते । इसी भाँति बहुत देर तक उस हाथी से खेलते रहे । तब उन्होंने हाथी में एक घूँसा जमाया कि वह तिलमिला उठा । वे उसे गिराने का प्रयत्न करने लगे । एक बार उन्होंने पृथ्वी पर गिरने का बहाना किया ।

हाथी ने समझा कि वे पृथ्वी पर गिर गए हैं तब उसने अपने दोनों दाँत पृथ्वी में गढ़ा दिये । तब उस कुवलियापीड़ का यह आक्रमण व्यर्थ हुआ । वह चिढ़कर भगवान् श्रीकृष्ण पर टूट पड़ा । हे परीक्षित ! मधु कैटभ आदि दैत्यों का संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे खिला रहे थे । जब उन्होंने उस हाथी को अपने पर आक्रमण करते हुए

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

देखा। तब उन्होंने झट उसकी सूँड़ पकड़ कर पृथ्वी पर दे पटका और उसके सिर को अपने पैर से दबा कर उसके दोनों दाँत उखाड़ लिए। कुबलियापीड़ हाथी को मार कर उन्होंने उसके महावत को भी मार डाला।

हे परीक्षित! उस मरे हुए हाथी के एक एक दाँत अपने हाथों में लेकर श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजी ने उस रङ्गभूमि में प्रवेश किया। उनके कन्धों पर हाथी दाँत रक्खे हुए थे और शरीर पर रक्त की छींटें पड़ी हुई थीं। उनकी शोभा अति निराली प्रतीत होती थी। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम ग्वालबालों के साथ रङ्गभूमि में पहुँचे तो उस समय पहलवानों ने उन्हें बड़ा पहलवान समझा साधारण मनुष्यों ने उन्हें देवता समझा। स्त्रियों ने उन्हें साक्षात कामदेव समझा। ग्वालबालों ने उन्हें सखा समझा। दुष्ट राजाओं ने उन्हें दण्ड देने वाला समझा। वृद्धजनों ने उन्हें बालक समझा। कंस ने उन्हें अपना शत्रु समझा। योगीजनों ने उन को अपना आराध्य देव माना। हे परीक्षित्! जब कंस ने कुबलियापीड़ हाथी को मरा हुआ सुना और उसने उनकी मूर्तिको देखा तब वह अति घबड़ा उठा। उसकी दशा बड़ी बिचित्र हो गई। उस रङ्गभूमि में मथुरा नगर तथा बाहर के स्त्री पुरुष विराजमान थे। उनके नेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन करके अति आनन्दित हुए। वे परस्पर संकेत कर के इस प्रकार कहने लगे।

एही सुत नन्द अहीर के।
मार्यो रंजक बसन सब लूटे, संग सखा बलवीर के॥
काँधे धारी दोऊ जन आये, दन्त कुबलियापीड़ के।
यशुपति मण्डल मध्य मनो मनि, छीरधि नीरधिनीरके॥
उड़ि आये तजि हंस मातमनु, मान सरोवर तीर के।
सूरदास प्रभु ताप निबारन, हरन सन्त दुख पीर के॥

हे परीक्षित्! उनके रूप सौन्दर्य गुण माधुर्य तथा निर्भयता को देख कर दर्शकों के हृदय में अति आनन्द पुञ्जी भूत होकर प्रवाहित हो रहा था। नगर निवासी कहने लगे ये दोनों साक्षात् नारायण के ही अवतार हैं। उँगली का संकेत कर के ये साँवले देवकी के पुत्र हैं और ये गौर वर्ण रोहिणी के पुत्र हैं इनको बसुदेवजी ने इन्द्रजी के यहाँ छिपा दिया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

था। इन्होंने ही पूतना, तृणावर्त्त, शङ्खचूर्ण, केशी, धेनुक आदि दैत्यों का संहार किया है। इन्होंने ही कालियानाग का दमन किया है। तथा गोवर्द्धन पर्वत को सात दिन तक एक ही उँगली पर धारण किया था। वे ब्रजवासी गोपी तथा ग्वाल धन्य हैं जो नित्य इनके दर्शन करते रहते हैं। किसी किसी के मुखसे हमने यह सुना है कि वत्सासुर, प्रलम्बासुर, बकासुर आदिका संहार भी इन्होंने ही किया है। जब अखाड़े में इस प्रकार की बात चीत हो रही थीं तब चारुण भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम को पुकार कर बोला—हे नन्द नन्दन! और बलरामजी! तुम दोनों ही वीरों में श्रेष्ठ हो। हमारे महाराज तुम्हारी कुश्ती देखना चाहते हैं। उन्हें प्रसन्न करने के लिये तुम्हें कुश्ती लड़नी चाहिये। क्योंकि तुम लोगों का धर्म है कि राजा को प्रसन्न करें।

हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो यह चाहते ही थे उन्होंने चारुण की बातको मानते हुए कहा कि हम को अवश्य राजा कंस को प्रसन्न करने का उपाय करना चाहिये। इसी में हमारी भलाई है। किन्तु हे चारुण हम लोग बालक हैं। इसलिए अपनी उम्र वाले बालकों से ही हम कुश्ती लड़ सकते हैं जिससे अन्याय न होवे।

चारुण बोला—अरे भाई! तुम दोनों को बलवानों में अति श्रेष्ठ हो। न तुम बालक हो और न तुम किशोर हो। तुमने हमारे देखते देखते-कुबलियापीड़ हाथी को खेल खेल ही में मार डाला। अतः तुम जैसे बलवानों को तो हम से लड़ना चाहिये। इस में कोई अन्याय नहीं है। तुम मुझ से लड़ो और बलराम मुष्टिक से लड़ेंगे।

॥ चौवालीसवाँ अध्याय ॥

❀ चाणूर तथा मुष्टिक से द्वन्द युद्ध और कंस का बध ❀

दो०—मार कंस श्रीकृष्ण ने, कीन्ह सुरन्ह के काज।
नभ से बरसे सुमन बहु, बाजे दुन्दुभि साज॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! उन दुष्ट दैत्यों का काल ही उन के शिर पर चढ़ कर बोल रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने उस चारुण की बात को मान लिया और वे स्वयं चारुण से भिड़ गये और अनन्त

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बलशाली बलराम जी मुष्टिक से भिड़ गये। दोनों ही पक्ष के महावीर अपने अपने दाव पेच और शक्ति का प्रदर्शन करने लगे । कभी हाथ से हाथ मिलाते हुए कभी कोई घुटनों के बल गिर जाता तो दूसरा उसे दबोचने का प्रयत्न करता। कभी कोई छूटकर दूर हट जाता कभी कोई कस कर पकड़ने का प्रयत्न करता।

हे परीक्षित! उस अखाड़े में देखने वाले नगर के स्त्री पुरुष सभी इस अनमेल पहलवानों के जोड़े को देख कर त्राहि त्राहि करने लगे । स्त्रियाँ कहने लगीं कि राजा कंस स्वयं बैठ कर कितना बड़ा अपराध करा रहा है। कहाँ ये बालक और कहाँ ये पर्वताकार दैत्य। अरी बहन! देखती नहीं हो कि इन श्याम सलौने बालकों के अङ्ग कितने कोमल हैं । और इन दैत्यों के अङ्ग कितने कठोर हैं। यह सरासर अधर्म हो रहा है। सखियो! देखो देखो बलरामजी के मुख पर पसीने की बूंदें कैसी शोभायमान हैं। मुष्टिक पर क्रोध करने के कारण उनकी आँखें लाल हो रही हैं। किन्तु फिर भी मुख पर मन्द मन्द मुस्कान है। स्वयं भगवान् शङ्कर ब्रह्मा और लक्ष्मी जिनके चरणों की पूजा करती हैं। वे श्रीकृष्णचन्द्र चाणूर पर बड़ी कुशलता से प्रहार कर रहे हैं। न जाने गोपियों ने कौनसी तपस्या की है जिसके प्रभाव से वे नित्य इनकी रूप माधुर्यता का पान करती रहती हैं । वे ब्रजगोपियाँ धन्य हैं जिनका मन निरन्तर इन्हीं में रमा रहता है। वे खाते पीते दूध दुहते दही मथते धान कूटते हर समय इन्हीं का स्मरण करती हैं।

हे परीक्षित! जब वे पुरवासिनी स्त्रियाँ इस भाँति आपस में बातें कर रही थीं उस समय योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र उस दुष्ट को मारने का निश्चय कर रहे थे। निकट में ही उनके माता पिता देवकी तथा बसुदेव उन स्त्रियों के मुख से दया भरी बातें बन्दीगृह के भीतर सुन रहे थे उनके हृदय में पुत्र स्नेह और कंस के द्वारा मारे जाने की आशङ्का हृदय को जला रही थी।

हे परीक्षित! वास्तव में वे अनन्त बलशाली भगवान् की शक्ति को नहीं जानते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने भक्तों के दुख को दूर करने के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

लिये शीघ्र ही उस चाणूर को पृथ्वी पर दे पटका और उस को इस प्रकार रगड़ा कि उसके सारे बन्धन टूट गये। उसने भगवान श्रीकृष्ण की छाती में एक घूँसा मारा तब श्रीकृष्णचन्द्र ने चाणूर की दोनों भुजायें पकड़ कर उसे आकाश में घुमा कर पृथ्वी पर दे पटका। इसी भाँति बलराम जी ने मुष्टिक को मारने की नीयत से एक तमाचा बड़े जोर से मारा। उस तमाचे के लगते ही वह मुष्टिक उखड़े हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर तिलमिला कर गिर पड़ा। और मुख से रक्त उगलने लगा। तत्पश्चात् कूट, शल, तोषल आदि का भी संहार उन दोनों भाइयों ने किया। शेष पहलवान दङ्गल छोड़ कर भाग निकले।

हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी की ऐसी अद्भुत लीला देख कर दर्शकों को अति आनन्द हुआ और सब धन्य धन्य कहने लगे किन्तु कंस को यह देख कर बड़ा दुःख हुआ उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि शीघ्र उन दोनों बालकों को नगर से बाहर निकाल दो। इन गोपों का सारा धन छीन लो। तथा उस नन्द को बन्दी बना लो। बसुदेव को शीघ्र ही मार डालो और उस दुष्ट उग्रसेन को भी जीवित न छोड़ो। इस भाँति वह बड़बड़ा कर गर्वीले बचन कहने लगा। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उछल कर उसके मन्च पर जा पहुँचे। जब कंस ने यह देखा कि मेरा शत्रु मेरे निकट ही आ गया है तब उसने शीघ्रता से ढाल तलवार ले ली। और वह उस मन्च पर खड़ा हो गया। उसने पैंतरा बदल कर भगवान् श्रीकृष्ण पर तलवार का वार करने का प्रयत्न किया किन्तु उन्होंने उस कंस को ऐसा पकड़ लिया कि उसे टस से मस न होने दिया। उसका मुकुट पृथ्वी पर गिर गया। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके केश पकड़ लिए और उसे ऊँचे मंच से नीचे पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने शरीर को अधिक भारी करके उसके ऊपर कूद पड़े। उनके कूदते ही कंस के प्राण पखेरू उड़ गये तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस कंस की लोथ को पृथ्वी पर देर तक घसीटा। हे परीक्षित! वह कंस सदा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ध्यान में रहता था। इसलिए शत्रु भाव रखने वाले उस कंस को भी भगवान् ने वही सारूप्य मुक्ति दी जिसे बड़े बड़े योगीजन बड़ी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कठिनाई से प्राप्त करते हैं। कंस के मारे जाने पर उसके आठ भाई और थे। वे सभी अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ओर दौड़े तब उन्हें अकेले बलरामजी ने एक परिधि उठाकर मार डाला। उस समय आकाश से दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवता पुष्पों की वृष्टि करने लगे। हे परीक्षित्! कंस तथा उसके भाइयों की स्त्रियाँ विलाप करती हुई वहाँ पर आईं। और अपने पतियों के मृत शव से लिपट लिपट कर रोने लगीं। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सबको समझा बुझा कर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया कराई और उन रानियों को ढाढस बँधाया। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तथा बलरामजी कंस की जेल में गये और वहाँ पर जाकर उन्होंने अपनी माता देवकी जी तथा बसुदेव जी की हथकड़ियाँ बेड़ियाँ काटीं और उनके चरणों में शिर रखकर उनकी बन्दना की। किंतु बसुदेव तथा देवकी ने उन्हें भगवान् समझकर अपने हृदय से नहीं लगाया वे डर रहे थे कि हम भगवान् जगदीश्वर को अपना पुत्र कैसे मानें। इस लिए वे दोनों हाथ जोड़ कर ही खड़े रहे।

॥ पैंतालीसवाँ अध्याय ॥

श्रीकृष्ण बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार तथा गुरुकुल गवन।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने यह जाना कि मेरे माता पिता मुझे ईश्वर समझ कर मेरी आराधना कर रहे हैं और वे वात्सल्य स्नेह से शून्य हैं तब उन्होंने अपनी योगमाया का आश्रय लेकर उन्हें मोहित कर दिया और इस प्रकार मधुर बचनों से हाथ जोड़ कर बोले—हे पिता जी! हे माता जी! हम आप के पुत्र हैं। आप लोग हमारे लिए सदा ही इच्छुक रहे हैं। फिर भी हम आपके वात्सल्य स्नेह से वन्चित रहे। और आप लोगों ने भी हमारी बाल लीला नहीं देखी। माता पिता ही शरीर को जन्म देते हैं और उस का लालन पालन करते हैं। तभी यह शरीर अर्थ धर्म काम मोक्ष की प्राप्ति के योग्य होता है कोई भी मनुष्य जीवन भर माता पिता की सेवा करते रहने पर भी उन से उऋण नहीं होता है। सामर्थ्य रखते हुए भी पुत्र धन और शरीर से माता पिता की सेवा नहीं करता है वह यम के दूतों के शरीर का माँस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by MoE

भवण करता है। जो बूढ़े माता, पिता, सती, पत्नी, अपनी सन्तान, गुरु ब्राह्मण तथा शरणागत इनका पालन नहीं करता है वह मुर्दे के समान है। हे पिताजी ! कंस के भय से हमको आप गोकुल में कर आये थे। हम आप की सेवा न कर सके। आप हमें क्षमा करें।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! अपने बच्चों के ऐसे बचन सुन कर—

तब वसुदेव हरषित गात।
श्याम रामहिं कण्ठ लाये, हरषि देवकी मात॥
अमर दीख दुन्दुभि दीन्हीं, भयौ जै जै कार।
दुष्ट दलि सुख दियौ सन्तनि, ये वसुदेव कुमार॥
दुख गयौ बहि हर्ष पूरन, नगर के नर नारि।
भयो पूरब फलसम्पूरन, लइयो सुत दैं त्यारि॥
तुरत बिप्रनि बोलि पठयो धेनु कोटि मँगाय।
सूर के प्रभु ब्रह्म पूरन, पाइ हरषे राय॥

बसुदेवजी ने श्रीकृष्ण तथा बलराम को वात्सल्य भाव से ओत प्रोत होकर कंठ से लगा लिया। और परमानन्द का लाभ प्राप्त करने लगे। उस काल उनके नेत्र आँसुओं से भर गए और कंठ रुँध गया।

हे परीक्षित् ! बसुदेव नंदन श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी अपने माता पिता को ढाढस बँधाय अपने नाना उग्रसेन के निकट गए और बोले—

कंस दुष्ट कूँ मारयौ आज, नानाजी अब कीजै राज।

इतना कह कर उन्होंने अपने त्रिलोक्यवन्द्य कर कमलों से उग्रसेन का राज्य तिलक कर दिया और बोले—हे नाना जी ! राजा ययाति के शाप के कारण यदुवंशी राज सिंहासन पर नहीं बैठते किन्तु फिर भी मेरी इच्छा है कि आप सिंहासन पर बैठिये और आप को कोई दोष न लगेगा। मैं आप की सेवा करता रहूँगा। मेरे रहते हुए मनुष्य यक्ष राक्षसों की तो बात ही क्या देवता भी आपके चरणों में मस्तक झुकावेंगे तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने राजा उग्रसेन को राज्य दे कर कंस के भय से भागे हुए सम्पूर्ण यदुवंशियों की खोज करा कर मथुरा में बुलवा लिया। उनके रहने के लिये स्थान, धन आदि दे कर उन्हें प्रसन्न किया। सभी यदुवन्शी नित्य निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन करते और

In Public Domain, Chambal Archives,,Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इनके अपार सौन्दर्य तथा दया पूर्ण हास्य चितवन से पूर्ण उनके मुखारविन्दु का अमृत पान करते।

हे परीक्षित! अब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र बलरामजी के साथ नंदबाबा के निकट उनके डेरों पर गए और उनसे हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे–

नन्दहि कहत हरि ब्रज जाहु।
कितिक मथुरा ब्रजहि अन्तर, जिय कहा पछिताहु॥
कहा व्याकुल होत अति ही, हर हौं कहँ जात।
निठुर उर में ज्ञान बरत्यौ, मानि लीनी बात॥
नन्द भये कर जोरि ठाढ़े, तुम कहें ब्रज जाऊँ।
सूर मुख यह कहत बानी चित नहीं कर ठाऊँ॥

हे परीक्षित! उस काल नन्द जी की यह दशा थी जो मणि के छिन जाने पर मणिधारी सर्प की होती है। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से यह बचन सुन कर कि हे बाबा! अब आप ब्रज को जाओ और हम कुछ दिन मथुरा में निवास करेंगे। नन्दजी का चित्त अति व्याकुल होकर छटपटाने लगा और वे अवाक् से होकर उनके श्याम सलौने मुख की ओर एक टक देखते रह गये। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें समझाते हुए कहा–हे पिताजी! आपने तथा माता यशोदा ने हमें बड़े स्नेह से पाला है। पालने वाले ही पिता माता होते हैं जिनके माता पिता पालन पोषण के योग्य नहीं होते हैं। जो लोग उन बच्चों को पालते हैं वे ही उन के वास्तविक माता पिता हैं। इस में सन्देह नहीं कि आप लोग हमारे वात्सल्य स्नेह के कारण अति दुःखी होंगे। किन्तु अब क्या बस है। हम यहाँ के सुहृद सम्बन्धियों को सुखी करके कुछ काल पश्चात् अवश्य आपके दर्शन करेंगे। इस प्रकार अपने मधुर बचनों से तथा ज्ञान के द्वारा नन्द जी को समझा बुझा कर उनको विदा किया। नन्द जी अछिताय पछिताय, मन मार ब्रज की ओर चल दिये। जब ब्रज में पहुँचे तब नन्द जी को राम श्याम के बिना देख कर ब्रज के गोपी ग्वाल पूछने लगे।

कहौ नन्द कहाँ छाँड़े कुमार।
कैसे प्राण रहे सुत बिछुड़त, पूछत हैं गोपी अरु ग्वार।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

करुना करै यशोदा माता, नैननि नीर बहैं असरार ।
चितवन नन्द ठगे से ठाड़े, मानों हार्यौ हेय जुआर ॥
मुरली धुनि नहिं सुनियत ब्रजमें, सुरमुनि बर नहिं करत कवार ।
सूरदास प्रभु के बिछुरेंते कोउ न झाँकन आवत द्वार ॥

हे परीक्षित ! उधर ब्रजवासियों की यह दशा थी और इधर बसुदेव जी के यहाँ आनन्द मङ्गल के बधाये और मङ्गल हो रहे थे। उन्होंने कोटि कोटि गौएँ जो श्रीकृष्ण और बलराम जी के जन्म नक्षत्र के समय मन ही मन संकल्प की थीं। रेशमी वस्त्राभूषण से सजाय मन में हरषाय ब्राह्मणों को दान दीं। तिस काल गर्ग जी को बुलाय आनन्द से बैठाय बसुदेव जी ने अपने दोनों बालकों का द्विजाति संस्कार कराया। तब गर्गाचार्य जी ने उन को गायत्री मन्त्र और विधि पूर्वक यज्ञोपवीत दिया। हे परीक्षित्। वैसे तो वे पूर्ण काम और स्वयं गायत्री ही थे किन्तु संसार के दिखाने के लिये ये सभी कर्म उन्होंने स्वीकार किये। उनका ब्रह्मचर्य अखण्ड था। उन दोनों भाइयों को विद्या अध्ययन करने के लिए अवन्तीपुर (उज्जैन) के विद्वान ब्राह्मण सांदीपनिके निकट भेज दिया। वैसे तो वे स्वयं सम्पूर्ण विद्याओंके आचार्य प्रवर्त्तक तथा उत्पन्न करता थे किन्तु फिरभी उन्होंने संसार के मनुष्यों के सामने गुरु सेवा का आदर्श रखने के लिये गुरुकुल में रह कर गुरु की सेवा करने लगे। गुरुजी उनका अति आदर करते थे और वे भी गुरुजी की उत्तम सेवा करते थे। गुरु सांदीपनिजी ने शुद्ध और पवित्र हृदय से उन्हें चारों वेद सम्पूर्ण उपनिषद, सम्पूर्ण शास्त्र,पुराण, यज्ञोंकी विधि,धनुर्वेद,मनुस्मृति, धर्म शास्त्र, मीमांसा, न्यायशास्त्र आदि की शिक्षा दी। उनके साथ ही साथ राजनीति सधि, विग्रह, यान आसन आदि की भी शिक्षा दी। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी ने सम्पूर्ण विद्यायें तथा चौंसठ कलाएँ गुरुजी के एक बार कहने मात्र से ही केवल चौंसठ दिन रात्रि में ही प्राप्त कर लीं।

जब वे सम्पूर्ण विद्या पढ़ चुके तब उन्होंने अपने गुरु सांदीपनि से प्रार्थना की कि आप की जो इच्छा हो वह हम से गुरु दक्षिणा माँगलें। हे परीक्षित ! सांदीपनि उनके अद्भुत तथा अलौकिक गुणों और उन की महिमा को जानते थे। उन्होंने अपनी पत्नी से सलाह कर के उन आत्मा

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राम भगवान् श्री कृष्णचन्द्र और बलराम जी से कहा कि प्रभास क्षेत्र में हमारा पुत्र समुद्र में डूब गया था तुम लोग उसे ला दो। गुरूजी के बचन सुनकर दोनों भाई रथ पर सवार हो प्रभास क्षेत्र में गये। समुद्र के निकट जाकर क्षण भर शाँत भाव से बैठ गये। तब समुद्र ने साक्षात् प्रभु को अपने निकट आया जान कर भेंट की सामिग्री लेकर उनके चरणों में उपस्थित हुआ तब श्रीकृष्णचन्द्र ने समुद्र से कहा—हे समुद्र! तुमने हमारे गुरु पुत्र को छिपा लिया है, उसे शीघ्र दे दो! मनुष्य के बेषधारी समुद्र ने कहा—भगवन्! मैंने उनका पुत्र नहीं लिया है। मेरे गर्भ में एक पंचजन्य नाम का दैत्य शङ्ख के रूप में रहता है, उसने अवश्य चुरा लिया होगा। तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तुरन्त ही उस जल में घुस गये, और शङ्खासुर को मार डाला। किन्तु वह गुरु पुत्र उसके पेट में भी न मिला, तब वे उस पंचजन्य शङ्ख को लेकर रथ पर आ बैठे, और यमराज की संयमनी पुरी की ओर चल दिये। जब वे यमराज की पुरी के निकट पहुँचे तब यमराज बड़ी भक्ति भाव से पूजाकी सामिग्री लेकर आया, और उन की पूजा की। तब यमराज हाथ जोड़ शिर नवाय बोले—हे जगत् के स्वामी! मेरे लिये क्या आज्ञा है।

तब श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे यमराज! अपने कर्मों के अनुसार हमारा गुरु पुत्र तुम्हारे यहाँ आया है। उसके कर्मों पर कोई ध्यान न देकर उसे हमारे निकट लाओ। तब यमराज ने शीघ्र ही सान्दीपनि के पुत्र को लाकर भगवान् श्रीकृष्ण को सोंप दिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस बालक को लेकर गुरु के निकट लौट आये और गुरु को वह बालक सौंप कर बोले आप की जो इच्छा हो वह और माँग लो।

गुरु जी बोले—हे बेटा! जब मैं ऐसे परम भागवत् जगत के स्वामी का गुरु हूँ, तो मुझे अब और क्या माँगना है। मेरी सम्पूर्ण कामनायें स्वतः पूर्ण हो गई हैं। अब दोनों अपने घर जाओ, और तुम्हें लोकों को पवित्र करने वाली कीर्ति प्राप्त हो। तुम्हारी विद्यायें नित्य नवीनता को प्राप्त होती रहें। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गुरु से आज्ञा ले कर रथ में सवार हो बलराम जी के साथ मथुरा लौट आये। मथुरा नगर निवासी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उनके दर्शनों के लिये प्राणहीन से हो रहे थे। उनके दर्शन प्राप्त कर के परमानन्द में मग्न हो गये।

॥ छियालीसवाँ अध्याय ॥

❀ उद्धवजी की ब्रज यात्रा ❀

दो०—योग ज्ञान उपदेश हित, उद्धव ब्रज में जाहु।
भली भाँति समझाय कर, संदेश उनका लाहु।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उद्धवजी वृष्टि वंशियों में अति श्रेष्ठ पुरुष थे। वे बृहस्पतिजी के शिष्य और भगवान के परम भक्त थे। उनकी महिमा के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वे भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के परमप्रिय सखा और उनके मन्त्री थे। एक दिन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र को अपने ब्रजवासी भक्तोंकी अधिक याद आई, और वे उनके दुःख से दुखी होकर अपने एकान्त प्रेमी उद्धवजी के हाथ को हाथ में लेकर बोले।

ऊधो वेग ही ब्रज जाहु।
श्रुति सन्देश सुनाइ मेरौ वल्लभिनि कौ दाहु।
काम, पावक, तूल तन में, विरह श्वास समीर॥
जरि भसम नहिं होन पावैं, लोचननि के नीर।
आजु लौं इहि भाँति हैं वै, कछुक सजग शरीर॥
इते पर बिनु समाधानहिं, क्यों धरैं तिय धीर।
बार बार कहा कहौ तुम सखा साधु प्रवीन॥
सूर सुमति बिचारिये जिहि, जियें जल बिन मीन॥

हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उद्धव को इस भाँति समझा कर कहा कि हे उद्धव! मेरे माता पिता नन्दबाबा तथा यशोदा और ब्रजकी गोपियाँ तथा ग्वालवाल मेरे बिना मेरे बिरह में अति ब्याकुल हो रहे हैं। तुम से क्या कहूँ मैं ही उनका प्राण, जीवन, तथा सर्वस्व हूँ। उन्होंने मेरी लिये अपने पति, पुत्र, घर बार सब को त्याग दिया है। उन्होंने मुझी को अपना प्यारा, अपना प्रीतम तथा आत्मा मान रक्खा है। हे उद्धव! जो मेरे लिए अपने लोक परलोक को त्याग कर सर्वस्व मुझे अर्पण कर चुकी है, मैं स्वयं उनकी देख रेख करता हूँ। वे ब्रज गोपियाँ मेरी विरह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

व्यथा में व्याकुल होकर बार २ मूर्छित हो जाती हैं। वे मेरे मिलन की आकांक्षा से बड़े कष्ट से अपने प्राण रख रही हैं। हे उद्धव ! मैं और क्या कहूँ। वे मेरी आत्मा हैं और मैं उनकी आत्मा हूँ। तुम उन्हें अपनी युक्ति से समझाना।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की आज्ञा पाकर उद्धव जी रथ पर सवार हो नन्दग्राम की ओर चल दिये और वे सूर्यास्त होते होते नन्दग्राम पहुँच गये। उस समय गौ धूलि का समय था। गौएँ बन से लौट रही थीं। उनके खुरों की धूल से आकाश ढक रहा था। साँड़ डहार रहे थे। गौएँ दौड़ कर अपने गृहों की ओर आरही थीं। उद्धवजी का रथ भी उन की धूल से ढक गया था गोपों के गृहों में अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण तथा देव पितरों की पूजा हुई थी इसलिये उसकी धूप की सुगन्धि चारों ओर फैल रही थी। वहाँ के बन की शोभा अति निराली थी। हंस, बतख, पक्षी आदि कलरव ध्वनि कर रहे थे।

हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र के प्यारे सखा उद्धवजी ब्रज में पधारे तब नन्दजी उनसे मिल कर अति प्रसन्न हुए।उन्होंने उद्धवजी को कण्ठ से लगाया और उनका वैसा ही सम्मान और आदर सत्कार किया जैसा मानो स्वयं उनके प्राण श्यामसुन्दर ही आ गये हों। उनको उत्तम भोजन कराया आराम के लिए पलँग बिछाया। सेवकों ने पाँव दबा कर पङ्खा झाले। तब नन्दजी उद्धव जी से पूछने लगे-हे उद्धवजी ! अब हमारे मित्र बसुदेवजी बन्दीगृह से छूट गये और उनके सभी कुटुम्बी आदि प्रसन्न हैं न? उस कंस ने उन्हें बड़ा दुःख दिया था। अब उसका नाश हो गया। हे उद्धवजी! यह तो बताओ कि हमारे प्राण प्यारे श्रीकृष्ण बलराम तो प्रसन्न हैं न? वे कभी हमारी याद भी करते हैं या नहीं? यह उनकी माँ यशोदा हैं यह उन के स्वजन सम्बन्धी हैं। ये सखा गोप हैं। ये उन्हीं को अपना स्वामी मानते हैं। उन्हीं का यह वृन्दाबन है। उन्हीं का यह गिर्राज है, और उन्हीं की ये गौ हैं, जो निरन्तर उनको याद करती रहती हैं।

हे प्यारे उद्धव ! तुम यह तो बताओ वे हमारे प्राण प्यारे कृष्ण जी कभी एक बार यहाँ ब्रज में आवेंगे क्या? यदि एक बार यहाँ आ जावें

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तो हम उनकी मधुर मुस्कान, मनोहर चितवन तोते की सी नाक आदि का दर्शन कर लेते। उन्होंने सदा ही हमारी रक्षा की है। हम तुम्हें कहाँ तक गिनावें उन्होंने हमारी रक्षा के लिए गिरिराज पर्वत को भी सात दिन तक अपनी एक अंगुली पर धारण किया था। वे यहाँ खेलते थे। क्रीड़ा करते हुए बंसरी बजाते थे। उनके सभी खेल की सामग्रियाँ यहाँ ज्यों की त्यों मौजूद हैं। उन को देख देख कर हमारा मन कभी उन की याद नहीं भूलता है। मैं जानता हूँ कि वे आत्माराम तथा लक्ष्मीपति भगवान् हैं। वे देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ही यहाँ पर आये हैं। वे किसी के भी नहीं हैं और सब के हैं। मुझ से गर्गाचार्य जी ने सभी कह दिया था। उन्हीं के कहने के अनुसार उनके सभी कर्म मैंने ज्यों के त्यों देखे। इतना कहते कहते नन्दजी का कण्ठ भर आया और उन के नेत्रों से अश्रुओं की अविराम धार बहने लगी और वे उनके प्रेमानन्द में मग्न हो गये तथा गला रुँधने के कारण चुप हो गये। यशोदा रानी भी नन्द जी के निकट बैठी हुईं उनकी ये सब लीलायें सुन रही थीं। उन के नेत्रों से आँसू और स्तनों से दूध बहता आता था उद्धव जी ने यह सब कुछ प्रत्यक्ष देखा और सुना कि उन का कितना अगाध अनुराग उन में था। उद्धव जी बोले—हे नन्द जी! इस में सन्देह नहीं है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सम्पूर्ण चराचर जगत के स्वामी हैं, उन के प्रति तुम्हारा ऐसा वात्सल्य स्नेह अति सराहनीय है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परम पुरुष हैं और बलराम जी प्रधान प्रकृति। ये दोनों ही सम्पूर्ण विश्व में प्रविष्ट होकर उस में शक्ति प्रदान करते हैं तथा शरीर धारियों को जीवन दान देते हैं। वे ही इस जगत के नियन्ता हैं, जिनका शुद्ध मन एक क्षण के लिये भी उनमें लग जाताहै तो उनकी सम्पूर्ण कर्म वासनायें धुल जाती हैं। वह परम गति को प्राप्त होता है। वे पृथ्वी का भार उतारने को यहाँ आये हैं। उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के लिये आप दोनों का अटूट वात्सल्य स्नेह है। फिर आप दोनों के लिए कोई भी शुभकर्म शेष नहीं रहा है। वे भक्त वत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ ही दिनों में ब्रज में आवेंगे और अपने माँ बाप आप दोनों को आनन्द प्रदान करेंगे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उन्होंने जो यह कहा कि मैं ब्रज में आऊँगा' इस बचन को अवश्य ही सत्य करेंगे। अब आप लोग धैर्य धारण करें और उनसे मिलने के लिए इस शरीर और प्राणों को धारण रक्खें। वे श्रीकृष्णचन्द्र सदा आप ही के निकट रहते हैं, जिस प्रकार सदा काष्ठ में अग्नि व्याप्त रहती है। उनका न कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। उनकी दृष्टि में न कोई अच्छा है और न कोई बुरा है। यहाँ तक कि वे अपने शत्रु से भी शत्रुता नहीं रखते हैं फिर आप लोग तो उनके माता पिता हैं वे युग युग में अवतार लेते हैं। कभी मत्स्य अवतार कभी कच्छप कभी बाराह तो कभी बावन अवतार लेते हैं। वे अपनी लीला विलास के लिए सत, रज, तम तीनों गुणों को स्वीकार करके जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। उनकी लीला को कोई जान नहीं सकता जीव अहङ्कार वश में तथा मेरे पन के कारण अपने को कर्त्ता मानकर अहंबुद्धि से अपनी उस आत्मा को भूल जाता हैं। हे नन्दजी! वे केवल आप ही के पुत्र नहीं है। वे समस्त प्राणियों के पुत्र हैं। पुत्र ही नहीं अपितु विश्व के माता पिता तथा स्वामी हैं। जितना भी यह स्थावर, जङ्गम भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान दृष्टि आता है यह सब वे ही हैं और वे ही परमब्रह्म सत्य हैं।

हे परीक्षित! नन्दबाबा, यशोदा रानी और उद्धव जी में इसी भाँति बातें होती रहीं और सारी रात व्यतीत हो गई। जब कुछ रात शेष रही तब गोपियाँ उठीं दीपक जलाये और घरों को झाड़ना बुहारना करके दही मथने लगीं और देवता आदि का पूजन अर्चन करने लगीं। दही मथते समय कमल नैन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मङ्गल मय चरित्रों का गायन करतीं जाती थीं।

जब सूर्योदय हुआ और सब ब्रजाङ्गनाओं ने घरों से बाहर निकल कर यह देखा कि किसी का रथ नन्दजी के द्वार पर खड़ा है और सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण के प्यारे सखा उद्धव जी आये हैं तब—

तरुनी गईं सब बिलखाइ,
जबहिं आये सुने ऊधौ, अतिहिं गईं झुराइ ॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

परीं व्याकुल जहाँ जसुमति, गईं तहँ सब धाय।
नीर नैननि बहति धारा, लई पौंछि उठाय॥
इक भई अब चलौ मारग, सखा पठयो श्याम।
सुनौ हरि कुशलात ल्यायौ,महरिसौं कहैं बाम॥
जबहिलौं रथ निकट आयौ, तब हुतैं परतीति।
वह मुकुट, कुण्डल, पीताम्बर, सूर प्रभु अगरीति॥

हे परीक्षित् ! उस काल गोपियाँ व्याकुल होकर परस्पर कहने लगीं यह किसका रथ है। कहीं वह क्रूर अक्रूर ही तो फिर नहीं आया है। वही हमारे प्यारे श्याम सुन्दर को मथुरा ले गया था। क्या अब वह हमें लेने आया है। जो अपने स्वामी कंस का पिण्डदान करावेगा। इसी भाँति ब्रज युवतियाँ परस्पर बातें कर रही थीं कि उसी समय उद्धवजी नित्य कर्म से निवृत होकर वहाँ पर आ पहुँचे।

॥ सैंतालीसवाँ अध्याय ॥

उद्धव तथा गोपियों की बात चीत

दोहा–दैहिं उलहना श्याम को, भौंरे के मिस बाम।
कहाँ काम तेते यहाँ, भ्रमर सखा तू श्याम॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित् ! सामने से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की उनहारी और वेशभूषा के पुरुष को आते देख गोपियाँ अति आश्चर्य में हो गईं। वे सोचने लगीं कि यह पुरुष देखने में तो अति सुन्दर है। हमारे श्याम सुन्दर की भाँति पीताम्बर कुण्डल तथा मुकुट पहने हुए हैं किंतु है कौन ? कहाँ से आयाहै?इसकी वेश भूषा सब श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति ही है। वे परिचय प्राप्तिके लिये अति उत्सुकता से उद्धवजी को चारों ओर घेर कर खड़ीं हो गईं। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि ये हमारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र के सखा उद्धवजी हैं और उनका सन्देश लेकर आये हैं, तब वे मधुर वाणी और सलज चितवन से उद्धवजी का सत्कार करते हुए बोलीं:–

ऊधौ कहौ हरि कुशलात।
कह्यौ आवन किधौं नाहीं बोलिए मुख बात।
एक छिन जुगजात हमको,बिन सुने हरि प्रीति॥

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आपु आये कृपा कीन्हीं, अब कहौ कछु नीति ॥
तब उपङ्ग सुत सबनि बोले, सुनौ श्रीमुख जोग।
सूर सुनि सब दौरि आईं हटकि दीन्हों लोग ॥

हे परीक्षित ! वे गोपियाँ बोलीं । हे उद्धव जी ! हमारे नन्दनन्दन घनश्याम शीघ्र आने की कह गये थे, वे नहीं आये, अब वे क्यों आवेंगे ? उनके लिए इस नन्दग्राम में गौओं के रहने के स्थान के अतिरिक्त और कौन सी वस्तु है जिसका वे स्मरण करें । यदि उन्हें याद आती होगी तो केवल अपने माता पिता ही की याद आती होगी । हमारे साथ उनका क्या सम्बन्ध है । दूसरों से जो प्रेम होता है वह किसी स्वार्थ सिद्धि के लिये ही होता है। बस काम निकला और प्रेम का अन्त हुआ जिस प्रकार भौंरों का पुष्पों से स्वार्थ का प्रेम रस चूसने तक होता है, उसी भाँति पुरुषों का प्रेम भी सर्वत्र स्वार्थ जनित प्रेम का ही बोलबाला है । वेश्या भी धन के लिये प्रेम करती है । धन के समाप्त होने पर उसे छोड़ देती है । विद्यापूर्ण होने पर शिष्य भी आचार्य को छोड़ देते हैं । दक्षिणा मिल जाने पर ब्राह्मण लोग चलते बनते हैं । वृक्ष के फल फूल चुक जाने पर पक्षी भी वहाँ से उड़ जाते हैं, इसी भाँति व्यभिचारी पुरुष से चाहे स्त्री उस से कितना ही प्रेम करती हो, काम बनने पर फिर उस की ओर नहीं देखता है ।

हे परीक्षित ! वे गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्र के विरह में इतनी पागल, उन्मत्त तथा बेसुध हो रही थीं कि वे न जाने उद्धवजी के सामने क्या २ बात कह गईं । उन्हें कहने और न कहने योग्य बात का ध्यान न रहा । वे स्त्री जनित लज्जा को भूल कर फूट २ कर रोने लगीं, और उनकी लीलाओं का गायन करने लगीं । इसी समय वहाँ पर एक भौंरा आ कर गुनगुनाने लगा और कभी वह किसी गोपी के मुख कमल को चूमने जाता और कभी वह किसी गोपी के सामने पगों में मडराने लगता तब एक गोपी बोली—

मधुप सखा तुम श्याम के ।
कारे तन, मन, जैसे तुम्हारे, वैसे हि शोभा धाम के ॥
प्रीति पराग लसै मुख सटपद, तैसेहि मुरली श्याम के।
कपटी तुम कारे हो सिगरे, जैसे हि भ्राता राम के ॥

Digitized by Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding by ...

कपट प्रीति जोरन वे जाने, छीने मन ब्रज बाम के।
मधुप सखा तुम श्याम के॥
कहँ छोड़े तुम निठुर कन्हाई, कहौ सखा हे श्याम के।
भोरी बनिता सिगरी मोही, कारे नहिं कछु काम के॥
तुम कारे अपङ्गसुत कारे, कारे तन घन श्याम के।
क्यों पग परसि मनावत हम को, कपटी कारे चाम के॥
मधुप सखा तुम श्याम के॥

अरे भौंरे ! तू उसी कपटी श्याम का भेजा हुआ दूत है। तू हमें क्या मनाता है, हमारा तो मन स्वयं ही तेरे सखा श्रीकृष्णचन्द्र में लगा हुआ है। जैसे तू काला है वैसे ही वे भी काले हैं तू भी फूलों का रस लेकर चला जाता है वैसे ही वे भी चले गए। न जाने लक्ष्मी जी उनके चरणों की सेवा कैसे करती रहती हैं वे भोली भाली अवश्य ही हमारी ही भाँति श्रीकृष्ण की चुपड़ी चिकनी बातों में भूली रहती हैं। अरे भौंरे हम तो दीन ब्रजवासिनी हैं। हमारे पास क्या धरा है तू वहाँ जाकर श्रीकृष्ण का गुणगान क्यों नहीं सुनता है जहाँ पर नई २ नवेलियाँ मथुरा नगर में रहती हैं। उन्हीं को जाकर उन के गुणगानों से मुग्ध कर। हम तो उनके गुणों को भली भाँति जानती हैं। तेरी कपट की चाल अब हम पर न चलेगी वे नई नई मधुपुरी की सखियाँ जो श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं को कम जानती हैं वे उनसे प्रेम करेंगी और तुझे प्रसन्न करने के लिये तेरी चापलूसी के लिये मुँह माँगा पुरस्कार तुझे देंगी।

अरे भ्रमर ! तू ऐसा क्यों कह रहा है कि वे तुम्हारे लिये छटपटा रहे हैं। किन्तु हे भौंरे ! इस त्रिलोकी में ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है जो उनके बुलाने पर न जावे। स्वयं लक्ष्मीजी ही उनकी सेवा करती रहती हैं फिर हमारी क्या गिनती है। किन्तु तू उनसे जाकर कहना कि तुम्हारा नाम उत्तम शलोक है अपने इस नाम को सार्थक क्यों नहीं करते। यदि तुम दीनों पर न दया करोगे तो हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारा यह उत्तम शलोक नाम मिथ्या पड़ जावेगा। अरे मधुप ! तू हमारे चरणों पर पैर टेक कर हमारी विनती न कर। तू उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र से रूठों को मनाना सीखकर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आया है। तू उनका दूत है। यहाँ पर तेरी कोई चाल नहीं चल सकती। अरे भ्रमर! हमने उन्हीं श्रीकृष्ण के लिए अपने पति, पुत्र घर बार सब त्याग दिये किन्तु वे ऐसे निर्मोही निठुर निकले कि हम सब को त्याग कर चले गये। अब तू ही बता कि ऐसे विश्वासघाती पर क्या विश्वास करें। अरे भौंरे! तू उन की चालबाजियों को नहीं जानता है। वे जन्म जन्म के ही ऐसे चालबाज हैं। उन्होंने रामावतार में कपिराज बालि को छिप कर निर्दयता पूर्वक मारा था। काम पीड़ित शूर्पणखाँ के नाक कान काट लिये थे। उन्होंने वलि राजा के द्वारा सम्मान पाने पर भी उन को बाँध लिया। जिसका खाया उसी में छेद किया। हम ऐसे कालों की मित्रता से बाज आईं। किन्तु तुम यह कहोगे कि फिर तुम उन के गुण गान क्यों गाती रहती हो तो हे भ्रमर! हम तुम से सत्य कहती हैं कि एक बार जिनको उनके अधरामृत का चस्का लग गया है फिर वह उन्हें मरने पर भी नहीं छोड़ सकता। जिनके कानों में लीलामृत की एक भी बूँद पड़ गई है वह उन्हें नहीं त्याग सकता। यहाँ तक कि संसार के सभी सुख दुःख को त्याग कर वह गृहस्थी से दूर हो जाते हैं और वे भीख माँग माँग कर पेट भरने लगते हैं। दीन दुनियाँ से मिट जाते हैं फिर भी उनकी लीलाओं कथाओं को नहीं छोड़ते। कैसे छोड़ें इस का चस्का ही ऐसा अनूठा है। वही दशा हमारी हो रही है। बस तू अब उन के विषय में अधिक कुछ मत कहे। अब तू यहाँ से चला जा। यदि तुझे कुछ कहना ही है तो अन्य कोई बात कह। तब वह भौंरा उड़ कर दूसरी गोपी के पास पहुँच गया। और वह फिर लौट कर पहली के पास ही आ गया। तब वह गोपी फिर बोली—

अरे प्यारे प्रीतम के सखा! तुम फिर लौट कर मेरे पास आये हो अवश्य ही तुम्हें उन्होंने हमारे हमारे मनाने के लिए भेजा है। तुम हमारे प्रीतम प्यारे के सखा हो इस लिए भी प्यारे हो! कहो तुम्हारी क्या इच्छा है तुम जो माँगोगे वही हम देंगीं। अच्छा तुम यह ठीक ठीक बताओ कि क्या हमें तुम वहाँ ले चलने को आये हो। किन्तु अरे भौंरे! हम तो उनके पास पहले ही जा चुकी हैं। अब तुम हमें वहाँ ले जाकर क्या

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लगे ? हमारे शरीर ही तो यहाँ पड़े हैं मन तो सदा हमारा उन्हीं के साथ रहता है। अरे प्यारे दूत ! यह बताओ कि हमारे श्याम सुन्दर ! गुरुकुल से लौट कर मधुपुरी में आनन्द से तो रहते हैं न ? जब कभी वे नन्द बाबा यशोदा रानी ग्वालबाल तथा हम दासियों को भी याद करते हैं। और यह भी बताओ कि अपने अगर से सुगन्धित दिव्य हाथ हमारे सिरों पर कब रक्खेंगे। क्या हमें जीवनमें फिर भी सुअवसर प्राप्त होगा।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! उस भौंरे के मानिन्द ब्रज की गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के लिए अत्यन्त दुःखी होकर तड़प रही थीं। उनकी बातें सुन सुन कर उद्धव उनके प्रेमका अनुमान न लगा सके। तब वे भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाते हुए इस प्रकार बोले—

हे गोपियो ! तुम धन्य हो। तुम्हारा जीवन धन्य है और यह ब्रज धन्य है। पहले तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति भक्ति होना ही अति कठिन है। बड़े २ यज्ञ व्रतदान होम आदि उन्हींकी प्राप्ति के लिए किए जाते हैं। किन्तु यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम लोगों ने बिना कुछ यह सब किये अनायास ही उन से वह प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर लिया है जो सर्वोत्तम प्रेम भक्ति का एक आदर्श है। जिसको बड़े २ योगीजन ऋषि महर्षि भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तुमने अभी उस भ्रमर के ऊपर कुपित हो होकर जो अपने मनोभाव प्रकट किये हैं वह तुमने मेरे ऊपर अति दया की है। हे कल्याणियो ! मैं तुम्हारे प्रीतम का दूत हूँ और तुम्हें उनका सन्देश देने आया हूँ।

सुनो गोपी हरि सन्देश !
करि समाधि अन्तर गति ध्यावहु, यह उन को उपदेश ॥
वे अविगति अविनाशी पूरन, सब घट रहे समाय।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुरानन गाय ॥
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित इक मन ल्याय।
वह उपाय करि विरह तजौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आय ॥
दुःसह सन्देश सुनत माधौ कौ, गोपी जन बिलखानी।
सूर विरह की कौन चलावे, बूढ़ति मनु बिनु पानी ॥

हे गोपियो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि मैं सम्पूर्ण विश्व की आत्मा

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हूँ। मैं सब में समाया हुआ हूँ। और मैं तुममें भी समाया हुआ हूँ। इस लिये तुम्हारा वियोग मुझ से कभी नहीं हो सकता है। मैं अपनी माया से इस विश्व के रूप में अपने को ही रचता हूँ। अपने को ही पालता हूँ, और अपने को ही समेट लेताहूँ। यह आत्मा माया से अलग है। आत्मा विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। उसका कोई भी गुण स्पर्श नहीं कर सकते हैं, किन्तु माया की तीन अवस्थायें हैं सुसुप्ति, स्वप्न तथा जाग्रत। इन तीनों वृत्तियों के द्वारा वह अखण्ड तेजोमय आत्मा कभी राक्षस कभी तामस कभी सात्विक प्रकृति में बदलता रहता है, यह माया की सृष्टि मिथ्या है। इसलिये सदा अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में करके इस जगत के स्वप्नवत् विषयों को त्याग कर मेरा साक्षात्कार करो। जिस प्रकार नदियाँ घूम घाम कर एक अथाह समुद्र में गिरती हैं, उसी भाँति ज्ञानी पुरुषों द्वारा वेदाध्ययन, योग-साधन, आत्मज्ञान, तपस्या आदि सभी कर्म मुझमें ही मिलने के लिये होते हैं। और वे भिन्न भिन्न मार्गों से मेरे निकट पहुँच जाते हैं।

हे प्यारी गोपियों! यह बिल्कुल सत्य है। कि मैं तुम्हारा प्यारा हूँ, जीवन सर्वस्व हूँ, किन्तु मैं तुम से इसलिए दूर रहता हूँ कि तुम सदा मेरा ध्यान करती रहो। अपने प्यारे से दूर रह कर ही उसकी प्रीति अधिक बढ़ती है। उतना प्यारे के निकट रहने से ऐसा नहीं होता। जब तुम्हारी सम्पूर्ण वृत्तियाँ और पूरा मन मुझ में लीन हो जावेगा, तब तुम मुझे सदा के लिए प्राप्त कर लोगी, फिर तुम्हारा वियोग मुझ से कभी न होगा। मैं तुम्हें अवश्य मिलूँगा। निराश न होओ।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अपने प्रीतम श्रीकृष्णचन्द्र का यह सुखद सन्देश सुन कर गोपियों को अति आनन्द हुआ। वे उनके प्रेमानन्द-में मग्न हो गईं और फिर उद्धव से बोलीं—

ऊधौं जोग सिखावन आये।
जोगी भस्म उघारी मुद्रा, वै ब्रजनाथ पठाये॥
जो पै जोग लिख्यौ गोपिन कौ, कत रस रास खिलाये।
तब ही क्यों न ज्ञान उपदेस्यौ, अधर सुधा रस प्याये॥
मुरली शब्द सुनत बन गवनी, सुत पति गृह बिसराये।

In Public Domain

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

सूरदास संग छाँड़ि श्याम को, हिय में भये पछिताये ॥

दूसरी सखी बोली—

निगुन कौन देश को बासी,
उद्धव कहि समुझाइ सौंह दें बूझति साँच न हाँसी ॥
को है जनक कौन है जननी, कौन नारि को दासी ।
कैसे बरन भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी ॥
पावैगो पुनि कियौ आपनों, जोर करेगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरो, सूर सबे मत नासी ॥

हे परीक्षित ! उद्धव के मुख से यह निगुण का उपदेश सुनकर उन गोपियों का विरह शान्त हो गया और वे बोलीं—अरे उद्धव जी ! हम तुम से यह पूछती हैं कि हमारे प्यारे श्यामसुन्दर से मधुपुरी की स्त्रियाँ अवश्य प्रेमकरती होंगीं दूसरी गोपी बोली—अरी सखी ! यदि वे न करती होंगीं तो हमारे श्यामसुन्दर तो अवश्य ही उन से प्रेम करते होंगे। उनसे मीठी२ बातें करके अपने हाव भाव और मधुर चितवन से उन्हें अवश्य ही रिझा लेंगे।

एक सखी बोली—हे उद्धव जी ! आप दयावान हैं । हमें आप यह तो अवश्य ही बतावें कि उन मधुपुरी की सभ्य स्त्रियों में हम गंवार ग्वालिनियों की प्रेम की बातें होती हैं। एक सखी बोली—अरी तू बहुत भोली है अब तो उन्होंने कंस को मार राज्य प्राप्त कर लिया है । अब वे राजा हो गये हैं। उन के बहुत से मित्र घूमते फिरते होंगे। वे बड़े बड़े राजाओं की कुमारियों से बिवाह करेंगे। हम गँवार ग्वालिनियों को वहाँ कौन पूछे ? दूसरी सखी बोली—नहीं सखी ऐसी बात नहीं है । वे तो लक्ष्मी पति हैं। पूर्ण काम तथा कृत कृत्य हैं । उनके लिए हम गँवार ग्वालिनी और राजकुमारी सब समान हैं । उन से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। वे हमें अवश्य दर्शन देंगे। हम को उन के दर्शनों की अभिलाषा में अपना जीवन धारण करना चाहिए । हे उद्धव जी ! हम श्री कृष्णचन्द्र को किसी भी प्रकार मर कर भी नहीं भूल सकतीं। हे कृष्ण प्यारे ! तुम लक्ष्मी पति हो तो क्या है। हमारे लिए तो वे ही ब्रजनाथ और हमारे प्यारे सखा हो न। तुम्हारे सब ग्वालबाल पिता माता गौएँ

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by ... Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और हम गोपियाँ दुःख के अथाह समुद्र में डूब रही हैं। हमें बचाओ! आओ हमारी रक्षा करो।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इसी भाँति जितने दिन तक उद्धवजी गोकुल में रहे गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का गायन कर के अपने चित्त की व्यथा को मिटातीं। उद्धवजी भी उनकी इन चेष्टाओं को देख देख कर और श्रीकृष्णचन्द्र में उनका अनन्य प्रेम तन्मयता देख कर वे स्वयं आनन्द में भर जाते और उन गोपियों को नमस्कार कर के कहते इस पृथ्वी पर यदि शरीर धारण करना सफल है तो इन गोपियों का ही सफल है। इन्होंने अपने उस प्रेम का आदर्श संसार के सामने रक्खा है जो मुमुक्षजनों तथा बड़े बड़े मुनियों योगियों के लिए भी दुर्लभ है। न इन्होंने वेद पढ़े, न इनके संस्कार हुए, न इन्होंने कोई यज्ञ योगादि किये किन्तु फिर भी इन्होंने भगवान् के प्रति वह अगाध प्रेम प्राप्त किया है जो महाकल्पों तक बार बार जन्म लेने पर ब्रह्मा भी प्राप्त नहीं कर सकते। सदाचार की दृष्टि से भी इनका प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति जार भाव से है किन्तु है तो भगवान् के प्रति सच्चा प्रेम। अनजाने अमृत पी लेने पर भी पीने वाला अमर हो जाता है। उसी भाँति ये गोपियाँ भगवान् के प्रति प्रेम भक्ति होने के कारण अमर हो गईं हैं। जिन भगवान् के चरण रज की प्राप्ति के लिए लक्ष्मी जी तरसती हैं वही इन्होंने प्राप्त की है। मैं चाहता हूँ कि इस ब्रज का छोटा सा पौदा कोई लता बन जाऊँ या कोई तिनका ही बन जाऊँ। जिससे इनके चरणों की रज उड़ २ कर मेरे मस्तक पर पड़ती रहे। मैं उस चरण रज में लोट पोट होकर पवित्र बन जाऊँगा। जिन चरणों को ब्रह्मा, शङ्कर तथा लक्ष्मी जी निरन्तर अपने हृदय में ध्यान करते रहते हैं। वे ही चरण इन गोपियों ने अपने वक्षस्थल पर रख कर उनका आलिंगन किया है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! उद्धवजी महिनों तक ब्रज में रहे और भगवान् श्रीकृष्ण के लीला स्थानों पर जा जा कर उनके दर्शन किये। ग्वाल बालों के साथ कीर्तन और उनके यशोगान किये। तब

In Public Domain, ...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नन्द आदि से बिदा होकर उद्धव जी मथुरा पुरी को लौट आये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ती और उनके दुःख ज्यों के त्यों सुनाए। नन्द बाबा और यशोदा रानी द्वारा दी गई भेंट की सामिग्री वसुदेव, उग्रसेन बलराम तथा श्रीकृष्णजी को भेंट करदीं।

॥ अड़तालीसवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का कुब्जा तथा अक्रूरजी के घर जाना

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने प्रेमीजनों की इच्छा पूर्ण करने वाले हैं। जब उद्धवजी ब्रज से लौट आये तब उन्हें कुब्जाको वर देने वाली बात याद आई। वे यह प्रकट करने के लिये कि मैं कुब्जा जैसे दीनजनों की भी अपेक्षा नहीं करता हूँ वे उससे मिलने के लिये उद्धव जी के साथ उसके घर पर गये। कुब्जा ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मिलने की आकांक्षा से अपने गृह को बहुमूल्य सामिग्रियों से सजा रक्खा था। उत्तमोत्तम मोतियों की झालरें स्थान स्थान पर चन्दोवे पलङ्ग आदि सजे हुए थे। धूप दीप आदि से उसका घर महक रहा था। ज्यों ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घर पहुँचे।

दो०—देखे आवत कृष्ण जब, कुब्जा गई सिहाइ।
आगे बढ़ आनन्द सों, लाई कृष्ण लिवाइ॥

कुब्जा ने बिधि पूर्वक भगवान् का स्वागत सत्कार किया और परम भक्त उद्धव जी के लिए तथा अपने प्रियतम के लिए सुन्दर आसन प्रदान किये। किन्तु उद्धव जी अपने स्वामी के सामने उत्तम आसन पर बैठ कर आसन छू कर धरती पर ही बैठ गये। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तुरन्त उसकी बहुमूल्य सेज पर जा बैठे। तत्पश्चात् कुब्जा स्नान अङ्ग राग वस्त्रा भूषण आदि से सज धज कर लजाती हुई मधुर मुस्कान और हाव-भाव के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के निकट आकर खड़ी होगई। कुब्जा के हृदय में कुछ संकोच और झिझक थी। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस की सुन्दर कलाई पकड़ कर उसे अपने निकट बैठा लिया। हे परीक्षित! कुब्जा ने केवल इस जन्म में ही भगवान् को अङ्ग सङ्ग अर्पित करके उसे शुभ कर्म के फल स्वरूप भगवान् के साथ क्रीड़ा करने का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अवसर प्राप्त किया। कुब्जा ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरण कमलों को अपने हृदय अपने वक्षस्थल और नेत्रों पर रख कर अपने हृदय की सारी काम अग्नि आदि व्याधिको शान्त किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के आलिङ्गन मात्र से ही उसके चिर काल की काम पीड़ा शान्त हो गई। उसने केवल मोक्ष के अधीश्वर सर्वशक्तिमान भगवान् की प्राप्ति की, किन्तु उस दुर्भाग्यनी ने व्रज गोपियों की भाँति सेवा न मांगकर यही वर माँगा—हे प्रीतम ! आप कुछ काल तक यहीं रहकर मेरे साथ क्रीड़ा करते रहें क्योंकि हे श्यामसुन्दर! मैं आपका साथ नहीं छोड़ सकती।

हे परीक्षित ! वर दाताओं में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे ऐसा वर देकर वहाँ से उद्धवजी के साथ चले आये। वह बड़ी दुर्बुद्धिनी थी उसने अनन्त सुख न माँग कर तुच्छ नाशवान् सुख माँगा।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजी, और उद्धवजी को साथ लेकर अक्रूर जी के घर गए। जब अक्रूरजी ने वीर शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी को अपने यहाँ पधारते देखा तब वे आनन्द के उद्रेक से भर गए और आगे बढ़ कर उनका अभिनन्दन करके उन्हें आलिंगन किया। अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण और बलराम को नमस्कार किया और उद्धवजी के साथ उन दोनों ने भी उन्हें प्रणाम किया। अक्रूर जी ने उत्तम आसन प्रदान करके उनकी विधिवत् पूजा की। उन्होंने भगवान् के चरण धोकर चरणामृत पान किया और फिर दिव्य मालागन्ध आभूषणों आदि से उनकी पूजा की। उनके चरण अपनी गोद में रखकर उन्हें दबाने लगे। और नम्रता पूर्वक मधुर वाणी से बोले—हे प्रभो ! यह बड़े आनन्द का विषय है कि आपने कंस आदि दुष्टों का संहार करके हम यदुवंशियों का महान हित किया है। आप ही इस विश्व के रचने वाले आदि कारण हैं। मैं आपको नमस्कार करताहूँ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने ही बसुदेवजी के यहाँ जन्म लिया। आज मेरा गृह पवित्र हो गया है। मेरे सौभाग्य की सीमा नहीं रही। मैं आपकी क्या सेवा करूँ।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब अक्रूरजी भगवान् की पूजा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तथा स्तुति कर चुके तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मुस्करा कर मधुर वाणी से कहा—हे चाचाजी ! आप हमारे गुरु परम हितैषी हैं। हम तो आपके बालक ही हैं और आपकी कृपा के पात्र हैं। आप सन्त पुरुष हैं। सन्त पुरुष देवता और तीर्थों से भी बढ़ कर होते हैं ? क्योंकि देवता तो सेवा करने पर ही फल देते हैं और सन्त पुरुष दर्शन मात्र से ही सुख देते हैं। अतः मेरा विचार है कि अब आप हस्तिनापुर जाकर हमारे स्वजन बूआ कुन्ती के पुत्रों की कुशल मङ्गल लेकर आवें। हमें यह मालूम हुआ है कि राजा पाण्डु का देहावसान हो गया है और धृतराष्ट्र उन पाण्डु पुत्रों को अति दुःख देता है। उसका पुत्र दुर्योधन अति दुष्ट है। वह उस दुर्योधन के ही वश में रहता है और उन पाण्डवों के साथ अपने पुत्रों जैसा व्यवहार नहीं करता है। इसलिए आप वहाँ जाकर उनकी जैसी बुरी भली स्थिति हो उसे देख कर आवें और फिर मैं वही उपाय करूँगा जिससे उन्हें सुख मिले। इतना कह कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलराम तथा उद्धव जी के साथ अपने घर चले आये।

॥ उनंचासवाँ अध्याय ॥

अक्रूरजी का हस्तिनापुर गमन।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी की आज्ञा पाकर अक्रूरजी हस्तिनापुर को गये। वहाँ जाकर समस्त बड़े छोटे पूज्य गुरुजन, आदि धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुरजी, द्रोणाचार्य जी कर्ण अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों से मिले। उन्होंने मथुरा की कुशलात सब को सुनाई और उन सब की कुशल क्षेम पूछी। तत्पश्चात् अक्रूरजी अपनी बहिन कुन्ती के महलों में गये। वहाँ पर कुन्ती अपने भाई का आगमन सुन कर अति प्रसन्न हुई और अक्रूर का आदर स्वागत करके उनके निकट बैठी। उसके हृदय में अपने गाँव घर की याद जाग्रत हो उठी। वह आँसू पोंछ कर सब की कुशल मंगल पूछने लगी। अरे भाई ! मेरे माता पिता बहिन सखी सहेली सब कुशल से तो हैं। मैंने सुना है कि मेरे भाई बसुदेव जी के पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी स्वयं कमल नयन भगवान् तथा दीनों के रक्षक हैं। क्या वे कभी अपने

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

फुफेरे भाइयों की भी याद करते हैं। हे भाई ! मैं शत्रुओं के बीच में फँसी हुई हूँ। कई बार मेरे पुत्रों को विष दे दिया है। मारने के उपाय किये जा रहे हैं। उनके बल पौरुष तथा विद्या को देख देखकर दुष्ट दुर्योधन शकुनि आदि धृतराष्ट्र के पुत्र जलते हैं। मेरे उन पुत्रों को अनेक प्रकार की यातनायें देते हैं। मेरे तो केवल वे ही यदुनाथ श्रीकृष्णचन्द्र रक्षक हैं।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! तुम्हारी परदादी कुन्ती इसी भाँति अपने पर धृतराष्ट्र के पुत्रों के अत्याचारों को स्मरण करके फूट फूट कर रोने लगी। उसकी करुणा जनक दशा को देख कर अक्रूर जी तथा विदुरजी अति दुःखी हुए और कुन्ती को ज्यों त्यों करके सान्त्वना दी। अक्रूरजी उन धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा अन्यायों की परीक्षा करने के लिए कई महीने तक हस्तिनापुर रहे। जब वे मथुरा जाने लगे तब उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा-हे धृतराष्ट्र जी ! आप उज्ज्वल कीर्ति को बढ़ाने वाले कुरु वंशियों में श्रेष्ठ हैं। पाण्डु के परलोक जाने पर आप ही राज्य सिंहासन के अधिकारी हुए हैं। जब तक पाण्डव समर्थ नहीं होते हैं तब तक आप ही उनके साथ समान भाव रखते हुए उनका पालन करेंगे। जब वे समर्थ हो जावेंगे तब उनका राज्य वापिस कर दीजिये। आप अपने पुत्रों और पाण्डु पुत्रों के साथ समानता का व्यवहार कीजिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो इस संसार में आप की निन्दा होगी और आपको नरक में जाना होगा। हे कुरुराज ! यह तो आप जानते ही हैं कि पुत्र स्त्री धन सम्पत्ति यह शरीर सभी नाशवान् हैं, और यह सब यहीं पड़े रह जाते हैं। केवल जीव ही अपने कर्मों को लेकर बाहर जाता है। जो मूर्ख जीव इन्हें अपना समझ कर अन्याय करता है और धर्म के विमुख आचरण करता है वह लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही मार्गों से च्युत हो जाता है और पाप की गठरी सिर पर लाद कर नरक में जाता है। यह जगत् चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात है। इसलिये आप पक्षपात रहित होकर अपने पुत्र तथा पाण्डु के पुत्रों के साथ समान व्यवहार कीजिये।

धृतराष्ट्र बोले—हे अक्रूर जी ! आपके बचन सत्य हैं और मरने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by ...

वाले के लिए अमृत के समान हैं। किन्तु हे अक्रूर जी! मेरा चित्त ऐसा चंचल हो रहा है और पुत्रों की ममता से ऐसा विषम हो रहा है कि आप के यह उपदेश उसमें ठहरते ही नहीं हैं। एक बार बिजली की भाँति कौंधते हैं और फिर क्षीण हो जाते हैं। अब जो होना है सो होगा। मैंने सुना है कि यदुकुल में सर्व शक्तिमान भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। ऐसा कौन है जो उनके विधानको लौट सके। उनकी जो इच्छा होगी वही होगा उनकी मायाको कोई नहीं जान सकता। मैं उन अचिन्त्य शक्तिशाली भगवान् को नमस्कार करता हूँ।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित। बुद्धिमान अक्रूरजी धृतराष्ट्र का गूढ़ मंतव्य और अभिप्राय समझकर कुन्ती से बिदा लेकर वहाँ से मथुरा चले आये और उन्होंने वहाँ का सारा हाल और धृतराष्ट्र का बर्ताव बलराम तथा श्रीकृष्ण को ज्यों का त्यों सुना दिया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वृहद् सुखसागर

॥ दशम स्कंध ॥

(उत्तरार्द्ध)

॥ पचासवाँ अध्याय ॥

दो०—जरासन्ध अभिमान वश, घेरी मथुरा आय।
सत्रह बार श्रीकृष्ण ने, दीयौ दनुज भगाय ॥
बार अठारहवीं पुनः लड़्यौ दैत्य रिसियाय।
रणछोड़दास रण छोड़ के, रहे द्वारिका जाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले——हे परीक्षित् ! उस कंस के अस्ति और प्राप्ति नाम की दो पत्नियाँ थीं जो मगधराज जरासन्ध की पुत्री थीं। अपने पति की मृत्यु से शोकाकुल होकर वे अपने पिता के यहाँ चली गईं। और उन्होंने अपने बिधवा होने की सारी दुख कहानी उसको सुनाई। जरासन्ध अपनी पुत्रियों के वैधव्य को सुन कर अति दुखी हुआ और क्रोधातुर होकर यदुवंशियों के नाश का प्रण किया। उसने उसी समय एक बहुत बड़ी सेना जिसमें हाथी, रथ, घोड़ा, पैदल थे और संख्या में वह तेईस अक्षोहणी थी लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया।

हे परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा, कि जरासन्ध की सेना एक अपार समुद्र की भाँति उमड़ी हुई मथुरा नगरी को चारों ओर से घेरे हुए है। और हमारे नगर निवासी स्वजन सम्बन्धी भयभीत हो रहे हैं। तब उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए बिचार किया और अपने स्वरूप का ध्यान किया वे बिचारने लगे कि यह अच्छा ही हुआ कि जरासन्ध स्वयं ही उन राक्षसों तथा नरपतियों को एकत्रित करके पतंगे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की भाँति जलने के लिए निकट आ रहा है। मैं उनका नाश करके पृथ्वी का भार उतारूँगा। मेरे अवतार लेने का यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वी का भार हल्का करूँ। साधु सज्जनों की रक्षा करने के लिये दुष्टों का संहार करूँ। जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ता है तब तब धर्म की रक्षा के लिए इन पापियों का संहार करता हूँ। जब वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उसी तरफ दो दिव्य रथ आकाश से सूर्य के समान चमकते हुए दिव्य आयुधों से परिपूर्ण वहाँ पर आये। भगवान के सभी दिव्य आयुध चक्र, गदा, धनुप, तरकस वहाँ उपस्थित हुए। दूसरे रथ में हल मूसल बलरामजी के आयुध उपस्थित थे। उन्हें देख कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बलराम जी से बोले—हे भाई जी ! आप यदुवंशियों के रक्षक हैं और समस्त यदुवन्शी घोर विपत्ति में फँसे हुए हैं। देखिये आपका यह दिव्य रथ आयुधों सहित आ पहुँचा है हम दोनों का अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही हुआ है। अतः इस दुष्ट जरासन्ध की सेना का संहार कर के दुःख को दूर कीजिये इस भाँति श्री कृष्णचन्द्र तथा बलराम जी दोनों उत्साह कर के अपने कवच तथा दिव्य अस्त्रों को धारण कर रथ पर सवार हो नगर से बाहर निकले। श्रीकृष्णचन्द्रजी के रथ पर गरुड़ की ध्वजा थी और बलराम जी के रथ पर ताल की ध्वजा थी। उन्होंने नगर से बाहर निकलते ही अपना पाँच जन्य शंख बजाया जिसकी भयानक ध्वनि से शत्रुओं के हृदय काँपने लगे। तब जरासन्ध ने आगे बढ़ कर कहा—हे नराधम कृष्ण ! तू तो अब भी बालक ही है। मुझे तेरे साथ लड़ने में लाज आती है। तू अपने मामा की हत्या करने वाला है। इस लिये मैं तेरे साथ न लड़ कर बलराम के साथ लड़ूँगा। रे बलराम ! यदि तू स्वर्ग चाहता है तो हिम्मत कर के मेरे साथ लड़। तू मुझे मार डाल अथवा मेरे बाणों से मर कर स्वर्ग को चला जा।

तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले—रे मगधराज ! वीर पुरुष कभी गाल नहीं बजाते हैं। तू स्वयं मृत्यु के मुख में जाने वाला है इसलिये बक-बक कर रहा है। मैं तेरी इन बातों पर ध्यान नहीं देता।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! जिस प्रकार बादल सूर्य को ढक

Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation ... and eGangotri. Funding by IKS.

लेते हैं उसी प्रकार जरासिन्ध की सेना ने भगवान् श्री कृष्ण बलराम और उनकी थोड़ी सी सेना को चारों ओर से ढक लिया। मथुरा नगर की स्त्रियाँ अपनी २ जगह अटारियों और महलों से चढ़ २ कर देखने लगीं कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम शत्रुओं के मध्य में घिरे हुए हैं तब वे शोकाकुल हो मूर्छित हो गईं। किन्तु लोक रंजन भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपने शार्ङ्ग धनुषको टंकारा और अपने अक्षय तरकश से अनगिनती वाण निकाल २ कर शत्रु का संहार करने लगे। उधर बलराम जी अपने हल मूसल से बड़े २ मत्त गजराजों और वीरों के मान मर्दन करने लगे इस भाँति दोनों भाई उस जरासन्ध की सेना को इस प्रकार काटने लगे जैसे कोई किसान अपनी सूखी खेती को काटता है घोड़े हाथी मनुष्य छटपटा छटपटा कर मरने लगे। उनके रक्त की नदियाँ बहने लगीं। उस में मनुष्यों के हाथ मछली के समान, मुण्ड कछुए के समान घोड़े ग्राहों के समान हाथी द्वीप के समान, धनुष वाण आदि तिनके के समान दिखलाई दे रहे थे। उस रक्त सरिता में बहुमूल्य रत्न कंकड़ों की भाँति मालूम पड़ते थे।

हे परीक्षित! इस भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम दोनों भाइयों ने जरासन्ध की तेईस अक्षौहिणी सेना का नाश कर दिया। तब बलराम जी ने उस जरासन्ध को वरुण पाश में बाँध कर श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरणों में डाल दिया। किन्तु लीला बिहारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस जरासन्ध की उपेक्षा कर के उसे इस विचार से छोड़ दिया कि यह फिर इसी भाँति सेना ले कर लड़ने के लिये बार बार आवेगा और मैं उनका नाश करता रहूँगा।

जब जरासन्ध की सारी सेना मारी गई तब जरासन्ध अति लज्जित हो कर अपने कुछ अनुयाइयों के साथ अपनी राजधानी को लौट आया। उसने वन में जाकर तपस्या करने की ठानी किन्तु उसके साथी राजा लोगों ने उसको समझा बुझा कर फिर मथुरा पर आक्रमण करने की सलाह दी। इस भाँति जरासन्ध सत्रहबार तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा पर चढ़ कर आया किन्तु भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उसकी सारी सेना

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर दी। अब के उसने अठारहवीं बार मथुरा पर आक्रमण करने का विचार किया और बड़ी तैयारी के साथ वह अपनी राजधानी से चल दिया उसी समय नारदजी के द्वारा भेजा हुआ, कालयवन अपनी तीन करोड़ मलेच्छ सेना लेकर मथुरा पर चढ़ आया। वह कालयवन संसार में दुर्जय था। उसके समान वीर संसार में कोई नहीं था। कालयवन की यह असमय की चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी दोनों विचार करने लगे और कहने लगे—अरे इस समयतो जरासंध और कालयवन ये दो विपत्तियाँ सामने आरही हैं इस समय बलशाली कालयवन ने आज हमें घेर लिया है और कल परसों में जरासन्ध भी आने वाला है। यदि हम इसके साथ युद्ध करने लग जावेंगे तो यह जरासन्ध अवश्य ही हमारे बन्धु बन्धवों को मार डालेगा अथवा बन्दी बनवा कर अपने नगर को ले जावेगा यह कालयवन सचमुच में बड़ा ही बलवान है। इसलिए हमको मथुरा त्याग कर समुद्र के मध्य में एक ऐसा विशाल दुर्ग बनवाना चाहिये जिस में मनुष्य राक्षसों की तो बात ही क्या पवन का भी प्रवेश न होसके। जब हम अपने नगर निवासियों को उस किले में पहुँचा कर आवेंगे तब इस यवन का संहार करेंगे। बलरामजी के साथ इस प्रकार सलाह करके उन्होंने विश्वकर्मा को स्मरण किया। विश्वकर्मा उसी क्षण हाथ जोड़ सिर नवाय उपस्थित हुआ। तब विश्वकर्मा को द्वारिकापुरी बसाने और वहाँ पर रात्रि में समस्त मथुरा नगर निवासियों को सोते हुए ले जाने की आज्ञा दी। विश्वकर्मा ने उन्हीं की आज्ञानुसार अति सुन्दर नगर बनाया जिसमें सुन्दर सुन्दर उद्यान अट्टालिकाएँ देवमन्दिर दिव्य भवन ऊँचे २ द्वार गलियाँ सड़कों आदि का ठीक २ निर्माण किया। वहाँ पर इन्द्र ने अपना पारिजात वृक्ष तथा सुधर्मा सभा को भी भेज दिया। वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठने वालों को भूख प्यास तथा अधर्म नहीं छूता था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम के लिए अलग२दिव्य भवनों का निर्माण किया गया। वरुण ने श्यामकर्ण घोड़े कुवेर ने आठों निधियाँ तथा अन्य लोकपालों ने भी अपनी२ विभूतियाँ भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की सेना के लिए भेज दीं। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योग माया

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के द्वारा अपने स्वजन सम्बन्धियों को द्वारिकापुरी में भेज दिया। शेष प्रजा की रक्षा के लिये मथुरापुरी में बलराम जी को रख दिया तत्पश्चात् उन से अनुमति लेकर कण्ठ में कमलों की माला धारण करके बिना कोई अस्त्र लिये ही स्वयं अकेले नगर से बाहर बड़े द्वार से निकले।

॥ इक्यावनवा अध्याय ॥

कालयवन का भस्म होना तथा मुचुकुन्द की कथा।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने अलौकिक दिव्य रूप से मथुरा नगर के मुख्य द्वार से निकले उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानों प्राची दिशा से चन्द्रमा उदय हुआ हो। शरीर पर रेशमी पीताम्बर वक्षःस्थल पर श्रीवत्सका चिन्ह गले में कौस्तुभ मणि तथा कानों में कुण्डल झिलमिला रहे थे। उन की चार भुजायें थीं जो लम्बी लम्बी तथा कुछ मोटी थीं। उनके नेत्र कमल दल के समान अरुण थे। उन के मुख कमल की शोभा अवर्णीय थी। मन्द मन्द मुस्कान सब के मन को हर लेती थी। ऐसे श्यामवर्ण दिव्य पुरुष को देख कर कालयवन ने नारद जी के बतलाये लक्षणों के अनुसार उन्हें शीघ्र पहचान लिया कि यही वासुदेव हैं। इस समय यह पैदल ही बिना अस्त्र शस्त्र लिये मेरी ओर आ रहा है। इस लिए मैं भी बिना अस्त्र शस्त्र लिए ही युद्ध करूँगा।

ऐसा विचार करके वह कालयवन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ओर दौड़ा। कालयवन को अपनी ओर आते देख कर लीला विलासी भगवान् रणछोरनाथ दूसरी ओर मुख कर के भाग निकले आगे आगे रणछोरनाथ तथा पीछे पीछे कालयवन दौड़ रहा था। हे परीक्षित् ! जिन को बड़े बड़े योगियों के मन भी नहीं पकड़ सकते हैं वह कालयवन कैसे पकड़ सकता था। वह दौड़ते दौड़ते थक गया। वह पग-पग पर यही समझता था कि मैंने अब पकड़ा। इसी भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस कालयवन को अपने पीछे पीछे एक पहाड़ की गुफा में ले गये। कालयवन उन के पीछे पीछे चिल्लाता जाता था अरे भाई तुम तो वीर हो युद्ध छोड़ कर भाग

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ठीक नहीं है। किन्तु अभी उस के अशुभ फल नष्ट नहीं हुए थे इसी कारण उसे भगवान् को प्राप्ति नहीं हो सकती थी जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गुफा में घुस गये तब वहाँ उन्होंने एक पुरुष को सोते देखा और उसे अपना दुपट्टा उढ़ा कर एक ओर छिप गये। कालयवन ने क्रोधावेश में आ कर उस पुरुष में एक लात मारी और कहा—दुष्ट! भाग कर यहाँ आ सोया है। हे परीक्षित्! उस मूर्ख कालयवन ने उसी को भगवान् श्रीकृष्ण समझा। वह पुरुष ज्यों ही लात की चोट से हड़बड़ा कर उठा तो उस की दृष्टि कालयवन पर पड़ी। उसकी दृष्टि पड़ते ही वह कालयवन तत्काल भस्म हो गया।

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन्! वह कौन पुरुष था। किस कुल में जन्म लिया था और उसने कौनसी तपस्या की थी जिसके प्रभाव से उस की दृष्टि पड़ते ही वह महाबली कालयवन तत्काल भस्म हो गया।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! वे इक्ष्वाकु के वंश में महाराज युवनाश्व के पुत्र मान्धाता के पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे भगवान् के परम भक्त सत्य प्रतिज्ञ और महान पुरुष थे। एक समय जब इन्द्रादि देवता असुरों ने अधिक सताये तब बहुत काल तक उन्होंने ही उन की रक्षा की थी। जब स्वामी कार्तिक उनके सेनापति बन गये तब इन्द्रने राजा मुचुकुन्द से कहा—हे वीर श्रेष्ठ! आप श्रम करते करते अधिक थक गए हैं अब आप विश्राम करें। आपने हमारी बहुत रक्षा की है। आपने हमारे लिये राज्य, जीवन तथा सभी भोग त्याग दिये। अब आप के स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव, मन्त्रीगण और आप के समय की प्रजा भी नहीं रही है। वे सब के सब काल के गाल में चले गये हैं। इस लिये आप केवल मोक्ष को छोड़ कर और जो चाहें वर माँग लें। क्यों कि मोक्ष के देने वाले तो केवल भगवान् विष्णु ही हैं। देवताओं के इस प्रकार कहने पर राजा मुचुकुन्द ने केवल निद्रा का ही वर माँगा। क्यों कि निद्रा के कारण उन की समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गई थीं। तब देवताओं ने उन्हें निद्रा का वर दे कर यह कहा कि जो मूर्ख तुम्हारी निन्द्रा के बीच तुम्हें जगा देगा उस पर तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही वह तत्काल भस्म हो जावेगा।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित्! कालयवन के भस्म हो जाने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने परम यशस्वी राजा मुचुकुन्द को अपने श्रीविग्रह के दर्शन कराये। भगवान् के उस दिव्य तथा अलौकिक चतुर्भुज स्वरूप को देखकर मुचुकुन्द अति आश्चर्य में हुआ।

राजा मुचुकुन्द पूछने लगे–हे दिव्य ज्योतिस्वरूप! आप कौन हैं और कमल के समान आपके ये कोमल चरण इस कण्टकमय गुफा में किस प्रयोजन से पधारे हैं। आपके तेज से यह गुफा जगमगा रही है। आप सूर्य हैं। चन्द्रमा हैं। इन्द्र हैं अथवा ब्रह्मा विष्णु और महेश में से आप कौन हैं? मुझे अपने जन्म कर्म का गोत्र अवश्य बतलाने की कृपा कीजिये।

हे पुरुषोत्तम! मैं इक्ष्वाकुवंशी महाराज मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द हूँ। बहुत दिनों तक जगने के कारण मैं यहाँ सो रहा था। मुझे न जाने किस ने जगा दिया। हे महाबाहु! आपके दर्शन प्राप्त करके तो मैं सनाथ हो गया मैं आपकी ओर अधिक समय तक देख भी नहीं सकता हूँ।

हे परीक्षित्! जब राजा मुचुकुन्द ने इस प्रकार उनसे पूछा तब मेघ के समान गम्भीर वाणी में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इस प्रकार कहा–हे प्रिय मुचुकुन्द! मेरे नाम कर्म तथा जन्म असंख्य हैं। उनकी गिनती मैं तुम्हें नहीं बता सकता। पृथ्वी के कण आकाश के तारे शरीर के रोम गिने जा सकते हैं किन्तु मेरे जन्म कर्म तथा नाम नहीं गिने जा सकते हैं। हे राजन्! सनक सनन्दन आदि परमऋषि मेरे त्रिकाल सिद्ध जन्म तथा कर्मों का वर्णन किया करते हैं किन्तु फिर भी वे उनका पार नहीं पा सकते हैं। हे मुचुकुन्द! ऐसा होने पर भी मैं तुम्हें अपने इस जन्म के नाम तथा कर्म बतलाता हूँ। मैंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए यदुवंश में वसुदेव जी के यहाँ अवतार लिया है। इस लिए मेरा नाम वासुदेव है। मैंने अब तक कंस प्रलम्ब आदि अनेकों असुरों का संहार किया है और इस काल यवन को भी मेरी प्रेरणा से हो तुमने नष्ट कर दिया है। तुमने पहले मेरी अति तपस्या की थी। मैं भक्त वत्सल हूँ। इस लिए तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझ से वर माँगो। जो भक्त मेरी शरण में आ जाता है फिर उसके लिये कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहती है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने राजा मुचुकुन्द को इस प्रकार परिचय दिया तब उसे वृद्ध गर्गाचार्य की बातें स्मरण हो आईं। और राजा मुचुकुन्द ने जान लिया कि ये स्वयं भगवान् हैं। तब राजा मुचुकुन्द ने उनकी स्तुति की और उनके चरणों में प्रणाम किया और उसने कहा कि मुझे आपके चरणों की सेवा के अतिरिक्त और कोई वर नहीं चाहिये। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे राजन् ! तुम्हारी बुद्धि निश्चय ही बड़ी पवित्र और उच्च कोटि की है तुम मेरे परम भक्त हो। मेरे भक्त वर प्राप्ति का कोई लोभ नहीं करते हैं। मैंने तुम्हें वर देने का प्रलोभन दिया। यह तुम्हारी परीक्षा ही थी। मेरे अनन्य भक्त कामनाओं से रहित होकर मेरे चरणों में आते हैं। उनका मन फिर किसी भी विषय में नहीं फँसता है इसलिए तुम अपने समस्त मनोभावों और मन को मुझे सौंप कर इच्छानुसार पृथ्वी पर विचरो। तुमने क्षत्रिय धर्म के अनुसार बहुत से पशुओं का बध किया है। अब तुम मेरी आराधना से अपने उन सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर दो। आगे के जन्म में तुम ब्राह्मण होगे। तब तुम अपनी विशुद्ध बुद्धि द्वारा मुझ परमात्मा को प्राप्त करोगे।

॥ बावनवाँ अध्याय ॥

दोहा—कालयवन को मार कर, जीते बहु धन धाम।
रेवत की कन्या वरी, महाबली बलराम ॥
विदर्भराज की सुता अति,रूपवान गुणखानि।
बरन चहत श्रीकृष्णको, मनमें लीनी ठानि ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परिक्षित ! कालरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इस भाँति कालयवन का बध कराया और राजा मुचुकुन्द पर कृपा की राजा मुचुकुन्द गुफा से बाहर निकले। तो उन्होंने देखा कि पहले की अपेक्षा सभी मनुष्य पशु, लता, वृक्ष आदि बहुत छोटे आकार के हैं। इससे वे समझ गये कि अब कलियुग आ गया है। इससे वे उत्तर दिशा की ओर गन्धमादन पर्वत पर चले गये। वहाँ जाकर वे श्री बद्रिकाश्रम में रहकर गर्मी सर्दी सहते हुए तपस्या के द्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की आराधना करने लगे।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित् ! उस कालयवन का वध कर के भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मथुरा लौट आये और उस कालयवन की सेना का संहार कर डाला। उसका सारा धन छीन कर द्वारिका ले चलने के लिये बैलों तथा छकड़ों में लदवा दिया। उसी समय अठारहवीं वार तेईस अक्षौहिणी सेना ले कर मगध-राज जरासन्ध वहाँ पर फिर आ धमका। उस शत्रु की प्रवल सेना को देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम उसके सामने से ही बड़ी फुर्ती से भाग चले।

हे परीक्षित् ! उन्हें उस जरासन्ध से तनिक भी भय नहीं था किन्तु वे लीला विलासी भगवान् मनुष्य की सी लीला कर रहे थे। जिस प्रकार कोई नाटक करता है उसी भाँति वे भय का प्रदर्शन करते हुए सब का सब धन वहीं पर छोड़ कर कोसों तक पैदल ही पैदल भागे। जब जरासंध ने उनको भागते देखा तब वह रथ पर सवार होकर उनके पीछे दौड़ा। बहुत दूर दौड़ते दौड़ते वे एक ऊँचे प्रवर्षण नाम के पर्वत पर चढ़ गये। उस पर्वत पर सदा वर्षा होने के कारण ही उसका नाम प्रवर्षण था। जरासन्ध ने उनको उस पर्वत पर बहुतेरा खोजा लेकिन अब उस को उनका कोई पता न चला तब उसने उस पर्वत में आग लगा दी। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि पर्वत जल रहा है तब दोनों भाई जरासन्ध की सेना लांघते हुए बड़े वेग से उस चौवालीस कोस के ऊँचे पर्वत से एक दम नीचे पृथ्वी पर कूद पड़े और वे दोनों समुद्र से घिरी हुई अपनी द्वारिकापुरी में आगए। जरासंधने समझा कि वे इसी पर्वत में जल कर मर गए। तब वह अपनी सेना लौटा कर अपनी राजधानी को चला गया।

हे परीक्षित् ! मैंने नवम् स्कंध में तुम को यह सुनाया था कि आनर्तदेश के राजा रैवतजी ने भी ब्रह्माजी की आज्ञा से अपनी रेवती कन्या बलरामजी को ब्याह दी थी। बलराम जी का विवाह होने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी शिशुपाल आदि के देखते हुए विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणीजी को वर लाये। वे स्वयं लक्ष्मी जी का अवतार थीं।

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन् ! मुझे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की इस पवित्र कथा को विस्तार पूर्वक सुनाने की कृपा कीजिये। वे कि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भाँति रुक्मिणी जी का हरण करके लाये। मेरा मन उनकी अमृतमयी कथाओं को सुनते २ नहीं थका।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! विदर्भ देश के राजा भीष्मक के पाँच पुत्र और एक कन्या थी। बड़े पुत्र का नाम रुक्मी और उससे छोटे का नाम रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मसेन तथा रुक्ममाली था और सबसे छोटी कन्या का नाम रुक्मिणी था। उस रुक्मिणी ने अनेकों ब्राह्मण भगवत् भक्तों के मुख से जिस काल से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के रूप सौन्दर्य माधुर्य, पराक्रम, गुण तथा वैभव की प्रशंसा सुनी उसी काल से उसकी परम भक्ति तथा प्रेम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। वह रुक्मिणी जी लक्ष्मी जी का अवतार होने के कारण सर्वगुण सम्पन्न तथा अति सुन्दरी थी। उनके अद्वितीय शील तथा गुणों को सुनकर राजा भीष्मक यह चाहते थे कि मेरी इस कन्या का विवाह श्रीकृष्णचन्द्र के साथ हो किन्तु भीष्मक का बड़ा लड़का रुक्म चाहता था कि मेरी बहन रुक्मिणी का विवाह चेदि राज शिशुपाल के साथहो। अतः उसने रुक्मिणी का टीका शिशुपाल के यहाँ भिजवा दिया किन्तु जब रुक्मिणी जी को इस बात का पता चला तब वे अति उदास हो गईं और उन्होंने सोच विचार कर एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को बुलाय श्रीकृष्णचन्द्र जी के पास द्वारिका को भेज दिया। जब वह ब्राह्मण द्वारिकापुरी में पहुँचा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारपालों ने तुरन्त ही उस ब्राह्मण को महलों में पहुँचा दिया। ब्राह्मणों के परम भक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उनके आगमन का कारण पूछा तब वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर रुक्मिणी जी का यह सन्देश कहने लगे।

रुक्मिणी जी ने कहा है—हे त्रिभुवन सुन्दर! आपका सौन्दर्य तथा आपके गुण कानों के द्वारा मेरे हृदय में प्रवेश कर गये हैं। मैंने आपके उन सभी गुणों का वर्णन सुना है जो जगत् के प्राणियों को पवित्र करने का एक मात्र साधन है। आपके रूप माधुर्य को देख कर नेत्र वाले प्राणी आपको निहारते निहारते नहीं तृप्त होते हैं। हे अच्युत मेरा मन, मेरा प्रेम आप में ही लगा हुआ है मैंने आपके लिए लोक लाज भी त्याग

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Arya Samaj Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दी है। हे श्यामसुन्दर ! आप कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य विद्या, अवस्था धनधाम आदि सभी में अद्वितीय हैं। आपकी समानता करने वाला इस संसार में कोई भी जीव नहीं है। ऐसी कौनसी गुणवती कुलवती कन्या होगी जो आपको अपना पति न बनाना चाहेगी। इस कारण हे प्रियतम! मैंने आपको पति रूप में ग्रहण किया है। आप अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदय की बात जानने वाले हैं। आप यहाँ पधार कर मेरा पाणिग्रहण कीजिये। मैं आपके चरणों में आत्म समर्पण कर चुकी हूँ। हे शरणागत वत्सल! मुझे भय है कि कहीं शिशुपाल मेरे पवित्र अङ्ग को स्पर्श न कर जावे। यदि मैंने कोई भी पुण्य किया है तो आप मुझ पर अवश्य प्रसन्न हों। जिस दिन मेरा विवाह होने वाला हो उससे एक दिन पहले मेरे नगर में आप पधारें और अपने बल, शक्ति तथा सेना के द्वारा शिशुपाल और जरासन्ध को पराजित करके बल पूर्वक मुझे हरण कर मेरा पाणिग्रहण कीजिये और यदि आप यह विचार करें कि तुम तो महलों के अन्दर पहरे में रहती हो मैं तुम्हारे भाई बन्धुओं का नाश किये बिना किस प्रकार तुम्हारा हरण कर सकता हूँ तो इसका उपाय यह है कि मैं विवाह के एक दिन पहले कुल देवी की पूजा के लिये अपनी वाटिका में नगर से बाहर आऊँगी। वहाँ पर गिरिजा देवी की पूजा दुलहिन को करनी पड़ती है। उस समय आप मुझे बड़ी सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। ब्राह्मण देवता ने कहा—

हे भगवन्! रुक्मिणी जी का यह अत्यन्त गोपनीय शुभ सन्देश है। इसी के लिए मैं यहाँ आया हूँ। इसके विषय में जैसा आपको कार्यक्रम बनाना हो वैसा आप तुरन्त विचार लीजिये।

॥ तिरेपनवाँ अध्याय ॥

रुक्मिणी जी का हरण करना।

दोहा—हरी रुक्मिणी आय कर श्रीकृष्ण सुख धाम।
असुर सभी देखत रहे, लीनी रथ में बाम॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रुक्मिणी जी का यह प्रेम तथा करुणा से पूर्ण सन्देश सुन कर ब्राह्मण से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मुस्कराते हुए बोले—हे ब्राह्मण देवता! जैसा विदर्भ राजकुमारी रुक्मिणी मुझे चाहती हैं उसी भाँति मैं भी उन्हें चाहता हूँ। यह मैं जानता हूँ कि उनके माता पिता मुझे ही रुक्मिणी देना चाहते हैं किन्तु उनका बड़ा भाई रुक्म मुझ से शत्रुता रखने के कारण उन्हें ऐसा करने से रोक रहा है मैं अवश्य राजकुमारी रुक्मिणी को ब्याह कर लाऊँगा।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने यह समझ कर कि रुक्मिणी जी के पाणिग्रहण की लग्न परसों रात्रि में ही है तब उन्होंने शीघ्र अपने सारथी दारुक को रथ लाने की आज्ञा दी। दारुक सारथी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा पाते ही शीघ्र शैव्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प तथा बलाहक नाम के चार घोड़ों को जोत कर ले आया और हाथ जोड़ शिर नवाय सन्मुख खड़ा हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने पहले ब्राह्मण को रथ पर चढ़ाया फिर आप रथ पर चढ़े और विदर्भ देश की ओर चल दिये। मार्ग में उन्हें अति सुन्दर २ शकुन हुए। चलते २ सन्ध्या तक कुण्डिलपुर राजा भीष्मक के नगर में पहुँच गए। वहाँ पर रुक्मिणी के विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से हो रही थीं। नगर राजपथ, चौराहे, सड़कें गली कूँचे आदि सभी झाड़ बुहार कर छिड़के जा रहे थे चित्र विचित्र पताकाएँ तोरणवार केला के खम्भ लगाये जा रहे थे। सोने के कलश स्थान २ पर रक्खे जा रहे थे घरों में से अगर धूप की सुगन्धि फैल रही थी। राजा भीष्मक कुल देवताओं तथा पितरों की विधिवत् पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराय नियमानुसार स्वस्तिवाचन करा रहे थे परम सुन्दर रुक्मिणी जी को उबटन स्नान आदि करा कर हाथों में शुभ कंकण आदि पहनाये गये थे। उनको नवीन २ भूषणों वस्त्रों से अलंकृत किया गया था। वेद पाठी ब्राह्मण वेद मन्त्रों द्वारा गृह शान्त के लिये हवन आदि कर रहे थे। भीष्मक ब्राह्मणों को सोना चाँदी वस्त्र गोएँ दान कर रहे थे।

जिस भाँति कुण्डिलपुर में कन्या के विवाह की समस्त कार्यवाही हो रही थी उसी भाँति चेदिराज दमघोष ने भी अपने पुत्र शिशुपाल के विवाह की तैयारी की। वहाँ पर विवाह सम्बन्धी सभी मङ्गल

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कृत्य किये जाने लगे। तत्पश्चात् राजा दमघोष जरासन्ध आदि अपने साथी राजाओं को ले कर हाथी घोड़े रथ पैदल की चतुरंगिणी सेना के साथ कुण्डिलपुर पहुँचे। विधर्वराज भीष्मक ने अगवानी लेकर बरात को बड़े स्वागत सत्कार के साथ जनवासों में ठहरा दिया। उस बरात में शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ, पौण्ड्रक आदि सहस्रों नरपति सम्मिलित थे। वे सब के सब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी के विरोधी और महाबली थे। उन्हें रुक्मिणी हरण का पहले से ही पता लग गया था। इसी कारण वे सभी राजा लोग अपनी पूरी पूरी सेना ले कर वहाँ आये।

हे परीक्षित् ! उन विपक्षी राजाओं की इस पूरी तैयारी का पता बलराम जी को भी लग गया था। जब उन्होंने यह देखा कि श्रीकृष्णचन्द्र अकेले ही कुण्डिलपुर राजकुमारी का हरण करने गये हैं तब उन्हें युद्ध की आशङ्का हुई। यद्यपि वे श्रीकृष्णचन्द्रजी के बल पराक्रम को भली भाँति जानते थे किन्तु फिर भी भ्रात स्नेह के कारण तुरन्त अपनी विशाल चतुरङ्गिणी सेना लेकर कुण्डलिपुर पहुँचे।

हे परीक्षित् ! उधर रुक्मिणी जी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के शुभ आगमन की प्रतीक्षा में अति चिन्तित, मन मलीन तन छीन बैठी हुई थीं। उन्हें ये विवाह सम्बन्धी उत्सव कुछ भी अच्छे नहीं लग रहे थे। उन्होंने खान पान सभी त्याग दिया था और यही सोचने लगीं अरे ! अभी वह ब्राह्मण लौट कर नहीं आया। न जाने मुझ अभागिनी की प्रार्थना भगवान् ने अस्वीकार कर दी। अब तो केवल विवाह में एक रात ही शेष रह गई है। मैंने तो सुना है कि वे भक्त वत्सल तथा शरणागत वत्सल हैं। जब उनके चरणों में मेरी सच्ची भक्ति तथा प्रेम है तो अवश्य ही वे मेरी रक्षा के लिए आवेंगे। हे गिरिराज कुमारी ! मैंने तुम्हारी बहुत सेवा की है। तुम प्रसन्न होकर मेरी अभिलाशा पूर्ण करो। हे परीक्षित! रुक्मिणी जी अपने महलों में वैठी २ इसी उधेड़ बुन में थीं और उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रेम में नेत्र बन्द कर के आँसू बहा रहीं थीं। किंतु अभी उन्हें निराशा नहीं हुई थी। उनकी बाँईं जाँघ भुजा तथा नेत्र

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi

फड़क रहे थे। मानों वे प्रियतम के शुभ आगमन का सन्देश दे रहे हों। उसी क्षण वहाँ पर वे ब्राह्मण देवता आये। रुक्मिणी जी उस ब्राह्मण को देख कर अति प्रसन्न हुईं। ब्राह्मण के प्रसन्न मुख को देख कर वे समझ गईं कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आ गए फिर भी उन्होंने ब्राह्मण देवता से अपने प्रियतम के विषय में पूछा—तब ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए उनके आगमन का शुभ सन्देश सुनाया। ब्राह्मण के ऐसे प्रिय बचन सुन कर उस देवता ने उन के चरणों में नमस्कार किया अर्थात् उसको संसार की समस्त लक्ष्मी सौंप दी।

जब राजा भीष्मक ने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी मेरी कन्या का विवाहोत्सव देखने लिये यहाँ पधारे हैं तब राजा भीष्मक ने बड़े आदर सत्कार के साथ बाजे गाजे से पूजा की सामिग्री लेकर उनकी अगमानी की और मधुपर्क आदिसे उनकी पूजा करके उन्हें भेंट दी। हे परीक्षित् ! भीष्मक जी बड़े बुद्धिमान तथा भगवत्भक्त थे। उन्होंने भगवान् को तथा उनकी सेना को उचित स्थान पर ठहराया और उनका भली भाँति आदर सत्कार किया। जब विधर्व देश के नागरिकों ने भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र का शुभागमन सुना तब वे सभी नगर निवासी उनके दर्शनों के लिए आये और अपने नेत्र भर भर कर उन के मुखारविन्द के मकरन्द रस को पीने लगे। वे सब परस्पर कहने लगे—सच पूछो तो रुक्मिणी के योग्य तो यही वर है। हमारी रुक्मिणी जी भी लक्ष्मी जी के समान सुन्दर हैं। इन दोनों का बड़ा ही सुन्दर जोड़ा है। विधाता ने बड़ा ही रच पच कर इन दोनों को बनाया है।

हे परीक्षित् ! जिस समय पुरवासी परस्पर इस प्रकार की बातें कर रहे थे उसी समय रुक्मिणी जी महलों से निकल कर गिरिजा पूजन के लिए मन्दिर को चलीं। उनके साथ शिशुपाल जरासन्ध आदि ने श्रीकृष्ण के भय से बड़े २ महाबली दैत्य रक्षा के लिए नियत कर दिये। वह सती रुक्मिणी वैसे तो गिरिजा के पूजन को जा रही थीं किन्तु उनका ध्यान गोविन्द के ही चरणों में था। वे स्वयं मौन थीं और उनकी माता संग की सहेलियाँ नगर की स्त्रियाँ उन्हें घेर कर चल रहीं थीं। उस समय

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आगे आगे मांगलिक बाजे ढोल मृदङ्ग शंख तुरही बजते जा रहे थे। सहस्रों वीरांगनाएँ मंगलगात गाती जा रही थीं। सूत मागध बन्दीजन जै जैकार करते जा रहे थे। उनके चारों ओर अस्त्र शस्त्र धारी महावली दैत्य घेर कर चल रहे थे। रुक्मिणी जी ने देवी के मन्दिर में प्रवेश करके अपने हाथ पैर धो आचमन किया तथा शान्त भाव से विधिपूर्वक अम्बिका देवी की पूजा की। और उन्होंने भगवान् शंकर तथा वरदायिनी उन की अर्द्धाङ्गिनी भवानी को प्रणाम किया और यह वर माँगा कि हे माता! मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मेरी अभिलाषा पूर्ण हो और मेरे पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हों तत्पश्चात् उन्होंने सुहागिन ब्राह्मणों की पूजा की और अपना मौन ब्रत तोड़ कर अपना कर कमल एक सहेली के कन्धे पर रख कर मन्दिर से बाहर निकलीं।

हे परीक्षित! रुक्मिणी जी के सौन्दर्य के विषय में तो कहना ही क्या है क्योंकि वे स्वयं लक्ष्मी जी का अवतार थीं। उनकी माया भी भगवान् की माया के समान सब को मोहित करने वाली थी। उनका कटि भाग अति सुन्दर और सिंह के कटि भाग को भी लजाने वाली थी। मुख मण्डल चन्द्रमा को लजा रहा था जिस पर कुण्डल जगमगा रहे थे। उनकी अवस्था किशोर और तरुण के मध्य में थी। कटिभाग में करधनी शोभा पा रही थी उभरे हुए वक्षःस्थल थे उनकी घुँघुराली अलकें तथा वेंणी नागनियों को भी मात कर रही थी। कुन्द कली के समान उज्जवल दाँतों की पंक्ति थी और बिम्बाफल के समान उनके लाल ओष्ट थे। उनके पैरों में पायजेब शोभायमान थे। और उनकी चाल राज हंस के समान थी। उनके सौन्दर्य को देखकर सभी बड़े २ वीर मोहित हो गए थे। वे रुक्मिणी जी अपने उस गिरिजा पूजन की यात्रा में अपनी सौन्दर्य राशि को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर निछावर करने के लिए मन्द मन्द गति से चल रही थीं। उन रुक्मिणी जी के सौन्दर्य को देख कर साथ में चलने वाले पहरेदारों के हाथ से अस्त्र शस्त्र छूट गए और वे बेहोश से हो गए। उसी समय वहाँ पर भगवान् श्यामसुन्दर एक रथ पर चढ़े हुए आगए। उन को देख कर रुक्मिणी जी प्रफुल्लित हो गईं। वे उन के रथ पर चढ़ना ही

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने रथ में से ही उनका हाथ पकड़ कर उन्हें अपने निकट बैठा लिया और वे पहरेदार देखते रह गए। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने रथ द्वारिका की ओर बढ़ा दिया। जब यह समाचार जरासन्ध शिशुपाल आदि ने सुना तब उन से यह सहन न हुआ और वे अपने को धिक्कारते हुए अस्त्र शस्त्र लेकर उनके पीछे दौड़ने लगे।

॥ चौवनवाँ अध्याय ॥

दोहा—शिशुपाल रुक्म को जीत कर, छीनी रुक्मिणि बाम।
अमुर सभी संहार करि, पूरन कीन्हे काम॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! इस भाँति सभी राजा लोग क्रोधित होकर अपने अस्त्र शस्त्र ले कवच पहन शिशुपाल की सहायता के लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पीछे दौड़े। जब यदुवंशियों ने राजा लोगों का आक्रमण देखा तब वे भी अपने अपने अस्त्र शस्त्र लेकर उनके सम्मुख आ डटे। जरासिन्ध की सेना के लोग रथ हाथो घोड़ों पर सवार होकर धर दौड़े। दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। परम सुन्दरी रुक्मिणी जी इस घोर संग्राम को देख कर अति घबड़ाईं और भय तथा लज्जा के नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण जी की ओर देखा। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र रुक्मणी को भयभीत जान कर बोले—हे सुन्दरी डरो मत विजय तुम्हारी ही होगी। उधर गद संकर्षण तथा बलराम जी कृतवर्मा सात्यकि आदि सभी धनुर्धर ललकार ललकार कर अपना पराक्रम दिखाने लगे। बलरामजी ने अपने हल और मूसल से हाथियों की सेना को इस प्रकार छिन्न भिन्न कर दिया जिस प्रकार घोर बादलों को वायु छिन्न भिन्न कर देती है। किसी के हाथ किसी के पैर किसी का सिर कट कर गिरने लगे। हाथी, घोड़े, खच्चर आदि पहाड़ की भाँति गिरने लगे। शिशुपाल अपनी इस पराजय तथा अपहरण पर मरणासन्न सा हो रहा था। उसके शरीर की कांति, हृदय का उत्साह सब जाता रहा। उसका मुख सूख गया और नीचे को सिर झुका लिया तब जरासन्ध ने शिशुपाल के निकट आकर उसे समझाया और बोला—

हे शिशुपाल जी! आप वीरों में श्रेष्ठ हैं। आपको अपनी पराजय

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पर इतना शोकित नहीं होना चाहिये मुझे तो देखो इस कृष्ण ने मुझे सत्रह बार तेईस तेईस अक्षोहिणी सेना सहित पराजित किया था किन्तु अठारहवीं बार मैंने बिजय प्राप्त की। मुझे न तो विजय से प्रसन्नता है और न पराजय से शोक है क्यों कि जय पराजय भाग्यानुसार ही प्राप्त होते हैं। अब की बार आपकी पराजय हुई है फिर कभी आपकी विजय भी होगी। इस भाँति समझा बुझा कर जरासन्ध अपनी राजधानी को चला गया और शिशुपाल भी अपने नगर को लौट आया। उसके अनुयायी राजा लोग भी अपने अपने नगरों को चले गये।

जब रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी ने यह बात सुनीं तो वह अति क्रोधित हो अपनी सेना ले श्रीकृष्ण के सामने आ डटा। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं श्रीकृष्ण को मार कर अपनी बहिन को न लौटा सका तो नगर में लौट कर न आऊँगा ऐसी प्रतिज्ञा कर के उसने सीधे ही श्री कृष्णचन्द्र के रथ पर आक्रमण किया उसने श्री कृष्णचन्द्र को ललकार कर तीन बाण मारे। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने धनुष को सम्हाल कर उस पर छः बाण छोड़े और उसी क्षण अपने आठ बाणों से उसके सारथी रथ घोड़े तथा ध्वजा धनुष को भी काट डाला। रुक्मी ने दूसरा धनुष उठाया तथा दूसरे रथ पर सवार हुआ। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे भी काट दिया फिर रुक्मी के तीसरा धनुष उठाया तो भगवान ने उसे भी काट गिराया। इस प्रकार रुक्मी ने शूल पट्टिस परधि, ढाल तलवार तोमर तथा शक्ति आदि कई अस्त्र शस्त्रों का प्रहार उन पर किया किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन को उसी क्षण काट दिया। तब रुक्मी अति क्रोधित होकर हाथ में तलवार ले रथ से नीचे कूद पड़ा। जब श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मी को अपने ऊपर प्रहार करते देखा तो उन्होंने एक बाण मार कर उस की तलवार को भी काट दिया और उसे मार डालने की इच्छा से अपनी तीक्ष्ण तलवार उठाई। जब रुक्मिणी जी ने देखा कि ये मेरे भाई को मार ही डालना चाहते हैं तब वे अति व्याकुल हो कर यदुपति भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के चरणों में गिर पड़ीं और इस प्रकार बोलीं—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चौपाई–करहु कृपा अब हे यदुराई। मारौ नहीं रुक्मी मम भाई।
छोड़ो नाथ तिहारौ दासा। मात पिता जीवन की आसा॥
मूरख अन्ध महा अज्ञानी। तुम्हरी माया कुछनहिं जानी।
तुम को मूँढ़ कहा पहिचाने। तुम्हरी महिमा वेद न जाने॥
ब्रह्मा शंकर नित उठि ध्यावें। तबहू पार तुम्हरौ नहिं पावें।
मैं दासी चरनन सिर नाऊँ। जीवन भीख भ्रात मम पाऊँ॥

इतना सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी तलवार नीचे कर ली और रुक्मी के मारने का विचार त्याग दिया। उस समय रुक्मिणी जी का अङ्ग प्रत्यङ्ग भय के कारण थर थर काँप रहा था। उनका मुख सूख गया था उन के सोंने का हार भी कण्ठ से गिर गया था। इसी दशा में वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण पकड़े हुए थीं। इतने पर भी रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का अनिष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस रुक्मी को उसके दुपट्टे से बाँध उसके दाढ़ी मूँछ तथा केश तलवार से मूँड़ कर उसको अपने रथ के पीछे बाँध लिया। जब बलराम जी सब शत्रु सेना का संहार कर के उधर से लौट कर श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आये तब रुक्मी को इस अवस्था में तथा दाढ़ी मूँछ मुड़े हुए बँधा देख कर उन्हें बड़ी दया आई और उस रुक्मी को खोल कर भगवान् श्रीकृष्ण से इस प्रकार बोले—

चौपाई–बाँध्यौ निज साला तुम भाई। तुमने कीन्हीं बहुत बुराई॥
यशको छाँड़ि अपयश सिरलीन्हा। दाढ़ी मूँड़ि कुरूप यह कीन्हा॥
मेटी लीक यदुकुल की तुम ने। लीन्ह कलंक टीका सिर अपने॥

इतना कह कर वल्देव जी रुक्मिणिजी की ओर सम्बोधन करके बोले–हे साध्वी! तुम्हरे भाई का इस प्रकार कुरूप होने का कारण उसके कर्म ही हैं और कोई दूसरा कारण नहीं है। तब श्रीकृष्ण से बोले–हे कृष्ण! यदि अपना सगा सम्बन्धी कोई अपराधभी करदे तो भी वह वध करने योग्यनहीं है। दाढ़ी मूँछों का मूँड़ लेना ही उस का वध करना है। फिर रुक्मिणिजी से बोले–

चौपाई–दुलहिन तुम जनि रिसन होऊ। कर्म लिखा भोगत सब कोऊ॥
तुम्हरे तात अमङ्गल कारी। यदुवंशिन से ठानी रारी॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जगत पिता यदुपति पति तुम्हारे, जग के प्राण भ्रात ये हमरे।
मारन मूँढ़ इन्हें यह धायौ, ब्रह्मा शिव जिन पार न पायौ॥

हे साध्वी! इसलिए क्षत्रिय धर्मानुसार युद्ध के लिए आये हुए शत्रु का वध करना धर्म में है। इसी कारण तुम्हारे भाई को कुरूप करके छोड़ दिया गया है तुम्हें इससे तनिक भी रुष्ट न होना चाहिये। ये जितने भी संयोग, वियोग, मरण, जीवन होते हैं सब शरीर के ही हैं आत्मा के नहीं होते। इसलिए तुम अपने शोक को त्याग कर प्रसन्न हो जाओ।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! जब बलराम जी ने रुक्मिणी जी को इस प्रकार समझाया तब परम सुन्दरी रुक्मिणीजी के मन का मैल मिट गया और वे प्रसन्न हो गईं।

रुक्मी अपनी पराजय पर अति दुखित होता हुआ प्राण हीन के समान अपमानित होकर वहाँ से चला आया। उसने अपनी प्रतिज्ञानुसार कुण्डनपुर में प्रवेश करके भोजपुर नामक नगर बसाया।

लज्जित होकर रुक्मी नगर को फिर नहीं आया।
कुण्डिनपुर को छोड़ि भोज पुर नगर बसाया॥

हे परीक्षित्! इस भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणी जी को लेकर बड़े आनन्द के साथ द्वारिकापुरी में आये और वहाँ पर कुल पुरोहित को बुलाय बसुदेव तथा उग्रसेन ने बड़ी धूमधाम के साथ राक्षस विधि से उनका पाणिग्रहण संस्कार कराया।

॥ पचपनवाँ अध्याय ॥

प्रद्युम्न जी का जन्म तथा शम्भासुर का बध

छन्द—मात रुक्मिणी के भये सुत मोहि सुर जन मन लिये।
शिव शाप कारण काम जन्मे शूल शम्बासुर हिये॥
शत्रु रतिपति जानि अपनौ गेरि सागर में दिये।
पाय रति को सङ्ग प्रद्युम्न मारि शम्भासुर दिये॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् शंकर के शाप से जब कामदेव भस्म हो गया तो उसकी पत्नी रति अति ब्याकुल होकर पति वियोग में उन्मत्त सी होगई उसने पार्वतीजी तथा भगवान गौरी शंकर की अति सेवा कर उन्हें प्रसन्न किया तब पार्वतीजी ने उसे यह आशीर्वाद दिया कि तेरा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पति यदुकुल में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के यहाँ जन्म लेगा और तुझे वह शम्बासुर के यहाँ मिलेगा। इस कारण वह मायावती कामदेव की यशस्विनी पत्नी रति शम्बासुर के यहाँ रहकर पति प्राप्ति की लालसा से दासी का कार्य करने लगी। कामदेव पुनः शरीर प्राप्त करने के लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शरीर में प्रवेश करके रुक्मिणीजी के गर्भ में आगया। समय आने पर रुक्मिणी जी के गर्भ से वह कामदेव प्रद्युम्न जी के रूप में प्रकट हुआ। उस बालक का सौन्दर्य, वीर्य, शीलत,सद्गुण आदि सभी श्रीकृष्णचन्द्रजी के ही समान थे। शम्बासुर को जब यह पता चला कि मेरा शत्रु यदुकुल में जन्म ले चुका है तब वह वेश बदल कर सूतिकागृह से उस दस दिनके बच्चेको हर लाया। और एक समुद्र में डाल दिया। उस बालक को एक मछली निगल गई। और उस मछली को भी एक बड़ा मच्छ निगल गया। तत्पश्चात् एक मछुए ने उस मच्छ को पकड़ कर शम्बासुर की रसोई में भेज दिया। जब उस मच्छ का पेट फाड़ा गया तब उसमें अति सुन्दर एकबालक निकला। उसको देख कर शम्बासुर की दासी मायावती के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने उस अति सुन्दर बालक को ले लिया और उसे पालने लगी। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद आये। और उन्होंने कहा—हे मायावती! यह तेरा ही पति कामदेव है। इसे तू यत्न से पालियो इसने यदुकुल में जन्म लिया है और इसको यह शम्बासुर दैत्य हर कर समुद्र में डाल आया था। श्री पार्वतीजी की कृपा से तुझे यह तेरा पति प्राप्त हुआ है। इस भाँति रति को समझा बुझाकर नारद जी चले गये। वह बड़े लाड़ चाव से उस बालक का पालन पोषण करने लगी। वे प्रद्युम्नजी थोड़े काल में ही युवा हो गये। उनका रूप लावण्य इतना अद्भुत था कि वे साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही प्रतीत होते थे। वह रति उन्हें बड़े हाव भाव और लजीली दृष्टि से देखती थी। तब प्रद्युम्न जी बोले—तुम तो मेरी माँ हो। फिर तुम में ऐसा परिवर्तन क्यों देख रहा हूँ। तब रति ने कहा—

चौपाई—पुत्र नहीं तुम पति हो मेरे। मिले कंत शम्बासुर प्रेरे।
मारो नाथ शत्रु यह तुम्हरो। मेटौ दुःख देवनको सिगरो॥

इतना कह कर उस मायावती रति ने उन्हें महा विद्या सिखाई।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

और धनुष बाण अस्त्र शस्त्र की सभी विद्याओं में निपुण कर दिया।

हे परीक्षित! एक दिन प्रद्युम्नजी उस शम्बासुर दैत्य को मारने की इच्छा से अपना धनुष बाण ले उसकी सभा में गये। शम्बासुर उन्हें देखकर अति प्रसन्न हुआ और बोला कि मैंने इस बालक को बड़े प्रयत्न से पाला है। तब प्रद्युम्नजी बोले—अरे दुष्ट! मैं बालक नहीं हूँ तेरा शत्रु हूँ जिसको तूने दस दिन का ही समुद्र में लाकर डाल दिया था। इस प्रकार कह कर युद्ध के लिए ललकारा।

शम्बासुर प्रद्युम्न के ऐसे कटु बचन सुन कर ठोकर खाए साँप की भाँति फुफकारता हुआ बोला—अरे! तू तो आस्तीन का साँप निकला, जिसे दूध पिला कर मैंने पाला। इतना कह कर उसने बज्र के समान भारी गदा का उन पर प्रहार किया। जब प्रद्युम्न जी ने गदा को अपनी ओर आते देखा तब उन्होंने अपनी गदा की चोट से उसे काट दिया। तब वह असुर अनेक प्रकार की माया रच कर युद्ध करने लगा। किन्तु प्रद्युम्नजी ने महा विद्या के प्रयोग से सब को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी तीक्ष्ण तलवार से उस शम्बासुर का शिर काट पृथ्वी पर डाल दिया। आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और देवता उनकी स्तुति करने लगे। तब वह मायावती रति प्रद्युम्न जी को आकाश मार्ग से द्वारिकापुरी को ले आई क्योंकि वह रति आकाश में बिचरना जानती थी। गोरी पत्नि के साथ साँवले प्रद्युम्नजी की शोभा अवर्णनीय थी।

उनके मेघ के समान श्याम वर्णपर रेशमी पीताम्बर शोभायमान था। उनकी घुँघराली अलकें मन्द मन्द मुस्कान कानों में कुण्डल अति सुन्दर थे। वह नव दम्पति अन्तःपुर में पहुँचे। वहाँ की स्त्रियाँ उन्हें देख कर अति आश्चर्य में हुईं और बोलीं कि श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ से आये हैं वे उन्हें देख कर छिप गईं। तब उन्हें मालूम हुआ कि यह श्री कृष्णचन्द्र नहीं हैं तब वे अति आश्चर्य में हुईं कि यह पुरुष श्रेष्ठ कौन है जिसके साथ ऐसी सुन्दर युवती है। उसी समय वहाँ रुक्मिणी जी आईं। उनके नेत्र कजरारे तथा वाणी अति मधुर थी। उस नव दम्पति को देख कर उन्हें अपने पुत्र की याद आई किन्तु वे आश्चर्य चकित होकर उन की ओर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

देखती रहीं। उनका प्रेम उनकी ओर बढ़ने लगा। उनके स्तनों से दूध की धार बहने लगी। वे खड़ी २ सोचने लगीं कि यह नर श्रेष्ठ किसका पुत्र है। किस सौभाग्यवती ने इसे गर्भ में धारण किया है मेरा बालक भी होता तो ऐसा ही होता। उसे तो न जाने कौन सूतिका गृह से ही उठा कर ले गया। उसकी रूप माधुरी, शरीर गठन, मधुर मुस्कान सब अपने पति श्रीकृष्णचन्द्र के समान देख कर सोचने लगी कि हो न हो यह वही बालक है मेरे बाँये अङ्ग भी फड़क रहे हैं।

हे परीक्षित ! जब रुक्मिणीजी तथा अन्तःपुर की अन्य स्त्रियाँ इसी भाँति संकल्प विकल्प कर रही थीं उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने माता पिता देवकी वसुदेव तथा बलराम जी के साथ पधारे किन्तु वे भी कुछ न बोले और चुपचाप खड़े रहे। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को यह सब कुछ पता था। किन्तु फिर भी उसी क्षण आये हुए नारदजी के द्वारा ही उस बालक का परिचय कराया। नारदजी ने आद्योपान्त सब कथा उस बालक के हरण से लेकर द्वारिका के आने तक उन्होंने सुनाई। यह सुन कर सभी अन्तःपुर निवासी स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं। देवकी बसुदेव भगवान् श्री कृष्णचन्द्र और बलराम जी ने उस नव विवाहित दम्पति को शुभ आशीर्वाद दिये और कण्ठ से लगाया। जब नगर वासियों ने सुना तो वे अति आनन्दित हुए। हे परीक्षित ! प्रद्युम्नजी का रूप रङ्ग भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से इतना मिलता जुलता था कि उनकी माताएँ रुक्मिणी आदि उन्हें देख कर अपने पति श्रीकृष्णचन्द के मधुर भाव में मुग्धहो जाती थीं और उनके सामने से हट कर अलग चली जाती थी।

—:❀:—

॥ छप्पनवाँ अध्याय ॥

स्यमन्तक मणी की कथा
जाम्ववन्ती और सत्यभामा का विवाह

दोहा—स्यमन्तक मणि की कथा, कही मुनी समझाय।
नृपति परीक्षित सुन रहे, मन में अति हरषाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! एक समय सत्राजित ने भगवान्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सूर्य की उपासना करके उनसे स्यमन्तक नाम की मणि प्राप्त की। उस मणि का प्रकाश सूर्य भगवान् के समान ही था। एक दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चौसर खेल रहे थे कि सामने से प्रकाशमान पुरुष को आते देख कर यादवों ने कहा—हे भगवन्! आपके दर्शनों के लिए साक्षात् सूर्य भगवान् या अग्निदेव चले आ रहे हैं। आपकी महिमा अति अलौकिक है। कभी आपके दर्शनों को भगवान् शंकर आते हैं तो कभी ब्रह्मा और इन्द्र तो निरन्तर ही अपने मुकुट को आपके चरणों में धरे रखता है सामने से हमारे नेत्रों को चौंधाते हुए सूर्य भगवान् ही चले आ रहे हैं। आपकी प्राप्ति का मार्ग सभी ढूँढ़ते रहते हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उन अनजान पुरुषों की बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसे और बोले—हे यादवो! यह सूर्य भगवान् नहीं है। सत्राजित ने सूर्य भगवान् की आराधना कर के यह चमकीली मणि प्राप्त की है। इससे आठ भार सोना भी नित्य प्राप्त होता है। जब सब लोग इसी प्रकार की बातें कर रहे थे उसी समय सत्राजित वहाँ आ पहुँचा। सत्राजित को देख कर उन यादवों ने कहा—अरे सत्राजित! यह तेरे पास अलौकिक दिव्य मणि है और अलौकिक सुन्दर वस्तु का अधिकारी राजा होता है। इस लिए तू इस मणि को हमारे राजा उग्रसेन को दे दे। किन्तु सत्राजित यह बात सुनकर बिना कुछ उत्तर दिये ही वहाँ से उठ कर चला आया और उस स्यमन्तक मणि को एक देव मन्दिर में स्थापित कर दिया। वह मणि नित्य उसे आठ भार सोना देती थी। जिस देश में तथा जिस स्थान में वह मणि रहती थी वहाँ पर दुर्भिक्ष, महामारी, बीमारी आदि कोई भी कष्ट नहीं होता था।

एक दिन सत्राजित का भाई प्रसेनजित् उस मणि को पहन कर घोड़े पर सवार हो बन में आखेट के लिए गया वहाँ पर उसके घोड़े तथा प्रसेनजित को एक सिंह ने मार डाला और उस से वह मणि छीन ली। उस सिंह को ऋक्षराज जाम्बवान् ने मार कर वह मणि प्राप्त करली और उस मणि को लेकर अपनी गुफा में चला गया। वहाँ पर अपने बालक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

का खिलौना बना दिया। जब प्रसेनजित लौट कर नहीं आया तो सत्राजित ने यह समझा कि मेरे भाई को श्रीकृष्णचन्द्र ने मार कर वह मणि छीन ली है। यह बात उसने अपनी स्त्री से कही। और उसकी स्त्री ने अन्य स्त्री से काना फूँसी की तब इसी प्रकार यह बात सारी द्वारिका में फैल गई। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने सुना कि मुझे व्यर्थ में चोरी का कलङ्क लगा है तब वे उसे धोने के उद्देश्य से नगर के कुछ प्रमुख यादवों को ले कर रथ पर सवार हो स्यमन्तक मणि की खोज में निकले। जब वे उस जङ्गल में पहुँचे तो वहाँ पर घोड़ा सहित प्रसेनजित को मरा हुआ देखा वहाँ निकट ही सिंह के पञ्जों के चिन्ह थे। जब उन्हें प्रसेनजित के पास मणि न मिली तब वे उस सिंह के पंजों के सहारे सहारे ही आगे बढ़े। तब उन्हें सिंह भी मरा हुआ मिला और वहाँ पर रीछ के पैरों के चिन्ह देखे। जो एक गुफा की ओर जा रहे थे। जब वे उस भयङ्कर गुफा के पास पहुँचे तब उन्होंने यादवों से कहा कि तुम लोग यहीं रुको। मैं इस गुफा में प्रवेश कर मणि ले जाने वाले का पता लगाता हूँ। इतना कह कर वे सभी यादवों को गुफा के मुख पर छोड़ कर उस गुफा में घुस गये वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उस प्रकाशवान मणि को रीछ का एक बालक लिये हुये खेल रहा है। तब उन्होंने झट उस मणि को उठा लिया। जब उस जाम्बवान को यह पता चला तब वह अति क्रोधित हुआ और श्रीकृष्ण को मारने के लिये झपटा। उधर से जाम्बवान प्रहार करता और इधर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पत्थर आदि से प्रहार करते। कभी घूँसों कभी लातों से परस्पर युद्ध होता था। इसी भाँति युद्ध करते करते गुफा में अट्ठाईस दिन होगये।

उधर जब यादवों ने देखा कि श्रीकृष्णाचन्द्र नहीं लौटे हैं तब वे उन्हें मरा हुआ समझ कर बारह दिन के उपरान्त वहाँ से चले गये। भगवान् श्रीकृष्णाचन्द्र जी की मार से वह महाबली जाम्बवान अति व्याकुल हो उठा और उसकी नस नस टूट गईं। तब उसने अपने स्वामी रामचन्द्र जी का स्मरण किया उस समय भगवान् श्रीकृष्णाचन्द्र जी ने रामचन्द्र जी के रूप में प्रकट होकर उसे दर्शन दिये। जाम्बवान झट उनके चरणों में गिर गया।

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और बोला—हे भगवन् ! मैंने जाना कि आपने यदुवंश में अवतार लिया है। मैं आपके दर्शन पाकर कृतकृत्य होगया। इतना कह कर उसने भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की प्रसन्नता के लिए अपनी कन्या जाम्बवंती कृष्ण को ब्याह दी और वह मणि उनको दहेज में दे दी।

उधर द्वारिका में जब वसुदेव देवकी आदि ने यह देखा कि हमारे पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र नहीं लौटे हैं तब वे अति ब्याकुल हुए और महामाया दुर्गा की उपासना करने लगे। तब दुर्गा ने प्रगट हो उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पुत्र तुम्हें अवश्य मिलेगा। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाम्ववन्ती के साथ वहाँ आ पहुंचे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने शत्राजित को राजा उग्रसेन के निकट बुलाकर उसे उसकी मणि वापिस कर दी। शत्राजित अपने इस अपराध के कारण अति लज्जित हुआ और पश्चाताप करने लगा। वह हर समय बेचैन रहने लगा कि किस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्र को मैं प्रसन्न करूँ। सचमुच मैं बड़ा नीच हूँ कि मैंने झूँठी चोरी उन्हें लगाई। ऐसा सोच कर वह निरन्तर दुःखी रहने लगा। तब उसने बहुत सोच बिचार कर अपने उस अपराध के क्षमा के लिए अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को ब्याह दी और वह मणि भी उन्हें दहेज में दे दी। किन्तु शरणागत वत्सल भगवान् श्रीकृष्ण ने वह स्यमन्तक मणि नहीं ली और शत्राजित से बोले कि इस मणि को तुम्हीं रक्खो इससे उत्पन्न होने वाले आठ भार सोने का आधकारी राजा है। इसलिए ! तुम नित्य प्रति सोने को ही दे दिया करो। ऐसा कह कर उन्होंने सत्यभामा के साथ विवाह कर लिया।

॥ सत्तावनवाँ अध्याय ॥

स्यमन्तक की चोरी, शतधन्वा का वध तथा अक्रूरजी और कृतवर्मा का द्वारिका छोड़कर भाग जाना।

श्रीशुकदेवजी बोले—वे परीक्षित ! एक समय बलरामजी तथा श्रीकृष्णचंद्र पाँडवों की कुशल क्षेम लेने के लिए हस्तिनापुर गए हुए थे। वहाँ पर उन्होंने भीष्म पितामह, कृपाचार्य, विदुर, गाँधारी, तथा द्रोणाचार्य आदि से मिल कर पाँडवों के प्रति सहानुभूति दुःख आदि प्रकट किये

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

क्योंकि उन सबको यह पता था कि वे लाक्षागृह में जल चुके हैं।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की अनुपस्थिति में द्वारिका में अक्रूर तथा कृतवर्मा को यह अवसर मिल गया। वे शतधन्वा से बोले— अरे तुम ! शत्राजित से मणि क्यों नहीं ले लेते। तुम्हें पता नहीं है कि इस शत्राजित ने अपनी कन्या सत्यभामा जो तुम्हें देना चाहता था वह श्रीकृष्णचन्द्र को दे दी। इसलिए अब तुम इस शत्राजित को मार कर उस की मणि छीन लो। वह शतधन्वा बड़ा पापी और क्रूर बुद्धि था। वह इन दोनों के बहकाने में आ गया और उसने सोते हुए शत्राजित को मार कर मणि ले ली और वहाँ से भाग निकला।

शत्राजित के अन्तःपुर में हा हा कार मच गया। उस समय उसकी पुत्री सत्यभामा हा कृष्ण, हा प्राण प्यारे ! हमारी रक्षा करो ऐसे कहकर रोने चिल्लाने लगी और कभी २ मूर्छित हो जाती। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ईश्वर के भी ईश्वर हैं। उन्हें यह सब कुछ पता था किंतु वे नर लीला कर रहे थे। सत्यभामा रथ पर सवार होकर हस्थिनापुर पहुँची। वहाँ जाकर अपने पिता की मृत्यु का समाचार उन्हें रो रो कर सुनाया और अपने पिता के शत्रु को मारने के लिए उनसे प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी पत्नि को प्रसन्न करने के लिये शतधन्वा के पीछे मारने को दौड़े। और बलराम जी हस्तिनापुर से द्वारिकापुरी चले आये।

जब शतधन्वा को यह पता चला कि मुझे श्रीकृष्णचन्द्र मारने का उद्योग कर रहे हैं। तब वह अपनी प्राण रक्षा के लिये कृतवर्मा की शरण में गया किन्तु कृतवर्मा बोला—अरे मूढ़ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी तथा बलराम दोनों ईश्वर हैं। ऐसा कौन होगा जो उनसे शत्रुता करके जीवित रह सके। यह कार्य मेरी शक्ति से बाहर है। उन्होंने बचपन में ही कंस आदि राक्षसों को मारा है और जरासन्ध जैसे महाबली को सत्रहवार परास्त किया है फिर भला कौन अभागा जान बूझ कर अग्नि में कूदने को प्रस्तुत होगा। तब शतधन्वा वहाँ से निराश होकर अक्रूरजी के पास गया और बोला कि यह कार्य आपही ने मुझसे कराया था। अब मेरी रक्षा कीजिये। तब अक्रूरजी बोले—अरे शतधन्वा ! भगवान् श्रीकृष्ण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चन्द्र साक्षात् भगवान् हैं। वे जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा लय खेल ही खेल में करते रहते हैं। भला उन से शत्रुता करके कौन इस संसार में जीवित रहना चाहता है। उन्होंने खेल ही खेल में गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़ लिया था। जब अक्रूर जी ने इस प्रकार कोरा उत्तर दे दिया तब शतधन्वा उस मणि को अक्रूरजी के पास रख कर एक रथ में सवार हो वहाँ से भाग निकला।

हे परीक्षित्! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी तथा बलराम दोनों रथ पर सवार होकर उस शतधन्वा के पीछे दौड़े और उस शतधन्वा को मिथिला पुरी के निकट एक उपवन में जाकर पकड़ लिया। वह पैदल ही भागा तब उस को पैदल दौड़ते देख कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र भी उसके पीछे पैदल ही दौड़े। तब दौड़ कर उस का सिर चक्र से काट दिया। जब उस मणि को उसके पास न देखा तब वे बोले कि अवश्य ही इसकी मणि द्वारिका में रह गई है। ऐसा कह कर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका को लौट आए और बलराम जी मिथिलापुरी के राजा जनक के यहाँ चले गये। राजा जनक ने बलराम जी का बड़ा सम्मान किया और वे वहाँ पर बहुत दिन रहे। उसी समय बलरामजी ने दुर्योधन को गदायुद्ध की शिक्षा दी थी। भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने द्वारिका में लौटकर शत्राजित से मृत शरीर की क्रिया की।

अक्रूर तथा कृतवर्मा ने शतधन्वा को इस बुरे कार्य के लिये और शत्राजित की हत्या के लिए उत्तेजित किया था। इसलिये वे भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के भय के कारण मणि को लेकर द्वारिकापुरी से भाग गये। अक्रूरजी की अनुपस्थिति में द्वारिकापुरी में अनेक प्रकार के रोग, दुर्भिक्ष अनावृष्टि आदि उपद्रव होने लगे। जिन्हें देख कर द्वारिकापुरी के वृद्ध कहने लगे कि स्वाफलक का पुत्र अक्रूर के न रहने से ही ये सब उपद्रव उत्पन्न हुए हैं। उनको इस बात का पता नहीं था कि यह सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ही प्रेरणा से हो रहा है। किन्तु उन वृद्धजनों की बात का अनुमोदन करके उन्होंने अक्रूरजी की तलाश कर के अपने नगर में बुलवा लिया व उनका बड़ा स्वागत सत्कार किया और अक्रूरजी से

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मीठी वाणी में इस प्रकार बोले—चाचाजी ! वैसे तो आप पहले से ही बड़े भारी दानी हैं किन्तु आप कुछ काल से अब खुले हाथों खूब सोना दान करते हो । यह तो हमें पहले से ही पता है कि शतधन्वा स्यमन्तक मणि आपको ही दे गया है शत्राजित के कोई पुत्र नहीं है उसकी मणि की अधिकारी उसकी कन्या सत्यभामा का पुत्र ही है किन्तु हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है कि वह मणि आपके पास रहे । इसमें सबसे बड़ी बात यह है कि हमारे भाई बलरामजी उस मणि को देखना चाहते हैं। इसलिए आप उस मणि को दिखाकर हमारे भाई बलरामजी, सत्यभामा, जाम्बवन्ती तथा नगर के अन्य जनों को यह विश्वास दिला दो कि वह मणि मौजूद है ।

हे परीक्षित् ! जब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अक्रूर को इस प्रकार समझाया बुझाया तब उसने वह प्रकाशमान मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को निकाल कर दे दी । तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने वह मणि अपने सभी स्वजनों को दिखा कर और अपने मत्थे से कलङ्क का टीका मिटा कर अक्रूर जी को वापिस कर दी ।

हे परीक्षित् ! सर्व शक्तिमान सर्व व्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी यह कथा समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कों को नाश करती है और पूरण कल्याण करती है । जो मनुष्य इसे पढ़ता अथवा सुनता है उसके सब प्रकार के पाप तथा अपयश दूर हो जाते हैं ।

॥ अट्ठावनवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के अन्य विवाहों का वर्णन ।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! पाण्डवों के कुशल पूर्वक लाक्षा-गृह से बचने का हाल सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकि आदि यदुवंशियों के साथ इन्द्रप्रस्थ पधारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के आगमन को सुन कर पाण्डव लोग अति प्रसन्न हुए और एक साथ उठ खड़े हुए । उन वीर पाण्डवों ने उनका आलिंगन किया और बड़े आदर भाव से अपने महलों को ले गये । भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी की मधुर मुस्कान और कृपा दृष्टि ने उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट कर दिए । उन्होंने युधिष्ठिर तथा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भीमसेन के चरण छुए। अर्जुन को कण्ठ से लगाया तथा नकुल सहदेव ने उनके चरणों की बन्दना की। जब भगवान् श्रीकृष्ण चंद्र आनंद से सिंहासन पर विराज गये तब पाँडवों की पत्नी द्रोपदी कुछ लजाती हुई धीरे २ भगवान् श्रीकृष्ण के निकट आईं और उन्हें प्रणाम किया। पाँडवों ने सभी यादवों का सत्कार किया। पाँडवों से मिलकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपनी बूआ कुंती के दर्शनों को गये।। कुन्ती ने अपने भाई माता पिता आदि की कुशल पूछी और प्रेमावेश में गद् गद् होकर अश्रु बहाने लगी। कुंती बोली—हे कृष्ण तुम्हारा प्रेम हम दीनों पर सदा से ही है। तुमने हमारी कुशल मङ्गल लेने के लिये अक्रूरजी को भेजा था। इन अनाथों का तुम्हारे अतिरिक्त और है कौन? तुम्हारे लिये अपना पराया कोईभी नहीं है किंतु फिर भी जो तुम्हें स्मरण करता रहता है उसपर तुम्हारा अनुग्रह विशेष रहता है।

युधिष्ठिर बोले—हे भक्त वत्सल! न जाने हमने कौन से पुण्य कर्म किये हैं जिनके फल स्वरूप आपके दर्शन हुए। भगवान् श्रीकृष्ण सब से भली भाँति आदर सत्कार प्राप्त करके और सम्पूर्ण नगर निवासियों को अपनी रूप माधुरी का आनन्द देकर वर्षा काल के चार मास वहीं पर आनंदपूर्वक व्यतीत किये।

हे परीक्षित्! एक दिन वीर अर्जुन अपने गाँडीव धनुष और अक्षय तरकश तथा कवच पहन रथपर सवार हो भगबान श्रीकृष्णचंद्र के साथ बन में शिकार खेलने को गये। वहाँ पर उन्होंने अनेक वन्य पशुओं को मारा। उनमें से जो पशु यज्ञ के योग्य थे उन्हें सेवकगण पर्व का समय आने पर धर्मराज युधिष्ठिर के निकट ले गये। अर्जुन शिकार खेलते खेलते थक गये थे तब वे यमुना के निकट अपना रथ खड़ा कर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की आज्ञा ले यमुना पर मर्जन, तर्पण तथा जलपान करने को गए। वहाँ पर उन्होंने एक परम सुंदरी कन्या को तपस्या करते हुए देखा। उस सुन्दरी को देख कर अर्जुन ने पूछा—हे सुंदरी! तुम कौन हो? किसकी बेटी हो? कहाँ से आई हो और तुम यहाँ क्या कर रही हो? मैं तो ऐसा जानता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हूँ कि तुम्हारी इच्छा पति प्राप्ति की है। तुम ठीक ठीक मुझे बताओ।

कन्या बोली—मैं सूर्य भगवान् की पुत्री हूँ मेरा नाम कालिन्दी है मैं इसी यमुना नदी में निवास करती हूँ। इसी जल में मेरा महल बना हुआ है। मैं विष्णु भगवान् को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही हूँ। मैं उनके अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बनाना चाहती हूँ। अर्जुन उस कालिन्द्री की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण के निकट गया और कालिन्दी की सारी बातें सुनाईं। भगवान श्रीकृष्ण तो यह सब कुछ पहले ही जानते थे वे कालिंद्री के निकट गये और उसको रथ पर चढ़ाय धर्मराज युधिष्ठिर के निकट ले आये।

तत्पश्चात्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने पाँडवों के रहने के लिए विश्वकर्मा के द्वारा उत्तम भवनका निर्माण कराया। इसी बीच में खाण्डव बनको अर्जुन के द्वारा जलवाने के लिए स्वयं रथ पर सवार हो बन में गए। वहाँ पर अग्नि-देव को सन्तुष्ट करके अग्निदेव के द्वारा गांडीव धनुष, चार सफेद घोड़े, एक रथ, कवच, अक्षय बाणों के दो तरकस प्राप्त किए। खाण्डव वन में मय दानव को जलने से बचा कर उसके द्वारा एक अद्भुत सभा को निर्माण कराया जिसको देख कर दुर्योधन जल गया।

कुछ काल पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र धर्मराज युधिष्ठिर तथा अर्जुन कुन्ती आदि सभी से आज्ञा लेकर द्वारिका को चले आये। वहाँ पर उत्तम समय और पवित्र लग्न में कालिन्दी का पाणिग्रहण किया।

उसी समय उज्जैन देश के राजा विन्दु और अनुविन्द दो भाई थे। वे दुर्योधन के साथी थे। वहाँ जाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनकी बहन मित्र-विंदा को स्वयम्बर में से ले आये। वह मित्रविंदा श्रीकृष्णचन्द्र ही की बूआ राजाधिदेवी की पुत्री थी।

हे परीक्षित्! कौशल देश का राजा नग्नजित् बड़ा धार्मिक था। उसके नग्नजिती सत्या नाम की एक कन्या अति सुन्दरी थी। राजा नग्न-जित ने यह प्रतिज्ञा की थी जो कोई राजकुमार मेरे इन बैलों को एक साथ में ही नाथ देगा उसको मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा। यह समाचार सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी सेना लेकर कौशल देश पहुँचे।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कौशल देश के राजा ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और पूजा की सामिग्री लेकर उन्हें भेंट अर्पण की। जब नग्नजिती सत्या ने यह सुना कि मेरी प्राप्ति के लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पधारे हैं। तब वह अति प्रसन्न हुई और मन ही मन भगवान् से यही मनाने लगी कि मेरे पति ये लीला बिहारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हों। हे परीक्षित! जब राजा नग्नजटित ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की विधिवत् पूजा करली तब वे इस प्रकार बोले—हे प्रभो! आप जगत् के एक मात्र स्वामी हैं आप अपने ही आत्माराम में रमण करते रहते हैं। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुस्कराते बोले—हे राजन्! क्षत्री धर्मानुसार किसी से भी कुछ माँगना उचित नहीं है। विद्वानों ने उसके इस कर्म की निन्दा की है। फिर भी मैं आप से अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आप की कन्या चाहता हूँ। इस के बदले में कुछ देने तथा वीरता दिखाने की कोई प्रथा हमारे यहाँ नहीं है।

राजा नग्नजित बोले—हे भगवन्! आप ही इस जगत के एक मात्र आश्रय हैं। आप के वक्षःस्थल पर श्री वत्स का चिन्ह है आप स्वयं नारायण हैं। आप से बढ़ कर मेरी कन्या के लिए और कौन सा उत्तम वर होगा! किन्तु मैं यह प्रतिज्ञा पहले ही कर चुका हूँ कि जो वीर मेरे इन सात बैलों को एक साथ नाथ देगा उसी के साथ अपनी कन्या का विवाह करूँगा। अब तक मेरी इस प्रतिज्ञा को कोई भी राजकुमार पूरा नहीं कर सका है। जो भी आये वे अङ्ग हीन हो कर अथवा पराजित हो कर यहाँ से चले गए। अब हे लक्ष्मीपति! यदि आप इन्हें नाथ लें तो मेरी कन्या के पति आप ही होंगे।

हे परीक्षित! राजा नग्नजित की ऐसी बात सुन कर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कमर में अपनी फेंट कसली और अपने सात रूप बना कर उन सातों बैलों को खेल ही खेल में नाथ लिया। उन सातों बैलों को एक रस्सी में नाथ कर इस प्रकार खींचने लगे जैसे कोई बालक काठ के खिलौना को खींचता है। राजा नग्नजित ने अति प्रसन्न होकर अपनी रूपवती कन्या सत्या का विवाह श्री कृष्णचन्द्र जी के साथ कर दिया उसने दहेज में

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दस हजार गौएँ, तीन हजार दासियाँ, वस्त्राभूषणों से अलंकृत साथ ही साथ नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े तथा नौ अरब सेवक दहेज में दिये। कौशलराज ने धूमधाम के साथ अपने जामाता को विदा किया।

हे परीक्षित ! जब वे नग्नजित सत्या को लेकर द्वारिका को जा रहे थे तब उन हारे हुए राजाओं ने उनको मार्ग में घेर कर वाणों की वर्षा की उस समय गाण्डीवधारी अर्जुन ने अपने बाणों की नोंक से उन नरपतियों को इस प्रकार खदेड़ दिया जैसे सिंह वन्य पशुओं को खदेड़ देता है। तत्पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र सत्या को लेकर द्वारिकापुरी पहुँच गए।

हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बूआ श्रुतिकीर्ति जो केकय देश में ब्याही थी उसकी कन्या भद्रा थी उसके भाइयों ने स्वयं भद्रा को श्रीकृष्णचन्द्र को ब्याह दी। भद्रदेश के राजा की कन्या लक्ष्मणा को स्वयं अकेले ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हर कर ले आये।

हे परीक्षित ! इसी भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भौमासुर को मार कर सहस्रों परम सुन्दरी कन्याओं से विवाह किया।

॥ उनसठवाँ अध्याय ॥

दोहा—भौमासुर को मार कर, कीन्ह सुरन्ह के काम।
सोलह हजार अरु एक सौ, ब्याही सुन्दर बाम ॥

राजा परीक्षित बोले—हे भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भौमासुर को किस प्रकार मार कर उन सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं से विवाह किया यह कथा मुझे सुनाइये।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! एक समय पृथ्वी ने पुत्र प्राप्ति के लिये ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र इन तीनों की बड़ी कठिन तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर वे तीनों ही श्रेष्ठ वरदायक पृथ्वी के निकट आये। पृथ्वी ने उन से एक महाबली पुत्र प्राप्ति के लिए वर माँगा। तब वे उसे महा प्रतापी पुत्र होने का वरदान देकर चले गए। वह भौमासुर जिसका नाम नरकासुर भी था वरुण का छत्र, अदिति के कुण्डल, देवताओं की मणि छीन कर सार्व भौम सम्राट् बन गया। उसने अपनी प्राग ज्यो-

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तिषपुर राजधानी बनाई। वहाँ पर मुर आदि दैत्यों के साथ बड़े आनन्द पूर्वक रहता था।

हे परीक्षित्! अहंकार वश ही उसका स्वभाव क्रूर था। वह त्रिलोक विजयी था। उसने पृथ्वी के समस्त राजाओं का अति सुन्दरी कन्यायें हर कर अपने यहाँ बन्दीगृह में डाल दी थीं। उसके पराक्रम से घबड़ाकर देवराज इन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण के निकट द्वारिका में गया और उसके वध के लिए उनसे प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामा जो पृथ्वी का ही अवतार थीं उन्हें साथ ले गरुड़ पर सवार हो प्रागज्योतिषपुर पहुँचे। उस प्राग ज्योतिषपुर के चारों ओर पहाड़ों का परकोटा था। उसके अन्दर शस्त्रों का परकोटा था। फिर जल से भरी हुई खाई थी। उसके पश्चात् बिजली का परकोटा था। उसके अन्दर गैस का परकोटा था। उसके भी भीतर मुर दैत्य ने अपना सुदृढ़ जाल फैला रक्खा था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी गदा से उन पहाड़ों को तोड़ डाला और चक्र के द्वारा अग्नि, जल, वायु तथा वाणों की चहार दीवारियों को नष्ट कर दिया। तलवार से मुरदैत्य के फन्दे काट डाले और उसके बड़े बड़े यन्त्रों को भी नष्ट कर दिया तब उन्होंने अपने पाँचजन्य शंख को बजाया। उसकी भयङ्कर ध्वनि सुनकर मुरदैत्य जो जल के अन्दर सो रहा था उसकी नींद टूटी और वह जल के बाहर निकला वह मुरदैत्य पाँच सिरों वाला था। महा तेजस्वी भयंकर तथा दुर्गम था। वह अपना त्रिशूल लेकर भगवान् श्रीकृष्णजी की ओर ऐसा दौड़ा मानों वह निगल जावेगा। उसने वह त्रिशूल गरुड़ जी पर चलाया और अपने पाँच मुखों से सिंहनाद करने लगा। किंतु उस त्रिशूल से गरुड़ जी को कोई पीड़ा न हुई। उन्हें उस का आघात फूल के समान प्रतीत हुआ। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मुरदैत्य के त्रिशूल को गरुड़ की ओर आते देखा तब उन्होंने बड़ी फुर्ती से दो बाण मारे और त्रिशूल के तीन टूँक कर दिये।

तब उस दैत्य ने क्रोधित होकर उन पर गदा चलाई। किंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी गदा से उस की गदा को भी तोड़ दिया। तब वह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दैत्य अपने हाथ और मुख फैला कर उनकी ओर दौड़ा। भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र ने अपने चक्र से उसके पाँचों सिरों को काट दिया। उसके मरने पर मुर दैत्य के सात पुत्र ताम्र-अन्तरिक्ष,श्रवण, विभावसु,नभश्वान तथा अरुण ये क्रोधित होकर युद्ध के लिए दौड़े। इनको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मार गिराया। तब उसकी कन्या भैरवी युद्धके लिये आई। किंतु अम्बिका देवी के समझाने पर वह युद्ध से विमुख होगई। भौमासुर ने जब अपने अनेक २ दैत्यों तथा सेनापतियों को मरा हुआ सुना तब वह स्वयं एक असंख्य सेना लेकर नगर से बाहर निकला। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस महाबली दैत्य को आते हुए देखकर सत्यभामा से कहा कि तुम अपने इस पुत्र को मारने की आज्ञा दो। यह सुन कर सत्यभामा कुछ अनबनी हुई किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के समझाने पर उन्होंने भौमासुर को मारने की आज्ञा दे दी।

हे परीक्षित! भौमासुर के सैनिकों तथा भौमासुर ने जो जो अस्त्र चलाये उन सभी को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने तीन२ टुकड़ों में काट गिराया गरुड़ अपनी चोंच, पङ्ख और पञ्जों से उसकी सेना का संहार करने लगे। जब भौमासुर ने देखा कि मेरी कोई भी विद्या श्रीकृष्ण पर नहीं चल रही है तब उन्हें मारने के लिए उसने एक त्रिशूल उठाया किंतु जब तक वह त्रिशूल चला भी न पाया था कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने चक्र से उसके सुन्दर क्रीट सहित सिर को पृथ्वी पर गिरा दिया। देवता लोग आकाश से पुष्प वर्षाने लगे।

हे परीक्षित! अब पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण के निकट गई। उनकी अद्भुत छटा को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ी और माता अदिति के कुण्डल भी उतार कर उनको दे दिये। साथ ही साथ वरुण का छत्र और एक महामणि भी उन्हें दे दी और हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करने लगी।

हे परीक्षित! जब पृथ्वी ने विनम्र भाव से उनकी स्तुति की तब उन्होंने भौमासुर के पुत्र भगदत्त को अभय दान देकर उसके महल में प्रवेश किया। वहाँ पर सोलह सहस्र एक सौ राज कन्याओं को देखा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वे राजकन्याऐं भी उन्हें देख कर मोहित हो गईं और उन्होंने मन ही मन उन्हें अपना पति बनाने का संकल्प किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन राज कुमारियों को मुक्त कर के सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर पालकियों में बैठा द्वारिका भेज दिया। उन के साथ बहुत सा धन रथ घोड़े तथा एरावत वंश के चार दाँतों वाले चौंसठ हाथी भी द्वारिका भेज दिये।

तत्पश्चात् ! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अमरावती में इन्द्र के महलों में गये वहाँ पर सत्यभामा और इन्द्राणी में परस्पर प्रेमालाप हुआ। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने अदिति के कुण्डल इन्द्र को दे दिये। वहाँ से लौटते हुए नन्दन वन में से इन्द्र का कल्पवृक्ष उखाड़ कर गरुड़ की पीठपर रख लिया। यह देख कर देवराज इन्द्र युद्ध के लिये दौड़ा तब भगवान् उस इन्द्र को पराजित कर के कल्पवृक्ष द्वारिका को ले गए और सत्यभामा के बगीचे में लगा दिया। हे परीक्षित ! ये इन्द्रादि देवता बड़े स्वार्थी होते हैं। जब उनका स्वार्थ होता है। तब वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में सिर नवाते हैं और स्वार्थ निकलने पर उन्हींसे युद्ध ठान लेते हैं। वे बड़े तमोगुणी और धनाढ्यता के गर्व में चूर रहते हैं। इसलिए उन्हें धिक्कार है।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने एक ही लग्न में अलग-अलग भवनों में अपने अलग-अलग रूप बना कर उन सोलह सहस्र एक सौ राज कुमारियों से पाणिग्रहण किया इस भाँति उनकी पत्नियों की संख्या सोलह सहस्र एक सौ आठ थी। वे उनके साथ अपने उतने ही रूप बना कर नित्य निवास करते थे। वे पत्नियाँ सर्वस्व निछावर करके उनकी सेवा में सदा रत रहती थीं। असंख्य दासियों के रहते हुये भी वे स्वयं अपने हाथ से ही उन की सेवा पूजा आदि करती थीं।

—❀—

॥ साठवाँ अध्याय ॥

श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीजी का सम्वाद

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! एक समय लक्ष्मीजी के अवतार स्वरूप रुक्मिणी जी भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की अपनी सखियों के साथ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सेवा कर रही थीं। वे तीनों लोक के स्वामी श्री कृष्णचन्द्र को अपने वश में देख कर प्रसन्न थीं। उनका महल सम्पूर्ण प्रकार के ऐश्वर्यों से भरपूर था। उस में रत्नों की शोभा अलौकिक थी। अगर धूप का धुआँ सर्वत्र वायु को सुगन्धित कर रहा था, झालर चंदोवे आदि अपने-अपने स्थानों पर शोभा दे रहे थे। रुक्मिणीजी स्वयं तीनों लोकों में सुन्दर थीं। उनके घुँघराले अलक, कर्द्धनी, कण्ठ में रत्नों के हार कानों में कुण्डल अति शोभायमान थे। उनकी मधुर मुस्कान अमृत वर्षा रही थी। तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपनी अनन्य प्रेयसी रुक्मिणी जी से मुस्कराते हुए इस प्रकार कहा—श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे राजकुमारी जी! तुम्हारे विवाह के लिए बड़े २ लोक पाल ऐश्वर्यशाली राजा महाराजा इच्छुक थे और तुम्हारे भाई भी उन्हीं को देना चाहते थे। शिशुपाल आदि तो तुम्हारे ऊपर प्राण निछावर करते थे। तब तुमने उन ऐश्वर्यशाली महा प्रतापी राजाओं को छोड़कर मुझे अपना पति क्यों बनाया। मुझ में तुमने क्या अलौकिकता देखी है। हे सुन्दरी! हम जरासन्ध आदि से डर कर इस समुद्र के बीच में रहते हैं और अपनी अनुनय विनय के द्वारा स्त्रियों को भी रिझाने में असमर्थ हैं। जो स्त्री हम जैसे पुरुषों से प्रेम करती है उन्हें दुःख के सिवाय और कुछ नहीं मिलता है। हम दीनों से प्रेम करते हैं और दीन हम से प्रेम करते हैं। इसलिए हे राजकुमारी! तुम को हम दीनों से प्रेम न कर के उन ऐश्वर्यशाली राजाओं से प्रेम करना चाहिये। किन्तु तुमने यह सोच विचार कर कार्य नहीं किया। अब भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा है तुम अपने योग्य किसी भी श्रेष्ठ क्षत्री को वर सकती हो। तुम जानती हो कि शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र तथा तुम्हरा बड़ा भाई रुक्मी मुझ से शत्रुता रखते हैं। केवल तुम्हारे कारण से ही वे हमें शत्रु-मानते हैं। हमें न तो स्त्री की चाह है और न पुत्रादि की है। हम तो आत्मा रमण हैं और इन सब से उदासीन रहते हैं।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! गर्व प्रहारि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणी के गर्व को हरण करने के लिए इस प्रकार अप्रिय वचन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कहकर चुप हो गये। रुक्मिणी जी अपने प्रियतम के ऐसे कटु बचन सुनकर जो कभी नहीं सुने थे अति व्याकुल और भयभीत होकर रोने लगीं। उनके नेत्रों का अंजन बहर कर वक्षःस्थल की केशर को धोने लगा। वे अपना सिर नीचा करके चरण से पृथ्वी को कुरेदन लगीं। उनके हाथका चँवर गिर गया। उनके सभी अलंकार शरीर से खिसक पड़े और वे अचेत होकर केले के खम्भ के समान पलङ्ग से पृथ्वी पर गिर पड़ीं। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने पलङ्ग से उतर कर अपनी चारों भुजाओं से रुक्मिणीजी को उठाते हुए अपने कोमल कर कमलों से उनके अश्रु पोंछ और अपनी अनन्य प्रेम वाली प्रेयसी को छाती से लगाकर इस प्रकार गम्भीर वाणी में बोले—हे रुक्मिणीजी! मैं जानता हूँ कि तुम मेरे अतिरिक्त और किसी के परायण नहीं हो। तुम मुझसे न रूठो। तुम्हारी प्रेम भरी बातों को सुनने की लालसा थी। मैं यह देखना चाहता था कि अप्रसन्न होकर तुम्हारी मुखाकृति कितनी सुन्दर हो जाती है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! जब अपनी प्रियतमा को इस प्रकार समझाया तब रुक्मिणीजी के हृदय का दुःख दूर हो गया।

रुक्मिणी बोली—हे परमगति! आप जो यह कह रहे हैं यह सत्य ही है कि मैं आप अनन्त ऐश्वर्यशाली, गुणवान लक्ष्मीपति के अनुरूप नहीं हूँ। आप तीनों गुणों से रहित ब्रह्म हैं और मैं तीनों से युक्त प्रकृति हूँ फिर भला प्रकृति ब्रह्म के अनुरूप कैसे हो सकती है। आप जो यह कहते हैं कि ये राजा लोग मुझसे शत्रुता करते हैं तो यह ठीक ही है क्योंकि ये राजा तो इन्द्रियों के दास हैं वे सदा विषय वासनाओं में रत रह कर ब्रह्म से बैर रखते हैं। हे भगवन्! जब आपकी आराधना करने वाले भक्त जनों का ही कोई मार्ग स्पष्ट नहीं है तब आपका तो मार्ग स्पष्ट हो ही कैसे सकता है। आप जो यह कहते हैं कि मेरी चेष्टायें अलौकिक हैं जब आपके भक्तों की चेष्टायें ही अलौकिक हैं तब आपकी चेष्टायें अलौकिक होना कौन आश्चर्य की बात है। आप अपने को अकिंचन बतलाते हैं किंतु आपकी अकिंचिन्ता का अर्थ दरिद्रता नहीं है। इसका तात्पर्य तो यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आप ही सर्वस्व हैं। कोई वस्तु आप पास नहीं रखते हैं। आप जो यह कहते हैं कि भिक्षुकों ने मेरी प्रशंसा की होगी यह सत्य है किन्तु वे भीख माँगने वाले भिख मंगे नहीं थे। वे आत्मज्ञानी सन्यासी महात्मा थे जो संसार से विरक्त थे। आप जो यह कहते हैं कि मैंने आपको वरण करके अदूरदर्शिता की है। मैंने जान बूझकर ही ब्रह्मा, देवराज इन्द्र, शङ्कर आदि देवों को त्याग दिया है क्योंकि मैं जानती हूँ कि वे सब काल के गाल में जाने वाले हैं। केवल आपही काल रहित हैं। फिर शिशुपाल जरासन्ध दंतवक्र की तो बात ही क्या है।

हे प्रभो ! आप यह कहते हैं कि हम लोग राजाओं से डर कर समुद्र में आ छिपे हैं सो यह बात कभी नहीं है। क्योंकि मैंने आपकी वीरता अपने हरण के समय देखली थी। आपके बाँणों की चोट से सभी राजा लोग इस प्रकार भाग निकले थे जिस प्रकार सिंह को देखकर गीदड़ भाग जाते हैं। हे प्रभो ! आप कहते हैं कि मेरी शरण में रहने वालों को कष्ट ही कष्ट मिलते हैं तो मैं आपसे यह पूछती हूँ कि भरत ययाति पृथु आदि राजाओं ने क्या कष्ट ही उठाये हैं। आपके दर्शन प्राप्त करके उन्हें सर्वानन्द की प्राप्ति हुई। आप जो यह कहते हैं कि किसी दूसरे राजकुमार का वरण करलो तो जिनके चरणों के मकरन्द रस का पान ब्रह्मा, शंकर तथा बड़े बड़े योगीजन करके निहाल होते रहते हैं भला ऐसे चरणारविंद के मकरन्द रस को एक बार पान करके ऐसी कौन सी अभागिन स्त्री होगी जो उसे त्याग देगी। में आप की शरण में हूँ। वे शिशुपाल आदि तो अभागिनी स्त्री के ही पति हो सकते हैं। जिसके कानों में एक बार आपकी लीला कथा प्रवेश कर चुकी है ऐसी स्त्री के पति वे कदापि नहीं हो सकते। हे भगवान् ! बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो एक पति के साथ विवाह होने पर अन्य पतियों की भी लालसा करती हैं जिसप्रकार काशीराज की कन्या अम्बा थी। वे कुलटा होती हैं और उनके साथ विवाह करने वाला पुरुष इस लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्रिये ! मैंने हँसी हँसी में ही तुम्हारे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मुख से ऐसे बचन सुनने के लिए ही ये बातें कहदी थीं। यह बिल्कुल सत्य है कि तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो। तुम मुझ से अनन्य प्रेम करती हो। यदि ऐसा न होता तो तुम मुझे बिवाह से पहले सन्देश भेज कर क्यों बुलातीं। हे प्रिये! मैं मोक्ष का स्वामी हूँ और मनुष्यों को इस भव-सागर से पार करता हूँ। जो कामी पुरुष सकाम भाव से मुझे भजते हैं वे केवल विषय सुख ही प्राप्त करते हैं और जो निष्काम भाव से मुझे भजते हैं वे मेरे अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। हे मानिनी! मुझे अपनी समस्त पत्नियों में तुम सब से अधिक प्रिय हो। जब तुमने मेरे आने की प्रतीक्षा में सूख-सूख कर अपने शरीर को काँटा बना दिया था और जब मैं ठीक समय पर नहीं पहुँचा तो तुम बेचैन होगई थीं और फिर समस्त राजाओं की उपेक्षा करके मेरे साथ चली आईं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आत्माराम हैं और रुक्मिणीजी उनकी अचिन्त्य शक्ति लक्ष्मी रूप हैं। वे अपनी पत्नियों के साथ मनुष्यों की सी लीला करते हुए आनन्द विहार करते रहते हैं।

—:❁:—

॥ इकसठवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सन्तति का वर्णन

दोहा—यदुपति सुत वर्णन करूँ, रुक्मिनि पति शिर नाय।
इक लख इकसठ सहस अरु, अष्टादस सब भाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की सब पत्नियों के दस २ पुत्र हुए। वे सभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के समान रूप, बल और गुण आदि में थे। उनकी सभी पत्नियाँ यही समझती थीं कि उनके पति उन के ही समीप सदा रहते हैं। वे अपने हाव भाव श्रृङ्गार आदि हास्य बिलास से उनके मन को अपनी ओर आकर्षित करने में लगी रहतीं। किन्तु सदा असफल रहतीं उन्हीं का मन भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र में खिंचा रहता था। वे उन आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मन को कभी चंचल नहीं कर पातीं अनन्त दासियाँ होने पर भी वे पत्नियाँ उन्हें जब वे महलों में आते तब आगे से जाकर सम्मान सहित लिवा कर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ले जातीं उनके लिए आसन बिछातीं उनकी पूजा करतीं उनके चरण पखारतीं। उन्हें ताम्बूल खिलातीं। चन्दन इत्र फुलेल आदि लगातीं। पुष्पों के हार पहनातीं। पाँव दबा कर पंखा झलतीं। उनके केश सम्हारतीं तथा उन्हें स्नान करातीं और अपने ही हाथों से उन्हें भोजन कराती थीं।

हे परीच्छित! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के आठ पटरानियाँ थीं और सोलह हजार एकसौ रानियाँ थीं। इस प्रकार मिलाकर सोलह सहस्र एकसौ आठ रानियों के साथ वे नित्य बिहार करते थे। अब मैं उनके पुत्रों का वर्णन सुनाता हूँ। रुक्मणी जी के गर्भ से—प्रद्युम्न चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द, विचारु तथा दसवाँ चारु। सत्यभामा के पुत्र भानु, सुभानु, स्वर्भान, प्रभान, भानुमान, चन्द्रभान, वृहद्भान, अतिभान, श्रीभान, प्रतिभान। जामवन्ती के पुत्र—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजत, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, बसुभान, द्रविण तथा क्रत। नग्नजिती सत्या के पुत्र—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु वेगवान, वृष, आम, शंकु, वसु तथा कुन्ति। कालिन्दी के पुत्र—श्रुत, काव, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र शान्ति, दर्श, पूर्णमास तथा सोमक। लक्ष्मणा के पुत्र घोष, गाजवान, सिंह, बल, प्रबल दुर्गध्वज, महाशक्ति, सह, ओज तथा अपराजित। मित्रविंदा के पुत्र—वृक, हर्ष, अनिकगृह, वर्धन, अन्नाद, महरस, पावन, बन्हि तथा क्षुधि। भद्रा के पुत्र-संग्रामजित, वृहत्सेन, शूर, प्रहाण, अरिजित, जय, सुभद्र, वायु आयु, तथा सत्यक।

हे परीच्छित! उनकी सोलह सहस्र एक सौ पत्नियों के भी इसी भाँति उनके पुत्र हुए। प्रद्युम्नजी के मायावति रति के अतिरिक्त भोजकट के राजा रुक्मी की पुत्री रुक्मावती पत्नी थी। उस रुक्मावती के गर्भ से परम तेजस्वी अनिरुद्ध जी का जन्म हुआ। इस भाँति भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के पुत्रों की संख्या एक लाख इकसठ हजार अस्सी थी। और नाती पोतों को मिला कर एक करोड़ से अधिक थी।

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन्! वह रुक्मी तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से शत्रुता रखता था फिर उसने अपनी पुत्री रुक्मावती प्रद्युम्न जी को क्यों कर ब्याह दी।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

...igitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! प्रद्युम्न जी साक्षात् कामदेव के अवतार थे। उनके रूप लावण्य को देख कर रुक्मी की पुत्री रुक्मावती ने स्वयं उन्हें वर माला पहना दी थी। तब प्रद्युम्न जी बल पूर्वक रुक्मावती को युद्ध में जीत लाये। उधर रुक्मी ने भी रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए इस विवाह सम्बन्ध में कोई विघ्न न डाला रुक्मिणी जी के दस पुत्रों के अतिरिक्त एक अति सुन्दरी कन्या भी थी। उसका नाम चारुमती था। जिसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली के साथ कर दिया था।

हे परीक्षित ! उस रुक्मीने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह अपनी बहन रुक्मिणी जी के पौत्र अनिरुद्ध के साथ कर दिया। यद्यपि वह रुक्मी यह जानता था कि इस प्रकार के विवाह सम्बन्ध अनुचित हैं किन्तु फिर भी रुक्मिणीजी को प्रसन्न करने के लिए उसने ऐसा करदिया। उस विवाह में बलराम जी, श्री कृष्णचन्द्र जी तथा अन्य सभी उनके बन्धु यादवगण भोजकट गये थे। वहाँ पर विवाह कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् रुक्मी के अनुयायी कुछ राजा लोगों ने चौसर बिछा दी। वे राजा लोग यह जानते थे कि बलराम जी चौसर खेलना नहीं जानते लेकिन उन्हें शौक अधिक है। झट बलरामजी को बुलाय एक ओर चौसर पर बैठाल दिया। और दूसरी ओर रुक्मी बैठा। बलराम जी पहले सौ फिर हजार फिर दस हजार मुहरों का दाव क्रमशः लगाने लगे। रुक्मी ने उन सब को जीत लिया। तब कलिङ्ग देश के राजा दाँत निकाल २ कर बलराम जी की हँसी उड़ाने लगे। बलराम जी कुछ चिढ़ गये। और उन्होंने एक बड़ा दाव लगाया इस पर रुक्मी ने एक लाख मुहर दाव पर रक्खीं। बलराम जी ने उस दाव को जीत लिया किन्तु रुक्मी बोला कि इस दाव को मैं जीता हूँ और उसके अनुयायी राजाओं ने भी रुक्मी की ही जीत बताई। यह देख कर बलराम जी को बड़ा क्रोध आया और उनके लाल लाल नेत्र आग उगलने लगे। तब बलराम जी ने दस करोड़ मुहरों का दाव लगाया। और बलराम जी जीत गये किन्तु धूर्तता वश रुक्मी बोला कि मैं जीता हूँ और इस का निर्णय कलिङ्ग देश के राजा लोग

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करेंगे किन्तु उसी समय आकाश वाणी हुई कि यह दाव बलराम जी ने जीता है। आकाश वाणी को सुन कर भी रुक्मी तथा उसके साथी राजा लोग अपनी ही जीत बताने लगे—। इस पर बलराम जी अतिकुपित हो गए। फिर भी रुक्मी बोला—अरे बलराम जी! तुम तो बन बन में गाय चराने वाले ग्वालिये हो। तुम इस द्यूत कर्म को क्या जानो। पाशों तथा पाणों के खेल तो राजा लोग ही खेलते हैं तुम जैसे नहीं। हे परीक्षित! उस रुक्मी तथा उसके अनुयायी राजा लोगों का काल हो सिर पर मडरा रहा था। झट बलराम जी ने एक मुगद्र उठा कर उसी सभा में रुक्मी को मार डाला। उसके अनुयायी राजा लोग भागने लगे किन्तु सब को पकड़ कर बलराम जी ने वहीं यमलोक भेज दिया। रुक्मी का वध देख कर श्रीकृष्णचन्द्र जी चुप हो गए। क्योंकि यदि उसे बुरा बताते हैं तो बलराम जी रुष्ट होते हैं और उसे अच्छा बताते हैं तो रुक्मिणी जी रुष्ट होती हैं इसलिए उन्होंने उसको न बुरा कहा न भला कहा। अनिरुद्ध जी का विवाह और शत्रु का वध दोनों काम हो जाने से वे प्रसन्न ही हुए। तत्पश्चात् दुलहिन रोचना को अनिरुद्ध जी के साथ लेकर भोज कट नगर से द्वारिका को चले आये।

॥ बासठवां अध्याय ॥

ऊषा अनिरुद्ध विवाह

दोहा—ऊषा ने अनिरुद्ध को, देखा सपने माहिं।
वाणासुर से युद्ध करि, लाये ऊषा ब्याहि॥

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन्! वाणासुर की पुत्री ऊषा ने अनिरुद्ध जी का किस प्रकार वरण किया और मैंने सुना है कि उस विवाह में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और शंकर जी का घोर संग्राम हुआ। यह वृत्तान्त मुझे विस्तार पूर्वक सुनाने की कृपा करें।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! दानवीर राजा बलि के सौ प्रतापी पुत्र थे। उनमें वाणासुर सब से बड़ा था। वाणासुर ने भगवान् शंकर की बड़ी कठिन तपस्या की थी। उनके ताण्डव नृत्य के समय अनेक बाजे बजा कर उनको प्रसन्न कर लिया था। भगवान् शंकर तो अवढर दानी

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funded by IKS

और शरणागत वत्सल हैं। उसने भगवान् शंकर से एक सहस्र बाहु तथा अपार बल प्राप्त कर लिया।

एक समय वह बाणासुर अपने बल के अहंकार में चूर होकर शंकर जी के निकट गया और बोला—हे चराचर जगत् के ईश्वर! मैं आप को नमस्कार करता हूँ! आप सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। आप ने मुझे सहस्र बाहु देकर केवल एक भाररूप ही प्रदान किया है इसके बोझ से मैं बड़ा दुखी होरहा हूँ। इनसे लड़ने वाला आपके अतिरिक्त इसत्रिलोकी में कोई भी नहीं हैं। एक बार इनमें सुलसुलाहट उठी थी तब तो मैंने इन भुजाओं से पर्वतों का चूरण बना दिया था अब इनकी खुजलाहट मिटाने वाला कोई नहीं है। बाणासुर को ऐसी अहंकार भरी बात सुनकर शंकर जी को कुछ क्रोध आया और वे बोले—हे मूर्ख! अब तू चिन्ता न कर शीघ्र ही तेरे मद को चूर्ण करने वाला उत्पन्न होने वाला है। जब तेरे महल की ध्वजा गिरजावे तभी समझ लेना कि तेरा शत्रु उत्पन्न होगयाहै। उस मूर्ख बाणासुर की यह बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अपने नगर को चला आया।

हे परीक्षित! उस बाणासुर के ऊषा नाम की कन्या थी वह अति सुन्दर और शीलवान थी। जब वह कुमारी ही थी तब उसने स्वप्न में परम सुन्दर अनिरुद्धजी को अपने साथ समागम करते हुए देखा। उसकी आँखें खुल गई और वह उनके प्रेम में ऐसी उन्मत्त हो गई कि बोली—हे प्राण बल्लभ! तुम कहाँ हो। इसी भाँति ऊषा उन्हीं के स्मरण में उदास रहने लगी।

एक दिन उसकी प्यारी सहेली चित्रलेखा ने उनकी उदासी का कारण पूछा तो उसने स्वप्न का सारा हाल सुनाया यह सुन कर उस चित्रलेखा ने जो चित्र बनाने में बड़ी प्रवीण थी और योग विद्या भली प्रकार जानती थी चित्र बना कर उसने ऊषा को दिखाये। उसने देवता, सिद्धि, गन्धर्व, नाग किन्नर, यक्ष, राक्षस तथा मनुष्य सभी के चित्र बनाये। किंतु ऊषा को वह स्वप्न में मिलने वाला प्रीतम दृष्टि न आया। तब उस चित्रलेखा ने यदुवंशियों के चित्र बनाना आरम्भ किया उसने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

शूरसेन, बसुदेव, बलराम तथा श्री कृष्णचन्द्र के चित्र बनाये। जब उसने प्रद्युम्नजी का चित्र बनाया तब वह चित्रलेखा कुछ लज्जित हुई और जब उसने अनिरुद्ध जी का चित्र बनाया तब वह बोली—हाँ हाँ यही मेरा चित चोर है।

हे परीक्षित्! ऊषा के यह बचन सुनकर चित्रलेखा बोली—हे बहन! इनका मिलना तो बड़ा कठिन है क्योंकि यह नर-रत्न यदुवंशियों में श्रेष्ठ भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी का पौत्र है और द्वारिकापुरी उनके चक्र के द्वारा सुरक्षित रहती है। वहाँ पर मनुष्य की तो बात ही क्या पवन भी प्रवेश नहीं कर सकता है। किंतु हे बहन! मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए सब कुछ करूँगी। ऐसा कह कर वह चित्रलेखा साधु का वेष बना रात्रि में ही द्वारिका में प्रवेश कर गई क्यों कि साधु ब्राह्मण तथा गौ इन तीनों को चक्र नहीं रोक सकता था यह भगवान् की आज्ञा थी। चित्रलेखा पलङ्ग सहित अनिरुद्ध जी को उठा लाई और ऊषा के महलों में पहुँचा दिया। अनिरुद्ध जी के रूप लावण्य और सौन्दर्य को देखकर ऊषा अपने मन में फूली नहीं समाई। वह उनके पैरों की तरफ पलङ्ग पर बैठ कर उनके जगने की प्रतीक्षा करने लगी। जब अनिरुद्धजी जगे तो उन्होंने देखा मैं कहाँ पर आगया हूँ। अपने निकट परम सुन्दरी लजीली चितवन से उनकी ओर देखते हुए एक सुकुमारी को देखा। उन्होंने झट उसका हाथ पकड़ कर अपने पलङ्ग पर बैठा लिया और बोले-हे सुन्दरी! तुम कौन हो और मैं कहाँ आगया हूँ? तब ऊषा ने उन्हें सारा हाल सुनाया। यह सुनकर अनिरुद्धजी अति प्रसन्न हुए और वहीं महलों के अन्दर रह कर ऊषा के साथ बिहार करने लगे।

हे परीक्षित्! अनिरुद्ध जी के सङ्ग से ऊषा का क्वारपन नष्ट हो गया था। उसके शरीर पर तथा उसके हाव भाव में कुछ विचित्रता के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। तब महल के पहरेदारों ने यह बात देख कर बड़ी शंका की और बाणासुर से जाकर कहा—हे राजन्! आप की राजकुमारी की चाल ढाल से प्रतीत होता है कि कोई मनुष्य महलों में उनके साथ सहवास करता है। हम लोग बड़ा कठिन पहरा रखते हैं

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

किन्तु फिर भी यह पता नहीं कि वह कलंकित किस प्रकार हो गई। पहरेदारों की यह बात सुन कर बाणासुर ने अपने महल की ध्वजा को देखा तो वह भी गिरी हुई देखी तब उसे निश्चय हो गया कि कोई मेरा शत्रु ही ऊषा के महल में प्रवेश कर गया है। उसने झट पट अपनी सेना लेकर ऊषा के महल में प्रवेश किया तो वहाँ पर बेखटके अनिरुद्धजी को पलङ्ग पर बैठे देखा और उनके निकट ही सामने ऊषा बैठी थी। इन साँवले सलौने अनिरुद्ध जी जो कि पीताम्बर पहने थे कमल के समान बड़े बड़े नेत्र थे, लम्बी-लम्बी भुजायें, झिलमिलाते हुए कुण्डल तथा प्रेम की चितवन और मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त उस पुरुष को देख कर बाणासुर अति क्रोधित हुआ। तब बाँणासुर को अपने सामने देख कर अनिरुद्ध जी भी युद्ध के लिये प्रस्तुत होगए और उन्होंने लोहे के एक भयङ्कर मुगद्र को उठा लिया बाँणासुर के आये सभी सैनिकों को अनिरुद्ध जी ने मार डाला तब बाणासुर ने उन पर नाग पाश प्रयोग किया। उस नाग पाश में उन्हें बाँध कर उसने उन्हें बन्दी बना लिया। यह देख कर ऊषा अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और अति शोकित होकर आँसू बहाने लगी।

॥ तिरेसठवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और वाणासुर का युद्ध।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! द्वारिका में अनिरुद्धजी के इस प्रकार पलङ्ग सहित उठा ले जाने पर शोक और रंज छा गया। सभी यादव गए इधर उधर उनकी खोज लगाने लगे। इस भाँति बरसात के चार मास व्यतीत हो गये किन्तु अनिरुद्ध जी का कहीं पता न चला।

एक दिन नारद जी वहाँ घूमते हुए जा निकले और उन्हें अनिरुद्ध हरण, ऊषा मिलन तथा वाणासुर के यहाँ बन्दी होने का सारा वृतान्त कह सुनाया। यह सुन कर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बलराम जी, प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब आदि सभी वीर गण बारह अक्षौहिणी सेना सजाकर बाणासुर के नगर शोणितपुर में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने नगर को चारों ओर से घेर लिया। वहाँ के उद्यान, परकोटे बुर्ज आदि को नष्ट

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

करने लगे। शत्रु का आक्रमण सुनकर बाणासुर भी अपनी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगर से बाहर निकला। उसकी सहायता के लिये भूतनाथ भगवान् शङ्कर, भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस आदि को लेकर रणभूमि में आये। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी शङ्कर जी के सामने आये। प्रद्युम्न जी स्वामी कार्तिकेय से भिड़ गये। बलरामजी कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण राक्षसों से भिड़ गये। बाँणासुर के पुत्र के साथ साम्ब तथा बाणासुर से सात्यिक जा भिड़े। दोनों ओर से भयंकर बाणों की बौछार होने लगी। ब्रह्मा तथा शङ्कर के भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने तीक्ष्ण बाणों से शंकर जी के सभी अनुचरों, भूत, प्रेत, वैताल आदि सब को खदेड़ कर भगा दिया। बलरामजी ने कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण को मार डाला। शंकरजी ने जो भी अस्त्र प्रयोग किये उन सबको ब्रह्मास्त्र से ब्रह्मास्त्र को वायुव्यास्त्र से पर्वतास्त्र को आग्नेयास्त्र से परिजन्यास्त्र को तथा पशुपतास्त्र को नारायणास्त्र से नष्ट कर दिया।

जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भगवान् शंकर जी पर जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया जिससे शङ्कर जी को जम्भाई आने लगी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शङ्कर जी से छुट्टी पाकर बाणासुर की सेना का संहार करने लगे। स्वामी कार्तिक भी प्रद्युम्न जी के द्वारा घायल हो गये। वे युद्ध क्षेत्र छोड़ कर भाग निकले। इस प्रकार बाणासुर की सारी सेना नष्ट हो गई। जब बाँणासुर ने अपनी सेना को भागते देखा तब वह सात्यिक को छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रजी के सन्मुख आया और वह अपने एक हजार हाथों में पाँचसौ धनुष लेकर उन पर बाणों की वर्षा करने लगा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने एक बाण से बाणासुर के सभी धनुष, उसका सारथी रथ, तथा घोड़ों को नष्ट कर दिया और फिर अपने भयकर शंख की ध्वनि की। हे परीक्षित्! जब बाणासुर इस प्रकार युद्ध में व्याकुल हो उठा तब उसकी सहायता के लिए उसकी माता कोटरा आई और राक्षसी बाल बिखेर कर नङ्ग धड़ङ्ग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख खड़ी हो गई। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस पर दृष्टि न डालने के लिए अपना मुँह उधर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

से फेर कर पीठ कर ली। तब वाणासुर नगर में जाकर अपना रथ और अस्त्र शस्त्र ले आया। तब भगवान् शंकर ने अपना शीतज्वर छोड़ा। वह ज्वर दशों दिशाओं को जलाता हुआ श्रीकृष्णचन्द्र जी की ओर आया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपना विषमज्वर छोड़ कर उस ज्वर को भयभीत कर दिया। वह ज्वर विषमज्वर से भयभीत होकर भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में आया और उनसे अभयदान लेकर चला गया। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने चक्र से वाणासुर के हाथों को इस प्रकार छाँट दिया जैसे कोई वृक्ष की शाखा को छाँट देता है। केवल उसके चार हाथ रहने दिये। भगवान् शंकर ने यह देखा तब उन्होंने वाणासुर को समझाया। अरे मूढ़! ये ईश्वर के भी ईश्वर हैं और मेरे भी ईश्वर हैं। तब तुम्हारी तो गिनती ही क्या है तुम अब इनकी शरण में जाकर अपना अपराध क्षमा कराओ। ऐसा कह कर भगवान् शंकर वाणासुर को साथ ले भगवान् की शरण में गये और बोले—

हे देवाधिदेव! इस बाणासुर को अपने बल का घमंड था। उसी अहंकार को चूर्ण कर के आपने मेरे शाप को पूरा किया है। अब यह आपकी शरण में है। यह मेरा परम प्रिय भक्त है। इसलिये इसे अभयदान देकर अपने कर कमलों को इसके शिर पर रख दीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले–हे शंकर जी! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही होगा। मैं इसे निर्भय किये देता हूँ। मैंने पहले ही भक्त प्रहलाद को यह वर दिया था कि मैं तुम्हारे किसी भी वंशज को नहीं मारूँगा। इस का अहंकार नष्ट करने के लिये ही मैंने इस की भुजायें काट दी हैं। यह इसकी चार भुजाएँ अजर अमर रहेंगी। और यह वाणासुर आपका मुख्य पार्षद रहेगा। अब यह निर्भय है। तब बाणासुर ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपनी पुत्री ऊषा और अनिरुद्ध जी को एक श्रेष्ठ रथ में चढ़ा कर उन्हें समर्पण किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पौत्र तथा पौत्र बधू को लेकर अपनी बची हुई एक अक्षौहिणी सेना को लेकर द्वारिका में आये।

हे परीक्षित! जो पुरुष प्रातः काल उठ कर भगवान् शंकर जी के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

साथ भगवान् श्रीकृष्ण के युद्ध और उनकी कथा का स्मरण करता है उसकी सदा विजय होती है ।

॥ चौंसठवाँ अध्याय ॥

राजा नृग की कथा

दोहा–महादानी राजा नृग, देते गौ नित लच्च ।
ब्रह्म शाप हित नृपति नृग, गये गिरगिट की कुच्च ॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे परीच्चित् ! एक समय यदुवंशियों के कुछ बालक खेलते खेलते द्वारिका के एक उपवन में चले गये । वहाँ पर प्यास के कारण उन्होंने एक कुए में उझक कर देखा तो उस कुए में एक विचित्र जन्तु उलटा लटक रहा था । उन्होंने रस्सों तथा काँटों के द्वारा उसे बाहर निकालने का बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु वह इतना भारी था कि वे उसे निकालने में असमर्थ रहे । उन लोगों ने यह आश्चर्य जनक घटना भगवान् श्री कृष्णचन्द्र से कही । वे उसी च्चण उस कुए पर आये और उस विशाल गिरगिट को खेल ही खेल में बाहर निकाल लिया वह उनके कर कमलोंका स्पर्श पाते ही एक दिव्य पुरुष हो गया ।

हे परीच्चित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सब कुछ जानते हुए भी सांसारिक लोगों को जताने के लिए उससे पूछने लगे कि तुम कौन हो किस अपराध से तुमने यह योनि पाई है । हे परीच्चित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उस राजा नृग से इस प्रकार पूछा तब वह उनके चरणों में प्रणाम करके बोला–हे भगवन् ! मैं महाराज इच्वाकु का पुत्र हूँ । मेरा नाम नृग है। दानियों का स्मरण करते समय मेरा नाम आपने अवश्य सुना होगा । कोई पृथ्वी के कण गिन सकता है । आकाश के तारे गिन सकता है वर्षा की बूदें गिन सकता है । किन्तु मेरे दान की हुई गौओं की संख्या कोई नहीं गिन सकता है । मैंने सोने में सींग मढ़ाय रूपे के खुर पाटम्बर उढ़ाय दूध वाली असंख्यों गौएँ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान की हैं सोना चाँदी पृथ्वी रत्न आदि की तो कोई शुमार ही नहीं है। एक समय एक दान न लेने वाले ब्राह्मण की गौ खुल कर मेरी गौओं में आ मिली मैंने उस गौ को भूल से एक दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। जब वह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ब्राह्मण अपनी गौ ले जा रहा था तभी उस गौ का स्वामी मार्ग में उसे मिल गया। और वह बोला कि यह गौ मेरी है। वह ब्राह्मण बोला कि यह गौ मैं अभी राजा नृग के यहाँ से दान में लाया हूँ। तब वह ब्राह्मण बोला कि यह मेरी है तुम झूँठ बोलते हो इस भाँति दोनों में झगड़ा होने लगा और वे दोनों मेरे निकट आये। तब मैंने हाथ जोड़ कर सिर नवाय उन ब्राह्मणों से प्रार्थना की कि यह अपराध मुझ से अनजान में हुआ है इस गाय के बदले तुम में से कोई मुझसे एक लाख गाय ले लो किन्तु उस गाय का स्वामी बोला कि मैं तो अपनी गाय ही लूँगा। और दान में प्राप्त करने वाला ब्राह्मण बोला कि एक लाख के साथ यदि तुम दस हजार गाय और भी दो तो भी मुझे नहीं लेनी है। मैं तो यही गाय लूँगा दान दी हुई वस्तु लौटाई नहीं जा सकती है।

इस भाँति वे दोनों ब्राह्मण लड़ झगड़ कर बिना किसी फैसले के उस गाय को छोड़ कर चले गये। मैं यह देख कर अति उदास हुआ। उसी काल मुझे मृत्यु ने आ घेरा और मैं धर्मराज के यहाँ पहुँचा तब धर्मराज ने मुझे उत्तम आसन देकर कहा—हे दानियों में श्रेष्ठ नरपति तुम्हारा दान अधिक है और पाप कम है बोलो पहले पाप भुगतना चाहते हो अथवा पुण्य। तब मैंने पाप को ही पहले भोगना उत्तम समझ कर अपने पाप को भोगने के लिये कहा। धर्मराज की आज्ञानुसार उसी समय से मैं गिरगिट हो गया हूँ। हे प्रभो ! ब्राह्मणों का भक्त होने के कारण मुझे आज आपके दर्शन हुये हैं और अब मैं आपके उत्तम लोकों को जाता हूँ। इस प्रकार कह कर राजा नृग एक उत्तम विमान में चढ़ स्वर्ग लोक को चले गये।

राजा नृग के चले जाने के पश्चात् भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने वहाँ उपस्थित अपने कुटुम्बी जनों से कहा—हे प्रिय बन्धुओ ! ब्राह्मणों के धन को अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी नहीं पचा सकते हैं। विष को पचा लेना आसान है उसका इलाज है किन्तु ब्राह्मण का धन किसी प्रकार भी नहीं पचाया जा सकता है। उससे जो अग्नि उत्पन्न होती है वह सारे कुल को नष्ट कर देती है जो बल पूर्वक ब्राह्मणों के धन को हड़प

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ता है उसकी दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणों के अधिकार को छीनता है वह राजा कुम्भीपाक नरक में गिरता है। जो ब्राह्मण की आजीविका छीनता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा का कीड़ा बनता है। इसलिये मेरे कोष में ब्राह्मणों का धन भूल से भी न जाना चाहिये। इस भाँति अपने सभी कुटुम्बियों को समझा कर और उन्हें उपदेश देकर अपने महलों को चले गए।

॥ पैंसठवाँ अध्याय ॥

बलरामजी का ब्रज गमन।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी अनेक राजाओं को परास्त करके सुख पूर्वक द्वारिका रहने लगे तब उन्हें एक दिन ब्रज की याद आई। तब बलराम जी श्री कृष्णचन्द्र से आज्ञा लेकर एक सुन्दर रथ पर सवार हो ब्रज की ओर चले। बलरामजी को ब्रज में आया हुआ देखकर नन्द यशोदा माता तथा ब्रज गोपियाँ और गोप ग्वाल सभी आनन्दित हुये। बलराम जी ने माता यशोदा और नन्दजी के चरण छूये तथा समस्त गोप ग्वालों को अपने कण्ठ से लगाया।

इस भाँति बलरामजी के समागम से सभी ब्रजबासी आनन्द विभोर हो उठे। जब बलरामजी भोजन आदि से निवृत हो स्वस्थ्य होकर बैठे तब नन्द यशोदा ने अपने प्रिय वसुदेव देवकी तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के विषय में कुशल मङ्गल पूछा। वे बोले—हे बेटा! अब तुम बाल बच्चेदार हो गये हो क्या कभी हमारी भी याद करते हो। यह बड़े आनन्द की बात है कि तुम अपने अनेकों शत्रुओंको पराजित करके आनन्द पूर्वक रहतेहो। हे परीक्षित! बलराम जी के दर्शन पाकर ब्रज की समस्त गोपियाँ ने विरह ताप को भूल गईं और उन्हें देख कर निहाल हो गईं। पूछने लगीं—हे बलराम जी! हमारे प्राण वल्लभ श्री कृष्ण तो सकुशल हैं। अब वे हमारा स्मरण क्यों करते होंगे। उन्हें क्या कभी अपने माता पिता की भी याद नहीं आती है। हमने जिन श्रीकृष्णचन्द्र के

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Foundation

लिए अपने माता पिता बन्धु बान्धवों को त्याग दिया वे इस प्रकार हम को त्याग कर चले गए हम चाहतीं तो उन्हें रोक लेती किन्तु जब उन्होंने यही कह दिया कि हम लोग तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकते हैं तब फिर कौनसी स्त्री होगी जो उनकी इन मीठी मीठी बातों पर विश्वास न करले।

एक गोपी बोली—हे बलराम जी ! हम तो गँवार ग्वालिनें थीं जो उनकी इन मीठी २ बातों में आगई किन्तु वे नगर की चतुर स्त्रियाँ उनकी इन बनावटी बातों में नहीं आती होंगी। दूसरी गोपी बोली—नहीं सखी! वे कृष्ण अपनी मीठी मीठी बातों में सभी को फँसा लेते हैं। तीसरी बोली—अरी ! हमें इन बातों से क्या मतलब जब इतना समय उन के बिना काट लिया है तो यह शेष समय भी उनकी विरह व्यथा में बीत ही जावेगा।

हे परीक्षित! गोपियों की ऐसी कटु प्रिय बात सुनकर बलराम जी ने उन्हें सान्त्वना दी और बसन्त ऋतु का चैत्र तथा वैसाख उन्हीं के साथ व्यतीत किया। वे उन गोपियों के साथ आनन्द पूर्वक चन्द्रमा की छिटकी हुई चाँदनी में यमुना के उपवनों में विहार करते। बलराम जी को आनन्दित करने के लिये वरुण ने अपनी पुत्री वारुणी को भी उनके पास भेज दिया था। वह एक वृक्ष में से फूट निकली और उसकी सुगन्धि से सारा बन भर गया। तब बलरामजी ने उन गोपियों के साथ इस मधुर वारुणी का पान किया। गले में बैजन्ती माला डाले नीलाम्बर पहिने तथा एक कान में कुण्डल धारण किये बलराम जी उन गोपियों के साथ विहार करने लगे।

एक दिन बलराम जी ने जलक्रीड़ा करने के लिये यमुना जी को पुकारा किन्तु यमुना जी ने उन्हें मतवाला समझ कर उनके आदेश की उपेक्षा कर दी तब बलराम जी ने अपना हाथ उठाकर यमुना से कहा—हे पापिनी यमुना ! क्या तू ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया अब मैं अपने हल की इस नोंक से तेरे सौ सौ टुकड़े किये देता हूँ। जैसे ही उन्हों ने हल उठाया तैसे ही यमुना भयभीत होकर उनकी शरण में आई

In Public Domain

Digitized by Sarayu ... Delhi and eGangotri. Funding by IKS

और उनसे क्षमा याचना करने लगी। तब बलराम जी ने यमुना को क्षमा करके गोपियों के साथ जल क्रीड़ा की। जब वे जल विहार कर चुके तब लक्ष्मीजी ने उन्हें नीलाम्बर और एक बहुमूल्य सोने का हार दिया। लक्ष्मी के दिये हुये उपहार को धारण करके बलराम जी की अति शोभा बढ़ गई।

हे परीक्षित ! वह यमुनाजी अब भी बलरामजी के द्वारा खींची जाने के कारण उस स्थान में टेढ़ी मेढ़ी बहती हैं। वे गोपियाँ उनका यशोगान करती हुई मुग्ध हो गईं। इस भाँति बलरामजी ब्रज में दो महीने तक रहे।

—❀—

॥ छियासठवाँ अध्याय ॥

पौण्ड्रक तथा काशी राज का वध

दोहा—दम्भी पौण्ड्रक ने धर्यो, बासुदेव कौ रूप।
भुजा चार करके बन्यो, सब भूपन कौ भूप ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! जब बलराम जी ब्रज में गये थे उसी समय करूष देश के राजा पौण्ड्रक ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सभा में एक दूत भेजा और कहलाया कि असली भगवान् वासुदेव मैं हूँ और तू अज्ञानी मूर्ख नकली बासुदेव है।

हे परीक्षित ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राज सभा में बैठे थे उसी समय उसके दूत ने आकर यह सम्वाद सुनाया। और दूत बोला कि मेरे स्वामी ने यह भी कहा है कि यदि मूर्खतावश मेरे चतुर्भुजके चिन्हों को नहीं त्यागेगा तो मेरे साथ युद्ध करे नहीं तो मेरी शरण में आजावे।

श्रीशुकदेवजी बोले—जब उस कालाभिलाषी पौन्ड्रक की यह बात सुनकर सभी सभासद बड़े जोर से हँसने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—अरे दूत ! तू अपने स्वामी से जाकर कहना, कि रे मूढ़ ! मैं अपने चक्रादि चिन्हों को इस भाँति नहीं छोड़ सकता वे अब तुझ पर ही छोड़े जायेंगे और तेरे उन सभी साथियों पर जो तुझे इस प्रकार बहका रहे हैं। तुझे शरण देने वाला नहीं है तुझे अब शीघ्र ही चील, कौए, गीध, खावेंगे। हे परीक्षित ! वह दूत भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का इस

In Public Domain. Chambal Archives...

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भाँति उत्तर लेकर अपने देश को लौट गया और अपने स्वामी को ज्यों का त्यों सुना दिया। उधर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र रथ पर चढ़ काशी की ओर चल दिये क्यों कि वह करुष देश का राजा काशीराज के निकट रहता था। जब काशीराज ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को अपने नगर पर आक्रमण करते देखा तब पौण्ड्रक को दो अक्षौहिणी सेना देकर नगर से बाहर युद्ध के लिये भेजा और स्वयं अपने मित्र की सहायता के लिये तीन अक्षौहिणी सेना लेकर पीछे से आया।

हे परीक्षित्! उस पौण्ड्रक ने भी अपने बनावटी दो हाथ लगवा कर उन चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, शारङ्ग धनुष धारण कर रक्खा था और वक्षस्थल पर बनावटी श्रीवत्स का चिन्ह और कौस्तुभ मणि तथा बनमाला लटका रक्खी थी। शरीर पर रेशमी पीताम्बर बहुमूल्य मुकुट तथा कानों में मकराकृत कुण्डल पहन रक्खे थे। उसने अपना रथ भी गरुड़ की ध्वजा का तैयार कराया था। जिस प्रकार कोई अभिनेता ज्यों का त्यों रूप बना कर आ जाता है उसी प्रकार वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सामने आया। उसे देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बहुत हँसे। अब दोनों ओर से असंख्य शस्त्रों के प्रहार होने लगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने काशीराज की समस्त चतुरङ्गिणी सेना को अकेले ही इस प्रकार नष्टभ्रष्ट कर दिया मानों भगवान् शंकर की क्रीड़ास्थली हो।

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस पौण्ड्रक बासुदेव से बोले, हे मूर्ख पौण्ड्रक! तूने जिन चक्र आदि चिन्हों को छोड़ने के लिये दूतके द्वारा कहलवाया था उन्हें अब तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। और शरण में आने वाली बात यह है कि यदि मैं तुमसे हारजाऊँगा तो मैं तेरी शरण में अवश्य आजाऊँगा इतना कह कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने तीक्ष्णबाणों से उसके रथ को नष्ट भ्रष्ट कर दिया और चक्र के द्वारा उसके सिर को इस भाँति उतार दिया जैसे कुम्हार घूमते हुए चाक पर से अपनी रस्सी के द्वारा मिट्टी के वर्तनों को उतार लेता है। उसके साथ ही साथ काशीराज का सिर भी काट गिराया इस भाँति उन दोनों राजाओं को मारकर और उन्हें अपना स्वरूप देकर द्वारिका को लौट आये।

In Public Domain, Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे परीक्षित ! जब कुण्डल मण्डित काशिराज के सिरको उसके महल के दर्वाजे पर पड़ा देखा तब उसके महल में हा हा कार मच उठा । उसके पुत्र सुदक्षिण ने अपने पिता का बदला लेने के लिये एकाग्रचित्त से भगवान् शंकर की आराधना की । उसकी आराधना से भगवान् शंकर ने प्रसन्न हो कर उसे वर माँगने को कहा–तब सुदक्षिण ने अपने पितृ घाती को मारने का उपाय पूछा । तब भगवान् शंकर बोले तुम ब्राह्मणों के द्वारा दक्षिणाग्नि की अभिचार विधि से आराधना करो उससे तुम्हारा कार्य सिद्धि होगा । ऐसा जान कर वह सुदक्षिण ब्राह्मणों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को मारने के लिये यज्ञ करने लगा । उसमें से एक अग्नि प्रकट हुई उसका रङ्ग लाल ताँवे के समान था । और उसकी आँखों से अङ्गारे बरसते थे उसकी क्रूर दाढ़ी मूँछें तथा भ्रकुटियाँ अति भयङ्कर थीं । वह नङ्ग धड़ङ्ग काल के समान अपनी जीभ चाटने लगा । उसके अङ्गों में से अग्नि की लपटें उठ रहीं थीं । उसकी बड़ी बड़ी टाँगें और नेत्रों से धरती को कपा देने वाली ज्वाला प्रकट हो रही थी । वह एक त्रिशूल लेकर द्वारिका की ओर दौड़ा । उस अग्नि को अपने निकट आई हुई देख कर सभी द्वारिका वासी अति भयभीत हो इधर उधर दौड़ने लगे और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के निकट गए । उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चौसर खेल रहे थे ।

तब अग्नि के द्वारा नगर निवासियों को इस प्रकार भयभीत देख कर शरणागत वत्सल भगवान् ने हँस कर कहा–डरो मत ! मैं अभी इस अग्नि को शान्त किये देता हूँ । वे उसी क्षण जान गए कि यह माहेश्वरी कृत्या काशी से चली है । तब उन्होंने कोटि कोटि सूर्यों के समान परम तेजस्वी जाज्वल्यमान अपने चक्र सुदर्शन को आज्ञा दी कि इस अग्नि को अभी नष्ट कर दो । तब उस चक्र सुदर्शन ने उस अग्नि को नष्ट भ्रष्ट करके काशी की ओर लौटा दिया उस कृत्या ने काशी में लौटकर आचार्यों सहित उस सुदक्षिण को जला दिया, और उसके साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का सुदर्शन चक्र सम्पूर्ण काशी के भवन, खजाने, रथ घोड़ा आदि को नष्ट भ्रष्ट करके भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के पास चला आया ।

हे परीक्षित ! जो भगवान् के इस चरित्र को पढ़ता अथवा सुनता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सड़सठवाँ अध्याय ॥

द्विविध वध

दोहा—भौमासुर का मित्र एक, वानर द्विविद महान।
बलदाऊ से युद्ध करि, दीने अपने प्रान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीच्छित्! भौमासुर का सखा सुग्रीव का मन्त्री और मयन्द बानर का भाई द्विविद नाम का बानर था। जब उसने सुना कि श्रीकृष्ण ने मेरे मित्र भौमासुर को मार डाला है तब वह मित्र का बदला लेने के लिए मार्ग में अनेक देश ग्राम नगर आदि को जलाता हुआ और बड़े २ पहाड़ वृक्षों आदि को उखाड़ता हुआ आनर्त देश में पहुँचा क्योंकि उस समय श्रीकृष्णचन्द्र वहीं निवास करते थे। उस द्विविद बानर में दस हजार हाथियों की शक्ति थी वह दुष्ट बानर ऋषियों महर्षियों के आश्रम में लता पत्रादि को उखाड़ कर उनमें आग लगा देता था। और मल मूत्र से उन्हें अपवित्र कर देता था। उस बानर का आतंक पश्चिम के सारे देशों पर छाया हुआ था। एक दिन वह बन्दर रैवतक पर्वत पर आ गया और वहाँ पर उपद्रव करने लगा। उस समय बलराम जी वहाँ पर सुन्दर युवतियों के साथ विराजमान थे। और वे मधुपान करके मधुर सङ्गीत अलाप रहे थे। वे मत्त गजराज की भाँति शोभायमान थे। बलराम जी को देख कर उस बानर ने उन स्त्रियों को तङ्ग करना आरम्भ किया। वह कभी किलकारी मारता कभी वृक्षों को झकझोड़ता तो कभी उनके ऊपर मलमूत्र त्याग देता। वे सब स्त्रियाँ उसकी ओर देख देख कर हँसने लगीं उन्हें किसी प्रकार का भय तो था ही नहीं क्योंकि उनके रक्षक सर्व शक्तिमान बलराम जी थे। वह बन्दर घुड़क घुड़क कर उन स्त्रियों को डराने लगा और उनके वस्त्रों को फाड़ने लगा। उसकी यह करतूत देखकर बलराम जी को क्रोध आ गया और उसमें एक पत्थर फैंक कर मारा। उस पत्थर को बचा कर उस बन्दर ने झपट कर बलराम जी के मधु कलश को उठा लिया और उसको तोड़फोड़ डाला। जब वह बन्दर इस प्रकार बलराम जी को चिढ़ाने लगा तब बलराम को अति क्रोध आया और उन्होंने अपना हल मूसल लेकर उसे ललकारा उस द्विविद ने भी एक शाल का वृक्ष उखा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर बलराम जी के सिर पर मारा। बलराम जी ने उस वृक्ष को अपने सिर पर गिरने से पहले ही पकड़कर उस पर मूसल का प्रहार किया। उस मूसल से द्विविद का सिर फट गया और रक्त बहने लगा। तब उस द्विविद ने क्रोधित होकर बलरामजी पर दूसरा वृक्ष उखाड़ कर मारा। इस भाँति एक के बाद दूसरा दूसरे के बाद तीसरा वह बन्दर उखाड़ उखाड़कर बलराम जी पर चलाने लगा। किन्तु बलराम जी सब को नष्ट भ्रष्ट कर देते। तब बन्दर ने चिढ़कर उनको पर्वतकी चट्टानोंसे मारना शुरू किया। बलरामजी ने अपने मूसल से उन चट्टानों को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया। तब उस कपिराज ने झपट कर बलराम जी पर एक घूँसे का प्रहार किया। अब बलराम जी ने हल मूसल को अलग रख कर अपने दोनों हाथों से उसकी हँसली पकड़ ली। जिसके कारण वह बन्दर खून उगलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस बन्दर के गिरने से सारा रैवतक पर्वत हिल गया। बलराजी ने उस कपिराज द्विविद को मार कर सब जनता का कष्ट दूर किया। सभी लोग बलराम जी की प्रशंसा करने लगे।

॥ अड़सठवाँ अध्याय ॥

कौरवों पर बलराम जी का कुपित होना तथा साम्ब का विवाह

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! महाबीर साम्ब एक समय हस्तिनापुर गये और स्वयम्बर से दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणाको हर लाये। उनके इस कार्य से सभी कौरव लोग अति अप्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी के बल को न पहचान कर उनको बन्दी बना लिया। जब यह समाचार द्वारिकापुरी पहुँचा तब यदुवंशी अति क्रोधित हुए और बलराम जी की अध्यक्षता में एक विशाल सेना कौरवों का मान मर्दन करने के लिये हस्तिनापुर पहुँची। हस्तिनापुर पहुँच कर बलरामजी ने उद्धव जी को धृतराष्ट्र के निकट भेजा।

उद्धवजी ने कौरव सभा में पहुँच कर धृतराष्ट्र, भीम, द्रोणाचार्य दुर्योधन आदि से यह निवेदन किया कि बलराम जी पधारे हैं। बलराम जी का आगमन सुन कर सभी कौरव लोग सिर झुका कर भेंट की सामिग्री ले उनकी अगवानी के लिये चल दिये। वे सभी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बलराम जी के प्रभाव को भली भाँति जानते थे। कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् बलराम जी ने गम्भीर होकर कौरवों से कहा—महाराजाधिराज उग्रसेन ने तुम लोगों को जो आज्ञा दी है उसे ध्यान पूर्वक सुनो और उसका पालन करो। उग्रसेनजी ने कहला भेजा है कि तुम लोगों ने साम्बको अपने यहाँ बन्द कर लिया है तुम लोग बड़े अधार्मिक हो किन्तु सम्बन्धी समझकर हम तुम्हारे कर्मों की उपेक्षा करते रहते हैं। इस लिये अधिक झगड़ा न बढ़ा कर साम्ब को उसकी दुलहिन के साथ हमें दे दो।

हे परीक्षित! बलराम जी की यह बात सुन कर सभी कुरुवंशी क्रोध के कारण आग बबूला हो गए। वे बोले-बड़े आश्चर्य की बात हैकि जो यादव लोग हमारे पैरों की जूती हैं वे आज हमारे सिर पर चढ़ना चाहते हैं उन्होंने हमें अपनी लड़की देकर अपना सम्बन्ध कर लिया और हमारे साथ खाने पीने बैठने लगे। हमने उन्हें राज सिंहासन आदि प्रदान करके अपने समान बना लिया है। वे ही यदुवंशी हमें नीचा दिखाना चाहते हैं। बस अब देख लिया इन यदुवन्शियों के पास राज सिंहासन आदि कुछ भी नहीं रहना चाहिये। हमारे दिये हुये राज चिन्हों को प्राप्त करके यह हमारे ही विरुद्ध हो रहे हैं। यह निर्लज्ज हमारे ऊपर ही आज्ञा चला रहे हैं। धिक्कार है ऐसी आज्ञा पर। सिंह के ग्रास को भेड़िया नहीं ले सकता। भीष्म द्रोण तथा अर्जुन आदि कौरवों को स्वयं देवराज इन्द्र भी नहीं जीत सकता फिर इन यदुवंशियों की बात ही क्या है।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! उन कुरुवंशियों को अपने उत्तम कुल तथा भीष्म आदि पर अधिक अहंकार था वह बलराम जी के वचनों का इस भाँति तिरस्कार करके हस्तिनापुर लौट आये। उन कौरवों की ऐसी धृष्टता देख कर उनका मुख क्रोध से तिलमिला उठा और वे जोर से हँस कर इस प्रकार बोले—इन दुष्टों को अपने उत्तम कुल बल तथा धन का इतना अहंकार है। ये शाँति पूर्वक रहना नहीं चाहते। अब इनको दण्ड देना ही चाहिये। अभी सारे यदुवंशी तथा हमारे भाई श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर युद्ध को आ रहेथे किन्तु मैंने उन्हें रोक दिया था। इन घमण्डियों को कलह प्रिय है। इन्होंने मेरा अनादर करके न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri.

जाने कितनी गालियाँ दी हैं ठीक है यह कोई नई बात नहीं है। ऐश्वर्य का मद तो देवराज इन्द्र को भी हो जाता है। वे कहते हैं कि उग्रसेन हमारे राजाधिराज नहीं हैं। और वे श्रीकृष्णचन्द्र जी सुधर्मा सभा में विराजमान रहते हैं। राज चिन्ह धारण करने के अधिकारी नहीं हैं। ठीक बात है। तुम जो कुछ कहते हो ठीक है भाई! इतना कह कर बलराम जी ने अपनी हल की नोंक से उस हस्तिनापुर को उखाड़ कर गङ्गा में डुबाने के लिए खींचने लगे। जब हस्तिनापुर हल से खिंचने लगा तब वह जल में चलने वाली नाव की भाँति डगमगाने लगा। जब उन कौरवों ने बलराम जी की शक्ति को पहिचाना तब वे लक्ष्मणा के साथ साम्ब को आगे करके हाथ जोड़ सिर नवाय बहुत सी भेंट की सामिग्री ले बलरामजी के सम्मुख आये। जब वे सभी कौरव बलरामजी की शरण में गए और उनकी स्तुति प्रार्थना की तब बलराम जी ने उनको अभय दान दिया।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उस दुर्योधन ने अपनी कन्या के दहेज में साठ साठ वर्ष के बारह सौ हाथी दस हजार घोड़े छः हजार रथ और एक हजार दासियाँ दीं। तब बलराम जी उनका दहेज स्वीकार कर के साम्ब तथा नव वधू के साथ द्वारिकामें आये और उन्होंने सारा बृतान्त सुनाया। हे परीक्षित! वह हस्तिनापुर अब भी गङ्गाजी की ओर झुका हुआ है।

—— —※※—— ——

॥ उनहत्तरवाँ अध्याय ॥

देवर्षि नारदजी का भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की गृहचर्या देखना

दोहा—नारद मन इच्छा भई, देखन यदुपति ठाम।
धरि रूप सोलह सहस प्रभु, राजत सबके धाम॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ होने की बात सुन कर नारद जी को यह देखने की बड़ी अभिलाषा हुई कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र एक ही शरीर से सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के साथ किस प्रकार रहते होंगे। इस अभिलाषा से नारदजी एक दिन द्वारिकापुरी में पहुँचे। उन्होंने द्वारिकापुरी के भव्य भवनों की अलौकिक शोभा देखी। द्वारिकापुरी में स्फटिक मणि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तथा सोने चाँदी से बने हुए जो लाख महल थे। जिनके फर्श में मरकत मणि जड़ी हुई थीं। सुन्दर सुन्दर राज पथ गलियाँ हाट चौहट थे। वहाँ पर देव मन्दिर असंख्यों थे। सड़क, गली, द्वारों पर सुगन्धित छिड़काव नित्य होता रहता था। हवन, यज्ञ, आदि के सुगन्धित धुओं से सारी द्वारिकापुरी भरी रहती थी। वह विश्वकर्मा की बनाई द्वारिका अति दिव्य थी। जिसमें श्रीकृष्णचन्द्र की सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के महल शोभायमान थे। देवर्षि नारद ने एक भवन में प्रवेश किया वहाँ देखा कि विश्वकर्मा द्वारा रचे हुए सोने चाँदी के दिव्य भवन मोतियों की झालर चँदवे चाँदनी आदि टँके हुए हैं हाथी दाँत के पलङ्ग चौकियाँ बिछी हुई हैं असंख्य दासियाँ रत्नाभूषणों से सजी हुई देवाङ्गनाओं की भाँति सुन्दर हैं। सब अपने अपने काम में लगी हुई हैं। स्थान स्थान पर रत्न जगमगा कर अन्धकार को नष्ट कर रहे हैं उनमें सुन्दर सुन्दर उद्यान जिन में मोर कोयल मधुर बोली बोल रहे हैं। उत्तम जलाशयों में हंस क्रीड़ा कर रहे हैं।

हे परीक्षित ! नारदजी को देख कर समस्त आत्माओं के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सहसा रुक्मिणी जी के पलङ्ग से उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ कर देवर्षि नारद को प्रणाम किया। उत्तम आसन प्रदान करके सम्पूर्ण विश्व के स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र ने उनके चरण धोये और जल अपने सिर पर धारण किया। फिर नारदजी की विधिवत पूजा की और अमृत के समान मधुर बचनों से बोले—हे ब्रह्मन ! मैं आपका क्या स्वागत करूँ।

देवर्षि नारद बोले—हे भगवन् ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आपके चरणों के दर्शन मुझे प्राप्त हुए। ब्रह्मा शङ्कर आदि इन्हीं चरणों का चिंतन सदा करते रहते हैं। आप हम भक्तजनों पर विशेष प्रेम करते हैं यह आपका स्वभाव ही है। केवल मैं यही चाहता हूँ कि आपके चरणारविंदों की स्मृति सदा मुझे बनी रहे।

हे परीक्षित ! इस भाँति नारद जी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से अपनी पूजा करके उनके दूसरे महल में गए। वहाँ भी भगवान् श्रीकृष्ण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चन्द्र को नित्य कर्म करते हुये पाया। तत्पश्चात् वे तीसरे महल में गए वहाँ छोटे-छोटे बच्चों को प्यार करते हुये पाया किसी महल में यज्ञ कर रहे हैं तो किसी महल में मन्त्रियों के साथ परामर्श कर रहे हैं तो किसी महल में गायत्री का जप कर रहे हैं। इसी भाँति नारदजी ने सोलह हजार एक सौ आठ महलों में जाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की नई नई लीलाओं को देखा। तब देवर्षि नारद ने मुस्कुराते हुए भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—जब योगीश्वर ही अपने योग से अनेक माया रच लेते हैं तब आप तो ब्रह्मा आदि बड़े २ मायावियों के ईश्वर योगेश्वर हैं। फिर आपके लिए यह लीला कोई नई बात नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आप ही परिपूर्ण हो रहे हैं। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे नारदजी! मैं धर्म का उपदेश करने वाला, उसका पालन करने वाला तथा उसको मानने वाला भी हूँ। इसलिये मैं संसार को धर्म पूर्ण शिक्षा देता हूँ। प्रत्यक्ष रूप में उसका आचरण भी करता हूँ। मेरे प्रिय पुत्र नारद तुम मेरी योगमाया में मोहित मत होना।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इस भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नित्य अपनी पत्नियों के साथ उतने ही रूप धारण करके नित्य नई नई लीलायें करते थे। जो पुरुष उनकी इस कथा का गायन श्रवण करता है, उसको भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति अति शीघ्र प्राप्त होती है।

॥ सत्तरवाँ अध्याय ॥

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की दिनचर्या तथा उनके निकट जरासन्ध
के द्वारा बन्दी राजाओं के दूत का आना।

दोहा—दिनचर्या यदुनाथ की, वर्णन करूँ सिहाय।
जिन माया जानी नहीं, शेष शारदा माय॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! रात ब्यतीत होने पर जब कुक्कुट बोलता है तब ब्रह्म मुहूर्त होता है भगवान श्रीकृष्णचन्द्र नित्य प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में ही उठते थे। वह ब्रह्म मुहूर्त उनकी पत्नियों को जो सदा उनके कंठ में हाथ डाले सोती रहती थीं, बड़ा असह्य प्रतीत होता था

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और विशेष कर रुक्मिणीजी को। ब्रह्ममूहुर्त के आने पर भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र हाथ मुँह धोकर अपने ब्रह्मस्वरूप का ध्यान करते थे। तत्पश्चात् शौच स्नान आदि नित्य कर्म से निवृत हो शुद्ध धोती दुपट्टा पहन सन्ध्या वन्धन आदि करते थे। तत्पश्चात् हवन करते थे। और मौन होकर अपने स्वरूप माता गायत्री का जप करते। इतना सब कर्म सूर्योदय से पहले ही वे कर लेते थे सूर्योदय होने पर सूर्योपस्थान तथा तर्पण आदि करते थे। तत्पश्चात् कुल के वृद्धजनों तथा ब्राह्मणों की पूजा करते थे। तत्पश्चात् नई ब्याई हुई बछड़ों वाली सीधी गौओं का दान करते थे उन गौओं को सोने के सींग चाँदी के खुर, वस्त्र मोतियों की माला आदि से पहले सुसज्जित कर दिया जाता था। इस भाँति नित्यप्रति तेरह हजार चौरासी गौयें दान करते थे। तत्पश्चात् गौ ब्राह्मण देवता कुल के वृद्धजन आदि को प्रणाम करके माङ्गलिक वस्तुओं को छूते। तत्पश्चात् अपने वस्त्राभूषणों को धारण करते। इसके पश्चात् घी तथा दर्पण में अपना मुख कमल देखते फिर गाय बैल ब्राह्मण तथा देव प्रतिमाओं के दर्शन करते। तत्पश्चात् चारों वर्णों के लोगों की इच्छायें पूर्ण करते। तत्पश्चात् ताम्बूल, चन्दन अङ्गरा, पुष्पमाला आदि पहले ब्राह्मण, कुटुम्बी, मन्त्री तथा रानियों को बाँटते फिर बची हुई वस्तुओं को स्वयं धारण करते। तब तक उनका सारथि दारुक सुग्रीव आदि उत्तम घोड़ों को जोत कर रथ ले आता। उस रथ में बैठ कर अपनी सुधर्मा सभा में पधारते। वह सुधर्मा सभा भूख प्यास शोक मोह तथा जरा मृत्यु इन छः विकारों से रहित थी। बन्दीजन तथा नर्तकियाँ उनके शुभ यश का गायन करतीं ब्राह्मण लोग वेद तथा अनेक धार्मिक ग्रन्थों का कीर्तन करते।

हे परीक्षित्! एक दिन जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपनी सभा में बैठे थे तब जरासन्ध के द्वारा बन्दी राजाओं के दूत ने आकर उन राजाओं की आर्त्त प्रार्थना सुनाई। तब वह दूत बोला—हे भगवन्! इस दुष्ट जरासन्ध के द्वारा बीस हजार नरपति बन्दीगृह में दुःख उठा रहे हैं, और वे आपकी शरण में हैं। तथा आप से सहायता की याचना कर रहे हैं। हे परीक्षित्! जब वह दूत इस प्रकार प्रार्थना कर ही रहा था कि उसी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

समय देवर्षि नारद समस्त लोकों का भ्रमण करके वहाँ आये। नारद जी को देखते ही ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने उनकी विधिवत पूजा की और कुशल मङ्गल पूछने के पश्चात् बोले-हे देवर्षि! आप तीनों लोकों में विचरण करते रहते हैं और आप से हमलोगों को यह बड़ा लाभ है कि घर बैठे ही सब स्थानों के समाचार मिल जाते हैं। अतः अब आप हमें यह बताइये कि पाण्डवों के क्या समाचार हैं।

देवर्षि नारद बोले-हे भगवन्! आप सर्वज्ञ होते हुए भी अनजान की भाँति मुझसे पूछ रहे हो। यह सब मेरे ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही है। हे भगवन्! इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस पृथ्वी पर जो भोग धर्मराज युधिष्ठिर को प्राप्त हैं वे अन्य किसी को नहीं। वे निष्काम होते हुए भी इस समय आपकी आराधना करने के लिये राजसूर्य यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले हैं। उस यज्ञ में बड़े २ देवता तथा सभी श्रेष्ठ नरपति एकत्रित होंगे। हे आनन्द कन्द! आप भी पधार कर उनके यज्ञ की शोभा बढ़ाइये।

श्री शुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! इस समय सभी उपस्थित सभासदों के सम्मुख दो समस्यायें थीं। एक यह कि पहले जरासन्ध पर चढ़ाई करके उसे जीता जावे अथवा पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाया जावे। तब सम्पूर्ण जगत के शासक तथा ब्रह्मा शेष आदि का शासन करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मुस्कराते हुए उद्धवजी से कहा-हे प्रिय उद्धव! तुम्हीं बताओ कि हमें कौनसा कार्य पहले करना चाहिए। तुम हमारे प्रिय सखा और मन्त्री हो। जो तुम्हारी सलाह होगी वही कार्य करेंगे। जब उद्धवजी ने देखा कि भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालों के ज्ञाता भगवान् श्री कृष्णचन्द्र उनसे सलाह पूछ रहे हैं। तब वे हाथ जोड़ कर बोले—

॥ इकहत्तरवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का इन्द्रप्रस्थ गमन।

दो०—धर्मराज के यज्ञ में, गये कृष्ण भगवान्।
पाण्डव नित आदर करें, पावें सुख महान॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उद्धव जी ने बहुत सोच

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विचार के बाद कहा—हे भगवन् ! देवर्षि नारद जी ने जो धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सहायता करने की बात कही है वह अति उत्तम है, किन्तु शरणागत की रक्षा करना भी अपना कर्तव्य है। जब तक जरासन्ध को परास्त न किया जावेगा तब तक धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ सफल न होगा, क्यों कि वह दस हजार हाथियों के बल वाला होने के कारण बड़ा प्रबल शत्रु है। उस को जीतने पर बीस हजार नरपति भी अपना लोहा मानने लगेंगे। इसलिए पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग धर्मराज युधिष्ठिर की सेवा में झुक जावेगा। कोई भी योधा उस जरासन्ध की फ़ौज को परास्त नहीं कर सकता है। यदि जरासन्ध परास्त हो सकता है तो द्वन्द युद्ध में ही परास्त हो सकता है, और उसके समान बल वाले हैं भीमसेन ! भीमसेन जरासन्ध को युद्ध में जीत सकते हैं। वह जरासन्ध बड़ा ब्राह्मण भक्त है। उससे जो ब्राह्मण याचना करता है वह उसे अवश्य देता है। इसलिए भीमसेन ब्राह्मण का रूप धर कर उमसे द्वन्द युद्ध माँगे। और भीमसेन के साथ साथ आप रहें। क्यों कि भीमसेन को निमित्त बनाकर आप ही उसका संहार करेंगे। जब वह जरासन्ध मारा जावेगा तब बन्दी राजाओं की पत्नियाँ आपके यश का मङ्गल गान करेंगी और वे राजा लोग अनेक प्रकार की भेंट से आपकी पूजा करेंगे।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! उद्धव जी की इस उत्तम सलाह का सब ने समर्थन किया, और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वयं उन्हें सम्मान दिया। तब उस दूत को आश्वासन दे विदा किया और उन्होंने राजा उग्रसेन वसुदेव आदि से आज्ञा लेकर अपनी रानियों के सहित इन्द्रप्रस्थ चलने की तैयारी की। बड़ी धूम धाम के साथ रथ पालकियों में उनकी आठों पटरानियाँ अपने पुत्रों सहित चलीं। उनके आगे आगे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी चले। और उनके पीछे पीछे चतुरंगिणी सेना उनकी रक्षा करती हुई चली।

इस प्रकार अनेक देशों को पार करती हुई उनकी सवारी इन्द्रप्रस्थ पहुँची। जब धर्मराज युधिष्ठिर को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के शुभ आगमन का पता चला तब वे अपने भाइयों तथा नगर की जनता के साथ

In Public Domain.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी अगमानी के लिए नगर से बाहर आये। उनकेआगे आगे रथ हाथी तथा माङ्गलिक बाजे बजते थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी को देख कर धर्मराज युधिष्ठिर गद्गद् होगए और नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए उन्हें कण्ठ से लगा लिया। तत्पश्चात् भीमसेन ने उनका आलङ्गिन किया। और अर्जुन ने उनका आलिङ्गन किया तत्पश्चात् नकुल, सहदेव ने उनके चरण स्पर्श किये। इस भाँति प्रेमानन्द का समुद्र उमड़ने लगा। बड़ी धूमधाम और गाजे बाजे से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने पाण्डवों की सुसज्जित नगरी इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी का शुभ आगमन सुनकर नगर की स्त्रियाँ उनके दर्शनों के लिए अपनी अपनी अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शनों का आनन्द लाभ लेने लगीं। वे बोलीं—हे सखियो! इन रानियों ने कौन सा पुण्य किया है जिसके प्रताप से ये नित्यप्रति इनके नयनाभिराम का आनन्द लेती हैं।

इस प्रकार सब को आनन्दित करते हुए भगवान् श्री कृष्णचन्द्र पाण्डवों के साथ अन्तःपुर में आए वहाँ पर बूआ कुन्ती अपनी पुत्र वधू द्रौपदी के साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के निकट आईं और उनको अपने हृदय से लगा लिया। द्रोपदी ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी की सभी पत्नियों का अभिवादन किया। सबके लिए यथा योग्य स्थान सुख की समस्त सामिग्रियाँ तथा वस्त्राभूषण प्रदान किये। धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की सेना सेवक मन्त्रियों तथा पत्नियों को ऐसे उत्तम स्थानों पर ठहराया जहाँ उनके लिए समस्त सुख की सामिग्रियाँ उपस्थित थीं।

—०—

॥ बहत्तरवाँ अध्याय ॥

धर्मराज युधिष्ठिर का राज सूय यज्ञ तथा जरासन्ध वध

दोहा—बाँध्यौ जरासन्ध भीम ने, पाइ शक्ति यदुनाथ।
बन्दीगृह के नृपति सब, कीन्हे नाथ सनाथ॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक दिन धर्मराज भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा अपने भाई पाण्डवों के साथ सभा में बैठे हुए थे। तब

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

उन्होंने अति प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—हे अच्युत ! मुझे इस जगत में कोई भी कर्म करना शेष नहीं है क्योंकि जितने भी कर्म हैं वे सब बन्धन में बाँधने वाले हैं। केवल ऐसे कर्म ही जिनके द्वारा आपकी सेवा पूजा तथा आराधना होती है वे कर्म ही बन्धन से मुक्त करने वाले हैं। मेरी इच्छा है कि राजसूय यज्ञ द्वारा आपकी पूजा भली प्रकार करूँ जिनके अनुसरण करने से जगत के प्राणी आपकी प्राप्ति सरलता से कर सकें।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे अजात शत्रु ! आपका यह विचार अति उत्तम है। राजसूय यज्ञ करने से धर्म की वृद्धि के साथ ही साथ आप की कीर्ति वृद्धि भी होगी। आपका यह यज्ञ हम सभी को प्रिय है। आप अवश्य ही इस महा योगका आयोजन कीजिये। आपके भाई सभी प्रतापी हैं जिन्हें जीतने का साहस मनुष्य राक्षसों की तो बात ही क्या देवताओं को भी नहीं है।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ऐसे प्रिय वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर को अति प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने चारों भाइयों को दिग्विजय के लिये आज्ञा दे दी। दक्षिण दिशाकी ओर सहदेव को भेजा, उत्तर दिशा की ओर अर्जुन को भेजा, पश्चिम दिशा की ओर नकुल को भेजा, तथा पूर्वदिशाकी ओर भीमसेन। चारों दिशाओं के नर पतियों को जीतकर अनन्त धनराशि लाकर धर्मराज युधिष्ठिर की भेंट की। जब युधिष्ठिर ने यह सुना कि जरासन्ध अभी नहीं जीता गया है तब उन्हें अधिक चिन्ता हुई। उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने प्रिय उद्धवजी की सलाह धर्मराज को सुनाई। उसे सुनकर धर्मराज प्रसन्न हुए। तब भीमसेन अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मण का वेष बना कर मगध देश जरासन्ध की राजधानी में पहुँचे। जरासन्ध ने इन तीनों ब्राह्मणों को देखकर अति आदर सत्कार किया।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे मगधराज ! आपका कल्याण हो हम आपसे याचना करने के लिये आये हैं। यह हम भली प्रकार जानते हैं कि तुम बड़े ब्राह्मण भक्त और याचकों को कभी विमुख नहीं होने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

देते हो। राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र जी की याचना करने पर उन्हें सर्वस्व दे डाला था। रन्तिदेव की कथा किसी से छिपी नहीं है। राजा बलि से याचना करनेपर त्रिलोकीका राज्य दे दिया था। फिर आपसे यह कभी आशा नहीं की जा सकती है कि आप हमें निराश कर देंगे।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की मधुर तथा सार्थक बात सुनकर जरासंध चक्कर में आने लगा। वह उनकी आवाज उनके रूप रङ्ग स्वरूप, उनके शरीर गठन, कलाइयाँ तथा उँगलियों में पड़े हुए धनुष की रगड़ के चिन्ह आदि भली प्रकार देख कर पहिचान गया कि ये ब्राह्मण नहीं हैं अवश्य क्षत्रिय हैं। किन्तु मेरे से सब छिपा रक्खा है। अस्तु, कोई भी सही जो मेरे घर पर याचक बन कर आया है उसकी अभिलाषा पूर्ण करना मेरा धर्म है। राजा बलि यह जानते हुए भी कि ये वामन भगवान् देवताओं का भला करने आये हैं किन्तु फिर भी याचक रूप में आये हुए भगवान् को भी उसने विमुख नहीं किया था। फिर ये कोई भी सही मैंने इन्हें देखा अवश्य है यदि ये मेरा शरीर भी माँगेंगे तो मैं इन्हें अवश्य दूँगा। हे परीक्षित! वह जरासन्ध बड़ा उदार हृदय था। तब वह बोला—तुम क्या चाहते हो? निर्भय हो कर कहो तुम्हें अवश्य मिलेगा।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे राजन्! हम भोजन के इच्छुक नहीं हैं। हम आप से युद्ध की याचना करते हैं। यदि आप चाहें तो हमें द्वन्द्व युद्ध की भीख दीजिये! हे राजन्। ये भीमसेन हैं ये इनके छोटे भाई अर्जुन हैं और मैं उन का ममेरा भाई कृष्ण हूँ। यह सुन कर जरासन्ध चिढ़ गया और कुछ क्रोधित होता हुआ बोला—हे मूर्खों! यदि तुम युद्ध ही चाहते हो तो मुझे तुम्हारी याचना स्वीकार है। किन्तु हे कृष्ण! तुम तो मेरे से पराजित हो चुके अतः तुम से तो मैं युद्ध न करूँगा क्यों कि डरपोक भगोड़े तथा पीठ दिखाने वाले शत्रु से युद्ध करना क्षत्रिय धर्म नहीं है। रहा यह अर्जुन! यह कमजोर दुवला पतला है मेरे समान दृढ़ शरीर वाला नहीं है। तिस पर भी यह हिजड़ा रह चुका है। हाँ यह बैल के से कन्धों वाला भीमसेन मेरे समान बलवान है इससे मैं द्वन्द्व युद्ध करूँगा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इतना कह कर जरासन्ध ने एक सुदृढ़ गदा भीमसेन को दी और एक गदा अपने हाथ में ली और नगर से बाहर मैदानमें आ डटे।

हे परीक्षित! दोनों ही महाबली थे गदा युद्ध के विशेषज्ञ थे। पैंतरे बदल बदल कर युद्ध करने लगे। कभी भीमसेन चोट कर जाते तो कभी जरासन्ध चोट कर जाता। जिस भाँति मत्त गजराज एक हथिनी के लिये युद्ध करते हैं उसी भाँति दोनों महावली युद्ध करने लगे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक युद्ध करते और रात्रि को मित्रभाव से रहते। इस भाँति सत्ताईस दिन तक दोनों का गदा युद्ध हुआ किन्तु कोई भी पराजित न हो सका। अट्ठाईसवें दिन सवेरे भीमसेन बोले—हे जनार्दन! मैं जरासन्ध को युद्ध में पराजित नहीं कर सकता। भीमसेन की यह बात सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र ने विचार किया वे जरासन्ध के जन्म तथा मृत्यु का भेद जानते कि जरासंध जन्म के समय दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ था तब जरा नाम की राक्षसी ने इसे बीच में से जोड़ दिया था। इसलिये भीमसेन को अपनी नूतन शक्ति देकर उसके शरीर पर हाथ फेरा और बोले कि जिस समय मैं संकेत करूँ उसी क्षण तुम उसे मार डालना। इतना कह कर भीमसेन को फिर युद्ध को भेजा। आप खड़े खड़े दोनों का युद्ध देखते रहे। आज भीमसेन ने बड़ी वीरता और साहस से युद्ध किया। जरासन्ध भी लड़ते लड़ते थक चुका था। तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने जरासन्ध को थका जान उसकी मृत्यु का उपाय देख एक वृक्ष की डाली को बीचों बीच से चीर कर भीमसेन को संकेत कर दिया। भीमसेन ने तत्काल संकेत समझ जरासन्ध को उठा पृथ्वी पर दे पटका और एक टाँग पर अपना पैररख दूसरी टाँग अपने दोनों हाथों में ले बीच से चीर डाला। उसके दो टुकड़े अलग अलग कर पृथ्वी पर पटक दिया। तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र और अर्जुन ने भीमसेन को कण्ठ से लगाया और उसके बल की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस भाँति जरासन्ध को मार उसके नगर में आये वहाँ पुत्र तथा उसकी रानियाँ हाय हाय करके रुदन करने लगीं। तब उन्हें समझाय जरासन्ध के पुत्र सहदेव को राजतिलककर दे जरासन्ध के द्वारा बन्दी राजाओं को मुक्त कर दिया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तिहत्तरवाँ अध्याय ॥

बन्दीगृह से राजाओं को मुक्त करके इन्द्रप्रस्थ लौटना

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उस जरासन्ध ने बीस सहस्र आठ सौ राजाओं को अपने बन्दी गृह में डाल रक्खा था। वे राजा लोग भूख प्यास से अति दुर्बल हो गये थे उनके वेष अति मलीन थे। उनको भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने बन्दीगृह से बाहर निकलवाया। उनको स्नान आदि करा कर उत्तम वस्त्राभूषण दिये तथा भली भाँति आदर सत्कार से उन्हें उत्तम भोजन कराया। राजा लोग भगवान श्री कृष्णचन्द्र के दर्शन प्राप्त करके अति प्रसन्न हुए और उनको शिर नवाय प्रणाम किया। वे सभी राजा लोग हाथ जोड़ शिर नवाय उनके सम्मुख खड़े हो गये और बोले—हे प्रभो! आप शरणागत वत्सल हैं। आप ने हम पर अति कृपा कर इस अत्याचारी दैत्य जरासन्ध को मार डाला। इसने हम निरपराधों को व्यर्थ में ही बन्दी बना लिया था। हे भगवन्! आपकी कृपा से ही हम फिर अपने राजसिंहासन तथा अपने ऐश्वर्य को प्राप्त कर सके हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं और आपकी शरण में हैं। जब राजा लोगों ने इस भाँति स्तुति की तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें अभयदान देकर उत्तम रथों में चढ़ाय धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आने की आज्ञा दे सबको विदा किया।

तत्पश्चात् सहदेव द्वारा भली भाँति पूजा भेंट ले तथा उसको राजसूय यज्ञ में आने की आज्ञा दे भगवान श्री कृष्णचन्द्र भीमसेन तथा अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को लौट आये और वहाँ का सारा समाचार धर्मराज युधिष्ठिर को सुनाया। जिसे सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर अति प्रसन्न हुए।

॥ चौहत्तरवाँ अध्याय ॥

दोहा—लखि पूजा यदुनाथ की, जरयौ चेदि नृप क्रूर।
काटि चक्र से शीश प्रभु, कीनौ छण में चूर॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उत्तम समय देख भगवान श्री कृष्णचन्द्र की अनुमति ले धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की तैयारी आरम्भ करदी। उस यज्ञ में सारे भारतवर्ष के बड़े २ ऋषि महर्षि पधारे।

CC-0. ... Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की सलाह से यज्ञ के ऋत्विज, आचार्य होता, आदि का वरण किया गया।

भगवान् वेद व्यास, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्डव, मैत्रेय, कवष, जित, विश्वामित्र, बामदेव, सुमति, जेमिन, क्रतु, पैल, पाराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतहोत्र, मधुछन्दा, वीरसेन, अकृतव्रण, उनमें मुख्य थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्र दुर्योधनादि भी सम्मानित स्थानों पर नियत किए। सभी देशों के राजा लोग पधारे। मन्त्री, कर्मचारी तथा चारों बर्ण के लोग अपने अपने कार्यों में जुट गये।

हे परीक्षित! ऋत्विजों ने शास्त्र विधि से यज्ञ भूमि सोने के हल से जुतवा कर धर्मराज युधिष्ठर को दीक्षा दी। धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ के सभी पात्र स्वर्ण के थे। उस समय यज्ञ देखने के लिये ब्रह्मा शंकर तथा दूसरे लोकपाल भी पधारे।

हे परीक्षित! जिस यज्ञ में स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान हों जो स्वयं अपनी प्रेरणा से यज्ञ करा रहे हों उसमें ब्रह्मा, शंकर आदि लोकपाल क्यों न पधारे? धर्मराज युधिष्ठिर ने सोमलता का रस निकालने के समय यज्ञ की भूल चूक देखने वाले सद्सस्पतियों की बिधिवत् पूजा की। अब समस्त सभासदों में इस विषय पर विचार होने लगा कि सब से पहले किस की पूजा की जाय।

तब सहदेव जी उठ कर बोले—

१—श्री कृष्ण देवन के देव, उन्हीं को सब से आगे लेव।

२—ब्रह्मा शंकर पूजत जिनको, पहिली पूजा दीजै उनको।

३—अक्षर ब्रह्म कृष्ण यदुराई, वेदन में महिमा तिन गाई।

४—अग्रतिलक यदुपति को दीजै, सब मिलि पूजन उनको कीजै।

हे परीक्षित! परमज्ञानी सहदेवजी के बचन सुनकर सभी सत्पुरुषों ने साधु! साधु! कर कह पुकारा। भीष्म पितामह ने स्वयं अनुमोदन करते हुए सहदेव के कथन की प्रशंसा की।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तब धर्मराज युधिष्ठिर अति हरषाय प्रेमानन्द में मग्न हो गये और स्वर्ण पात्र में यज्ञ का घृत, जल ले अपने भाइयों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरण पखारने लगे। उनके चरणों का धोवन शिर पर चढ़ाया। तत्पश्चात् दिव्यमाला, सुन्दर वस्त्राभूषण, केसर का तिलक दे कर उन की विधिवत् पूजा की। हे परीक्षित ! उस काल धर्मराज युधिष्ठिर की कैसी शोभा हो रही थी जैसी त्रिलोक्य पति दानवीर बलि की बामन भगवान् के चरण पखारते समय तथा उन का पूजन करते समय हुई थी। आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी।

हे परीक्षित ! चेदिराज शिशुपाल अपने आसन पर बैठा हुआ यह सब दृश्य देख रहा था। सहदेव के द्वारा समर्थन की गई श्रीकृष्णचन्द्र जी की अग्र पूजा को वह सहन न कर सका। तब वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला-हे सभासदो ! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कालवश सभी की मति मारी गई है। क्या इस बालक सहदेव से भी कोई अधिक बुद्धि वाला व्यक्ति यहाँ नहीं है जो इस बालक की हाँ में हाँ मिला कर अयोग्य व्यक्ति की पूजा स्वीकार करली है। क्या इस कृष्ण से आयु बल बुद्धिगुणों में कोई भी अधिक नहीं है। बड़े बड़े ऋषि महर्षि त्रिकाल दर्शी यहाँ पधारे हुए हैं बड़े बड़े राजे महाराजे इस यज्ञ में आये हुए हैं क्या इस गाय चराने वाले भगोड़े ग्वालिये के समान कोई भी और यहाँ नहीं है ? क्या कौआ हविश्यान्न ले सकता है ! क्या गीदड़ सिंह का भाग प्राप्त कर सक्ता है ? न इसका कुल है न जाति है ? और न कोई वर्ण ही है। राजा ययाति के शाप के कारण राजवंशियों ने इस यदुवंश को वैसे ही वहिष्कृत कर रक्खा है। यह जरासन्ध के भय से मथुरा त्याग कर समुद्र में जा छिपा है। भला यह किस प्रकार अग्र पूजा पाने का अधिकारी है ? हे परीक्षित् ! उस शिशुपाल का काल निकट ही था। काल वश उसकी बुद्धि मारी गई थी। इस भाँति वह शिशुपाल जगत के स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र को गाली देने लगा। उसके इन कटु बचनों की निन्दा करते हुए अनेक राजा लोग उसे मारने दौड़ पड़े उधर अर्जुन तथा भीमसेन शिशुपाल के कटु बचन सुन कर क्रोधित हो उठे किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने सब को रोक दिया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

शिशुपाल निर्भय हो कर उन्हें गाली देने लगा। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र शान्ति पूर्वक सुनते रहे। बहुत से भक्त सभा छोड़ कर चले गये क्योंकि वे अपने कानों से भगवान की निन्दा नहीं सुन सकते थे। हे परीक्षित्! जो भगवान् की निन्दा सुनता है वह पाप का भागी होता है।

जब शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को एक सौ एक गाली दे चुका और तलवार लेकर मारने दौड़ा तब उन्होंने अपने चक्र से झट उसका शिर काट गिराया। हे परीक्षित्! उस समय शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति निकल कर उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें सबके देखते समा गई और उस पापी शिशुपाल ने जो तीन जन्म से उनसे बैर भाव रखता आरहा था वह परम-गति प्राप्ति की जो बड़े २ योगी जनों को भी प्राप्त होना दुर्लभ है। यह वही जय विजय नामक भगवान के पार्षद थे जिनको सनकादिक ने शाप दे दिया था। अब उसने फिर अपना पार्षद रूप प्राप्त कर लिया।

शिशुपाल की मृत्यु के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ विधिवत् समाप्त हुआ और यज्ञान्त स्नान, अवभृथ स्नान धर्मराज युधिष्ठिर ने किया।

हे परीक्षित्! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की इस शिशुपाल वध लीला को सुनता है तथा कहता है उसकी मुक्ति हो जाती है।

—❀—

॥ पिचहत्तरवाँ अध्याय ॥

चौ०—धर्म कीन्ह अव भृथ स्नाना। गगन दुन्दुभी बाजें नाना॥
यहि विधि मङ्गल बाजे बाजे। दुर्योधन मन ही मन लाजे॥
एक दिवस कुरुपति मन ठाना। सभा देखने कीन्ह पयाना॥
जलको थलअरु थलजल जाना। द्रौपदि तबहँसिकियअपमाना॥
विषधर सरिस कुपित नृप भयऊ। क्रोधवंत निजगृह वह गयऊ॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! उस यज्ञ में तुम्हारे दादा धर्मराज युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण कार्य यथा विधि बाँट दिए थे भीमसेन को भोजनालय का प्रबन्ध दिया। दुर्योधन को कोषाध्यक्ष बनाया ताकि ईर्षा वश खूब धन खर्च करे और ब्राह्मण अनाथ दीनों को बहुत सा धन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मिले। सहदेव को अभ्यागतों के स्वागत सत्कार का प्रबन्ध दिया गया। अर्जुन को गुरुजनों की सेवा सुश्रूषा का कार्य दिया गया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने आये हुए अतिथियों के पाँव पखारने का कार्य लिया। द्रौपदी ने भोजन परोसने का कार्य लिया। दानवीर कर्ण को दान देने का कार्य दिया गया। इसी भाँति सात्विकि विकर्ण को भूरिश्रवा विदुरजी आदि सभी को यथा योग्य काम सौंपे गये।

हे परीक्षित ! जब यज्ञ समाप्त होने पर गङ्गा जी में यज्ञान्त अवभृथ स्नान युधिष्ठिर कर रहे थे तब आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। सभी राजा लोगों ने सम्राट युधिष्ठिर के स्नान करने के पश्चात् गङ्गाजी में स्नान किया। तत्पश्चात अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों से सज धज कर धर्मराज युधिष्ठिर को एक विशाल हाथी पर चढ़ाय उन पर उत्तम छत्र लगाय उनको चारों ओर से घेर कर चलने लगे। उस समय की शोभा अवर्णनीय थी।

चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिर महारानी द्रौपदी आदि रानियों के साथ सुन्दर रथ में सवार हो कर अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र तथा पाण्डवों और राजा लोगों से घिर कर इन्द्रप्रस्थ में पधारे।

एक दिन जब धर्मराज युधिष्ठिर मयदानव की बनाई हुई सभा में भगवान श्रीकृष्ण के साथ बैठे हुए थे और उनके आज्ञाकारी चारों भाई उनकी सेवा में खड़े हुए थे तभी दुर्योधन उस सभा की शोभा देखने के लिए अकेला ही इधर उधर घूमने लगा। उसने डाह और जलन के कारण किसी सेवक को अपने साथ उस सभा का निरीक्षण कराने के लिए नहीं लिया। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की कीर्ति और सम्राट पद प्राप्त से उस दुर्योधन को बड़ी जलन उत्पन्न हुई। जब वह सभा के उत्तम निर्माण तथा चित्रकारी आदि को देख रहा था तब कई स्थानों पर उसे स्थल में जल और जल में स्थल का भान हुआ। एक स्थान पर भी उसे स्थल समझ कर जल में गिर पड़ा तब उसे देख कर वहाँ पर उपस्थित सभी राजा लोग हँस पड़े और भीमसेन ताली पीट कर हँसने लगे धर्मराज युधिष्ठिर ने उन सब को बहुतेरा रोका किन्तु उन सब को

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री कृष्णचन्द्र का संकेत जो मिल गया था। वे सभी ठठा मार कर हँसने लगे। जब दुर्योधन द्रौपदी के महलों को देखने गया तब उसने दरवाजा समझ कर दीवाल से टक्कर ली। तब द्रौपदी हँस पड़ी और हँसी में बोली कि अन्धे के अन्धे ही होते हैं। यह सुन कर दुर्योधन चोट खाते हुए सांप की भाँति चुपचाप वहाँ से चला आया और हस्तिनापुर को चला गया। इस घटना से धर्मराज युधिष्ठिर को दुःख हुआ वे अति खिन्न हो गये क्यों कि उन्हें भविष्य में किसी दुर्घटना होने की आशङ्का होने लगी थी।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप हो गये। वे तो चाहते ही थे कि किसी भाँति दुष्टों का संहार हो और पृथ्वी का भार उतरे।

॥ छहत्तरवाँ अध्याय ॥

शाल्व का युद्ध

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! शिशुपाल का मित्र था शाल्व। वह शिशुपाल के साथ उसके विवाह में गया था किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र द्वारा पराजित होकर वह अति लज्जित हुआ और भगवान् शंकर की तपस्या करने लगा। एक मुट्ठी राख खा कर उसने एक वर्ष तक घोर तपस्या की। तब भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने को कहा। उस शाल्व ने यह वर माँगा कि भगवन् मुझे एक ऐसा विमान दो जो किसी भी देवता यक्ष राक्षस गन्धर्व मनुष्य नाग आदि से न जीता जा सके भगवान शङ्कर ने कहा—अच्छा ऐसा ही होगा।

भगवान् शङ्कर से वर प्राप्त कर मय दानव ने उसके लिये सौभ नामक एक ऐसा विमान बनाया जिसकी गति कहीं भी नहीं रोकी जा सकती थी। शाल्व स्वच्छन्द विचरता हुआ अपने मित्र शिशुपाल की मृत्यु सुन कर द्वारिकापुरी पर चढ़ धाया। उसने अपनी विशाल सेना से द्वारिका को घेर लिया। नगर को नष्ट भ्रष्ट करने लगा। तब द्वारिका के रक्षक प्रद्युम्न जी अपने साथ चारुदेष्ण, साम्ब आदि भाइयों तथा अक्रूर, कृतवर्मा, भानुविन्द गद शुक सारण आदि महारथियों को ले कर युद्ध के मैदान में शाल्व के सम्मुख आये। प्रद्युम्नजी अपने बाणों से शाल्व की माया को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

काट गिराया। वह छिप छिपकर युद्ध करता था। उसने सर्वत्र रात्रि ही रात्रि करदी थी किन्तु प्रद्युम्नजी ने अपने बाणों से आकाश को छा दिया और उसकी माया का नाश कर दिया। उन्होंने शाल्व के सेनापति को पच्चीस बाण मारे। सैनिकों को एक एक, सारथी को दस बाहनों में तीन तीन बाण मार कर घायल कर दिया। प्रद्युम्न जी के ऐसे विकट पराक्रम को देख कर सभी चकित हो गये। तब शाल्व के मन्त्री द्युमान ने प्रद्युम्न जी पर अपनी गदा का ऐसा प्रहार किया कि प्रद्युम्न जी का वक्षस्थल फट गया। वे अचेत होकर रथ में गिर गये। तब उनका सारथि उन्हें युद्ध से लेकर द्वारिका में चला गया। उसने अपने सारथि धर्म का पालन किया। जब दो घड़ी पश्चात् प्रद्युम्न जी की मूर्छा जगी तब सारथी पर अति क्रोधित हुए और बोले—हे सारथि! तुमने मुझे युद्ध क्षेत्र से लाकर बड़ा अपराध किया है। अभी तक मेरे वंश में काई भी ऐसा वीर नहीं हुआ है। जिसने युद्ध क्षेत्र से पीठ दिखाई हो। जब मेरे पिता तथा ताऊ बलरामजी सुनेंगे तब मुझ से क्या कहेंगे। जब मेरी अन्य भाभियाँ सुनेंगी तब मुझ से अवश्य कहेंगी कि तुम कायर हो निपुंसक हो। तूने मेरे शिर पर कलंक का टीका लगा दिया।

तब सारथि बोला—हे स्वामी! सारथि का धर्म है कि महारथी के मूर्छित होने पर उसे युद्ध क्षेत्र से अलग करके उसके प्राणों की रक्षा करे। इसी भाँति महारथी का धर्म है कि युद्ध क्षेत्र में सारथि की रक्षा करे। मैंने तोअपने सारथि धर्म की रक्षा की है। आप मूर्छित होगये थे। इसी लिए मुझे ऐसा करना पड़ा था। —❀—

॥ सतहत्तरवाँ अध्याय ॥

शाल्व वध

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! जब प्रद्युम्न मूर्छित होकर द्वारिकापुरी को चले गये थे और जब तक वे लौट कर आये तब तक शाल्व ने अपार यादव सेना का नाश कर दिया था। अब प्रद्युम्न जी ने शीघ्रता से आकर शाल्व की उस प्रगति को रोका। इसी भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी की अनुपस्थिति में वह शाल्व तथा यदु-

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वंशियों का युद्ध सत्ताईस दिन तक चलता रहा।

उधर इन्द्रप्रस्थ में विराजमान श्रीकृष्णचन्द्र को घोर अपशकुन होने लगे वे समझ गये कि द्वारिका में अवश्य ही कोई उपद्रव उठ खड़ा हुआ है। वे तत्काल कुन्ती धर्मराज युधिष्ठिर तथा अन्य भाइयों से विदा हो कर दोनों भाई द्वारिका को रवाना हो गये। जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका पहुँचे तब सचमुच ही उन्हें वहाँ घोर उपद्रव पाया। तब बलरामजी को द्वारिका की रक्षा का भार सौंप कर स्वयं शाल्व के सम्मुख आए। जब यदुवंशियों ने गरुड़ध्वज भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के रथ को अपने मध्य में देखा तब उनके शरीरों में प्राण आगए और वे अति प्रसन्न हो विजय की पूरी आशा करने लगे। अब उन्होंने मान लिया कि हमारे रक्षक आगए अब हमें कोई चिन्ता नहीं है। हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को देखते ही शाल्व ने उनके सारथि दारुक पर अपनी शक्ति का प्रयोग किया किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे मार्ग में ही काट गिराया। तब शाल्व पर सोलह बाणों का एक साथ ही प्रहार किया। उस के विमान को अपने बाणों से जर जर कर दिया। शाल्व ने श्रीकृष्णचन्द्र की बाँई भुजा में एक बाण ऐसा मारा जिसकी चोट से उनका शारंग धनुष हाथ से छूट कर गिर पड़ा। इस अनहोनी घटना को देख कर सर्वत्र हाहाकार मच गया। शाल्व ने गर्ज कर कहा—रे मूढ़! तू ने शिशुपाल आदि को ही धोखे से मार कर अपने को वीर समझ रक्खा होगा। वीर तुम्हें जब जानूँ जब मेरे सम्मुख ठहर सको।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—रे मूर्ख! जो वीर होते हैं वे गर्जते नहीं हैं। अब तेरी मृत्यु शिर पर छा रही है। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी चौमुह की गदा शाल्व की पसली पर मारी जिसकी चोट से वह काँपने लगा तथा रक्त उगलने लगा। तब शाल्व अन्तर्ध्यान होगया। तब एक पुरुष रोता हुआ श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आया कि तुम्हारे पिता बसुदेव को शाल्व द्वारिका से बाँध कर ले आया है। उसी क्षण भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र ने देखा कि शाल्व ने उनके पिता बसुदेव के सिर को तलवार से काट कर एक हाथ में ले रक्खा है। यह देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जो माया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पतियों के भी स्वामी हैं कुछ चण के लिए विस्मित हो गये। वे कहने लगे कि जिन बलरामजी को जीतने की शक्ति त्रिलोकी में किसी को भी नहीं है उन्हें यह शाल्व जीत कर पिता बसुदेव को किस प्रकार ले आया ? तब उन्होंने अपने स्वरूप का ध्यान करके योग माया के द्वारा जान लिया कि यह तो केवल दानवी माया है। तब उन्होंने अपनी गदा के प्रहार से उस सौम नामक विमान के हजारों टुकड़े कर दिये। वह मायावी शाल्व पृथ्वीपर गिर पड़ा और गदा को हाथ में लेकर उनकी ओर दौड़ा। जब तक वह गदा का प्रहार भी न कर सका तब तक उसकी महाबली भुजा भाले से काट दी। तत्पश्चात् सुदर्शन चक्र से उसका शिर काट गिराया उसका मुकुट मण्डित शिर इस भांति पृथ्वी पर गिर पड़ा जिस भाँति वृत्रासुर का शिर इन्द्र के वज्र से कटकर गिर गया था।

॥ अठत्तरवाँ अध्याय ॥

दन्तवक्त्र तथा विदूरथ का वध और बलराम जी की तीर्थ यात्रा

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! दन्तवक्त्र नाम का एक महाबली दैत्य शिशुपाल शाल्व तथा पौंड्रक का बड़ा घनिष्ट मित्र था। वह मित्रों की मृत्यु से अति क्रोधित हो कर अकेला ही हाथ में गदा लेकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से लड़ने के लिए द्वारिकापुरी में आ धमका। उस दन्तवक्त्र की ललकार सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी हाथ में गदा लेकर द्वारिका से बाहर निकले। जब उन्हें अपने सम्मुख देख कर वह महाबली दन्तवक्त्र बोला—हे कृष्ण ! तू मेरे मामा का लड़का है किन्तु तू ने मेरे सभी मित्रों का संहार कर डाला है इससे मैं तुझे मार कर अपने मित्र के ऋण से उऋण होना चाहता हूँ। इतना कह कर उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर गदा का प्रहार किया। उसकी गदा से भगवान् तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने अपनी कौमुदी की गदा उस दन्तवक्त्र की छाती में दे मारी। उसकी चोट से वह मुँह से रक्त उगलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा उसकी ज्योति निकलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में समा गई।

दन्तवक्त्र का भाई विदूरथ अपने भाई की मृत्यु से दुखी होकर हाथ में ढाल तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र को मारने के लिए द्वारिका में आया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने चक्र से उसे भी मार डाला।

हे परीक्षित! जब बलराम जी ने यह जाना कि कौरव पाण्डवों में युद्ध की तैयारी हो रही हैं। और इस युद्ध के कराने में श्रीकृष्णचन्द्र का विशेष हाथ है, तब वे अपने को तटस्थ रखने के लिये तीर्थयात्रा को निकल पड़े। वे किसी भी पक्ष की ओर से लड़ना नहीं चाहते थे। वे प्रभास क्षेत्र, पृथूदक, विन्दुसार जितकूप आदि तीर्थों में स्नान दर्शन करते हुए विचरने लगे। तब वे नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ पर बड़े बड़े ऋषियों का दीर्घकाल तक चलने वाला सत्संगसत्र हो रहा था। सम्पूर्ण भारतवर्ष के ऋषि महर्षि वहाँ विराजमान थे और उन सब को व्यासजी के प्रिय शिष्य रोमहर्षण सूत पौराणिक कथा सुना रहे थे। तब बलराम जी वहाँ पहुँचे तो सभी ने उठकर उनका स्वागत किया, और उन्हें भगवान का अंशावतार समझ कर उन की पूजा की, किन्तु उन रोमहर्षण जी ने जो व्यास गद्दी पर विराजमान थे न तो उठ कर प्रणाम ही किया, और न उनका कोई स्वागत ही किया। वे सूत जी ज्यों के त्यों अपने आसन पर बैठे रहे। यह देख कर बलराम जी को बड़ा क्रोध आया वे बोले—यह नीच विलोम कुल (क्षत्रिय के द्वारा ब्राह्मणी के गर्भ से) उत्पन्न सूत अभिमान वश बड़े २ महात्माओं से ऊपर बैठा है। इसको अपने ज्ञान का अधिक घमण्ड है। इसने जान बूझ कर मेरा तिरस्कार किया है। यह पापी है, उद्दण्ड है, दण्ड का भागी है। वध करने योग्य है ऐसा कह कर उन्होंने वहाँ पड़ी हुई कुश की नोंक से उन रोमहर्षण पर प्रहार किया। झट रोमहर्षण मर गये। उन के इस कृत्य को देख कर सभी ऋषि महर्षि हाय हाय करने लगे और बलराम जी से बोले—हे भगवन्! आपने सूतजी को मार कर अच्छा नहीं किया। हम लोगों ने ही उन्हें ब्यास गद्दी पर बैठाया है। हमारा दीर्घ कालात्मक चलने वाला सत्सङ्गसत्र अब किस प्रकार समाप्त होगा! आपने बिना सोचे समझे अनजान से ऐसा काम कर डाला। आपको ब्रह्महत्या का पाप लगा है। इस लिए आप इस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित् अवश्य कीजिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपके न करने से सभी मनुष्य ऐसा ही आचरण करने लगेंगे, जिसके

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कारण फिर पाप की वृद्धि होगी। आपका अवतार तो धर्म की रक्षा के लिए ही हुआ है।

तब बलरामजी बोले—मैं लोक शिक्षा के लिए अवश्य ही धर्म का आचरण करूँगा, और जो आप उत्तम से उत्तम प्रायश्चित कहेंगे वही करूँगा। यदि आप रोमहर्षण को ही चाहते हैं तो मैं इन्हें अभी जीवित किये देता हूँ।

तब ऋषियों ने कहा—हे भगवन्! ऐसा कोई उपाय कीजिये जिससे आप का पराक्रम तथा इसकी मृत्यु झूँठ न पड़े, और हम लोगों ने तो इन्हें दीर्घकाल तक जीने का वरदान दिया था वह भी मिथ्या न हो।

तब बलरामजी बोले—हे ऋषियें! पुत्र रूप में पितृ आत्मा ही स्वयं प्रगट होती है। अतः रोमहर्षण के पुत्र आपको कथा सुनावेंगे। मैं उन्हें अपनी शक्ति से दीर्घायु बल शक्ति दिये देता हूँ। अब आप इस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित भी बतलाइये। ऋषि लोग बोले—हे बलराम जी! यहाँ पर बल्वल नाम का दानव हमारे धर्मसत्र में प्रत्येक पर्व पर विघ्न उत्पन्न करता है। आप कृपा करके उसे मार कर हमारा हित कीजिये। तत्पश्चात् आप एक वर्ष तक भारतवर्ष के समस्त तीर्थों का सेवन कीजिये। तब आपकी शुद्धि होगी।

॥ उन्नासीवाँ अध्याय ॥

बल्वल का बध तथा बलरामजी की तीर्थ यात्रा

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! पर्व के दिन तक बलरामजी उस दैत्य को मारने की प्रतीक्षा में वहीं ठहरे। जब पर्व का दिन आया तब वह दैत्य भयंकर आँधी के रूप में वहाँ आया और पीव, विष्टा उन ऋषियों पर बर्षाने लगा। तब बलराम जी ने अपने हल से उसे खींच कर मूसल से मार डाला।

उस दैत्य को मार कर वे तीर्थ यात्रा को चल दिये। कौशिकी नदी में स्नान किया फिर सरयू नदी के उद्गम स्थान पर गए और उसमें स्नान किया। फिर वहाँ से प्रयाग पहुँचे और पितरों का तर्पण किया। वहाँ से

In Public Domain. [Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पुलहाश्रम पहुँचे फिर गोमती गण्डकी विपाशा सोन आदि में स्नान किया फिर गया में जाकर पिण्डदान किये। फिर गङ्गासागर में पहुँचे। फिर परशुरामजी के दर्शनों के लिए महेन्द्र पर्वत पर गये। वहाँसे गोदावरी आदि में स्नान करते हुए कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान् शंकर के दर्शन किये। वहाँ से बालाजी, शिवकांची, विष्णुकांची होते हुए श्री रङ्गक्षेत्र में गये। फिर मथुरा होते हुए दक्षिण में सेतुबन्ध के दर्शन किए और वहाँ ब्राह्मणों को दस हजार गौ दान कीं। तत्पश्चात् अगस्त्य मुनि के आश्रम होते हुए कन्याकुमारी पहुँचे। वहाँ से लौट कर पंचाप्सरस तीर्थ में स्नान किया और दस हजार गौ वहाँ दान कीं।

तत्पश्चात् गौकर्ण तीर्थ में स्नान करके सूपरिक तीर्थ में आये। फिर दण्डकारण्य वन में होकर नर्मदा नदी में स्नान किये। फिर अपने प्रभास क्षेत्र में आये। वहाँ कौरव पाँडवों का युद्ध सुन कर उन्हें समझाने के लिए कुरुक्षेत्र में गये। वहाँ युद्ध की समाप्ति पर भीमसेन तथा दुर्योधन का गदा युद्ध हो रहा था।

जब बलरामजी वहाँ पहुँचे तब धर्मराज युधिष्ठिर नकुल सहदेव अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया तथा वे सभी चुपचाप खड़े रहे। उन्हें भय था कि न जाने बलराम जी क्या आज्ञा दें। तथा क्या कार्य करने इस समय यहाँ पधारे हैं। उस काल भीमसेन तथा दुर्योधन दोनों महाबली एक दूसरे को जीतने की इच्छा से मतवाले होकर द्वन्द युद्ध कर रहे थे। वे दोनों लहू से लथपथ थे किन्तु कोई भी युद्ध त्यागने की इच्छा नहीं कर रहा था। दोनों ही प्राणों की बाजी लगा कर दो उन्मत्त गजराजों की भाँति लड़ रहे थे। वे क्रोध में भर कर अनेक भाँति के दाँव-पेच तथा पैंतरे बदल रहे थे। तब बलरामजी ने कहा—हे दुर्योधन तथा भीमसेन! तुम दोनों ही महाबली हो तुम्हारे बल तथा पौरुष भी समान ही हैं। मैं यह जानता हूँ कि भीमसेन बल में अधिक हैं किन्तु दुर्योधन गदायुद्ध में अति कुशल है। दाव पेच तथा पैंतरे बाजी अधिक जानते हैं। इस कारण मुझे तो तुम दोनों में से किसी की भी हारजीत दिखाई नहीं देती है। अब तुम लोग व्यर्थ में मत लड़ो। जो होना था सो होगया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अब युद्ध बन्द करो। इसी में तुम्हारी भलाई है। किन्तु हे परीक्षित! वे तो शत्रु भाव के रङ्ग में ऐसे डूब चुके थे कि उन्होंने बलराम जी के कथन पर तनिक भी ध्यान न दिया और दोनों बराबर युद्ध करते रहे। उसी समय दुर्योधन को मारने की इच्छा से भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का संकेत पाते ही जब दुर्योधन ने उछल कर भीमसेन पर गदा का प्रहार किया तभी भीमसेन ने अपनी विशाल गदा घुमा कर दुर्योधन की जाँघ में मारी जिसके लगते ही जांघ टूट कर गिर पड़ी और दुर्योधन पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब भीमसेन ने क्रोध में आकर एक लात उसके सिर में मारी। इस अमानुषी अत्याचार को देख कर बलराम जी को अति क्रोध आया और मूसल लेकर भीमसेन को मारने दौड़े। वे बोले–रे मूर्ख! तूने गदा युद्ध नियम के विरुद्ध आचरण करके उसके कटि भाग से नीचे जांघ में गदा मारी है। दूसरा अपराध यह है कि गिरने पर भी उसके शिर में लात मारीहै। जिस पर राज मुकुट सदा विराजमान रहता था जिसके लिये पृथ्वी के राजा अपना शिर झुकाते थे। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने बलरामजी को रोक कर उन्हें शान्त किया और उस दुर्योधन के अत्याचार तथा भीमसेन की प्रतिज्ञा उन्हें समझाई। तब बलरामजी यह सब कुछ श्रीकृष्णचन्द्र की ही इच्छा समझ कर वहाँ से द्वारिका चले आये।

जब बलराम जी द्वारिका पहुँचे तब राजा उग्रसेन तथा प्रजाजनों ने उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् बलरामजी फिर नैमिषारण्य क्षेत्र में आये और वहाँ ऋषियों के आदेशानुसार बलराम जी ने अनेकों यज्ञ किये। हे परीक्षित! बलराम जी तो स्वयं यज्ञ पुरुष भगवान का अंश होने से यज्ञ रूप ही हैं किन्तु लोक शिक्षा के लिये उन्होंने ऐसा किया तत्पश्चात् अपनी पत्नी रेवती जी के साथ यज्ञान्त स्नान कर के द्वारिकापुरी को लौट आये। जो प्रेमी भक्त बलराम जी के इस चरित्र का गायन सायं प्रातः करता है उनका अति प्रिय भक्त होता है।

॥ अस्सावाँ अध्याय ॥

श्रीकृष्ण के द्वारा सुदामाजी की पूजा।

दो०–विप्र सुदामा बसत इक, प्रभु का भक्त महान।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दीन हीन तनु जपत हरि, देता सबको ज्ञान ॥
दारिद्र से दुख पाय अति, गयौ कृष्ण के द्वार ।
दो लोकन की रति दई, कीन्हा प्रभु सत्कार ॥

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी अति ब्राह्मण भक्त और दुखियों के दुख दूर करने वाले थे । इसलिए मैंने सुना है उन्होंने सुदामा जैसे दीन को अपनी कृपा से निहाल किया था उस की कथा सुनाने की कृपा कीजिए ।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! सुदामा नामका वह ब्राह्मण ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ विरक्त शान्ति चित्त जितेन्द्रिय तथा श्री कृष्णचन्द्रजी का परम मित्र था वह गृहस्थ होने पर भी संगृह परिगृह से दूर रहता था । प्रारब्ध वश जो मिल जावे उसी में सन्तुष्ट रहता था । उसके फटे हुए वस्त्र थे तथा भोजन का अभाव सदा ही बना रहता था । उसकी पत्नी अपने पति को खिला कर स्वयं भूखी रह जाती । दरिद्रता के कारण उनके अङ्ग सूखकर काँटा होगये थे । टूटी सी झोंपड़ी सो भी फूँसरहित होने के कारण गर्मी वर्षा तथा जाड़ा कुछ भी सहन करनेके योग्य नहींथी । एक दिन दरिद्रताकी मूर्ति दीन पत्नीने भूख और ठंडके कारण काँपतेहुए अपनेपतिसेकहा-

हे ब्रह्मदेव ! मैंने सुना है कि साक्षात् लक्ष्मी पति आपके मित्र हैं और वे अति ब्राह्मण भक्त भी हैं। फिर हे परम भाग्यशाली मेरे पूज्यदेव आप उनके निकट क्यों नहीं जाते। आपके समान तो कोई सौभाग्यशाली ही नहीं है। जिनके मित्र स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी हैं। आपके जाने पर वे अवश्य ही हमारी दरिद्रता को दूर कर देंगे वे इतने उदार और दयावान हैं कि जो भक्त उन्हें एक बार भी मन में भजता है वे उसे अपना सर्वस्व दान कर देते हैं। यदि वे आपको अपने भरण पोषण योग्य धन दे दें तो उनके लिए कोई बात नहीं है। पत्नी की यह बात सुनकर सुदामा जी बोले—हे प्रिये ! इसमें तो कोई आश्चर्य नहीं है कि मेरे मित्र दीनबन्धु और भक्त वत्सल हैं । किन्तु जब इतना जीवन इस दरिद्रता में व्यतीत हो चुका है तो अब इस शेष

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जीवन के लिये मैं उनसे क्या याचना करने जाऊँ। याचना करने पर मित्र भाव में स्वार्थपरता आजाती है। इसलिए तू इस हठ को त्याग कर जो भगवान् ने दिया है उसी भाँति सन्तोष से जीवन यापन कर। सुदामा की यह बात सुन कर ब्रह्माणी बोली—

हे पतिदेव ! यदि एक समय को भी आधा पेट भोजन मिल जाता तो भी मैं अपनी हठ को त्याग देती और तुम्हें कभी द्वारिका जाने का कष्ट न देती। पत्नी का आग्रह सुन कर और उसके अश्रु पूर्ण नेत्रों को देख कर सुदामा जी का हृदय दीनता के कारण दुखित हो उठा। और उन्होंने भगवत् दर्शन का परम लाभ समझ कर चलने का विचार किया।

उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—हे प्रिये ! मित्र के निकट जाने के लिए कुछ उनकी भेंट के लिए भी चाहिए एक तो वे मित्र हैं दूसरे वे राजा हैं। इसलिए कुछ न कुछ भेंट अवश्य चाहिए। तब ब्राह्मणी ने अपनी पड़ौसिन के यहाँ से चार मुट्ठी चिउड़े ला कर सुदामा जी के फटे चिथड़े में बाँध दिये। तत्पश्चात् सुदामा जी भगवान् का स्मरण करके उनके दर्शनों की लालसा करके द्वारिका को चल दिये।

वे मन ही मन यह सोचते जाते थे कि मैं भगवान् के दर्शन किस प्रकार करूँगा। मुझे उनके भव्य भवनों में कौन घुसने देगा। जब मैं उनसे मिलूँगा तो क्या वे मुझे पहचान लेंगे। अवश्य ही पहचान लेंगे। क्योंकि वे बड़े भक्तवत्सल दीन दयाल हैं। इस प्रकार विचार करते करते सुदामाजी द्वारिका पहुँच गये। उन्हें ब्राह्मण समझ कर किसी ने भी द्वारिका में नहीं रोका। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के महलों में पहुँच गए। जब उन्होंने जैसे ही महल में प्रवेश किया तब देखा कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र रुक्मिणीजी के साथ विराजमान हैं सुदामा जी को देखते ही भगवान् श्री कृष्णचन्द्र पलङ्ग से उठ कर दौड़े और अपने मित्र को पहचान कर उनके शरीर से लिपट गए और बोले—हे मित्र ! तुम अब तक कहाँ रहे। आज तुमने कैसे मुझे याद कर लिया। इस प्रकार प्रेमानन्द में मग्न होकर वह सुदामा को अपने महलों में ले आये। फिर अपने उसी पलंग पर जिस पर वे विराजमान थे बैठाल कर उन की विधिवत पूजा की। उनके

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पैर स्वयं पखारे और धूप दीप आदि से पूजन करके स्नान कराया और स्वच्छ वस्त्र पहना कर उत्तम भोजन कराये। रुक्मिणी जी उनका पङ्खा झलने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके चरण दबाने लगे। धन्य है भगवन्! दीन पर इतनी कृपा। उनकी अन्य रानियाँ सुदामा जी की सेवा सुश्रुषा में लग गईं। उस दीन तनक्षीण वस्त्रहीन ब्राह्मण को देख कर पत्नियाँ कहने लगीं कि न जाने इस ब्राह्मण ने कौनसा पुण्य किया है कि जिसने त्रिलोकी नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से इतना सत्कार पाया है। जिन्होंने अपनी प्रिय लक्ष्मी रुक्मिणीजी और भाई बलराम को त्याग कर इसको हृदय से लगाया है।

जब ब्राह्मण देवता भोजन आदि से निवृत्त होकर स्वस्थ चित्त होगए तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपना मित्र भाव प्रगट करते हुए अपनी गुरुकुल की पिछली बातें स्मरण करने लगे। तब वे बोले—हे मित्र! हमारा वह गुरुकुल जीवन भी बड़ा उत्तम था। जब हम तुम दोनों जङ्गल में लकड़ी लेने जाते उस समय दोनों ही मिल कर लकड़ी काटते। गट्ठर बाँध कर अपने सिर लादते गुरु की सेवा करते। मित्र एक दिन तो ऐसा हुआ कि हम तुम दोनों लकड़ी लेने गए। लकड़ी काट कर जभी सिर पर रक्खी तभी बड़ी भारी आँधी और वर्षा आई। उस समय हम तुम दोनों वर्षा की बौछारों के कारण इधर उधर भटकने लगे। तब हमारे परम दयालु गुरु सान्दीपनि वहाँ आये और वे हमको वहाँ से लिवा ले गए। हे मित्र! गुरुकुल के निवास में ऐसी अनेकों घटनाएँ हमारे साथ घटीं किन्तु हम तुम सदा साथ २ रहते थे।

॥ इक्यासीवाँ अध्याय ॥

सुदामा की ऐश्वर्य प्राप्ति

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! इसी भाँति सुदामा जी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के निकट द्वारिका में कई माँस तक बड़े आनन्द पूर्वक रहे। सुदामा जी का मन उस बैकुण्ठ धाम को त्यागने के लिए नहीं करता था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की सेवा शुश्रूषा तथा प्रेमभाव में इतने मग्न हो गए थे कि वे अपनी दुखिनी पत्नी को भूल गए। किन्तु

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने मित्र के मन की इच्छाओं को जानने वाले थे। वे एक दिन बोले—हे प्रिय मित्र! हमारी भाभी ने हमारे लिए क्या भेंट की सामिग्री भेजी है। मेरे प्यारे भक्त मुझे थोड़ा सा भी प्रेम पूर्वक कुछ भी अर्पण करते हैं मैं उसी में सन्तुष्ट हो जाता हूँ और मेरे लिए वह ही बहुत होता है जो मुझे भक्ति भाव से फल फूल पत्ता अथवा जल ही अर्पण करता है। मैं उस में तुरन्त ही भोग लगा देता हूँ। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के इस प्रकार कहने पर भी उस ब्राह्मण ने उनके वैभव को देख कर लज्जा वश वे चिउड़े निकाल कर नहीं दिये। उन्होंने लज्जा से अपना सिर नीचा कर लिया। हे परीक्षित! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अन्तर्यामी और घट घट की जानने वाले हैं उनसे कोई बात छिपी थोड़े ही रही। वे सुदामा की इच्छा तथा पतिव्रता स्त्री द्वारा लक्ष्मी की कामना से द्वारिका भेजना आदि सभी बातें जानते थे। तब उन्होंने सुदामा को अटल ऐश्वर्य देने के लिए उन की बगल में छिपी हुई चिउड़े की पोटली को निकाल लिया और बड़े आदर पूर्वक उसको खोल कर बोले—हे मेरे मित्र! यह तो तुम बहुत ही मेरे मन की प्यारी भेंट लाये हो। इन चिउड़ों से मैं ही संतुष्ट न हूँगा। बल्कि यह सारा विश्व सन्तुष्ट हो जावेगा। इतना कहकर उन्होंने एक मुट्ठी चिउड़ा खाये। ज्यों ही वे दूसरी मुट्ठी खाने लगे त्योंही रुक्मिणी जी ने उनका हाथ पकड़ लिया। वे बोलीं—हे विश्वात्मन्! बस इतना ही पर्याप्त है इस लोक और परलोक दोनों के लिए आपने एक मुट्ठी चिउड़े से ही इस दीन ब्राह्मण को समृद्धिशाली बना दिया। अब दूसरी मुट्ठी खाकर क्या आप मुझे भी दे डालना चाहते हैं।

हे परीक्षित! सुदामा जी रात को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के निकट ही रहे और दूसरे दिन सुर्योदय होने पर उन से विदा लेकर घर की राह ली। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र काफी दूर तक उन्हें पहुँचाने के लिए उनके साथ गये। तब ब्राह्मण को नमस्कार करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका को चले आये प्रत्यक्ष में न तो उस ब्राह्मण ने ही कुछ माँगा और न उन्होंने ही कुछ दिया। त्रिलोकी का ऐश्वर्य देने पर भी भगवान्

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रीकृष्णचन्द्र को अपनी कृपणता पर अति लज्जा आई।

वह ब्राह्मण भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का स्मरण करते हुए और उनकी सेवा सुश्रूषा तथा प्रेमभाव का स्मरण करते हुए अपने नगर में पहुँच गया जब उसने देखा कि मेरी झोंपड़ी के स्थान पर एक अति सुन्दर भव्य भवन बन गया है और वहाँ पर अनन्त घोड़े, हाथी रथ सेवक इधर से उधर घूम रहे हैं तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह हड़बड़ा कर इधर उधर देखने लगा। उसकी प्रिय पत्नी साक्षात् लक्ष्मी के समान सुवामा के सम्मुख आई और बोली—हे पतिदेव पधारिये यह आपही का महल है। सुदामा भगवान् श्रीकृष्ण के कृपाप्रसाद को भली प्रकार जानते थे। उन्होंने उन्हें नमस्कार किया और अपनी पत्नी के साथ महल में प्रवेश किया।

हे परीक्षित! वह महल क्या था देवराज इन्द्र का निवासस्थान था उस में अनेक प्रकार के मणियों के खम्भा के हाथी दाँत स्तम्भे फेनकी भाँति कोमल बिछौने सोने के सिंहासन बहुत से दास दासियाँ थीं। किन्तु यह सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी परम ज्ञानी सुदामा का मन उस में लीन नहीं हुआ। उनकी भक्ति भगवान् में दिन दूनी रात चौगुनी और भी अधिक बढ़ गई। जो पुरुष इस कथा को सुनता है तथा पढ़ता है वह कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है और उसे भगवान् की प्राप्ति हो जाती है।

॥ ब्यासीवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम की गोप तथा गोपियों से भेंट।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक समय सर्वग्रास सूर्यग्रहण का पर्व आया। उस पर्व में भारतवर्ष के नरनारी सूर्यग्रहण स्नान के लिये समन्त पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में आये। यह तीर्थ वह है जिसको परशुराम जी ने क्षत्रियों के रुधिर से पाँच तालाब भरकर बनाया था। वहाँ पर परशुरामजी ने लोक मर्यादा की स्थापना के लिये प्रायश्चित स्वरूप अनेक यज्ञ किये थे।

हे परीक्षित! इस पर्व के अवसर पर द्वारिकावासी अक्रूर वसुदेव, उग्रसेन, तथा अन्य वृद्ध जन, प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध आदि यदुवंशी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सेनापति कृतवर्मा तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वलराम अपने पुत्र पौत्रों तथा पत्नियों के साथ वहाँ पर पधारे। यहाँ भगवान् यदुवंशियों ने उस पर्व के समय वहाँ पर स्नान किये। सहस्रों गौएँ पुण्य की। ग्रहण मोक्ष हो जाने के बाद परशुराम जी के वनाये हुए कुण्डों में स्नान किया और ब्राह्मणों को भोजन कराया। तत्पश्चात् अपने इष्ट-मित्र सम्बन्धी, राजा लोगों से मिलना भेंटना आरम्भ किया। वहाँ पर मत्स्य उशीनर, कौशल, विधर्व कुरु, श्रंजय काम्बोज, कैकेय, भद्रकुन्ति, आनर्त, केरल आदि अनेक देशों के सैकड़ों नरपति यादवों के मित्र पक्ष तथा शत्रु पक्ष के आये हुए थे। इनके अतिरिक्त, नन्द, उपनन्द, गोप तथा गोपियाँ आदि भी आई थीं।

हे परीक्षित! यदुवंशी, वसुदेव, उग्रसेन आदि सभी तथा भगवान् वलराम श्रीकृष्णचन्द्र अपने पुत्र तथा पत्नियों सहित सभी सम्बन्धियों मित्रों से बड़े प्रेम पूर्वक मिले और उन का बड़ा भारी आदर सत्कार किया। किसी को धन देकर सन्तुष्ट किया, किसी को भोजन, वस्त्र तथा ताम्बूल आदि प्रदान कर के सन्तुष्ट किया। स्त्रियाँ परस्पर सौहार्द मन्द २ मुस्कान परम पवित्र सी चितवन आदि से देख देख कर मिलने लगीं। एक दूसरे के वक्षःस्थलों को दाबने लगीं। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। इस भाँति सभी यथायोग्य सम्मान कर के मिलने लगे।

हे परीक्षित! कुन्ती अपने भाई वसुदेव जी से माता पिता बहिनों, तथा भाभियों आदि से मिलकर अति आनन्दित हुई और श्रीकृष्णचन्द्र को देख कर सब दुक्खों को भूल गई।

कुन्ती बोली—हे भैया वसुदेव! तुम सभी मुझ अभागिन को भूल गये। मैंने अपनी आँखों से देख लिया कि जब विधाता टेढ़ा होता है तो सब टेढ़े हो जाते हैं।

वसुदेव जी बोले—हे बहिन! तुम जानती हो कि हमारे जीवन का बहुत सा भोग उस दुष्ट कंस के कारावास में ही व्यतीत हुआ था। उस दुष्ट कंस के दुखों से सभी यादव दुखी थे। जहाँ तहाँ प्राण बचा कर भाग गए थे। अब कहीं द्वारिका में आकर शान्ति पूर्वक बैठे हैं। उस समय तुम पर भी विपत्ति पर विपत्ति पड़ रहीं थी उसी समय राजा पाण्डु का देहावसान

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

होगया और दुष्ट दुर्योधन के अत्याचारों से सभी तुम्हारे बालक दुखी थे।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! उग्रसेन वसुदेव आदि सभी यदुवंशियों ने कुन्ती का बड़ा सम्मान किया। भीष्म जी, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र गाँधारी आदि का भी भली प्रकार सम्मान किया। युधिष्ठिर आदि पांडवों को कण्ठ से लगाय अति सम्मानित किया। इसी भाँति अन्य देश के आये हुए राजा लोगों का भली प्रकार सम्मान किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी के उदार हृदय की उदारता, दयालुता तथा स्नेहशीलता आदि से सभी राजा सम्मानित हो हो कर आनन्दित होने लगे। कुन्ती, सृंजय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तिभोज, विराट भीष्मक, राजा नग्नाजित, प्रसन्जित द्रुपद शल्य, धृष्टकेतु, काशी नरेश, दमघोष, विशालाक्ष, जनक, भद्रसेन आदि अनेक राजा लोग जो धर्मराज युधिष्ठर के अनुयायी थे सभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारा भली प्रकार सम्मान प्राप्त करके तथा उनके नयनाभिराम श्री विग्रह के दर्शन करके अति आनन्दित हुए।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब नन्दबाबा यशोदा रानी तथा अन्य गोप गोपियों ने सुना कि यहाँ वसुदेव, उग्रसेन, तथा श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजी पधारे हुए हैं तब वे उनसे मिलने के लिए वहाँ आये। सभी परस्पर एक दूसरे का गाढ़भाव से आलिङ्गन करके अति प्रसन्न हुए। सब प्रेमानन्द में विह्वल हो उठे। नन्दजी तथा यशोदा माता ने अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजी को कण्ठ से लगाया। इनका कण्ठ प्रेमानन्द में विह्वल होकर रुंध गया। श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी ने नन्द यशोदा के चरण स्पर्श किये। फिर गोपग्वालों ने अपने प्रिय सखा श्याम तथा राम को अपने अंकवार में भर लिया। वे प्रेमाश्रु बहा २ कर मिलने लगे। रोहिणी देवकी दोनों यशोदा रानी से मिलीं और बोलीं—हे यशोदाजी ! आप लोगों ने हम पर बड़ी कृपा की है उसे हम जन्म जन्म नहीं भूल सकतीं हैं। हमारे पुत्रों को अपने पुत्र समझ कर पाला पोषा। अपनी पुतलियों से भी अधिक प्यारा रक्खा। हमारे लिये आप लोगों ने अनेक कष्ट सहे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! जब उन गोपियों ने अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र को देखा तो वे प्रेमानन्द में मग्न होगईं। जिन प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र के विरह में एक २ दिन एक २ कल्प के समान काटे थे उन्हीं गोपियों को आज उनके श्याम सुन्दर मिल गये। वे अपनी विरह व्यथा का स्मरण करके टुस टुस नेत्रों से अश्रु बहाने लगीं। मानों चिर काल से बिछुड़े प्रेमी प्रियमत को प्राप्त करके उन्हें अपने दुःखों का सागर दिखा रही हों। अथवा अपनी विरह व्यथा को नेत्राश्रुओं द्वारा बहा रहीं हों। वे सभी गोपियाँ उनमें तन्मय होगईं किसी ने उनका हाथ पकड़ा किसी ने उनके चरण पकड़े किसी ने उनका दुपट्टा पकड़ा किसी ने पीताम्बर पकड़ा कोई वैसे ही एकटक बिना पलक डाले उनकी रूप माधुरी का पान करने लगीं। गोपियों की यह दशा देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन्हें एकान्त में लेगये। वहाँ उन्हें अपने हृदय से लगाया उनकी विरह व्यथा शाँत की कुशल मङ्गल पूछा। और हँसते हुए बोले—हे प्रेयसियो ! मेरे कारण आपने महान क्लेश सहे। हम तुम जैसी प्रेयसियों को छोड़कर शत्रुओं के चक्कर में फँस गये। हे प्रिय गोपियो ! तुमने मुझे अवश्य ही अकृतज्ञ समझा होगा। तुम लोग मुझसे रुष्ट तो नहीं हो गईं हो। यदि ऐसा है तो अपने प्यारे के प्रति अन्याय है। हे प्यारियो ! मिलना बिछुड़ना संयोग वियोग ये सब प्रारब्धानुसार ही होते हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि तुमको मेरा अनन्य प्रेम प्राप्त है जो बड़े २ योगीजनों को भी उपलब्ध नहीं है। मेरे स्वरूप को प्राप्त करने का एक मात्र साधन मेरी प्रेम भक्ति ही है। हे प्यारी गोपियो ! जितने भी भौतिक पदार्थ हैं उन सब में भीतर बाहर आगे पीछे बीच में सर्वत्र मैं ही समाया हुआ हूँ। इसी भाँति समस्त प्राणियों में भी मैं ही निवास करता हूँ। मैं ही जीव हूँ मैं ही आत्मा हूँ। जीव रूप से भोगता हूँ। और आत्मा रूप से सबका साक्षी हूँ। इन दोनों से भी ऊपर अविनाशी सत्यब्रह्म भी मैं ही हूँ। यह सभी मेरे में ही भास रहे हैं।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित् ! उस आध्यात्म ज्ञान का उपदेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन गोपियों को दिया। जिसके प्राप्त करने से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वे अपने लिंग शरीर को नष्ट करने में समर्थ हो गईं और सदा के लिए भगवान् की प्राप्ति करली।

वे बोलीं—हे भगवन्! इस संसार सागर से पार करने में आप के चरण कमल ही समर्थ हैं। हम घर गृहस्थी में फँसी रहती हैं। केवल ऐसी कृपा कीजिये जिससे आप के चरणों का सदा हमें ध्यान रहे। उन्हें कभी न भूलें।

॥ तिरासीवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पटरानियों के साथ द्रोपदी का वार्तालाप

दोहा—पटरानी श्रीकृष्ण की, मिली द्रौपदि से आय।
कुशल पूछि बैठी सभी, करत बात सुख पाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब सभी नरपति पूज्यजन गुरुजन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की अनेक भाँति से स्तुति कर रहेथे उधर पांडवों की प्रिय रानी द्रोपदी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की पटरानियों से प्रेमालाप कर रहीं थी। द्रोपदी जी बोलीं—हे देवियो! तुम सबको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने किस प्रकार वरण किया है। मैं उनकी यह लीला सुनना चाहती हूँ। क्योंकि वे आदि पुरुष भगवान् हैं। वे केवल पुरुषों का सा आचरण ही करते हैं।

तब रुक्मिणी जी बोलीं—हे द्रोपदी जी! मेरा भाई तो यह चाहता था कि मेरा विवाह चेदिराज शिशुपाल के साथ करें किंतु मैं चाहती थी कि मैं तो श्रीकृष्णचन्द्र को ही अपना पति बनाऊँगी। मैंने अनेक सन्त पुरुषों से उनकी प्रशंसा सुन रक्खी थी। तब मुझे वे हर कर जरासन्ध शिशुपाल आदि के देखते देखते द्वारिका ले आये। और मेरा पाणिग्रहण किया।

सत्यभामा बोली—द्रोपदी जी! मेरे पिता ने अपने भाई प्रसेन की मृत्यु का मिथ्या कलंक द्वारिका नाथ पर लगाया। उस कलंक को मिटाने के लिए वे जामवन्त को जीत उससे प्रसेनजित की मणी ले आये और मेरे पिता सत्राजित को दे दी। इससे लज्जित होकर मेरे पिता ने मणी सहित मुझे द्वारिकानाथ के अर्पण कर दिया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जाम्बन्ती बोली–हे द्रौपदी जी ! जब मणि की खोज करते करते यदुनाथ मेरे पिता की गुफा में पहुँचे तब पिता ने सत्ताईस दिन तक उन से युद्ध किया जब उन्हें यह पता चल गया कि ये उनके स्वामी राम हैं तब उन्होंने मणि सहित मुझे उनके चरणों में समर्पित कर दिया।

कालिन्दी बोली—हे पाण्डव प्रिये ! मैंने इन्हीं ब्रजनाथ की प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या की एक दिन तुम्हारे पति अर्जुन तथा ब्रजनाथ दोनों मेरे निकट गये । मुझे अपनी भक्ति में लीन देखकर ब्रजनाथ ने मुझे वरण कर लिया मैं सदा उन्हीं के चरणों में लीन रहती हूँ ।

मित्रविन्दा बोली—हे कृष्णा ! मुझे यदुपति स्वयंवर से जीत कर ले आये हैं। मैं तो सदा यही चाहती हूँ कि जन्म जन्मान्त सदा मेरे स्वामी ये ही यदुनाथ रहें ।

सत्या बोली–हे पांचाली ! मेरे पिता ने सात बैल एक साथ ही नाथने की सत्य प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। देश देश के राजा आये किन्तु कोई भी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका। किन्तु मेरा चित्त सदा यदुपति में ही रहता था अतः अपने प्रेमीजन की सुधि लेने वाले यदुपति स्वयं मेरे नगर में गये और उन सातों बैलों को नाथ कर मुझे प्राप्त कर लिया।

भद्रा बोली–हे द्रोपदी जी ! मेरे स्वामी यदुनाथ मेरे मामा के पुत्र हैं किन्तु मेरी इच्छा इन्हीं को वरण करने की जान कर मेरे माता पिता ने मुझे उनको समर्पित कर दिया।

लक्ष्मणा बोली–हे द्रोपदी जी ! देवर्षि नारद जी के मुख से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की लीलाओं को सुन कर मेरा मन उन्हीं में आसक्त हो गया था। हे सम्राज्ञी ! मेरे पिता वृहत्सेन ने भी तुम्हारे पिता की भाँति यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई स्वयंवर में मत्स्यवेध करेगा वही मेरी प्यारी पुत्री को वरण करेगा। बहिन ! मेरे स्वयंवर के मत्स्य में तुम्हारे स्वयंवर के मत्स्य से यह विशेषता थी कि वह बाहर से भी ढक दिया गया था। वेधने वाला केवल जल में परछाईं ही देख पाता था।

हजारों देश देश के नरपति मेरी प्राप्ति के लिए मत्स्य वेधन के लिए पहुँचे। लेकिन कोई भी वेध न सका। कोई राजा तो स्वयम्वर में रक्खे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हुये धनुष बाण को उठा कर ही रह गये। वे उस पर प्रत्यंचा भी न चढ़ा सके। बहुत से राजा उस धनुष को उठा भी न सके। हे रानी! जो बड़े बड़े धनुर्धर वीर जरासन्ध अम्ब नरेश शिशुपाल, भीमसेन दुर्योधन, कर्ण वे आदि धनुष पर प्रत्यंचा तो चढ़ा सके किन्तु उन्हें यह भी पता न चला कि जिस मछली को वेधना है वह है किधर तुम्हारे पति गाँडीव धारी अर्जुन ने मछली की परछाँई जल में देख ली और यह भी समझ गये कि वह मछली कहाँ है। उन्होंने बड़ी सावधानी से निशाना भी लगाया किन्तु वे मत्स वेध न सके केवल बाण से स्पर्श ही हो पाया। हे रानी जी! जब इस भाँति अनेकों राजा लोग निराश हो गये तब भगवान् यदुनाथ ने उस धनुष को खेल ही खेल में उठा लिया और जल में मछली की परछाँई देख कर एक ही बाण से मछली को वेध कर नीचे गिरा दिया। उस समय ठीक मध्यान्ह का समय था। आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और जय जय कार की ध्वनि होने लगी। हे पाँचाली! उसी समय मैंने स्वयंवर में प्रवेश किया। मेरे पैरों में पायल बज रहे थे। उनकी ध्वनि को सुन कर तथा मेरे रूप लावण्य को देख कर सभी नरपति अचेत से हो गये। मैंने झट बड़ी आतुरता से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के गले में जयमाल डालदी। मेरा हृदय तो पहले से ही उनमें अनुरक्त था। अब मुझे अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त होने पर जितनी प्रसन्नता हुई उसका अनुमान मैं स्वयं नहीं कर सकती यह देख कर राजा लोगों को बड़ा डाह हुआ। वे सभी युद्ध के लिए तैयार हुए। किन्तु शारङ्गपाणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने सबको परास्त करके मुझे अपनी दिव्य द्वारिकापुरी में ले आये। जिस दिन मैं द्वारिकापुरी में आई उस दिन द्वारिकापुरी विशेष रूप से सजाई गई थी। मेरे पिता भाई बन्धु अति प्रसन्न हुये। उन्होंने असंख्य दास दासियाँ तथा रत्नराशि दहेज में दी।

सोलह हजार पत्नियों की ओर से रोहिणी जी बोलीं—हे द्रोपदी जी! भौमासुर पृथ्वी के सारे राजाओं को जीत कर उनकी कन्याओं को हर लाया था। और उसने उनको अपने साथ ब्याहने के लिए एक बन्दीगृह में बन्द कर दिया था। किन्तु हम सब भगवान् श्रीकृष्ण

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

चन्द्रजी के अतिरिक्त और किसी को अपना पती नहीं बनाना चाहती थीं। इसी कारण हमारी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उन्होंने इस भौमासुर दैत्य को मार कर हमें अपने चरणों की दासियाँ बना लीं।

हे पाँचाली! हमें अपने स्वामी को छोड़ कर साम्राज्य, इन्द्र पद अणिमा आदि सिद्धियाँ ब्रह्मा का पद यहाँ तक कि सालोक्य और सारूप्य मुक्ति की भी इच्छा नहीं है केवल हम इन्हीं के चरणों में अपना सिर रक्खे रहती हैं।

॥ चौरासीवाँ अध्याय ॥

बसुदेव जी का यज्ञ करना

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! तुम ने देख लिया कि उनकी पत्नियों का प्रेम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रति कितना था। उनकी यह बात कुन्ती, गाँधारी, द्रोपदी, सुभद्रा अन्य नरपतियों की पत्नियाँ तथा ब्रज की उन गोपियों ने भी सुनी उनके अलौकिक प्रेम को देख कर सभी अत्यन्त मुग्ध और आश्चर्य में हुईं। इस भाँति जब स्त्रियों में स्त्रियाँ और पुरुषों में पुरुष बात चीत कर रहे थे तब वहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी और बलरामजी के दर्शनों के लिए श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वैपायन, व्यास, देवर्षि नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, भगवान् परशुराम, वशिष्ठ, गालब, भृगु, पुलिस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत सनक सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा बामदेव जी आदि उच्चकोटि के सभी महर्षि ब्रह्मर्षि तथा देवर्षि पधारे। उन ऋषियों को देख कर सभी नर पति, धर्मराज युधिष्ठिर और पाँडव, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम सहसा उठ खड़े हुए। और उन्हें प्रणाम करके बड़े आदर भाव से स्वागत आसन पाद्य, अर्घ्य, पुष्प माला, धूप चन्दन आदि से उनका पूजन, किया। जब सब ऋषि लोग बैठ गए तब धर्म की मर्यादा रखनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मधुर और मेघ के समान गम्भीर वाणी से इस प्रकार बोले—उनके भाषण को सुनने के लिए सभी लोग लालायित थे।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले—धन्य हैं हमारे भाग! आज आप

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लोगों के दर्शन पाकर हमारा जन्म सफल हो गया। जिन योगेश्वरों के दर्शन बड़े बड़े देवता भी नहीं कर सकते उन के दर्शन आज हमें अनायास ही प्राप्त हुये। केवल जल से भरे तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते। मिट्टी पत्थर की मूर्तियाँ ही देवता नहीं होतीं। सन्त पुरुष ही वास्तव में तीर्थ हैं। और वे ही देवता हैं क्यों कि तीर्थ तथा देवता बहुत काल तक सेवन करने से फल देते हैं और पवित्र करते हैं। किन्तु सन्त पुरुषों के दो घड़ी के सत्सङ्ग से ही भेद बुद्धि का नाश हो कर पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे सभा सदो तथा महात्माओ! जो मनुष्य अपने शरीर को ही आत्मा मान कर मैं तथा मेरे पन के अभिमान से स्त्री पुत्रादि को ही तथा मिट्टी पत्थर काष्ठ आदि की मूर्तियों को ही देवता तथा तीर्थों कोही सब कुछ मान बैठते हैं वे वास्तव में ज्ञानी होने पर भी अज्ञानी और मूढ़ हैं।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले स्वयं प्रकाश हैं जिनका ज्ञान गूढ़ और अखण्ड है उन के इस गूढ़ भाषण को सुन कर सभी ऋषि मुनी चुप रह गए। उनकी बुद्धि चक्कर में आगई। वे उनके भाषण के तात्पर्य को न समझ सके। बहुत विचार करने के पश्चात् वे इस निश्चन पर पहुँचे कि सर्वेश्वर भगवान् लोक शिक्षा के लिये ही सामान्य मनुष्य की भाँति कर्म करते हैं। ऐसा समझ कर सभी ऋषिगण मुस्कराते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से बोले—हे भगवन्! प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा मरीचि आदि तथा बड़े २ तत्व ज्ञानी हम लोग आप की माया से सदा मोहित रहते हैं आप सर्वेश्वर परमात्मा होते हुए भी मनुष्यों की सी चेष्टाएँ करके अपने को छिपाये हुए हैं धन्य है आप की लीलाएं कितनी आश्चर्यमयी तथा विचित्र हैं जिस प्रकार पृथ्वी वृक्ष आदि विकारों से एक होने पर भी अनेक हो जाते हैं उस भाँति आप भी एक हो कर अनेक और अनेक हो कर एक रूप धारण कर लेते हैं। आप ही इस जगत की रचना रक्षा तथा संहार करते रहते हैं। आप में स्वजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद कुछ भी नहीं है। यह सब कुछ आप अपनी लीला के लिए करते हैं और उन के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

कर्मों में लिप्त नहीं होते हैं। आपने ही अब यदुकुल में जन्म लिया है हे भगवन्! बड़े बड़े तत्व ज्ञानी मुनि अपनी योग साधना के द्वारा आपके चरण कमलों को हृदय में धारण करते हैं। हमें भी आज बड़े सौभाग्य वश आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं। हे भगवन्! हम आपके भक्त हैं। हम पर कृपा कीजिये और अपनी भक्ति के द्वारा हमारे इस लिंग शरीर रूप जीव कोष को नष्ट कर दीजिये।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! इस भाँति उन योगीजनों ने उनकी स्तुति की और उन सभी नरपतियों से अनुमति लेकर अपने आश्रम को ले जाने के लिए उठ खड़े हुए तब उसी समय परम ज्ञानी वसुदेव जी उनके निकट आये और नम्रता पूर्वक उन्हें प्रणाम करके उनके चरण पकड़ लिये।

वसुदेव जी बोले—हे ऋषियो! मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। आप सन्त पुरुष सभी जीवों पर अनुग्रह करते हैं। मेरे पर अनुग्रह करके मुझे ऐसा कोई कर्म अच्छा अनुष्ठान बताइये जिससे मेरी मोक्ष हो जावे।

नारद जी बोले—हे ऋषियो! यह कोई अचम्भे की बात नहीं है जिन वसुदेव जी ने आदि पुरुष भगवान नारायण जो मोक्ष को देने वाले हैं उनको जन्म दिया है वे ही वसुदेव अज्ञानी की भाँति हम से मोक्ष पूछते हैं। वास्तव में यह स्वाभाविक ही बात है। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचंद्र को अपना बालक समझ रक्खा है क्योंकि संसार में बहुत पास रहने पर मनुष्यों के अनादर का कारण हो जाता है। गङ्गातट पर रहने वाले मनुष्य नित्य गङ्गाजी में स्नान नहीं करते। वे दूसरे तीर्थों में ही जाते हैं भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी स्वयं मोक्ष देने वाले हैं वे अद्वितीय परमात्मा हैं। जब वे अपने स्वरूप को अपनी शक्ति से ढक लेते हैं तब मूर्ख लोग उन्हें पहिचान नहीं सकते।

हे परीक्षित्! तत्पश्चात् उन ऋषियों ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बलराम जी तथा अन्य सभी राजाओं के सन्मुख ही वसुदेव जी से कहा—हे वसुदेव जी! कर्म वासनाओं तथा कर्मों के फल को नष्ट करने का केवल एक यह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उपाय है कि यज्ञों के द्वारा यज्ञपति भगवान् की आराधना की जावे त्रिकालज्ञ मुनियों ने चित्त शान्ति का यही सुगम साधन बताया है। इसी से मोक्ष प्राप्त होती है। आप ऋषि और पितरों के ऋण से उऋण हो चुके हैं। प्रत्येक मनुष्य देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितर ऋण देकर उऋण होता है। यज्ञ करके देव ऋण से अध्ययन करके ऋषि ऋण से, तथा पुत्र उत्पन्न करके पितर ऋण से उऋण हो जाता है। आज आप को देव ऋण से उऋण होना है इसलिए देवताओं की प्रसन्नता के लिए यज्ञ कीजिये। इन सबसे उऋण होकर संसार से सन्यास ले लीजिये। हे ब्रह्मदेव जी! आदि पुरुष मोक्ष के दाता तो तुम्हारे ये दोनों पुत्र ही हैं फिर आपसे बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! परम ज्ञानी बसुदेवजी ने ऋषियों के ऐसे बचन सुनकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और यज्ञ करने के लिए उन परम ज्ञानी ऋषियों को ऋत्विज बनाया और पुण्य क्षेत्र कुरुक्षेत्र में उत्तमोत्तम सामिग्री एकत्र करके यज्ञ की दीक्षा ली। उस समय बासुदेवजी तथा उनकी पत्नियों ने स्नान करके उत्तमोत्तम वस्त्र धारण किए। सभी यदुवंशियों ने सज धज कर माला आदि धारण कीं। उस काल मृदङ्ग पखावज शङ्ख ढोल आदि माङ्गलिक बाजे बजने लगे। सूत मागध स्तुति करने लगे। बसुदेवजी अपनी पत्नियों के साथ यज्ञशाला में पधारे। उनके देवकी आदि अठारह पत्नियाँ थीं। उन सब के मध्य में उनकी ऐसी शोभा थी जैसे नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा की शोभा होती है। यज्ञ की दीक्षा लेने पर बसुदेव जी ने मृग चर्म धारण किया और उनकी पत्नियों ने सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। उस समय भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तथा बलराम जी अपने भाई बन्धु स्त्री पुत्रों सहित ऐसे शोभायमान थे जैसे अपनी अचिन्त्य शक्ति के साथ वे नारायण स्वरूप में शोभायमान होते हैं।

बसुदेवजी ने अनेक यज्ञों द्वारा भगवान् विष्णु की आराधना की तत्पश्चात् ऋत्विजों को बहुत सी सुन्दर दूध वाली गौएँ वस्त्रालंकार उनको दक्षिणा में दिये। तत्पश्चात् महर्षियों ने बसुदेव जी को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अवभ्रथ स्नान कराया। तत्पश्चात् परशुरामजी के बनाये हुये रामह्रद में स्नान किया। उनकी पत्नियों ने ब्राह्मणों से लेकर कुत्तों तक को भोजन कराया। तत्पश्चात् अपने सभी बन्धुओं सुहृदों, इष्ट मित्रों तथा वहाँ पर आये हुए नरपतियोंको निमंत्रित करके उनका भलीभाँति सत्कार किया। वे सभी राजालोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा लेकर अपने अपने नगरों को गये। धर्मराज युधिष्ठिर भीम अर्जुन भीष्मजी, धृतराष्ट्र आदि सभी उनके विरह में व्याकुल होकर उनसे विदाई लेने लगे। हे राजा परीक्षित्! नन्दबाबा, गोपग्वाल, तथा गोपियाँ सभी बहुत काल तक उनके साथ वहीं पर रहे। वे सब उनके स्नेह वश ऐसे बँधे हुए थे कि उन्हें छोड़ने के लिए उनका चित्त ही नहीं करता था। इस भाँति वे सभी तीन महीने तक बलराम तथा श्री कृष्णचन्द्रजी के प्रेम में वहीं पर रहे। तत्पश्चात् बसुदेवजी ने उन सब ब्रजवासियों को बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा बहुत सा धन सम्पत्ति देकर उन्हें विदा किया। हे परीक्षित्! अब वर्षा ऋतु आ पहुँची थी। इसलिए बसुदेवजी उग्रसेन आदि सभी यदुवंशी वहाँ से द्वारिका के लिए चले आये।

॥ पिचासीवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारा बसुदेवजी को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति तथा देवकी जी के छः पुत्रों को लौटा कर लाना।

दो०—दीन ज्ञान बसुदेव को, श्रीकृष्ण यदुराय।
पुत्र देवकी के सभी, दीन्हे छिन में लाय॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! कुरुक्षेत्र से आने के पश्चात एक दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी अपने पिता बसुदेव तथा माता देवकी को प्रातःकालीन प्रणाम करने के लिए गये। उन दोनों को देखकर बसुदेवजी प्रेमानन्द में विह्वल हो उठे और बोले—हे भगवन्! मैने कुरुक्षेत्र में ऋषियों के मुख से तुम्हारी महिमा बहुत कुछ सुनी है और मैंने स्वयं तुम्हारे ऐश्वर्य पूर्ण चरित्र भी देखे हैं। इन सब से मुझे इस बात का दृढ़ निश्चय हो गया है कि आप दोनों साधारण पुरुष नहीं हैं बल्कि भगवान् नारायण तथा भगवान् संकर्षण हैं। मैं जानता हूँ कि

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आप ही इस जगत के आधार तथा निर्माता हैं। अपनी क्रीड़ा के लिए इस जगत को बनाते हैं। जिस काल में तथा जिस रूप में जो कुछ भी रहता तथा होता है वह सब तुम्हीं हो। आप ही प्रकृति रूपी भोग्य तथा पुरुष से भोक्ता हैं और इन दोनों से परे रह कर इन दोनों के न्यायक अर्थात् शासक हो। प्राण तथा जीव हो।

यह चेतन अचेतन सब तुम्हीं हो। तुम स्वतन्त्र हो। यह सम्पूर्ण गृह, नक्षत्र सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी आदि सब तुम्हीं हो। तुम्हीं परावाणी, पश्यन्ती, मध्यमा तथा निर्देश करने वाले पग वैखरी वाणी सब तुम्हीं हो। तुम्हीं अधिष्ठात्र देवता हो। तुम समस्त भूत, अहङ्कार इन्द्रिय मन बुद्धि आदि हो। तुम स्वयं प्रकाश पर:ब्रह्म हो। तथा जन्म मृत्यु रहित अनादि अनन्त तथा अखण्ड हो। परमात्मा ने मुझे बड़े सौभाग्य से यह मनुष्य शरीर दिया। किन्तु तुम्हारी माया के वश में होकर मैंने तुम्हें पहिचाना नहीं और मैंने तुम्हें पुत्र समझा। यहाँ तक कि मेरी समस्त आयु भी समाप्त हो गई। यह मैं भली प्रकार जानता हूँ कि तुम दोनों सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों के स्वामी हो। मेरे पुत्र नहीं हो। इस पृथ्वी के पापी राजाओं का नाश करने लिए ही तुमने अवतार लिया है। यह बात तुमने स्वयं मुझसे कही थी। इसलिए हे परमात्मन्! अब मैं तुम्हारी शरण हूँ। अब मुझे इस जन्म मृत्यु रूपी संसार से बचाओ। हे प्रभो! तुमने जन्म के समय मुझ से यह कहा था कि मैं अजन्मा हूँ किन्तु फिर भी मैं धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिए युग २ में अवतार लेता हूँ। हे भगवन्! तुम्हारी योग माया को कौन जान सकता है। मैं सभी के मुख से तुम्हारा ही यश सुनाता रहता हूँ।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र वसुदेव जी को इस भाँति ज्ञान सम्पन्न देख कर मधुर वाणी से मुस्कराते हुए बोले हे पिताजी! आपने मुझे लक्ष बनाकर यह जो ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है। यह सब कुछ सत्य है। मैं भैया बलराम तथा आप लोग सारी द्वारिका तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् यह सब का सब ब्रह्म स्वरूप ही है। हे पिता जी! यह आत्मा एक है। किन्तु वह अपने गुणों की सृष्टि रच

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर उन गुणों के द्वारा निर्मित पंच भूतों में अनेक रूप धारण कर लेता है। यह एक होते हुए भी अनेक बन जाता है। यह स्वयं प्रकाश होते हुये भी दिव्य, अपना स्वरूप होने पर भी अपने से अलग, नित्य होने पर भी अनित्य तथा निर्गुण होने पर भी सगुण रूप में प्रतीत होने लगता है। जिस भाँति एक ही सोने से अनेक आभूषण बनने पर अनेक रूप प्रतीत होने लगते हैं। किन्तु हैं सब वास्तव में सोना ही उसी भाँति आत्मा में भी उपाधियों के भेद से अनेक रूप प्रतीत होने लगते हैं इस प्रकार समझो कि सूर्य की धूप में अनेक जल भरे हुये बर्तन रक्खे जावें। तो उन सब में अलग २ सूर्यकी परछाईं दृष्टि आने लगती है। वास्तव में सूर्य तो एक ही है। उसके रूप उनमें अनेक दृष्टि आने लगे। इसलिये आपका यह कथन सत्य है कि सारा जगत मेरा ही रूप है। मैं एक होते हुए भी अनेक रूपों में दृष्टि आता हूँ। इस लिए तुम अपनी नानात्व बुद्धि अर्थात् अनेक प्रकार के प्राणियों में भेद भाव त्याग कर केवल मुझी को सबका रूप समझो।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ऐसे गूढ़ वचनों को सुनकर वसुदेव जी ने सब में भेद भाव को त्याग दिया और उन्हीं परमात्मा का रूप सब में समझ कर आनन्द में मग्न हो गये और वाणी से मौन होकर शाँत होगये।

हे परीक्षित! उस समय वहाँ देवकी जी विराजमान थीं। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी से कहा—हे प्रभो! आप दोनों साक्षात् भगवान् हैं। और आप दोनों ने अपने मरे हुये गुरुपुत्र को लाकर उन्हें दे दिया था। मुझे अपने पुत्रों के कारण जो कंस ने मार दिये थे अब तक बड़ी पीड़ा सता रही है। कृपा कर मेरे उन बच्चों को ला दीजिये।

देवकी जी की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी अपनी योगमाया का आश्रय लेकर सुतल लोक में गए। वहाँ पर दैत्य राज बलि राज्य करते थे। उन्हें देखते ही परमानन्द में मग्न हो गए। उन्होंने झट उठकर उनके चरणों में प्रणाम किया और श्रेष्ठ आसन पर बैठाल करके उन दोनों महापुरुषों की विधिवत पूजा की। उनके चरण

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पखार कर अपने परिवार सहित सिर पर धारण किया तत्पश्चात् दैत्यराज बलि ने बहुमूल्य रत्न वस्त्राभूषण, चन्दन, धूप दीप श्रेष्ठ भोजन तथा ताम्बूल आदि से उनकी पूजा की।

दैत्यराज बलि बार बार उनके चरणों को अपने मस्तक पर रख कर आनन्दित होने लगे और उनकी अनेक भाँति से स्तुति करने लगे।

तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे दैत्यराज ! स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मा के पुत्र मरीचि की पत्नी ऊर्णा के गर्भ से ६ पुत्र उत्पन्न हुए थे जब उन्होंने यह देखा कि ब्रह्माजी अपनी पुत्री के साथ समागम के लिये लालायित हैं तब वे उनका परिहास करने लगे। तब ब्रह्माजी ने क्रोधित होकर उन्हें शाप दिया कि तुम असुर हो जाओ। तत्पश्चात् उन्होंने हिरण्यकशिपु के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लिया। अब उन छहों को मेरी योगमाया ने देवकी के गर्भ में रख दिया था। किंतु उनके उत्पन्न होते ही कंस ने उनकी हत्या करदी। हे बलि ! हम उन पुत्रों को लेने यहाँ आये हैं। वे अब अपने शाप से मुक्त हो जावेंगे और मेरा स्पर्श, पाते ही अपने लोक को चले जावेंगे। हे परीक्षित ! इतना कह कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप हो गये। उस बलि ने उन छहों पुत्रों को लाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलराम जी को दे दिया। उन छहों के नाम स्मर, उद्गीथ परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत, तथा घृणी थे। माता देवकी अपने पुत्रों को देखकर अति प्रसन्न हुई और उनके स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। उस अमृत मय दूध को पीकर उन छहों पुत्रों की मुक्ति हो गई और वे देवता रूप में होकर अपने लोकों को चले गये। यह देखकर देवकी जी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे मरे हुए पुत्र लौट भी आए और चले भी गए। यह अवश्य ही श्रीकृष्ण की कोई लीला है। यह निश्चय करके वे शांति होगईं।

सूतजी बोले—हे शौनकादि ऋषियो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की सभी लीलायें अमृत मयी तथा परमानन्द देने वाली हैं जो इनका श्रवण तथा कीर्तन करता तथा दूसरों को सुनाता है उसकी भगवान् में भक्ति हो जाती है और उन्हें अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ छियासीवाँ अध्याय ॥

सुभद्रा हरण तथा भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मण के यहाँ मिथिलापुरी में एक साथ ही गमन।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! एक समय तुम्हारे दादा महावीर अर्जुन तीर्थ यात्रा करते हुये प्रभास क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि बलरामजी अपनी बहन सुभद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ करना चाहते हैं। उन्होंने यह भी सुना कि वसुदेव तथा श्रीकृष्णचन्द्र इस सम्बन्ध में राजी नहीं है। तब सुभद्रा को प्राप्त करने की इच्छा तुम्हारे दादा अर्जुन के हृदय में जाग्रत हो उठी। वे त्रिदण्डी वैष्णव का वेश बनाकर द्वारिका में आये और सुभद्रा प्राप्ति की इच्छा से वर्षाऋतुके चार महीने वहीं रहे बलराम जी आदि उन्हें न पहिचान सके।

एक दिन बलरामजी ने उनका निमन्त्रण किया और उनको अपने घर भोजन कराने ले गये। अर्जुन ने बड़े प्रेम से भोजन किया। उस समय उन्होंने परम सुन्दरी सुभद्रा को भी देखा। अर्जुन सुभद्रा को देख कर अति प्रसन्न हुये और उन्होंने उसको अपनी पत्नी बनाने का दृढ़ संकल्प किया।

हे परीक्षित्! तुम्हारे दादा अर्जुन भी साक्षात् सौन्दर्य की मूर्ति थे। सुभद्रा उन पर मोहित होगई और लजीली चितवन तथा मुस्कुराहट के साथ उनको देखने लगी और उसने उन्हें पति बनाना मन ही मन स्वीकार किया। अब अर्जुन सुभद्रा हरण का अवसर ढूँढ़ने लगे। वे अति व्याकुल रहने लगे।

एक दिन सुभद्रा जी देव दर्शन के लिये अपनी सखियों के साथ द्वारिका से बाहर निकल कर रैवतक पर्वत पर गईं अर्जुन तो घात लगाये बैठे ही रहते थे। उधर श्रीकृष्ण जी का भी संकेत उन्हें प्राप्त था। इसलिये यह उत्तम अवसर देखकर महारथी अर्जुन सुभद्रा को हर कर ले गये। जब यह बात बलरामजी को मालूम हुई तब वे अति क्रोधित हुए और अर्जुन को मारने के लिये दौड़े किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बसुदेव जी ने उन्हें समझा बुझा कर शांत कर दिया। तत्पश्चात् बलराम जी ने प्रसन्न होकर बहुत सा धन दास दासी दहेज में देकर बरवधू को विदा किया।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! मिथिलापुरी में राजा जनक और एक ब्राह्मण श्रुतदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त थे। वे भगवत भक्त पूर्ण काम परम शाँत तथा ज्ञानी थे। गृहस्थ में रहते हुए भी उससे विरक्त रहते थे। एक बार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने दोनों भक्तों पर कृपा करने के लिए रथ पर सवार हो मिथिलापुरी पहुँचे। उनके साथ नारद वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, आरुणि, मैं (शुकदेव) बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय च्यवन आदि सभी ऋषि थे। जब वे नगर में पहुँचे तो उनके शुभागमन को सुनकर राजा जनक और वह ब्राह्मण अपनी सामर्थानुसार उत्तम से उत्तम भेंट की सामग्री लेकर उनकी पूजा के लिए आए। जब भगवान् तथा उन ऋषियों की पूजा भली भांति करली तब उन दोनों ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से अपने यहाँ चलने का आग्रह किया। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने दोनों की इच्छा पूरी करने के लिए ऋषियों सहित अपने दो स्वरूप धारण कर लिए और दोनों को परमानन्द देने के लिए दोनों के घर चले गये। ब्राह्मण श्रुतदेव ने यह समझा कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तथा ऋषि मण्डली मेरे ही घर आये हैं और राजा जनक ने यह समझा कि सब मेरे ही घर पधारे हैं तब राजा बहुलाश्व (जनक) ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तथा ऋषि मण्डली को सुन्दर २ आसन प्रदान किये और अनेक प्रकार की सुन्दर २ वस्तुओं फूल माला चंदन आदि से उनका पूजन किया अपने प्रेमाश्रुओं से उनके लोक पावन चरण धोये और उत्तम भोजन कराया। जब भोजन से सब निवृत्त हो चुके तब राजा आनन्द मग्न होकर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के चरणों को अपनी गोद में लेकर दाबने लगें।

इसी भांति श्रुतदेव ब्राह्मण ने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र तथा ऋषि मण्डली को अपने घर ले जाकर उत्तम कुशासन, चटाई, पीढ़े बिछा दिये जब मुनियों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान हो गये तब ब्राह्मण

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ने अपनी पत्नी के साथ सब के चरण पखारे। और उनके चरणोदक से अपने कुटुम्बियों सहित सब को पवित्र कर दिया तदनन्तर सुगन्धित फूल गन्ध, खस, पुष्प तुलसी, कुश कमल, मधुर जल से उनकी पूजा की। और उत्तम सात्विक अन्न से सब को नैवैद्य अर्पण किया। उस समय श्रुतदेव तथा उसकी पत्नी दोनों के हृदय का हर्ष अपार था। जब वे सब भोजन आदि से निवृत होकर आराम से बैठ गये तब श्रुतदेव अपनी पत्नी तथा बाल बच्चों सहित उनकी सेवा में लग गये। और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पैर दबाते हुए इस प्रकार बोले–हे प्रभो! आप अव्यक्त तथा प्रकृति और जीवों से परे ब्रह्म स्वरूप हैं। आपने अपनी शक्तियों के द्वारा इस जगत की सृष्टि करके इस जगत में आत्मरूप से प्रवेश कर रक्खा है। आपने इस जगत की सृष्टि अपनी माया से इस भाँति की है जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नावस्था में अज्ञानवश अपने मन के द्वारा स्वप्न जगत की सृष्टि कर लेता है। और उस स्वप्न में वह अपने को अनेक कर्म करता हुआ पाता है। उसी भाँति आपने स्वयं अपने में ही अपनी माया के द्वारा इस जगत की रचना करली है और इस जगत में प्रविष्ट होकर अपने अनेकों रूप धारण कर लिये हैं। ये जितनी भी सृष्टि दृष्टि आती है सब आप ही के अनेकों रूपों का रूपान्तर है। जो पुरुष सदा आपकी लीला कथाओं को सुनते रहते हैं वे आपके इस तत्व को जान लेते हैं और फिर आपके द्वारा आपकी प्राप्ति कर लेते हैं हम सब आपके सेवक हैं। आपके दर्शनों से हमारे सब कलेश दूर हो गये।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित! अपने भक्त श्रुतदेव की ऐसी प्रार्थना सुन कर उनका हाथ पकड़ते हुए भगवान् इस प्रकार बोले—हे श्रुतदेव! यह महर्षि देवर्षि तुम पर कृपा करने के लिए पधारे हैं। ये अपने चरण रज से लोकों को पवित्र करते हुए मेरे साथ विचर रहे हैं। देवता तथा तीर्थों का बहुत काल तक सेवन करने से फल प्राप्त होता है किन्तु इन सन्त पुरुषों के दर्शन मात्र से ही उसी क्षण पवित्र हो जाता है। हे श्रुतदेव! पहले तो ब्राह्मण जन्म ही बड़ा दुर्लभ और परम श्रेष्ठ है यदि इस ब्राह्मण शरीर में मेरी तपस्या, विद्या, सन्तोष और उपासना भी संयुक्त है

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तो उसका तो कहना ही क्या है। ब्राह्मणों की अपेक्षा तो मुझे अपना यह चतुर्भुज स्वरूप भी अच्छा नहीं लगता है। क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेद मय हैं और मैं सर्व देवमय हूँ। जो अज्ञानी पुरुष इस बात को न समझ कर केवल मूर्ति पूजन तथा तीर्थ सेवन में ही लगे रहते हैं वे अपने को गड्ढे में डालते हैं। इसलिए हे श्रुतदेव! यह ब्राह्मण जो मेरे साथ हैं इन सब को मेरा ही रूप समझो और भली भाँति इनकी पूजा करो। इनकी पूजा में ही मेरी पूजा है। अन्यथा मेरी पूजा नहीं है।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आदेशानुसार उस ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा उन ब्रह्मर्षियों की एक ही भावना से पूजा तथा आराधना की। तब उस ब्राह्मण को भगवत् स्वरूप प्राप्त हो गया और राजा बहुलाश्व ने भी वही गति प्राप्ति की जो ब्राह्मण ने की थी। इस भाँति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने दोनों भक्तों को उपदेश कर तथा अपने स्वरूप का तात्पर्य समझाकर द्वारिका को लौट आये।

॥ सत्तासीवाँ अध्याय ॥

देव स्तुति

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन्! ब्रह्म, कार्य तथा कारण इन दोनों अवस्थाओं से हमेशा परे है, और न उस में सत, रज, तम ये तीनों गुण ही हैं। मन तथा वाणी से भी उसके स्वरूप को नहीं जाना जा सकता, और श्रुतियाँ गुण विषय का ही वर्णन करती हैं। वे उनके गुण, जाति, क्रिया तथा रूढ़िका ही निर्देषण करती हैं तब ऐसी दशा में श्रुतियों द्वारा निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किस भाँति होता है?

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! परमात्मा ही सर्वशक्तिमान तथा गुणों के भण्डार हैं। वास्तव में श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से तो भगवान् के सगुण रूप का ही निर्देषण करती हैं, किन्तु बुद्धि द्वारा विचार करने से उनका तात्पर्य निर्गुण का ही निरूपण करना होता है। विचार के लिए ही भगवान् ने सब जीवों को बुद्धि, इन्द्रिय, मन तथा प्राण दिये हैं। प्राणों के द्वारा प्राणी जीवन धारण करता है। श्रवणादि इन्द्रियों के द्वारा वह वेद तथा उनकी लीला कथाओं को सुनता है। मन के द्वारा उन पर

CC-0. Digitized by Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

विचार करता है और बुद्धि के द्वारा एक निश्चय पर पहुँचता है। इसी भाँति श्रुतियों के द्वारा निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार होता है। इसी कारण श्रुतियाँ पढ़ने में सगुणपरक होते हुए भी उसके अर्थ में निर्गुण परक ही हैं। ब्रह्म का ज्ञान कराने वाले उपनिषद का भी यही स्वरूप है। सनकादिक ऋषियों ने इसी भाँति अपने आत्म निश्चय के द्वारा इसको स्वीकार किया है। जो मनुष्य श्रद्धा से ग्रहण करता है, वह अनात्म भाव से मुक्त हो जाता है। इस विषय में मैं तुम को एक कथा सुनाता हूँ। एक समय की बात है भगवान् के परम प्रिय भक्त नारद जी अनेक लोकों में विचरते हुए बद्रिकाश्रम में भगवान् नारायण के निकट पहुँचे। वहाँ परलोक कल्याण के लिए भगवान् नर नारायण कल्प के आरम्भ से ही धर्म ज्ञान तथा संयम के साथ इस भारतवर्ष में घोर तप कर रहे हैं। जब वे नारायण कैलाश वासी ऋषि गणों के साथ बैठे हुए ब्रह्म का उपदेश कर रहे थे, उसी समय नारद जी वहाँ पहुँचे। तब उन्होंने नारद जी को इस सम्बन्ध में जो कथा सुनाई, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ यह कथा पूर्वकाल में उन नारायण ने जन लोक निवासियों के सम्मुख जब वे आपस में वेदों तथा श्रुतियों के तात्पर्य और ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार विनमय कर रहे थे, उस समय कही गई थी।

नारायण बोले—हे नारद जी! प्राचीनकाल में ब्रह्मा के पुत्र सनक सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार आदि ब्रह्मज्ञ ब्रह्माजी के साथ तथा अन्य जनलोक निवासी ब्रह्मऋषियों के साथ, एक ब्रह्मसत्र कर रहे थे। उस ब्रह्मसत्र में केवल ब्रह्मचर्य की चरचा चल रही थी उस समय तुम वहाँ पर नहीं थे। शान्त दीप में अनिरुद्ध के दर्शन के लिए गये हुए थे। उसी समय वहाँ पर उत्तम चर्चा होने लगी। ब्रह्म के सम्बन्ध में श्रुतियाँ भी स्पष्ट तात्पर्य वर्णन करने में असमर्थ होने के कारण वे भी शान्त होकर सुनने लगीं। उस समय सनन्दन जी वक्ता होकर अपने शेष भाइयों को ब्रह्म का स्वरूप बताने लगे। सनन्दन जी बोले—हे ब्रह्मर्षियो! जिस भाँति प्रातःकाल हो जाने पर सोए हुए सम्राट को जगाने के लिए बन्दीजन उनके निकट जाकर सम्राट के ऐश्वर्य, पराक्रम और सुन्दर यश का गायन करते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और उसके द्वारा उस सम्राट को जगाते हैं। उसी भाँति जब परमात्मा अपने रचे हुए इस सम्पूर्ण विश्व को अपने में लीन करके अपनी शक्तियों को समेट कर सो जाता है, तब प्रलय के अन्त में वे श्रुतियाँ हीं उनके स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए उनका सुयश गान करती हैं, और इस भाँति उनको जगाती हैं।

श्रुतियाँ कहती हैं—हे विश्वात्मन् । आप अजित हैं। सर्व श्रेष्ठ हैं कोई भी शक्ति आपको जीत नहीं सकती। आपकी जय हो, जय हो। हे परमात्मन आप समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं। आपकी माया एक ठगनी स्त्री की भाँति सज धज कर जगत के सारे जीवों को फँसाने के लिए और उनके स्वाभाविक स्वरूप को ढकने के लिए है। जो उन्हें अपने में ढक लेती है। हे भगवन् ! इस माया को नष्ट करने की शक्ति आपके अतिरिक्त इस जीव में नहीं है, क्योंकि आपही साधन, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियों को उत्पन्न करते हैं और आप ही उन्हें मिटा देते हैं। आप ही अपनी माया को मिटाने में समर्थ हैं। हम श्रुतियाँ ही इसका प्रमाण हैं। हे भगवन ! हम आपके वास्तविक स्वरूप का वर्णन करने में अति असमर्थ हैं, किन्तु जब आप अपनी माया के द्वारा सगुण रूप धारण कर लेते है। तब हम आपके स्वरूप का वर्णन भली भाँति करती हैं। हे भगवन् ! हम श्रुतियों के द्वारा इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि देवताओं का वर्णन किया जाता है किन्तु हमारे सभी मन्त्र अथवा मन्त्र का अर्थ समझने वाले ऋषि इस सारे विश्व को ब्रह्म का ही रूप मानते हैं क्योंकि जिस समय यह विश्व नहीं था, उस समय आप ही शेष थे। आप ही इस जगत की उत्पत्ति तथा प्रलय करते हैं जिस भाँति मिट्टी से बनने वाले बर्त्तन आदि मिट्टी में ही लीन हो जाते हैं इसी भाँति यह सम्पूर्ण विश्व आप से उत्पन्न होकर आप ही में लीन हो जाता है। अतः आप निर्विकार हैं। ये इन्द्र वरुण आदि देवताओं का वर्णन जो हम श्रुतियाँ करती हैं, वह आप ही के स्वरूप का वर्णन है।

हे भगवन ! मनुष्य सत्व, रज, तम इन त्रिगुणों से बनी हुई माया में उलझ जाते हैं। और आप एक चतुर नर की भाँति अपनी माया को

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

माया समझ भूल जाते हैं और आत्म ज्ञान के द्वारा अपने जन्म मरण आदि दोषों को मिटा कर आपके परमानन्द में मग्न हो जाते हैं। हे परमात्मन् ! जीव का मुख्य उद्देश्य यही है कि वह आपकी सेवा करे और आपकी आज्ञाओं का पालन करे और आप में लीन हो जावे। यदि जीवधारी प्राणी ऐसा नहीं करता है तो उसका शरीर केवल श्वास की धोंकनी है और उसका जीवन वृथा है। आपकी प्राप्ति के परमानंद के अतिरिक्त जगत में और कोई सुख नहीं है। क्योंकि आपको प्राप्त करनाही सच्चा और स्थाई रहने वाला सुख है और सांसारिक सुख तो केवल क्षणमात्र हैं और नाशवान हैं। हे भगवन् ! अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञान मय तथा आनन्दमय इन पञ्चकोषों में जीवरूप से आप ही रहते हैं और आप ही उन में तथा मेरे पन का भाव उत्पन्न करने वाले हैं। तब आपके बिना किसी भी भाँति भी सुख नहीं मिल सकता है। हे भगवन् ! जो कुछ भी वृत्तियों के द्वारा आस्तिक भाव अथवा नास्तिक भाव प्रतीत होता रहता है। आप उन सब से भी परे हैं। नेति नेति द्वारा इनका निषेध होने पर भी केवल आप ही शेष रह जाते हैं। इसलिए आप ही एक मात्र सत्य हैं सब असत्य है। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानियों ने आपकी प्राप्ति के बहुत से मार्ग कहे हैं। उन मार्गों में बहुत से प्राणी पूरक चक्र में अग्नि रूप से आपकी आराधना करते हैं। अरुण वंश के सम्पूर्ण ऋषि, हृदय में आपके सूक्ष्म ब्रह्मरूप की उपासना करते हैं। हे परमात्मन् ! हृदय से ही सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरंध्र तक गई है और यही आपके प्राप्त होने का उत्तम मार्ग है। जो योगी पुरुष इस उत्तम मार्ग को जान लेता है वह उससे ऊपर बढ़ कर जन्म मृत्यु से छुटकारा पा जाता है।

हे परमात्मन् ! पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस आदि जितनी भी योनियाँ हैं वे सब आपने ही बनाई हैं और आप ही उन सब में प्रवेश करके उन रूपों में हैं। जिस भाँति एक ही अग्नि छोटी बड़ी समस्त लकड़ियों में प्रविष्ट होती रहती है उसी भाँति आप भी भिन्न रूपों में कहीं उत्तम कहीं अधम योनियों में प्रतीत होते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इस कारण सन्त पुरुष अपनी निर्मल बुद्धि से आपकी पहिचान कर सर्वत्र आपको देखते हैं और आपके सत्यस्वरूप का साक्षात्कार कर लेते हैं।

हे परमात्मन्! यह जीव अपने कर्मानुसार ही अपने लिये शरीर का निर्माण करता है किन्तु वास्तव में यह शरीर को बनाने वाले कार्य कारण रूप आवरणों से रहित है। क्योंकि उन आवरणों की वास्तव में कोई सत्ता ही नहीं है वे सब आवरण नाशवान हैं। बहुत से तत्वज्ञानी पुरुष इस जीव को आपका ही अंश कहते हैं। जब इस जीव में बाहर भीतर कोई ऐसा आवरण जो उनको ढक सके नहीं है तब आपका तो कोई आवरण ढक ही नहीं सकता है। इसी कारण तत्वज्ञानी पुरुष जीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करके आपकी ही उपासना करते हैं क्योंकि आपकी उपासना के बिना अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान किसी भाँति नहीं हो सकता है।

हे परमात्मन्! आपके परमात्मा तत्व का ज्ञान होना अति कठिन है। इसी कारण आप अनेक अवतार लेकर ऐसी २ लीलायें करते हैं जिनके द्वारा आपके स्वरूप का ज्ञान हो सके। हे भगवन्! यह पञ्चतत्व से बना हुआ शरीर मिटने वाला है। किंतु यदि यह जीव चाहे तो उसी शरीर के द्वारा अपने थोड़े से जीवन में आपको प्राप्त कर सकता है क्योंकि यह शरीर जीवकी इच्छाके अनुसार ही काम करता है। जब शरीर जीव के अनुकूल है तब वह जीव आपको भी अनुकूल बना सकता है क्योंकि आप तो सदा जीव को अपनाने के लिये प्रस्तुत रहते हैं। इतना साधन होने पर भी जब यह जीव आप अविनाशी में अपने को नहीं लगाता है और अपने इस मिथ्या शरीर तथा कुटुम्बियों में लग जाता है इसका अर्थ यह है कि वह अपने को स्वयं आप ही नाश कर रहा है और अपने आप ही अधोगति को प्राप्त कर रहा है। उसकी सारी वृत्तियाँ शारीरिक विषय वासनाओं में लग जाती हैं तब वह पशुपक्षी आदि योनियों में बुरे बुरे शरीर प्राप्त करता है।

हे भगवन्! जो प्राणी इन्द्रियों को वश में करके योगाभ्यास के द्वारा हृदय में आपकी आराधना करता है। उसे आपके परम पद की प्राप्ति

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होती है। हे भगवन्! कहाँ तक कहें जो अज्ञान वश भी आपको किसी रूप में तथा किसी भाव से मानते हैं। वे आपको ही प्राप्त कर लेते हैं।

हे परमात्मन्! स्वयं ब्रह्मा सनकादिक मरीचि आदि सब आप से ही उत्पन्न हुए हैं और समय आने पर सब आप में ही समा जाते हैं। उस समय कोई ऐसा साधन नहीं रहता जिसके द्वारा यह सोया हुआ जीव आपको जान सके। क्योंकि यह सब कुछ आप में ही समा जाता है। यह वेद शास्त्र आदि भी आप में ही लीन हो जाते हैं उस समय केवल सर्वोत्तम मार्ग आपका भजन करना है उस समय आपको जानने की चेष्टा न करे केवल भजन करे। हेभगवन्! यह त्रिगुण मय जगत केवल आपके मन की कल्पना है किन्तु आप इसके अधिष्ठान होने के कारण यह जगत असत्य होते हुए भी सत्य प्रतीत होता है। इस कारण भोक्ता तथा भोग्य इन दोनों को तथा इस सम्बन्ध को आत्म ज्ञानी पुरुष आत्म रूप से सत्य ही मानते हैं। क्योंकि यह जगत आत्मा में ही कल्पित, व्याप्त है। इसी कारण इसको आत्म रूप मानते हैं। जो पुरुष कितने भी विद्वान होते हुये आप से विमुख हैं वे पशुओं के समान हैं।

हे भगवन्! आप मन बुद्धि इन्द्रयादि तथा चिन्तन आदि से हमेशा रहित हैं। क्योंकि आप स्वतःसिद्धि ज्ञानवान स्वयं प्रकाश होने के कारण इन इन्द्रियों आदि की आवश्यकता ही नहीं रखते। ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवता मनुष्यों से पूजा प्राप्त करके आपकी ही पूजा करते हैं। हे परमात्मन्! आप नित्य मुक्त तथा मायातीत हैं। किन्तु फिर भी अपने संकल्पमात्र से माया के साथ क्रीड़ा करते रहते हैं जब आप क्रीड़ा करने के लिये सृष्टि रचने की इच्छा करते हैं तब आपके संकेत मात्र से ही जीवों के सूक्ष्म शरीर तथा उनके सोये हुए पूर्व कर्म संस्कार जग उठते हैं। तभी आप उनके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति करते हैं आपका न कोई अपना है और न कोई पराया है।

हे परमात्मन्! आप नित्य एक रस हैं। यदि हम यह मान लें कि जीव असंख्य हैं और वे सब के सब नित्य एवं सर्व व्यापी हैं तब तो वे सभी आपके समान ही होंगे। उस दशा में आपको उनका शासक कभी

CC-0. In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नहीं माना जा सकता। क्योंकि ये तो सभी आपके ही समान ऐश्वर्य शाली होंगे। आप उनका नियन्त्रण कदापि नहीं कर सकते। आप उनका नियन्त्रण जभी कर सकते हैं जब वे आप से न्यून हों और आपसे उत्पन्न हुए हों। किन्तु आप सब के शासक हैं। इसलिए यह स्वतः सिद्ध है कि वे सब आप से ही उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण आप उनके नियन्त्रण कर्त्ता हैं। आप उनमें व्याप्त रहते हुए भी आपके स्वरूप का किसी को ज्ञान नहीं है कि आपका क्या स्वरूप है। जो लोग जैसा समझते हैं वैसा ही अपनी बुद्धि के द्वारा आपके स्वरूप का निरूपण कर लेते हैं। इसी कारण भिन्न २ मतों के द्वारा आपके भिन्न भिन्न स्वरूपों का वर्णन वे लोग करते हैं, और वे दुष्ट लोग अपने एक मत से दूसरे मत का खण्डन करके परस्पर लड़ते रहते हैं। आपका स्वरूप सभी मतों से परे है। यह जीव आप से उत्पन्न हुआ है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप ही जीव बनते हैं किन्तु इसका असली तात्पर्य यह है कि जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों ही अजन्मा हैं। उन दोनों का वास्तविक स्वरूप आप हैं। न उनका कभी जन्म होता है और न कभी वृत्तियाँ ही धारण करता है। अज्ञानतावश प्रकृति को पुरुष, और पुरुष को प्रकृति समझ लेने के कारण एक दूसरे का संयोग हो जाता है। उस संयोग के हो जाने से जीवों के विविध नाम तथा गुण मान लिये जाते हैं किन्तु अन्त में वे सब फिर आप में ही समा जाते हैं जिस भाँति एक अथाह समुद्र में छोटी छोटी नदियाँ इधर उधर घूम कर समा जाती हैं।

हे भगवन्! सभी जीव आपकी माया के द्वारा भ्रमित होकर भटकते रहते हैं। किन्तु ज्ञानी जन इस भ्रम को समझकर उसमें नहीं फँसते हैं और आपकी शरण में जाकर जन्म मृत्यु के चक्कर से छूट जाते हैं। आपके स्वरूप का ज्ञान करने के लिए उत्तम गुरु की परम आवश्यकता है। आप आनन्द स्वरूप हैं। आपके आनन्द के सामने स्त्री पुत्र देह धन स्वजन आदि का आनन्द तुच्छ और नाशवान है। जो पुरुष इस सिद्धांत को न मानकर स्त्री पुत्रादि में ही सुख मान कर रम जाता है। वह अपने को मटियामेट कर लेता है। जो वस्तु स्वभाव से ही सारहीन और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नाशवान हैं भला उसमें क्या सुख मिल सकता है। जो विवेकी जन हैं वे देह गेह में कभी नहीं फँसते क्योंकि उनसे जीव का विवेक वैराग्य, धैर्य, क्षमा तथा शांति आदि नष्ट हो जाते हैं। हे भगवन्! बहुत से पुरुष मानते हैं कि मिट्टी से बना हुआ बर्तन मिट्टी ही रूप होता है इसी भांति सत् (परमात्मा) से बना हुआ जगत् भी सत् अर्थात् परमात्मा है। किन्तु यह बात सत्य नहीं है। क्यों कि कारण और कार्य दोनों में बड़ा भेद होता है। पिता और पुत्र में एक दूसरे से भिन्नता होती है। इसी भाँति कार्य और कारण दोनों एक से नहीं होते। इस लिए इस अविद्या अर्थात् भ्रम (माया) और सत् अर्थात् परमात्मा का जब संयोग हो जाता है तभी इस जगत् की उत्पत्ति होती है। जिस भांति रस्सी में प्रतीत होने वाला सांप का भ्रम मिथ्या है उसी भाँति माया से रचा हुआ यह जगत भी मिथ्या है।

जो श्रुतियाँ कर्म फल को सत्य बताती हैं वे उन्हीं लोगों को भ्रम में डालती हैं जो कार्य में ही लगे रहते हैं वे यह नहीं जानते कि उन श्रुतियों का अर्थ कर्म फल की नित्यता बताने में नहीं है किन्तु उनका असली तात्पर्य उन नाशवान कर्म फलों से दूर करने का है जिसे निषेध कहते हैं। हे परमात्मन्! यह जगत आदि में भी नहीं था और अन्त में भी नहीं रहेगा तब बीचमें ही इसकी प्रतीति मिथ्या ही है। ना समझ मूर्ख ही इसको सत्य समझते हैं।

हे परमात्मन्! यह जीव आपकी माया से मोहित होकर जब अविद्या के आवरणमें ढक जाता है। वह अपने को स्वयं मानकर देहादि के अभिमान में फँस जाता है और जन्म मृत्यु के चक्कर में पड़ जाता है आप आपनी माया से इसी भांति कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं जैसे सर्प अपनी कैंचुली से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है इसी कारण आप सम्पूर्ण ऐश्वर्यों तथा अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त रहते हैं। इसी कारण आप का ऐश्वर्य धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य अनन्त और अपरमित है। जो बड़े बड़े ज्ञानी और योगीजन यह सब कुछ जानते हुए भी अपने मन को विषय वासनाओं में लगाये रहते हैं उनकी दशा वही है जैसे कोई पुरुष कण्ठ में

In Public Domain. Chambal Archives

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मणि डाल लेने पर इधर उधर खोजता फिरता है। जो पुरुष आपके वास्तविक स्वरूप को जान लेता है वह भोग्य और भोक्तापन के फलों से दूर हो जाता है। और वह आप में लीन हो जाता है।

हे भगवन्! जिनको आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं है वे भी आपकी लीलाओं तथा गुणों को सुन कर आपको अपने हृदय में बैठा लेते हैं। और आपकी प्रेम भक्ति के द्वारा आपकी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ये ब्रह्मा इन्द्रादि देवता आपके ऐश्वर्य की थाह नहीं पा सकते हैं। क्यों कि आप में काल की गति से अपने से दस गुने सात आवरणों से युक्त असंख्य ब्रह्मांड एक साथ घूमते रहते हैं। तब भला एक ब्रह्मांड का ज्ञान रखने वाला ब्रह्मा आपको कैसे जान सकता है।

भगवान् नारायण बोले—हे नारद! सनकादि ऋषियों ने इस भाँति आत्म स्वरूप का उपदेश सुनकर सनन्दन जी की अति पूजा की।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! देवर्षि नारद परमज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी संयमी तथा पूर्ण काम हैं। उन्होंने भगवान् नारायण का उपदेश अपने हृदय में ग्रहण कर लिया और उनको प्रणाम करके स्वयं मेरे पिता श्रीकृष्ण द्वैपायन के आश्रम को चल दिये। मेरे पिता ने नारद जी का बड़ा स्वागत किया। जब वे आसन पर बिराज गये तब उन्होंने भगवान् नारायण के द्वारा सुनी हुई उन वेद श्रुतियों का उपदेश मेरे पिता को दिया। हे परीक्षित्! तुमने जो प्रश्न किया था उसका उत्तर मैंने तुम्हें सुना दिया।

॥ अट्ठासीवाँ अध्याय ॥

भगवान् शंकर का संकट मोचन

राजा परीक्षित् बोले—हे भगवन्! हमने देखाकि जो भगवान् शंकर के भक्त होते हैं वे ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति युक्त होते हैं। और जो लक्ष्मीपति भगवान् नारायण के भक्त होते हैं वे लक्ष्मीहीन दरिद्र होते हैं। इसका क्या कारण है?

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! शिवजी हमेशा अपनी शक्ति से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

युक्त हैं वे तीनों गुणों से युक्त अहंकारके अधिष्ठातादेवता हैं उस अहंकारसे ही वैकारिक तेजस तथा तामस तीन भेद हैं। जिनसे दस इन्द्रियाँ पाँच महाभूत तथा एक मनकी सृष्टि हुई है।इसलिए इन सबके अधिष्ठाता देवताओं में से किसी एक की उपासना कर लेने पर सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त होजाते हैं। किन्तु हे परीक्षित्! भगवान् नारायण प्रकृति आदिसे परे हैं। वे गुण रहित हैं। वे सबके अन्तःकरण में व्याप्त तथा सबके साक्षी हैं। वे स्वयं गुणातीत हैं। इस कारण उनके भक्त भी गुणातीत हो जाते हैं। यह प्रश्न जो तुमने पूछा है यही प्रश्न तुम्हारे दादा युधिष्ठर ने अपने यज्ञ में भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र से पूछा था। तब उन्होंने उन्हें यही उत्तर दिया था।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे धर्मराज! जिस पर मेरी कृपा होती है उनका धन मैं पहले हर लेता हूँ। उसके निर्धन होने पर उसके सगे सम्बन्धी स्त्री पुत्रादि सब उससे सम्बन्ध छोड़ जाते हैं तब वह अपनी निर्धनावस्था से दुःखी होकर धन कमाने की चेष्टा करता है। मैं उसकी चेष्टाओं को निष्फल करता रहता हूँ। इस प्रकार बार बार असफल होने पर वह धन कमाने की इच्छा छोड़ देता है और वह मेरे प्रेमी भक्तों की शरण में आजाता है। रात दिन मेरा ही स्मरण करता है। तब मेरे भक्तों की कृपा से वह शुद्ध सच्चिदानन्द घन परमात्मा को प्राप्त कर लेता है कुछ प्राणी दूसरे देवताओं की आराधना करते हैं। वे देवता शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं और शीघ्र ही रुष्ट हो जाते हैं। उनसे वर प्राप्त करके बहुत से प्रमादी हो जाते हैं और धर्म मर्य्यादा का नाश करने लगते हैं।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ। एक समय भगवान् शंकर बड़े संकट में पड़ गये थे। शकुन का पुत्र वृकासुर एक बड़ा बली दैत्य था। उसने नारद जी को देख कर पूछा कि हे भगवन्! वरदाताओं में कौन श्रेष्ठ है? तब नारदजी ने कहा—हे दानवराज! तुम भगवान् शंकर की उपासना करो। वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। रावण तथा बाणासुर आदि ने उनको ही प्रसन्न करके महान् बल तथा ऐश्वर्य प्राप्त किया था। नारद जी की बात सुनकर उस दैत्य ने अपना शरीर काट काट कर अग्नि में हवन किया इस भाँति छः दिन

... Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तक अग्नि को शिवजी का मुख समझकर अपने अङ्गों को हवन कर चुका और फिर भी भगवान् शंकर के दर्शन नहीं हुए तब उसने सातवें दिन केदार तीर्थ में स्नान करके अपने सिर को कुल्हाड़े से काटने को उद्यत हुआ। जैसे ही उसने अपने सिर पर कुल्हाड़ा चलाया वैसे ही भगवान् शङ्कर उस हवन कुण्ड में से प्रगट हो गये और बोले—हे वृकासुर! मैं तुम से प्रसन्न हूँ। तुम जो वर चाहो वह मुझ से माँग लो। यह सुन कर वृकासुर बोला—हे भगवन्! जिसके सिर पर मैं हाथ रखदूँ वही भस्म हो जावे। यह सुन कर भगवान् शङ्कर ने कहा—तथास्तु! तब वह वृकासुर बोला भगवन् मैं आपके ही सिर पर हाथ रखूँगा। हे परीक्षित! उसकी नीयत खोटी थी। वह शङ्करजी को भस्म करके पार्वती जी को लेना चाहता था जब वह दैत्य शङ्कर जी की ओर बढ़ने लगा तब भगवान् शङ्कर भयभीत होकर भाग निकले। आगे आगे शङ्करजी और पीछे २ वह दैत्य दौड़ने लगा। भगवान् शंकर तीनों लोकों में गये किन्तु उनकी रक्षा कहीं भी न हो सकी। जब वे बैकुण्ठ लोक में गये और भगवान् नारायण को ही एक मात्र उस संकट के मोचन करने वाला समझा। भगवान् नारायण शङ्कर जी को आये हुए देख कर उनके संकट को समझ गये और अपनी योग माया से एक सुन्दर ब्रह्मचारी का रूप बना कर धीरें २ उस दैत्य के निकट आये और बाले—हे दैत्यराज! चित्त तो प्रसन्न है न? आप बहुत थके मालूम होते हो? आओ कुछ क्षण आराम करलो। इस शरीर के सुख में ही सुख है यदि कोई मेरे लायक सेवा हो तो उसे कहो। तुम किसी बड़े संकट में फँसे हो। मुझ से कहो? मैं तुम्हारे संकट को दूर करूँगा।

श्रीशुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! भगवान् की मधुर और अमृतमयी बात सुन कर वह दैत्य मोहित हो गया और उसने अपनी तपस्या से लेकर भगवान् शङ्कर से वर प्राप्त करने तक की सब कथा सुनादी। तब ब्रह्मचारी रूप में भगवान् हँसते हुए बोले—अरे! बस यही बात है। तुम को उस सन्यासी ने खूब बहकाया। वह तो दक्ष प्रजापति के शाप के कारण पागल और दुर्बुद्धि होगया है अब उसमें वर देने की शक्ति नहीं रही है। वह झूँठ मूँठ ढोंग बनाये फिरता है। तुम इतने बड़े

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

विद्वान होते हुये भी उस पर इतना विश्वास किये हो। यदि तुम्हें उसके वर की परीक्षा करनी है तो अपने सिर पर ही हाथ रख कर देख लो। यदि उसकी बात असत्य निकले तो उसे अवश्य दण्ड दो। इतना सुन कर दैत्य ने झट अपना हाथ अपने सिर पर रख लिया। हाथ के रखते ही उसका सिर खण्ड २ हो गया और वह जल कर भस्म हो गया तब आकाश में जय जय की ध्वनि होने लगी और देवता लोग पुष्पों की वर्षा करने लगे। तब भगवान् बोले हे शङ्कर जी! इसके अशुभ कर्मों ने ही इसे स्वयं मार डाला है। हे देवाधिदेव जो महापुरुषों का अपराध करता है उसका अवश्य ही नाश हो जाता है। आपके जगत् गुरु और मेरे परम भक्त होने से इसका नाश हो गया है।

हे परीक्षित्! जो भगवान् शंकरके इस संकट मोचन का पाठ करता है वह संपूर्ण संकटों से मुक्त हो जाता है और उसको शत्रु भय नहीं होता।

॥ नवासीवाँ अध्याय ॥

भृगु के द्वारा तीनों देवों की परीक्षा और ब्राह्मण के मरे हुए पुत्रों को वापिस लाना।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! एक समय सरस्वती के तट पर सब ब्रह्मर्षियों तथा देवर्षियों में इस विषय पर वाद विवाद होने लगा कि ब्रह्मा-शंकर तथा विष्णु इन तीनों महादेवों में कौन सब से बड़ा है। तब इस कार्य की परीक्षा के लिये सब ने ब्रह्मा जी के पुत्र भृगुजी को निश्चित किया। भृगुजी पहले ब्रह्मलोक में अपने पिता ब्रह्मा के निकट गये। ब्रह्माजी अपने पुत्र को आया हुआ देख कर अति प्रसन्न हुए। किन्तु भृगु जी ने न तो उन्हें प्रणाम किया और न उनकी स्तुति बन्दना की। यह देख कर ब्रह्माजी को अति क्रोध आया और वे क्रोध के कारण तमतमा उठे। किन्तु अपने ज्ञान के कारण उस क्रोध को दवा लिया।

तब भृगुजी वहाँ से शंकर जी के पास कैलाश पर्वत पर पहुँचे। शंकर जी अपने भाई भृगु को आते हुये देख कर प्रसन्नता से उनसे मिलने के लिये उठ खड़े हुये। किन्तु भृगुजी बिना मिले हुये उनसे बोले तुम लोक तथा वेद की मर्यादा का उल्लंघन करते हो इसलिये मैं तुम से नहीं

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

मिलूँगा। इतना सुन कर भगवान् शंकर को बड़ा क्रोध आया और वे त्रिशूल लेकर उन्हें मारने को दौड़े। किन्तु भगवती पार्वती ने उनके पैर पकड़ कर उन्हें शान्त किया तब भृगुजी वहाँ से चल कर भगवान् नारायण के बैकुण्ठ धाम में पहुँचे। वहाँ पर भगवान् नारायण लक्ष्मी की गोद में सिर रख कर शयन कर रहे थे। भृगुजी ने जाते ही भगवान् नारायण की छाती में लात मारी। लात के लगते ही भगवान नारायण ने अति विनीत भाव से उठकर उनके चरण पकड़ लिये और बोले—हे ब्रह्मन्! आपने बड़ी कृपा की। आपने मुझे तथा मेरे इस बैकुण्ठधाम को अपने चरण स्पर्श से पवित्र कर दिया। हे ब्रह्मदेव! आपके चरण में चोट तो नहीं आई? आपके चरण कमल से भी अति कोमल हैं और मेरा यह वक्षःस्थल बज्र से अति कठोर है। आइये! इस उत्तम सिंहासन पर विराजिए। भगवान् के ऐसे बचन सुनकर भृगुजी अति सुखी तथा तृप्त होगये और नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे वे चुपचाप वहाँ से चले आये। जब उन्होंने उन ऋषियों की मण्डली में लौट कर ब्रह्मा, शंकर तथा भगवान् नारायण की यह सारी कथा सुनाई जिसे सुनकर सभी ब्रह्मर्षियों ने भगवान नारायण को ही सर्वोत्तम देव माना।

सूतजी बोले—हे शौनकादिक ऋषियो! भगवान् शुकदेवजी के मुख से निकली हुई यह कथा अमृत के समान है। इसको पीकर सभी थकावट दूर हो जाती है।

श्री शुकदेवजी बोले—एक समय की बात है कि द्वारिकापुरी में एक ब्राह्मणी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ और वह जन्मते ही मर गया तब वह ब्राह्मण अपने उस बालक को लेकर उग्रसेन की सभा में आया और अति दुःख पाता हुआ इस प्रकार बोला—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस समय के राजा धूर्त ब्राह्मण द्रोही विषयी, अकर्मण्य हो गए हैं जिसके कारण प्रजा कष्ट पा रही है मेरा बालक जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा। ऐसे राजा को अपना राजा मानकर प्रजा अति दुखित हो रही है। इसी भाँति उस ब्राह्मण के आठ पुत्र हुए और वह आठों मरे हुये बालकों को इसी भाँति राज सभा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में लाता और इसी भाँति बुरा भला कह कर उस बालक को वहीं छोड़ कर चला जाता। जब उसके नवाँ बालक उत्पन्न हुआ और वह मर गया तब वह सभा में उस बालक को लाया उस समय उस सभा में अर्जुन तथा श्रीकृष्णचन्द्र विराजमान थे। उस ब्राह्मण के ऐसे कटु बचन सुन कर अर्जुन ने कहा—हे ब्रह्मदेव! इस द्वारिका में कोई धनुर्धर क्षत्री ही नहीं है। ये यदुवंशी ब्राह्मण हो गये हैं! नित्य यज्ञों में ही लगे रहते हैं। इनका जीवन व्यर्थ है। जो ये ब्राह्मण के कष्ट को दूर नहीं कर सकते हैं।

हे ब्रह्म देवता! तुम अधिक दुखी मत हो मैं तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूँगा। अब के जब तुम्हारे पुत्र हो तब उसके प्रसव काल से पहले ही मुझे सूचित करना। या तो तुम्हारे पुत्र को मरने नहीं दूँगा और यदि प्रतिज्ञा पूरी न कर सका तो मैं जल कर भस्म हो जाऊँगा।

तब वह ब्राह्मण बोला—हे अर्जुन! जिस द्वारिकापुरी में बलरामजी श्रीकृष्णचन्द्र जी धनुर्धारियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी तथा महाबली अनिरुद्धजी विद्यमान हैं और वे ही मेरे पुत्र की रक्षा नहीं कर सके हैं तो तुम से यह कार्य होना अति कठिन है। यह केवल तुम्हारी मूर्खता है। मैं तुम्हारी बात पर कोई विश्वास नहीं कर सकता।

तब अर्जुन ने कहा—हे ब्राह्मण! मैं बलराम, श्री कृष्ण तथा प्रद्युम्न नहीं हूँ। मैं हूँ गाण्डीव धारी अर्जुन! जिसकी कीर्ति तीनों लोकों में फैली हुई है। तुम इस प्रकार मेरा तिरस्कार न करो। मैंने अपने बल से भगवान् शङ्कर तथा इन्द्र को संतुष्ट किया है। युद्ध में मेरे सामने मृत्यु भी नहीं ठहर सकती।

हे परीक्षित्। जब अर्जुन ने इस भाँति उस ब्राह्मण को विश्वास दिलाया तब ब्राह्मण अति प्रसन्न हो अपने घर चला गया। जब उस ब्राह्मण के दसवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ तब प्रसव काल से पहिले ही उसने अर्जुन को सूचना दे दी और बोला—हे अर्जुन! कम से कम मेरे इस पुत्र को ही जीवित रख ले। यह सुन कर अर्जुन ने शुद्ध जल से आचमन किया और मन्त्रों से अपने वाणों को आमन्त्रित करके उनको

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया। तत्पश्चात् उस ब्राह्मण के घर को बाणों के जाल से इस भाँति छा दिया कि उसमें तनिक भी वायु प्रवेश करने तक को भी स्थान न छोड़ा। जब वह बालक उत्पन्न हुआ तब वह उसी क्षण रोकर मृत्यु को प्राप्त हो गया यह देख कर वह ब्राह्मण अर्जुन को धिक्कारने लगा। और बोल—मैं बड़ा मूर्ख हूँ जो इस नपुंसक की बातों में आ गया। भला जिन बालकों की भगवान् श्री कृष्णचन्द्र, बलराम तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रक्षा न कर सके उनको यह कैसे बचा सकता है। यह अपने मुँह बड़ाई करने वाला है। इसकी बुद्धि को धिक्कार है और इसके धनुष को धिक्कार है।

जब वह ब्राह्मण अर्जुन को इस प्रकार धिक्कारने लगा तब अर्जुन अति लज्जित होकर योग बल से यमराज के निवास स्थान पर गए वहाँ उन बालकों को न पाकर इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि सभी देवताओं के निकट गए किन्तु वहाँ भी उस ब्राह्मणके बालकों को नहीं देखा। वे मर्त्य लोक और नीचे के अतलादि लोकों में भी गए किन्तु उन्हें ये बालक वहाँ भी न मिले तब वे अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न करने के कारण अग्नि में प्रवेश होने को उद्यत हुये तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले हे अर्जुन! प्राण हत्या न करो। इसमें तुम्हारा घोर तिरस्कार है। तुम ब्राह्मण के बालक ही तो चाहते हो चलो उन्हें हम लाये देते हैं। जो मनुष्य आज तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं वे ही कल तुम्हारी बड़ाई करेंगे।

ऐसा कह कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपना रथ मँगाया और उस में अर्जुन को बैठाया। दोनों पश्चिम दिशा की ओर चले। उन्होंने सात द्वीप तथा समुद्रों को पार करके लोका लोक पर्वत को पार किया उसके पार करते ही वे घोर अन्धकार में प्रवेश कर गये। उस घोर अन्धकार में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के रथ के चारों घोड़े जिनकी गति कहीं भी नहीं रुकती थी बहकने लगे। तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने अपने तेजोमय चक्र का स्मरण किया। वह उनके रथ के आगे आगे प्रकाश करते हुए चलने

In Public Domain

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लगा। सुदर्शन चक्र के द्वारा मार्ग प्रदर्शन करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी का रथ अन्धकार की सीमा पार करके एक ज्योतिर्मय स्थान पर पहुँचा जहाँ अपार ज्योति जगमगा रही थी। उसे देख कर अर्जुन के नेत्र चौंधा गये और अपने नेत्र बन्द कर लिए। तत्पश्चात् वह रथ अपार जल सागर में प्रवेश करने लगा। जल के भीतर एक अति सुन्दर दिव्य महल था। उस में सहस्र शीर्ष भगवान् शेषनाग जी विराजमान थे। उनके सहस्रों शीषों पर मणियाँ जगमगा रही थीं उनका रङ्ग श्वेत था किन्तु उनका कण्ठ तथा जीभें नीले रङ्ग की थीं तब अर्जुन ने देखा कि उन शेषनाग पर सर्व व्यापक भगवान् नारायण अष्ट भुजा धारण किये हुए विराजमान हैं उन के दिव्य आयुध चक्र आदि सभी सेवा कर रहे हैं पार्षदगण उनके निकट खड़े हुए हैं वेद की श्रुतियाँ बन्दी जनों की भाँति उनकी स्तुति कर रही हैं। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अपने स्वरूप अनन्त भगवान् को प्रणाम किया। तत्पश्चात् अर्जुन ने प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। तब भगवान् नारायण ने मुस्कराते हुए मधुर वाणी में कहा—

हे श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन! तुम दोनों ही मेरा स्वरूप हो तुम दोनों मेरी ही कलाओं से पृथ्वी का भार उतारने के लिए मृत्युलोक में उत्पन्न हुए हो। तुम दोनों नारायण तथा नर का अवतार हो। वे सदा धर्म रक्षा के लिए बदरीवन में तप करते रहते हैं। मैंने तुम्हें बुलाने के लिए ही ब्राह्मण के बालकों को यहाँ बुला लिया था। तुम पूर्ण काम तथा सर्व श्रेष्ठ हो किन्तु फिर भी लोक-संग्रह के लिए लौकिक कर्म करते रहो तब भगवान् नारायण ने अपने कला रूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी तथा अर्जुन को ऐसा आदेश दिया तब उन्होंने उसे स्वीकार करके उन्हें प्रणाम किया और ब्राह्मण पुत्रों को वहाँ से लेकर द्वारिका को चले आये। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के उस नित्यधाम को देखकर अति आश्चर्य में हुए। हे परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ऐसी ही अनेकों लीलायें हैं। उन्होंने पृथ्वी पर कृष्ण रूप धारण कर राजाओं को अपने हाथ से मारा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कुछ को अर्ध अंशावतार अर्जुन के द्वारा मरवाया। इस भाँति पृथ्वी का भार उतार दिया और धर्म की स्थापना की।

॥ नब्बेवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के लीला विहार का वर्णन करना

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से रक्षित वह द्वारिकापुरी अति अलौकिक तथा दिव्य थी। जिसमें देवताओं ने अपनी सुधर्मा सभा और कल्प वृक्ष को भी भेज दिया था। उस में सड़कें हाट बाट चौहाट सभी सुन्दरता से सजे हुये जल से छिड़के हुये तथा सुन्दर थे। उनके दोनों ओर सुन्दर सुन्दर वृक्ष सुगन्धित पुष्पों से लदे रहते थे। उस द्वारिका के मध्य में भवन सोने चाँदी मणियों तथा स्फुटिक पत्थर के बने हुये थे। हाथी रथों की भीड़ सदा रहती थी। सड़कों मार्गों में उत्तम रत्नाभूषणों तथा वस्त्रों से सजे हुये यदुवन्शी तथा युवतियाँ आती जाती थीं। उन स्त्रियों के अङ्ग प्रत्यङ्गों से यौवन फटा पड़ता था। जब वे अपने महलों में गेंद खेलती हुई या क्रीड़ा करती हुई कोई अङ्ग वस्त्र हीन हो जाती तो वहाँ ऐसा प्रतीत होता था मानों बिजली कौंध गई हो।

उन लक्ष्मीपति भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की ऐसी दिव्य द्वारिकापुरी थी और ऐसेही दिव्य उनके निवासी थे। उस पुरी में उपवन, उद्यान वाटिकायें अति रम्य थीं। उनमें सुन्दर सुन्दर तालाब थे जिनमें कमल खिलते रहते थे। उनके परागसे वायु महक कर सर्वत्र बहती रहती था। उनमें हंस,सारस बिहार करते रहते थे। उपवनों में कोयल पक्षी कलरव करते रहते थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ऐसे दिव्य नगर में अपने दिव्य भवनों में अपनी प्रिय पत्नियों के साथ बिहार करते थे। कभी जल विहार करते कभी उन की पत्नियाँ उनके साथ पिचकारी लेकर रङ्ग की बौछारें मारतीं। भीगे हुये वस्त्रों में से उनके कांतिमान अङ्ग स्पष्ट चमकते थे। उनकी चोटियों के फूल गिरने लगते थे उनके साथ क्रीड़ा जल विहार फाग आदि खेलने में ऐसी तन्मय हो जातीं कि वे अपने को बिल्कुल भूल जातीं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी पत्नियों के साथ विहार करते हुये ऐसे प्रतीत होते थे जैसे मानों हथनियों के साथ गजराज जलक्रीड़ा कर रहे हों। क्रीड़ा करनेके पश्चात

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अपने वस्त्रों को उन नर्तकियों तथा बन्दीजनों को दे देते जिनका जीवन निर्वाह ही उन पर था। वे पत्नियाँ सदा भगवान् श्री कृष्णचन्द्र में ही आकृष्ट रहती थीं। वे कभी कभी उनके प्रेम में ऐसी उन्मत्त हो जातीं कि वे कहने लगतीं। रानियाँ कहतीं—हे कुइरी! तुझे रात भर नींद नहीं आती है तू हमारी भाँति अवश्य ही अपने प्यारे के विरह में विलाप करती फिरती है।

अरी चकवी! तू रात्रि भर अपने नेत्र बन्द किए अपने पति के मिलन की लालसा में बैठी रहती है उसी भाँति हम भी जब हमारे प्राण प्यारे चले जाते हैं, तब उन्हीं के ध्यान में बैठी रहती हैं।

अरे समुद्र! तू निरन्तर गरजता रहता है। हम समझ गईं कि हमारे प्यारे श्यामसुन्दर ने तुम्हारी गम्भीरता धैर्यता छीन ली है तभी तुम हमारी भाँति दुखी हो रहे हो।

हे चन्द्रदेव! तुम्हें राजयक्ष्मा का रोग होगया है तुम भी हमारी भाँति दुबले पतले होते रहते हो। जब हमारे प्राण प्यारे हम से अलग हो जाते हैं तब हम भी उनके वियोग में क्षीण हो जाती हैं।

हे मलियानिल! तू हमारा स्पर्श करके काम का संचार न कर हमारे श्यामसुन्दर यहाँ नहीं हैं। उनके न रहने पर ही तेरी शक्ति प्रबल हो उठती है। हमारा हृदय तो स्वयं ही उनके वियोग में टूक टूक हो रहा है।

अरी बेलो! तुम हमारे प्रीतम के रङ्ग से मिलती जुलती हो तुम उन्हें अधिक प्रिय हो तुम भी उनके बियोग होने पर प्रेमाश्रु बहाती रहती हो।

अरी कोयल! तूने हमारे प्रीतम से ही यह मधुर स्वर प्राप्त किया है। तू हमारी प्यारी सखी है। बोल तेरा क्या उपकार करें।

अरे पर्वत! तू भी हमारी भाँति अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों की लालसा करता रहता है। तुझे भी हमारा रोग लग गया है।

अरी नदियो! तुम ग्रीष्म रूपी बिरह की अग्नि से जल कर हमारी भाँति ही सूख गई हो। हम भी उनके बिरह में सूखती रहती हैं। हमें उनका एक क्षण का विरह भी युग के समान व्यापता रहता है।

अरे हंस आओ! तुम्हारा स्वागत है, तुम हमारे प्रियतम का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अवश्य कुछ सन्देश लाये होंगे। कहो हमारे प्रीतम प्रसन्न हैं न? उन्हें हम बिरहिनों की कभी याद आती है। वे अब कब हमारे निकट पधारेंगे। क्या उनको लक्ष्मी जी ने तो नहीं बिरमा लिया है। अरे हंस! क्या हम में कोई भी लक्ष्मी के समान सुन्दर नहीं है।

हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पत्नियाँ इस भाँति उनके विरह में व्याकुल हो उठती थीं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ थीं इनके अतिरिक्त सोलह हजार एक सौ और पत्नियाँ थीं उन सब के दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी पुत्र उन्हीं के समान सुन्दर तथा गुणवान थे। उन में अठारह महारथी थे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्धा, चित्रभानु,वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन चित्रबाहु, विरूप, कवि तथा नाग्रोध।

हे परीक्षित्! इन सब में प्रद्युम्नजी बड़े थे। उनके पुत्र अनिरुद्ध भी दस हजार हाथियों के समान बल वाले थे। उन्होंने भी अपने नाना की पोती से विवाह किया था। अनिरुद्ध जी के बज्रनाभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। यदुवंशियों के नाश होने पर वही बज्रनाभ रह गया था जो यदुवंशियों का राजा हुआ और द्वारिका के डूबने पर मथुरा का राज्य करता था बज्रनाभ के प्रतिवाहु, प्रतिवाहु के सुबाहु, सुबाहु के शान्तसेन और शान्तसेन के सतसेन पुत्र हुये। हे परीक्षित्! इस वंश में ऐसा कोई भी राजा नहीं हुआ जो अल्पायु, अल्प शक्ति तथा धन हीन हो। सभी परम यशस्वी ब्राह्मण भक्त और पराक्रमी थे। उन यदुवंशियों के बालकों को पढ़ाने वाले तीन करोड़ अट्ठासी लाख आचार्य थे। उन सब की संख्या का बताना तो अति कठिन है। और राजा उग्रसेन के पास एक नील (१००००००००००००) सेना थी।

हे परीक्षित्! काल की प्रेरणा से सभी राक्षसों ने पृथ्वी पर आ कर राजाओं के रूप में जन्म लिया था उनका संहार करने के लिये भगवान् की आज्ञा से देवताओं ने यदुवंश में जन्म लिया था जिनमें एक सौ कुल थे वे सब के सब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी में सदा रत रहते थे वे सब साथ सोते बैठते खाते पीते सदा उन में ऐसे रत रहते थे कि उन्हें

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता था। उनका शरीर यन्त्र की भाँति स्वयं अपना कार्य करता था।

हे परीक्षित ! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के चरण धोवन से गङ्गा जी उत्पन्न हुई हैं जो जगत को पवित्र करती रहती हैं, किन्तु उनका यश गङ्गाजी से भी बढ़ कर है, सभी यदुवंशी सदा उनके यश का गान करते रहते थे और वे पार्षदों के रूप में उन भगवान् की सेवा करते रहते थे। वे सम्पूर्ण जगत के दुःखों को मिटाने वाले हैं उनकी मन्द मन्द मुस्कान से सभी युवतियाँ मुग्ध हो जाया करती थीं और उन व्रज युवतियों तथा पुर युवतियों के हृदयों में प्रेम उत्पन्न हो जाता था। उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की जय हो।

हे परीक्षित् ! प्रकृति से परे परमात्मा ने ही धर्म की रक्षा के लिये दिव्य रूप धारण किया था। जो उनके चरणों का दास बनना चाहे वह उनकी लीलाओं को सुने लीलाओं के चिन्तन करने से उसे भक्ति प्राप्त होती है, और भक्ति के द्वारा वह उनके परमधाम को प्राप्त कर लेता है जहाँ पर काल की दाल नहीं गलती है उस धाम की प्राप्ति के लिये बड़े-बड़े सम्राट अपना राज पाट त्याग कर तपस्या के लिये जङ्गलों में चले जाते हैं। इस लिये मनुष्य को उनकी कथा लीलाओं का सदा श्रवण करते रहना चाहिये।

❀ दशम स्कन्ध समाप्त ❀

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वृहद् सुखसागर

॥ एकादश स्कंध ॥

ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुब्रत ॥
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्धूप दीपो पहार कैः ।
वशीकृतो ह्यहं तैश्चं सात्स्र्मिया सत्पतिर्यथा ॥

अर्थ—उत्तम ब्रत करने वाले पर्वों से सम्बन्ध रखने वाले मेरे सभी उत्सवों में मुझे प्रसन्न करने के हेतु वस्त्राभूषण, पुष्प, धूप, तथा दीपक आदि भेंट करके, श्रीमद्भागवत् का भक्ति पूर्वक सुनते हैं वे भक्त जन मुझे अपने वश में उसी भाँति कर लेते हैं जिस भाँति एक पतिब्रता स्त्री अपने उत्तम पति को वश में कर लेती है।

॥ पहला अध्याय ॥

ऋषियों द्वारा यदुवंश को शाप

दोहा—पिण्डारक के क्षेत्र में, रहत मुनी ब्रत धारि ।
करन हँसी उन मुनिनकी, बने साम्ब एक नारि ॥ १ ॥
बोले यादव जाय करि, गर्भ उदर इस बाम ।
पुत्री या पुत्र है, कहो मुनी सुख धाम ॥ २ ॥
यदु कुमरन के बचन सुनि, दीनों मुनिवर शाप ।
यदुवंशिन के नाश को, जन्मे मूसल पाप ॥ ३ ॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने बलदेव जी के साथ यदुवंश में अवतार ले कर असंख्यों दैत्यों का संहार किया, तथा कौरव पाण्डवों में परस्पर कलह उत्पन्न करा के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजाओं के रूप में जो असंख्यों दैत्य उत्पन्न हुए थे उनको गाण्डीव धारी अर्जुन के द्वारा संहार कराया। जिससे पृथ्वी का भार हलका हो गया। उनका यह अवतार पृथ्वी का भार उतारने तथा धर्म स्थापित करने को ही हुआ था।

उन्होंने गीता का उपदेश देकर धर्म के गुह्यत्तम स्वरूप को लोक में प्रकट किया है। जिसके साधन करने से मनुष्य बड़ी सरलता से परम पद प्राप्त कर सकता है। उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीला अति रहस्यमयी है। वे स्वयं अप्रमेय हैं। यह सबकुछ कर चुकने के पश्चात् उन्होंने विचार किया कि मैंने सारी पृथ्वी का भार उतार दिया है, किंतु फिर भी मेरी दृष्टि में पूर्ण रूपेण भार नहीं उतरा है। क्योंकि यदुवंशी अभीं बचे हुये हैं ये यदुवंशी मेरे आश्रय में रह कर अति बली, वैभवशाली तथा अहङ्कार से युक्त हो गये हैं। मेरे सुधाम गमन के पश्चात् ये अति उच्छृंखल हो उठेंगे तथा धर्म की मर्यादा का नाश करके मेरे किए हुए इस धर्मस्थापना को तथा धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करेंगे। इनको पराजित करनें को कोई भी अब समर्थ नहीं रहा है। अतः मुझे अब इसका उपाय भी करना अति आवश्यक है जिस प्रकार परस्पर रगड़ से बासों में अग्नि उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार इस यदुकुल में फूट उत्पन्न कराके इन्हें नष्ट भ्रष्ट करदो तभी मेरे अवतार लेने का कार्य पूर्ण होगा। और पूर्ण रूपेण पृथ्वी का भार उतर जावेगा।

हे राजा परीक्षित! वे भगवान् सत्य संकल्प तथा सर्वशक्तिमान तथा सर्व व्यापी हैं। उन्होंने अपने मन में इस प्रकार का निश्चय करके ब्राह्मणों द्वारा शाप दिला कर अपने वंश का संहार कर दिया और सबको समेट कर अपने स्वधाम को चले गये। हे राजन्! इस त्रिलोकी में जो कुछ भी सौन्दर्य, ऐश्वर्य, ऋद्धियाँ तथा सिद्धियाँ हैं वे सब उन्हीं की कृपा दृष्टि से हैं। उन्होंने अपने सौंदर्य से सब के मन को चुरा लिया था। जिन्होंने एक बार भी उनके चरणों का दर्शन कर लिया वह उन्हें कभी नहीं भूला और उनकी सेवा में लीन हो गया

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उन्होंने सारी पृथ्वी में अपनी कीर्ति फैलाई जिसका वर्णन महर्षियों ब्रह्मर्षियों तथा देवर्षियों ने अपनी-अपनी भाषा में किया है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपने मधुर शब्दों से अनेकों धर्म उपदेश समय २ पर तथा स्थान २ पर दिये हैं ताकि मेरे सुधाम चले जाने के पश्चात् मेरे भक्तजन उनका गायन, श्रवण तथा कीर्तन करते रहें। ऐसा करने के पश्चात् वे अपने धाम को चले गये।

राजा परीक्षित ने पूछा हे भगवन्! यदुवंशी तो अति ब्राह्मण भक्त थे केवल भक्त ही नहीं थे अपितु बड़े विचारवान दयावान और उदार थे। फिर भी ब्राह्मणों ने उन्हें क्योंकर शाप दिया ? उनसे ब्राह्मणों का क्या अपराध बन गया था। उन यदुवंशियों के स्वामी जब भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र थे तब उनमें परस्पर फूट किस प्रकार हुई आप कृपा कर मुझे समझाइये।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का प्रत्येक अङ्ग दिव्य सौन्दर्यता से युक्त तथा दिव्य था। उनका श्री विग्रह मङ्गलमय तथा भक्तों को कृतकृत्य करने वाला था। उन को किसी भी वस्तु का अभाव तथा आकांक्षा नहीं थी। वे पूर्णकाम तथा सब भाँति से परिपूर्ण थे। किन्तु फिर भी जीवों के कल्याण हेतु उन्होंने अपने नित्यधाम गोकुल वृन्दावन मथुरा तथा द्वारिका में सुन्दर सुन्दर तथा दिव्य लीलायें कीं। तत्पश्चात् अपने स्वधाम गमन के समय सब को समेट लिया। उनके पुण्य कर्मों के गायन से सारे संसार के कलिमल धुल जाते हैं। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अब द्वारिका में केवल यदुवंशियों के संहार के लिये ही काल रूप से निवास करते थे। उस काल में उन की प्रेरणा से अनेकों ऋषि मुनि द्वारिका के पास पिण्डारक क्षेत्र में आकर निवास करने लगे। उन में विश्वामित्र, असित्, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा-कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ तथा नारद आदि मुख्य थे। उन्हीं की प्रेरणा से वे सब ऋषि शाप के रूप में निवास करते थे और यदुवंश के संहार का समय देख रहे थे।

एक समय यदुवंश के कुछ नटखट बालक खेलते हुये उन ऋषियों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

के पास जामवन्ती नन्दन साम्ब को स्त्री वेष में सजा कर ले गये और उन ऋषियों के चरणों में प्रणाम करके बोले—हे ब्राह्मणो ! इस सुन्दरी के पेट में गर्भ है। यह स्वयं पूछने में सकुचाती है इसलिए इसकी ओर से हम पूछते हैं कि इसके गर्भ में क्या है। आप लोग सर्वज्ञ हैं इसलिए यह बताओ कि इसके कन्या होगी अथवा पुत्र। हे राजन्! उन कुमारों की ऐसी धोखे वाली बात सुनकर ऋषियों को बड़ा क्रोध हुआ और बोले रे मूर्खों ! इसके उदर में से एक मूसल उत्पन्न होगा जिससे तुम्हारे कुल का नाश होगा। भगवान् की प्रेरणा से उन ब्राह्मणों ने यदुवंश के लिए ऐसा घोर शाप दिया। उन मुनियों के शाप को सुन कर सभी राजकुमार डर गये। उन्होंने साम्ब के पेट को खोलकर देखा तो उन्हें एक लोहे का मूसल मिला। तब तो वे और भी घबड़ाये और अपने को बुरा भला कहते हुए मूसल को लेकर द्वारिका में आये। उनका मुँह फीका पड़ गया था। भय से शरीर काँप रहा था। उन्होंने उस मूसल को यादवों की भरी सभा में लाकर राजा उग्रसेन के सन्मुख रक्खा और ब्राह्मणों के शाप की घटना आद्योपान्त कह सुनाई। ब्राह्मणों के उस घोर शाप को सुनकर सभी यादव अति भयभीत हुए। तब राजा उग्रसेन ने उस मूसल को चूरा चूरा करवा डाला तथा उस चूरे और लोहे के बचे हुए सभी टुकड़ों को समुद्र में फिकवा दिया। इस विषय में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से कोई भी परामर्श नहीं किया गया क्यों कि भगवान् की ऐसी ही प्रेरणा थी।

हे राजन्! लोहे के उन टुकड़ों को एक मछली निगल गई और उस चूरे से एक प्रकार की बिना गाँठ वाली घास उत्पन्न होगई। मछुओं ने उस मछली को पकड़ लिया जिसने लोहे के टुकड़े निगल लिये थे उस लोहे के टुकड़ों को निकाल कर जरा नाम के एक व्याध ने अपने बाण की नोंक पर लगा लिया यह सब कुछ कर्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से छिपे नहीं थे। वे सब कुछ जानते थे। उनमें इस शाप को उलटने की शक्ति थी किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया क्यों कि यह सब कुछ उन्हीं की प्रेरणा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

से हो रहा था। वे वहाँ पर काल रूप से निवास करते थे। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणों के शाप को स्वीकार किया।

॥ दूसरा अध्याय ॥

नारदजी का वसुदेव जी के निकट आना तथा उन्हें राजा जनक और नौ योगीश्वरों का सम्वाद सुनाना।

दोहा—वासुदेव राजा निकट, आये नारदराय।
नौ योगीजन की कथा, कही मुनी समझाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारिका में निवास करने के कारण अपने स्वामीके निकट ही नारदजी रहते थे। उन्हें द्वारिकापुरी बैकुण्ठधाम के समान ही थी क्यों न हो वहाँ श्री लक्ष्मीपति नारायण जी श्री कृष्णचन्द्र के स्वरूप में विराजमान रहते थे। उनके प्रेमी भक्तजन भी वहीं उनकी सन्निधि प्राप्तिके हेतु उनके पास विराजते थे। ऐसा कौन अभागा होगा जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण कमलों के मकरन्द रस का पान न करना चाहे। उनके चरणों की आराधना तो ब्रह्मा शिव आदि सभी देवता निरन्तर करते रहते हैं। एक दिन देवर्षि नारदजी भगवान् के नित्यधाम के दर्शनार्थ उनके मनोहर भवनों में गये। वहाँ वसुदेव जी से भेंट हुई बसुदेवजी ने नारदजी का यथा विधि पूजन किया और एक उत्तम आसन प्रदान करके इस प्रकार बोले।

श्री बसुदेव जी बोले—हे नारदजी! आपका शुभ आगमन हम गृहस्थियों के लिये तो इसी प्रकार है जैसे माता पिता का आगमन पुत्रों के लिये सुखदायक होता है। आप स्वयं भगवत्मय हैं फिर आपका तो कहना ही क्या है। आप सदा दूसरों की भलाई में रत रहते हैं। देवता लोग भी स्वार्थ से युक्त हैं। उनकी पूजा करने पर सुख देते हैं किन्तु आप जैसे सन्त शिरोमणी तो निःस्वार्थ भाव से कुमार्ग पर जाने वालों को दयावश सुमार्ग प्रदर्शन कराते हैं। आप लोग देवताओं से भी उत्तम हैं। देवता लोग कर्मानुसार फल देते हैं। किन्तु सन्त पुरुष जिसे दीन देखते हैं उसी पर स्नेहवश दया करते हैं। हे देवर्षि! मैं आपके दर्शनों से कृतार्थ होगया हूँ किन्तु फिर भी आप कृपा करके मुझे भगवत् प्राप्ति का सुगम साधन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बताइये। मैंने पहिले जन्म में भगवान् की आराधना की थी किन्तु मुक्ति के लिये नहीं की उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिये की थी। उसी के फल स्वरूप भगवान् मुझे पुत्र रूप में प्राप्त हुये। मैं उनकी मायामयी लीला से मोहित हूँ। अब आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मैं जन्म मृत्यु के चक्कर से छूट जाऊँ और इस भवसागर से मुक्त हो जाऊँ। आपका जप तप तथा ब्रह्मचर्य अखण्ड है आप सामर्थवान हैं। आप मेरे उद्धार का उपाय मुझे बताने की कृपा कीजिये।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित! वसुदेवजी के ऐसे बचन सुन कर नारद जी उन के मनोभाव को समझ कर अति प्रसन्न हुए। बसुदेव जी बड़े बुद्धिमान् तथा परमज्ञानी थे। वे नारद जी के मुख से भगवान् के चरित्र तथा गुणों को सुनना चाहते थे। नारद जी बसुदेव जी का प्रश्न सुन कर अति प्रसन्न हुए तथा भगवत् प्रेम में विह्वल होकर आनन्द मग्न हो गये नारदजी बोले—हे बसुदेव जी! आपका प्रश्न संसार के कल्याण के लिये है। भगवान् का चरित्र ऐसा उत्तम है कि उसके श्रवण मात्र से ही मनुष्य का उद्धार हो जाता है। वह सब को पवित्र करता है। कोई भी मनुष्य चाहे प्रेम से चाहे स्नेह से एक बार भी उन के नाम का उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप धुल जाते हैं। वे भगवान् ही मेरे इष्ट मेरे आराध्यदेव, मेरे जीवन मेरे प्राण तथा मेरे सर्वस्व हैं तुम्हारे प्रश्न को सुन कर मैं उनके प्रेमानन्द में डूब रहा हूँ। इस विषय में तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ। वह कथा ऋषभ के पुत्र नौ योगीश्वरों के विषय में है। यह आपको विदित है कि स्वायम्भुवमनु के पुत्र राजा प्रियब्रत थे। प्रियब्रत के पुत्र आग्नीध्र तथा आग्नीध्र के पुत्र नाभि थे। नाभि के पुत्र भगवान् के अंशावतार महात्मा ऋषभ थे। उन्होंने परमहंस धर्म का उपदेश करने के लिये ही अवतार लिया था। उनके सौ पुत्र थे उन सब में भरत बड़े थे। इस भूखण्ड का नाम पहिले 'अजनाभ वर्ष' था किन्तु भरत के राजा होने से ही इस वर्ष का नाम 'भारत वर्ष' पड़ा वे बड़े प्रतापी तथा भक्त थे। उन्होंने सारी पृथ्वी का भाग करके अन्त समय में बन को चले गये। दूसरे जन्म में भगवान् की प्राप्ति उन्हें हुई। ऋषभदेव जी के नौ पुत्रों

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ने भारत वर्ष के नौ द्वीपों का राज्य किया नौ पुत्र योगीश्वर हो गये, तथा इक्यासी पुत्र कर्म काण्डी ब्राह्मण हुए। उन नौ योगीश्वरों के नाम—कार्व, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, बिप्यलायन, अविहोत्र, द्रमिल, चमस तथा करभाजन थे वे आत्म विद्या में निपुण थे वे जगत से रहित होकर पृथ्वी पर स्वच्छन्द विचरते थे।

एक समय वे विदेहराज निमि के यज्ञ में पहुँचे। उन्हें देखते ही राजा निमि, ऋत्विज, होता आदि सभी ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा निमि ने उनका अति आदर स्वागत किया तथा उत्तम आसन प्रदान किया। वे साक्षात् सनक सनन्दन सनत्कुमार तथा सनातन ऋषियों की भाँति चमक रहे थे। राजा निमि ने अति भक्ति भाव से नम्रता पूर्वक यह प्रश्न किया।

राजा निमि बोले—हे ब्रह्म ज्ञानियो! आप ब्रह्म स्वरूप हैं। आप सांसारिक प्राणियों को सही मार्ग दिखाने के लिए ही पृथ्वी पर विचरते रहते हैं। यह मनुष्य शरीर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। यदि उत्तम कर्मों से यह प्राप्त हो भी जाय तो जीवन मरण के चक्कर से बचना कठिन हो जाता है। इसलिए हे सन्त शिरोमणियो! मैं आप लोगों से यह पूछता हूँ कि परम कल्याण का क्या स्वरूप है तथा, उसका साधन किस प्रकार होता है? हे महात्माओ! मैं जानता हूँ कि आप के पास इतना समय नहीं है कि आप पूर्ण रूप से निरूपण कर सकें, किन्तु जो कुछ भी आप कहेंगे वही मेरे तथा जगत के कल्याण का हेतु होगा। यदि हम उनके सुनने के अधिकारी हों तो भगवत् धर्म का उपदेश हमें दीजिये।

श्री नारदजी बोले—हे वसुदेवजी! राजा निमि के ऐसे दीन बचन सुनकर उन भगवान् के प्रेमी भक्तों के हृदय उमड़ आये तथा इस प्रकार बोले—

प्रथम योगीश्वर कार्व बोले—हे राजन्! मेरे विचार से इस सांसारिक भय को दूर करने वाली भगवान् की उपासना है। जो भगवान् के चरणों की नित्य उपासना करता है और उन्हीं पर पूर्ण विश्वास करके सर्वस्व उन्हीं के ऊपर छोड़ देता है उसके चित्त से सांसारिक भय चला

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जाता है। उसके हृदय में एक प्रकार की शक्ति तथा बल उत्पन्न होजाता है। वह केवल भगवान् के बल का सहारा लेकर निर्भय हो जाता है। उसकी घबड़ाहट मिट जाती है वह केवल भगवान् से ही डरता है तथा सांसारिक भयसे पूर्णतया निर्भय हो जाता है भगवान् के साक्षात्कार का सुगम मार्ग अनेक ऋषियों ब्रह्मर्षियों तथा वेदऋषियों ने निरूपण किया है किन्तु भगवान् ने जिस जिस धर्म का उपदेश किया है उन्होंने स्वयं सुगम मार्ग का निर्देषण किया है जिससे भोले भाले प्राणी उन्हें सुगमता से प्राप्त कर सकें उन्हीं उपायों को जिनसे भगवान् की प्राप्ति होती है—

अब भागवत धर्म कहते हैं—उस भागवत् धर्म को प्राप्त करके मनुष्य फिर सीधे तथा सच्चे मार्ग पर चलने लग जाता है। फिर वह अपने मार्ग से च्युत नहीं होता है। उसकी आँखें खुल जाती हैं। वह तीव्रता से अपने मार्ग पर चलने लगता है वह कभी मार्ग से गिर नहीं सकता है। भागवत् धर्म को पालन करने वाले पुरुष के लिये किसी विशेष प्रकार के कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। वह शरीर, मन, वाणी तथा इन्द्रियों से जो कुछ भी कर्म करता है वह सब भगवान् के निमित्त ही करता है। वह सब कर्म उन्हीं को समर्पण कर दे। यही सर्वोत्तम सरल भागवत् धर्म है। भगवान् की उपासना के बिना भय नहीं जाता। यह भय प्राणी को इसलिये भासता है कि वह आत्मा के अतिरिक्त अनात्म वस्तु में आसक्त हो गया है।

वह अपने को ही सर्वस्व मान बैठा है। वह जीव भगवान् से विमुख होने के कारण उन्हें भूल गया है तभी उसे यह भासने लगा है कि मैं सर्वस्व हूँ, इसी भूल को अज्ञान कहते हैं। फिर यह प्रश्न उठता है कि जीव क्यों भूल जाता है ऐसा क्यों होता है वह भगवान् की माया से ही होता है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि भगवान् की माया से छूटने का प्रयत्न करे। और माया से जभी छुटकारा मिल सकता है जब माया-पति भगवान् की उपासना करे। भागवत् भजन की प्राप्ति भी गुरुदेव की कृपा से होती है। हे राजन् ! सच्ची बात तो यह है कि आत्मा (जीव) परमात्मा (ईश्वर) इनके अतिरिक्त जगत में और कुछ भी नहीं है। वह जीवात्मा भी परमात्मा में लीन हो जाता है तब

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

केवल परमात्मा ही शेष रहता है। इस परमात्मा की प्राप्ति के लिये सर्व प्रथम मन को रोककर अपने वश में करे। मन के वश में होते ही भगवान् की प्राप्ति होजाती है। उसके लिये भगवान् की कथा, लीला तथा यश गान आदि का श्रवण, कीर्तन सङ्कोच त्याग कर सदा नियम से करते रहना चाहिये। उसके शुद्ध हृदय में भगवान् का निवास हो जाता है। वह साधारण प्राणियों के अन्तर से ऊँचा उठने लगता है। अपने में ईश्वरीय आत्मशक्ति का अनुभव करने लगता है। वह कभी पागलों का सा व्यवहार करने लगता है, कभी गाता है। कभी ऊँचे स्वर से भगवान्नामोच्चारण करने लगता है, कभी रोता है कभी हँसता है कभी नाचता है। कभी चिन्तन में रहता है। वह सब को भगवत् रूप में देखता है। जिस प्रकार भोजन से तुष्टि (तृप्ति का सुख) पुष्टि (शक्ति का संचार) तथा क्षुधा निवृत्ति ये तीन ही एक साथ अपने आप स्वयं प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् की उपासना से भगवान् के प्रति प्रेम, भगवान् के स्वरूप का अनुभव तथा जगत से वैराग्य ये तीनों स्वयं ही प्राप्त होते हैं। हे राजन्! जो भगवान्ज्ञान आदि योग से प्राप्त होते हैं वे उपासना से बड़ी सुगमता से अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

राजा निमि ने पूछा—हे योगीश्वरजी! अब आप मुझे भगवत् भक्ति के कर्म तथा स्वभाव का वर्णन कीजिये। भक्तों का कैसा आचरण होता है? वह किस प्रकार बातचीत करते हैं उनके क्या लक्षण होते हैं?

तब दूसरे योगीश्वर हरि जी बोले—हे राजा निमि! भगवान् सर्वत्र व्याप्त हैं। वे आत्मस्वरूप होने से सब में स्थितिं हैं। जो प्राणी सब में समभाव से भगवान् की सत्ता को देखता है वह भगवत् स्वरूप होता है। ऐसी सिद्ध दृष्टि वाला मनुष्य भगवान् का भक्त कहलाता है। जो भगवान् से प्रेम, सबसे मित्रता, दुखियों पर दया तथा भगवान् से शत्रु भाव रखने वालों को त्याग देता है वह मध्यम श्रेणी का भक्त होता है। जो मनुष्य भगवान् की सेवा पूजा तो करता है किन्तु दूसरे लोगों से विशेष प्रेम इत्यादि नहीं करता वह साधारण श्रेणी का भक्त है।

जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा विषयों को तो ग्रहण करता है किन्तु उन में आसक्ति नहीं रखता है। वह इच्छित विषयों की प्राप्ति से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तो प्रसन्न होता है। और न प्राप्त होने पर शोकित होता है जो सम-
व रहता है। जगत् को भगवान् की माया समझता है। वह उत्तम भक्त
ता है। जो संसार में धर्म, जन्म, मृत्यु, भूख, प्यास, सुख, दुख, भय
था तृष्णा आदि शरीर, मन, प्राण तथा इन्द्रियों आदि को प्राप्त होते
ते हैं, यह समझ कर भगवान् में रत रहता है। जो ये दुःख सुखादि
रम्बार होते जाते रहने पर भी उससे घबड़ाता नहीं है तथा उनमें
हित नहीं होता है जिनके चित्त को समस्त कल्पनायें शांत हो चुकी हैं,
सका मन सदा भगवान् में ही रमा रहता है जिसने उन्हीं को एक
त्र अपना आश्रय बना लिया है। जिसका मैं, मेरे पन का भाव तथा
भिमान नष्ट होगया है। जिसे अपने पराये का भेद भाव नहीं है
समत्व भाव से जगत में बर्तता है वही भगवान् का परम प्रिय भक्त है।
भक्तों का मन भगवान् को आधे क्षण के लिये भी नहीं छोड़ता है
हें त्रिलोकी की सम्पति भगवान् के चरण कमलों के सामने धूल के
ान प्रतीत होती है। वे भगवान् के चरणों को त्याग कर इन्द्र पद की
इच्छा नहीं करते हैं। वे ही उत्तम भक्त हैं। उनके हृदय में अपने
ष्टदेव भगवान् हरि के चरण कमल विराजते रहते हैं उन्हीं के ध्यान में
त रह कर रमण करते रहते हैं। वे भक्तजन अपने प्रेम की रज्जु से
वान् को बाँधने में समर्थ होते हैं। भगवान् स्वयं उन्हें छोड़ कर कहीं
ीं जाते वास्तव में वे ही परम भक्त हैं।

॥ तीसरा अध्याय ॥

भगवान् की माया से मुक्त होने का उपाय-ब्रह्म तथा कर्म योग का रूप
वर्णन करना।

दो०—राजा निमि पूछन लगे, ब्रह्म कर्म को रूप।
योगेश्वर वर्णन करें, वेदन के अनुरूप॥

राजा निमि ने कहा-हे योगीश्वरजी! आपने यह कहा है कि भगवान्
माया ही जगत को मोहित किये रहती है, उसे पहिचाना नहीं जाता,
न्तु भक्त उसे देखता रहता है। अब कृपा करके भगवान् की उस माया
स्वरूप मुझे समझाइये।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तब तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्ष जी बोले—हे राजन् ! भगवान् की माया का कोई मुख्य स्वरूप नहीं है केवल कार्यों के द्वारा ही अनुमान से उसका स्वरूप माना गया है। उसे सुनो। हे राजन्! सर्व भूतों में स्थित सर्वात्मा स्वयं प्रकाश परमात्मा ने प्रलयकाल के पश्चात् अज्ञानी जीवों को यह बताने के लिए कि इस जगत में केवल मैं ही हूँ, अपने रचे हुये पञ्च-भूतों के द्वारा अनेक प्रकार के छोटे बड़े शरीरों की सृष्टि की। तब उन शरीरों में जीव रूप से प्रवेश किया। मन तथा इन्द्रियों में भी स्वयं प्रवेश करके उन्हीं के द्वारा विषयों को भोगने लगे। वे स्वयं जीवात्मा स्वरूप से शरीर में रह कर इन्द्रियों को शक्ति प्रदान करते हैं और उनके द्वारा विषयों का सेवन करते हैं।

जब उनका यह जीवरूप शरीरमें आसक्त होकर इस जगत की मिथ्या वस्तुओं को अपना मान लेता है तब यह शरीर उसके पल्ले बँध जाता है और उस शरीर से किये हुये कर्म उसे बन्धन में बाँधने लगते हैं वह शरीर द्वारा किये हुये कर्मों के बन्धन में बँध जाता है उसे कर्म बन्धन कहते हैं। वही भगवान् की माया में फंसाने लगता है। तथा संसार चक्र में जीव को घुमाने लगता है। वह कर्मानुसार सुख दुःख जन्म मृत्यु प्राप्त करता है। वह उन कर्मेन्द्रिय के द्वारा सकाम भाव से कर्म करता हुआ इसी प्रकार भटकता रहता है। वह जीव महा प्रलय होने तक जन्म मरण को प्राप्त होता रहता है। जब प्रलय का समय आता है तब काल भगवान् स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि को अपनी ओर खींच लेते हैं। उस काल में पृथ्वी पर सौ वर्ष तक वर्षा नहीं होती है सूर्य भगवान् अपनी प्रचण्ड तथा प्रखर किरणों से तपते रहते हैं। सारी पृथ्वी के प्राणियों तथा तत्वों को जलाकर भस्म कर देते हैं। प्रलय काल की गर्मी इतनी बढ़जाती है कि तीनों लोक तपने लगते हैं। उसी समय शेष भगवान् के सहस्र फनों से अग्नि की प्रचण्ड लपटें निकलने लगती हैं। उसके ताप से पाताल लोक से जलना आरम्भ होकर ऊपर के लोकों का जलना आरम्भ होजाता है।

तत्पश्चात् प्रलय काल के मेघों का दल आता है उसे संवर्तक कहते हैं। वह लगातार सौ वर्ष तक वर्षा करता है। वर्षा की धार हाथी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

की सूँड़ के समान मोटी होती है। इस प्रकार की मूसलाधार वर्षा सौ वर्ष तक लगातार होती रहती है। उस से सारा ब्रह्माण्ड डूब जाता है। उस समय ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर ब्रह्मा अपने शरीर को त्याग कर परब्रह्म में लीन हो जाते हैं। वायु पृथ्वी की गन्ध खींचकर जल रूप हो जाती है। फिर वही वायु जल के रस को खींच लेती है तब वह जल अपने उत्पन्न करने वाले अग्नि का रूप धारण कर लेता है। इसके पश्चात् अन्धकार अग्नि के रूप को नष्ट कर देता है और वह अग्निवायु में समा जाता है तत्पश्चात् आकाश वायु की स्पर्श शक्ति छीन लेता है तथा काल आकाश के शब्द गुण को छीन लेता है। तत्पश्चात् आकाश अपने उत्पन्न करने वाले तामस अहङ्कार में लीन हो जाता है, इन्द्रियाँ राजस अहङ्कार में लीन हो जाती हैं, तथा मन इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं सहित सात्विक अहङ्कार में लीन हो जाता है। हे राजन्! पंच भूतों के द्वारा बने हुए शरीर तथा महत्तत्व आदि की सृष्टि का विस्तार तथा स्थिति जिसके द्वारा पूरी होती है उसी को माया कहते हैं उस माया का निरूपण सत्व, रज तम, तीनों गुणों के द्वारा ही होता है। यही उसका स्वरूप है।

राजा निमि ने पूछा—हे भगवन्! भगवान् की माया को पार करना उन प्राणियों को तो अति दुस्तर है जो सदा मन के वश में रहते हैं जिनके वश में मन नहीं है। अब आप कृपा करके वह उपाय बताइये जिससे मोटी बुद्धि वाले प्राणी भी इस माया को पार कर सकें। तब चौथे योगीश्वर प्रबुद्ध जी बोले—हे राजन्! मनुष्य दुःखों से छूटने के लिए तथा सुख प्राप्ति के हेतु अनेक प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। किन्तु उन्हें सुख तो मिलता नहीं है उन कर्मों के फलों से मुक्त होने की अपेक्षा वे कर्म बन्धन में और भी आत्याधिक फँसते जाते हैं। उनका दुःख और बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए धन को ही लीजिये। शुभ कर्म करने से धन प्राप्त हो गया। पहिले तो कठिन परिश्रम से धन प्राप्त हुआ फिर उसकी रक्षा के हेतु कष्ट उठाने पड़े। यदि उस की रक्षा न हो सकी तो आत्मा को महान् क्लेश का कारण बन गया। मनुष्य इस धन की उलझन में फँस कर अपने को भूल जाता है और उसके लिए केवल धन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ही सर्वस्व बन जाता है। इसी भाँति स्त्री पुत्रादि पशु धन इत्यादि को ले लीजिये। ये सब नाशवान हैं कभी किसी की मृत्यु कभी किसी का जन्म लगा रहता है। मृत्यु होने पर आत्मा को अति क्लेश होता है, फिर इन अनित्य वस्तु में सुख कहाँ? सुख तो उसी वस्तु में है जो सांसारिक माया से परे है। यह सब कुछ तो साँसारिक माया है। यदि शुभ कर्म करके किसी प्रकार स्वर्गादि उत्तम लोक प्राप्त कर लिये तो वे लोक भी नाशवान हैं। और उन शुभ कर्मों के फल की समाप्ति होने पर लोकों से पुनः पतन हो जाता है। और फिर दुःख उठाना पड़ता है। वह नित्य सुख उसे प्राप्त नहीं होता है वह नित्य सुख तो उसे जभी प्राप्त होता है जब वह माया से परे होकर परब्रह्म में लीन हो जाता है। यहाँ कभी दुःख का कारण नहीं बनता।

उस परब्रह्म परमात्मा की सन्निधि में ही उसे नित्य परम सुख मिलता है। और वह परब्रह्म गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। गुरु ऐसा परम ज्ञानी तथा वेदों का पारदर्शी विद्वान हो कि अनेक शिष्यों को भली प्रकार से रहस्य समझा सके। वह शान्त चित्त सांसारिक प्रपंच से अलग, भगवत्भक्त हो। वह जिज्ञासु सावधानी से, निष्कपट भाव से गुरु की सेवा करे तथा भागवत् धर्म की शिक्षा प्राप्त करे। ईश्वर तत्व को जानने के लिये सब से प्रथम मन को वश में करना चाहिये। उसे सब ओर से मोड़ लेना चाहिये। किसी प्रकार की आसक्ति न रखनी चाहिये तत्र साधु पुरुषों की सङ्गति करनी चाहिये। उनसे प्रेम भाव रखना चाहिये। दीनों पर दया, साथ वालों से मित्रता बड़ों के प्रति श्रद्धा तथा नम्रता का भाव रखना चाहिये। शरीर तथा मन को पवित्र रख कर तपस्या करनी चाहिये। अपने धर्म का पालन करना चाहिये। व्यर्थ की गपशप में समय को नष्ट न करना चाहिये। एकांत सेवन करे। गर्मी सर्दी, सुख, दुखादि को सहन करे। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करे। मन, वाणी तथा कर्म से भगवत्-भजन करे। विपत्ति तथा सम्पत्ति में सम रहे। किसी में प्रिय अप्रिय भाव न रक्खे। सब में परमात्मा देखे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

यदि वह जिज्ञासु गृहस्थी है तो पवित्र वस्त्र धारण करे और यदि वह त्यागी है तो फटे पुराने वस्त्रों को धारण करे। प्रारब्धानुसार जो प्राप्त हो जाय उसी में गुजर करे। किसी धर्म तथा शास्त्र की निन्दा न करे। अपने धर्म तथा शास्त्रों में श्रद्धा रक्खे। प्राणायाम के द्वारा मन को जीते, मौन होके वाणी जीते, वासना हीन होकर संयमी बने। सदा सत्य भाषण करे, इन्द्रियों को उन की गोलकों में स्थिर करके उन्हें वश में करे। भगवान् की लीला तथा गुणों का श्रवण कीर्तन करे। अपनी सब प्रिय वस्तुओं घर, स्त्री, पुत्र, धन सम्पत्ति आदि को भगवान् के अर्पण करदे। सभी प्राणियों की सेवा करे। वे सब से उत्तम मनुष्य होते हैं उन से भी उत्तम परोपकारी मनुष्य होते हैं, उनसे भी उत्तम भगवत्भक्त होते हैं तथा उनसे भी उत्तम सन्त पुरुष होते हैं। इनकी सेवा करने से परम ज्ञान की प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करे उसी से सच्ची शान्ति तथा परमानन्द प्राप्त होता है। उन के प्रेमानन्द में मन जब रम जाता है तब प्रेम के उद्रेक में भक्त का मन पुलकित हो जाता है तथा हृदय की बड़ी अनोखी दशा हो जाती है। भगवान् की प्राप्ति के लिये भक्त कभी रोता है कभी हँसता है कभी गाता है कभी नाचता है। कभी मूर्छित हो जाता है। वह भगवान् की सन्निधि प्राप्ति के लिये छटपटाता रहता है। तब वह उन भगवान् की कृपा से सहज ही में उनकी माया से परे हो जाता है।

तब राजा निमि ने पूछा—हे भगवन्! आप परमात्मा का स्वरूप भली प्रकार जानते हैं। इसलिये मुझे बताइये कि परब्रह्म परमात्मा जिन्हें नारायण कहते हैं उनका क्या स्वरूप है।

तब पाँचवे योगीश्वर विप्पलायन जी बोले—हे राजन्! जो इस जगत का उत्पन्न करने वाला स्थिति करने वाला तथा नाश करने वाला है जो स्वयं बनने वाला तथा जगत को बनाने वाला है किन्तु स्वयं कारण तथा कारणत्व अर्थात् बनने तथा बनाने से अलग रहता है। स्वप्न जाग्रति तथा सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में भी साक्षी रूप है। जो सदा सभी स्थितियों में एक सा रहता है। जिसकी सत्ता

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by ... Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सब प्राणियों तथा सम्पूर्ण विश्व में समाई हुई है उसी को आप नारायण समझें। हे राजन् ! नारायण का स्वरूप मन तथा इन्द्रियों का विषय नहीं है। उसे न तो नेत्र देख सकते हैं न वाणी कुछ कह सकती है, न बुद्धि सोच सकती है न मन प्राण तथा इन्द्रियाँ उन के निकट पहुँच सकते हैं। श्रुतियाँ भी नेति-नेति कह कर पुकारती हैं। वे भी नारायण के किसी स्वरूप का निरूपण नहीं करती हैं। वे श्रुतियाँ केवल भगवत् प्राप्ति के निषेध का ज्ञान कराती हैं। भगवत् प्राप्ति के मार्ग में रुकावट करने वाले कर्मों का निषेध करती हैं सृष्टि के आदि में केवल वही एक परमात्मा था। सृष्टि रचने के लिए उसने सत्व, रज, तम, तीन गुणों की सृष्टि की। वही त्रिगुणमयी प्रकृति कहलाई। वही ज्ञान प्रधान होने के कारण महत्तत्व कहलाई तथा क्रिया प्रधान होने के कारण सूत्रात्मा तथा जीव को लिप्त करने का कारण होने से अहङ्कार कहलाई।

हे राजन् ! ये सम्पूर्ण शक्तियाँ जो इन्द्रियों में तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं में तथा सर्वत्र प्रतीत होती हैं। वे सभी परब्रह्म ही हैं। वह ब्रह्म अनन्त शक्ति वाला है। यहाँ तक कि जो कुछ भी दृश्य अदृश्य, सत्य असत्य, कार्य कारण आदि प्रतीत होते हैं वे सब के सब ब्रह्म हैं। इनसे परे भी ब्रह्म है। वह ब्रह्म न कभी मरता है और न जन्म लेता है जीवन मरण से रहित है। न उस में कोई परिवर्तन होता है न वह बढ़ता है न घटता है। वह तीनों कालों में सब का साक्षी है। वह सर्व व्यापी है। वह ज्ञान स्वरूप होने से ज्ञान के द्वारा ही जाना जाता है। वह परमात्मा एक होने पर भी इन्द्रियों के सहयोग से अनेक रूपों में प्रतीत होता है जैसे सूर्य एक होने पर भी जल के भरे हुए सभी घड़ों में उसकी परछाँई का आभास होता है। उसी प्रकार परमात्मा एक होते हुए भी सभी में उस की प्रतीत होती है। प्रकृति चार प्रकार की है— स्वेदज, अण्डज, जरायुज तथा उद्भिज। इन सब में जीव होता है तथा उस जीव के पीछे प्राण—शक्ति रहती है शरीर अनेक होने पर भी एक ही प्राण शक्ति सब को प्रकाशित करती रहती है जब सुषुप्ति

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

दशा में सब इन्द्रियाँ निश्चेष्ट होकर अपना कार्य बन्द कर देती हैं तथा अहंकार (चित्त) भी सो जाता है तब केवल आत्मा साक्षीरूप में जाग्रत रहता है क्योंकि यदि आत्मा जाग्रत न रहे तो सुख पूर्वक सोने की बात कैसे याद रहे कि आनन्द पूर्वक सोये ? उस आत्मा के जाग्रत रहने के कारण ही इसका स्मरण रहता है। चित्त के सम्पूर्ण मल भगवान् की भक्ति से धुल जाते हैं। चित्त के शुद्ध होने पर आत्म तत्व का भास हो जाता है।

राजा निमि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मुझे कर्म योग का उपदेश दीजिये। जिस के साधन से मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है तथा जन्म मरण के चक्कर से छूट जाता है। हे योगीश्वरो ! मैंने यह प्रश्न बाल्यावस्था में अपने पिता महाराज इक्ष्वाकु के सन्मुख सनकादि ऋषियों से पूछा था किन्तु उन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया वे सर्वज्ञ थे। किन्तु फिर भी उन्होंने उपेक्षा क्यों की इस का कारण मुझे बताइये।

तब छटवें योगीश्वर आविर्होत्र जी बोले—हे राजन् ! कौन सा कर्म किस के लिये करने योग्य है और कौन सा कर्म किस के लिये नहीं करने योग्य है। तथा कौन सा अकर्म है इन सब का निरूपण वेदों ने किया है। लौकिक व्यवहार, स्थिति तथा तर्क द्वारा इनका ज्ञान नहीं होता है। इसके अतिरिक्त वेदों का समझना ईश्वर तत्व को समझना है। इसके समझने में बड़े बड़े ज्ञानी तथा विद्वान् भी चक्कर खा जाते हैं। वे भी नहीं समझ पाते हैं फिर साधारण पुरुषों की तो बात ही क्या है। इसी कारण सनकादि मुनीश्वरों ने तुम्हें बालक समझ कर तथा इस तत्व के समझाने को योग्य पात्र न समझ कर उन्होंने नहीं समझाया और न कोई उत्तर दिया। हे राजन् ! कर्म बन्धन से मुक्त करने के लिये ही वेदों में कर्मों का वर्णन किया है कि ऐसे-ऐसे कर्म करने से उनका यह फल प्राप्त होता है ताकि मनुष्य फल रहित इच्छा से कर्म करे, और कर्मों से मोक्ष प्राप्त कर सकें। वेदों का तात्पर्य कर्मों से मुक्त होने का है किन्तु उसका अर्थ यह भी नहीं है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कि कोई कुछ कर्म ही न करे। जो मनुष्य अज्ञानी हैं तथा इन्द्रियों के वश में हैं यदि वह वेद विदित कर्मों का परित्याग कर देता है तो वह अधर्म ही करता है। वह संसार चक्र से छुटकारा नहीं पा सकता है। किन्तु जो पुरुष ज्ञानी है तथा जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है यदि वह वेद विदित कर्मों को अनासक्त भाव से करता हुआ भगवान् के चरणों में समर्पित कर देता है तो उसे कर्म बन्धन प्राप्त नहीं होता है तथा उत्तम मोक्ष प्राप्त होती है। जो सकाम भाव से वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करता है उसे स्वर्गादि प्राप्त होते हैं, जो कर्म फल समाप्त होने पर स्वर्गादि से भ्रष्ट होकर फिर संसार में जन्म लेता है और जन्म मरण के चक्कर में पड़ जाता है किन्तु जो निष्काम भाव से कर्मो का अनुष्ठान करता है उसकी आत्मा शुद्ध होकर ईश्वर तत्व की उसे प्राप्ति होती है। और वह आवागमन के चक्कर से छूट कर ईश्वर में लीन हो जाता है।

हे राजन्! जो परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति चाहता है उसे वैदिक तथा तान्त्रिक दोनों प्रकार की विधि से भगवान् की पूजा करनी चाहिये। पहिले सेवा से गरु को प्रसन्न करे उन से पूजा तथा अनुष्ठान की विधि मालूम करे। प्रथम स्नानादि से शरीर की शुद्धि तथा सन्तोष आदि से अन्तःकरण की शुद्धि करे। तत्पश्चात् भगवान् की मूर्ति के सन्मुख बैठ कर प्राणायाम विधि से नाड़ियों को शुद्ध करे। फिर वेदोक्त मन्त्रों से अङ्गन्यास करे फिर भगवान् की पूजा करे। पूजा चाहे मूर्त्ति की करे अथवा हृदय में मूर्ति धारण कर के मनसा पूजा करे। किन्तु भक्ति श्रद्धा तथा प्रेम से पूजन की सामग्री पूजा स्थान में धरे तब आसन पर जल के छींटे मार कर अर्घ्यपाद्य आदि के पात्रों को यथा योग्य स्थान पर रक्खे। तत्पश्चात् आसन पर सीधा बैठ कर करन्यास अङ्गन्यास आदि से शरीर को मन्त्र मय करके मूल मन्त्र से भगवान् की पूजा करे। भगवान् के प्रत्येक अङ्ग पर ध्यान लगावे। उन्हें मूल मन्त्र से पाद्य अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क स्नान, वस्त्र आभूषण, गन्ध, पुष्प, दधि अक्षत तथा चन्दन से तिलक, माला, धूप, दीप, नैवेद्य अर्पण करे,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और तत्पश्चात् प्रणाम करे। इस प्रकार शोडषोपचार से पूजन करे। तत्पश्चात् मूल मन्त्र (बीज मन्त्र) का जप करे। उस समय अपने को यह समझे कि मैं भगवान्मय हूँ। भगवान् मेरे शरीर में विराजमान हैं। पूजा करने के पश्चात् उन की मूर्ति को यथा स्थान स्थापित कर दे। इसी विधि से नित्य प्रति करे। जो मनुष्य अग्नि, सूर्य, जल तथा अतिथि और आत्म स्वरूप भगवान् की नित्य पूजा करता है वह अनायास ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

॥ चौथा अध्याय ॥

भगवान् के अवतारों का वर्णन करना।

दो०—द्रुमिल योगी ने कहे, भगवत के अवतार।
समय २ पर करत प्रभु, अपने रूप अपार॥

राजा निमि ने पूछा—हे योगीश्वरो! भगवान् ने अब तक कितने अवतार धारण किये हैं तथा कितने अवतार आगे लेंगे। उन सबका वर्णन करने की कृपा कीजिये। उनके लीला अवतारों की सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है।

तब सातवें योगीश्वर द्रुमिल जी बोले—हे राजन्! भगवान् की लीलायें अनन्त हैं उनके गुण अनन्त हैं कोई उन्हें गिनना चाहे तो वह मूर्ख तथा अज्ञानी है। पृथ्वी के कण गिने जा सकते हैं आकाश के तारे गिने जा सकते हैं किन्तु उन सर्व शक्तिमान् भगवान् के अनन्त गुणों तथा उनकी लीलाओं को कोई नहीं गिन सकता है। उन भगवान् ने, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तथा आकाश इन पञ्च महाभूतों की सृष्टि स्वयं अपने आप से अपने आप में की। जब उन्होंने पंच महा भूतों के द्वारा अपना विराट स्वरूप धारण करके उसमें प्रवेश किया तब वह 'विराट पुरुष' कहलाया। यही सर्व प्रथम अवतार है। उन्हीं विराट् ब्रह्माण्ड में तीनों लोक व्याप्त हैं। उन्हीं विराट् पुरुष से सम्पूर्ण देह धारियों में ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का निर्माण हुआ उन्हीं से ज्ञान तथा बुद्धि का संचार हुआ। उन्हीं के द्वारा श्वास प्रश्वास ओज तथा बल शक्ति उत्पन्न हुई। वे ही विराट् शरीर के धारण करने

Digitized by ... Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वाले आदि कर्त्ता नारायण हैं। (नार-जल-अयण-स्थान) जिनका जल में स्थान है। उन्हीं नारायण ने रजोगुण से अपने अन्श रूप ब्रह्मा की उत्पत्ति की तथा तमोगुण से अपने अंशरूप शिव की उत्पत्ति की तथा सत्यगुण रूप विष्णु की उत्पत्ति की। ये तीनों ही स्वरूप एक ही नारायण ने अपने गुणों से धारण किये हैं। जो जगत की उत्पत्ति, प्रलय तथा स्थिति करते रहते हैं।

दक्ष प्रजापति की कन्या मूर्ति के गर्भ से धर्म के द्वारा नर नारायण ने अवतार ग्रहण किया। उन्होंने आत्म तत्व का साक्षात्कार करने वाले कर्म का उपदेश संसार को दिया है। उन्होंने स्वयं भी वैसा ही आचरण करके जगत के सन्मुख प्रमाणित किया है। बड़े बड़े ऋषि लोग उन्हीं के आचरण का अनुकरण करते हैं। वे दोनों महान् आत्मा बद्रिकाश्रम में तपस्या करते रहते हैं।

एक समय इन्द्र ने उन की तपस्या से घबड़ा कर कहा कहीं ये तपस्या के बल से मेरे इन्द्रासन को न लेलें उनके निकट तपस्या भङ्ग करने के हेतु कामदेव बसन्त तथा स्वर्ग को अप्सराओं की बद्रिकाश्रम में भेजा। बसन्त ने उत्तम ऋतु का निर्माण किया तथा कामदेव ने अपने तीखेवाणों का संचार किया तब देवङ्गनाओं ने अपने हाव भाव से उन नर नारायण को मोहित करने का प्रयत्न किया। किन्तु उन आदि देवो पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब वे शाप के भयसे थर थर काँपने लगे। उन्हें अभयदान देते हुए भगवान नर नारायण बोले-हे देवताओ! तुम लोग मत डरो। तुम हमारे अतिथि हो हमारा आतिथ्य स्वीकार करो। कुछ काल तक यहीं निवास करो। उनके मधुर बचन सुनकर कामदेव आदि देवताओं तथा देवाङ्गनाओं के शिर लज्जा से नीचे झुक गये। तथा वे बोले–

हे भगवन्! आप सदा ही दीनों पर दया करते हैं। आपका हम पर दया पूर्ण वर्ताव कोई नई बात नहीं है। आप माया से परे तथा निर्विकार हैं। बड़े बड़े योगीजन आप के ही चरणों का ध्यान करते रहते हैं। आपने हम अपराधियों को क्षमा प्रदान की है यह आपके स्वाभाविक गुण हैं। आपके भक्त अमरावती को भी तुच्छ समझते हैं। वे परम पद की ही

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्राप्ति चाहते रहते हैं। देवतागण उनकी साधना में विघ्न उत्पन्न करते हैं, किन्तु वे अपने पथ से कभी विचलित नहीं होते हैं। क्योंकि उन पर आप के अभय कर की छत्र छाया रहती है। जब देवराज इन्द्र के सेवकों ने भगवान् की इस प्रकार स्तुति की तब नर नारायण ने लक्ष्मी के समान असंख्यों सुन्दरियाँ उत्पन्न करदीं। और बोले तुम लोग इन स्त्रियों में से किसीएक को ग्रहण करलो। वह तुम्हारे स्वर्गमें श्रेष्ठ सुन्दरी होगी। तब इन्द्रके सेवकों ने भगवान् नर नारायण की आज्ञा मान कर उन्हें नमस्कार किया और एक सुन्दरी ग्रहण करली वही सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीके नाम से विख्यात हुई। जब देवराज इन्द्रने यह सब हाल सुना तब वह डरकर अतिआश्चर्य करने लगा।

भगवान् विष्णु ने कालरूप अनेकों अवतार धारण किये हैं। हंस, दत्तात्रेय, सनकादिमुनीश्वर, तथा हमारे पिता ऋषभदेव के रूप में अवतार लेकर आत्मज्ञान का उपदेश किया। उन्होंने हयग्रीव का अवतार ले कर मधुकैभट दैत्यों का संहार किया। प्रलयकाल के समय मत्स्यावतार धारण किया। बाराह अवतार धारण करके पृथ्वी को रसातल से लाये तथा हिरण्याक्ष का बध किया। कच्छप अवतार लेकर समुद्र मन्थन किया। विष्णुरूप से गजेन्द्र की रक्षा की। बालखिल्य ऋषियों की रक्षा की। वृत्रासुर के मारने पर ब्रह्महत्या से इन्द्र की रक्षा करने तथा देवाङ्गनाओं को असुरों की बन्दी से मुक्त करने के लिये अवतार धारण किया। प्रहलाद की रक्षा के लिये नृसिंह अवतार लिया। फिर बलि से पृथ्वी छीनने के लिये बामन अवतार लिया। तत्पश्चात् अभिमानी क्षत्रियों का नाश करने के लिये परशुरामजी का अवतार लिया। रावण का नाश करने के लिये राम का अवतार लिया। द्वापर में पृथ्वी का भार उतारने के लिये कृष्णावतार धारण करेंगे। फिर भगवान् बुद्ध का अवतार लेंगे। तत्पश्चात् कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार लेंगे। जो शूद्र राजाओं का संहार करेंगे।

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

भक्तिहीन पुरुषों की गति का वर्णन तथा भगवान् की पूजा विधि बताना

दो०—पूजा विधि वर्णन करी, चमन मुनी समझाय।
राजा निमि सुनने लगे, मन में अति हरषाय॥

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राजा निमि ने पूछा—हे भगवन्! आप लोग आत्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा परम भक्त हैं। अतः कृपा करके यह बतलाइये कि जो लौकिक तथा पार लौकिक भोगों की इच्छा में लगे रहते हैं। जिनके मन तथा इन्द्रियाँ वश में नहीं हुई हैं और न जिनकी कामनाएँ शान्त हुई हैं जो भगवान का भजन कभी नहीं करते हैं उनकी क्या गति होती है। तब आठवें योगीश्वर चमन जी बोले—हे राजन्! विराट भगवान् के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य तथा चरणों से शूद्र पैदा हुये तथा हृदय से ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थल से वानप्रस्थ मस्तक से सन्यास तथा जाँघों से गृहस्थाश्रम उत्पन्न हुआ। इन सब के उत्पन्न करने वाले भगवान् ही हैं। अतः जो मनुष्य इन आश्रमों में तथा वर्णों में जन्म लेकर उनकी आराधना नहीं करता है वह उनका अनादर करता है। वे शूद्र तथा स्त्रियाँ भगवान् की कथा तथा कीर्तन से अलग रहते हैं। अतः हे राजन्! आप उन्हें सुविधा देकर इस भगवत् भजन में प्रवृत्त कीजिये। ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य वेदाध्ययन तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के कारण भगवान् की आराधना करते रहते हैं। किन्तु वे वेदों के सच्चे अर्थ को न समझ कर केवल ऊपर की बातें लेकर धन संचित करने में लगे रहते हैं। वे सदा परमार्थ से वंचित रहते हैं भगवत् भक्तों की हंसी उड़ाते हैं तथा स्त्रियों में रत रहते हैं। उनका सारा सुख स्त्री सहवास तक ही सीमित रहता है। यदि वे यज्ञादि कोई धर्म कार्य भी करते हैं तो वे अपने नाम तथा यश प्राप्ति की लालसा से करते हैं। वे मूर्ख कर्म का रहस्य न समझ कर पशु हत्या आदि कर्म पेट की भूख मिटाने तथा जीभ के स्वाद के लिए करते हैं। वे अपने अहङ्कार में अन्धे रह कर भगवत् कथा तथा सन्त जनों का अनादर करते हैं। विवाह, यज्ञ, आदि जितने भी कर्म हैं, वे उच्छृंखलता आदि अवगुणों को रोकने के लिये हैं जिससे मर्यादा की स्थापना हो। धन उत्पन्न करने का अर्थ यह नहीं है कि उसे कामोपभोगों में व्यय किया जावे। किन्तु धनोपार्जन का तात्पर्य यह है कि वह धर्म के कार्यों में लगाया जावे। धर्म से ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान से निष्ठा तथा निष्ठा से परम शान्ति मिलती है। किन्तु यह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

दुःख का विषय है कि धन को विषयों में नष्ट कर डालते हैं। शराब पीने का विधान यज्ञ में कहीं पर नहीं है। केवल सूँघने का विधान है। यज्ञ में पशु हिंसा का कहीं विधान नहीं है। पत्नी सहवास का अर्थ केवल वंश परम्परा की रक्षा के लिये सन्तान उत्पन्न करना है न कि विषय भोगों का साधन बनाना। जो पशुओं को मार कर खाते हैं उन के मरने पर पशु मारने वालों को खाते हैं।

जो मनुष्य आत्मज्ञान का सम्पादन तो करते हैं किन्तु उन नियमों पर चलते नहीं हैं वे धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों में लगे रहते हैं। वे आत्म घाती के समान हैं उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती। वे भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र से पराङ्मुख रहते हैं। अन्त में स्त्री, पुत्र, मित्रादि धन सम्पत्ति जो उन्होंने एकत्र की थी त्याग कर काल के वशीभूत होकर चले जाते हैं और नरक में गिरते हैं।

राजा निमि ने पूछा—हे योगीश्वरो! आप कृपा करके यह बतलाइए कि भगवान् किस किस युग में कैसे कैसे रङ्ग का शरीर धारण करते हैं तथा मनुष्य किस प्रकार किन किन नामों से उन की उपासना करते हैं तब नवे योगीश्वर करभाजन जी बोले—हे राजन्! सतयुग में भगवान् के श्री विग्रह का रङ्ग श्वेत होता है। उन की चार भुजायें तथा शिर पर जटा और बल्कल वस्त्र धारण किये रहते हैं। काला मृग चर्म यज्ञोपवीत रुद्राक्ष की माला दण्ड तथा कमण्डल लिए हुए होते हैं। सतयुग में मनुष्य समदर्शी, शान्त, प्रिय, परोपकारी तथा वैर रहित होते हैं। वे भगवान् की तपस्या करते हैं। हंस, सुपर्ण, बैकुण्ठ, धर्म योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष अव्यक्त तथा परमात्मा आदि नामों से भगवान् की आराधना करते हैं।

त्रेता युग में भगवान् के श्री विग्रह का रङ्ग लाल होता है। चतुर्भुज स्वरूप तथा कटि भाग में तीन मेखला धारण करते हैं उनके सुनहले केश होते हैं। वे यज्ञपात्रों को धारण करते हैं। त्रेता युग में मनुष्य धर्म निष्ठा वाले वेदाध्यन में रत रहते हैं। विष्णु यज्ञ पृष्णि गर्भ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकार्य जयन्त तथा उरुगाय आदि नामों से भगवान् की आराधना की जाती है।

द्वापर में भगवान् का श्री विग्रह सांवला होता है वे चतुर्भुज स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि धारण किये रहते हैं तथा पीताम्बर धारण करते हैं। श्रीवत्स का चिन्ह, भृगुलता, कौस्तुभमणि आदि लक्षणों वाले होते हैं। भक्तजन वैदिक तथा तांत्रिक दोनों विधि से भगवान् की आराधना करते हैं भगवान् संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चार रूपों से अवतार लेते हैं।

अब कलियुग का वर्णन सुनो। कलियुग में भगवान् का श्री विग्रह काले रङ्ग का श्याम होता है। उनकी काँति नीलमणि के समान होती है। वे कौस्तुभमणि तथा सुदर्शन चक्र आदि धारण किये रहते हैं। कलियुग में उनके नाम, गुण, लीला आदि के कीर्तन की प्रधानता रहती है। केवल उनके नाम संकीर्तन मात्र से ही यज्ञों का फल प्राप्त होता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर की प्रजा चाहती है कि हम कलियुग में जन्म लें। क्यों कि कलियुग में केवल कथा तथा नाम संकीर्तन से ही वह फल प्राप्त होता है जो सतयुग, त्रेता, द्वापर में करोड़ों वर्ष जप, तप, तथा यज्ञ करने से फल प्राप्त होता है। इस युग में द्रविड़ देश में अधिक भक्त जन पाये जाते हैं जो कृतमाला, पयस्विनी, ताम्रपर्णी, कावेरी, महानदी तथा प्रतीची आदि नदियों के जलपान करने से उनके अन्तःकरणों में भगवान् की भक्ति उत्पन्न हो जाती है।

नारदजी बोले—हे बसुदेव जी! राजा निमि ने उन नौ योगीश्वरों से इस प्रकार भागवत् धर्म का उपदेश ग्रहण किया और उन योगीश्वरों की विधिवत पूजा की। उसने उन्हीं नियमों का पालन करके परमगति प्राप्त की। इसलिये हे महाभाग बसुदेव जी! आपके तो भगवान् स्वयं पुत्र ही हैं। माता देवकी तथा आपने भगवान के दर्शन, आलिंगन, बात चीत सुलाने, खिलाने तथा बैठने के द्वारा वात्सल्य स्नेह से हृदय को शुद्ध कर लिया है। तुम्हारी कीर्ति चारों तरफ छाई है।

तुम परम पवित्र होगये हो। जब शिशुपाल पौण्ड्रक तथा शाल्व आदि

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

शत्रु भाव से भगवान् का ध्यान करने वाले परमगति को प्राप्त हो गये, तब तुम्हारा तो कहना ही क्या है तुम तो उनकी सारुप्य मुक्ति के अधिकारी हो गये हो। तुम इन्हें अपना पुत्र न समझो वे सर्वात्मा अविनाशी हैं। उन्होंने अपने स्वरूप को छिपा कर मनुष्यों की सी लीला की है। श्री-शुकदेवजी बोले-हे राजा परीक्षित! नारद जी से ऐसा उपदेश सुन कर बसुदेव जी तथा देवकी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका सारा मोह नष्ट हो गया। जो मनुष्य एकाग्रता से इस चरित्र को सुन कर मनन करता है उसके सारे शोक दूर हो जाते हैं तथा वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

॥ छटवाँ अध्याय ॥

देवताओं द्वारा भगवान् की प्रार्थना करना
तथा स्वधाम गवन के लिये आग्रह करना।

दो०—कृष्णचन्द्र से मिलन सुर, आये उनके ठाम।
शिर झुकाय कहने लगे, चलो प्रभू निज धाम॥
उद्धव ने जानी जभो, प्रभु के मन की बात।
परे चरन अकुलाय कर, नहिं त्यागो मम तात॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब देवर्षि नारद द्वारिका से चले गये तब ब्रह्माजी प्रजापतियों के साथ तथा भगवान् शंकर मरुद्गण और इन्द्रादि देवताओं को लेकर द्वारिकापुरी में आये। उनके साथ आदित्यगण, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरा, रुद्रगण, गन्धर्व, अप्सरायें, नाग, सिद्धि, चारण, पितर, विद्याधर आदि सभी पधारे। उन्होंने भगवान् श्री-कृष्णचन्द्र के दर्शन किये और उनकी स्तुति करने लगे—

देवताओं ने प्रार्थना की-हे प्रभो! हम आपके चरणों में मन, बचन, तथा कर्म से आपकी प्रार्थना करते हैं आपके भक्तजन इन्हीं चरणों के मकरन्द रस का पान करते रहते हैं। आप त्रिगुणमयी माया के द्वारा इस जगत की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करते रहते हैं। आप माया के गुणों से स्थिति रहते हुए भी उन में लिपायमान नहीं होते हैं। आपके कर्म तथा कौशल अनिर्वचनीय हैं। आपके गुण, यश तथा कर्म, वाणी से

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

परे हैं। हे भक्त बांच्छाकल्पतरो ! हम लोग सदा आपके चरणों का ही आश्रय लेकर रहते हैं। अब आप पृथ्वी का भार उतार चुके और यहाँ का कार्य समाप्त कर चुके आप स्वयं पुरुषोत्तम होने से अमोघ वीर्य धारण करते हैं। और उस वीर्य को माया के साथ संयुक्त करके इस सृष्टि में महतत्व रूप गर्भ की स्थापना करते हैं। तत्पश्चात् यह महतत्व, त्रिगुणमयी माया का आश्रय लेकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन तथा अहङ्कार इन सात आवरणों वाले ब्रह्मांड की रचना करते हैं। आप के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता है। सोलह हजार से अधिक रानियाँ अपनी मन्दमन्द मुस्कान तथा तिरछी चितवन से आपको मोहित करने का प्रयत्न करती रहती हैं, किन्तु आप तनिक भी नहीं डिगते हैं। उनके सारे प्रयत्न असफल रहते हैं। आपने पापों को नष्ट करने के लिये दो पवित्र नदियाँ प्रवाहित की हैं। एक तो आपकी अमृत मयी कथा तथा लीला रूपी नदी दूसरी श्री गङ्गाजी। इन दोनों का सेवन करने से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! सब देवताओं के साथ तब ब्रह्माजी ने इस प्रकार प्रार्थना की और कहने लगे।

ब्रह्माजी बोले—हे विश्वात्मन् विभो ! आपने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर के पृथ्वी का भार उतारने के लिये तथा दुष्टों का सँहार करके धर्म की स्थापना के लिये इस भू पर अवतार धारण किया था अब आपका वह कार्य समाप्त हो चुका है। हम भक्तजन आपके बिना वहाँ अति दुखी हैं। अब आप अपने स्वधाम को पधार कर हमें आनन्द प्रदान कीजिये। आपने एक सौ पच्चीस दिव्य वर्ष यहाँ व्यतीत कर दिये हैं। अब हम लोगों का ऐसा कार्य शेष नहीं रहा है जो आपके योग्य हो। आपने ब्राह्मणों द्वारा यदुवंशियों को शाप दिला कर भी नाश कर दिया है, वे स्वयं नष्ट हो चुके हैं। इसलिये अब आप यदि उचित समझें तो अपने स्वधाम को पधारने की कृपा करें और हम लोकपालों को आनन्दित करें।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे ब्रह्माजी ! आपने जो कुछ कहा है, उसका निश्चय मैं पहिले ही कर चुका हूँ पृथ्वी का भार मैंने उतार दिया है केवल यदुवंशी रह गये हैं। इन्हें भी ब्राह्मणों द्वारा शाप दिला कर नष्ट किये देता हूँ। ये यदुवंशी मेरे द्वारा शक्ति सम्पन्न होकर अति घमण्डी उच्छृंखल तथा उन्मत्त हो रहे हैं। वे सारी पृथ्वी को ग्रसने में समर्थ हैं। यदि मैं इन्हें नष्ट किये बिना अपने लोक को आता हूँ तो ये मर्यादा का उल्लंघन करके पाप की वृद्धि करेंगे और मेरा किया कराया सब कार्य नष्ट प्राय: हो जायगा। इसलिये इनका अन्त हो जाने के पश्चात् मैं अपने स्वधाम को आऊँगा।

श्री शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! अखिल विश्वाधिपति भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी के ऐसे बचन सुन कर ब्रह्माजी ने उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया तथा अपने लोक को चले गये। उधर द्वारिका में घोर अपशकुन होने लगे। उन अपशकुनों तथा उत्पातों को देख कर यदुवंशी वृद्धजन बड़े घबड़ाये तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के निकट आये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे वृद्धजनो ! यह तो आपको पता है कि ब्राह्मणों ने यदुवंशियों को शाप दे दिया है । जो टलने वाला नहीं है। इसी कारण द्वारिका में ऐसे घोर अपशुकन हो रहे हैं। अतः हमको यहाँ नहीं रहना चाहिए। यदि आप लोग अपनी भलाई चाहते हो तो प्रभास क्षेत्र में चलो। वह अति पवित्र स्थान तथा तीर्थ है। वहाँ दक्ष प्रजापति के शाप से चन्द्रमा भी मुक्त हो गया था। उसका राजयक्ष्मा रोग दूर हो गया और कलाओं की वृद्धि प्राप्त की थी। हम लोग प्रभास क्षेत्र में चल कर वहाँ स्नान करें देवता तथा पितरों की आराधना करें, उनका तर्पण करें, तथा दान पुण्य करें। ब्राह्मणों को उत्तम-उत्तम भोजन करा करा कर सन्तुष्ट करें। बड़ी बड़ी दक्षिणा दें तब उनका आशीर्वाद प्राप्त करके अपने सङ्कटों से मुक्त हो जायेंगे।

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन ! भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के मुख के ऐसे बचन सुनकर यादवों ने ऐसा ही किया। उन्होंने अपने २

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

रथ सजाये तथा खाने पीने की सामिग्री लेकर अनन्त धन राशि के साथ प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी करने लगे। यह देख कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम भक्त तथा प्रेमी सेवक उद्धव जी उनके निकट एकान्त में आये। तब उनके चरणों में मस्तक टेक कर उन्हें प्रणाम किया और बोले—

उद्धवजी बोले—हे भक्त वत्सल ! आप देवाधि देव हैं। आपकी कथा, लीला तथा स्मरण मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है। आप सर्व शक्ति मान होने से ब्राह्मणों के शाप को मिटाने में समर्थ हैं, किन्तु आप उसे मिटाना नहीं चाहते। मुझे मालूम है कि आप यदुवंश का नाश करके अपने स्व-धाम को जाना चाहते हैं। हे प्रभो ! हम दीनजन आपके विना आधे क्षण भी जीवित नहीं रह सकते हैं। हे प्यारे माधव ! आप हमें त्याग कर कहीं न जाइये हमको भी साथ ले चलिये। मेरे जीवन ! मेरे प्राण ! हम यहाँ रह कर क्या करेंगे। जब आपकी लीलाओं को श्रवण मात्रसे ही मनुष्य अतृप्त सा रहता है क्योंकि कानों के लिये अमृत से भी अधिक बढ़कर मधुर हैं। तब हमने तो आपके साथ रहकर उठते बैठते सोते जागते घूमते फिरते खेल खेले हैं। आपके साथ भोजन किये हैं आलिङ्गन किया है। निरन्तर आपके साथ रह कर इन चरणों की सेवा की है। फिर हम उस मधुर रस को किस प्रकार भूल सकते हैं। हमने आपकी प्रदान की हुई माला वस्त्र आदि धारण किये हैं। हम तो आपकी जूठन खाने वाले दास हैं। इसलिये माया पर तो विजय प्राप्त कर सकते हैं किन्तु आपका वियोग किसी प्रकार भी नहीं सह सकते हैं। हम सदा आपकी लीला तथा कथाओं का कीर्तन प्रेमी भक्तों में करते रहेंगे आपने जो कुछ भी किया है तथा उपदेश दिया है उसका स्मरण करते रहेंगे और जब आपकी चाल ढाल हास परिहास तथा मधुर चितवन और मुस्कान का स्मरण होगा तब उसमें विभोर होकर लीन हो जायेंगे। हम इसी से आपकी माया से परे हो जायेंगे। हमें माया से पार जाने की चिंता नहीं है यदि चिंता है तो केवल आपके विरह की। आप हमें भी साथ ले चलिए।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री शुकदेवजी बोले–हे परीक्षित् ! जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपने परम प्रिय भक्त उद्धव को इस प्रकार अधीर तथा दुःखी देखा तब वे इस प्रकार बोले—

—❀—

॥ सातवाँ अध्याय ॥

अवधूतोपाख्यान–पृथ्वी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा का वर्णन करना

दो०–दैन लगे उपदेश प्रभु, उद्धव निज जन जानि।
आठ गुरुन की शुभ कथा, कही भक्त निज मान ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले–हे प्यारे उद्धव ! तुम जो कुछ कह रहे हो वह सत्य ही है। ब्रह्मा, शङ्कर, तथा इन्द्रादि लोकपाल अभी यहाँ मेरे निकट आये थे । उन्होंने स्वधाम गमन के लिये मुझसे आग्रह किया है अब मैं पृथ्वी पर देवताओं का कार्य पूर्ण कर चुका हूँ जिस काम के लिये देवताओं ने मुझ से प्रार्थना की थी । उनकी प्रार्थना स्वीकार कर के मैंने यदुवंश में अवतार लिया और इन अत्याचारी राजाओं को जो पूर्व जन्म में दैत्य तथा राक्षस थे जो अधर्म का विस्तार कर रहे थे उनका संहार करके पृथ्वी का भार उतार दिया। अब यह यदुवंश भी ब्राह्मणों के शाप से नष्ट हो चुका है आज से सातवें दिन द्वारिकापुरी समुद्र में डूब जावेगी। ये यादव लोग परस्पर लड़ कर स्वयं मर जावेंगे । मैं इस मृत्युलोक को त्याग दूँगा। उस समय सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धियाँ तथा दिव्य ऐश्वर्य मेरे साथ चले जावेंगे। मेरे जाने के पश्चात् चारों ओर कलियुग का साम्राज्य स्थापित हो जावेगा। इसलिये तुम भी अपने बन्धु बान्धवों तथा स्वजनों से स्नेह त्याग कर अपना मन मेरेमेंलगा कर स्वच्छन्द पृथ्वी पर विचरो । यह सब जगत जो दृष्टि आता है सुना जाता है तथा स्पर्श किया जाता है सब नाशवान है। यह शरीर तथा इन्द्रियाँ कुछ काल पश्चात अपने आप शक्तिहीन हो कर नष्ट हो जावेंगे।

जिन मनुष्यों की बुद्धि में गुण तथा दोष की कल्पना करने का भेद बैठा हुआ है उन्हीं के लिये वेद ने इस भेद का विधान किया है कि अमुक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर्म करो तथा अमुक कर्म मत करो। और अमुक २ कर्म करना न करना बराबर है। इस कारण हे उद्धव जी! तुम सब से पहले अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करो। और सब वृत्तियों को रोक कर ऐसा अनुभव करो कि यह सम्पूर्ण जगत अपने आत्मा में व्याप्त है और यह आत्मा मुझ सर्वात्मा ब्रह्म में व्याप्त है। अर्थात् वह आत्मा मेरे से अलग नहीं है। जब तुम ऐसा निश्चय कर लोगे तब तुम्हें किसी प्रकार का क्लेश तथा दुःख न व्यापेगा। बस यही वेदों का असली तात्पर्य है तथा यही यथार्थ ज्ञान है। जब अपने हृदय में ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है तब अपने तथा पराये का भाव मिट जाता है। हे उद्धव! जो मनुष्य दोष बुद्धि तथा गुण बुद्धि दोनों से परे हो जाते हैं वे बालक के समान स्वभाव वाले हो जाते हैं। उन कीवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और सम्पूर्ण विश्व को मेरे ही स्वरूप में देखते हैं। इस कारण वे फिर जन्म मृत्यु के चक्कर में कभी नहीं पड़ते।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने जब इस प्रकार उपदेश दिया तब उद्धव जी ने तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिये यह प्रश्न किया।

उद्धवजी बोले—हे विश्वात्मन! आप योगेश्वरों के भी योगेश्वर हैं। आप ही समस्त भोगों का फल देते हैं आपने मेरे कल्याण के लिए यह उत्तम उपदेश दिया है किन्तु मैं विषय भोगों में लीन पुरुष होने के कारण इनसे मुक्त होना अति कठिन समझता हूँ। किन्तु हे प्रभो! जो पुरुष सदा आपसे विमुख रहते हैं वे तो किसी प्रकार भी इनका त्याग नहीं कर सकते। हे प्रभो! मैं भी उन्हीं मूढ़ पुरुषों में से हूँ। धन, स्त्री, पुत्रादि में आसक्त हूँ आपने जिस सन्यास का उपदेश मुझे दिया उसका तत्व मेरी समझ में नहीं आया है मुझे तो एक सुगम मार्ग बतलाइए। आप त्रिकालज्ञ हैं तथा तीनों कालों में एक समान रहते हैं आप स्वयं प्रकाश तथा आत्मारूप हैं। हे प्रभो! आत्म तत्व का उपदेश आपके समान कोई भी करने वाला नहीं है। ब्रह्मा आदि बड़े २ देवता भी आप ही से ज्ञानोपार्जन करते हैं। इसलिये आपके अतिरिक्त और कोई मुझे उपदेश नहीं कर सकता। मैं

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

आप नारायण की शरण में आया हूँ। मुझे अपना दास समझिये।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी बोले—हे उद्धव जी! इस जगत में जो ज्ञानी पुरुष यह जानते हैं कि यह जगत क्या है इसमें क्या हो रहा है। वे स्वयं अपनी विवेक शक्ति से अशुभ कर्मों से बच जाते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा ही उनका उत्तम गुरु हैं मनुष्यों में जो संयमी तथा धीर पुरुष होते हैं वे प्रकृति तथा पुरुष अर्थात् जड़ और चेतन के ज्ञान में निपुण होते हैं। वे मेरे आश्रय में रहने वाले सम्पूर्ण जगत को दर्पण की भाँति प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं। मैंने एक दो तीन चार तथा उनसे भी अधिक पैरों वाले अनेकों प्रकार के शरीरों की रचना की है किन्तु उन सब में मुझे मनुष्य अति प्रिय है। क्योंकि वह मुझे ढूँढने में लगा रहता है। हे उद्धव! मैं आग्राह्य विलक्षण तथा वृत्तियों के द्वारा खोजने में अगम्य हूँ। किन्तु ज्ञानी जन मुझे दो प्रकार से खोजते हैं एक तो यह है कि जितनी भी बुद्धि आदि जड़ वृत्तियाँ देखने में आती हैं वे एक स्वयं प्रकाश तत्व के बिना अपने आप प्रकाशित नहीं हो सकतीं। इस लिये यह सिद्ध होता है कि इनको प्रकाशित करने वाला केवल परमात्मा है यह अनुमान से सिद्ध किया गया है।

दूसरे ये इन्द्रियां जो चेतन हो कर कार्य करती हैं यदि इनको चेतन करने वाला अर्थात् प्रवर्त्तक यदि कोई न होता तो ये स्वयं अपना अपना कार्य नहीं कर पातीं। इसलिये ये सिद्ध हुआ कि इन इन्द्रियों का प्रवर्त्तक अवश्य कोई है। जिसकी शक्ति से ये इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य करती हैं। इन दोनों प्रकार से मेरा अनुमान किया जाता है। किन्तु हे उद्धव जी! मैं इन अनुमानों से भी नहीं सोचा जा सकता हूँ। इस विषय में मैं तुमको एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ जो श्री दत्तात्रेयजी ने राजा यदु को सुनाया था। वह अवधूतोपाख्यान के नाम से प्रसिद्ध है।

राजा यदु ने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपका सौन्दर्य अद्वितीय होते हुये भी आप मलिन से प्रतीत होते हैं। आपका शरीर हृष्ट पुष्ट होते हुये भी आप अकर्मण्य से प्रतीत होते हैं। आप कौन हैं मुझे कृपा कर के यह सब भेद बतलाइये।

तब दत्तात्रेय जी बोले—हे राजन्! मैंने अनेकों गुरुओं से शिक्षा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ग्रहण करके यह सब कुछ प्राप्त किया है। मैं स्वच्छन्द बिचरता हूँ। प्रारब्ध वश जो मिल जाता है उसे ग्रहण कर लेता हूँ। और सन्तोष से रहता हूँ। मैंने अब तक २४ गुरुओं से शिक्षा ग्रहण की है—

पृथ्वी, वायु, आकाश जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर समुद्र, पतङ्ग, भौंरा अथवा मधुमक्खी, हाथी, शहद निचोड़ने वाला, हिरन मछली, पिंगला वैश्या, कुररपक्षी, बालक,कुँआरी कन्या,बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी तथा भृङ्गी कीड़ा, हे राजन्! इन चौबीस गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करके मैं उन्हीं के अनुसार आचरण करता हूँ।

पृथ्वी से धैर्य, पृथ्वी पर जो कुछ भी मैला कूड़ा भला बुरा डालदो वह धैर्य, पूर्वक सब सहन कर लेती है। उस पर कितने ही आघात, उत्पात होते रहें किन्तु वह न कभी रोती है न चिल्लाती है और न कभी बदला लेने की इच्छा करती है इसी प्रकार धीर पुरुष को चाहिये कि दूसरों की विवशता को समझ कर अपने धैर्य को न खोवे तथा किसी पर क्रोध न करे। अपने मार्ग पर शान्ति पूर्वक चलता रहे। पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले पर्वत तथा वृक्षों से यह सीखा है कि दूसरों के हित के लिए ही चेष्टा करते रहना चाहिये जैसे वृक्ष दूसरों को फल, छाया आदि देते हैं। उनसे परोपकार की शिक्षा ग्रहण की है।

मैंने प्राणवायु से यह शिक्षा ली है कि जितने आहार की उसे आवश्यकता होती है उतने ही आहार को ग्रहण करके वह सन्तुष्ट रहती है। साधक को भी यही चाहिये कि जितने में जीवन निर्वाह हो जावे उतना ही भोजन ले। इन्द्रियों की तृप्ति के लिए बहुत से विषयों का संग्रह न करे। उतने ही विषयों का संग्रह करना चाहिये जिनसे बुद्धि, मन वाणी चंचल न हो उठें। बाहरी वायु से मैंने यह सीखा है कि वह अनेक स्थानों में परिभ्रमण करते हुए भी किसी में तथा कहीं भी आसक्त नहीं होती। वह किसी के गुण तथा दोषों को भी ग्रहण नहीं करती है। इसी प्रकार साधक भी सब स्थानों पर जाय किंतु किसी स्थान विशेष में अपनी आसक्ति न रखे और न किसी के दोष को ग्रहण करे। अपने मार्ग पर सदा स्थिर बना रहे। वायु का गुण गन्ध नहीं है। गन्ध पृथ्वी का गुण है वायु तो

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

उस गन्ध को बहन करती है। गन्ध को उड़ा कर लेजाते हुए भी वह पवित्र बना रहता है। उसके सम्पर्क में नहीं आता उसी प्रकार साधक का सम्बन्ध जब तक इस पंचतत्व से बने हुये शरीर से है तब तक क्षुधा, तृष्णा रोग आदि का बहन करता है किन्तु अपने को शरीर न समझकर आत्माकेरूप में अपने को देखने वाला साधक उस शरीर द्वारा उत्पन्न गुणों के सम्पर्क में नहीं आता है और सदा अपने को पवित्र बनाये रखता है। उनमें लिपायमान नहीं होता है।

हे राजन्! परमात्मा सर्वत्र होने के कारण चर, अचर सभी सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर में व्याप्त है। जिस प्रकार माला के मनिका एक सूत में पिरोये रहते हैं उनका आधार तथा सङ्ग उस सूत से है उसी प्रकार साधक को चाहिये कि उन मनिकों में व्याप्त सूत के समान अपने को परमात्मा में व्याप्त समझे। जिस प्रकार एक विशाल समुद्र का जल एक घट में रहने के कारण भिन्न प्रतीत होता है किन्तु उस घट के टूटने पर जल जल में मिल जाता है और अभिन्न रहता है। उसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा भी अभिन्न हैं। जिस प्रकार घटाकाश में आकाश अलग प्रतीत होता है किन्तु घट के टूटने पर आकाश अखण्ड तथा अभिन्न है। उसी प्रकार अज्ञान के नष्ट होने पर आत्मा तथा परमात्मा भी अखण्ड तथा अभिन्न हैं अतः साधक को आकाश की भाँति होना चाहिये उसमें पानी की वर्षा होती है गर्मी सर्दी पड़ती है प्रचंड वायु चलती में बादल आते हैं अनेकों प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होते हुये भी वह अछूता रहता है। उसका इन उपद्रवों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके लिये यह कुछ भी नहीं हुआ। इसी प्रकार तीनों कालों में अनेकों प्रलय तथा सृष्टि होती रहती हैं किन्तु आत्मा का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

जल से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जल जिस प्रकार चिकना मधुर स्वच्छ पवित्र होता है उसे प्रकार साधक को होना चाहिये। जल को ग्रहण करके मनुष्य तृप्त तथा संतुष्ट होकर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार साधक को प्राप्त करके सभी मनुष्य तृप्त तथा संतुष्ट होकर प्रसन्न होवे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

हे राजन् ! मैंने अग्नि से यह शिक्षा ग्रहण की है कि जिस प्रकार अग्नि तेजस्वी तथा ज्योति युक्त होता है उसी प्रकार साधक को तेजस्वी होना चाहिए जिससे कोई हरा न सके। जिस तरह अग्नि सबको भस्म कर लेती है किन्तु दोषों में लिपायमान नहीं होती है। उसी तरह साधक अपनी तपस्या से देदीप्यमान होकर तेजस्वी होवे। सभी विषयों का उपभोग करते हुये भी उन में लिपायमान न होवे। जिस तरह काष्ठ आदि में अग्नि गुप्त रहती है कभी प्रगट हो जाती है उसी तरह साधक भी कहीं गुप्त होकर कहीं कल्याण चाहनें वालों के लिये प्रगट होकर उनका कल्याण करे।

मैंने चन्द्रमा से यह शिक्षा ग्रहण की है कि जिस तरह चन्द्रमा की कला कालानुसार घटती बढ़ती रहती हैं किन्तु चन्द्रमा वही रहता है उसमें न्यूनता तथा बृद्धि नहीं होती है। उसी तरह जन्म से मरने तक शरीर की अवस्थायें बदलती रहती हैं उस आत्मा का कुछ भी घटता बढ़ता नहीं है वह तो सदा एकसा ही रहता है। जिस तरह दीपक की लौ तथा अग्नि कभी उत्पन्न होती है कभी नष्ट हो जाती है उसी तरह यह शरीर काल की गति से कभी उत्पन्न होता है कभी नष्ट होजाता है।

मैंने सूर्य से यह शिक्षा ग्रहण की है कि सूर्य समय आने पर जल को खींच लेता है और समय आने पर बरसा देता है उसी तरह योगी पुरुष समय पर विषयों को ग्रहण भी कर लेता है और समय पर उन्हें त्याग भी देता है किन्तु उन में आसक्ति नहीं रखता है। सूर्य एक होते हुए भी जल के भिन्न पात्रों में भिन्न भिन्न प्रतीत होता है उसी प्रकार परमात्मा एक होते हुए भी हर शरीर में भिन्न भिन्न प्रतीत होता है।

हे राजन् ! कबूतर से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि कबूतर की भाँति ग्रहस्थी में मनुष्य को कभी आसक्त नहीं होना चाहिये। एक कबूतर था उस के एक कबूतरी थी वे दोनों एक दूसरे में आसक्ति रखते थे। उन में परस्पर बड़ा प्रेम था। उनके बच्चे भी उत्पन्न हुए। एक दिन एक ब्याध ने जाल बिछाया उस में उसके बच्चे फँस गए। कबूतरी अपने बच्चों

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

को फँसा देख कर स्नेहवश व्याकुल होकर उस जाल में जा गिरी। जब कबूतर ने यह देखा कि मेरी प्राण प्रिया स्त्री जाल में फँस गई और मेरे बच्चे भी जाल में फँस कर प्राणों से हाथ धोने वाले हैं। हाय! मेरा घर बरबाद हो गया अब मैं भी जीवित रह कर क्या करूँगा। ऐसा सोच कर वह भी जाल में जा गिरा व्याधने यह देखकर अति प्रसन्नता से जाल बन्द कर के उनको लेकर चलता बना।

हे राजन्! मनुष्य को कबूतर की भाँति कामासक्त होकर अपने प्राण नष्ट नहीं करने चाहिये। यह स्त्री नरकका खुला द्वारहै। मनुष्य इसके चंगुल में फँस कर फिर नहीं निकल सकता है। उसकी इच्छापूर्ति के लिये न जाने कितने पाप करता है। यह मनुष्य योनि मुक्ति का द्वार होते हुए भी स्त्री सङ्ग से नरक का द्वार हो जाता है।

॥ आठवाँ अध्याय ॥

अवधूतोपाख्यान–अजगर आदि नौ गुरुओं आदि का वर्णन।

दोहा–अजगर से वैश्या तलक, नौ गुरुअन पाख्यान।
उद्धव को समझावते, श्रीकृष्ण भगवान्॥

श्री दत्तात्रेय जी बोले–हे राजन्! अजगर से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जिस प्रकार अजगर बिना माँगे तथा बिना चेष्टा किये प्राप्त भोगों को भोगता रहता है। उसी प्रकार पूर्व कर्मानुसार प्रारब्ध वश जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये। बुद्धिमान पुरुष न तो प्राप्ति की इच्छा करे और न उनकी प्राप्ति के लिये कोई प्रयत्न करे। रूखा सूखा बुरा भला थोड़ा अधिक जैसा प्राप्त हो जाय उसीमें निर्वाह करे। जितना भोजन मिले उसमें ही प्रसन्न रहे उससे अधिक की प्राप्तिकी चेष्टा न करे। न मिले तो भूखा ही पड़ा रहे। यदि वह शक्तिशाली है तो भी कोई चेष्टा भोजन के लिये न करे।

समुद्र से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जिस प्रकार समुद्र गम्भीर तथा असीम होता है। उसी प्रकार साधक भी गम्भीर तथा असीम रहे। न तो उसे क्रोध बढ़े न बरसात की नदियों की तरह उमड़ कर चले।

हे राजन्! पतिङ्ग से मैंने यह शिक्षा ली है कि वह रूप पर जल मरता है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इसी प्रकार कामी पुरुष स्त्रियों पर मर मिटते हैं। उनकी बुद्धि मारी जाती है वे पतंगे की भाँति मर जाते हैं।

हे राजन्! सन्यासी भौरों की भाँति अपना जीवन व्यतीत करे गृहस्थों को अधिक कष्ट न दे। वह अपने पेट भरने के लिए रोटियाँ घरों से माँग कर भोजन कर लें। वह किसी एक घर का अन्न न खावे क्यों कि एक ही घर का अन्न खाने से उस घर में इसी प्रकार आसक्ति बढ़ जाती है जैसे एक ही कमल पर रहने वाले भौंरे की आसक्ति उस कमल में हो जाती है तथा वह उस में बन्द हो जाता है और उसे त्याग कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता।

जिस प्रकार भौंरा सभी छोटे बड़े पुष्पों से रस ग्रहण करता है उसी प्रकार बुद्धिमान को चाहिये कि सभी वेद तथा शास्त्रों का रस रूपी सार ग्रहण कर ले। व्यर्थ के झगड़ों में पड़ने से वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच कर उलझनों में पड़ जाता है।

हे राजन्! मधुमक्खी से मैंने यही सीखा है कि साधक को कभी संग्रह नहीं करना चाहिये। 'खाय न खरचे सूम धन, चोर सबै ले जाय' शहद की मक्षिका स्वयं शहद का उपभोग नहीं करती है जोड़-जोड़ कर रखती है और शहद तोड़ने वाला झट तोड़ कर शहद ले जाता है। इस लिए सन्यासी कभी सन्ध्या अथवा प्रातः को जोड़ कर न रक्खे। भिक्षा का पात्र उसके पास है तथा रखने का पात्र केवल उसका पेट है।

हे राजन्! हाथी से मैंने यह सीखा है कि हाथी हथिनी का सङ्ग करने के कारण दूसरे प्रवल हाथियों द्वारा मारा जाता है। अङ्ग सङ्ग से तो उसमें आसक्ति बढ़ जाती है। सन्यासी काष्ठ की स्त्री को भी पैर के अँगूठे से न छूवे। स्त्री सन्यासी के लिए मृत्यु के समान है।

मधु तोड़ने वाले भील से मैंने यह सीखा है कि लोभी जीवन भर धन संचय करते हैं और चोर सब को ले जाते हैं वे न स्वयं खर्चते हैं न दान करते हैं। जिस प्रकार भील शहद को तोड़ कर ले जाता है उसी प्रकार चोर संचित धन को ले जाता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

मैंने हिरण से यह शिक्षा प्राप्त की है कि सन्यासियों को कभी रागादि से प्रेम नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार ब्याध हिरण को बीन सुना कर मोहित कर लेता है और उसके प्राण हर लेता है उसी प्रकार सन्यासी भी सङ्गीत सुन कर मारा जाता है। ऋष्यशृङ्ग मुनि को स्त्रियों ने नाच गाना सुनाकर मोहित कर लिया था।

हे राजन्! मछली से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि वह माँस के लोभ से काँटे में फँस जाती है। वह जिह्वा के वशीभूत है। यदि उसे खाने का लोभ न हो जिह्वा वश में हो तो क्यों मारी जावे? इस लिये जिसने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ वश में करली हैं किन्तु जिह्वा वश में नहीं की है तो उसने कुछ भी वश में नहीं किया है। वह जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता। जिसने जिह्वा वश में कर ली उसने सब कुछ वश में कर लिया।

हे राजन्! पिङ्गला नाम की वेश्या जो मिथिलापुरी में रहती थी मैंने उस से भी शिक्षा ग्रहण की है। उसे सुनो! वह अति स्वेच्छाचारिणी तथा रूपवती वेश्या थी। एक दिन वह किसी धनिक पुरुष की प्रतीक्षा में थी। वह उत्तम आभूषण से शृङ्गार करके अपने द्वार पर बैठी उस की प्रतीक्षा करने लगी। द्वार के निकट से आने जाने वाले पुरुषों को देख कर क्षण क्षण उसी धनी की प्रतीक्षा में व्याकुल होने लगी। जब उसे दूर से कोई पुरुष आता हुआ दृष्टि पड़ता तो वह समझती कि वही आ रहा है जब वह निकट से गुजर जाता तब बड़ी पछताने लगती और व्याकुल हो उठती। इस प्रकार सारी रात्रि व्यतीत कर दी। कभी द्वार पर आती और कभी अन्दर चली आती नींद भी खोदी। जब उसने इसी प्रकार बेचैनी में सारी रात्रि व्यतीत कर दी और उसका प्रेमी न आया तब उसे एक दम घृणा उत्पन्न हो गई कि मेरे से बुरा इस जगत में कोई भी न होगा कि पर पुरुषों के सङ्ग के लिये मैं धन के लोभ से कितनी व्याकुल हूँ। मेरा जीवन कैसा अशान्ति मय है। धिक्कार है मेरे इस जीवन को। मैंने व्यर्थ में मन को क्लेश दिया। कभी लम्पट तथा निन्दनीय पुरुषों के हाथ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मैंने अपने को बेच दिया है। मांस हाड़ का बना हुआ यह नवद्वारे का शरीर है इसमें मल, मूत्र संचित धन है। मैं उत्तम उत्तम भोगों की लालसा से पर पुरुषों का सेवन करती हूँ और इस शरीर को पालती हूँ। मुझे परमात्मा का सेवन करना चाहिये। वह प्रभु सदा मेरे ही निकट रहता है उसी की सेवा क्यों न करूँ। इन मरने वाले पुरुषों से प्रेमन कर के उस अमर आत्मा से ही प्रेम क्यों न करूँ मुझे इन बनावटी सुखों से वैराग्य ले लेना चाहिये। इसी वैराग्य में परम शांति है। मैं सर्वस्व त्याग कर उसी प्रभु की शरण में जाऊँगी। अवधूत दत्तात्रेय जी बोले—हे राजन्! वह पिंगला धनिकों के आगमन की आशा त्याग कर अपने पलंग पर गई और आनन्द से सो गई। हे राजन्! आशा ही निराशा होने पर अति दुःखदाई होती है। आशा पूर्ण होने पर सुख मिलता है तथा निराशा होने पर कष्ट मिलता है। इस लिये आशा निराशा दोनों को ही त्याग देना चाहिये।

॥ नवाँ अध्याय ॥

अवधूतोपाख्यान—कुररसे लेकर भृङ्गी तक सात गुरुओं की कथा वर्णन करना

दो०—कुररीसे ले भृङ्गी तक, सात गुरू पाख्यान।
उद्धव से कहने लगे, भक्त प्रभु निज जान॥

दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन्! मैंने कुररपक्षी से यह शिक्षा ग्रहण की है कि संग्रह कभी न करना चाहिये। एक कुररपक्षी कहीं से एक माँस का टुकड़ा ले गया। उस टुकड़े को छीनने के लिये और बलवान पक्षी उसका पीछा करने लगे। उसे घेर कर चोंचें मारने लगे जब तक उस पक्षी ने उस माँस के टुकड़े को त्याग न दिया तब तक महान कष्ट सहता रहा। टुकड़ा फेंकने पर ही उसे सुख की प्राप्ति हुई।

हे राजन्! बालक से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जिस प्रकार अबोध बालक क्रीड़ा करता रहता है वह अपने आनन्द में मग्न रहता है उसी प्रकार मैं भी अपने आत्मा में मग्न रहता हूँ। या तो बालक परमानन्द में मग्न रहता है या ज्ञानीपुरुष ही परमानन्द में मग्न रहता है।

मैंने कुँवारी कन्या से यह शिक्षा ग्रहण की है सुनो, एक बार एक कन्या

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

को वरने के लिये कुछ व्यक्ति उसके घर पर आये। उस कन्या के घर के मनुष्य बाहर गये हुये थे। तब उन अतिथियों के सत्कार के लिये उस कन्या ने ही धान कूटना आरम्भ किया। जब उसके हाथ की चूड़ियाँ बजने लगीं। तब उस कन्या ने यह सोच कर कि अतिथि यह समझेंगे कि इनके घर में धान नहीं है। तभी यह हमारे लिये धान कूट रही है। उसने दोनों हाथों की चूड़ियाँ तोड़ दीं केवल दो दो चूड़ी रहने दीं। किन्तु वे दो दो चूड़ी भी बजने लगीं तब उसने एक एक चूड़ी और तोड़ दी। तब वे चूड़ी न बजीं। और वह कार्य करती रही। हे राजन्! उस समय में भी घूमता घामता संसार के आचार विचार देखता हुआ उधर जा निकला। मैंने यह दृश्य देखा तब मुझे ज्ञान हुआ कि जहाँ पर अनेक व्यक्ति रहते हैं वहाँ कलह होती रहती है जहाँ दो व्यक्ति रहते हैं वहाँ भी कभी कभी बात-चीत होती रहती है। इसीलिये मैं अकेला ही विचरता रहता हूँ।

हे राजन्! बाण बनाने वाले से मैंने एकाग्रता सीखी है एक बाण बनाने वाला बाण बना रहा था राजा की सवारी निकल गई किन्तु वह अपने कार्य में ऐसा दत्तचित्त था कि उसने उस ओर ध्यान भी नहीं दिया भक्तों को इसी प्रकार भगवान् की एकाग्रता में तल्लीन हो जाना चाहिये।

हे राजन्! मैंने साँप से यह शिक्षा प्राप्त की है कि जिस प्रकार साँप अकेला विचरता है उसी प्रकार अकेला ही विचरते रहना चाहिये। गिरोह नहीं बनाना चाहिये। सन्यासी को स्थान तथा मठ बना कर रहना ही नहीं चाहिये। यदि एक स्थान में न रहे तो गुफा आदि में रहे। बहुत कम बातचीत करे किसी से सहायता न माँगे। जिस प्रकार साँप स्वयं घर नहीं बनाता है दूसरों के बने घर में रहता है उसी प्रकार सन्यासी स्वयं घर न बनावे। किसी कर्म के बखेड़े में न पड़े।

मकड़ी से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जिस प्रकार मकड़ी स्वयं अपने हृदय द्वारा मुख से धागा निकालती है और उसे फैलाती है तथा उसे स्वयं निगल जाती है उसी प्रकार परमात्मा इस जगत की सृष्टि करता है उसका विस्तार करता है तथा उसको अपने में लीन कर लेता है।

हे राजन् भृङ्गी कीड़े से यह शिक्षा प्राप्त की है कि भृङ्गी जिस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कीड़े को अपने बिल में ले जाता है वह कीड़ा उसके भय से वैसा ही रङ्ग रूप बना लेता है। उसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा भी अभिन्न है। उस भृङ्गी भय से चिन्तन करते रहने से वह कीड़ा भी भृङ्गी बन जाता है। इसलिये मनुष्य अन्य का चिन्तन न करते हुये भगवान् का चिन्तन करे और तद्रूप हो जाय।

हे राजन् ! इस शरीर से भी मैंने शिक्षा ग्रहण की है। यह शरीर अनित्य है यह शरीर एक दिन अवश्य ही कुत्ते स्यारों का भोजन बनेगा इसीलिये मैं इसमें आसक्ति नहीं रखता हूँ। जीव शरीर के लिये ही बड़ी २ इच्छायें तथा अनेकों कर्म करता है। वह कुटुम्ब के पालन पोषण में रत रहता है। अनेक प्रकार के बुरे भले कर्म करके धन एकत्र करता है किन्तु वह शरीर तो नाशवान है। आयु पुरी होने पर नष्ट हो जाता है और कर्म रूपी फल हमारे शरीर को दुख सहने के लिये छोड़ता जाता है। जिस प्रकार बहुत सी स्त्रियों वाले पति की जो दुर्दशा होती है वही इस जीव की दुर्दशा होती है। ये सम्पूर्ण इन्द्रियाँ इन्हें अपनी २ ओर खींचती हैं। जिह्वा स्वादों की ओर खींचती है। प्यास जलकी ओर खींचती है। जननेन्द्रियाँ सुन्दर २ स्त्रियोंकी ओर खींचती है। त्वचा कोमल सैयाकी ओर खींचतीहै कान सुन्दर गीतों की ओर खींचतेहैं। आँखें सुन्दर२ कामनियों को देखना चाहती हैं। इसी प्रकार सब इन्द्रियाँ अपनी२ओर जीवको आकर्षित करती हैं। हे राजन्! यह मनुष्य योनि अनित्य होते हुये भी अति उत्तम है क्योंकि इस में ब्रह्म के साक्षात्कार करने की बुद्धि है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि मृत्यु से पहले ही मोक्ष प्राप्ति करने का प्रयत्न करे। इस मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति करना है विषय भोगों में तल्लीन होकर इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ में खोने का नहींहै। यही विचार करके मैंने जगत से वैराग्य ले लिया है। मुझे न किसी में आसक्ति है और न किसी से अहंकार।

ऋषियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार एक ही ब्रह्म का अनेकों प्रकार से वर्णन किया है। जब तक तुम स्वयं विचार करके उस का निर्णय न करोगे तब तक ब्रह्म के वास्तविक रूप का ज्ञान न हो सकेगा।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे महाभाग उद्धव जी ! जब परमज्ञानी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दत्तात्रेयजी ने हमारे पूर्वज राजा यदु को ऐसा ज्ञान दिया तब उन्होंने उन की पूजा बन्दना की। तब अवधूत दत्तात्रेयजी वहाँ से चले गये। राजा यदु भी इस असार जंगत से छुटकारा पा गये। इस प्रकार तुम भी सब आसक्तियों को त्याग कर समदर्शी हो जाओ।

—०—

॥ दसवाँ अध्याय ॥

दोहा—लौकिक परलौकिक सभी, सार हीन हैं भोग।
त्यागो निज मन से सभी, समझो हैं सब रोग॥

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे परम भक्त उद्धव जी! मेरा भक्त मेरी शरण में रहकर मैंने जिन धर्मों का उपदेश गीता तथा पंचरात्रि आदि में दिया है बड़ी सावधानी से उनका पालन करे। अपने वर्ण आश्रम तथा कुल के अनुसार सदाचार का पालन करते हुये निष्काम भाव से कर्म करे। साधक को यह विचार करना चाहिए कि संसार के जितने विषयी प्राणी हैं वे रूप, स्पर्श, गन्ध, शब्द आदि विषयों को सत्य समझकर उनकी उपलब्धि के लिए कर्म करते हैं, ताकि उन्हें सुख मिले किन्तु उन्हें दुख ही प्राप्त होता है क्योंकि वे उन असत्य कर्मों को सत्य समझते हैं। इसलिए इन असत्य कर्मों में सकाम भाव न रखकर निष्काम भाव ही रखना चाहिए। निष्काम भाव उसे कहते हैं कि फल की आशा न करके अपने वर्ण, आश्रम तथा धर्म के अनुसार कर्म करें। फल की आशा करने पर जब फल प्राप्त नहीं होता है तो चित्त को दुःख प्राप्त होता है, और यदि फल की आशा नहीं है तो फल प्राप्त न होने पर कोई क्लेश प्राप्त नहीं होता है। इसलिए जो कर्म करे उसमें फल की आशा न करे। उसी को निष्काम कर्म कहते हैं।

जो मनुष्य मेरी शरण में आ चुका है उसे निष्काम कर्म करने चाहिए जो अन्तर्मुखी हों। उन कर्मों को बिलकुल न करे जो सकाम हों तथा बहिर्मुखी हों। अन्तर्मुखी उन्हें कहते हैं जो आत्मा की शुद्धि करने वाले तथा परमात्मा का साक्षात्कार करने वाले कर्म हैं, बहिर्मुखी उन्हें कहते हैं जो बाहिरी जगत के दिखावा के लिए कर्म हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जब साधक को आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाय तब कर्मों के लिये विधि विधान की उसे कोई आवश्यकता नहीं है। वह कर्म करे या न करे। कर्म तो इस लिये किये जाते हैं कि उनके अनुष्ठान से आत्मा शुद्धि हो कर ज्ञान उत्पन्न होवे। जब ज्ञान उत्पन्न हो गया तो फिर कर्मों के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। अहिंसा आदि नियमों का तो पालन करे किन्तु शौच (पवित्रता) आदि नियमों को शक्ति के अनुसार करे। उसे यह आवश्यकता नहीं कि स्नान कर के ही पूजा करे, भगवान् पर फूल माला ही चढ़ावे। वह मनसा पूजा ही करे। उस के लिये विशेष स्थान काल तथा किसी पवित्रता आदि की आवश्यकता नहीं है। उस जिज्ञासु को यम नियमों से अधिक बढ़ कर गुरु की सेवा करना है। गुरु भी ऐसा हो जो मेरे स्वरूप को पूर्ण रूप से जानता हो और संसार से बिमुख हो कर शान्त हो गया हो। वह साधक अभिमान, ममता, मोह, आलस्य त्याग कर गुरु की शरण में जाय। गम्भीर रहे चंचलता न करे। परोपकारी हो व्यर्थ की बातें न करे। वह सब में समभाव देखे। आत्मज्ञान का उपार्जन करे। सदा उदासीन रहे। जिस प्रकार एक लकड़ी और आग जलते हुये एक प्रतीत होते हैं। किन्तु वास्तव में लकड़ी और आग प्रथक प्रथक वस्तु हैं उसी प्रकार पाँच तत्वों से बना यह स्थूल शरीर तथा सत्रह तत्वों से बना हुआ यह सूक्ष्म शरीर दोनों ही जड़ हैं जो दृष्टि आते हैं। किन्तु उन में चेतना शक्ति प्रदान कर के प्रकाशित करने वाला आत्मा स्वयं प्रकाश और साक्षी है। शरीर नष्ट होने वाला (अनित्य) अनेक(असंख्यों) तथा जड़ (न हिलने डुलने वाला है) आत्मा नित्य (न नष्ट होने वाला) एक तथा चेतन अर्थात् चलने फिरने वाला और उस जड़ शरीर में जीवन शक्ति प्रदान करने वाला है। इस प्रकार जड़ शरीर की अपेक्षा आत्मा श्रेष्ठ तथा महान विलक्षण है और शरीर से आत्मा अलग है। शरीर और आत्मा दो अलग अलग वस्तु हैं। जो मनुष्य आत्मा और शरीर को एक मानते हैं अथवा शरीर को आत्मा तथा आत्मा को शरीर मानते हैं वे मूर्ख हैं। जब आत्मा अपने को शरीर मान लेता है तो शरीर के द्वारा किये हुये कर्म आत्मा पर आरोपित होने लगते हैं। वह शुद्ध

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आत्मा शरीर के गुण, दोष जड़ता स्थूलता, अनेकता आदि गुणों से लिप्त होने लगता है। तथा वह निर्मल पवित्र आत्मा मल युक्त तथा अपवित्र हो जाता है। जिस प्रकार स्वच्छ वस्त्र शरीर का मल ग्रहण कर के स्वयं मैला हो जाता है। उसी प्रकार यह आत्मा भी शरीर के मल ग्रहण कर के मैला हो जाता है। तब वह जीव (आत्मा) के जन्म मरण के आवागमन में पड़ जाता है।

स्थूल शरीर का जन्म मरण होता है और जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर के साथ आवागमन होने लगता है। उस का मल ज्ञानरूपी साबुन से नष्ट होता है। जब जीव को आत्मज्ञान हो जाता है। तब फिर संसार चक्र से छूट जाता है।

इस लिये हे उद्धवजी! जन्म मृत्यु का मुख्य कारण अज्ञान ही है। इस लिये आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराना चाहिये। जब आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। तब वह अपने को एक महानतम परमात्मा समझने लगता है और उसी में समा जाता है। यह अपना वास्तविक स्वरूप अपने में ही स्थित है। वह प्रकृति और प्राकृत दोनों से परे है। उस का अन्य कोई आधार नहीं है। इन बातों को समझ कर स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर को ही जीवात्मा मान बैठने वाली बात को हृदय से मिटा देना चाहिये। जीवात्मा इन दोनों से भी भिन्न वस्तु है। यह ज्ञान से ही जाना जाता है। विशुद्ध ज्ञान प्राप्त होनेपर यह माया का जाल कट जाता है। माया के गुण गुणों में मिलकर केवल शुद्ध आत्मा ही रह जाता है।

हे परम प्रिय उद्धव! उपरोक्त कथन का यह निचोड़ अर्थात् सार निकला कि:—आत्मा स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप तथा एक ही है। कर्तापन तथा भोक्तापन आदि कर्म स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के कारण हैं। अर्थात् कर्त्तापन तथा भोक्तापन से ही अनेक शरीर प्राप्त होते हैं जैसा कर्म करेंगे उसे भोगने के लिये वैसा ही शरीर प्राप्त करेंगे। शरीर ही कर्म करता है और वही उन्हें भोगता है। आत्मा नित्य तथा माया से परे है उस आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी है वह अनित्य तथा माया में लिपायमान है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तर्क द्वारा आत्मा की नित्यता सिद्ध करना—

हे प्यारे उद्धव ! तुम इस जीव को ही कर्मों का कर्त्ता और सुख दुःखादि का भोक्ता समझो, और इस जगत, काल, भेद तथा आत्माओं को भी नित्य समझो, उसके साथ ही साथ इन सब पदार्थों को भी नित्य तथा सत्य समझो इनके साथ ही साथ इस वाह्य जगत के परिवर्तन को ज्ञान समझो तो ऐसे मत के मानने से बड़ा घोर अनर्थ होगा। क्योंकि इस प्रकार मानने से आत्मा की नित्य सत्ता तथा जन्म मृत्यु के चक्कर से छूटना कभी सिद्धि नहीं हो सकता है। और यदि इसे मान भी लिया जाय तो काल के अनुसार देह की बाल युवा तथा जरा अवस्था होने पर जीव की जन्म मरण अवस्थायें भी नित्य मान ली जायँगी और वह जन्म मरण से कभी मुक्त नहीं हो सकेगा। क्योंकि तुम देहादि पदार्थ तथा काल को नित्य मानते हो। जब जीव जन्म मरण से छूट नहीं सका तो वह परतन्त्र ही हुआ क्योंकि यदि वह स्वतन्त्र होता तो दुःखों को क्यों भोगना स्वीकार करता। इस प्रकार जीव कभी दुःख नहीं भोगता जब वह जीव परतन्त्र है तो स्वार्थ परमार्थ दोनों से वंचित रहा। यदि तुम यह कहते हो कि जो उत्तम-उत्तम कर्म करना जानते हैं वे सुखी रहते हैं और जो उत्तम कर्म नहीं जानते हैं वे दुःखी रहते हैं तो यह भी कहना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि बड़े बड़े कर्म कुशल धर्मात्मा दुःखी रहते हैं और जो धर्म कर्म कुछ भी नहीं करते सुखी पाये गये हैं।

यदि तुम यह कहो कि उन्हें सुख देने वाले कर्मों का भली प्रकार ज्ञान है तो उन्हें भी मृत्यु से बचने के उपाय का पता नहीं है। जब उनकी मृत्यु सिर पर खड़ी है तब कौनसी भोग सामिग्री है जो उन्हें सुखी कर सके। जिस प्रकार शूली पर चढ़ाये जाने वाले मनुष्य को स्त्री पुत्र धन उत्तम भोजन आदि अच्छे नहीं लगते हैं। उस समय उसे ये सब वस्तुएं अति दुखद प्रतीत होती हैं। उसी प्रकार मरण शील पुरुष को सब भोग की सामिग्री दुखद प्रतीत होती हैं। इसलिए हे प्यारे उद्धव ! जो उपरोक्त मत मानता है उनके विचार से न तो उन्हें सुख

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ही प्राप्त होगा न जीव की कुछ उत्तमता सिद्धि होगी।

हे उद्धव ! यदि कोई यह कहे कि इस लोक में सुख प्राप्त नहीं होगा तो परलोक में सुख प्राप्त होगा। सो उन का यह विचार भी मिथ्या है। वहाँ स्वर्ग लोक में भी परस्पर बड़ी लाग डाट रहती है। जिनके अधिक पुण्य हैं वे कम पुण्य वालों को दोष दृष्टि से देखते हैं। उन में होड़ बनी रहती है। वे एक दूसरे के पुण्यों में दोष निकालते रहते हैं। छोटों से घृणा ईर्ष्या करते हैं। पुण्य प्रति दिन नष्ट होते रहते हैं और एक दिन वे सब नष्ट हो जाते हैं तब उसे फिर नीचे ढकेल दिया जाता है और वह बड़े दुःख के साथ पृथ्वी पर गिर कर जन्म मरण के चक्कर में आ जाता है। पहले तो यज्ञादि कर्मों में अनेक विघ्न तथा त्रुटियाँ ही स्वर्ग मिलने में विघ्न उत्पन्न करती हैं। और यदि यज्ञ योगादि पूर्ण हो भी जायं और देवताओं की कृपा से स्वर्ग में चला भी जाता है, तो वहाँ देवताओं की भाँति दिव्य भोगों को भोगता है। उसे वहाँ अपने पुण्य फल के अनुसार एक दिव्य रथ प्राप्त होता है। वह उस रथ में बैठ देवाङ्गनाओं के साथ दिव्य स्थानों में विहार करता फिरता है गन्धर्व तथा अप्सराऐं उस की बन्दना करती हैं। उस का विमान उस की इच्छा से सर्वत्र जा सकता है। वह अति चमकीला तथा घन्टियों से सजा होता है। इस प्रकार विहार करते करते उसके पुण्य समाप्त होते जाते हैं उसे इस बात का पता भी नहीं चलता। उसने स्वर्ग में खूब आनन्द लूटे अब पुण्य क्षीण होने पर नीचे गिरने लगता है। काल की गति ऐसी ही है। हे प्यारे उद्धव ! जब एक दिन उस स्वर्ग से गिरना है फिर उस में क्या सुख प्राप्त हुआ वह सुख किस काम का है जो अनित्य है।

हे प्यारे उद्धव ! यह स्वर्गादि तो तब प्राप्त हुए जब निर्विघ्न उत्तम कर्मों का अनुष्ठान समाप्त हो गया। और यदि मनुष्य पापियों की संगति में अधर्म करता है इन्द्रियों के वश में होकर वेद विरुद्ध कर्म करता है हिंसा आदि कर्मों से बलि देता है। भूत प्रेतादि की सेवा करता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वह तो नरक ही में गिरेगा। उसे तो अज्ञान वश बर्हिमुख कर्मों के कारण जन्म मृत्यु में भटकना पड़ेगा। उसे कभी तनिक भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। मनुष्यों की तो बात ही क्या है लोकपाल तथा ब्रह्मा भी आयु समाप्त होने पर जन्म मृत्यु के चक्कर में भटकते हैं यह जीव अज्ञान के कारण ही सत्व रज तम गुणों तथा इन्द्रियों को अपना स्वरूप मान लेता है और उनके द्वारा किये हुए कर्मों के सुख दुखादि फलों को भोगता है। जब तक वह मेरे पन, के अभिमान अर्थात् कर्त्तापन को मानता है तब तक वह परमात्मा में नहीं मिलता है अर्थात् एकत्व को प्राप्त नहीं होता है। वह अनेक प्रतीत होने लगता है। जब तक आत्मा की अनेकता प्रतीत होती रहती है तब तक वह काल तथा कर्म के अधीन रहता है। और वह परतन्त्र है। उसे ईश्वर से भय रहता है। जब उस आत्मा को आत्मा परमात्मा के एकत्र का ज्ञान हो जाता है तब वह परमात्मा में मिल जाता है और स्वतन्त्र परमात्मा स्वरूप हो जाता है। जो मनुष्य मैं मेरे में कर्त्ता-पन के अभिमान में चूर रहते हैं तथा आत्मा को अनेक मान कर मिथ्या जगत से वैराग्य नहीं लेते हैं उसी में रत रह कर बर्हिमुख करने वाले कर्म ही करते रहते हैं। वे कभी भी इस शोक मोह दुःख से भरे जगत से छुटकारा नहीं पा सकते।

सार—हे प्यारे उद्धव! उपरोक्त कथन का सार यह है कि मेरे अतिरिक्त संसार में और कोई वस्तु नहीं है। किन्तु जब देहादि अभिमान के कारण अज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मेरी माया में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है और तभी मुझ परमात्मा को काल, जीव, भेद, लोक, स्वभाव कर्म इत्यादि अनेक नामों से तथा भिन्न भिन्न रूपों से पुकारते हैं। ये सब मेरी मिथ्या माया है। केवल 'वास्तविक सत्य तो मैं आत्मा ही हूँ।'

तब उद्धव जी बोले—हे भगवन्! जब यह जीव गुणों में ही बर्तता है तब यह गुणों से क्यों नहीं बँधता है? यदि आप यह कहें कि जीव गुणों से परे है तो जीव का बन्धन कैसे सम्भव हो सकता है। उसे गुण कभी बन्धन में बाँध ही नहीं सकते। इस प्रकार जीव का न बन्धन ही हुआ न मुक्ति ही हुई।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इसके अतिरिक्त मुक्त पुरुष के क्या लक्षण हैं। वह किस प्रकार के आचरण करता है। क्या खाता है, पीता है? किस प्रकार मलमूत्र त्यागता है? किस प्रकार सोता बैठता है? उसकी क्या पहिचान है? हे जगद्गुरो! आप सामर्थवान हैं परम ज्ञानी ईश्वर हैं। मेरे इस संशय को दूर करने में समर्थ हैं। मुझे बड़ा संशय उत्पन्न हुआ है कि जब आत्मा एक है और गुणों से सदा वर्तता रहता है तब वह गुणों से नित्यबद्ध ही रहा। और यदि ज्ञान से जीव की मुक्ति मानें तो वह बन्धन अनित्य रहा। इस लिये आत्मा नित्य मुक्त ही मानना चाहिये। अब यह प्रश्न उठता है कि एक ही आत्मा नित्य बद्ध तथा नित्य मुक्त किस प्रकार हो सकता है?

॥ ग्यारहवाँ अध्याय ॥

बद्ध मुक्त तथा भक्तों के लक्षण

भगवान् श्री कृष्ण बोले—हे प्यारे उद्धव! वास्तव में आत्मा न तो कभी बद्ध है और न कभी मुक्त है। यह बन्धन तथा मोक्ष केवल गुणों के अनुसार हैं और ये गुण मेरी माया है। इस लिये मुझ आत्मा के लिये मोक्ष तथा बन्धन है ही नहीं। जिस प्रकार स्वप्न में देखी हुई सब वस्तुऐं झूँठ मूँठ होती हैं उसी प्रकार इस मिथ्या जगत की सब वस्तुएं शोक, मोह, सुख, दुःख, जन्म मृत्यु झूँठ मूँठ हैं। वास्तव में इस जगत की कोई सत्ता नहीं है। यह केवल मेरी माया है। इन जीवों को मुक्ति देने वाला ज्ञान तथा इनको बन्धन में डालने वाला अज्ञान ये दोनों ही मेरी शक्तियाँ समझो। ये मैंने अपनी माया से उत्पन्न किये हैं इनका कोई वास्तविक रूप नहीं है।

यह जीव एक है और मेरा अन्श होने से मेरा ही वास्तविक स्वरूप है। जैसे जल का अथाह समुद्र और उसके जल की विन्दु वास्तव में दोनों एक ही जल रूप है। इसी प्रकार जीव भी मेरा ही अन्श होने से मेरा ही रूप है। मैं समुद्र रूप हूँ और वह जीव उसका विन्दु रूप है जब उसे आत्मज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप का ज्ञान होता है तो वह मुक्त होता है और जब उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है तब बद्ध होता है। यह अज्ञानं अनादि है, इस लिये बन्धन भी अनादि हैं। ये

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

बन्धन तथा मुक्ति दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। इसलिये मैं तुम्हें बन्धन तथा मुक्ति दोनों का भेद समझाता हूँ—हे उद्धव ! मैं तो नित्य मुक्त हूँ अतः मेरे पर तो इन दोनों का कोई कारण आरोपित होता नहीं है। बद्ध तथा मुक्त ये जीव के ही रूप होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—एक तो नित्यमुक्त परमात्मा से जीव का भेद, तथा दूसरा मुक्त बद्ध जीव का भेद।

पहिला—जीवात्मा और परमात्मा एक बद्ध है दूसरा मुक्त है। दोनों भिन्न भिन्न होने पर भी एक ही शरीर में निवास करते हैं। एक नियन्ता के रूप में अर्थात् नियन्त्रण करने वाले के रूप में परमात्मा निवास करता है तथा दूसरा जीव नियन्त्रित के रूप में निवास करता है। शरीर एक वृक्ष है उसके हृदय रूपी घोंसले में दो पक्षी निवास करते हैं। दोनों चेतन हैं दोनों साथ साथ रहने के कारण परस्पर मित्र हैं, दोनों के निवास करने का कारण लीला तथा क्रीड़ा है। उन दोनों में इतनी समानता है। जीव उस शरीर रूपी वृक्ष के सुख दुखादि फल चखता है किन्तु वह परमात्मा न उसे भोगता है न कोई फल चखता है वह तो केवल साक्षीरूप से उस पर निवास करता है। वह अपने को भी जानता है और इस जगत को भी जानता है तथा देखता है। वह अभोक्ता होने से ज्ञान ऐश्वर्य तथा आनन्द में जीवों से बढ़कर है। किन्तु जीव भोक्ता होने से न अपने ही स्वरूप को जानता है न संसार के ही स्वरूप को जानता है। उसी कारण जीव अज्ञान के कारण नित्य बद्ध है और परमात्मा ज्ञान सम्पन्न होने के कारण नित्य मुक्त है। हे प्रिय उद्धव ! जो ज्ञानी जन हैं वे भी मुक्त ही हैं। ज्ञानी पुरुष स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर में रह कर भी उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। किंतु अज्ञानी पुरुष शरीर से कोई सम्बन्ध न होने पर भी उस से सम्बन्ध रखते हैं। जो ज्ञानी हैं। वे गुणों को गुणों में ही वर्त्तते हैं। उन से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। जिन्हें अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान है वे विषयों के ग्रहण तथा त्याग में अपने पन का आरोप नहीं करते हैं। वे इन शारीरिक तथा मानसिक कर्मों को शरीर तथा मन इन्द्रिय के द्वारा ही किया हुआ मानते हैं। जो अज्ञानी हैं वे उन विषयों के ग्रहण तथा त्याग आदि कर्मों को अपने द्वारा किया हुआ मान कर कर्त्तापन का आरोप अपने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

ऊपर कर लेते हैं। इसी कर्तापन के कारण वे बन्धन में बंध जाते हैं।

हे प्यारे उद्धव ! उपरोक्त बातों का बिचार करके ज्ञानीजन विषयों से विरक्त रहते हैं। खाना, पीना, सोना, जागना, नहाना, देखना आदि किसी भी कर्म में अपने कर्तापन को नहीं मानते हैं। केवल इस शरीर तथा इन्द्रियों के द्वारा ही किया हुआ मानते हैं ये इन्द्रियाँ ही कर्ता तथा भोक्ता हैं। जब वे ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं तभी वे कर्म बन्धन में नहीं फँसते हैं। वे इस जगत में रहकर भी असङ्ग रहते हैं। अपनी ज्ञानरूपी तलवार से कर्म बन्धनों को काट कर मुक्त हो जाते हैं। उन्हें चाहे कोई भी दुःख दे पीड़ा पहुँचाये किन्तु वे दुःख को दुःख नहीं मानते और उन्हें कितना भी सुख मिले न सुख मानते हैं। उनके लिये निन्दा और स्तुति समान हैं। न किसी को बुरा कहते हैं न किसी को भला कहते हैं। अपने आत्मानन्द में ही सदा मग्न रहते हैं तथा जड़ व मूर्ख की भाँति जगत में बिचरते रहते हैं।

हे उद्धव ! जो मनुष्य वेदों का तो ज्ञाता है किन्तु ब्रह्म ज्ञान से रहित है उसका परिचय तो ऐसे ही है जैसे बिना दूध वाली गाय, स्वेच्छा चारिणी स्त्री, पराधीन शरीर, दुष्ट पुत्र, उत्तम पात्र को न दिया जाने वाला दान, तथा मिठास रहित वाणी ब्यर्थ है। इन वस्तुओं के रखने से दुःख के अतिरिक्त सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता। हे प्यारे उद्धव। जिस वाणी से मेरे गुण तथा लीलाओं का वर्णन नहीं होता है वह वाणी ब्यर्थ है। मेरे आश्रय रह कर मेरे लिए ही कर्म करे तथा मेरे गुणों का यशोगान करे। हे उद्धव ! भक्ति सत्सङ्ग से होती है। जिसे भक्ति प्राप्त हो जाती है वह मुझे प्राप्त कर लेता है।

उद्धवजी बोले—हे भगवन् ! आप ही परब्रह्म हैं आप ही आदि कारण हैं। चराचर जगत के स्वामी आपही हैं उपदेश कर्त्ताओं में श्रेष्ठ तथा इस जगत के उत्पत्ति स्थिति तथा लय करने वाले भी आप ही हैं। आप मुझे भक्ति और भक्त का भेद बतलाइये। आप भक्तवत्सल हैं अतः आप ही इसका भेद बताने में समर्थ हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे उद्धव ! मेरा भक्त बैर रहित कृपा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तथा दया की मूर्ति होता है। वह पाप रहित तथा सत्य व्रती होता है। उसे केवल मेरा भरोसा रहता है। परोपकार तथा दूसरों के सम्मान में रत रहता है। मेरे गुण तथा कीर्तन तथा यशोगान में स्वयं रत रहता है तथा दूसरों को समझाने में चतुर होता है। उसका अन्तःकरण शुद्ध सरल तथा भावुक होता है। जो अनन्यभाव से मेरी आराधना करता है वह मेरा परम भक्त है।

हे प्यारे उद्धव ! अब मैं तुम्हें अपनी भक्ति प्राप्ति की विधि बताता हूँ। मेरी मूर्ति स्थापना करके उसकी पूजा सेवा शुश्रूषा तथा स्तुति करे नित्य मेरे गुणों का कीर्तन करे। दयाभाव से मेरी आराधना करे। जन्माष्टमी रामनवमी आदि पर्वों पर व्रत विधि तथा कीर्तन भजन नाच गान आदि का आयोजन करे मेरी रथ यात्रा आदि निकाले। यदि स्वयं न कर सके तो दूसरों की सहायता से करे। मेरे मन्दिर को झाड़े बुहारे धोवे तथा लीपे पोते। नित्य घृत का दीपक रक्खे आरती करे। मेरे निमित्त मन्दिर बाटिका कूप तथा जलाशय बनवावै। कभी दम्भ तथा अभिमान न करे। मेरे पर चढ़े हुये दीपक माला तथा धन को अपने कार्य में न लावे। सर्वस्व मेरे समर्पित करदे।

सूर्य, अग्नि ब्राह्मण, गौ वैष्णव, आकाश, वायु, जल पृथ्वी आत्मा तथा सब प्राणी मेरी पूजा के स्थान माने गये हैं। वेद मन्त्रों द्वारा इनमें मेरी पूजा करनी चाहिये। मैं सभी में क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के रूप में विराजमान हूँ। मेरे चतुर्भुज स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। मेरे प्यारे उद्धव ! सत्सङ्ग तथा भक्तियोग दोनों का ही साथ साथ साधन करना चाहिये। इन दोनों मार्गों के अतिरिक्त इस भवसागर से पार जाने का और कोई मार्ग नहीं है। सन्तपुरुष मेरे आश्रय हैं और मैं उन संत पुरुषों के आश्रय हूँ। मैं सदैव उनके निकट रहता हूँ।

हे भक्तों में श्रेष्ठ उद्धव ! मैंने तुम्हें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों मार्गों का भेद बता दिया है। अब मैं तुम्हें एक गुह्यतम रहस्य को बताऊँगा। तुम मेरे प्रिय सेवक तथा परम भक्त हो और मेरे बचपन के प्रिय सखा और जिज्ञासु हो।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ बारहवाँ अध्याय ॥

सत्सङ्ग की महिमा का वर्णन करना।

सत्सङ्ग की महिमा अमित कहा कहूँ उद्धवराय।
शेष गणेश महेश हूँ पार न पायो धाय॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! सत्सङ्ग के द्वारा जगत की आसक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जैसा उत्तम साधन योग, सांख्य योग, स्वाध्याय, तथा धर्म पालन में भी नहीं है, जैसा मुझे वश में करने का सफल साधन सत्सङ्ग में है। यहाँ तक कि व्रत, यज्ञ तीर्थ तथा यम नियम भी मुझे वश में करने में समर्थ नहीं हैं। यह ससत्ङ्ग ही युगयुगों में उत्तम माना गया है। इसी सत्सङ्ग का आश्रय लेकर शूद्र, पापी, चांडालों ने तथा स्त्रियों ने भी मुझे प्राप्त कर लिया है वृत्रासुर दैत्य प्रहलाद, बृषपर्वा बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव हनुमान आदि सभी ने सत्सङ्ग के प्रभाव से ही मुझे प्राप्त किया है। हे प्यारे उद्धव! वे न तो वेदों को भजते थे और न उन्होंने कोई व्रत उपासना ही की थी और न कोई तपस्या ही की थी केवल सत्सङ्ग से ही मुझे प्राप्त कर लिया था। यदि यह माना जाय कि वृत्रासुर परमज्ञानी था तो गँवार गाँव की ग्वालिन, गोपियाँ गोप, गायें, यमलार्जुन बृक्ष ब्रज के पशुपक्षी आदि तो नितान्त मूढ़ बुद्धि थे। हे उद्धव! ऐसे ऐसे पुरुष हैं जो दान व्रत तपस्या योग आदि की क्रिया तनिक भी नहीं जानते किन्तु उन्होंने प्रेम से मुझे वशमें कर लिया है उन गोपियों को ही ले लो उनको तो तुमने स्वयं जाकर देखा है। उनके विषय में मैं क्या कहूँ जिस समय मैं ब्रज से मथुरा चला आया था उस समय उनकी क्या दशा थी। वह तो तुम ने स्वयं जाकर देखी थी। तुम जानते हो कि वे घर बार पुत्र पति कुटुम्बी सब का त्यागन करके मुझ परमात्मा को प्रियतम मानती थीं। मैं ही एकमात्र उनका सर्वस्व हूँ। उन्होंने मेरे साथ रास विलास किया बहुत सी रात्रियाँ एक आधे क्षण के समान व्यतीत हो गईं। और अब वे ही रात्रियाँ उन्हें कल्प के समान व्यतीत होती हैं। वे मेरे में इतनी तन्मय थीं कि उन्होंने लोक परलोक सभी त्याग दिये वे मुझी में लीन हो गईं थीं। बड़े बड़े मुनियों के लिये भी उनकी तन्मयता आदर्श रूप है। हे उद्धव! उनमें बहुत सी गोपियाँ जो मेरे स्वरूप को नहीं जानती थीं

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्यार से मुझे अपना प्रियतम समझती थीं। और मुझसे मिलने की लालसा रहती थी केवल सत्सङ्ग के प्रभाव से ही उन अवलाओं ने मुझ परमात्मा की प्राप्ति करली थी। हे उद्धव! वे गोपियाँ मुझ से किसी भी भाव से प्रेम करती हों किन्तु मैं तो वही हूँ जो वास्तव में हूँ। इसलिये हे उद्धव! अब तुम शास्त्रोक्त विधि तथा निषेध के चक्कर में मत पड़ो। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मार्ग के साधन की भी आवश्यकता तुम्हें नहीं है। तुमसे अधिक क्या कहूँ तुम सब चक्करों को छोड़ कर केवल मेरी शरण में आ जाओ। जब तुम मेरे में एक हो जाओगे तब संसार से मुक्त हो जाओगे।

उद्धवजी बोले—हे योगेश्वरों के भी योगेश्वर! मैं आपके उपदेश को भली प्रकार सुन रहा हूँ किन्तु मेरा सन्देह अभी नहीं दूर हो रहा है क्या मुझे स्वधर्म पालन करना चाहिये अथवा सर्वस्व त्याग कर आपकी शरण में आ जाना चाहिये। मैं इसी चक्कर में पड़ा हूँ। कृपा करके मेरा यह सन्देह दूर कीजिये।

भगवान् ! श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव ! सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करने वाला परमात्मा मैं ही हूँ। मैं ही मूलाधार आदि चक्रों में विराजता हूँ। मैं स्वयं ही शब्द ब्रह्म में परा, पश्यन्ती मध्यमा तथा वैखरी वाणी में प्रगट होता हूँ। मैं ही इन्द्रियों में समाकर उनके द्वारा चलना, फिरना, सूँघना, बोलना, खाना, पीना आदि कर्म करता हूँ। यहाँ तक कि सबका कर्त्ता मैं ही हूँ। यह कमल ब्रह्माण्ड परमेश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। यह ब्रह्म अनादि तथा अव्यक्त था। जिस प्रकार बीज में वृक्ष की शाखा पत्ता आदि अव्यक्त (छिपे) रहते हैं। उसी प्रकार कालगति से माया का आश्रय लेकर परमेश्वर ही अपनी शक्ति को अनेक रूपों में बाँटकर सब में प्रतीत होने लगता है। जिस प्रकार ताने वाने वस्त्र में ओत-प्रोत रहते हैं उसी प्रकार यह सारा जगत परमात्मा में ओतप्रोत है। जिस प्रकार सूत के न होने पर वस्त्र का अस्तित्व नहीं होता है किंतु वस्त्र के बिना सूत का अस्तित्व रहता है उसी भाँति जगत के न रहने पर ईश्वर रहता है किन्तु ईश्वर के बिना यह जगत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

नहीं रह सकता है। यह जगत तो ईश्वरमय है।

हे उद्धव ! यह संसार वृक्ष अनादि तथा नित्य है। कर्म परम्परा इस वृक्ष का स्वरूप है तथा मोक्ष और भोग इसके फल फूल हैं। इस वृक्ष के पाप तथा पुण्य दो बीज हैं। अनन्त बासनायें इसकी जड़ हैं तथा सत्व रज तम तीनों गुण इसके तने हैं। पाँच भूत इसकी प्रधान शाखायें हैं। ग्यारह इन्द्रियाँ इसकी छोटी छोटी शाखायें हैं। विषय रस हैं। जीवात्मा तथा परमात्मा रूपी दो पक्षी हृदयरूपी घोंसले में निवास करते हैं। बात, पित्त, कफ इस वृक्ष की तीन प्रकार की छाल हैं। सुख दुःख दो फल इस पर लगते हैं। यह संसार वृक्ष सूर्य मण्डल तक विस्तार वाला है। सूर्य मण्डल से ऊपर मुक्त पुरुषों के स्थान हैं। इस सूर्य मण्डल को भेद कर मुक्त पुरुष उन लोकों में जाते हैं। वे सुख फल भोगते हैं। जो गृहस्थी में पड़े हुए विषयों का सेवन करते हैं। वे इस वृक्ष का दुःख रूप फल चखते हैं।

इसलिये हे उद्धव जी ! मैं एक ही हूँ मेरे जो अनेक रूप प्रतीत होते हैं वह मेरी माया है। जो उत्तम गुरुओं के द्वारा इस बात को भली प्रकार समझ लेता है वही मुझे प्राप्त कर लेता है। इस लिए हे उद्धव ! मेरी इस माया से प्रगट जगत् को त्याग कर मेरे ही में लीन रह कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ।

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

हंस रूप से सनकादिकों को दिये गये उपदेश का वर्णन करना—

दो०—हंस रूप धरि के प्रभू, आये ब्रह्मा पास।
सनकादिक के हृदय की, कीनी पूरन आस ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले—हे प्यारे उद्धव ! सत्व, रज, तम आदि तीनों गुण प्रकृति के हैं आत्मा के नहीं हैं। इन तीनों गुणों में सत्व गुण श्रेष्ठ है तम की अपेक्षा रज श्रेष्ठ है। सत्व के द्वारा रज तम दोनों को परास्त करके दाब कर रक्खे। इस सत्व गुण के द्वारा क्षमा दया सत्य आदि वृत्तियों को शान्त करना चाहिये। सदा सात्विक वस्तुओं

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

का सेवन करना चाहिये। जिससे सात्विकी वृत्ति बढ़ती है। और तभी जीव मेरी भक्ति की ओर प्रवृत्त होने लगता है। सतोगुण द्वारा ही उत्तम भक्ति प्राप्त होती है जिस कर्म के करने से सत्वगुण बढ़े वही कर्म श्रेष्ठ है। रज तथा तमोगुणों के नष्ट होने से अधर्म नष्ट हो जाता है। देश, काल, कर्म जन्म, शास्त्र, जल स्नान ध्यान मन्त्र तथा संस्कार ये दस यदि सत्वगुणी हैं तो सतोगुण बढ़ता है और यदि ये रजोगुणी हैं तो रजोगुण बढ़ता है। और यदि ये तमोगुणी हैं तो तमोगुण बढ़ता है। महात्मा लोग जिन्हें उत्तम कहते हैं वे सात्विक हैं जिन्हें न उत्तम न निकृष्ट कहते हैं वे राजस हैं जिन्हें निकृष्ट कहते हैं वे तामस हैं।

मनुष्य को जब तक अपनी आत्मा का ज्ञान न हो और इस सूक्ष्म व स्थूल शरीर तथा तीनों गुणों से निवृत्ति न हो तब तक सत्वगुण बढ़ाने के लिये सात्विक जल, भोजन, शास्त्र, आदि का सेवन करना चाहिये। ऐसा करने से धर्म बढ़ता है और धर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है जिससे आत्म ज्ञान प्राप्त होता है। वह आत्मज्ञान शरीर के सब गुणों को अग्नि के समान भस्म करके स्वयं शांत हो जाता है।

उद्धव जी बोले—हे भगवन्! इस बात को सभी जानते हैं कि विषय विपत्तियों के देने वाले हैं किंतु फिर भी पतंगे के समान उन्हीं में मनुष्य क्यों गिरते हैं इसका कारण समझा कर बतलाइये?

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! जब यह जीव अज्ञान के कारण अपने ब्रह्मरूप को भूल जाता है और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों में अपने कर्त्तापन का आरोप करके मैं मेरे पन को मान बैठता है तब उसका सात्विकमन रजोगुण की ओर झुककर उसमें व्याप्त हो जाता है। बस फिर क्या है जब मन रजोगुण की ओर झुका और रजोगुण प्रधान सङ्कल्पों की जंजीर बनने लगी। तब वह अनेक प्रकार के विषयों का चिंतन मन द्वारा करने लगता है तब वह काम के वश में होकर अज्ञान वश अनेक कार्य करने लगता है। वह सुख के लिये कर्म करता किन्तु उसका फल विपरीत दुख दायक होता है। किंतु विवेकी पुरुष अपने चित्त को रोक लेता है। यदि कभी वह रजोगुण या तमोगुण से विक्षिप्त होता है तो तर्क बुद्धि से

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

शीघ्र सँभल कर सही मार्ग पर आजाता है। और विषयों की आसक्ति से बच जाता है।

हे प्यारे उद्धव! साधक धीरे धीरे अपने चित्त को खींच कर मेरे में लगावे। यदि उसे असफलता मिले तो घबड़ावे नहीं बार बार प्रयत्न करे और भी अधिक साहस करके मेरी ओर अग्रसर होवे।

हे प्यारे उद्धव! सनकादिक योगी जनों ने भी योग का रूप इसी प्रकार बताया है। साधक को चाहिये कि अपने मन को विराट् आदि किसी में भी न लगावे। मैंने यह ज्ञान पहिले सनकादिकों को बताया था वे सनकादि योगीजन मेरे ही शिष्य हैं।

उद्धवजी बोले—हे भगवन्! सनकादि कतो आपसे सैकड़ों वर्ष पूर्व हुये हैं फिर आपने उन्हें यह उपदेश कैसे दिया था? वह उपदेश क्या था? मुझे समझा कर कहिये।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! सनकादिक योगीजन ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं, उन्होंने अपने पिता ब्रह्मा से एक समय यह प्रश्न पूछा।

सनकादिक पूछने लगे—हे पिता जी! यह चित्त विषयों (गुणों) में फँसा रहता है और विषय अर्थात् गुण चित्त में फँसे रहते हैं। चित्त तथा विषय (गुण) दोनों परस्पर ऐसे घुले मिले रहते हैं कि किसी प्रकार भी एक दूसरे से पृथक पृथक नहीं हो सकते हैं। फिर ऐसी दशा में मनुष्य का चित्त विषयों से न हटे तो इस संसार से मुक्ति कैसे पा सकता है? अब हमें यह बतलाइए कि चित्त तथा विषय एक दूसरे से कैसे अलग अलग हो सकते हैं।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे प्रिय उद्धव! ब्रह्माजी सबके उत्पत्ति कर्ता हैं तथा सब के आदि देवता हैं किंतु फिर सनकादिक ब्रह्मर्षियों के इस प्रश्न को सुन कर ब्रह्माजी इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सके। वे विचारने लगे किंतु किसी निर्णय तक न पहुँचे। हे उद्धव! उस समय ब्रह्माजी ने प्रश्न का उत्तर देने के लिये मेरा ध्यान किया। मैं उसी क्षण ब्रह्माजी के मोह को नष्ट करने के लिए हंस रूप से प्रगट हो गया।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

जब ब्रह्मा जी तथा सनकादि ने मुझे देखा तब ब्रह्मा जी को आगे करके सनकादि मेरे निकट आये। उन्होंने मेरी बन्दना की तब सनकादि ने मुझ से पूछा कि आप कौन हैं? तब उन परमार्थ तत्व के जिज्ञासु सनकादि को जो मैंने उत्तर दिया वह सुनो! मैंने उन से कहा—हे ऋषियो! तुम्हारा यह प्रश्न किसके विषय में है? यदि तुम्हारा यह प्रश्न आत्मा के विषय में है तो आत्मा एक ही है—उसमें अनेकता है ही नहीं। तब उस आत्मा के विषय में यह प्रश्न करना कि तुम 'कौन हो?' किसी प्रकार भी नहीं बन सकता है क्योंकि जो आत्मा तुम में है वही मुझ में है। आत्मा एक होने से दूसरा भाव उत्पन्न ही नहीं होता है। फिर 'तुम कौन हो?' यह प्रश्न निरर्थक ही है। 'तुम कौन हो' इस प्रश्न में द्वैतभाव पाया जाता है किसी दूसरे के लिए ही कह सकते हैं कि तुम कौन हो?

और यदि तुम्हारा प्रश्न शरीर के विषय में है तो यह शरीर भी पंच भूतों से बना होने के कारण अभिन्न है। क्यों कि मेरा अस्तित्व उन पंचभूतों में भी विद्यमान है, और सभी शरीर उन्हीं पंचभूतों से बने हुए हैं। इस लिए 'तुम कौन हो' यह प्रश्न केवल शब्द मात्र होने से निरर्थक है। तत्व दृष्टि से तुम लोगों को यह समझना चाहिये, कि मन, वाणी, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियों से जो कुछ भी प्रतीत होता है वह सब मैं ही हूँ। इस मेरी सृष्टि में मेरे से अलग कोई वस्तु नहीं है अर्थात् यह सब जो कुछ भी इस ब्रह्माण्ड में है वह सब मैं ही हूँ।

हे प्रिय सनकादिको! तुम्हारा यह प्रश्न अति उत्तम है कि चित्त विषयों में फँसा रहता है और विषय चित्त में फँसे रहते हैं। इन दोनों का परस्पर ऐसा समावेश है कि ये कभी अलग अलग नहीं हो सकते हैं। किन्तु ये दोनों साथ साथ बने रहें उस से क्या होता है। ये चित्त तथा विषय (गुण) का जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है न तो चित्त तथा गुण (विषय) जीव के स्वभाव हैं और न उसका रूप ही है। चित्त तथा विषयों का सम्बन्ध तो शरीर मात्र से ही है उस जीव

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

से कोई सम्बन्ध नहीं है। चित्त तथा विषय तो अज्ञान से उत्पन्न शरीर की उपाधि ही हैं। जीव मेरा स्वरूप है। विषयों में चित्त के निरन्तर तल्लीन रहने से चित्त विषयों में घुस गया है चित्त और विषय तद्रूप अर्थात् दोनों एक रूप हो गये हैं। गुण अर्थात् विषय भी चित्त ही से उत्पन्न होते हैं। इस लिये चित्त तथा विषय (गुण) दोनों को ही त्याग कर अपने शुद्ध स्वरूप को मेरा ही स्वरूप समझ कर चित्त तथा विषय दोनों से ही अलग हो जाना चाहिये। चित्त तथा गुण किसी प्रकार भी रहैं अथवा न रहैं उनका जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है। हे प्यारे ऋषियो! मनुष्य की जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में तीन अवस्थायें गुणों के अनुसार सत्व, रज, तम (विषयों) के अनुसार आती जाती रहती हैं और ये तीन अवस्थायें बुद्धि की ही वृत्तियाँ मानी गई हैं। यह अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि जीव तीनों अवस्थाओं में रहता है। यदि जीव केवल जागृत अवस्था में ही रहे स्वप्न तथा सुषुप्ति दशा में न रहे तो स्वप्न की तथा सुषुप्ति दशा की बात कैसे याद रहे। वह तीनों अवस्थाओं में साक्षी रूप से रहता है। ये तीनों अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाला संसार बन्धन ही जीव को विषयों में फाँसने वाला है। वह इन तीनों अवस्थाओं को अपनी अवस्था समझ कर उनके बन्धन में बँध जाता है। जब उसे अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब वह तीनों अवस्थाओं में अपने को साक्षी, विलक्षण तथा तुरीय परमात्मा स्वरूप ही समझने लगता है। जब वह ऐसा समझने लगता है तब चित्त तथा गुण (विषय) दोनों एक साथ ही त्यागे जाते हैं उन दोनों को एक दूसरे से अलग करने की आवश्यकता नहीं होती। जब तक मनुष्य की नाना प्रकार की भ्रांतियाँ नष्ट नहीं हो जाती हैं। जब तब वह जागृत होते हुए भी सोये के समान है। तब तक अपने स्वरूप का ज्ञान करके उसमें स्थित आत्मा नहीं होता है तब तक चित्त तथा उसके विषय दूर नहीं होते हैं। यह तो सत्य है कि आत्मा के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं रहता है।

हे ऋषियो! यह मैं पहिले कह चुका हूँ कि इन्द्रियों द्वारा जितना भी प्रतीत होता है दृष्टि आता है तथा सुना जाता है वे सब नाशवान हैं

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उनका अस्तित्व क्षणिक होता है। उनका विनाश तथा उत्पत्ति पलपल में होती रहती है। उन सब का अनुभव जागृत अवस्था में आत्मा ही करता है। स्वप्न के समय भी वह आत्मा ही उनका अनुभव करता है और सुषुप्ति दशा में भी वही आत्मा उनका अनुभव करता है। वह एक ही आत्मा तीनों अवस्थाओं में साक्षी रहकर सबका अनुभव करता है उसे तीनों कालों की स्मृति बनी रहती है। इसलिये यह सिद्धि होता है कि सत्व, रज, तम तीनों गुणों में मनकी जागृति, स्वप्न, तथा सुषुप्ति अवस्था होती रहती है। ये तीनों अवस्थायें मेरी माया से मुझमें प्रतीत होती रहती हैं। यही मेरा दृढ़ निश्चय है। मेरे बचनों पर दृढ़ रह कर ज्ञान रूपी तलवार से अहङ्कार को नष्ट करदो और फिर उसे मत जगनै दो। मुझ परमात्मा के चिन्तन में ही लीन रहो। इस जगत्को मेरी क्रीड़ा स्थल समझो। मैं मायाका आश्रय लेकर क्रीड़ा करता हूँ। यह जगत क्या है मेरे ही छोटे बड़े अनेक रूपहैं। यह मेरा जादू का खेलहै। मैं जादूगरहूँ उसे बनाताहूँ बिगाड़ और देता हूँ।

इसलिए तुम लोगों को तृष्णा रहित मौन रह कर मेरी माया से रचे हुए इस जादू के खेल में अपने को नहीं भूलना चाहिये। जब एक बार मेरी माया को पार कर जाओगे तब फिर इसके भ्रम में न पड़ सकोगे। मैंने तुमसे जो कुछ भी कहा है वह सांख्य तथा योग दोनों का ही गोपनीय रहस्य है। मैं स्वयं परमात्मा हूँ तुम लोगों को तत्व ज्ञान का उपदेश देने के लिए यहाँ आया हूँ। हे ऋषियो! मैं योग, सांख्य, सत्य, मधुरभाषण, तेज, श्री, कीर्ति तथा दया और इन्द्रियों को वश में करना इन सब की परमगति हूँ अर्थात इनका स्वामी हूँ।

हे प्रिय उद्धव! मैंने सनकादिक ऋषियों को उनके प्रश्न का उत्तर देकर उनका संशय दूर कर दिया उन्होंने मेरी पूजा, स्तुति तथा बन्दना की। तत्पश्चात् मैं अन्तर्ध्यान होकर अपने धाम को चला गया।

॥ चौदहवाँ अध्याय ॥

भक्ति योग की महिमा तथा ध्यान विधि का वर्णन करना

दोहा—भक्तियोग अरु ध्यान विधि, कही कृष्ण यदुराय।
उद्धव जी सुनने लगे, मन में अति हरषाय॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्री उद्धव जी बोले—हे परमात्मन् ! आप ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ तथा भक्त वत्सल भगवान् हैं। ज्ञानी जनों ने आत्म कल्याण के लिए अनेकों साधन वर्णन किए हैं। सभी अपने अपने विचार से श्रेष्ठ हैं। आपसे इस भक्ति योग के विषय में जानना चाहता हूँ कि आपने इन साधनों में से कौन सा साधन श्रेष्ठ माना है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—हे प्यारे उद्धव ! यह वेदवाणी प्रलय काल में लुप्त हो जाया करती है। जब सृष्टि का समय फिर आता है तब मैं अपने संकल्प से पुनः ब्रह्मा को इसका उपदेश करता हूँ। वही मेरा भागवत धर्म है। इस भागवत धर्म का उपदेश ब्रह्मा ने अपने पुत्र स्वायंभुव मनु को तथा मनु ने भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलह, अत्रि, पुलस्त्य तथा क्रतु इन सप्तर्षियों को इसका उपदेश दिया। तत्पश्चात् इन प्रजापतियों ने इसका उपदेश अपनी सन्तान, देवता, दानव, मनुष्य, गन्धर्व, चारण आदि को किया। सभी ने अपने अपने मतानुसार सत्य, रज, और तम इन तीनों गुणों के वशीभूत होकर भिन्न भिन्न बुद्धि से भिन्न भिन्न प्रकार से किया है। इसी कारण से इस वेद वाणी के भिन्न भिन्न अर्थ हो गये हैं। हे प्यारे उद्धव ! मेरी माया के वशीभूत सब की बुद्धि रहती है। उसी के अनुसार आत्म कल्याण के साधन भी अनेकों बतलाये जाते हैं। पूर्व मीमान्सक धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं। साहित्याचार्य यश को उत्तम मानते हैं। काम शास्त्री काम को उत्तम मानते हैं। योगी जन शम दम आदि को उत्तम मानते हैं। इसी प्रकार दण्ड नीति के ज्ञाता ऐश्वर्य को और तान्त्रिक दान तथा भोगों को ही उत्तम मानते हैं। कर्म योगीजन यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि को उत्तम मानते हैं। किन्तु हे प्यारे उद्धव ! ये सभी कर्म हैं। इन से उत्तम लोक मिलते हैं। वे लोक नाशवान हैं। जब उन कर्मों का फल समाप्त हो जाता है तब उन लोकों से नीचे गिरना पड़ता है और अधोगति प्राप्त होती है। वह तुच्छ सुख हैं इसलिए इन अनेक प्रकार के साधनों के चक्कर में न पड़ना चाहिये। हे प्यारे उद्धव ! जो नित्य सुख मेरी सन्निधि से प्राप्त होता है वह कभी नष्ट नहीं होता।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मेरी शरण में आया हुआ भक्त निर्भय तथा वे परवाह होता है। वह सुख विषयी पुरुषों को कभी प्राप्त नहीं हो सकता। यह सुख उसी को प्राप्त होता है जिसने अपना सर्वस्व मुझे सौंप दिया है। मेरे अतिरिक्त ब्रह्मपद की भी जिसको चाह नहीं होती है। औरों की तो बात ही क्या? वह बड़ी २ सिद्धियों तथा मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता है। हे प्यारे उद्धव! मैं तुम से कहाँ तक कहूँ मुझे तुम जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं उतने प्रिय न मेरे पुत्र ब्रह्मा न मेरी आत्मा शङ्कर न सगे भाई बलरामजी तथा न मेरी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीजी हैं। मैं जितना प्रेम अपने भक्तों से करता हूँ उतना स्वयं मैं अपने से भी नहीं करता हूँ। जिस प्रेमी भक्त ने मुझे ही अपना सर्वस्व मान लिया है जो जगत से दूर रह कर मेरे में ही सदा तल्लीन रहता है जो समदर्शी है उस महात्मा के पीछे पीछे मैं निरन्तर इस लिये घूमता रहता हूँ कि उनके चरणों की धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ती रहे और मैं पवित्र हो जाऊँ।

हे उद्धव! यह तो उत्तम भक्तों के विषय में बात रही किन्तु मेरे भक्त जिन्होंने अभी अपनी इन्द्रियों पर भली प्रकार विजय प्राप्त नहीं की है वे कभी कभी विषयों के द्वारा दुखी अवश्य होते हैं किन्तु उन्हें वे दबा नहीं सकते क्योंकि उन का चित्त मेरी भक्ति में ही अधिक लीन रहता है। इसलिये मेरी भक्ति उसकी रक्षा करती रहती है। हे प्यारे उद्धव! मैं तुम से सत्य कहता हूँ कि मैं योग साधन, ज्ञान, विज्ञान यज्ञ, जप, तप, त्याग आदि से उतनी आसानी से प्राप्त नहीं होता हूँ जितनी कि अनन्य भक्ति से मैं आसानी से पकड़ा जाता हूँ। मुझे प्राप्त करने का केवल एक यही उपाय है कि मेरी अनन्य भक्ति करे चाहे वह कोई भी जाति, वर्ण अथवा आश्रम का क्यों न हो जिस का चित्त, सत्य दया से युक्त है जो मेरे गुणों में गद्गद् हो आनन्दाश्रु बहाने लगता है उसका चित्त मुझमें लीन हो जाता है वह कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी गाता है कभी नाचता है वही मेरा परम प्रिय भक्त है।

जो पुरुष सदा विषयों में लीन रहते हैं और जो मेरा स्मरण करते हैं वे मुझ में लीन रहते हैं। इस कारण हे उद्धव! तुम हमारे अन्य साधनों

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

को त्यागकर मेरा ही चिन्तन करो। मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी तुम्हें प्रतीत होता है वह बनावटी तथा बालू की भीति है। पहले मेरा चिन्तन करके अपने चित्त को शुद्ध करो फिर एकाग्रता से मुझ में तल्लीन कर दो। सब से पहले अपने मन और इन्द्रियों को वश में करो। तत्पश्चात् स्त्रियों, पुत्रों आदि को त्याग दो। फिर एकान्त स्थान में बैठ कर सावधानी से मेरा ध्यान करो। स्त्रियों के सङ्ग से जो क्लेश पुरुषों को होता है वह और किसी के सङ्ग से इतना नहीं होता है।

उद्धवजी बोले—हे श्यामसुन्दर! कृपा करके आप यह बतलाइये कि मुमुक्षु पुरुष आपका चिंतन किस रूप में, किस प्रकार किस भाव से ध्यान करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे प्यारे उद्धव! सब से पहले साधक को ऐसा आसन स्थिर करना चाहिये जो न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा हो। अर्थात् सम स्थान पर आसन बिछाना चाहिये। फिर अपने शरीर को सीधा रख कर आराम से बैठ जाना चाहिये। दोनों हाथों को अपनी गोद में रख कर अपनी दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर जमाना चाहिये। ऐसा करने के बाद पूरक, कुम्भक तथा रेचक, कुम्भक तथा पूरक इन दोनों विधियों से प्राणायाम करके नाड़ियों को शोधन करना चाहिये। प्राणायाम का अभ्यास शनैः शनैः बढ़ाना चाहिये। और उस के साथ ही साथ इन्द्रियों को भी वश में करने का अभ्यास करना चाहिये। इन्द्रियों के वश में होने पर ही प्राणायाम शीघ्र फल देता है। हृदय में ओंकार का चिन्तन करे। उसे प्राण वायु के द्वारा ऊपर ले जावे। और घण्टानाद की भाँति स्वर स्थिर करदे। उस स्वर का तांता कभी न टूटे। इस प्रकार तीनों समय ॐकार सहित प्राणायाम दस दस बार करे। ऐसा अभ्यास करने से एक मास में ही प्राणवायु अपने वश में हो जाती है। इसके पश्चात् अपने हृदय में एक कमल का चिन्तन करे उस कमल की डण्डी ऊपर की ओर और मुँह नीचे की ओर है। फिर यह ध्यान करना चाहिये कि उसका मुख अष्ट दल होकर खिल गया है। उस से मध्य में पीली पीली अति कोमल गद्दी है उस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

गद्दी पर सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि का न्यास करे। तत्पश्चात् अग्नि में मेरे इस रूप का ध्यान करना चाहिये। मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग अति सुन्दर तथा सुडौल हैं। शान्ति टपक रही है। मुख कमल अति सुन्दर तथा प्रफुल्लित है। लम्बी लम्बी सुडौल चार भुजायें हैं। बड़ी सुन्दर शंख के समान गर्दन है। मन्द मन्द मुस्कराहट ओठों पर है। कानों में मकरा कृत कुण्डल जगमगा रहे हैं। मेघ वर्ण श्याम शरीर पर पीताम्बर शोभा पा रहा है। वक्षस्थल पर श्रीवत्स एवं लक्ष्मी का चिन्ह है। हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म है। गले में बन माला है तथा कौस्तुभमणि शोभा पा रही है। सिर पर किरीट, कमर में करधनी भुजाओं में बाजूबन्द, हाथों में कङ्कन शोभा पा रहे हैं।

हे उद्धव! मेरे इस मनोहारी रूप का ध्यान करना चाहिये और अपने मन को एक एक अङ्ग में लगाना चाहिये।

ज्ञानी पुरुष अपने मन तथा इन्द्रियों को विषयों से रहित करदे और उसको मेरे में लगादे। जब मेरे सारे शरीर का ध्यान भली प्रकार होने लगे तब अपने चित्त को मेरे सब अङ्गों से हटाकर केवल मेरी मन्द मुस्कान से युक्त मेरे मुख पर ही चित्त को लगादे। जब चित्त मेरे मुखारविन्द पर भली प्रकार लग जावे तब उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करदे। तत्पश्चात् आकाश का चिन्तन त्याग कर मेरे इस ब्रह्म स्वरूप में अपने चित्त को लगादे। जब चित्त इस प्रकार वश में हो जाता है तब साधक अपनी ज्योति को मेरी ज्योति में मिला देता है। जो योगी इस प्रकार योगाभ्यास से अपने मन को वश में कर लेता है उसको ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और मुझ में लीन हो जाता है।

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

भिन्न भिन्न सिद्धियों के नाम तथा लक्षणों का वर्णन

दोहा—लक्षण सहित सिद्धि कही, कृष्णचन्द्र समुझाय।
उद्धवजी सुनने लगे, कृष्णचन्द्र चितलाय॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव ! जब योगी पुरुष इन्द्रिय, प्राण तथा मन को अपने वश में करके अपना चित्त मेरे में लगाता है तब उसके सन्मुख अनेक सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

उद्धव बोले—हे योगेश्वर ! आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि सिद्धियाँ कितने प्रकार की होती हैं। किस धारणा के करने से किस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्रिय उद्धव! सिद्धियाँ अठारह प्रकार की होती हैं। जिनमें आठ सिद्धियाँ तो मेरे से प्राप्त होती हैं और दस सिद्धि सत्व गुण के प्राप्त होने पर मिलती हैं। उनमें तीन सिद्धियाँ 'अणिमा' 'महिमा' तथा 'लघिमा' शरीर से सम्बन्ध रखती हैं और एक एक सिद्धि 'प्राप्ति' इन्द्रियों से सम्बन्ध रखती है। लौकिक तथा पारलौकिक पदार्थों का अनुभव कराने वाली सिद्धि का नाम 'प्राकाम्य' है। माया के कार्यों को अपनी इच्छानुसार चलाने वाली सिद्धि का नाम 'ईशिता' सिद्धि है। अनेक विषयों में रह कर उनमें आसक्ति न होना 'वशिता' नाम की है। इच्छित सुखों को देने वाली सिद्धि 'कामावसीयिता' नाम की सिद्धि है। ये आठों प्रकार की सिद्धियाँ मुझ में रहती हैं इसलिए इन्हें मैं देता हूँ। इन सिद्धियों के अतिरिक्त और भी सिद्धियाँ हैं। एक सिद्धि यह है कि भूख प्यास आदि को जीतना दूसरी बहुत दूर की वस्तु को देख लेना तथा बहुत दूर की बात सुन लेना, मन के वेग के साथ इच्छित स्थान पर पहुँच जाना इच्छानुसार रूप बना लेना, दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाना इच्छानुसार शरीर त्याग देना, अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करना, संकल्प की सिद्धि प्राप्त करना, सब के द्वारा आज्ञा पालन करना इस प्रकार दस सिद्धियाँ सत्व गुण के विकास से प्राप्त होती हैं। भूत, भविष्य, तथा वर्तमान की बात को जान लेना। सुख दुःख, राग, द्वेष, शीत ऊष्ण आदि कष्टों को वश में करना। दूसरे मनुष्यों के हृदय की बात जान लेना, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि की शक्ति को स्तम्भित कर देना तथा किसी से पराजित न होना। इस प्रकार पाँच सिद्धियाँ योगियों को और भी प्राप्त होती हैं।

हे प्यारे उद्धव ! मैंने तुम्हें धारणा सहित सिद्धियाँ बतलाई हैं। अब

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में तुम्हें उनकी प्राप्ति की विधि बतलाता हूँ।

हे उद्धव ! ये पाँचों भूत तथा उनकी तन्मात्राऐं मेरा ही शरीर है अर्थात् मैं उनमें समाया हुआ हूँ। जो योगी मेरे उसी शरीर की उपासना करता है तथा उन में तद्रूप हो जाता है उसे मेरी अणिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। वह पत्थर आदि की चट्टान तथा पृथ्वी के अणुओं में प्रवेश करने की शक्ति रखता है। हे उद्धव ! मैं महतत्व में भी समाया हुआ हूँ वह भी मेरा ही रूप है उस रूप में मैं समस्त ज्ञानों का केन्द्रीभूत हूँ। जो योगी अपने मन को मेरे उस महत्वाकार रूप में लगा कर तद्रूप हो जाता है उसे महिमा नाम की सिद्धि मिलती है इसी भाँति जो आकाशादि पंच भूतों में से किसी में भी अपना मन अलग अलग लगाता है तो उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है क्योंकि आकाश आदि सभी मेरा ही शरीर है जो योगी, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी इन चार भूतों के परमाणुओं में जो मेरा ही शरीर है अपना चित्त लगा देता है और उसमें तद्रूप (वैसा ही रूप) हो जाता है तो उसे लघिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म शरीर धारण कर लेता है। जो योगी सात्विक अहंकार को मेरा ही स्वरूप जान कर उस में अपना चित्त लगा देता है वह सम्पूर्ण इन्द्रियों का स्वामी हो जाता है उस योगी को 'प्राप्ति' नाम की सिद्धि मिलती है। जो योगी महतत्वाभिमानी मुझ सूत्रात्मा में अपना मन स्थिर कर देता है उसे प्रकाम्य नाम की सिद्धि मिलती है जिसके प्राप्त होने पर उस साधक को इच्छानुसार भोग प्राप्त हो जाते हैं जो योगी मुझ काल स्वरूप विश्वात्मा की धारण करता है उसमें सम्पूर्ण जगत के जीवों तथा शरीरों को अपनी इच्छानुसार चलाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसका नाम 'इशित्व' सिद्धि है। जो योगी मेरे नारायण स्वरूप जिसे तुरीय तथा परमात्मा कहते हैं उसमें अपने मन को लगा देता है उस योगी में मेरे स्वाभाविक गुण उत्पन्न होने लगते हैं। उसे वशिता' नाम की सिद्धि मिल जाती है जो योगी अपने निर्मल मन को मुझ निर्गुण ब्रह्म में स्थिति कर देता है उसे परम कल्याणकारिनी कामावसायता नाम की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सिद्धि मिल जाती है। इस सिद्धि के प्राप्त होने पर उसकी सम्पूर्ण कामनायें स्वतः पूर्ण होने लगती हैं।

हे प्यारे उद्धव ! जो योगी मेरे श्वेत द्वीप के स्वामी रूप की धारणा करता है वह भूख, प्यास जन्म, मृत्यु शोक मोह इन छः विकारों से मुक्त हो जाता है। जो मेरे आकाशात्मा स्वरूप का ध्यान करता है वह दूर की बात को सुन सकता है। जो योगी अपने नेत्रों को सूर्य में तथा सूर्य को नेत्रों में मिलाकर एक कर देता है, और दोनों के संयोग में मेरा ध्यान करता रहता है उसको सूक्ष्म दृष्टि जिसे दिव्य दृष्टि भी कहते हैं प्राप्त हो जाती है। जो योगी अपने मन तथा शरीर को प्राण वायु सहित मेरे साथ मिला देता है, और उस समय मेरा ध्यान करता है उसे 'मनोभाव' सिद्धि प्राप्त होती है इस सिद्धि के प्राप्त होने पर योगी जहाँ जाने की इच्छा करता है वहीं उसी क्षण पहुँच जाता है। जो योगी इच्छानुसार रूप बना लेता है वह अपने उपादान कारण से मेरा ध्यान करता है वह अपने चित्त को मेरे में जोड़ देता है। योगी जब दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करने की इच्छा करता है तब वह यह भावना करता है कि मैं उसी के शरीर में हूँ उसका प्राण वायु दूसरे के शरीर में प्रवेश कर के अपना रूप धारण कर लेता है। तब वह अपने शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है योगी जब अपने शरीर त्याग की इच्छा करे तो पहले उसे अपनी एड़ी से गुदा द्वार को दबा लेना चाहिये। तब प्राण वायु को धीरे २ क्रमकः हृदय वक्षः स्थल कण्ठ तथा मस्तक में ले जानी चाहिये। तत्पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र में प्राण वायु को-लेजाकर उसे ब्रह्म में लीन करके शरीर छोड़ देना चाहिये। उस समय यदि वह देवताओं के लोक को जाना चाहता है तो मेरे शुद्ध तत्व मय स्वरूप का ध्यान करे। तब उसे सुर सुन्दरियों के साथ विमान पर चढ़ कर अनेक प्रकार के भोग प्राप्त होते हैं। जिस योगी ने मेरे सत्य संकल्प स्वरूप में अपना मन स्थिर कर दिया है और वह मेरे ध्यान में तद्रूप हो गया है उस समय वह जैसा संकल्प करता है उसका वही संकल्प पूरा होता है क्योंकि मैं ईशित्व और वशित्व दोनों सिद्धियों का स्वामी हूँ ! इस कारण मैं उसकी सभी इच्छायें पूर्ण करता हूँ। जिस योगी

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

का चित्त मेरी भक्ति के कारण शुद्ध हो गया है वह भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों के अदृष्ट विषयों को भी जान लेता है। जब वह अपने मन को मेरे में लगा देता है उस समय अग्नि, जल आदि कोई भी उसके शरीर को नष्ट नहीं कर सकते हैं। वह अजेय होता है। मेरी आराधना करने वाला योगी सम्पूर्ण सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त कर लेता है। जो भक्ति योग अथवा ज्ञान योग द्वारा मुझे प्राप्त करने का अभ्यास कर रहे हैं उनके लिये ये सिद्धियाँ विघ्न कारक हैं। उन्हें इन नाशवान सिद्धियों को प्राप्त करने का प्रयत्न कभी न करना चाहिये। मेरे सारूप्य, सालोक्य आदि की प्राप्ति करना ही सब से बड़ी सिद्धि है क्यों कि मैं ही ब्रम्ह और अद्वितीय आत्मा हूँ।

॥ सोलहवाँ अध्याय ॥

भगवान् की विभूतियों का वर्णन करना

दोहा—निज विभूति वर्णन करी, श्री कृष्ण भगवान।
शिर झुकाय माथे धरी, कीनों प्रभु सनमान॥

उद्धव जी बोले—हे परमात्मन्! आप अनादि, अनन्त तथा परःब्रह्म हैं। आप आवरण रहित तत्व हैं। समस्त जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय आप ही करते हैं। आप सभी प्राणियों में बास करते हैं। किन्तु जिन मनुष्यों ने अपने मन तथा इन्द्रियों को बस में नहीं किया है वे आपको नहीं पहचानते। हे भगवन्! बड़े बड़े महर्षि देवर्षि तथा आत्म ज्ञानियों ने आप की जिन विभूतियों की उपासना करके सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। मैं उन के नाम सुनना चाहता हूँ। आप कृपा करके मुझ से उनका वर्णन कीजिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! तुमने जो प्रश्न किया है वही प्रश्न कौरव पाण्डवों के युद्ध में वीर शिरोमणि अर्जुन ने किया था। अर्जुन के हृदय में यह धारणा उत्पन्न हो गई थी कि कुटुम्बियों को मार कर राज्य प्राप्त करना निन्दनीय कर्म है मैं मारने वाला हूँ और ये सब मेरे हाथ से मारे जावेंगे। ऐसा बिचार कर उसने युद्ध करने से मना कर दिया तब मैंने ऐसी विषम परिस्थित में जब कि दोनों सेनायें युद्ध के लिये खड़ीं थीं उस अर्जुन को बहुत सी युक्तियों से समझाया था।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हे उद्धव ! वही प्रश्न तुमने मेरी विभूतियों के विषय में किया है। सुनो मैं तुम से अपनी विभूतियों का वर्णन करता हूँ। हे उद्धव ! इन समस्त प्राणियों तथा पदार्थों के रूप में मैं ही हूँ। जगतकी उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय मैं ही करता हूँ। समस्त गतिशील पदार्थों की गति मैं ही हूँ। मैं ही काल हूँ। मैं सब का मूल स्वरूप हूँ। समस्त गुण पदार्था में मैं ही गुण हूँ। मैं ही समस्त क्रियाशक्ति प्रधान कार्यों में सूत्रात्मा हूँ अर्थात् मैं ही उन कार्यों को संचालित करता हूँ। मैं ही ज्ञान शक्तियों में महतत्वहूँ। मैं ही सूक्ष्म वस्तुओं में जीव हूँ। मैं ही न वश में होने वाला मन हूँ मैं ही वेदों में हिरण्य गर्भ हूँ। मैं मन्त्रों में ॐकार मन्त्र हूँ। अक्षरों में मैं अकार अक्षर तथा छन्दों में गायत्री छन्द हूँ। देवताओं में सर्व श्रेष्ठ इन्द्र हूँ। आठों बसुओं में अग्नि तथा बारह आदित्यों में मैं विष्णु हूँ। एकादश रुद्रों में मैं नील लोहित रुद्र हूँ। ब्रह्मर्षियों में मैं भृगु हूँ राजर्षियों में मैं मनु हूँ। देवर्षियों में मैं नारद हूँ। तथा गौओं में मैं कामधेनु हूँ। मैं सिद्धेश्वरों में कपिल हूँ। पक्षियों में मैं गरुण हूँ तथा प्रजापतियों में मैं दक्ष प्रजापति हूँ। पितरों में अर्यमा पितर दैत्यों में दैत्यराज प्रहलाद समस्त नक्षत्रों में चन्द्रमा औषधियों में सोमरस तथा यक्ष राक्षसों में मैं कुवेर हूँ। गजराजों में मैं ऐरावत हाथी तथा जल में रहने वालों में उन का स्वामी वरुण हूँ। मैं तेजवानों में सूर्य तथा मनुष्यों में सर्व श्रेष्ठ राजा हूँ घोड़ों में मैं उच्चैश्रवा घोड़ा, धातुओं में सोना तथा दण्ड देने वालों में यम और सर्पों में वासुकि नाग हूँ। नागराजाओं में मैं शेषनाग तथा पशुओं में सिंह हूँ। आश्रमों में मैं सन्यास आश्रम हूँ तथा वरणों में ब्राह्मण हूँ मैं तीर्थों में गङ्गा तीर्थ और जलाशयों में समुद्र हूँ धनुर्धारियों में मैं राम हूँ। मैं पर्वतों में सुमेरु तथा वनस्पतियों में पीपल और अन्नों में जौ हूँ। हे उद्धव ! मैं पुरोहितों में वशिष्ठ जी हूँ वेद जानने वालों में मैं वृहस्पति हूँ। वीरों में स्वामी कार्तिक हूँ तथा धर्मवेत्ताओं में ब्रह्मा हूँ। यज्ञों में स्वाध्याय यज्ञ हूँ (ब्रह्म यज्ञ) ब्रतों में अहिंसा ब्रत तथा शुद्ध करने वाली धातुओं में मैं वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी तथा आत्मा हूँ। योगों में मैं समाधि योग, विजयाभिलाषियों में

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

में मन्त्र बल हूँ। मैं रश्मियों में शत रूप हूँ। पुरुषों में स्वायम्भुव मनु हूँ। मुनीश्वरोंमें नारायण हूँ तथा ब्रह्मचारियों में मैं सनत्कुमार हूं। मैं ऋतुओं में बसन्त, महिनों में अगहन मास तथा नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र हूँ। युगों में सतयुग हूँ। ज्ञानियों में मैं देवता तथा असित हूँ और श्रीकृष्ण द्वैपायन हूं। कवियों में शुक्राचार्य तथा महापुरुषों में वासुदेव हूँ। भक्तों में मैं तुम उद्धव हूँ। किम्पुरुषों में मैं हनुमान हूँ। विद्याधरों में मैं सुदर्शन विद्याधर हूँ। रत्नों में पदमराग रत्न हूँ पुष्पों में कमल हूँ। तृणों में कुश और हवन करने की सामिग्रियों में गाय का घी हूँ। मैं कपटियों में जुआ गुणों में सात्विक गुण तथा भगवत् भक्तों में निष्काम कर्म हूँ मैं नौ मूर्तियों अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, नारद नृसिंह तथा ब्रह्मा इनमें सर्वश्रेष्ठ मूर्ति वासुदेव हूँ। अप्सराओं में पूर्वचित्त नाम की अप्सरा हूँ जो ब्रह्माजी के ब्रह्मलोक में रहती है। पृथ्वी में शुद्ध गन्ध, जल में रस, तेज में अग्नि, तथा सूर्य तारों में ज्योति आकाश में शब्द मैं ही हूँ। मैं दानियों में बलि, वीरों में अर्जुन तथा प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाला मैं ही हूँ। मैं ही सम्पूर्ण जगत की शक्ति हूँ अलग अलग मैं कहाँ तक गिनाऊँ पृथ्वी आदि पंच भूत अहङ्कार, महतत्व, जीव तथा तीनों गुण इन सब से परे मैं ही परःब्रह्म हूँ। मैं ही उन गुणों को ग्रहण करने वाला गुणी हूँ। मैं ही सर्वात्मा तथा सर्वस्व हूँ।

मेरे अतिरिक्त इस जगत में कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है। मेरी विभूतियाँ इतनी अगण्य हैं कि पृथ्वी के कण गिने जा सकते हैं किन्तु वे नहीं गिनी जा सकतीं। क्यों कि मेरे द्वारा रचे हुए कोटि कोटि ब्रह्माण्डों को ही जब नहीं गिना जा सकता है तब मेरी विभूतियों की गणना कैसे की जा सकती है। तुम यह समझ लो कि जिस व्यक्ति में तेज, श्री कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य पराक्रम तितिक्षा तथा विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं वह मेरा ही अंश समझना चाहिये। हे प्यारे उद्धव ! सूक्ष्म रूप में मैंने तुम्हें अपनी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

विभूतियाँ बताई हैं येजितनी विभूतियाँ मैंने कहीं हैं परमार्थ की वस्तु नहीं हैं। इन से मनोविकार ही उत्पन्न होता है। क्योंकि जो मन से सोची जा सकती है तथा वाणी से जिसका वर्णन किया जा सकता है वे सभी वस्तु नाशवान् हैं, वास्तविक नहीं हैं। इस लिए तुम अपनी इन्द्रियों को वश में कर के आत्म शक्ति द्वारा बुद्धि को स्थिर करो। साधक बुद्धि के द्वारा वाणी तथा मन को जब तक अपने वश में नहीं कर लेता है तब तक उस की तपस्या, दान, व्रत, आदि जल से भरे कच्चे घड़े के समान नष्ट हो जाते हैं इस लिये मेरा भक्त अपनी बुद्धि वाणी मन तथा प्राणों को पूर्णतया वश में कर ले, तभी वह कृत कृत्य हो कर मुझे प्राप्त कर लेता है।

॥ सत्रहवाँ अध्याय ॥

वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन करना—

दो०—वर्णाश्रम और धर्म सब, कृष्ण रहे समझाय।
उद्धव जी सुनने लगे, मन में अति हरषाय ॥

उद्धव जी बोले—अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि मनुष्य को किन किन धर्मों का आचरण करने से आप की भक्ति प्राप्त होती है। हे सर्व शक्तिमान यदुवंश शिरोमणि! पूर्वकाल में आपने हंस रूप से जो उपदेश ब्रह्मा जी को दिया था अब वह काल की गति से लोप सा होगया है। क्यों कि उस परम धर्म के उपदेश को दिये हुये अनेकों युग बीत गये हैं। अतः आप अब उसी उपदेश को पुनः देने की कृपा कीजिये जिससे वह फिर नया हो कर इस संसार में फैले।

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! जब परम भागवत् उद्धवजी ने ऐसा प्रश्न किया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अति प्रसन्न होकर मनुष्यों के कल्याण हेतु सनातन धर्म का उपदेश दिया।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! तुम्हारा प्रश्न अति रहस्यमय तथा वर्णाश्रम धर्मी प्राणियों के लिये अति कल्याणकारक मोक्ष देने वाला है। कल्प के आरम्भ में जब कि पहला सतयुग चल रहा था उस काल में सभी मनुष्य हंस वर्ण के थे। सभी प्राणी उस युग में जन्म

Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

से कृत्यकृत्य थे क्योंकि उन्हें अभी तक पाप तथा कर्मों का बन्धन लगा ही नहीं था। इसीलिये उस युग को कृतयुग भी कहते हैं। उस युग में प्रणव (अ×उ×म्) ही वेद था। तपस्या, शौच, दया तथा सत्य ही धर्म के चार पैर थे। उस काल में सभी प्राणी निष्पाप, तपस्वी, तथा भक्त जन थे। और मुझ परम हंस रूप परमात्मा की उपासना करते थे। उस युग के पश्चात् त्रेतायुग आया उसमें श्वास प्रश्वासों के द्वारा ऋगवेद,सामवेद, तथा यजुर्वेद प्रकट हुये। इन तीन वेदों से होता अर्ध्वायु तथा उद्गाता इन तीनों रूपों में मैं प्रकट हुआ। विराट् भगवान् के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए। भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए। हे उद्धव ! वह विराट पुरुष मैं ही हूँ। ये समस्ते वर्ण मेरे से ही उत्पन्न हुए हैं। मेरे नितम्बों से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम, वक्षस्थल से वानप्रस्थाश्रम तथा मस्तक से सन्यासाश्रम उत्पन्न हुआ। जो जो वर्ण तथा आश्रम जिन२ स्थानों में उत्पन्न हुआ उन्हीं के स्वरूप उत्तम तथा अधम माने गये हैं। जो उत्तम स्थानों से उत्पन्न हुए हैं उनके स्वभाव तथा गुण उत्तम हैं जो अधम स्थानों से उत्पन्न हुए हैं उनके स्वभाव तथा गुण अधम हैं। ब्राह्मण वर्ण का स्वभाव उत्तम तथा गुण अधम हैं। ब्राह्मण वर्ण का स्वभाव शम, दम, तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमा शीलता, सीधापन, भक्ति, दया, तथा सत्य से युक्त होता है। क्षत्रिय वर्णन का स्वभाव, तेज, बल, धैर्य, वीरता, सहनशीलता, उदारता, ब्राह्मण भक्ति स्थिरता तथा ऐश्वर्य आदि से युक्त होता है। वैश्य वर्ण का स्वभाव, दान शीलता, दम्भ हीनता, धन संचय करना तथा ब्राह्मणों की सेवा से युक्त होता है। शूद्रों का स्वभाव, ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं की सेवा करने का होता है। हे उद्धव ! चारों वर्णों तथा आश्रमों के यही धर्म हैं कि मन,वाणी तथा शरीर से किसी की हत्या न करे, सत्य बोले, क्रोध न करे। चोरी आदि से बचे। काम तथा लोभ रहित रहे और समस्त कर्म दूसरों की भलाई के लिये ही करे।

हे उद्धव ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के बालक को संस्कार क्रम पूर्वक कराने चाहिये। उपनयन संस्कार तीनों के लिए अति आवश्यक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हैं। तत्पश्चात् बालक गुरुकुल में जा कर गुरु की सेवा करे और विद्याध्ययन करे। वहाँ पर ब्रह्मचर्य से रहे। मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत आदि धारण करे। सिर पर जटा रखाये। तेल आदि का उबटन न करे। मौन रहे। तीनों काल स्नान करे, हवन जप आदि करे। गायत्री का जप करे, पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहे। यदि कभी स्वप्न आदि में वीर्यपात हो जावे तो जल में स्नान करके प्राणायाम करे। तथा गायत्री का जप करे। जो भिक्षा माँग कर लावे वह गुरु के सन्मुख रक्खे और गुरु जो कुछ भोजन देवे उसमें सन्तोष रक्खे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा सन्यासियों को स्त्रियों से सदा दूर रहना चाहिये। उन से बात चीत तथा हँसी ठट्ठा आदि न करनी चाहिये।

पच्चीस वर्ष की आयु उपरान्त यदि वह नैष्टिक ब्रह्मचारी रहना चाहता है तो अति उत्तम है। वह अपने ब्रह्म तेज से मुझे शीघ्र प्राप्त कर लेता है। और यदि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता है तो गुरु को दक्षिणा देकर अपने वर्ण की किसी उत्तम कन्या से विवाह करले। ब्राह्मण ब्रह्मचर्य के पश्चात् सन्यास आश्रम में भी जा सकता है किन्तु प्रत्येक आश्रम में क्रमशः जाना ही अति उत्तम होता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने पर यज्ञादि, अध्ययन तथा दान करने का ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य तीनों को समान अधिकार है। किन्तु दान लेने, यज्ञ कराने का अधिकार केवल ब्राह्मण वर्ण को है। ब्राह्मण इन तीनों प्रकार से अपना जीवन निर्वाह करे किन्तु किसी नीच वर्ण की सेवा न करे। यदि ब्राह्मण की आजीविका अध्यापन तथा यज्ञयज्ञादि से नहीं चलती है तो वैश्य वृत्ति लेकर व्यौपार आदि कर सकता है। जब उसकी वह विपत्ति दूर हो जावे तब उस वृत्ति को त्याग दे। यदि उस पर बहुत बड़ी विपत्ति आई हुई है तो क्षत्रिय वृत्ति लेकर तलवार उठा सकता है किन्तु नीचों की सेवा करके श्वान वृत्ति को कभी ग्रहण न करे। इसी प्रकार क्षत्रिय भी अपनी वृत्ति में जीवन निर्वाह न होने पर वैश्य वृत्ति लेकर व्यौपार आदि कर सकता है। घोर आपत्ति आने पर अध्यापन कार्य भी कर सकता है किन्तु नीचों की सेवा करके श्वान वृत्ति

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कभी न ले। वैश्य भी घोर आपत्ति के समय सेवा की वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह कर सकता है। किन्तु ये सब बातें आपत्ति काल के लिये ही हैं। आपत्ति काल व्यतीत होने पर फिर इस वृत्ति से जोवकोपार्जन न करे। गृहस्थ पुरुष को ब्रह्मयज्ञ तथा वेदाध्यन आदि, तर्पण रूप पितृ यज्ञ हवन रूप, देवयज्ञ, काकबलि आदि भूतयज्ञ तथा अन्नादि से अतिथि यज्ञ अवश्य करना चाहिये। इनको एक दिन के लिये भी न छोड़े। अपनी आर्थिक दशा के अनुसार और भी बड़े बड़े यज्ञ करे। गृहस्थ पुरुष को अपने कुटुम्ब में ही आसक्त न होना चाहिये सदा मेरा ध्यान बनाये रखना चाहिये क्यों कि स्त्री, पुत्र, भाई बन्धु आदि तो प्याऊ पर बटोहियों की भाँति इकट्ठे हो गये हैं। इन सब को अपने अपने रास्ते चले जाना है। ये सब रिश्ते नाते शरीर तक ही सीमित हैं फिर कोई किसी का नहीं होता है। इस लिये घर गृहस्थी में अनासक्त भाव से रह कर ममता आदि त्याग कर घर गृहस्थोचित धर्म का पालन करे। तथा भक्ति भाव से मेरी पूजा करता रहे। गृहस्थाश्रम के पश्चात् अपने गृहस्थ का भार अपने पुत्रादि को देकर बानप्रस्थाश्रम ले ले। तत्पश्चात् सन्यास आश्रम लेकर मोक्ष का मार्ग खोजे।

॥ अठारहवाँ अध्याय ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! गृहस्थ मनुष्य गृहस्थाश्रम को त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में जाना चाहे तब अपनी स्त्री को पुत्रों को सौंप दे या अपने साथ ले कर शान्ति पूर्वक बन में आसन बना कर आयु के तीसरे भाग को व्यतीत करे। बन में रह कर कन्दमूल फल का सेवन करे, वृक्षों की छाल घास पात तथा मृगछाला आदि वस्त्रों की जगह काम में लावे अपने केश डाढ़ी, मूँछ, नख आदि को न कटावे। दाँतुन आदि न करे जल में घुस कर तीनों समय स्नान करे तथा धरती पर आसन करे ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि लगा कर तपे। वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहे तथा जाड़े की ऋतु में कण्ठ तक जल में मग्न रह कर मेरा भजन करे। कन्द मूल, फल,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

आग में भून कर खावे या पके हुए फल खावे। यदि कूटने की आवश्यकता हो तो पत्थर आदि पर कूट ले अथवा दाँतों से ही चबा चबा कर खावे। वानप्रस्थी को भोज्य पदार्थों के स्थान तथा समय और उनकी अनुकूलता का ज्ञान होना चाहिये। दूसरे के लाये हुए फल तथा देशकाल के अनुकूल न होने वाले फलों को प्रयोग में न लावे। जङ्गली समा कोदों आदि से चरु प्रोडाश आदि बनाकर उनसे वैद्यक यज्ञ करे वानप्रस्थी पशुओं द्वारा मेरा यज्ञ न करे। वानप्रस्थी अग्नि, होत्र, दर्श पौर्ण मास तथा चातुर्मास्य आदि यज्ञ गृहस्थों की भाँति करे। इस प्रकार घोर तपस्या करके अपने शरीर के माँस तथा रक्त को सुखादे। इस तपस्या के प्रभाव से वह पहले ऋषिलोक को जाता है। फिर वहाँ से मेरे लोक को चला आता है। इस तपस्या को निष्काम भाव से करे। स्वर्ग लोक आदि की प्राप्ति की कामना न करे। क्योंकि वे सब नाशवान हैं। निष्काम भाव से की हुई तपस्या वाला वानप्रस्थी मेरे नित्य लोक को प्राप्त होता है। जब वानप्रस्थी बुढ़ापे के कारण अपने नियमों का पालन न कर सके। उसका शरीर काँपने लगे तब ऐसी दशा में यज्ञाग्नियों को अपने अन्तःकरण में लीन करके मन मुझ में लगा कर अग्नि में प्रवेश कर जावे। यह विधान केवल उनके लिए हैं जो वानप्रस्थी विरक्त नहीं है।

विरक्त वानप्रस्थी सन्यास आश्रम में प्रवेश करे। पहले वह वेदोक्त विधि से आठ प्रकार के श्राद्ध तथा प्रजापत्य यज्ञ से मेरी आराधना करे। अपना सर्वस्व ऋत्वजों को दान देदे। यज्ञाग्नियों को अपने प्राणों में लीन करके स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करे। किसी स्थान विशेषपर न रहे उसके सन्यास लेने में देवता लोग अनेक प्रकार के विघ्न डालते हैं उनसे सावधान रहे। सन्यासी केवल लंगोटी लगावे। उसके ऊपर एक छोटा सा कपड़ा लपेट ले जिससे लंगोटी ढक जावे। दण्ड तथा कमण्डल के सिवाय और कुछ भी वस्तु अपने पास न रक्खे। पृथ्वी पर देखकर पैर रक्खे। छान कर जल पीवे, सत्य बोले। सब काम सोच विचार कर बुद्धि से करे। केवल बाँस का दण्ड लेकर ही सन्यासी दंडी स्वामी नहीं हो जाता

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उसको अपनी वाणी को मौन, शरीर को निष्क्रियता का तथा मन को प्राणायाम का दण्ड देना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते हैं वे नाम मात्र के सन्यासी हैं। सन्यासी, पतित, गौघाती तथा जाति से अलग किए हुए व्यक्तियों की भिक्षा न ले, और चारों वर्णों की भिक्षा ले सकता है। अपने पेट के लायक सात घरों से भिक्षा माँगे। उन से जितना मिल जावे उस में सन्तोष करे। भिक्षा माँगने के घरों को पहले से निश्चित न करे। माँगी हुई भिक्षा को जलाशय पर धोये तथा पवित्र कर के शास्त्रोक्त विधि से जिनको भिक्षा का भाग देना हो दे दे और बचे हुये को शान्ति पूर्वक मौन रख कर खावे। दूसरे समय के लिए बचा कर न रक्खे, और न इतना माँग कर लावे। सन्यासी अकेला ही पृथ्वी पर विचरण करे। वह अपने आप में मस्त रहे। किसी में आसक्ति न रक्खे। हर परिस्थिति में धैर्य रक्खे सर्वत्र परमात्मा का अनुभव करते हुए निर्जन और निर्भय एकान्त स्थान में निवास करे। इन्द्रियों को विषयों से अलग कर दे। उन को चंचल न होने दे। उन्हें संयम में रख कर मन सहित पाँचों इन्द्रियों को जीत ले। भोगों की ओर से सर्वथा मुँह मोड़ले। तथा अपने आप में परमानन्द की प्रीति करे। केवल भिक्षा के लिए ही नगर, गाँव तथा बस्तियों में जाये। किसी स्थान, आश्रम तथा व्यक्ति विशेष से ममता न जोड़े। वानप्रस्थियों के आश्रम से अधिकतर भिक्षा ग्रहण करे। वह बुद्धिमान हो कर भी पागलों के समान खेले। निपुण होने पर जड़वत् रहे। विद्वान होने पर भी पागलों की भाँति आचरण करे। वेद विधियों का ज्ञाता होने पर भी पशु वृत्ति से जीवन निर्वाह करे। वेदों के कर्म—काण्ड आदि की व्याख्या में न लगे। पाखण्ड, तर्क, वितर्क, वाद विवाद आदि से बचे उसका धैर्य इतना हो कि न कभी दुःखी होवे और न दूसरों को दुःखी करे। निन्दा, स्तुति, मान, अपमान में सम रहे, किसी से शत्रुता न करे, यदि उसे किसी दिन समय पर भोजन न मिले तो दुःखी न होवे और यदि समय पर मिलता रहे तो प्रसन्न न होवे। क्यों कि भोजन का मिलना न मिलना प्रारब्ध के ही आधीन है। वह भिक्षा अवश्य माँगे क्यों कि भिक्षा से उसके

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

प्राणों की रक्षा होती है प्राणों के रहने से तत्वज्ञान मिलता है, और तत्व ज्ञान से मुक्ति मिलती है। किन्तु भाग्य के अनुसार जैसी भी अच्छी या बुरी भिक्षा मिल जावे उसी से पेट भर ले। जैसे कपड़े बिछौने मिल जावें उसी में गुजर कर ले। अच्छे बुरे का बिचार न करे। शौच, आचमन, स्नान तथा दूसरे नित्य नियमों का पालन भी इस विचार से न करे कि मैं इनके आधीन हूँ। केवल इस विचार से करे कि इन का करना अच्छा है।

हे उद्धव जी ! अब मैं वैराग्य के विषय में कहता हूँ जो सन्यासी संयमी हैं जिसने अपने मन सहित इन्द्रियों को वश में कर लिया है। वह उन जगत के भोगों से विरक्त हो जावे, और मेरी भक्ति के ज्ञान तथा साधन के लिए आत्मज्ञानी गुरु के निकट जावे। गुरु को मेरा स्वरूप समझ कर भक्ति भाव से मेरी सेवा करे। उस से ब्रह्म तथा आत्मा की एकता का ज्ञान प्राप्त करे। सन्यास लेने के अधिकारी केवल दो हैं—एक तत्वज्ञानी (ज्ञानवान) दूसरा विरक्त, इन के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यदि कोई, जिसने, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि को नहीं जीता है इन्द्रियाँ जिसके वश में नहीं हैं न वह ज्ञानी है न विरक्त है तो वह सन्यासी नहीं हैं वह तो कपट भेष रखकर अपना पेट पालता है। जगत् को ठगने के साथ-साथ वह मुझको भी ठगने की चेष्टा करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों को ही बिगाड़ लेता है। सन्यासी का मुख्य धर्म शान्ति तथा अहिंसा है। वानप्रस्थी का मुख्य धर्म तपस्या तथा भगवत् भाव करना है। गृहस्थियों का मुख्य धर्म प्राणियों की रक्षा तथा यज्ञादि करना है। ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म गुरु की सेवा करना है। गृहस्थ पुरुष भी केवल ऋतुकाल में स्त्री गमन करे उसके लिए भी ब्रह्मचर्य, तपस्या, शौच, सन्तोष, परोकार अति आवश्यक हैं। मेरी आराधना तो सभी को अपने अपने वर्णाश्रम के अनुसार करनी चाहिये। मेरी प्राप्ति करना ही जीव के जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। क्योंकि मैं इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाला इसका स्वामी, अधिष्ठान तथा कारण रूप ब्रह्म हूँ। हे प्यारे

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उद्धव ! जो तुमने मुझसे पूछा था उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया है। जो अपने धर्म का पालन करता है वह मुझ परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

॥ उन्नीसवाँ अध्याय ॥

भक्ति, ज्ञान तथा यम नियमादि का वर्णन करना—

दोहा—भक्त ज्ञान यम नियम का, कीन्हों वर्णन नाथ।
उद्धव जी सुन कर भये, पूरन ब्रह्म सनाथ॥

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी बोले—हे उद्धव ! जिस साधक ने वेद उपनिषद, शास्त्र आदि का श्रवण, पठन तथा मनन के द्वारा आत्म ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो ब्रह्मनिष्ठ है जो यह जानता है कि यह जगत तथा उसकी निवृत्ति, वृत्तिका ज्ञान ये दोनों ही माया मय हैं तथा मुझ में व्याप्त हैं। इनका वास्तविक अस्तित्व कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानी पुरुष का सर्वस्व तथा अभीष्ट वस्तु केवल मैं ही परमात्मा हूँ। उसका स्वर्ग साध्य, साधन सब कुछ मैं ही हूँ। वह केवल मुझसे ही प्रेम करता है। वही ज्ञान तथा विज्ञान से युक्त साधक मेरे असली स्वरूप को जानता है। इसी कारण ऐसा ज्ञानी मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। तत्व ज्ञान की प्राप्ति होने पर साधक के हृदय में मेरा स्वरूप उदय होने लगता है। मेरा उदय तपस्या तीर्थ जप, तप, आदि से ऐसा नहीं होता है जैसा तत्व ज्ञान से होता है। इसलिए हे उद्धव ! तुम ज्ञान विज्ञान से युक्त होकर मेरी आराधना करो। मैं ही समस्त यज्ञों का स्वामी हूँ।

उद्धव जी बोले—हे भगवन् ! आप जगतात्मा हैं। तथा जगत्गुरु हैं। अतः अपने वैराग्य तथा विज्ञान से युक्त विशुद्ध ज्ञान को मुझे स्पष्ट समझाने की कृपा कीजिये। हे मेरे स्वामी ! उस भक्ति योग को भी बतलाइये जिसके लिये ब्रह्मा तथा शङ्कर आदि निरन्तर लालायित रहते हैं।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी बोले—हे प्यारे उद्धव ! तुमने जो प्रश्न किया है वही धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से मेरे सम्मुख किया था। जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया था, और सभी पाण्डव

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ऋषि, महर्षि, देवर्षि उनके निकट बैठे थे, तब उन्होंने यही उत्तर धर्मराज युधिष्ठर को दिया था उसे मैं तुम्हें सुनाता हूँ। उन परम ज्ञानी महात्मा भीष्मजी के उपदेश किये गये सभी साधन, ज्ञान, वैराग्य विज्ञान श्रद्धा तथा भक्ति से पूर्ण हैं।

हे प्यारे उद्धव ! जिस ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण जीवधारियों में पुरुष, प्रकृति, महत्व, अहंकार, नौ तत्व, मन सहित एकादश इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा तीन गुण इस प्रकार अट्ठाईस तत्वों तथा उन सब के स्वामी एक आत्म तत्व का भी साक्षात्कार हो जाता है वही मेरे द्वारा निश्चय किया हुआ ज्ञान है। तथा उस आत्म ज्ञान का अनुभव होने पर उसके अतिरिक्त त्रिगुणमय जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा लय आदि का कुछ भी अनुभव नहीं रहता है। केवल आत्म तत्व का अनुभव शेष रह जाता है उसी का नाम विज्ञान है। आत्म तत्व के विशेष ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं। महतत्व आदि समस्त तत्व की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय आदि में एक ऐसा विशेष तत्व है जो उन तत्वों को बनाने वाला तथा चलाने वाला और उन सब का अधिष्ठाता (स्वामी) है। जब वे सभी उपरोक्त महतत्वादि नष्ट हो जाते हैं तब वही विशेष तत्व शेष रह जाता है—उसी को परम तत्व ब्रह्म कहते हैं हे उद्धव ! इसके चार प्रमाण हैं—श्रुति, प्रत्यक्ष, अनुमान तथा एतिह्य (गुरुजनों द्वारा कहा हुआ) श्रुतियाँ कहती हैं कि द्वैत अर्थात् दूसरा कोई नहीं है केवल परमात्मतत्व ही है। इसका तात्पर्य दूसरे शब्दों में यह भी है कि यह शरीर आदि जगत मिथ्या है यानी नाशवान है। प्रत्यक्ष से भी शरीर आदि की मृत्यु तथा अन्य वस्तुओं का नाश प्रतीत होता ही है। इस से यह सिद्ध होता है कि जगत् मिथ्या है। केवल आत्म तत्व ही सत्य सिद्धि होता है। अनुमान से भी जिस प्रकार सीपी की चमक के कारण चाँदी का अनुमान होता है किन्तु वह चमक मिथ्या है। उसी प्रकार जगत् मिथ्या है। महापुरुषों के कथनानुसार जिसे एतिह्य कहते हैं जगत् का मिथ्यावान सिद्ध होता है। केवल आत्म तत्व ही सत्य है। इसलिए ज्ञानीजन इस

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मिथ्या जगत से प्रेम नहीं करते हैं इससे विरक्त हो जाते हैं। कर्म जीव करता है उसका फल विकार युक्त है। उसे उनके फलानुसार जो भी स्वर्गादिक लोक प्राप्त होते हैं वे भी विकार युक्त तथा नाशवान हैं उनके नाश होने पर चित्त को दुःख ही प्राप्त होता है इसलिए उनकी ओर ध्यान न देकर परमात्मा का ही ध्यान करना चाहिये।

उद्धव जी बोले—हे भगवन्! यम, नियम, शम, दम, तितिक्षा तथा धैर्य किसको कहते हैं, यह कितने प्रकार के हैं? दान, तपस्या, शूरता, सत्य तथा ऋतुका के कारण समझाइये। त्याग किसे कहते हैं? यज्ञ कितने हैं धन क्या है? दक्षिणा क्या है तथा पुरुष का सच्चा बल और भाग किसे कहते हैं? लाभ, उत्तम विद्या, लज्जा, श्री, सुख तथा दुःख क्या है? पण्डित तथा मूर्खों के क्या लक्षण हैं? सुमार्ग तथा कुमार्ग क्या हैं? स्वर्ग तथा नरक क्या वस्तु हैं? भाई, बन्धु किसे कहते हैं? घर क्या है? धनवान तथा निर्धन किसका नाम है? कृपण कौन होता है तथा ईश्वर कौन है? हे मधुसूदन! मेरे इन प्रश्नों का उत्तर आप दीजिये तथा कृपा करके इनके विरोधी भावों को भी समझाइये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! यम बारह प्रकार के होते हैं—सत्य अस्तेय, अर्थात् चोरी न करना, अहिंसा असङ्गत, लज्जा असंचय अर्थात् आवश्यकता से अधिक धन एकत्र न करना। आस्तिकता ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा तथा अभय। ये बारह यम हैं नियम भी बारह ही होते हैं—बाहरी पवित्रता, भीतरी पवित्रता जिसे शौच कहते हैं। जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथि सेवा, मेरी पूजा, तीर्थ, यात्रा, परोपकार सन्तोष तथा महा पुरुषों की सेवायें बारह नियम हैं जो साधक इनको सकाम तथा निष्काम किसी प्रकार से करते हैं, उसके लिए दोनों ही उपयोगी हैं। जो सकाम भाव से करते हैं उन्हें उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जो निष्काम भाव से करते हैं वह मोक्ष प्राप्त करते हैं साधक अपनी बुद्धि को जब मुझ में लगा देता है उसी को शम कहते हैं। इन्द्रियों को संयम में रखने का नाम दम है। केवल चोर तथा डाकुओं को दण्ड देने का नाम ही दम नहीं है। न्याय से जो दुःख प्राप्त हो उसको सहने का

CC-0. In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

नाम तितिक्षा है। बेगार ढोने को ही तितिक्षा नहीं कहते हैं। जिह्वा तथा जननेन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर लेना ही धैर्य है। केवल घबराहट को सहन कर लेना ही धैर्य नहीं है। किसी से द्रोह न करना ही सच्चा दान है। धन देने का नाम ही केवल दान नहीं है। भोगोंको त्याग देना ही तप है। उपवास व्रत आदि से शरीर को सुखाना ही तप नहीं है। अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त करना ही शूरता है। दूसरों पर विजय प्राप्त कर लेना हीं शूरता नहीं है। सर्वत्र परमात्म तत्व का दर्शन करना ही वास्तविक सत्य है। सत्य भाषण को ही सत्य नहीं कहते। मधुर तथा सत्य भाषण को ही ज्ञानी जन 'ऋतु' कहते हैं कटु भाषण को ही केवल ऋतु नहीं कहतेहैं। कर्मों में आसक्ति न रखना ही सच्चा शौच है केवल नहाने धोने को ही शौच नहीं कहते हैं। कामनाओंके त्यागने को ही सन्यास कहतेहैं। केवल घरबार को त्यागना ही सन्यास नहीं है। हाथी घोड़े, रत्न आदि वास्तविक धन नहीं है। धर्मही अभीष्ट धनहै मैं परमेश्वरही वास्तविक यज्ञहूँ। यह हवन सामिग्री आदि एकत्र करके यज्ञ करना यज्ञ नहीं है ज्ञान के उपदेश देने को ही सच्ची दक्षिणा कहते हैं। धन देने का नाम ही दक्षिणा नहीं है। सांसारिक भाई बन्धु ही बन्धु नहीं हैं। केवल गुरू रूप में ही सच्चा भाई बन्धु हूँ। ईंट पत्थर से बने हुए घर ही को घर नहीं कहते। सच्चा घर तो यह शरीर है। जिसमें जीव रहता है। गुणवान को सच्चा धनी कहते हैं धन वाला धनी नहीं होता है। निर्धन को दरिद्र नहीं कहते सच्चा दरिद्री तो वह है जिसके चित्त में सन्तोष तथा दूसरों के प्रति प्रेम दयाभाव आदि नहीं है। दीन ही कृपण नहीं होता है। कृपण तो वह है जो इन्द्रिय लोलुप हैं उनकी तृप्ति के लिए मारा मारा फिरता है। राजा हो स्वतन्त्र तथा ईश्वर नहीं होता। ईश्वर तो वह है जिसकी चित्तवृत्ति विषयोंमें आसक्त नहीं होती है जिसकी विषयों में आसक्ति है वही निर्बल है। कमजोर को निर्बल नहीं कहते हैं। हे उद्धवजी ! तुमने जो पूछा था उसका उत्तर यथा योग्य मैंने दिया। ये गुण दोष मोक्ष प्राप्ति के लिए अति उत्तम हैं। हे उद्धव ! तुमको गुण दोष कहाँ तक गिनाऊँ सबका मूल साराँश तो यह है कि गुणों और दोषों पर दृष्टि डालना ही सबसे बड़ा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दोष है। इसलिए गुण दोषों पर कोई विचार करना ही सब से बड़ा गुण माना गया है।

॥ बीसवाँ अध्याय ॥

ज्ञान योग, कर्म योग तथा भक्ति योग का वर्णन

उद्धव जी बोले–हे अरिसूदन ! आप सर्व शक्तिमान परमात्मा हैं। आप ही के बचन वेद हैं। उन वेदों में आपने कुछ कर्मों का करना विधि बताया है तथा कुछ कर्मों के करने को निषेध कहा है। इन विधि निषेध कर्मों के गुण तथा दोषों की प्रतीति परीक्षा करने से ही हो सकती है। वर्णाश्रम के भेद, उत्तम कर्म तथा निषेध कर्मों के योग्य द्रव्य, देश आयु काल, तथा स्वर्ग, नर्क के भेदों का ज्ञान वेदों से ही हमको प्राप्त होता है। हे परमात्मन्! आपकी वाणी से ही वेद उत्पन्न हुये हैं, किन्तु उन में विधि तथा निषेध भरा हुआ है। विधि अर्थात् करने योग्य कर्म, निषेध अर्थात् न करने योग्य कर्मों का ज्ञान होता है। उन वेदों से ही पितृ, देवता तथा मनुष्य के लिए उत्तम मार्ग प्रदर्शन होता है। साध्य साधन आदि का निर्णय भी उन्हीं वेदों से होता है। मुझे आश्चर्य इस बात में है कि एक स्थान पर तो कर्म करना उत्तम माना गया है। दूसरे स्थान पर कर्म करना निषेध माना गया है। इस विरोधी भाव से मेरे मन में बड़ा भ्रम उत्पन्न हो रहा है। अतः कृपा करके मेरे उस भ्रम को दूर कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले–हे मेरे प्यारे उद्धव ! मैंने ही वेदों में तथा अन्य शास्त्रों में मनुष्यों के कल्याण हेतु योग्य अधिकारियों के अनुसार तीन प्रकार के योगों का उपदेश किया है वे तीन योग ज्ञान-योग, कर्म–योग तथा भक्ति योग हैं। मनुष्य के कल्याण के लिए इन तीनों योगों के अतिरिक्त और कोई भी उत्तम उपाय नहीं है। हे उद्धव ! जो मनुष्य कर्म तथा उनके फलों से विरक्त हो गये हैं तथा उनकी आसक्ति बिल्कुल मिट चुकी है वे ही ज्ञान योग के अधिकारी कहे गये हैं। तथा जिन मनुष्यों का चित्त कर्म तथा उनके फलों से विरक्त नहीं हुआ है वे सकाम कर्म योग के अधिकारी कहे गये हैं जो मनुष्य न अधिक विरक्त

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by

है और न कर्मों तथा उनके फलों में अधिक आसक्त ही हैं किन्तु पूर्व जन्म के उत्तम कर्मों के अनुसार मेरे में श्रद्धा तथा भक्ति रखते हैं मेरी कथा आदि से प्रेम करते हैं वे भक्ति योग के अधिकारी हैं। मनुष्य को विधि–निषेध के अनुसार तभी तक कर्म करना चाहिये। जब तक इस कर्म मय जगत् तथा उससे उपलब्ध होने वाले स्वर्ग आदि के भोगों से वैराग्य प्राप्त नहीं हुआ है या जब तक मेरी कथा लीला, श्रवण, कीर्तन आदि में उस साधक की श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है। उस साधक को चाहिये कि अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुसार धर्म में रत रह कर बिना आशा तथा फल की कामना के यज्ञों द्वारा मेरी आराधना करता रहे। निषिद्ध कर्मों को त्याग कर वेद विदित कर्मों को ही करता रहे। तब उसे स्वर्ग तथा नर्क में नहीं जाना पड़ता है। अपने धर्म में रत रहने वाला कर्म योगी पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विशुद्ध ज्ञान तथा भक्ति को प्राप्त कर लेता है। केवल कर्मों का उपयोग अपने अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये ही होता है। अतः करम शुद्ध होने पर ज्ञान तथा भक्ति तो स्वयं भगवान् ही देते हैं। इस कर्मयोगी को मनुष्य का शरीर प्राप्त करना अति दुर्लभ है। इसके लिये स्वर्ग में निवास करने वाले देवता भी तरसते हैं क्यों कि इस मनुष्य शरीर में ही अन्तःकरण के शुद्ध होने पर भक्ति या ज्ञान की प्राप्ति होती है। स्वर्ग तथा नरक को भोगने वाला शरीर इन साधनों को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को स्वर्ग तथा नरक की इच्छा नहीं करनी चाहिये और न इस मनुष्य शरीर की ही इच्छा करनी चाहिये क्यों कि इन तीनों शरीरों में से किसी में भी अभिमान प्राप्त होने पर परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को भूलने की आशङ्का रहती है। हे उद्धव ! यह मनुष्य शरीर काल के गाल में जाने वाला होने पर भी परमार्थ वादी है। इस शरीर से परमात्मा की प्राप्ति होती है इसलिये बुद्धिमान पुरुष मृत्यु होने से पहले ही सावधान होकर ऐसा उत्तम साधन करे जिससे फिर वह जन्म मृत्यु के चक्कर में न पड़ कर सदा के लिये मुक्त हो जावे।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हे प्यारे उद्धव जी ! योगीजन वैसे तो कोई निषेध कर्म करते ही नहीं हैं, यदि प्रमाद वश कोई निन्दित कर्म हो जावे तो उसके पापको योग द्वारा ही भस्म कर देना चाहिये। योगी के लिए कृच्छ चन्द्रायण आदि व्रतों द्वारा प्रायश्चित करने की आवश्यकता नहीं है। ये व्रत आदि तो कर्म काण्डियों के लिये होते हैं योगी के लिए नहीं। वेदों में विधि निषेध कर्मों का जो निरूपण किया है उसका अर्थ उनमें गुण दोष निकालने का नहीं है। उनका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जो कर्म करे वह उन वेद विदित कर्मों को आसक्ति त्याग कर करे। क्यों कि कर्म स्वभाव से ही अशुद्ध होते हैं। उनकी फल प्राप्ति से स्वर्गादि, नरकादि, नाशवान असत् वस्तु की प्राप्ति होती है। मेरी प्राप्ति तो तभी होती है जब वह उन कर्मों से विरक्त हो गया हो और उन कर्मों को दुःख मय समझता हो वह यह समझता हो कि यह सभी भोग तथा वासनायें दुखदाई हैं। किन्तु ऐसा सब कुछ जानते हुए भी जो उन भोगों को त्यागने में असमर्थ है और उसकी इच्छा उन भोगों को भोगने में लगी है। तो ऐसे पुरुष को चाहिये कि उन भोगों को तो भोगता रहे किन्तु उनमें सच्ची आसक्ति न रक्खे उन्हें दुःख रूप समझ कर उनकी निन्दा करता रहे, और साथ ही साथ मेरा भजन करता रहे। इस प्रकार मेरी भक्ति के द्वारा निरन्तर भजन करते रहने से उस साधक के हृदय में मैं स्वयं विराजमान हो जाता हूँ, और हृदय में मेरे विराजते ही उसकी सब वासनाये नष्ट हो जाती हैं। उसके हृदय की गाँठ खुल जाती है, उसकी विषय वासनायें नष्ट हो जाती हैं उसके सब संशय दूर हो जाते हैं। और मुझ सर्वात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार भक्ति योग द्वारा मेरे चिन्तन करने वाले साधक को ज्ञान तथा वैराग्य की आवश्यकता नहीं होती है। ज्ञान, वैराग्य, योगाभ्यास कर्म, तपस्या, दान तथा धर्म आदि जितने भी साधन हैं उन सबों का फल मेरे भक्त को मेरी भक्ति के द्वारा अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। मेरा भक्त स्वर्ग आदि की कभी कामना नहीं करता है। वह मुझे छोड़ कर कैवल्य—मोक्ष को भी नहीं चाहता है। इसलिए निष्काम

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भाव से काम करना ही मेरी भक्ति प्राप्त करना है। विधि निषेध तथा गुण दोषों का निरूपण करना तो कर्म करने वालों के लिए है। मेरे अनन्य प्रेमी भक्तों के लिए विधि निषेध तथा गुण दोनों से उत्पन्न होने वाले पुण्य तथा पापों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार जो मेरे बनाए हुए ज्ञानयोग भक्ति योग तथा कर्म योग इन तीनों मार्गों का आश्रम लेता है वह मेरे परम पद को प्राप्त हो कर परम ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है।

॥ इक्कीसवाँ अध्याय ॥

गुण दोष व्यवस्था से स्वरूप तथा रहस्य का निरूपण करना।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! मेरी प्राप्ति के लिए १-भक्ति योग २-ज्ञानयोग ३-कर्म योग ये तीन ही मार्ग मैंने वेदों में प्रति पादित किये हैं। जो इन तीनों मार्गों को त्याग कर चंचल इन्द्रियों के द्वारा तुच्छ भोगों को भोगते रहते हैं। वे सदा जन्म मृत्यु के चक्कर में पड़े रहते हैं। अपने अपने कार्य के अनुसार धर्म कार्यों में दृढ़ निश्चय रखना गुण में तथा इसके विरुद्ध अनाधिकार कर्म करना ही दोष माना गया है। इसका अर्थ यह है कि अपने अपने अधिकारों के अनुसार ही गुण तथा दोषों की व्यवस्था की गई है। प्रकृत्ति की दृष्टि में सभी वस्तु समान हैं। किसी को उस वस्तु का करना गुण है तथा किसी को उस वस्तु का करना दोष है। यह सब अधिकार के अनुसार ही गुण दोषों का निरूपण वेदों में किया गया है। इन गुण, दोष तथा शुभ अशुभ विधानों के निरूपण करने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य उन गुण दोषों के द्वारा वस्तु के वास्तविक स्वरूप को समझकर करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मों का ज्ञान प्राप्त करले। उनके द्वारा धर्म करे तथा समाज की व्यवस्था ठीक २ रूप से चला सके इससे दूसरा लाभ यह भी है कि अपनी वासनाओं को जागृत करने वाले कर्मों के जाल में न फँसे और शास्त्रानुकूल कर्मों को करके अपने मन को वश में कर सके और अपने को नियन्त्रित रक्खे इन सब आचार विचारों का प्रतिपादन मनु आदि के द्वारा मैंने ही उन पुरुषों के लिये किया है जो कर्मकान्डी तथा धर्म के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

लिये ही कर्म करना उत्तम समझते हैं। ये पंचभूत पृथ्वी, जल, अग्नि वायु तथा आकाश ब्रह्मा से लेकर वृक्ष आदि तक सभी प्राणियों के शरीरों के बनाने वाले हैं। इन्हीं पाँचों तत्वों से शरीर का निर्माण होता है। इसीलिये वे सब शरीरों के लिए समान हैं। सब की आत्मा भी एक होने से सबके लिए समान हैं।

हे प्यारे उद्धव! सब शरीरों के लिए पाँचों भूत समान होने पर भी वेदों ने वर्णाश्रम के अनुसार इनके अलग अलग रूप तथा नाम इस कारण बना दिये हैं कि वे अपनी वासनाओं को नियन्त्रित करने वाली प्रवृत्ति को नियन्त्रित तथा संकुचित कर के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि को प्राप्त कर सकें। इनके अतिरिक्त देश काल, फल, कारण अधिकारी तथा अन्न आदि वस्तुओं में भी मेरे गुण द्वारा गुण दोषों का निरूपण किया गया है। यह सब इस कारण से किया गया है कि मनुष्यों की प्रवृत्ति अभिमान वश उच्छृंखल न हो जावे तथा मर्यादा का नाश न होने पावे। हर एक नियम का इस लिये निरूपण किया गया है कि मनुष्य, पशु, पक्षी सभी उन नियमों के आधार पर चल कर मर्यादा को भङ्ग न कर सकें।

॥ बाईसवाँ अध्याय ॥

तत्वों की संख्या तथा पुरुष प्रकृति विवेचन—

दो०—तत्व निरूपण के सहित, प्रकृति पुरुष को ज्ञान।
उद्धवको प्रभुने दियौ, समुझि भक्ति मनि मान॥

उद्धव जी बोले—हे परमात्मन्! तत्ववेत्ता ऋषियों ने तत्वों की संख्या अनेक प्रकार से बतलाई है किसी ने छब्बीस तत्व बताये हैं। कोई पच्चीस तत्व बताता है कोई सात तत्व कोई नौ तत्व कोई छः तत्व बतलाते हैं। कोई चार तथा ग्यारह तत्व बताते हैं तो कोई सत्तरह तत्व बताते हैं किसी के मत से सोलह तत्व हैं तथा किसी के मत से तेरह तत्व हैं। किन्तु आपने नौ, ग्यारह, पाँच तथा तीन कुल मिला कर अट्ठाईस तत्वों का निरूपण किया है। इन तत्वों की इतनी भिन्न भिन्न संख्यायें किस अर्थ से बताई जाती हैं। कृपा कर मुझे बताइए।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले हे उद्धव! तत्ववेत्ता ऋषियों ने तत्व के विषय में जो कुछ भी कहा है वह ठीक ही हैं। क्योंकि हर एक तत्व एक दूसरे के अन्तरभूत है। जैसा तुम कह रहे हो वह ठीक नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है वही सत्य है। १–हे प्यारे उद्धव ! जो तत्ववेत्ता तत्वों की संख्या छब्बीस स्वीकार करते हैं वे प्रकृति के कार्य कारण रूप चौबीस तत्वों को मानकर पच्चीस वाँ तत्व पुरुष आत्मा तथा छब्बीसवाँ तत्व ईश्वर को मानते हैं। इस प्रकार छब्बीस तत्व हुए। २–जो तत्वों की संख्या २५ मानते हैं वे प्रकृति, कार्य कारणरूप २४ तत्वों को मानकर २५ वाँ तत्व आत्मा और परमात्मा को एक मानते हैं ज्ञान के विषय में कुछ तत्व वेत्ता यह कहते हैं कि ज्ञान भगवान् की कृपा से प्राप्त होने के कारण भगवत् तत्व में ही सम्मिलित है किंतु यह बात नहीं है ज्ञान प्रकृति का ही तत्वमय रूप है ईश्वर का नहीं। तीनों गुणों का मिलाप ही प्रकृति कहलाता है। इसलिए सत्व, रज, तम आदि तीनों गुण आत्मा के नहीं हैं प्रकृति के हीं उत्पत्ति कर्त्ता हैं। इन्हीं गुणों के द्वारा जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होती है। इसलिये सिद्ध हुआ कि ज्ञान आत्मा का गुण नहीं है प्रकृति का ही गुण हें। सत्व गुण का नाम ज्ञान, रजोगुण का नाम कर्म तथा तमोगुण का नाम ही अज्ञान है। इसलिये ज्ञान, अज्ञान तथा कर्मबन्धन ये तीनों प्रकृति के ही अन्तर्गत हैं। यदि प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करने वाले काल को तथा उस प्रकृति के क्षुब्ध हुए रूप को दूसरा तत्व मानें तो यह भी सत्य नहीं है। क्योंकि सत्व, रज, तम गुणों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला ईश्वर है। तथा प्रकृति का क्षुब्ध रूप मह तत्व है। इस तरह से तत्वों की छब्बीस और पच्चीस दोनों संख्यायें ही ठीक मानी गई हैं।

३–हे उद्धव जी ! यदि तीनों गुणों को प्रकृति से अलग मानते हैं तो प्रकृति के कार्य कारण रूप चौबीस तत्व एक ईश्वर तथा तीन गुण इस प्रकार तत्वों की स'ख्या अट्ठाईस हो जाती है। वे अट्ठाईस तत्व इस प्रकार हैं पुरुष, प्रकृति, महतत्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी ये नौ तत्व हुए।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्रोत, त्वचा, चक्षु, नासिका, तथा जिह्वा ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ हुईं। मुख, हाथ, पैर लिङ्ग गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हुईं तथा मन इस प्रकार कुल ग्यारह इन्द्रियाँ हुईं। तथा ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय शब्द, स्पर्श रूप, रस तथा गन्ध पाँच हुए। सत्व, रज, तम तीन गुण हुए। इस प्रकार सब तत्व मिला कर तत्वों की संख्या २८ हुई। कर्मेन्द्रियों के विषय तत्वों में नहीं माने जाते। सृष्टि के आदि में ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच भूत कार्य रूप में और उन से उत्पन्न होने वाला यह तत्व आदि कारण के रूप में प्रकृति रहती है। वे ही प्रकृति के कार्य तथा कारण दोनों रूप सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण की सहायता से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार होते रहते हैं। परमात्मा तो प्रकृति और उसकी बदलने वाली अवस्थाओं को केवल देखता रहता है और उन का साक्षी मात्र है। ये महतत्व आदि सभी कारण तत्व उस परमात्मा से शक्ति प्राप्त करके स्वयं विकृति होते रहते हैं और प्राकृतिक सहारा लेकर एक दूसरे के मेल से इस ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं।

४—हे उद्धव जी ! जो तत्व वेत्ता तत्वों की संख्या सात मानते हैं उनके विचार से आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी पञ्च भूत, छटवाँ जीव तथा सातवाँ परमात्मा इस प्रकार सात तत्व मानते हैं।

५—छः तत्व मानने वाले तत्ववेत्ता मानते हैं—कि देह इन्द्रिय तथा प्राण आदि पञ्च भूतों में ही सम्मिलित हैं। इस लिये केवल परम पुरुष परमात्मा छटवाँ तत्व है। इस प्रकार उन के मत से छः तत्व हुए। जीवात्मा और परमात्मा को एक ही तत्व मानते हैं। उनके मत से परमात्मा ही जीवात्मा रूप से शरीर में प्रवेश करता है इस प्रकार जीवात्मा को परमात्मा में तथा शरीर आदि को पञ्च भूतों में मिला देते हैं।

६—जो तत्व वेत्ता चार तत्व स्वीकार करते हैं वे परमात्मा से तेज, जल तथा पृथ्वी को स्वीकार करते हैं तथा सम्पूर्ण जगत की आत्मा, तेज, जल तथा पृथ्वी से ही उत्पन्न कहते हैं।

७—जो तत्ववेत्ता तत्वों की संख्या १७ बतलाते हैं वे इस प्रकार कहते हैं पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन तथा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

एक आत्मा इस प्रकार १७ तत्व स्वीकार करते हैं।

८—जो तत्वों को संख्या १६ स्वीकार करते हैं वे केवल इतना भेद मानते हैं कि आत्मा में मन को मिला देते हैं अर्थात् आत्मा और मन को एक मानते हैं इस प्रकार सोलह तत्वों का निरूपण करते हैं।

९—जो तत्ववेत्ता १३ तत्व स्वीकार करते हैं वे पाँच भूत पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एक मन एक जीवात्मा तथा एक परमात्मा तत्व को मिला कर तेरह तत्व स्वीकार करते हैं।

१०—जो तत्व वेत्ता ग्यारह तत्व मानते हैं वे पाँच भूत,पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एक आत्मा को स्वीकार करते हैं।

११—जो तत्व वेत्ता नौ तत्व स्वीकार करते हैं वे पाँच भूत, एक मन बुद्धि अहंकार तथा आत्म तत्व को स्वीकार करते हैं। प्यारे उद्धव! ये सभी तत्व वेत्ता अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार तत्वों की संख्या स्वीकार करते हैं उन तत्व ज्ञानियों के लिए वह सब ठीक ही है।

उद्धव जी बोले—हे मधुसूदन! यह प्रकृति तथा पुरुष (परमात्मा) दोनों एक दूसरे से बिल्कुल अलग है किंतु फिर भी परस्पर ऐसे घुले मिले हैं कि उसमें कोई भेद नहीं मालूम पड़ता है। प्रकृति तथा पुरुष दोनों अभिन्न से ही मालुम पड़ते हैं इनकी भिन्नता (अलग अलग होना) किस प्रकार सिद्ध हो सकती है। मेरी शङ्का को आप अवश्य दूर कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! प्रकृति तथा पुरुष और शरीर तथा आत्मा इन दोनों में बहुत भेदहै क्योंकि प्रकृति विकारवान होने से नाशवान है। इस में जन्म मरण तथा वृद्धि, ह्रास आदि होते रहते हैं। क्योंकि यह गुणों के क्षोभ से ही बनी हुई है। गुणोंके घटने बढ़ने से यह भी घटती बढ़ती तथा नाश होती रहती है किन्तु पुरुष ऐसा नहीं है, न उसका जन्म मरण है और न उसका घटना बढ़ना है। इस विकारात्मक सृष्टि को तीन भागों में बाँटते हैं—

१—आध्यात्म अर्थात् कारण २—अधिदैव अर्थात् कर्त्ता ३—अधिभूत अर्थात् कार्य। उदाहरण के लिए नेत्रेन्द्रिय को लेते हैं। नेत्रेन्द्रिय अर्थात् नेत्र गोलक आध्यात्म है अर्थात् कारण है उसका विषय रूप देखना

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

अधिभूत अर्थात् कार्य है नेत्र गोलक में प्रकाश रूप से सूर्य देवता अधिदैव अर्थात् कर्त्ता है। जब सूर्य का प्रकाश होता है तभी नेत्र देख सकते हैं इसी भाँति ये तीनों कारण कार्य तथा कर्त्ता एक दूसरे से मिले हुए हैं। किन्तु आकाश में स्थिति रहने वाला सूर्य स्वयं प्रकाशित तथा स्वतः सिद्ध है। इसी भाँति आत्मा भी उपरोक्त तीन भेदों का मूल कारण उनका साक्षी तथा उन के परे है उसी आत्मा के द्वारा सब का प्रकाश होता है सब प्रकाशित होते हैं। जिस भाँति नेत्रों के तीन भेद कहे हैं उसी प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन के तीन भेद हैं। जैसे त्वचा के त्वचा, स्पर्श तथा वायु। श्रवण के श्रवण, शब्द तथा दिशा। जिह्वा के जिह्वा, रस तथा वरुण नासिका के-नासिका, गन्ध तथा अश्विनी कुमार। चित्त के चित्त, चिंतन का विषय तथा वासुदेव। मन के मन, मन का विषय तथा चन्द्रमा। अहङ्कार के अहङ्कार, अहङ्कार का विषय तथा रुद्र। बुद्धि के बुद्धि समझने का विषय तथा ब्रह्मा। ये सभी तीन तीन तत्व, कारण, कार्य तथा कर्त्ता के रूप में रहते हैं। इनका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रकृति से महतत्व और महतत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है। इस अहङ्कार के तीन भेद हैं सात्विक, राजस तथा तामस। यह अहङ्कार ही अज्ञान तथा अनेक प्रकार की सृष्टि रचने का कारण है। आत्मा ज्ञान स्वरूप होने के कारण इन सब पदार्थों से अलग है। सगुण निर्गुण अस्ति, नास्ति, सत्य, मिथ्या आदि जितने बाद-विवाद हैं ये सब न समझने के भेद हैं।

उद्धव जी बोले हे भगवन्! यह व्यापक आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। यह अकर्त्ता होते हुए भी कर्म करता है। जो नित्य है वह भी जन्म मरण में पड़ता है। इसे मुझे समझा कर कहिये इसका क्या कारण है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे प्यारे उद्धव! यह मन कर्म संस्कारों का समूह है। उन संस्कारों के अनुसार भोग भोगने के लिये उस मन के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भी लगी हुई हैं। इसी को लिङ्ग शरीर कहते हैं। यह शरीर आत्मा के साथ सदा रहता है और एक शरीर से दूसरे शरीर में

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तथा एक लोक से दूसरे लोक में आता जाता है। वह आत्मा इस लिङ्ग शरीर से ही पृथक है जब वह अहङ्कार वश लिङ्ग शरीर को ही अपना समझ लेता है तब वह भी आता जाता रहता है। मन शुभ अशुभ कर्म करता रहता है। वह अनेकों कर्म करता रहता है और सदा उन्हीं के चिन्तन में लगा रहता है। किन्हीं कर्मों को त्यागता तथा किन्हीं को करता है। जब वह इन विषयों में इतना लीन हो जाता है तब जीव को पहली स्मृति बिल्कुल नहीं रहती है। वह उन विषयों में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे अपने शरीर का भी स्मरण नहीं रहता है, और वह अपने शरीर को बिल्कुल भूल जाता है उसी को मृत्यु कहते हैं। जिस प्रकार एक शरीर को बिल्कुल भूल जाने का नाम मृत्यु है उसी प्रकार किसी शरीर में मन ही मन प्रविष्ट कर जाने का नाम जन्म है। उसी को जीव का जन्म कहते हैं । वास्तव में जीव का जन्म मरण कभी नहीं होता है। जिस प्रकार स्वप्न में अपने जागृत शरीर की स्मृति नहीं रहती है और मनुष्य स्वप्न में अपने पूर्व शरीर को बिल्कुल भूल जाता है उसी प्रकार जीव भी जब अपने शरीर की गाढ़ स्मृति भूल जाता है तो उसे मृत्यु तथा जब घनिष्ट तल्लीनता से दूसरे शरीर की स्मृति करता है उसे ही जन्म कहते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव की स्वप्न की अवस्था को मृत्यु तथा जागृत अवस्था को जन्म कहते हैं इसी भाँति समस्त प्राणियों की अवस्था कालान्तर के भेद से निरन्तर बदलती रहती है। हे उद्धव जी! गर्भाधान, गर्भ बृद्धि, जन्म, बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था, अधेड़ावस्था, बुढ़ापा तथा मृत्यु ये नौ अवस्थायें शरीर की ही होती हैं। जीव की कभी यह अवस्थायें नहीं होती किन्तु जीव अज्ञान वश गुणों के प्रभाव से इन अवस्थाओं को अपनी मान कर इस संसार में भटकने लगता है। जब उसे ज्ञान हो जाता है तब उन्हें छोड़ भी देता है यह जीवात्मा इन सभी अवस्थाओं से परे है। ज्ञानी पुरुष इस प्रकृति तथा शरीर से आत्मा को भिन्न मानते हैं किन्तु अज्ञानी ऐसा नहीं करते वे विषय भोगों में मोहित रहते हैं। इसी कारण उन्हें जन्म मृत्यु के चक्कर में भटकना पड़ता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

॥ तेईसवाँ अध्याय ॥

एक तितुच्च ब्राह्मण की कथा।

दोहा–तितुच्च ब्राह्मण की कथा, कही कृष्ण समझाय।
उद्धव जी सुनने लगे, प्रभु को शीश झुकाय॥

प्राचीन काल में उज्जयनी में एक ब्राह्मण रहता था उस ने कृषि व्यापार आदि से बहुत सा धन एकत्र कर लिया था वह बड़ा कृपणी तथा लोभी था। उसने कभी जाति बन्धु तथा अतिथियों को भोजन देने की तो बात दूर रही मीठे बचन से भी आदर नहीं किया था। उस सम्पत्ति को न तो स्वयं भोगता था और न कुटुम्बियों को ही भोगने देता था। उसके इस व्यवहार से सभी स्त्री, पुत्र, वन्धु, नौकर, चाकर सभी दुःखी थे। वह यक्षों की भाँति केवल धन की रखवाली किये रहता था, उसने न कभी धर्म किया और न कोई भोग ही भोगा। कुछ काल पश्चात् उसका सारा धन नष्ट हो गया और कुछ धन कुटुम्बियों ने छीन लिया, कुछ चोर ले गये, कुछ दैवी प्रकोप से आग में नष्ट हो गया। उसके धन नष्ट होने पर उसके सगे सम्बन्धियों ने उसको त्याग दिया। अब उस ब्राह्मण को बड़ा दुःख और चिन्ता हुई। अपने स्त्री पुत्र आदि के दुर्व्यवहार से दुःखी होकर उस धन हीन ब्राह्मण को वैराग्य उत्पन्न हो गया। अब ब्राह्मण बोला–हाय! मुझ समान दुष्ट कौन होगा? जिसने धन को न धर्म कार्य में लगाया और न भोग ही भोगे। यह सच है कि कृपण मनुष्यों के धन से कभी सुख नहीं प्राप्त होता इस लोक में धन कमाने की चिन्ता दुःख देती है और परलोक में धर्म न करने के कारण नर्क प्राप्त होता है। जैसे कोढ़, सर्वाङ्ग शरीर को भद्दा कर देता है उसी प्रकार लोभ बुद्धि, यश तथा गुणों को नष्ट कर देता है लोभी मनुष्य धन कमाने, उसे बढ़ाने, रखने तथा खर्च करने आदि में निरन्तर चिन्तित रहता है। इस प्रकार वह ब्राह्मण दुःखी होकर घर से निकल पड़ा और भिक्षा माँग कर अपना जीवन निर्वाह करने लगा। उसने समस्त वस्तुओं से आसक्ति त्याग दी और मन,

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

इन्द्रिय तथा प्राणों को वश में कर के स्वच्छन्द रूप से पृथ्वी पर विचरने लगा। वह भिक्षा के लिये नगर में जाता था भिक्षुक अवधूत अत्यन्त बूढ़ा हो गया था। दुर्जन लोग उसे देखते ही उसे मारने पीटने तथा तङ्ग करने लगते थे। कोई उसका डण्डा छीन ले जाता तो कोई कमण्डल, कोई भिक्षा पात्र छीन लेता तो कोई आसन,रुद्राक्ष माला, लँगोटी, काथरी आदि ही लेकर भाग जाता और उसे दिखा दिखा कर चिढ़ाने लगते थे। जब वह मधुकरी माँग कर लाता और भोजन के लिए जब वह नदी किनारे बैठता था तब वे दुष्ट लोग उसकी मधुकरी छीन ले जाते थे। उस पर पेशाब कर देते तथा थूक देते थे। किन्तु वह अवधूत प्रारब्ध का भोग समझ कर उन से कुछ नहीं कहता और मौन रह कर सह लेता था। तब वह ब्राह्मण कहता—मेरे सुख तथा दुःख का कारण न ये मनुष्य हैं न देवता हैं न मेरा शरीर और न यह गृह आदि हैं केवल इन दुःखों का कारण वेद की श्रुतियाँ तथा महात्मा लोग मन को ही बताते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! उस ब्राह्मण के धन नष्ट होने के साथ ही साथ उसके सारे कष्ट भी नष्ट हो गये। सन्यास लेकर स्वच्छन्द पृथ्वी पर विचरने लगा। वह मौनी अवधूत मन ही मन यह गीत गाता था। इस जगत में कोई किसी को दुःख सुख नहीं देता है वह तो केवल उसके चित्त का भ्रम है तथा मित्र शत्रु दुःखसुख सब अज्ञान के कारण ही प्रतीत होते हैं। इसलिये हे उद्धव! अपनी सम्पूर्ण वृत्तियों को मुझ में तन्मय कर के और मन को वश में कर के मुझ में ही लीन हो जाओ। बस सम्पूर्ण योग साधना का यही तत्व है। वह भिक्षुक यही गीत गाता था। गीत क्या था ब्रह्म ज्ञान ही था। जो इसे सुनता तथा स्वीकार करता है वह दुःख सुखों में कभी नहीं फँसता है और उन्हें अनायास ही पार कर जाता है।

॥ चौबीसवाँ अध्याय ॥

सांख्य योग का वर्णन

दोहा—सांख्य योग उपदेश प्रभु, दीनों उद्धवराय।
मुनि के मन शीतल भयो, हृदय गयो हरषाय॥

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding by IKS-MoE

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—हे प्यारे उद्धव ! अब मैं तुम्हें सांख्य योग का उपदेश देता हूँ। प्राचीन काल में बड़े बड़े ऋषि महर्षियों ने यही निश्चय किया है कि जीव जब इस साँख्ययोग को भली प्रकार जान लेता है तब उसकी भेद बुद्धि मिट जाती है और वह मुक्त होजाता है। प्रलयकाल में केवल अद्वितीय तथा भेद रहित ब्रह्म ही था। वही ज्ञान स्वरूप था। उस समय दृष्टा अर्थात् पुरुष दृश्य अर्थात् प्रकृति का कोई भेद न था। सत युग में भी ज्ञानियों का ऐसा ही विचार रहा। विवेकी तथा भेद बुद्धि शून्य मनुष्यों का ब्रह्म के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार रहता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रह्म अद्वितीय, सत्य तथा विकल्प है और मन तथा वाणी से परे है। वह ब्रह्म ही अपनी माया तथा उसमें प्रतिबिम्बित होने वाला जीव के रूप में दो भेदों में बट गया। एक दृष्टि अर्थात् प्रकृति और दूसरा दृष्टा अर्थात ज्ञान स्वरूप पुरुष कहलाने लगा। हे प्यारे उद्धव जी ! जीवों के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार मैंने ही प्रकृति को क्षोभित किया और उससे सत, रज तम तीनगुण उत्पन्न किये। उन तीनों गुणों से शक्ति प्रधान सूत्र ज्ञान, शक्ति प्रधान महतत्व उत्पन्न हुआ। वे दोनों आपस में मिले हुए रहते हैं जब महतत्व में विकार उत्पन्न हुआ तब अहङ्कार की सृष्टि हुई। वह अहङ्कार भी सात्विक, राजस तथा तामस तीन प्रकार का है, जो जीवों को मोह में डालता रहता है। अहङ्कार से पंचतन्मात्रा इन्द्रिय तथा मन उत्पन्न हुआ। सात्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता ग्यारह देवता उत्पन्न हुये। राजस अहङ्कार से मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। राजस अहङ्कार से पंच तन्मात्रायें और पंचभूत उत्पन्न हुये। तथा ये सब पदार्थ मेरी प्रेरणा से आपस में मिल कर एक हो गये तब इन से ब्रह्माण्ड रूप एक अण्ड की उत्पत्ति हुई। यह अण्ड ही मेरा निवास स्थान है। यह ब्रह्माण्ड रूप अण्ड जल में स्थिर हो गया। तब मैं इस नारायण रूप से विराजमान हुआ। नार यानी जल तथा अयण याने स्थान मेरा जल में स्थान होने के कारण ही मुझे नारायण कहते हैं। तब मेरी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ और

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उस से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा ने घोर तपस्या की तब मेरी कृपा से रजोगुण के द्वारा 'भूः' अर्थात् पृथ्वी भुवः अर्थात् अन्तरिक्ष स्वः अर्थात् स्वर्गलोक इस तीनों लोकों की रचना की। मनुष्य, राक्षस आदि के लिये पृथ्वी लोक, भूत प्रेतादि के लिये अन्तरिक्ष तथा देवताओं के निवास स्थान के लिए स्वर्ग लोक निश्चय किया। इन तीनों लोकों से ऊपर महः लोक जन लोक तथा तपः लोक, जिनमें सिद्ध लोग निवास करते हैं। इनसे ऊपर सत्य लोक है जिसमें ब्रह्मा जी निवास करते हैं। इन लोकों के अतिरिक्त पृथ्वी के नीचे भी सात लोकों की सृष्टि की गई है। अतल, बितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल तथा पाताल इन लोकों में नाग तथा राक्षस लोग रहते हैं। अपने २ कर्मों के अनुसार प्राणी इन तीन लोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग में अनेक प्रकार की गतियाँ प्राप्त करते हैं। योग, तपस्या तथा सन्यास के द्वारा ऊपर के चार लोकों को भोगते हैं।

॥ पच्चीसवाँ अध्याय ॥

तीनों सत्व, रज, तम गुणों की वृत्तियों का वर्णन करना

दोहा—तीन तत्व वर्णन किये, श्रीकृष्ण यदुराय।
उद्धवजी हर्षित भये, सुने सभी चितलाय॥

भगवान् श्रीकृष्णजी बोले—हे प्यारे उद्धव! सभी व्यक्तियों में तीन गुणों का अलग अलग प्रकाश हो जाता है। उन गुणों के प्रकाश होने पर स्वभाव में भी वैसा ही परिवर्तन हो जाता। मैं तुम्हें यह बताऊँगा कि किस गुण के प्रभाव से कैसा स्वभाव हो जाता है। उसे ध्यानपूर्वक सुनो! सत्व गुण के उदय होने से शम, दम, तितिक्षा, विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, श्रद्धा, लज्जा, दान, विनय तथा सरलता आदि चित्त की वृत्तियों से उत्पन्न हो जाते हैं। रजोगुण के उत्पन्न होने पर चित्त वृत्तियाँ इच्छा, प्रयत्न, घमण्ड, तृष्णा ऐंठ, धन की इच्छा विषय भोग, कामना, प्रशंसा में प्रेम, हास्य आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

तमोगुण के उत्पन्न होने पर क्रोध, कृपणता, मिथ्या भाषण, हिंसा, कलह

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

शोक, मोह, निन्दा आदि चित्त की वृत्तियों में उत्पन्न हो जाते हैं। तीनों गुणों के मिश्रण से ही चित्त के चौथे प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती है। उसमें मैं मेरे पन का भाव विशेष उत्पन्न हो जाता है मैं हूँ, यह मेरा है, मैं कामी हूँ, मैं क्रोधी हूँ इस प्रकार का भाव तीनों गुणों के मिश्रण होने पर उत्पन्न होता है जब मनुष्य, अर्थ, धर्म, काम तीनों पुरुषार्थों में लीन रहता है तब सत्व गुण से श्रद्धा, रजोगुण से रति और तमोगुण से धन मिलता है। जब मनुष्य, सकाम भाव से कर्म करता है गृहस्थ आदि स्वधर्मों में अधिक प्रीति करता है तो उसे तीनों गुणों का मिश्रण समझना चाहिए।

मानसिक शान्ति तथा स्वधर्म में रत रहना, ईश्वर भक्ति करना आदि सतोगुणी पुरुष के लक्षण हैं। सकामभाव से काम करना रजोगुणी पुरुष के लक्षण हैं। क्रोध हिंसा आदि तमोगुणी पुरुष के लक्षण हैं। पुरुष हो अथवा स्त्री जो निष्काम भाव से मेरी आराधना करते हैं वे सतोगुणी हैं। जो सकाम भाव से मेरी पूजा करते हैं वे रजोगुणी हैं। शत्रु भाव से पूजा करते हैं वे तमोगुणी हैं। इन गुणों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल जीव का सम्बन्ध इन गुणों से है। वह जीव इन गुणों के कारण ही शरीर आदि में आसक्ति रखने के कारण बन्धन में पड़ जाता है। सत्य गुण के बढ़ने पर देवताओं की वृद्धि होती है रजोगुण की वृद्धि पर असुरों की वृद्धि होती हैं तथा तमोगुण के बढ़ने पर राक्षसों का बल बढ़ जाता है। इन तीन अवस्थाओं के अनुसार हो प्राणियों की भी तीन अवस्था है। सत्व गुण से जागृत अवस्था, रजोगुण के प्रभाव से स्वप्नावस्था तथा तमोगुण के प्रभावसे सुषुप्ति अवस्था, होती है चौथी अवस्था तुरीय अवस्था होती है। यह अवस्था तीनों में ही एक सी रहती है। वह शुद्ध एकरस, अवस्था है। ब्रह्म तथा वेदों के अभ्यास में रत रहने वाला ब्राह्मण ऊपर के लोकों को प्राप्त करता है। रजोगुण से मनुष्य शरीर प्राप्त होता है तथा तमोगुण से कीटक पशु पक्षी, वृक्ष आदि अधोगति प्राप्त होती है मृत्यु के समय जिस गुण की प्राप्ति होती है प्राणी उसी गति का अधिकारी होता है। यदि उस समय सत्वगुण की अधिकता है तो स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। रजोगुण का अधिकता से मनुष्य योनि प्राप्त होती है

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तथा तमोगुण की अधिकता से नरक प्राप्त होता है। जो प्राणी मृत्यु के समय निष्काम भाव से कर्मों को मुझे अर्पणकरके मरताहै वह जीवनमुक्तहोजाताहै।

॥ छब्बीसवाँ अध्याय ॥

पुरूरवा के वैराग्य का वर्णन करना

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे उद्धव ! केवल यह मनुष्य शरीर ही मुझे प्राप्त करने का मुख्य साधन है। इसी शरीर से मेरे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। इस मनुष्य शरीर को पाकर जो मनुष्य व्यर्थ में ही इसे गँवा देता है। और प्रेम से मेरी भक्ति नहीं करता है उसका मनुष्य शरीर प्राप्त करना वृथा है। और वह इस अनमोल सुअवसर को व्यर्थ में ही अपने हाथ से खोकर फिर अधोगतियों में चक्कर काटने लगता है। मैं मनुष्य के अन्तःकरण में ही विराजमान रहता हूँ। मैं कहीं दूर नहीं हूँ जीवों की सभी योनियाँ तथा गतियाँ त्रिगुण मयी हैं। ये तीनों गुण भी वास्तव में कुछ नहीं हैं। केवल जादू के खिलौने की भाँति मेरी माया है। ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् मनुष्य इनके बीच में रहने पर भी उन गुणों के द्वारा उत्पन्न कर्मों में बँधता नहीं है। मनुष्यों को यह चाहिये कि विषयी मनुष्यों का संग न करे। ये तो स्वयं ही अन्धे हैं। उन अन्धों का सहारा लेकर वह स्वयं भी अन्धा हो जाता है। हे उद्धव ! मैं तुम्हें सम्राट् पुरूरवा का इतिहास सुनाता हूँ। वह बड़ा यशस्व और वीर राजा था किन्तु उर्वशी के सङ्ग से उसका चित्त भोगों में इतना तल्लीन होगया कि जीवन भर उसके विरह में रोता रहा। उसे अपने जीवन के वर्षों का पता भी न चला उसका चित्त उर्वशी में इतना तन्मय होगया कि जब वह उसको त्याग कर जाने लगी तब वह नङ्गा धड़ङ्गा पागल की भाँति व्याकुल होकर उसके पीछे दौड़ने लगा। किन्तु उर्वशी उसे त्याग कर चली गई। जब उसे गंधर्व लोक की प्राप्ति होने पर ज्ञान प्राप्त हुआ तब वह अपने विषयी जीवन पर लज्जित होकर बहुत पछताया। उस समय उसके विषक्त हृदय से जो उद्गार निकले वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। पुरूरवा बोला—हाय २ मुझ से बढ़ कर और कौन मूर्ख होगा ? मैंने काम वासना में फँस कर अपने चित्त को कलुषित कर दिया। मैंने उर्वशी के कण्ठ में बाँह डालकर अपने अमूल्य जीवन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

खो दिया। मैं उस अप्सरा के चक्कर में पड़ कर लुट गया। मैं उसके मोह में ऐसा फँसा कि मुझे यह भी पता न चला कि जीवन के दिन रात कब समाप्त हो गये। मैं चक्रवर्ती सम्राट हूँ। बड़े बड़े वीर पुरुष मेरे चरणों में सिर नवाते हैं किन्तु मैं उस एक स्त्री के हाथ का खिलौना बन गया। मेरे जीवन को धिक्कार है। मैं गधे की भाँति दुलत्तियाँ खा कर भी उस स्त्री के पीछे पीछे नङ्ग धड़ङ्ग दौड़ता ही रहा मैं अवश्य ही मूर्ख हूँ। यह बिल्कुल सत्य है कि जिस को स्त्री ने अपने वश में कर लियाहै उसकी वीरता, शूरता तथा विद्या व्यर्थ है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे उद्धव! पुरुरवा ने ऐसा समझ कर उर्वशी को त्याग दिया ज्ञान के प्रकाश से उसका मोह नष्ट हो गया। उसको वैराग्य से शान्ति प्राप्त हो गई। इसी भाँति समझदार मनुष्यों को चाहिये कि पुरुरवा की भाँति कुसङ्ग में न पड़कर अच्छे पुरुषों का साथ करे। सन्त पुरुषों के साथ विषया शक्ति मिट जाती है।

॥ सत्ताईसवाँ अध्याय ॥

क्रिया योग का वर्णन करना

दो०—क्रिया योग वर्णन कियो, यदुपति श्री यदुराय।
उद्धवजी सुनने लगे, प्रभु चरनन चितलाय॥

उद्धवजी बोले—हे भक्त वत्सल जनार्दन! अब आप कृपा कर के मुझसे उस क्रिया योग का वर्णन कीजिये जिसका वर्णनदेवऋषि नारद, भगवान् वेद व्यास तथा आचार्य वृहस्पति जी ने बार बार उसका वर्णन कियाहै और वे कहते हैं कि क्रिया योग के द्वारा ही आपकी आराधना करने से परम कल्याण होता है। इस क्रिया योग की विधि पहले पहले आपने ब्रह्माजी को बताई थी उन्होंने अपने भृगु आदि पुत्रों को बताई तथा भगवान् शंकर ने भगवती पार्वती जी को यह बिधि बताई। यह क्रिया योग सभी वर्णों के लिये कल्याणकारी है स्त्री शूद्रादि के लिये भी अत्युत्तम है।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले—हे भक्त शिरोमणि उद्धव जी! कर्मकांड असीम है। उनका कोई विस्तार नहीं है। इसलिये मैं सूक्ष्म में ही उसकी विधि का वर्णन करता हूँ। मेरी पूजा की तीन विधियाँ श्रेष्ठ मानी गई हैं। वैदिक, तान्त्रिक तथा मिश्रित इन तीनों में से मेरा भक्त किसी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भी विधि से मेरी उपासना कर सकता है। मनुष्य को सब से पहले शास्त्रोक्त विधि से यज्ञोपवीत संस्कार (उपनयन संस्कार) कराना चाहिये उस के पश्चात् श्रद्धा तथा भक्ति के साथ मेरी पूजा करनी चाहिये। मैं सब प्राणियों का पिता तथा शिक्षक हूँ इस लिए मेरी पूजा करना ही सर्वश्रेष्ठ है जो अभिमानी लोग अन्य देवी देवताओं की पूजा करते हैं उन का भी फल मैं ही देता हैं। किन्तु ऐसे प्राणियों को मेरी भक्ति प्राप्त नहीं होती। और मेरी भक्ति के बिना उन्हें (मोक्ष) परमगति प्राप्त नहीं होती। इस लिए मेरी भक्ति करना ही सर्वोत्तम है उस की विधि मैं तुम्हें बतलाता हूँ। मेरी पूजा में सब से मुख्य बात यह है कि उस में कपट तथा अश्रद्धा नहीं होनी चाहिये। मेरी पूजा मूर्ति के द्वारा करे। चाहे मिट्टी की वेदी बना कर करे। जल में, या हृदय में करे, अग्नि में, सूर्य में चाहे जिस प्रकार करे किन्तु होनी चाहिये प्रेम तथा भक्ति भावना के साथ। भक्ति रहित पूजा मुझे ग्रहण नहीं होती है। उपासक प्रातःकाल दन्त धावन आदि करके शरीर शुद्धि के लिए स्नान करे फिर वैदिक तथा तांत्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों द्वारा मिट्टी तथा भस्म आदि का लेपन करे और फिर स्नान करे। पत्पश्चात् मेरी आठ प्रकार की मूर्तियों में अर्थात् पत्थर, लकड़ी, धातु मिट्टी चन्दन आदि चित्रमयी बालुका की तथा मनोमयी और मणिमयी इन किसी में से एक की विधिवत् स्थापना करे। मेरा निवास स्थान चल तथा अचल दोनों हैं। अचल प्रतिमा की पूजा में प्रति दिन आवाहन तथा विसर्जन नहीं होता है। चल प्रतिमा में आवाहन तथा विसर्जन अवश्य करना चाहिये। क्यों कि बालू की प्रतिमा नित्य नई बनाई जाती है। मिट्टी, चन्दन तथा चित्रमयी प्रतिमा को नित्य स्नान करावे। केवल पोंछने से ही कार्य सम्पन्न करे किन्तु और सब को नित्य स्नान कराना चाहिये। मूर्ति पूजा में श्रद्धा, भक्ति तथ निष्कपटता ही मुख्य है। पूजा की सामग्री जो सुविधा से हो सके उसे एकत्र करे। यदि प्रतिमा पूजा किसी कारण न हो सके तो मानसिक पूजा ही हृदय में कर ले। स्नान, वस्त्राभूषण आदि पाषाण तथा धातु की मूर्ति में ही धारण कराये जा सकते हैं।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

किन्तु बालुका की मूर्ति के मन्त्रों द्वारा ही यह सब कार्य सम्पन्न होना चाहिये और यथास्थान देवताओं की स्थापना करना चाहिये। अग्नि की पूजा करने के लिये घृत, खाण्ड मिश्रत हवन सामिग्री से आहुति देनी चाहिये। सूर्य के द्वारा यदि मेरी पूजा की जाती है तो अर्घ्यपान तथा उपस्थान आदि विधियों से मेरी पूजा करनी चाहिये, और जल में तर्पण द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिये। साधक को उत्तर की ओर तथा पूर्व की ओर कुशा के आगे के भाग को करके उन्हें बिछाना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्व की ओर या उत्तर की ओर मुँह करके कुशों के आसन पर बैठना चाहिये। पूजा आरम्भ करने से पहिले अङ्गन्यास तथा करन्यास करे। फिर मूर्ति पर जो माला वस्त्रादि पहले चढ़े हुए हैं उनको हटावे। मूर्ति को स्नान करावे उस स्नान के जल से अपने शरीर को पवित्र करे। फिर उन्हें गायत्री के प्रथम चरण द्वारा पाद्य अर्पण करे गायत्री के द्वितीय चरण द्वारा अर्घ्य प्रदान करे। तथा गायत्री के तृतीय चरण के द्वारा आचमन प्रदान करे। पाद्य पात्र में समाके दाने, दूब, कमल, चन्दन, तुलसी आदि डाले। अर्घ्य पात्र में गन्ध, पुष्प, अक्षत, जौ, कुश, तिल, सरसों तथा दूब आदि डाले। और आचमन पात्र में जायफल तथा लौंग आदि डाल कर उनकी पूजा करे इसके बाद पूरी गायत्री से उन तीनों को अभिमन्त्रित करके हृदय में उनका ध्यान करे। ॐकार के आकार, उकार, मकार, विन्दु तथा नाद इन पाँच कलाओं के अन्त में जीवकला का ध्यान करे। जब शरीर में ये पाँचों कलायें जीवकला सहित भर जावें तब तन्मय होकर मेरा ध्यान करे। मेरे आसन में धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इन चार पायों का ध्यान करे। अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य ये चार दिशाओं में दण्डे हैं। सत्य, रज, तम, तीन पटरे की बनी चौकी है। उस पर ज्ञाना, क्रिया, परन्हवी, योग, सत्या, ईषाना, विमला, उत्कर्षिणी तथा अनुग्रहा ये नौ शक्तियाँ विराजमान रहती हैं। उस चौकी पर अष्ट दल कमल खिला हुआ प्रकाशमान है। उस पर अष्ट भुजा धारण किये हुये मैं खड़ा हुआ हूँ। इस ध्यान से मेरी पूजा करे पूजा करने

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

के पश्चात् शास्त्रोक्त विधि से बने कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके हवन करे, और उस हवन का मूल तन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से अथवा पुरुष सूक्ति के सोलह मन्त्रों से मेरा हवन करे। इसके पश्चात् भगवान् को आचमन करावे, और उनका प्रसाद निष्वकसेन पार्षद को निवेदन करे तत्पश्चात् ताम्बूल आदि अर्पण करके मेरी कथा लीला आदि का गायन करे। मेरे चरणों में दण्ड प्रणाम करे और मेरी प्रार्थना आदि करे। यदि विसर्जन करना हो तो इस भाँति मेरा विसर्जन करे कि प्रतिमा में से एक ज्योति निकल कर मेरे हृदय में समा गई है। हे प्यारे उद्धव! मैं सर्वशक्तिमान् तथा सर्वत्र विराजमान रहता हूँ। श्रद्धा तथा भक्ति के साथ किसी समय भी किसी स्थान पर भी तथा किसी भाँति भी मेरी पूजा की जा सकती है। यदि उपरोक्त कर्म काण्डों के द्वारा मेरी पूजा नहीं कर सकता है तो केवल मेरे गुण तथा नामा का निरन्तर कीर्तन करते रहने से भी वही भक्ति प्राप्त होती है जो कर्म योगीको होतीहै। मेरा उपासक जो मेरा मन्दिर बनवाता है उसे तीनों लोकों का राज्य प्राप्त होता है मेरी पूजा आदि करने से ब्रह्मलोक की प्राप्त होती है। मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से पृथ्वी का राज्य प्राप्त होता है। तथा इन तीनों के करने से मेरी प्राप्ति होती हैं। हे उद्धव! ब्राह्मण आदि को दिया हुआ दान फिर वापिस न लेना चाहिये क्योंकि एक बार दी हुई वस्तु वापिस लेने पर करोड़ों वर्ष विष्ठा का कीटाणु बनना पड़ता है। जो लोग धर्म कर्मों में सहायता तथा उसका अनुमोदन और सलाह देते हैं वे भी उस करने वाले के समान ही फल के भागीदार होते हैं।

॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय ॥

परमार्थ के स्वरूप का वर्णन करना—

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे प्यारे उद्धव! बाहरी दिखावे में इस जगत के दो भेद जान पड़ते हैं। एक पुरुष अर्थात् द्रष्टा दूसरा प्रकृति अर्थात् दृश्य। किन्तु परमार्थ दृष्टि विचारने पर यह सब एक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ही स्वरूप है। वही परमात्मा पुरुष रूप से दृष्टा है और भोक्ता है। और प्रकृति रूप से वही परमात्मा दृश्य तथा भोग्य है। वह स्वयं ही अपने को भोक्ता है इसी को अद्वैत कहते हैं। अद्वैत का तात्पर्य यह है कि कोई दूसरी वस्तु न हो। एक ही परमात्मा भोक्ता तथा भोग दोनों रूप में विराजमान है। इसी कारण किसी के गुणों की स्तुति तथा अवगुणों की निन्दा नहीं करनी चाहिये। जो दूसरों के स्वभाव तथा उनके गुणों की प्रशंसा एवं निन्दा करते हैं वे उस परमार्थ तत्व को न जानने के कारण परमार्थ साधन से दूर हो जाते हैं। किसकी प्रशंसा की जावे और किसकी निन्दा की जावे। इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि उसी परमात्मा की प्रशंसा और निन्दा करना है। इस प्रशंसा और निन्दा से परमात्म तत्व के समझने में और भी अधिक भ्रम बढ़ जाता है। ये सम्पूर्ण इन्द्रियाँ राजस अहंकार से उत्पन्न हुई हैं। जब ये निद्रावश हो जाती हैं तब जीव चेतन शून्य हो जाता है। अर्थात् उसे बाहरी शरीर की कोई स्मृति नहीं रहती है। उस समय मन झूँठे दृश्यों में भटकने लगता है वही स्वप्नास्था कहलाती है। जब वह मन भी शान्त होकर सो जाता है तब वह जीव मृत्युवत् गाढ़ निद्रा में सो जाता है। उसी प्रकार जब जीव अपने परमात्मा स्वरूप को भूल कर अनेक प्रकार की झूँठी वस्तुओं में भटकने लगता है तब वह स्वप्न की भाँति मिथ्या जगत् के दृश्य में फँस जाता है, और वह मृत्युवत् अज्ञान में फँस जाता है। जब द्वैतवाद है ही नहीं तब अमुक वस्तु अच्छी या बुरी है इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है। ये जितनी भी वस्तुएं दृष्टि आती हैं या सुनी जाती हैं सब मिथ्या हैं। जब मनुष्य इन वस्तुओं के मिथ्यातत्व को समझ जाता है तब वह इनमें नहीं फँसता। जो कुछ भी प्रत्यक्ष में या परोक्ष में है वह सत्य स्वरूप आत्मा ही है। यह सर्व शक्तिमान आत्मा जगत को बनाता है और वही बनता है। अर्थात् निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों वह एक ही आत्मा है। वही रक्षक है। और वही रक्षित भी है। वही संहार करता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

और जो संहार करने की वस्तु है वह भी वही है व्यवहारिक दृष्टि से देखने पर आत्मा इस जगत से भिन्न प्रतीत होता है किन्तु आत्म दृष्टि से देखने पर उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। उस आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी दृष्टि आ रहा है वह मिथ्या है इस लिये आत्मा में सृष्टि रचने की, उसे स्थित करने की और संहार करने की ये तीनों प्रवृत्तियाँ मिथ्या ही प्रतीत होती हैं क्यों कि वह स्वयं ही सृष्टि है। वह स्वयं ही स्थिति है। वह स्वयं ही संहार करने की वस्तु है। यह सत्व, रज, तम के कारण तीनों भेद प्रतीत होते हैं, और यही त्रिविधिता उसकी माया का खेल कहा जाता है। हे उद्धव! जो मेरे भेद को जानता है वह कभी किसी की प्रशंसा या निन्दा नहीं करता है। वह सम भाव से जगत् में विचरता रहता है। उद्धव जी बोले—हे मधुसूदन! आत्मा साक्षी है तथा यह शरीर दृश्य है। आत्मा स्वयं प्रकाश है तथा यह शरीर जड़ है। ऐसी दशा में इस जन्म मृत्यु रूपी जगत् की प्रतीति न तो शरीर को ही हो सकती है और न आत्मा को हो सकती है। किंतु अनुभव से इसकी प्रतीति होती रहती है। तब यह किस प्रकार होती है। आत्मा अविनाशी, प्राकृत अप्राकृति, गुणों से रहित, शुद्ध स्वयं प्रकाश तथा आवरण रहित है। यह शरीर विनाशी अशुद्ध, सगुण तथा दूसरों के द्वारा प्रकाशित होने वाला और आवरण युक्त है। काठ की तरह अचेतन है। तब यह जन्म मृत्यु रूपी संसार किसको फन्दे में डालता है शरीर को अथवा आत्मा को। यह मुझे समझाने की कृपा कीजिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—प्यारे उद्धव! न तो यह संसार है और न यह शरीर है। इन दोनों की प्रतीति व्यर्थ ही भासती है। किन्तु फिर भी जब यह आत्मा अज्ञान वश शरीर, इन्द्रिय तथा प्राणों के मिथ्यापन को न जान कर भी उसकी सत्ता को मान लेता है तब यह संसार न होने पर भी उसको सुख दुःख का कारण प्रतीत होने लगता है। जैसे स्वप्न में अनेकों विपत्तियाँ दिखलाई देती हैं किन्तु वे वास्तव में नहीं हैं जब स्वप्न टूट जाता है तब उनका अस्तित्व ही मिट जाता है उसी भाँति संसार के न होने पर भी जब उसके विषयों का चिन्तन करने लगते हैं तब वह मिथ्या
In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri Funding by IKS

संसार उसको सत्य प्रतीत होने लगता है। जिस प्रकार किसी भृङ्गी द्वारा पकड़ा हुआ कीड़ा उसके भय चिन्तन से भृङ्गी ही दृष्टि आने लगता है। वह भृङ्गी न होने पर भी भृङ्गी प्रतीत होता है। उस से जगत के विषयों का चिन्तन करने से जगत के न होने पर भी ऐसा प्रतीत होने लगता है। किन्तु जब अज्ञान रूपी नींद टूट जाती है और वह सोया हुआ जीव जग उठता है अर्थात् उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो जगने पर जिस प्रकार स्वप्न की विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जीव की विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। अज्ञान को ही अहङ्कार कहते हैं। वह अहङ्कार ही शोक, मोह, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ तथा जन्म मृत्यु का निमित्त बनताहै। आत्मा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।जब देह,इन्द्रिय, प्राण और मन में स्थिति रहने वाला आत्मा, अभिमान वश उन्हें अपना स्वरूप स्वीकार कर लेता है। इस स्थूल शरीर के अतिरिक्त पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा एक मन से बना हुआ दूसरा लिंग शरीर है। यही आत्मा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म मूर्ति है। उसी को सूत्रात्मा तथा उसी को महत्व भी कहते हैं। वही जन्म मृत्यु रूपी संसार में भटकता रहता है। आत्मा और अनात्मा के स्वरूप को अलग २ भली प्रकार समझ लेना ही ज्ञान है। क्यों कि ज्ञान के उत्पन्न होने पर द्वेष भाव मिट जाता है। हे प्यारे उद्धव! सब का सार युक्त तत्व यह है कि जो सृष्टि के आदि में रहता है जो सृष्टि के अन्त में रहता है वही सृष्टि के मध्य में भी रहता है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार आदि में सोना और अन्त में भी सोना है किन्तु मध्य में उस सोने धातु के कंकण, कुण्डल आदि आभूषणों के रूपों में रूपान्तर कर दिया है किन्तु है तो तीनों दशा में सोना ही। इसी भाँति इस परमात्म तत्व को भी समझना चाहिये। जगत के आदि अन्त तथा मध्य में केवल मैं ही परमात्मा तत्व हूँ। सत्व, रज, तम, इन तीनों अवस्थाओं के समाप्त होने पर ही तुरीय अवस्था है। इस तुरीय अवस्था से भी परे चौथा ब्रह्म तत्व रह जाता है। यह बिलकुल सत्य है कि जो पदार्थ जिस पदार्थ से बनता है और जिस के द्वारा प्रकाशित होता है वही उस का वास्तविक स्वरूप होता है। इस लिए ये जितने भी जगत के दृश्य, अदृश्य पदार्थ पंच

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भूतादि से बने हैं ये सब ब्रह्म ही हैं। उनके रूप में ब्रह्म ही दृष्टि आ रहा है इस बात को ध्यान में रखकर मैं अच्छा हूँ वह बुरा है इन बातों को त्याग देना चाहिये और लोक लज्जा को त्याग कर कुत्ते, चाण्डाल, गौ अथवा गधे आदि सभी प्राणियों को पृथ्वी पर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। हे उद्धव! जिस योगी के मन की वासनाऐं तथा कर्मों के संस्कार नहीं मिटे हैं जिसकी आसक्ति पुत्र आदि में रहती है वह अधूरा योगी अपने योग से कई बार भ्रष्ट हो जाता है। जिस प्रकार चिकित्सा न करने पर रोग समूल से नष्ट नहीं होता है। किन्तु वह योगी अपने पूर्वाभ्यास के द्वारा पुनःपुनः योगाभ्यास में लग जाता है, और अन्त में वह कर्मों से निवृत्ति पा जाता है। यह जीव पूर्व संस्कारों के द्वारा प्रेरित होकर जीवन भर कर्म करता रहता है। और उस में सुख दुःख प्राप्त करता रहता है। किंतु जिसने तत्व ज्ञान प्राप्त कर लिया है यह अपने स्वरूप में स्थित हो कर इस जगत के कर्मों को करते हुए भी उन में आसक्ति न रखने के कारण अनायास ही उनसे मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार अपने आत्मानन्द में मग्न रहने वाले योगी को इस बात का पता नहीं रहता है कि मेरा यह शरीर खड़ा है अथवा बैठा है चल रहा है अथवा सो रहा है। भोजन कर रहा है अथवा मल मूत्र त्याग रहा है। क्यों कि उसकी प्रवृति तो ब्रह्म में लीन हो जाती है। हे उद्धव! योग साधना पूर्ण होने से पहले यदि किसी योगी का शरीर पीड़ित हो जावे तो उसको गर्मी, ठण्डक आदि विकारों को सूर्य तथा चन्द्रमा आदि की धारणा से नष्ट कर देना चाहिये। वातादि रोगों को वायु की धारणा से दूर कर देना चाहिये। कॉम, क्रोध विकारों को मेरा चिन्तन तथा संकीर्तन आदि से दूर कर देना चाहिये। बहुत से योगी योगाभ्यास द्वारा अपने शरीर को युवा तथा सुदृढ़ करके अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। किंतु यह व्यर्थ के प्रयास हैं। ये सब नाशवान होने के कारण योगी को कोई लाभप्रद नहीं हैं उसको मेरी कामना के लिये ही योगाभ्यास कर के आनन्द में मग्न रहना चाहिये।

॥ पच्चीसवाँ अध्याय ॥

भागवत धर्मों का निरूपण तथा उद्धव जी का बद्रिकाश्रम जाना।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

दोहा—भगवत वर्णन कियो, भली भाँति यदुनाथ।
करि पूरन निज ज्ञान को, उद्धव भये सनाथ ॥
लेकर आज्ञा नाथ की, बदरी कीन्ह पयान।
योगक्रिया को साध कर, लीन भये भगवान ॥

उद्धव जी बोले—हे अच्युत ! जिस मनुष्य का मन वश में नहीं हुआ है ऐसे मनुष्य के लिये आपकी बताई योग साधना अत्यन्त ही कठिन है। इस लिये अब आप कोई ऐसा सुगम तथा सरल साधन बताइये जिसके करने से मनुष्य अनायास ही परमपद प्राप्त करले। बहुत से योगी बार बार जब अपने योग साधन में सफल नहीं होते हैं तब वे हार कर उसे छोड़ देते हैं और उस उत्तम मार्ग की ओर मुँह नहीं करते। इसी कारण कोई सुगम मार्ग निरूपण कीजिये जिसके करने से सभी प्राणी आप के परमानन्द को प्राप्त कर सकें। श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द ब्रह्मा आदि के भी ईश्वर हैं। ये ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करके जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय खेल खेल ही में करते रहते हैं। उद्धव जी के ऐसे प्रेम भरे बचन सुन कर मन्द २ मुस्कान से उनकी ओर अमृत मयी दृष्टि करके इस प्रकार बोले—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे प्यारे उद्धव ! अब तुम्हें सुगम से सुगम मङ्गल मय भगवत् धर्म का उपदेश करूँगा। जिसका आचरण श्रद्धा के साथ करने से मनुष्य अनायास ही इस संसार से मुक्त हो जाता है। हे उद्धव ! मेरा भक्त अपने सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण कर के निरन्तर मेरा स्मरण करता रहे। मेरे स्मरण का अभ्यास बढ़ावे, कुछ ही काल के उपरान्त उस का चित्त अपने आप मेरे में लग जावेगा, उस का मन तथा आत्मा दोनों मेरे में रम जावेंगी, जिस स्थान पर तथा तीर्थों में मेरे भक्त जन रहते हैं वहाँ पर जावे और उनके साथ रह कर मेरी भक्ति साधना सीखे। उनसे उपदेश ग्रहण करे। कथा कीर्तन आदि श्रवण करे। पर्वों पर सब के साथ मिल कर मेरा महोत्सव करे। जिसमें नृत्य, गान, वाद्य आदि का समयोचित प्रबन्ध रहे। मेरी यात्रा ठाट बाट से निकाले। सम्पूर्ण प्राणियों में मुझे बिराजमान समझ कर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उनके दर्शन करे क्यों कि मैं सर्वात्मा हूँ। हे उद्धव! मेरी प्राप्ति के लिये जितने भी उपाय हैं उन सबमें सुगम तथा सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि जगत के सम्पूर्ण प्राणियों तथा पदार्थों में शरीर मन तथा वाणीकी सम्पूर्ण वृतियों से मेरी ही भावना हर समय की जावे, और यही मेरा भागवत धर्म है। इस उपाय को आरम्भ कर देने पर इसमें कोई विघ्न नहीं आता क्योंकि यह निष्काम धर्म मैंने स्वयं निर्गुण होने के कारण इसका निरूपण किया है। निष्काम भागवत धर्म का साधक सदा अपने सम्पूर्ण कर्म भय, शोक, रोना पीटना, खाना पीना आदि सभी कर्म निष्काम भाव से मुझे समर्पित करदे तो वे ऐसे कर्म भी मेरी प्रसन्नता का कारण रूप भागवत धर्म बन जाते हैं। सबसे उत्तम ज्ञान यही है कि इस विनाशी तथा असत्य शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त करले। हे उद्धव! मैंने सम्पूर्ण ब्रह्म विद्या का रहस्य संक्षेप तथा विस्तार में वर्णन किया है। यह रहस्य जानना देवताओं के लिए भी अति दुर्लभ है मनुष्यकी तो बात ही क्या है। जो इस धर्म को सुनकर उसका आचरण करता है उसकी संशय ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। और वह वेदों के भी परम रहस्य सनातन ब्रह्मको बड़ी सुगमता से प्राप्त कर लेता है। जो ज्ञानी मेरे भक्तों को यह रहस्य भली प्रकार समझाता है मैं उस पर प्रसन्न होकर उसे अपना स्वरूप दे देता हूँ और आत्मज्ञान से साक्षात कार करा देता हूँ। हे उद्धवजी! यह मेरा तुम्हारा सम्बाद तुम्हारे लिए तो हितकर है ही किन्तु सारे जगत के लिये भी पवित्र करने वाला है जो नित्य प्रति इसका पाठ करके दूसरों को सुनाता है। उसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, और वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। श्रीशुकदेवजी बोले हे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ऐसे बचन सुनकर उद्धवजी का कण्ठ भर आया, आँखों से आँसू बहने लगे। वाणी रुक गई उनका चित्त प्रेमावेश के कारण विह्वल होउठा। वे कुछ काल तक चुप चाप खड़े रह गये तब धैर्यता पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अपना सिर रख कर इस प्रकार बोले—

उद्धवजी बोले—हे सनातन ब्रह्म। आप अपनी माया तथा ब्रह्मा आदि ईश्वरों के भी उत्पत्ति कर्त्ता हैं। आपके ज्ञान से अब मेरा मोह नष्ट हो गया है। भला जो कुए के पास पहुँच जाता है फिर उसके पास प्यास

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कैसे टिक सकती है। मणिमय प्रकाश प्राप्त होने पर अन्धकार कैसे रुक सकता है। आपने अपनी माया से मेरा ज्ञान दीप मोहित कर दिया था। किन्तु अब आपने मुझे अपना सेवक समझ कर फिर लौटा दिया । ऐसा कौन होगा जो आपके चरण कमलों को छोड़कर किसी और का सहारा ले। आपने हम सब यदुवंशियों को अपने प्रेम पाश में बाँध लिया था। आज आपने अपने ज्ञानकी तलवार से उसे काट दिया। हे ईश्वरों के ईश्वर! मेरा आपको नमस्कार है। अब आप मुझ शरणागत को ऐसा स्थान बताइये जहाँ मैं निरन्तर आपके दर्शन करता रहूँ ।

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र बोले–हे प्रिय उद्धवजी! अब तुम मेरी आज्ञा मानकर बदरिकाश्रम चले जाओ। वह मेरा ही उत्तम आश्रम है। वहाँ पर मेरे से उत्पन्न हुई गङ्गाजी में स्नान करके पवित्र हो जाओगे। अलकनन्दा के दर्शन करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण शेष पाप भी नष्ट हो जावेंगे। वहाँ पर रहकर वृक्षों की छाल पहनना तथा कन्द मूल फलका सेवन करना सम्पूर्ण भोगों में अनासक्ति रखकर उनसे बिल्कुल उपराम हो जाना तथा अपने चित्तको मेरे में लगा देना सौम्य स्वभाव रखकर, इन्द्रियों को वश में रखके मेरे परमानन्द में मग्न हो जाना। श्री शुकदेवजी बोले–भगवान श्री कृष्णचन्द्र की आज्ञा से उद्धव जी ने उनकी परिक्रमा करके तथा चरणों में सिर रखकर बद्रिकाश्रम की ओर प्रस्थान कर दिया। उस समय उद्धव जी संयोग वियोग से उत्पन्न होने वाले सुख दुःखादि से परे थे। किन्तु फिर भी भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के वियोग के कारण उनका चित्त प्रेमावेश में भर गया था। उनके नेत्रों से अश्रुबहने लगे जिनसे भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के चरण कमल भी भीग गए। हे परीक्षित्! तुम जान सकतेहो कि साधारण प्राणी का वियोग भी अति दुःखदाई होता है। किन्तु वह भी असाधारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से वियोग था ऐसी स्थिति में उद्धवजी को उस वियोग का कितना दुःख हुआ होगा इसकी कल्पना करना भी बुद्धि के परे है। परम भागवत् उद्धवजी वियोग के कारण कातर हो उठे। वे भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को एक क्षण के लिये भी छोड़ना नहीं चाहते थे किन्तु उनकी आज्ञा से वे हृदय को थाम कर बड़े कष्ट से मन मसोस कर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उनके चरण की पादुकाऐं सिर पर रखकर वहाँ से चल दिये। उन्होंने बद्रिकाश्रम में भगवान्‌श्री कृष्णचन्द्र के उपदेशानुसार उनके स्वरूप का चिन्तन कर के उत्तमगति प्राप्ति की। हे परीक्षित ! जिन भगवान् के मुखसे निकले हुए वचनों के लिये ब्रह्मा, शङ्कर आदि निरन्तर लालायित रहते हैं उन्हीं सच्चिदानन्द घन स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुख से ज्ञानामृत को पान करके परम प्रेमी भक्त उद्धव जी अमर होगए। जो श्रद्धाके साथ इसका सेवन निरन्तर करता है वह अवश्य मुक्त हो जाता है। जरा रोगादि की निवृत्ति के लिए क्षीर सागर से निकला हुआ अमृत देवताओं को पिलाया था और इस संसार सागर से मुक्त होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने ज्ञान रूपी अमृत सबको पिलाया। उन्होंने निवृत्ति तथा प्रवृत्ति मार्ग दोनों का ही निरूपण किया है उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ।

॥ तीसवाँ अध्याय ॥

दोहा—ब्रह्म शाप के कारणें, भूले यादव वीर।
लड़ लड़के सब मर गये, बच्यौ न एकउवीर॥

राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन् ! जब परम भागवत उद्धवजी बदरीवन चले गये तब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने फिर क्या किया ? वे सम्पूर्ण विश्व के स्वामी तथा नियन्ता हैं जो भी द्वारिका में हुआ होगा सब उन्हीं की प्रेरणा से हुआ होगा। उन्होंने अपनी लीलाओं का संवरण करके अपने श्रीविग्रह से कैसे स्वधामगमन किया ? उनके रूप माधुर्य को देखकर स्त्रियों के दृग उनके श्रीविग्रह से नहीं हटते थे जिस श्री विग्रह को योगी जन सदा अपने हृदय कमल में देखते हैं वह दिव्य श्री विग्रह किस प्रकार अन्तर्ध्यान हुआ यह मुझे समझाकर कहिये। महाभारत युद्ध में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दादा अर्जुनके रथ पर इसलिये विराजमान थे कि जो वीर अर्जुन के बाणों से मरे वह मेरे सारूप्य का दर्शन करके मुक्ति को प्राप्त कर सके। उन्हीं भगवान ने यदुवंश का नाश किस प्रकार किया ? यह मुझे समझा कर कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द ने यह देखा कि द्वारिका में नित्य अमङ्गल सूचक अपशकुन होते हैं। सभी तत्व विकृत हो उठे हैं। आकाश

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

पृथ्वी अन्तरिक्ष में अपशकुन सूचक उत्पात होरहे हैं। तब उन्होंने यदुवंश के विनाश का समय जानकर अपनी सुधर्मा सभा में जाकर सब वृद्ध तथा युवा यदुवंशियों से इस प्रकार कहा।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे श्रेष्ठ यदुवंशियो ! तुम लोग नित्यप्रति द्वारिका में अमङ्गल सूचक अपशकुन देखते हो। ये हमारे महान् अनिष्ट का कारण है। अब हम लोगों को तत्काल ही द्वारिकापुरी त्यागकर सर्व श्रेष्ठ तीर्थ प्रभास क्षेत्र में चलना चाहिये। वृद्ध स्त्री तथा बच्चों को शंखोद्धार क्षेत्र में भेज देना चाहिये। हम सबको प्रभास में चल कर पाप नाशिनी सरस्वती नदी में स्नान करना चाहिए। वहाँ उपवास व्रत आदि करके चन्दन, धूप, दीप नैवेद्य आदि से देवताओं की पूजा करनी चाहिये। उन ब्राह्मणों को उत्तम उत्तम भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करेंगे ब्राह्मणों के शाप का मोचन उन ब्राह्मणों के आशीर्वाद से ही हो सकता है। हाथी, घोड़ा, धन, अन्न वस्त्र, रत्न आदि उन ब्राह्मणों को दान देंगे जिससे अमङ्गल नष्ट होंगे। हे यदुवंशियो ! गौ, ब्राह्मण तथा सन्तों का सेवा और देवताओं की पूजा से अमङ्गल नष्ट होते हैं। यदि इस जन्म में परमानन्द प्राप्त न हुआ तो परलोक में अवश्य फल प्रद होंगे। हे राजन् ! सभी वृद्ध, युवा, यदुवंशियों ने भगवान् श्रीकृष्ण जी की बात का अनुमोदन किया और अपने अपने रथ वाहनों पर सवार होकर धन, रत्न, अन्न वस्त्रादि सामग्री छकड़ों, ऊँटों, खच्चरों घोड़ों आदि पर लादकर प्रभास क्षेत्र की ओर चल दिये। वहाँ जाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के आदेशानुसार सबने मङ्गल कर्म कराये। शान्तीपाठ स्वस्तिवाचन आदि कराकर ब्राह्मणों को भोजन कराया, दान, पुण्य कर्म किये। तत्पश्चात् काल की गति से तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेरणा से उन सब की बुद्धि मारी गई। उन्होंने 'मेरेयक' नाम की मदिरा का पान बड़े आनन्द से किया। वह मदिरा पीने में मीठी तथा स्वादिष्ट किन्तु उसका परिणाम महा भयङ्कर होता है। उसे पीते ही उनकी रही सही बुद्धि भी मारी गई। क्यों न ऐसा हो ? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की माया उन्हे मोहित

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

कर रही थी। उन्हें तो ब्राह्मण शाप सत्य कराना था। उधर गाँधारी का शाप भी सत्य करने के लिये यदुवंश का नाश करना था। वे जानते थे कि यदुवंश का नाश किये बिना पृथ्वी का भार पूर्णतः हल्का नहीं हो सकता है। उस भयङ्कर मदिरा को पी कर सभी यदुवंशी मतवाले तथा उन्मत्त हो गये। वे अहंकार से युक्त हो कर एक दूसरे को गाली तथा बुरा भला कहने लगे। धनुष बाण, फरसा, तोमर, त्रिशूल लेकर परस्पर भिड़ गये। उस समुद्र तट पर भयंकर युद्ध होने लगा। यह दूसरा महाभारत युद्ध था। छप्पन करोड़ यादव परस्पर युद्ध करने लगे। कोई रथों पर सवार तो कोई ऊँटों पर, कोई खच्चरों पर तो कोई गधों पर कोई घोड़ों पर सवार था। सब की ध्वजायें फहरा रही थीं। वे पागलों की भाँति एक दूसरे को गाली देते हुए मारने लगे प्रद्युम्न साम्ब से भिड़ गये, अक्रूर भोज से भिड़ गये। अनिरुद्ध सात्यकि से सुभद्र संग्रामजित् से भिड़ गये। निशठ, उल्मुक, सहस्त्रजित्. शतजित् तथा भानु आदि सभी यादव एक दूसरे से भिड़ गये। कालदेव भगवान् श्रीकृष्ण सब को धीरे धीरे ग्रसित करने लगे। एक तो उन्होंने अपनी माया से उनकी बुद्धि हर ली थी उस पर भी मदिरा के नशे ने उन्हें और भी मूढ़ बना दिया। सभी के हृदयों से अपने से बड़े छोटे, मित्र अमित्र तथा सौहार्द का भाव नष्ट हो गया। सभी मूढ़ हो कर पुत्र पिताका मित्र मित्रका, भाईभाईका चाचा भतीजे का, मामा भानजे का, नाना धेवते का भाव त्याग कर एक दूसरे का रक्त पीने लगे। अन्त में जब सब के अस्त्र शस्त्र, धनुष बाण आदि समाप्त हो गये तब वे उस लोहे के चूरे से समुद्र पर उगी हुई 'एरका, नाम की घास को उखाड़ने लगे तथा उसी से एक दूसरे को मारने लगे। वह घास क्या थी लोहे की तलवारों से भी अधिक शक्तिशालिनी तथा मुगदरों का काम करने वाली थी।

अब वे सभी यादव क्रोध में भर भर उसी एरका नाम की घास से एक दूसरे को मारने लगे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उन को ऐसा करने से रोका किन्तु वे लोग उन पर भी टूट पड़े। हे राजन्! उन मूढ़ों की ऐसी मति मारी गई थी कि महा पराक्रमी बलरामजी पर भी टूट पड़े।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

तब बलराम जी तथा श्रीकृष्णचन्द्र ने वही एरका घास उखाड़ उखाड़ कर उन सब आततायियों का संहार कर डाला। सब मूली गाजर की भाँति उस समुद्र तट पर काट डाले गये। जिस प्रकार बाँस का बन बाँसों की रगड़ से स्वयं ही भस्म हो जाता है उसी प्रकार सब यादव वंश दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर शूरसेन, विसर्जन, कुकुर तथा कुन्ति आदि वंशों का नाश परस्पर लड़कर हो गया जो बचे थे उन का संहार बलराम जी तथा श्रीकृष्णचन्द्र द्वारा हो गया। उस युद्धक्षेत्र में केवल बलराम जी तथा श्रीकृष्णचन्द्र जी ही शेष रहे। हे राजन् ! बलराम जी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी की प्रेरणा जानकर समुद्र तट पर एकाग्रचित्त से बैठ गये और उन्हीं के परम चिन्तन रूपी आत्म स्वरूप में लीन होकर अपने मनुष्य शरीर को त्याग दिया। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने देखा कि बलराम जी मेरे स्वरूप में लीन हो गये तब वे भी पीपल के वृक्ष के नीचे जाकर शान्त भाव से पृथ्वी पर बैठ गये। उस समय उन की छटा अत्यन्त ही दर्शनीय तथा मनोहर थी। उन्होंने अपने चतुर्भुज स्वरूप को धारण कर रक्खा था। उनके श्री विग्रह की ज्योति से दशों दिशायें प्रकाशित हो रही थीं। श्यामवर्ण शरीर पर पीताम्बर तथा पीत दुपट्टा धारण किये हुये थे। तपे हुये सोने के समान शरीर की कान्ति थी। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह, शिर पर किरीट, मन्द मन्द मुस्कान, कपोलों पर श्याम अलकें, बड़े बड़े कमल के समान नेत्र शोभायमान थे। कटि में करधनी, कन्धे पर यज्ञोपवीत, भुजाओं में बाजूबन्द हाथों में कङ्गन हार, बैजयन्ती माला, अँगूठियाँ आदि शोभायमान थीं। शंख चक्र, गदा, पद्म, मूर्तिमान होकर उनकी सेवा कर रहे थे। उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपना वाँया चरण दाहिनी जाँघ पर रख कर पीपल के तने से सहारा लेकर बैठे थे। रक्तवर्ण तलवा कमल के समान दृष्टि आ रहा था। हे परीक्षित ! उसी समय जरा नाम का एक व्याध उधर आ निकला। उसने उस मूसल के बचे हुए लोहे के टुकड़े को, जिसे राजा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उग्रसेन के सेवकों ने समुद्र में डाल दिया था तो उसे एक मछली ने निगल लिया था। जब उस मछली को उस व्याध ने पकड़ कर चीरा तब उस के पेट से वह मूसल का शेष भाग जो रेत कर चूरा करने पर बच रहा था निकला। उसी लोहे की कील को उस व्याध ने अपने बाण के अग्र भाग में लगा लिया था। उस मूढ़ ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के चरण तलवे को हिरण का मुख समझ कर उस में अपना बाण मार दिया। वह बाण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के चरण तलवे में लगा। जब वह निकट आया और उसने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी चतुर्भुज स्वरूप में विराजमान हैं। तब तो वह अति घबड़ाया, और भयभीत होकर उसके चरणों में गिर पड़ा। और वह व्याध बोला—हे प्रभो! मेरा अपराध क्षमा करो। यह मैंने अनजान से किया है। आप निर्विकार तथा शरणागत वत्सल हैं। मुझे क्षमा कीजिये। ऐसा कह कर वह पापी व्याध उनके चरणों पर गिरकर बार बार पश्चाताप करके रोने लगा। वह पुनः बोला—हे भगवन्! मैं हत्यारा, मूढ़ मदान्ध तथा पापी होने के कारण आपको न पहिचान सका। आप मुझे अवश्य ही अभी मार डालिये। आपके हाथ से मृत्यु होने पर मेरा भी उद्धार हो जायगा। आपने असंख्यों पापियों को मार कर परम गति दी है। आपकी माया को ब्रह्मा, शंकर आदि भी समझने में असमर्थ हैं। फिर मुझ पापी का तो कहना ही क्या है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले—अरे व्याध! तू भयभीत न हो। इस में तेरा कोई दोष नहीं है। यह तो मैंने स्वयं अपनी इच्छा से ही ऐसा कराया है। मुझे रामावतार में तैंने ही शाप दिया था। तू उस समय सुग्रीव बानर का भाई बाली था मैंने तुझ निरपराध को बाण से मारा था। यद्यपि तू मेरे परम पद को प्राप्त कर चुका था किन्तु शाप के कारण तुझे यह व्याधि योनि पुनः पूर्व संस्कार के कारण प्राप्त हुई तूने मुझे शाप दिया था कि तुमने मुझ निरपराध को व्याध की भाँति मारा है। अतः तुम्हें भी व्याध ही मारेगा। उसी पूर्व शाप को पूर्ण करने के लिये मैंने ऐसा कराया है। अब तुम जाओ तुमको अपना

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

परम पद देता हूँ। तब उस व्याध ने उन की तीन बार प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया। उसी क्षण वहाँ स्वर्ग लोक से एक दिव्य विमान आया और उस में वह जरा नाम का व्याध दिव्य स्वरूप धारण करके स्वर्ग को चला गया। तत्पश्चात् भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का दारुक सारथी रथ लेकर वहाँ आया। वह उन्हें तलाश करता फिर रहा था। उन के दर्शनों के बिना वह बेचैन था। वह उनकी बन माला से गिरी हुई तुलसी की सुगन्धि का आश्रय लेकर वहाँ चला आया। उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी को पृथ्वी पर बैठे देखा। तब रथ से उतर कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनके निकट असह्य तेज युक्त आयुध उनकी सेवा करते हुए उसने देखे। वह बोला—हे अच्युत! आपके दर्शनों के बिना मेरी यह दशा हो गई थी जैसे—बिना चन्द्रमा के दर्शनों के रात्रि में चलने वाले पथिक की हो जाती है। मेरे चारों ओर अन्धकार छा गया है मेरा हृदय अशान्त है। मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं है। मैं अति व्याकुल हो रहा हूँ। जब दारुक सारथी इस प्रकार विनय कर रहा था उसी क्षण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी का रथ मय घोड़ों के आकाश में उड़ गया। यह दृश्य देख कर दारुक सारथी को अति आश्चर्य हुआ। उस रथ के पीछे पीछे उनके सभी दिव्य आयुध भी चले गये। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे दारुक! अब तुम द्वारिका जाओ। वहाँ पर हमारे माता पिता बसुदेव जी तथा देवकी रोहिणी आदि तथा राजा उग्रसेन आदि सब को यहाँ का यदुवंश नाश व भाई बलराम जी का परम धाम गमन व मेरा भी अपने लोक को प्रस्थान सब सुना देना। उन सब से कहना कि वे शीघ्र ही सपरिवार द्वारिका छोड़ कर बाहर चले जायें। मेरे न रहने पर द्वारिकापुरी को समुद्र डुबा देगा। सभी द्वारिका वासी स्त्री, पुरुष, बालक, धन, सम्पत्ति, कुटुम्ब तथा मेरे माता—पिता सहित अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ चले जायें। हे दारुक! तुम मेरे द्वारा उपदेश किये भागवत धर्म का पालन करके इस जगत को मेरी माया का जाल समझ कर इसकी ओर से मुँह मोड़ लो। ज्ञान द्वारा शान्ति प्राप्त करके मेरे में लीन हो जाओ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी का यह उपदेश धारण करके दारुक ने उनकी परिक्रमा की और उनके चरणों में बारम्बार प्रणाम किया। तत्पश्चात् उदास होकर द्वारिका की ओर चल दिया।

—❀—

॥ इकत्तीसवाँ अध्याय ॥

दो०—करि विनाश सबको प्रभू, भू कौ भार उतारि।
करि पूरन निज काम सब, गये स्वधाम पधारि॥

श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! दारुक के चले जाने के पश्चात् भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी के निकट ब्रह्मा, शिव, पार्वती आदि लोकपाल, प्रजापति व ऋषि महर्षि देवर्षि, किन्नर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, गरुड़ आदि सभी भगवान् के परमधाम गमन की प्रसन्नता में वहाँ आये। सम्पूर्ण आकाश विमानों से भर गया वे सभी उनके गुणगान तथा कीर्तन करने लगे। भगवान् पर पुष्पों की वर्षा होने लगी। सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने ब्रह्मादि देवताओं को देखकर अपनी विभूतियों सहित सबको अपने आत्मस्वरूप में स्थिर किया और कमल के समान बड़े बड़े नेत्रों को बन्द कर लिया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी का श्री विग्रह उपासकों के ध्यान तथा धारणा का कल्याणकारी स्वरूप और समस्त लोकों का मङ्गलमय आधार व आश्रय होने के कारण उसमें योग धारणा द्वारा अग्नि देवता को प्रविष्ट नहीं होने दिया अर्थात् योगाग्नि द्वारा उसे जलाया नहीं। वे सशरीर ही अपने नित्यधाम को चले गए। उनके पीछे पीछे पृथ्वी लोक से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति तथा श्रीदेवी भी प्रस्थान कर गईं। भगवान् की गति दिव्य है, कर्म दिव्य हैं, शरीर दिव्य है, इसी कारण उनके स्वाधाम गमन को ब्रह्मा जी भी न देख सके। जिस भाँति विद्युत मेघों से निकल कर आकाश में लीन हो जाती है उसकी गति दृष्टि नहीं आती है। उसी प्रकार सभी देवता लोकपाल, ब्रह्मादि तथा भगवान् शंकर उनकी गति को न देख सके। उनकी परम योगमयी गति देखकर उन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उनके गुणों का

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

यश गान करते हुए अपने अपने लोकों को चले गये। हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी एक नट की भाँति जगत में अनेकों प्रकार के स्वाँग करते हुए उन सबसे निर्लेप रहे। उन्होंने मनुष्य की भाँति जन्म लिया, लीलायें कीं उन्हें संवरण किया-यह सब उनका अभिनय ही था।

हे परीक्षित! जो प्रातःकाल उठकर भगवान् कृष्णचन्द्रजी के परमधाम गमन की कथा भक्ति तथा एकाग्रता के साथ पढ़ता तथा मनन करता है उसे भगवान का परम पद प्राप्त होता है। हे राजन्! जब दारुक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी से विदा होकर द्वारिका आया तो उसकी दशा बड़ी दयनीय थी। वह शीघ्र ही वसुदेव तथा राजा उग्रसेन के चरणों पर गिर पड़ा। और अश्रु धारा बहा कर प्रभास क्षेत्र में समुद्र तट पर यदुवंशियों के परस्पर संहार का वर्णन किया तथा बलरामजी की परम गति प्राप्त करना व श्रीकृष्णचन्द्र जी के स्वधाम गमन की बात कही। यदुवंशियों के नाश का सारा बृतान्त दारुक के मुँह से सुनकर तथा अपने पुत्र बलराम तथा श्रीकृष्णचन्द्र जी का स्वधाम गमन सुनकर वसुदेव उग्रसेन देवकी आदि अति दुःखी हुए और शोकाकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वे सभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के वियोग से व्याकुल होकर समुद्र तट पर गये। वहाँ भाई बन्धु, पुत्र, पौत्रों के शवों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर सभी रुदन करने लगे। देवकी, रोहणी तथा बसुदेवजी अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र बलरामजी तथा श्रीकृष्णचन्द्र जी को न देख कर बार बार शोक से मूर्छित होने लगे। उन्होंने उसी क्षण अपने प्राण त्याग दिये। स्त्रियाँ अपने अपने पतियों की लाशों के साथ चिता में प्रवेश करगईं। बलरामजी की पत्नियाँ उनके शरीर को लेकर तथा बसुदेवजी की पत्नियाँ उनके शरीर को लेकर तथा श्रीकृष्णचन्द्र जी की पुत्र वधुयें अपने अपने पतियों के शवों को गोद में लेकर चिता में भस्म होगईं। भगवान् श्रीकृष्ण जी की सभी रुक्मिणी आदि पटरानियाँ उन्हीं के ध्यान में लीन होकर योगाग्नि में भस्म होगईं। हे राजन्! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के परम प्रिय सखा अर्जुन ने यह महाशोक युक्त दृश्य अपनी आँखों से देखा तब वे अति शोकाकुल हुये। उनके सामने महाभारत में अपने वंश के नाश का दृश्य घूमने लगा।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

वे परम प्रिय अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के वियोग में व्याकुल हो उठे किन्तु गीता के ज्ञान को स्मरण करके उन्होंने अपने चित्त को सावधान किया, और यदुवंशियों के मृत शवों की अन्त्येष्टि क्रिया की। जिन का कोई नहीं बचा था उनको पिण्डदान दिया। अर्जुन ने विधिवत् सबके श्राद्ध, तर्पण आदि किये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के स्वधाम गमन करते ही द्वारिका समुद्र में डूब गई। केवल भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी का निवास स्थान ही शेष रहा। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ सदा निवास करते हैं। वह उनका नित्यधाम है। वह अब भी निवास करते हैं। हे राजा परीक्षित्। पिंडदान देने के पश्चात् अर्जुन यदुवंश की बची खुची स्त्रियों बच्चों तथा वृद्धों को लेकर इन्द्र प्रस्थ आये। वहाँ मार्ग में भीलों ने उन्हें लूट लिया। इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर सब को यथा योग्य स्थानों पर बसा दिया और अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ को वहाँ का राजा बनादिया। हे परीक्षित्! जब तुम्हारे दादा युधिष्ठिर आदि ने भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के स्वधाम गमन तथा यदुवंश का नाश अर्जुन के मुख से सुना तब उन्होंने भी अपना अन्तिम समय निकट जान कर तुम्हें हस्तिनापुर का राज्य देकर पाँचों भाई द्रौपदी सहित हिमालय गलने चले गये। हे परीक्षित्! मैंने तुम्हें सर्व शक्तिमान सर्वात्मा तथा विश्व के आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण जी की जन्म लीला कर्म लीला तथा संवरण लीला सुना दी। जो मनुष्य भक्ति तथा श्रद्धा के साथ नित्य इनका गायन, कीर्तन, श्रवण आदि करता है। वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। और भगवान् श्रीकृष्ण जी की उत्तम भक्ति प्राप्त कर लेता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

❀ श्री गणेशाय नमः ❀

❀ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ❀

वृहद् सुखसागर

॥ द्वादश स्कंध ॥

श्लोकः—कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्य को महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतोमखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥
नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पाप प्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःख शमनस्तं नमामि हरिपरम् ॥

अर्थ—कलयुग वैसे तो दोषों का भण्डार है किन्तु इस में एक गुण अति विशेष यह है कि इस युग में केवल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के नाम संकीर्तन मात्र से ही सारे पाप दूर हो जाते हैं। तथा परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सतयुग में भगवान् की करोणों वर्ष तपस्या तथा ध्यान करने से, त्रेतायुग में सैकड़ों यज्ञादि कर्म करने से द्वापर में पूजा सेवा करने से जो फल प्राप्त होता है कलियुग में वही फल केवल भगवन्नाम संकीर्तन करने से प्राप्त हो जाता है। जिन भगवान् के नामों का संकीर्तन करने से सारे पाप नाश हो जाते हैं। जिनको प्रणाम करने से सारे दुःख दूर हो जाते हैं उन परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ पहला अध्याय ॥

कलियुग में राजवंशों का वर्णन

दो०—कलियुग में राजा सभी, होंगे क्रूर सुभाय।
पतिव्रता भूखन मरें, वेश्या पान चबाय ॥

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र अपने परमधाम को चले गये तब इस पृथ्वी पर किन २ देशों के राजाओं का राज्य रहा। तथा भविष्य में किन किन वंशों के राजाओं का राज्य रहेगा। कृपा कर के मुझे समझाइये श्री शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित् ! नवम् स्कंध में मैंने तुम्हें बतलाया था कि मगधदेश के राजा जरासन्ध के पिता वहद्रथ के वंश का राज्य कलियुग के आरम्भ में रहेगा। उस वंश का अन्तिम राजा रिपुन्जय होगा उसके एक शुनक नाम का मन्त्री होगा। वह रिपुन्जय को मार कर अपने प्रद्योत नाम के पुत्र को राजा बनावेगा उस प्रद्योत के पालक नामक पुत्र होगा। पालक का विशाखयूथ विशाखयूथ का राजक और राजक का नन्दिवर्धन पुत्र होगा। पालक से लेकर नन्दिवर्धन तक प्रद्योत वंशी ये पाँच राजा प्रद्योत कहलावेंगे, और इनका राज्य एक सौ अड़तीस वर्ष तक रहेगा। इसके उपरान्त मगध देश का राजा शिशुनाग होगा। शिशुनाग के काकवर्ण पुत्र होगा। उसके क्षेमधर्मा तथा क्षेमधर्मा के क्षेत्रज्ञ पुत्र होगा। क्षेत्रज्ञ का विधिसार और विधिसार का अजात शत्रु अजात शत्रु के दरभक तथा उसके अजय नाम का पुत्र होगा। अजय के नन्दिवर्धन और नन्दिवर्धन के महानन्दि पुत्र होगा। इस शिशुनाग वंश में ये दस राजा उत्पन्न होंगे जो कलियुग में ३६० वर्ष तक पृथ्वी का राज्य भोगेंगे। हे परीक्षित ! राजा महानन्दि के शूद्रा पत्नी के गर्भ से नन्द नामक एक पुत्र उत्पन्न होगा। वह बड़ा बलवान तथा महापद्म संख्यक सेना का स्वामी होगा। इसके पास धन भी उतना ही होगा। इसी लिए इसको महापदम नन्द कहेंगे। वह राजा क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा। वह शूद्र बड़ा अधर्मी होगा। पृथ्वी का एक छत्र सम्राट् होगा। हे परीक्षित ! तुम्हारे जन्म से लेकर महा पदमनन्द के

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

राज्याभिषेक तक एक हजार एक सौ पन्द्रह मनुष्य वर्षों का समय लगेगा। इस महा पदमनन्द के सुमात्य आदि आठ पुत्र होंगे। वे सभी राजा एक सौ वर्ष तक पृथ्वी का राज्य करेंगे। उस अधर्मी राजा महापद्मनन्द के व्यवहार से प्रजा अति दुखी हो उठेगी। तब कौटिल्य, वात्स्यायन तथा चाणक्य नाम का एक ब्राह्मण उत्पन्न होगा जो सम्राट महापद्मनन्द तथा उसके आठों पुत्रों का नाश करके मौर्यवंश के राजाओं का राज्य स्थापित करेगा। इस मौर्यवंश में सब से पहला राजा चन्द्रगुप्त मौर्य उस चाणक्य की सहायता से राज्य प्राप्त करेगा। चन्द्रगुप्त का पुत्र वारिसार (बिन्दुसार) होगा। उसके अशोक वर्धन तथा उसके सुयश, सुयश के सङ्गत तथा सङ्गत का पुत्र शालिशूक, शालिशूक के शोम शर्मा, शोम शर्मा का शतधन्वा तथा शतधन्वा का बृहद्रथ पुत्र उत्पन्न होगा। हे परीक्षित! इस मौर्यवंश में ये दस राजा एक सौ सैंतीस वर्ष तक कलियुग में राज्य करेंगे। बृहद्रथ का सेनापति पुष्पमित्र शुङ्ग उसे मार कर स्वयं राजा बन जायगा। पुष्पमित्र शुङ्ग का पुत्र अग्निमित्र होगा, अग्निमित्र का पुत्र सुज्येष्ठ होगा, सुज्येष्ठ का पुत्र वसुमित्र, वसुमित्र का भद्रक, तथा भद्रक का पुलिन्द नाम का पुत्र होगा। पुलिन्द का पुत्र घोष, घोष का वज्रमित्र, उसका पुत्र भागवत उसका पुत्र देव भूति होगा शुङ्गवंश के ये दस राजा एक सौ बारह वर्ष कलियुग में पृथ्वी का राज्य भोगेंगे। हे राजा परीक्षित! शुङ्ग वंश के समाप्त होने पर कण्व वंश का राज्य स्थापित होगा। शुङ्ग वंश का अन्तिम राजा देवभूति दुष्ट स्वभाव का लम्पट होगा उसे मार कर कण्व वंशी वसुदेव राजा बनेगा। वसुदेव का पुत्र भूमित्र, उसका पुत्र नारायण, उसका पुत्र सुशर्मा होगा। सुशर्मा बड़ा प्रतापी राजा होगा इस प्रकार कण्व वंश के ये चार राजा कलियुग में तीन सौ पतीस वर्ष राज्य करेंगे। हे परीक्षित! इनके उपरान्त अवभृति नगर के सात आभीर गर्दभी तथा सोलह कंक राजा राज्य भोगेंगे। ये सब के सब लोभी दुष्ट स्वभाव के होंगे। इनके पश्चात् आठ यवन तथा चौदह तुर्क राज्य करेंगे। इनके पश्चात् दश गुरुण्ड (अंग्रेज गोरे) राज करेंगे। उसके पश्चात् ग्यारह मौन राजा होगे। मौनों से पहले ये सब राजा एक हजार

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

निन्नानवें वर्ष तक राज्य करेंगे और ये ग्यारह मौन तीन सौ वर्ष तक राज्य करेंगे उनके राज्यकाल समाप्त होने पर किल किला नगरी में भूतनन्द नाम का राजा उत्पन्न होगा। इसके पश्चात् मगध देश का राजा विश्वस्फूर्जि होगा। वह सब ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों को म्लेच्छ जाति में बदल देगा वह पद्मावती पुरी को राजधानी बनाकर हरिद्वार से लेकर प्रयाग तक राज्य करेगा। घोर कलियुग ज्यों २ आता रहेगा त्यों त्यों ब्राह्मण लोग संस्कार शून्य होते जावेंगे, तथा राजा लोग शूद्रों के से आचरण करेंगे। छोटी मोटी बातों पर क्रोध करेंगे। वे पापी स्त्री बच्चों तथा गौओं को मारने लगेंगे पराई स्त्री तथा धन के लिए ये मुँहसे लार गिरावेंगे। उनकी उन्नति अवनति क्षणिक होगी। आयु थोड़ी होगी। वे बल हीन होंगे अपने कर्तब्यों का पालन नहीं करेंगे। बे रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होंगे।उन्हें राजा तो नहीं कहेंगे। वे म्लेच्छ लुटेरे डाकू ही होंगे।वे प्रजा का खून चूसेंगे,और अन्तमें सब नष्ट हो जावेंगे।

—❀—

॥ दूसरा अध्याय ॥

कलियुग के धर्मों का वर्णन करना

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित! ज्यों ज्यों घोर कलियुग आता जावेगा त्यों त्यों धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा,दया, आयु शक्तिआदि सभी नष्ट होते जावेंगे। नीच पुरुषों की सेवा होने लगेगी। सत्यवादी तथा धार्मिक भूखों मरने लगेंगे। तथा अनेक प्रकार की पीड़ा सहेंगे। जिसके पास धन होगा वही कुलीन सदाचारी, सद्गुणी माना जावेगा। जिसके हाथ में शक्ति होगी उसी के हाथ में धर्म तथा न्याय होगा। विवाह इत्यादि शीलगुण आदि की परख से न होंगे। केवल युवक तथा युवती की रुचि के अनुसार होगे। जो जितना छल कपट वाला होगा वह उतना ही व्यवहार कुशल माना जावेगा। शील तथा संयम श्रेष्ठता को न मानकर केवल रति कौशल ही स्त्री पुरुष की श्रेष्ठता मानी जावेगी। ब्राह्मण केवल एक यज्ञोपवीत धारण करने वाले ही होंगे उनमें गुण तथा शील कुछ भी न

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

होगा। ब्रह्मचारी सन्यासी आदि केवल नाम के लिये ही कमण्डल दण्ड और भगुए वस्त्रधारी होंगे। उनमें सच्चाई कुछ भी न होगी। न्यायालयों में घूँस तथा धन व्यय करने वाला ही विजयी होगा न्याय की व्यवस्था ठीक २ न होगी। अधिक वाचाल ही विद्वान पण्डित माना जावेगा। दम्भी तथा पाखण्डी ही बड़ा साधु माना जावेगा केवल बाल सँवार कर कपड़े पहन लेना ही स्नान हो जावेगा। छोटे २ तालाब ही तीर्थ मान लिए जावेंगे गङ्गा गोमती तथा माता पिता आदि के लिए अश्रद्धा प्राप्त हो जावेगी। सिर पर बाल रखना ही सौन्दर्य का चिह्न होगा। पेट पालन करना ही जीवन का ध्येय रहेगा। दृढ़ता के साथ बात कहना ही सच्चाई मानी जावेगी। यश के लिए धर्म का सेवन मनुष्य करेंगे। जो बलवान होगा वही राजा होगा। चाहे वह शूद्र ही क्यों न हो। डाकू ठग लुटेरों का अधिक जोर होगा। अकाल पर अकाल पड़ेंगे। कभी अति वर्षा होगी तो कभी सूखा पड़ेगी। आँधी कड़ाके का शीत पाला आदि उत्पात होंगे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होंगे। मनुष्य की आयु केवण बीस या तीस वर्ष की होगी। कलियुग के कारण प्राणियों के शरीरों की लम्बाई चौड़ाई बहुत छोटी होगी। वर्णाश्रम धर्म वेद मार्ग सब नष्ट हो जावेंगे। पाखण्डियों के हाथ में धर्म चला जावेगा। गौयें बकरियों की भाँति छोटी २ तथा कम दूध देने वाली होगीं। बानप्रस्थी सन्यासी आदि घर गृहस्थी जुटा कर रहेंगे अन्न आदि के पौधे आदि छोटे होंगे। वृक्ष फल नहीं देंगे। गृहों में अतिथि सत्कार तथा वेदध्वनि सुनाई न देगी। उस समय धर्म के रक्षार्थ कल्कि भगवान् अवतार लेंगे। उन दिनों सम्भल ग्राम में विष्णुयश नाम का एक उत्तम ब्राह्मण होगा। वह बड़ा दयावान तथा भगवदभक्त होगा। उसी के गृह में भगवान् अवतार लेंगे। वे देवदत्त नामक द्रुतगति वाले घोड़े पर चढ़ कर अपनी तलवार से दुष्टों का संहार करेंगे। राजाओं के वेश में रहने वाले उन सभी डाकुओं का नाश करेंगे। जिस समय चन्द्रमा सूर्य तथा बृहस्पति एक ही समय एक ही साथ पुष्प नक्षत्र के प्रथम चरण के प्रथम पल में प्रवेश करते हैं। उसी समय सतयुग लग जाता है। यही सतयुग का आरम्भ काल कहलाता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जब ये तीनों गृह एक राशि पर आते हैं बस उसी काल से सतयुग आरम्भ हो जाता है। हे परीक्षित्! सप्तर्षियों में आकाश में पहले दो तारे नज़र आते हैं। उनके मध्य में दक्षिण उत्तर रेखा पर अश्विनी भरणी आदि अट्ठाईस नक्षत्रों में से एक अश्विनी नक्षत्र दृष्टि आता है। उस नक्षत्र पर सप्तर्षि गण मनुष्य वर्ष की गणना के अनुसार सौ वर्ष तक रहते हैं। उसका तात्पर्य यह है कि सप्तर्षि एक २ नक्षत्र पर सौ सौ वर्षों तक रहते हैं। वे सप्तर्षि तुम्हारे जन्म के समय मघा नक्षत्र पर थे और अब भी मघा नक्षत्र पर हैं। जिस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर विचरण करते हैं उसी समय कलियुग का आरम्भ होता है। कलियुग का प्रमाण देवताओं की वर्ष गणना के अनुसार बारह सौ दिव्य वर्ष है। और मनुष्य गणना के अनुसार चार लाख बत्तीस हजार वर्ष है। जिस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्र से चल कर पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जावेंगे उस समय राजा नन्द का राज्य रहेगा। उसी काल से कलियग की वृद्धि आरम्भ होगी। बहुत से पुरातत्व वेत्ता कहते हैं कि जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी अपने लोक को चले गये उसी दिन से कलियुग का आरम्भ हो गया। हे राजन्! एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर कल्कि भगवान् अवतार लेंगे तब मनुष्यों की सात्विक वृत्ति हो जावेगी और सतयुग आरम्भ हो जावेगा। हे राजन्! भीष्म पितामह के पिता राजा शान्तनु जो तुम्हारे परदादा थे उन के भाई देवापि और इक्ष्वाकु वंशी मरु इस समय भी कलापि ग्राम में निवास करते हैं। वे महान योगी हैं। वे कलियुग के अन्त में कल्कि भगवान् की आज्ञा से यहाँ पर पधारेंगे और पहली भाँति वर्ण व्यवस्था का विस्तार करेंगे। इस काल चक्र में केवल ये चार ही युग हैं सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग ये ही अपने २ काल में वर्तते रहते हैं। सभी राजा जो इस पृथ्वी को अपनी २ कहते थे वे इन चार युगों के अन्तर्गत ही मर कर समाप्त हो गये और सब के सब काल के गाल में चले गये।

—❀—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ तीसरा अध्याय ॥

कलियुग में नाम संकीर्तन की महिमा

दो०—कलिमल धोवन एक जल, हरि को नाम सुनाम ।
संकीर्तन गुणगान प्रभु, कलियुग में सुखधाम ॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! यह पृथ्वी हँस कर कहती है कि ये राजा लोग जो स्वयं मृत्यु के खिलौने हैं मुझे जीतने का प्रयत्न करते हैं। ये सब राजा यह भी जानते हैं कि एक दिन उनकी मृत्यु अवश्य है। फिर भी मुझे जीतने की कामना करते ही रहते हैं। हे राजा परीक्षित ! यह सब नाशवान् हैं केवल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के गुणानुवाद और उन के चरणों में अनन्य भक्ति हो परमार्थ का साधन है। राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन् ! मुझे तो इस कलियुग में दोष ही दोष प्रतीत होते हैं इस में कोई गुण मुझे तो दृष्टि आता नहीं तब कलियुग में मनुष्य इन पापों से किस प्रकार मुक्त हो सकेंगे, मुझे समझा कर कहिये। शुकदेव जी बोले—हे राजा परीक्षित् ! कलियुग में अनेकों दोष हैं यह दोषों का भण्डार है किन्तु फिर भी कलियुग में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के रूप, गुण, लीला धाम तथा नाम के श्रवण संकीर्तन के मात्र से एक जन्म की तो बात ही क्या हजारों जन्मों के पापों के ढेर के ढेर क्षण भर में भस्म हो जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि के द्वारा धातुओं की मलिनता नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कलियुग में केवल भगवान् के नाम संकीर्तन मात्र से करोड़ों जन्म जन्मान्तर के पापों की मलिनता भस्म हो जाती है। हे परीक्षित् ! यों तो कलियुग में दोषों का भण्डार है किन्तु उसमें यही एक विशेष गुण है कलियुग में केवल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के एक बार नाम संकीर्तन मात्र से ही सारे पाप नष्ट होकर वही गति प्राप्त होती है जो सतयुग में भगवान् को तपस्या से, त्रेतायुग में बड़े बड़े यज्ञ करने से और द्वापर में विधिपूर्वक उनकी पूजा करने से फल प्राप्त होता है। वह केवल कलियुग में भगवत् नाम संकीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ चौथा अध्याय ॥

चार प्रकार की प्रलय

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित् ! तीसरे स्कंध में मैं तुम्हें काल का स्वरूप तथा परिभाषा बतला चुका हूँ। अब मैं तुम्हें कल्प की स्थिति तथा उसके प्रलय का वर्णन सुनाता हूँ। ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युगी का होता है। उसी को कल्प कहते हैं। इस कल्प में चौदह मनु व्यतीत हो जाते हैं। जब ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् एक कल्प व्यतीत होजाता है तब कल्प के अन्त में उतने ही समय अर्थात् एक कल्प तक प्रलय रहती है। उस प्रलय को ही ब्रह्मा की एक रात कहते हैं। ब्रह्मा की उस रात को इस प्रलय की नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय में तीनों लोक समाप्त हो जाते हैं। इस अवसर पर ब्रह्मा सारे विश्व को अपने भीतर समेट कर सो जाते हैं। उस अवसर पर शेषशायी नारायण भी शयन कर जाते हैं। जब ब्रह्मा की वह रात्रि समाप्त हो जाती है तब ब्रह्माजी पुनः उन तीनों लोकों की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार दिन के बाद रात और रात के बाद दिन व्यतीत होते रहते हैं। इस प्रकार जब ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं उसको दो परार्द्ध की आयु कहते हैं। तब ब्रह्मा समाप्त हो जाते हैं। उस समय महतत्व अहङ्कार, पंचतन्मात्रा, ये सातों तत्व अपने कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं। इसी को प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। इसे प्राकृतिक प्रलय के पाँचों भूतों से बना यह ब्रह्माण्ड अपना स्थूल वर्ष त्याग कर अपने कारण रूप में घुल मिल जाता है। उस समय सौ वर्ष तक पृथ्वी पर वर्षा नहीं होती है। सभी प्राणी, वृक्ष; लता आदि जल के बिना सूख जाते हैं उस समय प्रलय कालीन सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से समुद्र आदि के जल को सोख कर सब को जला देता है। सब लाल अङ्गारे की भाँति तृप्त हो जाते हैं। पृथ्वी के नीचे संकर्षण भगवान् (शेष नाग) के मुख से प्रलयकालीन अग्नि निकलने लगती है। वह पृथ्वी के नीचे के सातों लोकों को भस्म कर देते हैं। नीचे से तीक्ष्ण अग्नि की लपटें तथा ऊपर से प्रचण्ड मार्तण्ड की गर्मी इस सारे ब्रह्माण्ड को ऊपर नीचे चारों ओर जलाकर भस्म कर देती

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि गोबर का उबला अग्नि से जल कर अङ्गारे के रूप में दहक रहा हो, तथा प्रलयकालीन अति प्रचण्ड वायु सैकड़ों वर्ष तक चलती है, और सारे आकाश को धूल धक्कड़ धुआँ तथा रङ्ग-बिरङ्गे बादलों में भर देती है। तब सैकड़ों वर्ष तक भयङ्कर वर्षा होने लगती है। उस समय सारे ब्रह्माण्ड में जल ही जल भर जाने के कारण सारा ब्रह्माण्ड जल मग्न हो जाता है। उस समय जल पृथ्वी के गुण गन्ध को अपने में लीन कर लेता है। गन्ध के जल में मिल जाने पर पृथ्वी में ज़ल घुल कर पृथ्वी जल रूप हो जाती है। तत्पश्चात् जल के गुण रस को तेज (अग्नि) ग्रसित कर लेता है। और वह जल सूख कर तेजमें समा जाता है। तत्पश्चात् तेज के गुण रूप को वायु ग्रसित कर लेता है और वह तेज वायु में मिल जाता है। तत्पश्चात् वायु के गुण स्पर्श को आकाश पी लेता है। वायु आकाश में लीन होकर शान्त हो जाता है। तत्पश्चात् आकाश के गुण शब्द को तामस अहंकार ग्रसित कर लेता है। और आकाश तामस अहंकार में घुल मिल जाता है। तामस अहंकार इन्द्रियों को ग्रसित कर लेता है और सात्विक अहंकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को ग्रसित कर लेता है। तत्पश्चात् अहंकार को महतत्व ग्रसित कर लेता है। और सात्विक, राजस, तामस गुण महतत्व को ग्रसित कर लेते हैं। और वे तीन गुण प्रकृति में लीन हो जाते हैं। तब केवल प्रकृति ही प्रकृति अर्थात् भगवान् की माया शेष रह जाती है। वही इस चराचर जगत् को उत्पन्न करने का मूल कारण है। जब प्रलय हो जाती है तब सब कुछ सोये के समान शून्य सा हो जाता है। उस अवस्था का अनुमान करना असम्भव है इसी अवस्था को प्राकृतिक प्रलय कहते हैं उस समय प्रकृति तथा पुरुष दोनों की शक्तियाँ क्षीण होकर अपने मूल स्वरूप में लीन हो जाती हैं। केवल परमात्मा तत्व ही शेष रहता है।

॥ पाँचवाँ अध्याय ॥

श्री शुकदेव जी द्वारा परीक्षित् को अन्तिम ज्ञान देना—

श्री शुकदेव जी बोले—हे परीक्षित्! तुमने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पुराण में केवल सर्वत्र बार बार यही सुना है कि विश्वात्मा

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी का सङ्कीर्तन ही परम तत्व है। ब्रह्मा तथा रुद्र भी श्री हरि से अलग नहीं हैं। हे राजन्! अब तुम इस धारणा को बिल्कुल भूल जाओ कि मैं मरूँगा। तुम शरीर नहीं हो। तुम आत्मा हो। मरना तथा उत्पन्न होना यह शरीर का धर्म है तुम्हारा धर्म नहीं है। तुम किसी से न तो उत्पन्न हुए हो और न उत्पन्न होगे। जिस प्रकार आग लकड़ी से अलग रहती है। लकड़ी उत्पत्ति तथा नाश से सदा परे है उसी भाँति लकड़ी रूप देह से अग्निरूप तुम भी सर्वथा अलग हो। मरना, कटना, जलना ये सब शरीर की अवस्था हैं आत्मा की नहीं है। वह आत्मा दृष्टा तथा इन मरने जीने की अवस्थाओं से अलग जन्म मृत्यु रहित शुद्ध बुद्ध तथा परमात्मा स्वरूप है। जिस प्रकार महाकाश और घटाकाश दोनों एक ही हैं किन्तु घटाकाश अलग प्रतीत होता है और घट के टूट जाने पर घटाकाश महाकाश में मिल जाता है उसी प्रकार अज्ञान के टूट जाने पर यह जीव भी ब्रह्म हो जाता है। वह पहले भी ब्रह्म ही था। यह तो केवल अज्ञान के कारण अब्रह्म प्रतीत होता था। यह मन ही इस आत्मा के लिए अनेकों शरीर विषय तथा कर्मों का निर्माण करता है। और यह मन ही जीव को कर्म बन्धन में बाँध कर संसार चक्र में घुमाता है। इस मन की सृष्टि भगवान की माया करती है। जिस प्रकार तेल तथा तेल का पात्र और बत्ती के साथ आग का संयोग होने से दीपक जलने लगता है उसी प्रकार आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, मन और कर्म इन सबका परस्पर सम्बन्ध होने से यह जीव अपनी रजोगुण, सतोगुण तथा तमोगुण वृत्तियों के द्वारा उत्पन्न तथा नाश होता रहता है। किन्तु दीपक के बुझ जाने पर जिस प्रकार तेज तत्व का नाश नहीं होता है उसी भाँति संसार के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है क्योंकि यह आत्मा सब से परे, सब का आधार, नित्य निश्चय तथा अनन्त है।

हे परीक्षित! तुम अपनी शुद्ध और विवेक युक्त बुद्धि से परमात्मा का चिन्तन करके अपने हृदय को भरलो और अपने अन्तःकरण में परमात्मा का साक्षात्कार करो। और यह समझलो कि स्वयं ईश्वर

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं ही सबका स्वामी हूँ। जब तक्षक ब्राह्मण के शाप से अपनी जीभ लपलपाता हुआ तुम्हारे पैरों को डसले तो भी कोई चिन्ता न करना। उस समय तुम अपने आत्म स्वरूपमें स्थिति होकर इस सारे विश्वको अपने में देखना। वह तक्षक तुम्हें नहीं डसेगा। तुम्हारे इस नाशवान शरीर को डसेगा। तुमने जो पूछा था उसका उत्तर दे दिया अब क्या चाहतेहो ?

॥ छठा अध्याय ॥

राजा परीक्षित की परम गति होना तथा जनमेजय द्वारा सर्प यज्ञ करना तथा वेदों की शाखा प्रशाखा का वर्णन करना—

दोहा—जनमेजय ने कुपति हो, कीन्ह सर्प मख एक।
भस्म किये अहिराज बहु, राखी अपनी टेक॥

श्री सूतजी बोले—हे शौनकजी! पारदर्शी भगवान् व्यासनन्दन शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को इस भाँति भागवत तत्व का सार निचोड़ कर अमृत पान कराया। उसे पीकर राजा परीक्षित अमर हो गये। तब राजा परीक्षित् ने हाथ जोड़ कर उनके चरणों की ओर आगे बढ़ कर इस प्रकार कहा। राजा परीक्षित् बोले—हे ब्रह्मन्! आपने मुझ दीन पर दया करके सनाथ कर दिया। आपने मुझे श्री हरि की लीला कथाओं का अमृत पान कराकर अमर बना दिया। अब मैं आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करके कृत्य २ होगया हूँ। इस संसार अग्नि से दहकने वाले प्राणियों का आप जैसे सन्त पुरुषों की कृपा दृष्टि से ताप शान्त होता है। मेरे साथ बहुत से प्राणियों ने इस श्रीमद्भागवत—महापुराण को सुना है। इसके पद पद में भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी की लीला कथाओं का वर्णन है। आपने ब्रह्म का साक्षात्कार कराकर मुझे अभय कर दिया है। अब मुझे तक्षक तथा काल का कुछ भी भय नहीं है। हे ब्रह्मन्! अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अपनी वाणी बन्द करके मौन होजाऊँ। तथा शांत चित्त से इन्द्रियाँ जीत परमात्मा के स्वरूप में मग्न होजाऊँ मेरा अज्ञान बिल्कुल नष्ट हो चुका है। आपने परमात्मा का साक्षात्कार मुझे प्रदान किया है। श्री सूतजी बोले—हे ऋषियो! इतना कह कर राजा परीक्षित् ने भगवान व्यासनन्दन श्री शुकदेवजी की प्रेम से विधिवत पूजा की। तब परम ज्ञानी श्री शुकदेव

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

जी राजा परीक्षित् से बिदा होकर त्यागी महात्माओं के साथ वहाँ से चले गये। तब राजा परीक्षित् ने भी मौन होकर अपने नेत्र बन्द कर लिये और अपनी अन्तरात्मा में ब्रह्म का साक्षात्कार किया, और ध्यान मग्न होगये। उन्होंने अपने श्वास प्रश्वास को रोक लिया। एक ठूँठ की भाँति निश्चल भाव से बैठ गये। राजर्षि परीक्षित् ने गङ्गाजी के तट पर कुशों को इस प्रकार बिछा लिया था कि उनका अग्रभाग पूर्व दिशा की ओर था। और स्वयं उत्तर की ओर मुँह करके बैठे थे। वे आत्मा को ब्रह्म में मिलाकर एक रस ब्रह्म ही होगये थे। हे शौनकजी ! उसी समय भृङ्गी ऋषि के शाप से प्रेरित वह तक्षक राजा परीक्षित को डसने के लिए उनके पास को चला। मार्ग में उस तक्षक को कश्यप नाम का ब्राह्मण मिला। वह ब्राह्मण सर्प विष की चिकित्सा में निपुण था। जब तक्षक ने उसे भी राजा के पास जाते हुए देखा तब ब्राह्मण का वेष बनाकर उसे जाने से रोकने लगा। पहिले उसने उस कश्यप ब्राह्मण की परीक्षा ली। परीक्षा के लिये उसने एक वृक्ष को डस लिया वह वृक्ष उसी क्षण जल कर ठूँठ होगया किन्तु उस ब्राह्मण ने तत्क्षण उस वृक्ष को हरा भरा कर दिया। तब तक्षक ने पूछा कि तुम राजा परीक्षित के पास क्यों जा रहे हो। उस ब्राह्मण ने कहा कि जब उसे तुम डसोगे तब मैं उसे अपनी चिकित्सा से अच्छा कर दूँगा और बहुत सा धन प्राप्त करूँगा। तब तक्षक ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर वापिस कर दिया। वह ब्राह्मण भी राजा की अवश्यम्भावी मृत्यु जानकर वहाँ से लौट दिया वह तक्षक स्वयं राजा के पास ब्राह्मण का वेष बनाकर आया और उन्हें डस लिया। राजा परीक्षित् तक्षक के डसने से पहिले ही ब्रह्ममें लीन होचुके थे। तक्षक के डसते ही राजा परीक्षित् का शरीर जल उठा तथा जलकर भस्म होगया। सर्वत्र हा हा कार मच गया। मनुष्य देवता असुर आदि सभी राजर्षि परीक्षित की परमगति होने से अति आश्चर्य में हुए तथा आकाश से पुष्प बृष्टि करने लगे। अप्सरायें गीत गाने लगीं दुन्दुभियाँ आकाश में बजने लगीं। जब राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने यह सुना तब वह अति क्रोधित हुआ और सर्पों के नाश की प्रतिज्ञा करके एक सर्प यज्ञ

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

का अनुष्ठान किया। उस में अनेक ऋषि होता इत्यादि एकत्र हुए। सर्प यज्ञ आरम्भ हो गया। असंख्यों सर्प प्रज्वलित अग्नि में भस्म होने लगे। तब वह तक्षक अति भयभीत होकर इन्द्र के सिंहासन पर जा बैठा बार बार आहुति देने पर भी तक्षक भस्म होने को नहीं आया। तब जनमेजय ने कहा—हे होताओ! यह क्या बात है? आप लोग मन्त्रों द्वारा शीघ्र ही मेरे पिता के शत्रु तक्षक को आहुति द्वारा हवन कुण्ड में डालो। तब यज्ञ के होतागण बोले—हे राजन्! वह दुष्ट तक्षक इन्द्र के सिंहासन पर जाकर बैठ गया है। इसी कारण बार बार आहुति देने पर भी वह नहीं गिरता है। तब जनमेजय ने कहा कि इन्द्र के सिंहासन सहित तक्षक को भस्म करने की आहुति दो। तब होताओं ने ऐसा ही किया और अपने मन्त्रबल से इन्द्र के सिंहासन सहित तक्षक का आवाहन किया। तक्षक सहित इन्द्र का विमान गिरने के लिए आकाश में मड़राने लगा। इन्द्र अति घबड़ाये। उनका सिंहासन चक्कर काटने लगा। जब वृहस्पति जी ने यह देखा तब वे आकाश में स्थिति होकर बोले–हे राजा जनमेजय! यह तक्षक सर्प अमृत पी चुका है अतः यह अमर है इसे मारना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा करने से अमृत की शक्ति कुछ भी न रहेगी और शास्त्रीय मर्यादा का नाश हो जायगा। रे नरेन्द्र! जगत् में प्राणी अपने अपने कर्मानुसार जन्म मृत्यु पाता है। कर्म के अनुसार ही उसे मृत्यु दुःख सुख प्राप्त होते हैं कोई किसी को दुःख सुख देने वाला नहीं है। यों तो बहुत से मनुष्यों की मृत्यु, साँप, चोर, अग्नि बिजली आदि से होती रहती है किन्तु यह तो कहने भर की बात है बिना प्रारब्ध के कर्मों के मृत्यु किसी प्रकार भी नहीं हो सकती है। वह तो सर्प आदि का तो केवल बहाना मात्र है मृत्यु आने पर ही ऐसे कारण उपस्थित होते हैं। तुम ने अनेकों सर्पों को जला दिया है। अब सर्प यज्ञ बन्द करो। जगत् के सभी प्राणी कर्मानुसार प्रारब्ध भोग भोगते हैं। जब वृहस्पति जी इस प्रकार कह ही रहे थे कि उसी क्षण वासुकि की पुत्री जरुत्करी के पुत्र ऋषिकुमार आस्तीक वहाँ आ पहुँचे। जिस प्रकार राजा बलि के यज्ञ में वामन भगवान् पहुँचे थे उसी भाँति ऋषिकुमार आस्तीक

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

भी शोभायमान थे। उन्होंने आते ही इन्द्र के विमान सहित तक्षक को आकाश में ही रोक दिया, और राजा जनमेजय से सर्पयज्ञ बन्द करा दिया सर्प यज्ञ बन्द होने से सभी सर्पों की प्राण रक्षा हो गई। शौनक जी बोले—हे सूत जी! वेद व्यास जी के शिष्यों ने कितने भागों में वेदों को बाँटा है। यह कृपा कर समझाइये। सूत जी बोले—हे शौनक जी! सृष्टि के आरम्भ में जब ब्रह्माजी एकाग्रचित्त से बैठे थे तब उनके हृदय से अनाहत नाद उत्पन्न हुआ। मनोवृत्ति के रोक लेने पर जीव को भी अनाहत नाद का अनुभव होने लगता है। बड़े योगी जन उसी अनाहतनाद का अनुभव करते हैं और उसी के द्वारा परमगति को प्राप्त करते हैं। उसी अनाहत नाद से 'अ' कार, 'उ' कार तथा 'म' कार तीन रूप युक्त ॐ कार प्रकट हुआ। इसी ॐकार की शक्ति द्वारा यह प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त हो जाती है अर्थात् अदृश्य से दृश्य हो जाती है। ॐकार स्वयं अव्यक्त तथा अनादि है और स्वयं प्रकाश है। ब्रह्म का ज्ञान भी ॐकार के द्वारा ही होता है। सुषुप्त तथा समाधि अवस्था में भी वही परमात्मा का विशुद्ध स्वरूप ॐकार हृदयाकाश में प्रकट होकर वेदवाणी को उत्पन्न करता है। यह ॐकार ही परब्रह्म को साक्षात्कार करता है। यही सम्पूर्ण मन्त्र, उपनिषद तथा वेदों का सनातन बीज है। हे शौनक जी! ॐकार में तीन वर्ण हैं। 'अ' 'उ' तथा 'म' ये तीनों वर्ण सत, रज, तम तीनों गुण वाले हैं। ऋगु, यजु तथा साम, इन तीन नाम वाले हैं। भूः भुवः स्वः इन तीन अर्थ वाले हैं। तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्त तीन अवस्था वाले हैं। ॐकार से अंतस्थल की ध्वनि (य र ल व) ऊष्मकी ध्वनि (शष सह) तथा स्वर की ध्वनि (अ से लेकर औ तक) और स्पर्श की ध्वनि क वर्ग से लेकर म वर्ग तक उत्पन्न हुई। इन्हींके द्वारा वर्णमालाकी रचना हुई। उसी वर्णमाला के द्वारा उन्होंने अपने चारों मुखों से होता, अध्वर्यु उद्‌गाता तथा इन चार के कर्मों का निरूपण करनेके लिए चार वेद प्रकट किये। उन चारों वेदोंको अपने मरीचि आदि पुत्रोंको उन्होंने पढ़ाया। उन ब्रह्माकेपुत्रोंने अपने शिष्यप्रशिष्यों को वेद पढ़ाये। जब उन ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने यह देखा कि काल की गति से मनुष्योंकी आयु, शक्तितथा बुद्धिक्षीण होती जारहीहै और वे इन वेदोंका पूरी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

तरह अध्ययन नहीं कर सकते हैं तब उन्होंने उन वेदोंको अनेक संहिताओं में विभाजित करदिया। हे शौनकजी! इस वैवश्वत मन्वतन्र में स्वयं भगवान्ने वेदों की रक्षार्थ महर्षि पाराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूपमें अवतार लिया। वर्तमान युग में उन्होंने वेदके चार भाग किये हैं। भगवान् व्यासजी ने वेद मन्त्री को भिन्न २ प्रकरणों के अनुसार उनको अलग २ बाँटकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वेद इन ४ संहिताओं में उसे विभाजित करदिया और उन्होंने अपने ४ शिष्यों को एक २ संहिता का अध्ययन कराया है। हे शौनकजी! वैशम्पायनके शिष्य चरकाध्वर्यु थे। इन शिष्यों ने अपने गुरु की ब्रह्म हत्या के पाप का प्रायश्चित करने के लिए व्रत का अनुष्ठान लिया। वैशम्पायन के एक शिष्य याज्ञवल्क्य मुनि भी थे। उन्होंने इन चरकाध्वर्यु ब्राह्मण के व्रतको उत्तम न समझ कर गुरुदेव से कहा कि मैं आपको लगी हुई ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित के निमत्त कठिन तप करूँगा। अपने शिष्य याज्ञवल्क्य की यह बात सुनकर वैशम्पायनको बड़ा क्रोध आया और वे बोले—बस! चुप हो जाओ। ब्राह्मणों का अपमान करने वाले ऐसे शिष्य को मैं नहीं चाहता। तुमने जो कुछ भी मुझ से पढ़ा हो उसे शीघ्र त्याग दो और यहाँ से चले जाओ। देवरात के पुत्र याज्ञवल्क्य जीने गुरुकी आज्ञा पाते ही उनसे पढ़े हुए यजुर्वेद का वमन उसी क्षण कर दिया और वहाँ से चले गये। जब ऋषियों ने यह देखा कि याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का वमन कर दिया है तब वे उसको ग्रहण करने के लिए अति लालायित हुये किन्तु वे वमन की गई वस्तु को ग्रहण करने में हिचकते थे इसलिये तीतर बन कर उस यजुर्वेद संहिता को उन्होंने चुरा लिया। इसी कारण उस संहिता का नाम तैत्तिरीय संहिता भी है। तब याज्ञवल्क्य अपने गुरुसे भी अधिक उत्तम संहिता प्राप्त करने के लिए सूर्य भगवान् की उपासना करने लगे। तब सूर्य भगवान् ने कृपा करके अश्व रूप से प्रकट होकर यजुर्वेद के उन मन्त्रों का उपदेश दिया जो अभी तक किसी ने भी प्राप्त नहीं किये थे। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद के मन्त्रों को पन्द्रह भागों में बाँट दिया। वे सभी मन्त्र वाजसनेय संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनको कंच, माध्यन्दिन आदि मुनियों ने पढ़ा—

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

॥ सातवाँ अध्याय ॥

अथर्व वेद की शाखाऐं तथा पुराणों के लक्षण का वर्णन करना

सूतजी बोले—हे ऋषियों ! अथर्ववेद के ज्ञाता सुमन्त मुनिने अपनी-संहिता अपने शिष्य कवन्ध को पढ़ाई। उस कवन्ध ऋषि ने उस संहिता को दो भागों में विभाजित करके पथ्य तथा वेद दर्श दो शिष्यों को पढ़ाई। वेद दर्श ने शौक्लायनि ब्रह्मवलि, मोदोष तथा पिप्पलायिनि अपने चार शिष्यों को पढ़ाया। पथ्यके तीन शिष्य कुमुद, शुनक तथा जाँजलि थे शुनक के दो शिष्य वभ्रु और सैन्धवायन थे। इन दोनों ने दो संहिताओं का अध्ययन किया। अब मैं तुम्हें पुराणों के लक्षण सुनाता हूँ। हे शौनक जी ! पुराणों के प्रसिद्ध आचार्य छः हुए हैं। त्र्यारुणी, कश्यप, सावर्णी, अकृतव्रण, वैशम्पायन तथा हारीत इन लोगों ने मेरे पिता श्री रोमहर्षण जी से एक २ पुराण संहिता पढ़ी। तथा मेरे पिताजी ने भगवान् वेद व्यासजी से उन पुराण संहिताओं का अध्ययन किया। मैंने उस छहों संहिताओं का अध्ययन उन छः आचार्यों से किया इन छः संहिताओं के अतिरिक्त चार संहिताओं का अध्ययन मैंने और किया। हे शौनकजी ! इस प्रकार छोटे बड़े अठारहपुराण माने जाते हैं। उनके नाम ये हैं— १ ब्रह्मपुराण,२पद्मपुराण ३ विष्णुपुराण, ४ शिवपुराण, ५ लिङ्गपुराण, ६ गरुणपुराण,७ नारदपुराण ८ भागवतपुराण, ९ अग्निपुराण, १० स्कन्धपुराण, ११ भविष्यपुराण, १२ ब्रह्मवैवत्तपुराण, १३ मारकण्डेयपुराण, १४ वामनपुराण, १५ वराहपुराण, १६ मत्स्यपुराण, १७ कूर्मपुराण तथा १८ ब्रह्माण्डपुराण। पुराणों के पार दर्शी ऋषियों ने पुराणों के दस लक्षण बतलाये हैं। अर्थात् प्रत्येक पुराण में इनदस विषयों का वर्णन होता है। और वह दस भागों में बाँटा गया है। १ सर्ग, २ विसर्ग, ३ वृत्ति, ४ रक्षा, ५ मन्वन्तर, ६ वंश, ७ वन्शानु, चरित, ८ संस्था (प्रलय) ९ हेतु, १० अपाश्रय।

॥ आठवाँ अध्याय ॥

मार्कण्डेयजी का तपस्या करना तथा बर प्राप्त करना—

श्रीशौनकजी बोले—हे सूतजी ! अब आप कृपा करके हमें मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेयजी के विषय में कुछ सुनाइये। हमने सुना है कि प्रलय काल में भी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

मार्कण्डेयजी बचे रहेथे। किंतु हे सूतजी ! श्रीमार्कण्डेयजी तो हमारे ही भृगु-वंशमें उत्पन्न इसी कल्प में हुए हैं। और इसी कल्पमें अभीतक कोई प्रलय भी नहीं हुई है फिर यह अद्भुतकथा कैसे सुनीगई। यहहमारा संशयदूर कीजिये। श्री सूत जी बोले–हे शौनकजी ! आपका प्रश्न अति सुन्दर है मैं आपका सन्देह अभी दूर किये देता हूँ। आप ध्यान पूर्वक सुनें। मृकण्ड मुनिने मार्कण्डेयजीके सभी संस्कार विधिवत् पूर्ण किये। मार्कण्डेय जी वेदाध्ययन तथा तपस्या में संलग्न रहने लगे। वे नैष्टिक ब्रह्मचारी थे। जट जूटा धारण करते तथा वृक्षों की छाल पहिनते थे। कमण्डल तथा दण्ड धारण करते थे। मृग चर्म रुद्राक्ष की माला तथा कुश ही उन का धन था। वे प्रातःकाल तथा सायंकाल अग्निहोत्र, सूर्योपासना आदि विधिवत् करते थे। 'मैं ब्रह्म हूँ।' 'परमात्मस्याहूँ' इस प्रकार का ध्यान करते थे। वे दोनों समय भिक्षा लाते थे तथा गुरुदेव के सन्मुख रखते थे। जो कुछ गुरुदेव उन्हें देते उसी में सन्तुष्ट रहते थे। अन्यथा उपवास ही कर लेते थे इस भाँति तपस्या तथा स्वाध्याय करते हुए उन्हें करोड़ों वर्ष व्यतीत होगये। उन्होंने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करली यह जानकर ब्रह्मा,शंकर आदि देवताओं को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। हे शौनक जी ! मार्कण्डेय जी तपस्या स्वाध्याय,धारणा ध्यान समाधि द्वारा अपना चित्त भगवान् में ही सदा लगाये रहते थे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् नर नारायण ने उन्हें दर्शन दिये। उन में एक गौराङ्ग तथा दूसरे श्याम वर्ण थे। चतुर्भुज स्वरूपथे। दंड कमण्डल धारण किए हुए थे। कमलगट्टे की माला तथा बालकी एक कूँची जीवोंको मार्गसे हटानेके लिए धारण किए हुए थे। जब मार्कण्डेयजीने नर नारायण के दर्शन किये तब वे अति प्रसन्न हुए उन्होंने विधिवत् पूजाकी और प्रेमानन्द में डूब गये गद्गद वाणीसे कुछ भी वचन मुखसे न निकले प्रेमाश्रु बहने लगे। भगवान् नारायण मार्कण्डेयजी पर कृपा वृष्टि कर रहे थे। मार्कण्डेय मुनि बोले–हे परमात्मन्! मैं क्षुद्रप्राणी अल्प बुद्धि हूँ। आपके गुण तथा महिमा को कैसे जान सकता हूँ। ब्रह्मा शंकर आदि देवाधिदेव भी आपही की आराधना करते रहतेहैं। और वे सब आपही के आधीनहैं। हे भगवन्! विश्व रक्षा के लिए आप ही अनेकों अवतार लेते हैं। आप जगतकी रक्षा उसकी उत्पत्ति तथा प्रलय भी

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

स्वयं करते हैं। जो आपकी शरण में आ जाते हैं उन्हें क्लेश नहीं छू सकते हैं। हे प्रभु ! यह जीव सदा जन्म मरण के चक्कर से भयभीत रहता है यहाँ तक कि ब्रह्मादि देवता भी इसी कारण भयभीत रहते हैं। फिर हम जैसे प्राणियों का तो कहना ही क्या है आप समस्त जीवों के स्वामी उनके परम गुरु तथा ज्ञान स्वरूप ब्रह्म हैं। आप ही मोक्ष देते हैं। मैं सम्पूर्ण जगत् की आसक्ति त्यागकर आपकी शरणमें हूँ। आपके भक्तजन आपही की उपासना करते हैं उसीसे बैकुण्ठ धामकी प्राप्ति उन्हें होती है। हे भगवान् ! आप सर्व-व्यापक सर्वात्मन्, अन्तर्यामी तथा जगत् के गुरुहैं और वेदमार्गों के प्रवर्त्तक आपही हैं। मैं आपके नरनारायण युगलस्वरूप को नमस्कार करता हूँ। वेद आपही से प्रकट हुए हैं ब्रह्मा आदि भी आपके स्वरूपके रहस्यको नहीं जानते हैं आप लीला बिहारी हैं। जो जिस भाव से आपकी आराधना करता है आप उसे उसी रूप से निहाल करते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

॥ नौवाँ अध्याय ॥

मार्कण्डेयजी को वर देना तथा माया के दर्शन प्राप्त होना।

सूतजी बोले-हे शौनकजी ! जब मार्कण्डेयजी ने भगवान नरनारायण की इस प्रकार स्तुति की तब उन्होंने मार्कण्डेयजी से इस प्रकार कहा—

भगवान् नरनारायण बोले-हे ब्रह्मर्षि ! हम तुम्हारी अनन्य भक्ति से अति प्रसन्न हैं तुम्हारा कल्याण हो तुम्हारी जो इच्छाहो वह वर माँगलो। मार्कण्डेयजी बोले—हे परमात्मन ! ब्रह्मा, आदि देवादिदेव आप ही की आराधना करते रहते हैं आप जगत् के स्वामी तथा शरणागत् वत्सल हैं आपने मुझे कृपाकरके दर्शन दिये हैं। यही क्या कम वरदान है जिन भगवान् को ब्रह्मा, शंकर निरन्तर दर्शनों की अभिलाषा से जपते रहते हैं उन्हीं भगवान् के दर्शन आज मुझे प्राप्त हुए हैं इससे बढ़कर और वरदान मेरे लिए क्या हो सकता है। यदि आपकी इच्छा मुझे वर देनेकी है,तो मैं आपकी उसमाया के दर्शन करनाचाहताहूँ जिसे देखकर सभी लोक तथा लोकपाल मोहितहोकर ब्रह्ममें अनेक प्रकार का भेदविभेद देखते रहते हैं। सूतजी बोले-हेशौनकजी! मार्कण्डेयजी के इस प्रकार वर माँगने पर भगवान् नारायण मुस्कराये और बोले अच्छा ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् अपने आश्रम को चले गये।

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS

हे शौनकजी ! एक दिन सन्ध्याके समय पुष्पमहा नदी के तट पर मुनि मार्कण्डेयजी भगवान् के ध्यान में तन्मय हो रहे थे। उसी समय बड़ी भयङ्कर आँधी चलने लगी। उस आँधी के कारण भयङ्कर बादल आकाश में छागये। बिजली कड़कने लगी तथा बड़ी घोर वर्षा होने लगी मार्कण्डेयजी ने देखा कि चारों दिशाओं से समुद्र उमड़२ कर आ रहा है और सारी पृथ्वी जल में डूबगई है। उस भयङ्कर जलमें मगर मच्छ घूमरहे हैं। उस जलराशिमें पृथ्वी ही नहीं डूबी है अपितु स्वर्ग भी डूबा जा रहा है। बड़ी भयङ्कर आँधी के कारण भयङ्कर लहरें समुद्र में उठ रही हैं। उस प्रलय कालीन जलमें स्वेदज उद्भिज, अण्डज तथा जरायुज,सभी प्राणी नष्ट हो गए हैं। सारे द्वीप,वर्ष पर्वत,अन्तरिक्ष, स्वर्ग, गृहमण्डल आदि जलमें डूब गये हैं केवल मार्कण्डेय मुनिही बचगए हैं। वे पागल की भाँति जटा फैलाकर इधर से उधर प्राण रक्षा के लिए भाग रहे हैं। बड़े २ मगरमच्छ उन्हें हड़पने के लिए उन पर टूट रहे हैं लहरें थपेड़े मार रही हैं वे बड़े २ भ्रमरों में फँस रहे हैं। वे कभी भयभीत होते हैं, कभी डर जाते हैं। कभी रोग ग्रसित हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् की माया के चक्कर में मार्कण्डेय मुनि मोहित होने लगे उन्हें इस प्रलयकालीन जलमें भटकते २ लाखों करोड़ों वर्ष व्यतीत होगये। जब वे इस मायामय दुःख से अत्यन्त व्याकुल होने लगे तब उन्हें एक टीले पर छोटासा बरगद का वृक्ष दृष्टि आया। उस पर हरे हरे पत्ते तथा लाल लाल फल अति शोभायमान लग रहे थे। उस बरगद वृक्षकी एक डालईशान कोणकी ओर फैल रही थी। उसके पत्ते पर एक अत्यन्त सुन्दर नन्हा सा नवजात शिशु लेट रहा था। उस शिशुके शरीर की अनुपम छटा थी।उसके प्रकाश से वह प्रलयकालीन अन्धकार नष्ट हो रहा था मुख कमल से सौन्दर्यता छटक रही थी। चौड़ी छाती, तोते के समान नासिका, शंख के समान गर्दन और घुघराली अलकें कपोलों पर फहरा रहीं थीं। उसकी श्वास प्रश्वास से समुद्र की लहरें उठ रही थीं। उस शिशुका रङ्ग श्यामवर्ण था। मुस्कान अति मनोहर थी उसके नन्हे२हाथों में अति सुन्दर अँगुलियाँ थीं। उस शिशुको देखकर मार्कण्डेयजी अति आश्चर्य में हुए। उनकी थकावटदूर होगई।हृदयप्रसन्न हो उठा वे अनेक प्रकारकी शङ्काओंकी भावनाओं में ओत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

ने लगे। वे उस शिशु के निकट जाने लगे। वे अभी निकट पहुँचने
ाये थे कि उस शिशु की श्वास के साथ उसके पेट में चले गये। वहाँ
होंने सम्पूर्ण सृष्टि को देखा। उस शिशुके उदर में पहुँच कर वे हक्के
े हो गये।वहाँ उन्होंने आकाश, अंतरिक्ष, पर्वत, समुद्र,द्वीप, देवता,
नगूर, नदियाँ,आदि सभी देखीं। साथ ही साथ उन्होंने अपना आश्रम
भगको ध्यान मग्न बैठा देखा।

ति सारे जगत को देखकर बड़े आश्चर्य में हुये। फिर वे उस
पा श्वाँस द्वारा बाहर निकल कर उस प्रलयकालीन समुद्र में गिर
उस शिशु को अपना अँगूठा पीते देखा। वह शिशु मन्द २
ही मार्कण्डेय जी की ओर देख रहा है। तब मार्कण्डेय जी उस
गोद में उठाने के लिये परिश्रम तथा क्लेश के साथ आगे
न्तु हे शौनक जी! वह शिशु नहीं थे वे तो इन्द्रियातीत योगियों
ग्रामी घटघट वासी स्वयं भगवान् थे। मार्कण्डेयजी कोअपने निकट
नदिर अन्तर्ध्यान होगये। उनके अन्तर्ध्यान होते ही वह बरगद का
इस यकालीन जल सभी उसी क्षण विलीन होगये। और मार्कण्डेय
कोपने को पहली दशा में ही बैठा हुआ देखा। इस भाँति मार्कण्डेय
वार ..न भगवान के उदर में प्रविष्ट हुये और बाहर निकले। इस
लय का अनुभव उन्होंने किया। इसीलिये यह कहा गया
अलग२पुर ने सात बार प्रलय हुई।

॥ दसवाँ अध्याय ॥

...दित हो, दीन्हों वर मुनिराय। कर दर्शन निज नाथ के, भये मुनी हरषाय॥

श्रीसूतजी ...वान् शङ्कर के दर्शन तथा उनसे वर प्राप्त करना।

...द्रादि देवता तथा वे शौनक जी! मुनि मार्कण्डेयजी! भगवान की
...रहते हैं वे भगवान...नुभव करके उन्होंने यही निश्चय किया कि मार्ग
...णोंकी श्लोक संख्य...क्ति होने का एक मात्र उपाय उनकी श...
...विधि भी आप लोग...के ध्यानमें स्थिति हो गये। जब मार्...
...जार है ...२-पद्म पु... रहे थे उसी समय भगवान शङ्कर ...
...विचरते हुये आकाशमार्गसे उधर ...

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

उनके साथ उनके बहुत से गण भी थे। जब पार्वती जी ने मार्कण्डे-नि मार्क-
ध्यानावस्थित देखा तब उन्हें बड़ा वात्सल्य स्नेह उत्पन्न हुआ। ी भयङ्कर
ब्राह्मण की सूखी हड्डियों तथा अन्तःकरण को देखकर उसकी तप छागये।
प्रत्यक्ष फल देने के लिये भगवान शङ्कर जी से प्रार्थना करने लगीं। ने देखा
भगवान् शङ्कर बोले—हे पार्वती जी! इन ब्रह्मर्षि को ... जल में
इच्छा है न परलोक की इच्छा है और न मोक्ष की ही इच्छाराशिमें पृथ्वी
वरदान की भी कोई इच्छा नहीं है। इन्हें भगवान् की परम्... आँधी के
हो चुकी है। किन्तु फिर भी मैं तुम्हारे कहने के अनुसारतमें स्वेदज
करूँगा। क्योंकि ये बड़े महात्मा हैं। सन्त पुरुषों के समागम द्वीप,वर्ष
के अतिरिक्त दुःख तो प्राप्त हो ही नहीं सकता है। इतना कह मार्कण्डेय
वान् शङ्कर जी उनके हृदय में प्रवेश कर गये। जब भगवान् ...र प्राण
को मार्कण्डेय जी ने अपने हृदय में देखा और भगवान् नारायण उन पर
विलीन हो गया तब वे अति व्याकुल हुये और उन्होंने अपने ...हे हैं। वे
दिये। उन्होंने देखा कि भगवान् गौरीशङ्कर नन्दी पर सवार जाते हैं।
सम्मुख खड़े हैं। उनके सिर पर चमकती हुई पीली पीली जटायें ...ोने लगे
रही हैं। तीन नेत्र, दश भुजायें लम्बा तड़ङ्गा शरीर सूर्य के ... होगये।
शित हो रहा है। शरीर पर बाघम्बर, हाथों में त्रिशूल, रुउन्हें एक टीले
की माला, डमरू,खप्पर,तलवार तथा धनुष धारण कियेहु... तथा लाल
...भगवान् शङ्कर को देखकर अति प्रसन्न हुये तथा उन्होंने एक डालईशान
... अर्घ्य आदि षोडशोपचार से भगवान् गौरीशङ्कर ...न्दर नन्हा सा
उनके गणों की पूजा की। तब मार्कण्डेयजी बोले—...म छटा थी।उसके
आप ही जगत में सुख शांति का विस्तार करते हैं। मुख कमल से सौन्द-
आत्माराम हैं। मैं आपकी क्या सेवा करूँ। मैं नासिका, शंख के समान
...था तमोगुण,युक्त तीनों स्वरूपों को नमस्कारही थीं। उसकी श्वास
प्रश्वास स... ...ती! मार्कण्डेयजी की इस प्रकार प्रार्थउका रङ्ग श्यामवर्ण था।
मुस्कान औ... बोले--हे मार्कण्डेयजी! ब्रह्मा,विष्णुते सुन्दर अँगुलियाँ थीं।
उस शिशुको हैं,हमारा दर्शन कभी व्यर्थ नहीं हो में हुए। उनकी थकावटदूर
होगई।हृदयम... माँगलो। जो ब्राह्मण स्वभाव इच्छाओंकी भावनाओं में ओत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

सुन्दर प्रसङ्ग इसी स्कन्ध में है। हे शौनक जी! यह निश्चय है कि मनुष्य किसी भाँति सोते, उठते बैठते जागते, काम करते, मित्र भाव से त शत्रु भाव से किसी प्रकार भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के नाम गुण तथा कथ का संकीर्तन करता है उसके हृदय में अवश्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विराज हो जाते हैं उसके सम्पूर्ण कष्ट तथा भवसागर के आवागमन चक्कर दूर कर देते हैं। हे शौनकजी! मैंने स्थान २ पर हर प्रसङ्ग में उन्हीं भग भगवान् की लीला गुण तथा चरित्रों का वर्णन किया है। जो म क्षण भी सच्चे मन से भगवान् के नाम का संकीर्तन करता है उसके पाप नष्ट होजाते हैं 'करो केशव कीर्तन' कलियुग में केशव का व मुख्य है। जो मनुष्य एकादशी तथा द्वादशी के दिन इस कथा को है उसकी आयु दीर्घ होती है। जो निराहार संयम से इसका पाठ क उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य उपवास करके मथुरा, पुष्कर, तथा द्वारिका में इसका पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापों से तथा भय हो जाता है। इसके पाठ करने से तीनों वेद तथा मधु, घी और नदियाँ अर्थात् सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति होती है। हे शौनकजी! इस भागवत पुराण का पाठ करता है उसे परम पद प्राप्त होता, ह को एक छत्रराज्य वैश्य को धन, शूद्र के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। वान् श्रीकृष्णचन्द्र व व्यासनन्दन श्रीशुकदेव दोनों को नमस्कार करत

॥ तेरहवाँ अध्याय ॥

अलग २ पुराणों की श्लोक संख्या तथा श्रीमद्भागवत की महिमा वर्णन

दो०—तेरह में वर्णन करी, महिमा महापुरा ।
नहीं भागवत सरिस कोउ, दूजो ग्रंथ महा ॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनकजी! जिन भगवान् की आराधन ब्रह्मादि देवता तथा बड़े २ योगीजन, महर्षि, तथा देवर्षि, दिव्य रहते हैं वे भगवान् आप लोगों की रक्षा करें। अब मैं आ णों की श्लोक संख्या का वर्णन करता हूँ। श्रीमद्भागवत के दा विधि भी आप लोगों को सुनाता हूँ। १—ब्रह्म पुराण में श्लो जार है। २—पद्म पुराण में श्लोक ... पचपन

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

संख्या चौबीस हजार है। ५–श्रीमद्भागवत पुराण में श्लोक संख्या अठारह हजार है। ६–नारद पुराण में श्लोक संख्या पच्चीस हजार है। ७–मार्कण्डेय पुराण में श्लोकोंकीसंख्या नौहजार हैं। ८–अग्नि पुराणमें श्लोक संख्या ... हजार चारसौ है। ९-भविष्यपुराण में श्लोकसंख्या चौदह हजार पाँच सौ ... १०–ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में श्लोक संख्या अठारह हजार हैं। ११–लिङ्ग पुराण में श्लोक संख्या ग्यारह हजार है। १२–वाराह पुराण में श्लोक संख्या ...र है। १३ स्कन्ध पुराण में श्लोक संख्या इक्यासी हजार एकसौ ... वामन पुराण में श्लोक संख्या दस हजार है। १५–कूर्म पुराण में ... संख्या सत्रह हजार है। १६–मत्स्य पुराण में श्लोक संख्या चौदह ...। १७–गरुण पुराण में श्लोक संख्या उन्नीस हजार है। १८–ब्राह्मण ... में श्लोक संख्या बारह हजार है। हे शौनकजी! इस श्रीमद्भागवत को सर्व प्रथम भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी को सुनाया था। जिसे ... श्री भागवत् कहते हैं चार श्लोकों में ही भागवत् तत्व का निरूपण किया था। जो पुरुष भाद्रपद को पूर्णिमा का सौने के सिंहासन ... श्रीमद्भागवत का दान योग्य सुपात्र भागवत् धर्म को मानने वाले ... भगवान् भक्त को करता है उसे परम गति प्राप्त होती है। यह अठारहों पुराणों में सर्व श्रेष्ठ पुराण है सन्त समाज में अन्य पुराणों ... तक शोभा तथा मान्यता है जब तक श्रीमद्भागवत पुराण वहाँ ...वती। श्रीमद्भागवत पुराण सब वेद, उपनिषदों का सार है। ...कार नदियों में गङ्गा, देवताओं में विष्णु, वैष्णवों में भगवान शंकर ... पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण श्रेष्ठ है। हे शौनक जी! ... भगवान् कृष्णचन्द्रको नमस्कार करतेहैं। जिन्होंने कृपा करके संसार ... लिए इस भागवत् तत्व को प्रजापति ब्रह्मा जी को दिया। हम ... शुकदेवजी को नमस्कार करते हैं जिन्होंने राजा परीक्षित ... लोकहित के लिये यह भागवत् तत्व उनको सुनाया। और ... मुक्त कर दिया।

❀ श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण बारहों स्कंध समाप्त ❀

—❀—

प्रश्वासे स ... था।
मुसकान औ ... थीं।
उस शिशुको ... वटदूर
होगई।हृदयप्र ... हैं, हमारा दर्शन कभी ...
माँगलो। जो ब्राह्मण स्वभाव ... भावनाओं में ओत

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.
In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

श्वास
था ।
ाँ थीं ।
ावटदूर
हमारा दर्शन
माँगलो । जो ब्राह्मण स्वभाव [illegible] की भावनाओं में ओत

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain, Chambal Archives, Etawah

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri. Funding by IKS.

In Public Domain. Chambal Archives, Etawah

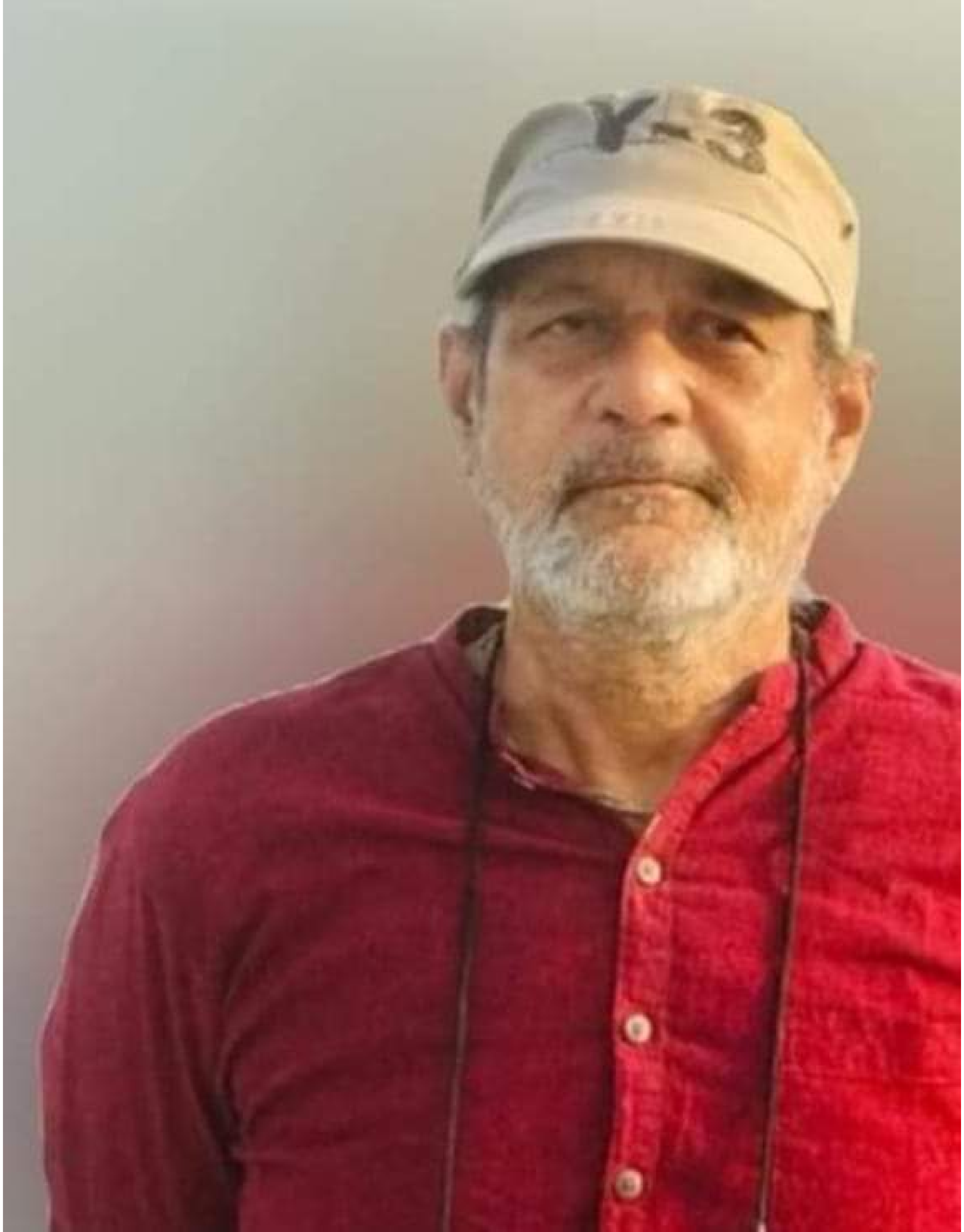
Y-3

This PDF you are browsing is in a series of several scanned documents from the Chambal Archives Collection in Etawah, UP

The Archive was collected over a lifetime through the efforts of Shri Krishna Porwal ji (b. 27 July 1951) s/o Shri Jamuna Prasad, Hindi Poet. Archivist and Knowledge Aficianado

The Archives contains around 80,000 books including old newspapers and pre-Independence Journals predominantly in Hindi and Urdu.

Several Books are from the 17th Century. Atleast two manuscripts are also in the Archives - 1786 Copy of Rama Charit Manas and another Bengali Manuscript.Also included are antique painitings, antique maps, coins, and stamps from all over the World.

Chambal Archives also has old cameras, typewriters, TVs, VCR/VCPs, Video Cassettes, Lanterns and several other Cultural and Technological Paraphernelia

Collectors and Art/Literature Lovers can contact him if they wish through his facebook page

Scanning and uploading by eGangotri Digital Preservation Trust and Sarayu Trust Foundation.